Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

Reg. No. A-708

पूर्ण संख्या ४६
भाग ६
Vol. IX.

मेष १६७५ । अप्रेल १६१६

संख्या १
No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ९ } मेष, संवत् १९७५ । अप्रेल, सन् १९१९ । { संख्या १

मंगलाचरण

(भारत गीत ५६)

ओ आजा आजा, शान्ति ! शक्तिदा, आजा
चर - अचर - विश्व - अभ्रान्त - भक्तिदा, आजा

(१)

जग - हृदय - पटल पर आशु अटल पद पाजा
सुर - नर - समाजमें, सदय, सप्रेम, समाजा
भ्रम - मूल, निपट जग - भूल, भूल बहुधा जा
कृत - पदा - कदा - त्रुटि - काज, सदा बरका जा
द्रुत - दुरित - द्वेष - भव - क्लेश - मुक्तिदा, आजा
ओ आजा आजा, शान्ति ! शक्तिदा, आजा

(२)

ह्री - श्री - शोभिनि, शुचि - प्रेम - अम्बुदा, आजा
प्रिय - त्रिजग - अम्ब, त्रिभुवन - वशंवदा, आजा
जग - संजीवनि, अग - जग - प्रलम्बदा, आजा
जग - सजग - ज्योति, जग-सुखद - संविदा, आजा
भूलोक - स्वर्ग - संयोग - युक्तिदा, आजा
ओ आजा आजा, शान्ति ! शक्तिदा, आजा

(३)

विज्ञान - ज्ञान - आनन्द - अमृतदा, आजा
सर्वत्र - सुकृत - सम्मान - सुमतिदा, आजा
बुध-सन्त-रमनि, सुख-स्रवनि, भुवन-मनि, आजा
अविरत - अखण्ड - ब्रह्मांड - धमनि- ध्वनि, आजा
अधिकृत - अशेष - उपभोग - भुक्तिदा आजा,
ओ आजा आजा, शान्ति ! शक्तिदा, आजा

(४)

भू व्योम - सोम - रवि - रोम - रोम में छाजा
अणिमादि - मयी, ओ अणु अणु बीच समाजा
महिमा - महि - पोहिनि, मोह - अपोहिनि, आजा
सुखमा - सुख - दोहिन, विश्व - विमोहिनि, आजा
बस - कारिणि, ओ रस - ओक - उक्तिदा, आजा
ओ आजा आजा, शान्ति ! शक्तिदा, आजा

श्री पद्मकोट,
प्रयाग, १६ मेष, १९७६ } —श्रीधर पाठक

——

विज्ञान और ईश्वरवाद

[लेखक—श्री गुलाब राय एम० ए० एल० एल० बी०]

कुछ लोगोंका विचार है कि विज्ञानका अध्ययन मनुष्यको अनीश्वरवादकी ओर लेजाता है यह बात उन्नीसवीं शताब्दिके कुछ वैज्ञानिकोंके लेखोंने और भी पुष्टकी है किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि विज्ञानका अनीश्वरवादसे कोई स्वाभाविक सम्बन्ध है क्योंकि न्यूटन आदि ऐसे बहुतसे वैज्ञानिक हुये हैं कि जिनको पूर्ण वैज्ञानिकके साथ पूर्ण ईश्वरवादी भी कह सकते हैं, । वैज्ञानिक लोग व्यक्तितः चाहे आस्तिक हों चाहे नास्तिक हमको यह देखना है कि विज्ञानके मूल सूत्र जिनसे सारे वैज्ञानिक नियम बँधे हुये हैं हमको किस ओर लेजाते हैं ।

विज्ञानका मुख्य उद्देश सांसारिक घटनाओंकी परीक्षा करके उनकी व्याख्या करना है । और व्याख्या करना किसी एक विशेष बातको किसी व्यापक नियमके अन्तर्गत कर दिखाना है, अथवा किसी अल्प व्याप्ति वाले नियमको किसी बड़ी व्याप्ति वाले नियम में घटाना है । वैज्ञानिक लोग अपनी खोजके पहले गुप्त रीतिसे इस बातको स्वीकार कर लेते हैं कि संसारमें नियम और व्यवस्था है । यदि हम संसारको आरम्भसे अस्तव्यस्त मानें तो हमारी खोज उसी मनुष्य की भांति होगी जो अँधेरेमें ऐसी वस्तुको ढूंढता है जिसका वहां पर बिल्कुल अभाव है । वैज्ञानिक लोग अपनी विद्या-कौशल से संसारको नियमित नहीं बनाते वरन् उसमें नियम और व्यवस्था पाते हैं । न्यूटन वा कैपलरने आकाशके ग्रहोंका पथ किसी इंजीनियरकी भांति नया नहीं निर्भासित किया । किन्तु उन्होंने कोलम्बस Columbus की भांति इनको खोजकर निकाला । वैज्ञानिक लोग प्रकृतिके नियमोंकी खोजमें प्रकृतिको अपने नियम नहीं देते वरन् उनकी बुद्धि द्वारा स्थापित नियम प्रकृतिके नियमोंसे मिल जाते हैं । यह बात हमारे लिये बड़ी भारी शिक्षा देती है कि जो बात अपने ज्ञानमें संगति स्थापित करने केलिये हमको आवश्यक ज्ञात होती है वह वास्तव में भी आवश्यक ठहरती है । यूरेनस (Uranus) की स्थितिका अनुमान उसके दूरवीक्षण द्वारा देखे जानेसे पूर्व ही हो चुका था और निरीक्षणने अनुमानको पुष्ट ही किया । विज्ञानके इतिहासमें यह उदाहरण एकाकी नहीं । क्या यह बात हमको मानसिक और भौतिक संसारमें साम्य स्थापित करनेमें पर्याप्त नहीं । इससे सिद्ध होता है कि भौतिक संसारका भी आधार ऐसेही मन और बुद्धिमें है जैसीकि हमारी मन और बुद्धि । भौतिक विज्ञानके नियम हमारे लिये एक प्रकारसे ईश्वरके अस्तित्वका संदेश लाते हैं । हम यदि किसी बातको समझ लें तो हमको यह अनुमान करना पड़ेगा किउस बातका आधार भी समझ में है । यदि संसार नियम और व्यवस्थासे रहित होता और यदि उसका मूल आधार ज्ञानमें न होता तो इसके नियमभी हमारी समझ म न आते । यदि एक बार हम भौतिक संसारमें नियम और व्यवस्था मान लें तो हमको संसारकी उत्पत्ति आकस्मिक घटनाओंका फल बतलाना असंगत होगा । यदि संसारमें इस समय नियम और व्यवस्था देखी जाती है तो संसारके आरम्भके विकाशमें भी प्राकृतिक चुनाव Natural selection के अतिरिक्त हमको ऐसी ज्ञानविशिष्ट शक्ति माननी पड़ेगी कि जिसके नियंतृत्वमें यह चुनाव विकाश को गतिको कीटाणुओंसे मनुष्य तक ले गया । विकाश भी नियमके अनूकूल ही हुआ है । यदि नियमके अनूकूल न होता तो विकाशवादका अनुमान करना भी असंभव हो जाता । यदि विज्ञान के अध्ययन करने वाले और वैज्ञानिक नियमोंकी खोज करने वाले मनुष्य विकाश वादका फल हैं तो उसकी जड़ अज्ञानमें नहीं हो सकती ।

वैज्ञानिक लोग, चाहे वह आस्तिक हों चाहे नास्तिक, किन्तु विज्ञान जिस आधार से चलता

General साधारण]

है वह आधार हमको ईश्वरवाद हीमें लेजाता है। जो वैज्ञानिक अनीश्वर वादीहैं वह अपने सिद्धान्तों के आधारकी पूरी पूरी विवेचना नहीं कर सकते और विज्ञान पढ़कर चाहै मनुष्य अनीश्वरवादी बन जावै किन्तु विज्ञानका अच्छा ज्ञान अनीश्वर वादके भ्रमको दूरकर देगा। कहा भी है कि 'नीम हकीम ख़तरये जान, व नीम मुल्ला ख़तरये ईमान' वैज्ञानिक अपनी कमी को जानता है और यह कमी उसमें नम्रताका भाव उत्पन्न कर उसे आस्तिकताकी ओर लेजाती है। आज कल बीसवीं शताब्दि में विज्ञान की उन्नति किसी शताब्दिकी अपेक्षा कम नहीं हुई है किन्तु आधुनिक विज्ञानने विज्ञानकी सर्वज्ञताके मिथ्याचिन्तन को दूर कर दिया है।

आशा है कि विज्ञान के पढ़ने वाले विद्यार्थी विज्ञान के चमत्कारों से मुग्ध नहो कर विज्ञानकी सीमाओंको देखते हुये विज्ञानके मूल आधार संसारमें नियम और व्यवस्थाके प्रश्नपर पूर्णतया मनन करके अपने विचारोंके परिणामको प्रकाशित करने में लज्जित नहोंगे।

फलोंको रक्षा

[ले० श्रीयुत कृष्णगोपाल, माथुर]

अनुसंधानसे यह बात मालूम हो गई है, कि पृथ्वीके सारे देशोंमें जितने प्रकारके फल उत्पन्न होते हैं, प्रायः उन सबका नमूना भारतवर्षमें पाया जाता है। बल्कि भारतवर्षमें आम एक ऐसा फल है, जो बहुतसे देशोंमें नहीं पाया जाता। किन्तु फलोंकी रक्षा करनेका हमारे देशमें बड़ा भारी अभाव है। अमेरिकावालों ने इस विषयमें कमाल कर दिखाया है; वे एक ही फलकी, वैज्ञानिक रीतिसे कई किस्में पैदा कर सकते हैं। पचास वर्ष पहले वहां एक भी फल-रक्षाका कारख़ाना (Cannary) नहीं था; किन्तु अब केवल यूनाइटेड स्टेटमें ही २० हज़ार फल-रक्षाके कारख़ाने हैं, और इनमें ४२ लाखके लगभग मनुष्य काम करते हैं। इन मज़दूरोंको प्रतिदिन अपनी कुल जमामेंसे दो डालर अर्थात् ६) रुपये कारख़ानेमें चन्दा देने पर भी फ़ी सैकड़े ८० रुपए बच जाते हैं।

Industrial Chemistry औद्योगिक रसायन]

फल-रक्षाका संक्षिप्त इतिहास

अठारहवीं शताब्दीके आख़िरी ज़मानेमें फरासीसी गवर्नमेंट ने घोषणाकी थी,—"कि जो कोई व्यक्ति जल-सैन्य (Marines) के वास्ते खाद्य-रक्षा (Preserve) का उत्कृष्ट उपाय निकाल सकेगा, उसको बारह हज़ार रुपये पुरस्कार दिये जायँगे।" १७९५ ई० में एपार्ट (Appert) नामके एक व्यक्तिने इस विषयमें पहिला उपाय निकाला। उसने अनुभव किया, कि जगतमें जितनी वस्तुएँ पककर नष्ट हो जाती हैं, इसका एकमात्र कारण किण्व या ख़मीर (Ferment) है जो प्रायः कीटाणुओं द्वारा बनता है। यदि किसी उपायसे इन कीटाणुओं को, (जैसे गरम करनेसे) नष्ट करके और पदार्थोंको वायुशून्य-स्थानमें रखदें, तो वह पदार्थ नष्ट न होगा। उसने, अपने इस निर्द्धारित कार्यको प्रमाणित करके फरासीसी गवर्नमेंटसे १८१० ई० में पूर्वोक्त पुरस्कार प्राप्त किया; और इसी वर्ष फरासीसी गवर्नमेंटकी सहायता और अनुमोदनसे एक पुस्तक प्रकाशित की। आजकल फल-रक्षाकी प्रणाली इतनी उन्नत हो गई है कि यह पुस्तक इतिहासकी साक्षी देनेके सिवा और किसी काममें नहीं आती। एपार्ट (Appert) ने कांचकी बोतलमें किसी चीज़को भरके रक्षा करनेका उपाय निकाला था; किन्तु इसी वर्ष (१८१० ई०) इंगलैंडमें पिटर डूराण्ट (Peter Durant) नामक एक और व्यक्तिने टीनके डिब्बोंमें चीज़ भरकर रक्षा करनेकी विधि निकाली। इससे व्यवसायके लिए कई सुभीते हुए। सन् १८१५ ई० में थामस केन्सेट् (Thamas Kenselt) नामका एक व्यक्ति, इंगलैंडसे यह काम सीखकर

न्यूयार्कमें रहनेके लिए चला आया; और न्यूयार्क ही में उसने यह व्यवसाय धीरे धीरे १८५० ई० तक चलाया। पर इस समय तक केवल मांस-मछलियों ही की रक्षाकी जाती थी,—फल-रक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। सन् १८५१ ई० के आरम्भसे रक्षा करनेके व्यवसायकी क्रमशः उन्नति होने लगी। सबसे पहले १८५१ ई० में फल और शाकभाजी (Vegetable) का रक्षण करना आरम्भ हुआ। किन्तु धीरे धीरे इसकी इतनी उन्नति हुई कि आजकल अमेरिकामें रक्षा करनेका व्यवसाय—एक प्रधान व्यवसाय हो गया है।

रक्षाका मूल सिद्धान्त

एपार्टका यह सिद्धांत रक्षाका मूलतत्त्व (Principle) माना गया है, 'कि जगत्के सारे पदार्थ जो पचकर नष्ट हो जाते हैं, इसका एक मात्र कारण यह है, कि उनमें किण्व या खमीर फर्मेंट (Ferment) उत्पादक कीटाणु जो दूर्बीनके बिना दिखाई नहीं देते, प्रवेश कर उन्हें पचा डालते हैं। यदि किसी तरह उत्तापके द्वारा इन कीटाणुओंको नष्ट करके पदार्थोंको वायु शून्य स्थानमें रख दें, तो फिर वे नष्ट नहीं हो सकते।' मांस, मछली, दूध, फल, तरकारी (Vegetable) आदिकी रक्षाका यही मूल सिद्धांत है।

फल-रक्षाकी विधि

फलकी रक्षा (Fruit canning) ख़ास तौर पर तीन प्रकार से की जाती है (१) फलको सुखा कर (Drying) (२) फलको बोतल वा टीनके डिब्बोंमें भरकर (canning) (३) जाम और जेली (Jam and jelly) के आकारकी बोतल वा टीनके डिब्बोंमें भरकर। आज मैं इस लेखके द्वारा केवल दूसरी प्रणाली ही का वर्णन "विज्ञान" के प्रेमी पाठकों को सुनाऊंगा। क्योंकि, पहली और तीसरी प्रणालीकी अपेक्षा इसमें यह विशेषता है, कि बहुत दिनों तक फलके स्वाद, गंध, रंग और आकृति (Taste, Flavour, Color, and Shape) प्रायः ताज़ा फलके माफ़िक ही बने रहते हैं।

रक्षाके उपयुक्त फल।

ज्यादा कच्चे, ज्यादा पक्के, दागलगे, पचे हुए ऐसे फल रक्षाके उपयोगी नहीं हैं। टीनके डिब्बे वा बोतलमें ऐसा कोई गुप्त गुण नहीं है, जो बुरी चीज़को अच्छी कर सके। अच्छी चीज़को अच्छी रखना ही रक्षाका मुख्य काम है। फलोंमें जब रंगत आने लगे, ऐसी अवस्थामें उन्हें पेड़से तोड़ कर उसी दिन डिब्बेमें बन्द (Can) कर देना चाहिये। हां व्यवसायमें तो कई वक्त ऐसा नहीं हो सकता; परन्तु तो भी ऐसा बन्दोबस्त कर लेना सदा लाभदायक होगा। कुछ दिनों तक अमेरिकामें, जहां तहां मिलने वाले फलोंको रक्षा करने के कारण यह व्यवसाय मन्दा पड़ गया था। किन्तु अब वहां इस विषयमें बड़ी सावधानी रक्खी जाती है। जो लोग अपनी गृहस्थीके लिये ही फलोंकी रक्षा करना चाहें, वे तो अनायास ही पेड़से अच्छे और ताज़ा फल तोड़ कर रक्षा कर सकते हैं पर शहरमें रहने वालोंके लिए ताज़ा फल मिलना कभी कभी कठिन हो जाता है। इसलिए, यदि ताज़ा फल न मिल सकें, तो उनमें पूर्वोक्त दोष तो कदापि नहीं होने चाहिये। वास्तवमें, सिझानेसे जिन फलोंके स्वाद, गंध, और रंग आदि विशेष नहीं बदलते, केवल वेही फल रक्षाके विशेष उपयुक्त हैं। हां, इतना अवश्य है, कि ज्यादा सिझानेसे फलोंके स्वाद, गंध, रंग और आकृति आदि बदल जाते हैं; पर इसके लिए पहले ही परीक्षा करके देख लेना नितान्त आवश्यक है।

फल रक्षाके उपयुक्त पात्र।

फल रक्षाकी दूसरी रीति (Canning) के लिए दो प्रकारके पात्र उपयुक्त हैं। एक तो, कांचकी बोतलें; दूसरे, टीनके डिब्बे। व्यवसायके वास्ते फलोंकी रक्षा करनेवालोंके लिए टीनके डिब्बे ही विशेष उपयुक्त है। क्योंकि, बोतलें

महँगी मिलती हैं; और कई जगह भेजनेमें उनके टूट जानेका भी डर रहता है। किन्तु, जो लोग केवल अपनी गृहस्थीके लिए फलोंकी रक्षा करना चाहें, उनको बोतलोंका ही प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि घर पर टीनके डिब्बोंका मुंह झालने आदिमें बड़ी दिक़्क़त पड़ती है। २०-२५ बोतलें यदि इकट्ठी खरीद ली जायं, तो प्रति वर्ष रबड़ बदल बदल कर उनमें फलोंकी रक्षा की जा सकती है, परन्तु उनको टूटने न देनेके लिए विशेष ध्यान रखना चाहिये।

व्यवसायके लिए टीनके डिब्बोंमें भर कर फलोंकी रक्षा।

पहले फलोंका छिलका अलग करना चाहिये, फिर उनको साफ और ठंडे जलमें अच्छी तरह से धोना चाहिये। फल यदि बड़ा हो, तो उसके दो भाग करके भीतरकी गुठली (Pit) निकाल डालना चाहिये क्योंकि फलको सिझाते वक़्त उसकी गुठलीमें से एक प्रकारका तिक्त रस निकलकर फलके स्वादको नष्ट कर देता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है, कि यदि आप सिझे हुए आमको खायं, तो उसकी गुठलीके पासका अंश आपको कुछ कड़ुआ लगेगा। इसलिए साधारण तौर पर गुठलीको निकाल डालना ही अच्छा है, इससे बड़े फल डिब्बोंमें आसानीके साथ भरे जा सकेंगे। इसके बाद कच्चे, पक्के सब फलोंको टीनके डिब्बोंमें भरकर प्रायः मुंह तक उनमें शर्बत या चाशनी (Syrup) भर देना चाहिये। शर्बतके बदले यदि केवल जल ही भर दिया जाय तो भी फलोंकी रक्षामें कुछ हानि नहीं पहुंचती; किन्तु फलका स्वाद कुछ बिगड़ जाता है; इसलिए शरबतका ही व्यवहार करना उचित है। जलके साथ चीनी मिला कर शरबत (Syrnp) तैयार कर लेना चाहिए। शक्करका परिमाण अपने अपने स्वादके ऊपर निर्भर है। जितने परिमाणसे फलका स्वाद अच्छा बना रहे, उतनी ही चीनी देनी चाहिये। ज़्यादा चीनी देनेसे, ज़्यादा मीठा होकर फलोंका असली स्वाद बिगड़ जाता है; इसलिए दो तीन बार परीक्षा करके चीनीका परिमाण ठीक कर लेना चाहिये। शरबत या जलसे फलोंकी रक्षामें कुछ सहायता नहीं मिलती केवल यह स्वादकेलिये ही दिया जाता है *।

फल और शरबत भर देनेके बाद टीनके डिब्बोंके मुंहपर ढक्कन लगाकर उन्हें झाल देना चाहिये इस ढक्कनके बीचमें एक छोटासा छेद—जिसमें एक मोटी सुई घुस सके,-रखना चाहिये। फिर डिब्बोंको गरम जलके कड़ाहमें, छेद ऊपर रखकर डुबा देना चाहिये। छेद अत्यन्त छोटा होनेके कारण बाहरका जल भीतर और भीतरका शरबत बाहर नहीं आ जा सकेंगे। इसी प्रकार छोटे डिब्बोंको ४—५ मिनट और बड़ोंको ७—६ मिनट तक डुबाए रखनेसे उनके भीतरकी वायु उत्ताप पाकर छेदके द्वारा बाहर निकल जायगी। इसके बाद गरम जलसे निकालकर उसी समय उनके छेदोंको टांके बन्द कर देना चाहिये। परन्तु, इस समय देर करना ठीक नहीं है ; क्योंकि अत्यन्त गरम दशामें डिब्बोंके भीतरकी खाली जगह जलीय भाप (Vapour) से भरी रहती है और उसमें वायु बिलकुल नहीं रहती, देर करनेसे भाप ठंडी हो जाती है और उसके स्थानमें वायु प्रवेश कर जाती है। यह वायुबादमें फलोंको खराब कर देती है। वास्तवमें इस वायुको निकाल देनेके लिए ही यह क्रिया की गई थी। इसलिए छेद झाल देनेमें जितनी जल्दी हो सके करनी चाहिये।

छेद बन्द कर देनेके बाद डिब्बोंको फिर खौलते हुए जलके कड़ाहमें डुबोकर उनके फलोंको सिझाना चाहिये। यह क्रिया फलोंके भीतर वाले उपरोक्त कीटाणुओंको मार डालनेके लिए की जाती है। कितने बार कितनी उत्ताप देनेसे फलके कीटाणु मर जाते हैं,-यह बात ठीक ठीक नहीं

*चीनीका यह गुण है कि पदार्थोंकी रक्षा करती है। दूधमें भी चीनी इसीलिए मिलाई जाती है। लेखकके इस कथनमें हमें सन्देह है। [सं०]

कही जा सकती; क्योंकि जुदे जुदे प्रकारके फलों-में जुदे जुदे प्रकारके कीटाणु होते हैं। परन्तु अन्दाज़से यह कहा जा सकता है, कि २५—३० मिनटतक खौलते हुए जल (१०० डिग्री) के उत्तापमें सिझानेसे प्रायः सब फलोंके कीटाणु मर जाते हैं। पर, यह सिझाना फलोंकी अवस्था के ऊपर भी निर्भर है। जैसे कच्चे फल, पके फलकी अपेक्षा ज्यादे देर तक; और खूब पके फल और भी थोड़ी देर तक—सिझाने चाहियें; नहीं तो फलकी आकृति, स्वाद, गंध, रंग आदि सब नष्ट हो जाते हैं। डिब्बोंमें भरते समय फलोंका श्रेणी विभाग कर लेना चाहिये; क्योंकि अलग अलग प्रकारके फलोंको अलग अलग समयकी दरकार होती है। कच्चे पके फल यदि इकट्ठे डिब्बोंमें भर दिये जायं, तो कच्चे फलके नियमानुसार सीझते सीझते ही शायद पका फल बिलकुल गलजायगा इसलिए फलोंका श्रेणी विभागकर लेना नितान्त आवश्यक है। खौलते हुए जलमें २५ से ३० मिनटतक सिझा कर यदि देखा जाय, कि फलोंकी आकृति स्वाद, गंध और रंगका परिवर्तन हो गया है, तो इससे भी थोड़ी देर तक सिझाना चाहिये। और यदि देखा जाय, कि २५—३० मिनिटके उत्तापसे फलोंके स्वाद, गंध और रंग आदिमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ—बल्कि पहिलेकी अपेक्षा और अच्छा हो गया है* तो इससे भी ज्यादा देर तक सिझाना चाहिये। यह सब बातें केवल परीक्षाके ऊपर निर्भर है। अमेरिकामें पीच नामक एक प्रकारका फल साधारणतः २५ से ३० मिनिटतक सिझाया जाता है। यहांके कारखानेके लोग व्यवसायके वास्ते ज्यादा तथा कमसीझे हुए सब ही प्रकारके फल रखते हैं; और बेचते समय अलग अलग प्रकारके फलोंको अलग अलग कीमत पर बेचते हैं।

* सिझाने पर बहुतसे फलोंके स्वाद, गंध और रंग आदि अच्छे हो जाते हैं।

निर्दिष्ट समयमें फलोंके सीझ जानेपर डिब्बोंको गरम जलसे निकाल कर उसी ठंडे जलके कड़ाहमें डुबो देना चाहिये; क्योंकि यदि तुरन्तही डिब्बे ठंडे न किये जायँ, तो उनके भीतर जो उत्तापके द्वारा सिझानेका काम चलता रहता है, वह बहुत देर तक चलता रहेगा और उससे फल ज़्यादा सीझकर बिलकुल खराब हो जायँगे। इस प्रकार ५-७ मिनिट तक डुबाए रखनेसे डिब्बे ठंडे हो जाते हैं। फिर उनको ठंडे जलसे निकाल कर, जिधरकी तरफ़का मुह झाला गया हो, उधरकी तरफ़ से नीचा करके खड़ा कर देना चाहिये। बादको जब उनपर लेबिल लगाने हों, तो उस समय विशेष दृष्टिसे देख लेना चाहिये, कि उनके किसी स्थानसे भीतरका शरबत (Syrup) तो थोड़ा बहुत नहीं चू रहा है। यदि किसी डिब्बेमें कुछ सन्देह हो, तो उसे उसी समय दुरुस्त करनेके लिए अलग कर देना चाहिये। इन डिब्बोंमेंसे फल निकालने हों, तो इनके मुंहको काटकर निकाल लेना चाहिये, और फिर उसे पूर्वोक्त नियमके अनुसार दुरुस्त कर देना चाहिये; पर इस समय इनके फलोंको ज़्यादा सिझानेकी ज़रूरत नहीं है। अमेरिकामें ये सारे फल पाइ (Pie) नामक पुपके लिए व्यवहार किये जाते हैं। लेबिल लगानेके बाद डिब्बोंको लकड़ीकी सन्दूकोंमें भर देना चाहिये। प्रत्येक सन्दूकमें दो दर्जन अर्थात् २४ डिब्बे भर देते हैं।

इस प्रकारकी रक्षाके मुख्य मुख्य काम ये हैं;—

(१) फलका छिलका अलग करना और गुठली निकालना (Peeling)।

(२) श्रेणी विभाग करना (Sorting)।

(३) डिब्बोंमें भरना (Canning or filling)।

(४) डिब्बोंमें शकरका जल भरना (Syruping)।

(५) हवा बाहर निकालनेके लिये खौलते हुए जलके कड़ाहमें डुबाना (Airtighting)।

(६) ढकन लगाना (Capping)।

(७) छोटा छेद बन्द करना (Soldering)।

(८) सिझाना (Cooking)।

(९) ठंडे जलके कड़ाहमें डुबाना (Cooling)।

(१०) झले हुए मुंहको नीचा रखकर खड़े करना।

(११) लेबिल लगाना (Labelling)।

(१२) लकड़ीकी सन्दूकोंमें बन्द करना (Casing)।

घरके लिए बोतलमें भरकर फलोंकी रक्षा

यह बात पहले ही कही जा चुकी है, कि घर-पर फलोंकी रक्षा बोतलमें ही भरकर करना ठीक है। बोतलमें भरकर फलोंकी रक्षा दो प्रकार से हो सकती है। एक तो, डिब्बेनुमा बोतलमें भरकर गरम जलकी देग़चीमें फलोंको सिझाना; दूसरे, अलग पात्रमें फलोंको सिझाकर बोतलमें भरना। पहले नियमकी अपेक्षा दूसरा नियम ही अत्यन्त सुविधाजनक है। अमेरिकाके घर घरमें जो फलोंकी रक्षाकी जाती है, उनमें प्रायः दूसरा नियम ही अधिकतर बर्त्ता जाता है। यह नियम कठिन नहीं है, इसे हमारे यहांकी रसोई-कार्यमें निपुण-स्त्रियां आसानीके साथ कर सकती है। हां, पहले पहल उनको कुछ कठिनाई मालूम होगी, परन्तु अभ्यास हो जाने पर वे देखेंगी, कि भात रांधना और आमकी रक्षा करना—दोनों ही समान बुद्धिके काम हैं।

पहिले अच्छे अच्छे फलोके छिलके अलग करके उनकी गुठली निकाल डालना चाहिये (यदि आम हो, तो उसकी गुठलीके ऊपरका अंश काट लेना चाहिये)। फिर उनको साफ़ जलसे धोना चाहिये। धोनेके बाद सिझानेके पहले तक उनको साफ़ ठंडे जलमें भींजे रखना चाहिये; क्योंकि इससे फलोंका रंग नहीं बिगड़ता। इसके बाद, एक पात्रमें तीन प्याले जलके साथ दो प्याला चीनी मिलाकर चूल्हे पर रखना चाहिये† जब जल खौलने लगे, तब उसमें ठंडे जलके भींजे हुए—फल डालकर ढक्कनसे पात्रका मुंह ढक देना चाहिये। इस प्रकार १५-२० मिनिटमें जब फल खूब सीझ जायँ, तब चूल्हे पर रखे रखे ही गरम बोतलोंमें (जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा) पहले खौलती हुई चाशनी (Syrup) भरकर, फिर एक चमचेके द्वारा सीझे हुए फलोंको भरना चाहिये। बादको उस पात्रकी बची हुई गरम चाशनीको बोतलोंमें मुंह तक भरकर रबड़के साथ—यदि बड़ी बोतल हो, तो ढक्कन और छोटी हो, तो स्क्रू अच्छी तरहसे जकड़कर लगा देने चाहिये। इसके बाद गरम जलमें भींजे हुए एक अंगोछेसे बोतलका गला आदि पोंछकर उसे खड़ी कर देना चाहिये। उस समय यदि देखा जाय, कि भीतरसे कुछ चाशनी बोतलके मुंह द्वारा बाहर निकल रही है, तो जानना चाहिये, कि परिश्रम वृथा गया; और यदि देखा जाय, कि कुछ भी चाशनी बाहर नहीं निकलती है, तो आगेकी दो साल तक फलोंके ज़रा भी न बिगड़नेके लिये निश्चिन्त हो जाना चाहिये। खड़ी हुई बोतलके मुंहसे यदि चाशनी निकले, तो उसी समय उसका मुंह खोलकर, भीतरकी चाशनी और फलोंकी गरम दशामें ही, उपरोक्त पात्रकी बची हुई कुछ गरम चाशनी उसमें भर देनी चाहिये; और फिर उसका मुंह खूब मज़बूतीके साथ लगाकर उसे खड़ी कर देनी चाहिये। इसके बाद दो तीन बार ऐसी ही परीक्षा करके निश्चिन्त हो जाना चाहिये।

ठंडी बोतलमें गरम चाशनी भरना ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा करनेसे बोतलके टूट जानेका पूरा डर रहता है। इसलिये, चाशनी और फल भरनेके पहिले बोतलको अच्छी तरहसे गरम कर लेना चाहिये। इसकी तरकीब यह है, कि गरम जल-

† यदि कोई ज़यादा मीठा चाहे, तो शकरका परिमाण बढ़ानेके लिये परीक्षा करके देखले।

की एक अलग कढ़ाईमें बोतलको डुबा देना चाहिये; और बीच बीचमें उसको एक चमचेसे उलट पुलट करते रहना चाहिये,—जिससे गरमी बोतलके सब स्थानोंमें बराबर लगती रहे; क्योंकि एक स्थानमें ज़यादा और एक स्थानमें कम गरमी लगनेसे भी बोतलके टूट जानेकी संभावना है। बोतलके साथ ही साथ उसका ढक्कन और रबड़ भी गरमकर लेने चाहिये। इस प्रकार बोतलगरम करनेसे दो काम होंगे; एक तो, बोतलमें यदि कीटाणु (Germ) होंगे, तो वे मर जायँगे; और दूसरे, बोतल टूटनेसे बचेगी। फल सिझानेका काम समाप्त करके जब उनको बोतलमें भरनाशुरू किया जाय, तभी बोतलको गरम जलसे निकालना चाहिये; और उसी समय उसमें पूर्वोक्त नियमानुसार चाशनी वा फल भर देने चाहिये। इसके बाद रबड़ और ढक्कन गरम जलसे निकाल कर बोतलके मुंह पर लगा देने चाहिये। खुली हुई खिड़की या दरवाज़े के निकट, जहाँ वायु आती जाती हो ऐसे स्थानोंमें फल भरनेका काम नहीं करना चाहिये; क्योंकि एकाएक ठंडी हवाके लगनेसे बोतलके टूट जानेका डर है। ख़ास बात तो यह है कि बोतलको टूटनेसे बचानेके लिये, चाशनी और बोतलको प्रायः समान गरम रखनेका विशेष ध्यान रखना चाहिये। गरम जलमें भीजे हुए एक अंगोछेकी तीन चार तह करके उसको एक चौकी पर बिछाना चाहिये; फिर उसके ऊपर बोतल रखकर फल भरनेका काम शुरू करना चाहिये। यह काम पूरा हो जाने पर बोतलको ठंडी न होने तक एक स्थानमें खड़ी कर देना चाहिये। इसके बाद जब बोतल ठंडी हो जाय, तब उसको भूरे (Brown) रंगके काग़ज़में लपेट कर प्रकाश न पहुंच सकने वाले स्थानमें रख देना चाहिये। रक्षित फलसे भरे हुए टीनके डिब्बे तो जहां तहां रक्खे जा सकते हैं; किन्तु बोतल नहीं रक्खी जा सकती। अमेरिकाके घरोंमें तहख़ाने (Cellar) होते हैं, जहां वे लोग इन सारी बोतलोंको रखते हैं। इससे उन बोतलोंमें प्रकाश नहीं लग सकता। भूरे रंगका काग़ज़ जो बोतल के ऊपर लपेटा जाता है, वह केवल—बोतलको प्रकाश न लगने देनेके लिये ही है।* यहां तीन प्रकारकी तीन बोतलें व्यवहार की जाती हैं। जिनमेंसे एक १ और ३ नंबर अर्थात् लैटनिंग और इकोनोमी (Lightning and Economy) नामकी बोतलें ही अधिक काममें लाई जाती हैं। इकोनोमी (Economy) बोतलमें अलग रबरकी ज़रूरत नहीं पड़ती। उनके ढकनोंमें ऐसा सिमेण्ट लगा रहता है, कि वही रबड़का काम देता है।

अमेरिकामें यह कारख़ाने छः मास तक खुले रहते हैं, और छः मास तक बन्द रहते हैं; इसका कारण यह है, कि वहां छः मास तक ज़्यादा फल उत्पन्न नहीं होते। अमेरिकावालोंका ख़याल है, 'कि भारतवर्षमें प्रचुर परिमाणसे आम उत्पन्न होनेके कारण कई हज़ार फल रक्षाके कारख़ाने (Cannary) आसानीके साथ चल सकते हैं और इस व्यवसायसे भारतवर्ष मालामाल हो सकता है!'

मुख वर्णन

[ले०-प्रोफेसर लाला भगवानदीन]

पाठकवृन्द! लो आओ और सावधान होकर हिन्दी कवियोंकी प्रतिभाका मुख देखो। परंतु मुखदिखरावनी में कुछ देना पड़ेगा, इस डरसे रुक न रहना। तुम चाहे कुछ देना वा न देना पर देख तो लो।

जो लोग कह बैठते हैं कि हिन्दी कवियोंने प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन नहीं किया, उनसे हम विनम्र निवेदन करना चाहते हैं कि आपका ऐसा कहना वैसाही है जैसे कोई वकील वैद्यकके ग्रन्थों

* प्रकाशसे फल बिगड़ जाते हैं। भारतवर्षमें लहसुन आदि कई प्रकारके फल प्रकाश लगते ही मुरझा जाते हैं।

की समालोचना करते हुए यह कहैकि इन ग्रन्थों में न तो पीनलकोड़कीसी तरतीब है, न जाबता फ़ौजदारीकीसी कारवाई के नियम। हिन्दी कवियोंका ढंग दूसरा और अँगरेज़ी कवियोंका दूसरा। प्रत्येक भाषाके कवियोँका ढंग भिन्नता रखता है। अँगरेजी कवियों का ढंग यह जान पड़ता है कि जब वे किसी प्राकृतिक वस्तुका वर्णन करने लगते हैं तब उनके चित्तमें केवल वही वस्तु प्रधान जान पड़ती है, और उसके रूपरंग, चाल ढाल और उसके गुणोंका वर्णन केवल उसीपर आरोपित करते हुए कोरे दिखाऊ विशेषणों द्वारा किया करते हैं। एक उदाहरण द्वारा हमारा तात्पर्य स्पष्ट हो जायगा। मानलो एक अँगरेजी कवि किसी पक्षीका वर्णन करता है। तो वह उसके रूपरंग, उड़ान और बोली वा गानके वर्णन में भाषा भरके बड़े बड़े मनमुग्धकारी विशेषण खर्च कर डालेगा। परंतु हमारे हिन्दी कवियों का कुछ दूसराही ढंग है। वे उस पक्षीके रूपरंग, उड़ान, बोल, चाल, स्वभाव, प्रकृति और गुणोंको भली भाँति निरीक्षण कर अपनी प्रतिभाके भंडारके किसी कोनेमें डाल रक्खेंगे और किसी अन्य मनोमुग्धकारी वस्तुके वर्णनमें उन वस्तुओंका वर्णन ऐसी निपुणता और चतुराईसे कर देंगे जैसे स्वर्णघटित आभूषणों में उपयुक्त रंगके रत्न जड़ दिये जाते हैं। एक अँगरेजी कवि कोयलका वर्णन करते समय उसके काले रंगका, उसकी मनोहर बोलीका और उसके छिपे रहनेके गुणका अच्छे शब्दोंमें वर्णन करैगा, परंतु हमारे हिन्दी कवि उसके कालेरँगका वर्णन किसी श्याम सलोने स्वार्थी मित्रके, बोलीका वर्णन किसी प्रेमिकाकी बोलीके, और छिपे रहनेके गुणका वर्णन किसी सलज्जा नायिकाके संबंध में कहेगा। प्रकृतिका निरीक्षण दोनों कवियोंने किया, पर एकका वर्णन कोरा और दूसरेका सलोना है। एक खानसे निकले हुए रत्नको उसके प्राकृतिक अनगढ़ रूपमें दिखलाता है और दूसरा उस रत्न को खराद पर चढ़ा, सुडौल कर किसी सोनेके आभूषणमें जड़कर आपके सामने पेश करता है। अब आपही कहिये कि दोनों मेंसे कौनसा कवि चतुर है? किसने अपने प्रकृति-निरीक्षणका सदुपयोग किया?

अब हम आपको सीताजीके मुखका वर्णन सुनाते हैं। विचार कीजियेगा किइन कवियोंने जो कुछ कमल, चन्द्रमा वा अन्य प्राकृतिक दृश्योंको देखकर अनुभव प्राप्त किये थे उनका कैसा अच्छा उपयोग किया है।

रामचन्द्रिका के नवें प्रकाशमें केशवदास ने श्री जानकीजीके मुखका वर्णन ग्रामवासिनी स्त्रियों द्वारा इस प्रकार कराया हैः—

(कवित्त)

वासों मृगअंक कहैं, तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर, तुहूं सुधाधर मानिये।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजै,
वह कलानिधि, तुहूं कला कलित बखानिये।
रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाश कर
अंबर विलास कुवलय हितु मानिये।
वाके अति शीत कर तुहूं सीता शीतकर,
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिये।

कहिये पाठक! चंद्रमाके कितने गुणोंका वर्णन इसमें आगया है। विचारिये और फिर फतवा दीजिये कि हिन्दी कवियोंने चंद्रमाकी प्रकृतिका निरीक्षण किया है वा नहीं। अस्तु, इस वर्णनको सुनकर दूसरी स्त्री इसे पसन्द नहीं करती और निजयुक्ति से चंद्रमाके दोष वर्णन करके सीताके मुखको कमल ठहराती है। सुनियेः—

कलिक कलंककेतु, केतु अरि सेतगात,
भोग योग को अयोग रोगही को थल सो।
पून्योई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो दूनो,
छिनछिन छीन होत छीलर को जल सो।
चंद्र सोजो बरणत रामचन्द्र की दोहाई,
सोई मति मंद कबि केशव कुशल सो।
सुन्दर सुबास अरु कोमल अमल अति,

सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो।

पाठक ! विचारिये तो, चंद्रमाके दोष कैसे उत्तम प्रसंग से दिखलाये गये हैं ! हिन्दी कवियोंने चंद्रमाके दोष देखे, परंतु उनका कोरा वर्णन न कर इस मनोरंजक रीति से काम लिया। यदि चंद्रमाकी गुणमाला और दोषमाला केवल साधारण वर्णन द्वारा दिखलाई जाती तो हमारी समझमें ऐसी सजीविता और मनोरंजकता न आती। इन वर्णनों-को पढ़कर क्या आप यह कह सकते हैं कि हिन्दी कवि प्रकृति निरीक्षणमें अँगरेज़ी कवियोंसे कम हैं।

अच्छा, आगे सुनिये। तीसरी स्त्री इन दोनों-की उक्तियोंको काटती है और एक तीसरा ही सिद्धान्त स्थिर करती है। वह चंद्रमा और कमल दोनोंके दोष दिखलाती हुई कहती है कि है कि जानकीके मुखकी उपमा प्रकृतिमें है ही नहीं:—

कवित्त

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जूको,
एकै कहैं चंद्र सम आनंदको कंद री।
होय जो कमल तो रजनिमें न सकुचै री,
चंद्र जो, तो बासर न होय दुति मंद री।
बासर ही कमल, रजनि ही में चंद्र,
मुख बासर हू रजनि बिराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अन देखे ई कमल चंद,
ताते मुख मुखै, सखी कमलै न चंद री॥

कहिये पाठक, चंद और कमल की प्रकृतियों-का निरीक्षण इससे अच्छा यदि आपने किसी अंगरेज़ी कवितामें पढ़ा हो तो कृपा करके इसी पत्रमें प्रकाशित करा कर हमें भी उपकृत कीजिये। केवल हमी नहीं समस्त हिन्दी प्रेमी अत्यन्त कृतज्ञ होंगे।

केशव की कविता कुछ कठिन हुआ करती है। उसके समझनेमें पाठकोंको कुछ प्रयास करना पड़ेगा। परंतु, बिना प्रयास किये कोई भी आ-नन्द प्राप्त नहीं होता। दूसरे कवित्तके तीसरे चरणके समझनेमें विशेष प्रयासकी आवश्यकता है शेष तो सरल ही है।

इसी चंद्र-प्रकृतिका वर्णन हिन्दी कवियोंके गुरू गोस्वामी तुलसीदास जी ने अति सरल शब्दोंमें यों किया है:—

विगत दिवस गुरु आयसु पाई।
संध्या करन चले रघुराई।
प्राची दिसि ससि उगेउ सो हावा।
सिय मुख सरिस देखि सुखपावा।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं।
सीय बदन सम हिमकर नाहीं।
दो०—जन्म सिंधु पुनि बंधु विष दिनमलीन सकलंक
सिय मुख समता पाव किमि चन्द्र बापुरो रंक॥
घटै बढ़ै विरहिन दुखदाई।
ग्रसै राहु निज संधिहि पाई।
कोक सोक प्रद पंकज द्रोही।
अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही।

(बाल कांड)

अयोध्याकांडमें भरद्वाज जी के मुखसे भरत जी की प्रशंसा कराते हुए, उनके यशको द्वितिया-का चन्द्रमा बनाकर फिर भी चन्द्र-प्रकृतिका वर्णन गोस्वामी जी यों करते हैं।

नवविधु बिमल तात जस तोरा।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।
उदित सदा अथइहि कबहूं ना।
घटिहि न जगनभ दिन दिन दूना।
कोक त्रिलोक प्रीति अति करहीं।
प्रभु प्रताप रवि छबिहिं न हरहीं।
निशि दिन सुखद सदा सब काहू।
ग्रसिहि न केकइ करतब राहू।
पूरन राम सुप्रेम पियूषा।
गुरु अवमान दोष नहिँ दूषा।

इन वर्णनोंको पढ़कर कोई भी यह नहीं कह सकता कि चन्द्रमाकी प्रकृतिका निरीक्षण और वर्णन हिन्दी कवियों ने नहीं किया।

इसी संबंधमें 'ठाकुर' कविका भी एक कबित लिखा जाता है। राधिका जी के वर्णनमें इस कवि

ने सारी प्रकृतिको छान कर मसाला एकत्र किया है। सुनियेः—

कवित्त

कोमलता कंजतें, सुगंध लै गुलाबन तें,
चंद्र ते प्रकाश लीन्हो उदित उजेरो है।
रूप रति आनन तें, चातुरी सुजानन तें,
नीर लै निवानन तें कौतुक निबेरो है।
ठाकुर कहत या मसालो, विधि कारीगर,
रचना निहारि क्यों न होय चित्त चेरो है।
कंचन को रंग लै, सवाद लै सुधा को,
बसुधा सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है।

कहिये पाठक! प्रकृतिकी कितनी चीज़ें यहां एकत्र की गई हैं? क्या ये वस्तुएं बिना प्रकृति-निरीक्षण के ही मिली हुई जान पड़ती हैं? और जब कवि ने प्राकृतिका निरीक्षण किया, तो वह उसका वर्णन करे होगा। फिर हमारी समझमें नहीं आता कि लोग हिन्दी कवियों पर कैसे यह दोष लगाते हैं कि इन्हीं ने प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन नहीं किया। हां, वर्णनके ढंगमें अवश्य भिन्नता है। सो होनी ही चाहिये। हिन्दी कवि किसीके गुलाम नहीं हैं कि उनका यही धर्म मान लिया जाय कि जैसे किसी अन्य भाषाका कवि किसी विषयका वर्णन करे ठीक वैसा ही वे भी करें।

प्राचीन भारतमें विज्ञानकी उन्नति

[ले॰श्रीसत्यभक्तजी]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

गृह निर्माण (architecture)* और नगर-निर्माण (Town planning) * में प्राचीन भारतवासी बड़े कुशल थे। उनके बनाये मकान और नगर बड़े टिकाऊ तथा सुखद होते थे। इस विद्याके विषयमें यहां स्थापत्यवेद नामकी एक स्वतन्त्र शाखा थी। इस विषयके यहां अच्छे ग्रन्थ तथा बड़े बड़े कारीगर और शिल्पी पाये जाते थे; वे इस कार्यमें इतने चतुर थे कि उनके बनाये मकानोंको चीनी विद्वानोंने देवनिर्मित बतलाया था। आज भी दक्षिणके विशाल मंदिर आर्योंकी गृहनिर्माण विद्याके उदाहरण स्वरूप मौजूद है। साँची, मिल आदिके स्वरूपोंकी कारीगरीको देखकर आजभी विदेशी विद्वान चकित होते हैं। ऐजेन्टा, ऐलिफैन्टाकी गुफ़ायें अब भी दर्शकोंके मनको मोह लेती है। ताज़ बीबीका अनुपम रौजा भी भारतवासियोंकी ही कीर्ति है। सेतुबन्ध रामेश्वर हमारे यहांकी इँजिनियरी की उत्कृष्टताका प्रबल प्रमाण है। यहांके प्राचीन साहित्यमें अनेक बड़े बड़े नगरों, दुर्गों तथा विराट महलोंका वर्णन मिलता है। वर्तमान समयमें भी पुराने नगरोंके कुछ खंडहर मिलते हैं जिनसे यहांके मनुष्योंके नगर निर्माण विषयक प्रशंसनीय ज्ञानका पता लगता है। उस समय यहांपर विश्वकर्मा, मय, नलनील, आदि जैसे सुचतुर शिल्पी पाये जाते थे जिनकी कृत्तियोंके वर्णन पढ़कर आज भी आश्चर्य सागरमें डूब जाना पड़ता है। इन सब बातोंको देख मुक्तकंठसे कहना पड़ता है कि किसी समय भारतवर्षमें इन विद्याओंकी पूरी उन्नति हुइ थी।

गणितविद्याका तो आरम्भही भारतवर्षसे हुआ है। आर्य लोग ही रेखागणितके प्रथम अविष्कारक थे। उन्होंने अङ्कोंका प्रचार किया। और वही बीजगणितके आदि ज्ञाता थे। अब से कई सहस्र वर्ष पूर्वही यहां गणितकी खूब उन्नति हो चुकी थी। और बहुत समय पीछे इसको अरबवालोंने सीखकर यूरोपमें फैलाया। इस बातको आजकल सब प्रसिद्ध विद्वान स्वीकार करते हैं कि भारतीय ही गणितके प्रथम आचार्य हैं। इस विद्यामें सारा संसार उनका शिष्य है।

---

* विज्ञान भाग २ संख्या ३ तथा ४ में महामहोपाध्याय डा॰ गङ्गानाथ झा, एम. ए. का. 'प्राचीन समय के घर तथा स्वास्थ्य विधान' शीर्षक एक विस्तृत लेख छप चुका है। सं॰

Genera] साधारण]

भूगोलका हालभी गणितके समान ही है। यद्यपि किसी विद्वानने इस विषयकी विशेष विवेचना नहीं की है, पर इस बातके अकाट्य प्रमाण मिलते हैं, कि भारत-वासियोंने खगोल, तथा प्राकृतिक, और राजनैतिक तीनों प्रकार की भूगोलमें अच्छी उन्नति की थी। यहांके लोगोंको इस विषयमें वायुमण्डलका रहस्य, वृष्टि होने न होनेकी बात, तारोंकी चाल, दिनरातका होना ऋतुओंका बदलना आदि सभी सिद्धान्त भलीभांति मालूम थे। यद्यपि अब इन बातोंका स्पष्ट उल्लेख किसी जगह नहीं मिलता, पर तौ भी प्राचीन पुराणादिक ग्रंथों के अलंकारिक वर्णनोंके भीतर इन सबका अस्तित्व देखा जासकता है। वृष्टि ज्ञान तो अब भी यहांके लोगोंको बहुत अच्छा है। राजनैतिक भूगोल भी यहांके लोग प्राचीन कालमें भलीभांति जानते थे। उन्होंने बहुतसे समुद्रों, देशों, तथा टापुओंका पता लगाया था। अभी एक विद्वानने लिखा था, कि कोलम्बससे हज़ारों वर्ष पूर्व भारतवासी अमेरिकाका पता लगा चुके थे। और अब भी मैक्सिकोमें उनके अनेक चिन्ह वर्तमान है। इन बातोंसे यहाँके लोगोंकी भूगोल विषयक विज्ञता भलीभांति प्रकट हो जाती है।

यद्यपि आधुनिक समयमें यूरोपके मैक्समूलर, बौप, ग्रय आदि विद्वानोंने भाषाविज्ञानकी बहुत कुछ उन्नतिकी है, और प्रचार किया है। पर स्वयं उन्हींने स्वीकार किया है कि इस विज्ञानका सबसे बड़ा पण्डित ८, १० हज़ार वर्ष पूर्व भारतमें उत्पन्न हुआ पाणिनि था। और वर्तमान समयमें भाषाविज्ञानकी जो कुछ उन्नतिकी गई है उसका बहुत कुछ आधार उसी पाणिनिके ग्रन्थपर है। वास्तवमें संस्कृतभाषाके व्याकरणके समान सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण आजतक किसी दूसरी भाषा का तय्यार नहीं किया जासका है। वैसे भी भारतवर्षकी भाषा विज्ञानानुकूल है जबकि दूसरे देशोंकी भाषामें नाना प्रकारके दोष पाये जाते हैं। देवनागरी वर्णमालाकी समानता कर सकनेवाली वर्णमाला विश्वमें दूसरी नहीं। दूसरी वर्णमालाएँ इसके सामने नितांत महत्वहीन समझी जाती है। इसकी विज्ञानानुकूलता, उत्तमता, तथा उपयोगिताको बहुतसे विद्वानोंने (नोल्स जैसे कुछ को छोड़कर!) एक स्वरसे सराहनाकी है। ये बातें भारतवासियोंकी भाषाविज्ञान विषयक, और व्याकरण शास्त्रविषयक उन्नतिकी दृढ़ प्रमाण हैं।

अर्थशास्त्रका अस्तित्व भी प्राचीन भारतवर्षमें पाया जाता है। आर्योंने अर्थवेद नामक एक आवेदकी रचनाकी थी। अर्थशास्त्र नामक विद्याका उल्लेख भी प्राचीन साहित्यमें मिलता है। यद्यपि आजकल यहां अर्थशास्त्रकी पुस्तक कौटिल्यके अर्थशास्त्रको छोड़कर दूसरी नहीं मिलती, पर प्राचीन समयमें इस विषयपर पचासों पुस्तकें लिखी गई थी। अनेक कारणों से अब वे लुप्त हो गई है। इस बातके पर्याप्त प्रमाण पाये जाते हैं कि प्राचीन भारतवासियोंको अर्थ शास्त्रका पूर्ण ज्ञान था। सबसे बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही है कि उस समय भारतके समान धनवान समृद्धि शाली देश पृथ्वीतल पर दूसरा नथा। और बिना अर्थशास्त्रके ज्ञानके इस बातका होना दुर्लभ है।

आजकल राजनीतिको भी विज्ञानका स्वरूप दे दिया गया है। यह बात सुनिश्चित है कि प्राचीनकालके भारतवासी इस विद्याके आदर्श ज्ञाता थे। उनके बनाये शांति पर्व (महाभारत) शुक्रनीति, अर्थशास्त्र (चाणक्य) आदि ग्रन्थ अब भी मिलते हैं। जिन्हें पढ़कर उनकी अपूर्व राजनीतज्ञतामें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता। शाँति पर्वमें इस विषयको बहुत अच्छी विवेचना की गयी है। यह अवश्य है कि यहाँ पर राजनीतिका अर्थ केवल छल कपट अथवा धोखेबाजी नहीं समझा जाता था।

मनोविज्ञान और उससे सम्बंध रखनेवाली सम्पूर्ण विद्याओंके तो भारतीय आचार्य ही थे। क्योंकि ये विद्यायें अध्यात्मिकता से कुछ सम्ब-

न्ध रखती है। और अध्यात्म विद्याके आर्यगण एक मात्र ज्ञाता थे। अतएव मनोविज्ञान शास्त्रकी सभी शाखाओंके, वे वर्तमान योरोपीय विद्वानोंकी अपेक्षा, कहीं अधिक ज्ञाता थे इसमें कुछ सन्देह नहीं।

भूगर्भ विद्यामें आजकलके योरोपीय वैज्ञानिक बड़ी उन्नति कर रहे हैं। पर भारतीय भी इसके ज्ञानसे शून्य न थे? हमारे यहां पातालकला नामकी एक स्वतंत्र विद्या थी। अब भी कोई कोई साधारण ग्रामीण मनुष्य कुआँ बावली आदि खोदेने में वह चातुर्य दिखलाते हैं जो बड़े बड़े इंजीनियरों के किये कदापि नहीं होसकता। खान सम्बंधी ज्ञान भी इस देशमें पर्याप्त था। इसकी आकर ज्ञानकला, नामक एक विद्या प्रसिद्ध है। पृथ्वी गर्भकी अग्नि तथा ज्वालामुखीका प्रकृत रहस्य आदि बातें भी यहां के लोगोंको मालूम थीं। भारतवासी किसी प्रकार भूगर्भ विद्यासे अनजान सिद्ध नहींकिये जासकते।

आजकल योरोपमें मुखाकृतिविज्ञान (Faciology) मस्तिष्कविज्ञान (Phrenology) हस्तरेखाविज्ञान (Palmistry) हस्तलिपि विज्ञान Graphology) आदि कई नवीन वैज्ञानिक कलाओंका प्रचार हो रहा है। यह कहना तो व्यर्थ है कि ये सब विद्या ये हमारे यहां ज्योंकी त्यों प्रचलित थी। क्योंकि सँसार परिवर्तनशील है। पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि हमारे सामुद्रिक शास्त्रमें इन सब विद्याओंका समावेश हो सकता है। आर्योंने सामुद्रिक शास्त्रमें आश्चर्यजनक उन्नतिकी थी। और अब भी कभी कभी इस विषयके चमत्कारिक दृष्टान्त देखनेमें आते हैं। अतएव इन विद्याओंके लिये यूरोप सामुद्रिक शास्त्रज्ञाता भारतके सामने अभिमान नहीं कर सकता।

यहाँ तक हमने विज्ञानकी शाखाओं तथा दूसरी वैज्ञानिक कलाओंका अस्तित्व तथा उन्नति प्राचीन भारतमें होना बतलाया। अब यह दिखलानेकी चेष्टाकी जायगी कि विज्ञानके सबसे मुख्यसिद्धान्त जिनका पता पाश्चात्य विद्वान डारविन, स्पेन्सर हक्सले लैप्लस तथा कालविन आदि विज्ञानविदोंने केवल सौ पचास वर्षके भीतर लगाया है, हमारे ऋषि मुनियोंको हजारों वर्ष पूर्व भलोभाँति मालूम थे। वरन् अभी योरोपीय वैज्ञानिक उनको भली भाँति पता लगा भी नहीं सके हैं। परहमारे यहांके दार्शनिक ग्रन्थोंमें उनका सर्वाङ्ग पूर्ण वर्णन मौजूद है। हमारा मतलब यहां सृष्टि विज्ञान, तत्वों तथा शक्तिकी अविनश्वरता, जीवाणुतत्व (Protoplosm) और विकाश सिद्धान्त (Evolution) जैसे महान सिद्धांन्तोंसे हैं। यह विषय विशेष विवाद ग्रस्त नहीं है। ये वैज्ञानिक सिद्धांत हमारे यहां प्रत्यक्ष मिलते हैं।

प्रथम सृष्टि-उत्पत्तिको लीजिये। बरसोंके परिश्रमसे योरोपीय वैज्ञानिक इस सिद्धांन्तपर आये हैं, कि प्रथम विश्वमें सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, गृह, मनुष्य, पशुपक्षी, वल्लता आदि कुछ भी नथा। केवल एक अव्यक्त पदार्थ सम्पूर्णस्थानमें भरा हुआ था। समय पाकर उसमेंसे भिन्न भिन्न लोकोंकी उत्पत्ति हुई और सब प्रकारके तत्व उत्पन्न हुये। उसके पीछे मनुष्य वृक्ष आदिकी उत्पत्ति हुई है। उनका यह भी कहना है कि अंत में सब पदार्थ उसी अव्यक्तद्रव्य में लय हो जायगें। यह स्पष्ट आर्य सिद्धान्त है। उसका दर्शन, संहिता, पुराण आदि सबमें भली भाँति वर्णन किया गया है। हमारे यहां स्पष्ट लिखा है कि कालांतमें परमात्माके सत्व, रज, तम, तीनों गुण, क्रिया, भाव, और शक्ति महामाया द्वारा आच्छन्न हो जाते हैं, और भगवानभी योगनिद्रामें शयन कर जाते हैं। अनेक समय पीछे जब तमोगुणका विकार होता है, सृष्टिकी पुनः रचना होने लगती है। और क्रमशः आकाश, वायु, तेज (अग्नि) जल, पृथ्वी आदि तत्वोंकी उत्पत्ति होती है। लेख बढ़नेके भयसे इस विषयको अधिक विस्तृत नहीं किया जा सकता। वास्तवमें हिन्दू दर्शनोंमें इसको सर्वोत्तम मीमांसाकी गई है। जैसी योरोपीय

वैज्ञानिकगण कई कारणोंसे अबतक नहीं कर सके हैं।

जीवाणु तत्व (Protoplasm) तो हमारे यहां की खास सम्पत्ति हैं। भारतवर्ष चिरकालसे आत्मवादी है जबकि कितने ही योरोपीय वैज्ञानिक अब भी उसकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते। वर्तमान वैज्ञानिकोंने प्रोटोप्लाज्मके सात गुण बताये हैं। वे हैं आकुंचन और संकुचनकी शक्ति (Contractibility) स्पर्शानुभवता और प्रसारण (Sensibility) स्वक्रियता (Automatism) आहार ग्रहण और परिपाककरण (Reception and assimilation of food) मानसिक इच्छा द्वारा सार ग्रहण और असारत्याग (metabolism with secretion and secretion) श्वास और प्रश्वास (Respiration) पुनर्जनन (Reproduction)। वास्तवमें ये आत्माके गुण हैं। और इस विषयका जो सूचक और सत्यमूलक वर्णन अध्यात्मज्ञानी भारतीय विद्वानोंने किया है वह अनुपम है। ब्रह्मसूत्र (वेदांत दर्शन) में इस विषयको चरम सीमापर पहुंचा दिया गया है। इस दृष्टिसे कोई भी भारतीयोंकी वैज्ञानिकताको असत्य नहीं ठहरा सकता।

विकाश सिद्धान्तके आविष्कारक डारविन साहिब समझे जाते हैं। पर मनुसंहिताके सृष्टि प्रकरण तथा वेदादि ग्रन्थोंमें सृष्टिके क्रमशः विकाशका अभ्रान्त वर्णन किया गया है। उनमें विकाश सिद्धान्तकी प्रायः सभी बातें आ जाती हैं। प्राचीन भारतवासी संसारके यावत पदार्थोंके विकाश होनेकी बातको भलीभांति समझते थे।

तत्व और शक्तिकी अविनश्वरताका सिद्धांत वैज्ञानिकोंको बहुत समयसे मालूम नहीं है। पर हमारे यहां आत्मा और प्रकृतिकी नित्यताकी बात प्राचीन साहित्यके प्रत्येक पृष्टपर लिखी हुई है। आत्मा और प्रकृतिकी अविनश्वरता माननेवालोंमें आर्यगण ही सर्व प्रथम हैं। इस विषयपर अधिक क्या लिखें। भगवान कृष्णका एक श्लोकार्द्ध 'ना सतो विधते भावो न भावो विधतेसतः' ही पर्याप्त है। भारतीय ही रसविज्ञानके आदि ज्ञाता हैं।

इन सब बातोंको पढ़कर अनेक सज्जन यह तर्क उठा सकते हैं, कि हमने प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक उन्नति सम्बन्धी उन्हीं बातोंका वर्णन किया है जो आजकल यूरोपमें प्रचलित है। यदि वास्तवमें यहांके लोग विज्ञानको भलीभांति समझते थे तो कुछ बातें ऐसी भी बतलाई जानी चाहियें जो आजकल यूरोपवालोंको न मालूम हों। यह तर्क ठीक है, और प्राचीन भारतमें सैंकड़ों हजारों वस्तुयें तथा ज्ञान ऐसे थे जिनका चिह्न भी यूरोपमें नहीं देखा जाता। पर हमारे साहित्यके नष्ट कर दिये जानेसे उनका ठीक पता नहीं चलता। तो भी अनेक बातें नवीन बतलाई जा सकती हैं। हमारे देशमें पहिले चौंसठकलाओं और चौदहविद्याओंका पूर्ण प्रचार था। हजारों लाखों मनुष्य इनके ज्ञाता थे। इनमेंसे अनेक कलायें और विद्यायें विज्ञानके उत्कृष्ट ज्ञान द्वारा ही जानी जा सकती है। इन कलाओंमेंसे अधिकांश यूरोपमें नहीं पाई जाती। रसायनविद्या द्वारा तांबे लोहेको सोना बनानेकी बात आधुनिक शिक्षित लोगोंमें यद्यपि चंडूखानेकी गप्प समझी जाती है, पर इसका कारण यही है कि यूरोपीय वैज्ञानिकगण अभीतक इस कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं कर सके हैं। जिस दिन वे इस कलाका अविष्कार कर लेंगे (और कहते हैं कि वह दिन दूर नहीं है) उस समय सब कहने लगेंगे कि प्राचीन भारत इस विद्यामें भी यूरोपसे अधिक ज्ञानी था। इस देशके वैज्ञानिकोंने परम शक्तिशाली अद्भुत वाण आविष्कृत किये थे, जिनका मुकाबिला वर्तमान समयका कोई हथियार नहीं कर सकता। आर्योंका धनुर्वेद वह अनुपम विद्या है जिसका यूरोपमें कुछ भी चिह्न नहीं। इस विद्या द्वारा प्राचीन भारतवासो नाना प्रकारके असाध्यकर्म साधन करते थे। भारतमें पहिले जिस चन्द्रकान्त-

मणिका व्यवहार किया जाता था, और जिसके द्वारा सर्वोत्तम जल प्राप्त होता था, उसका अस्तित्व भी यूरोपमें नहीं पाया जाता। अकबरके समयतक वह मणि यहां मिलती थी। सांपके काटेके इलाजमें भारतीय अद्वितीय थे जिस समय सिकन्दरके बहुतसे सिपाहियोंको सांपोंने काट खाया, और यूनानी हकीम उन्हें अच्छा न कर सके। तब भारतीय वैद्योंने ही उनकी प्राण रक्षाकी थी। अब भी यहां इस विद्यामें परम-निपुण मनुष्य पाये जाते हैं। पर डाक्टरोंको सांपके काटेका एक भी अच्छा इलाज मालूम नहीं। पूर्व समयमें इस देशवासियोंने जानवरोंकी बोलियों-के समझनेमें भी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की थी। यह विषय योरोपियनोंके लिये सर्वथा अज्ञात है। यहां पर बाजीगरीकी बड़ी भारी बढ़ती हुई थी। यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि इस बाजी-गरीकी अधिकांश बातें गूढ़ वैज्ञानिक रहस्योंसे सम्बन्ध रखती हैं। इन सबके अतिरिक्त इस देश-में उस योग-विज्ञान और अध्यात्म विद्याका आवि-ष्कार किया गया था जिनकी समानता संसारकी सम्पूर्ण विद्यायें मिलकर भी नहीं कर सकती। और समस्त भौतिक उन्नति जिसके सामने बच्चोंके खेलके समान हैं। ऐसी दशामें प्राचीन भारतवा-सियोंमें विज्ञान सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट ज्ञानका अस्तित्व सबको विवश होकर स्वीकार करना पड़ेगा।

सत्य-रक्षाकी खातिर हम यह भी कह देना चाहते हैं, कि अनेक वस्तुयें ऐसी भी हैं जिनका पता प्राचीन भारतमें नहीं चलता। यद्यपि कितने ही उनका भी होना मानते हैं। हमारे मतानुसार यूरोपका सर्व प्रधान अविष्कार जो भारतको अज्ञात था इंजिन है। इसीके द्वारा यूरोपकी काया-पलट हुई है। जहां तक मालूम होता है प्राचीन समयके भारतवासी वाष्पबल या किसी दूसरी शक्तिसे काम न लेकर हाथों द्वारा ही सब कार्य करते थे। पर योरोपके समस्त कार्य इंजिन द्वारा ही पूर्ण होते हैं। रेलका प्रचार भी प्राचीन समय-में न था। एकाधबार हमने यहां रेलकी पटरियां निकलनेकी बात पढ़ी थी, पर अब इंजिन ही न था तो रेलका होना कैसे माना जाय। तारका अविष्कार भी योरोपियन लोगोंका है। पश्चिमाय विद्वानोंने जो सबसे लाभदायक वस्तु निकाली है वह प्रेस है। शायद कभी भारतमें इस विद्याका अविष्कार हुआ हो, पर प्रचार कभी नहीं हुआ। प्रेसके समान ज्ञान प्रचारका साधन संसारमें दूसरा नहीं है। इसी प्रकार फोनोग्राफ, फोटोका केमरा, वायस्कोप, टाइपराइटरका वर्णन भी हम अपने प्राचीन साहित्यमें नहीं देखते। ये सब वस्तुयें भारतके लिये नवीन हैं। दुरबीन और खुर्दबीनके लिये कोई ठीक बात नहीं कही जा सकती। शायद ज्योतिष और पदार्थ विद्याके लिये इनका अविष्कार किया गया हो। संभव है और भी कुछ वस्तुयें ऐसी हों जिनका अविष्कार भारतवर्ष में न किया गया हो। पर इस बातसे भारतवासियों के उच्च श्रेणीके विज्ञानकी कुछ भी त्रुटि प्रकाशित नहीं होती। विज्ञानमें प्रधान बात उसके सिद्धान्त है, जिनका ज्ञान भारतवर्षको सबसे अच्छा था। रहे अविष्कार वे आवश्यकता पड़नेपर किये जाते हैं। जिन वस्तुओंकी भारतवासियोंको आवश्यकता जान पड़ी उनको उन्होंने बनाया, और जिनकी जरूरत न हुई उनके लिये चेष्टा न की ऐसी दशामें यह बात भारतीय विज्ञानकी त्रुटि स्वरूप कदापि नहीं समझी जा सकती।

यह भी बहुत सम्भव है कि इन बातोंमेंसे अनेकोंको कुछ सज्जन अमूलक समझें। वे कहने लगें कि लेखकको अपने देशका पक्षपात है अपने मुंहसे सभी अपनी बड़ाई करते हैं, इन बातों के पूरे प्रमाण कहां मिलते हैं, और अस्तित्व तो बहुत थोड़े वस्तुओंका देखा जाता है, अतएव इस लेखमें कही गई बातें ठीक नहीं। "योंतो प्राचीन कालकी ऐतिहासिक बातोंके विषयमें सदा मतभेद रहा है और रहेगा। क्योंकि इनके लिये

कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिया जासकना सम्भव नहीं। पर यह तर्क निस्सार है। इन बातोंको केवल हम नहीं कहते, वरन् इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदिके बड़े बड़े विद्वान् इनको लिख चुके हैं। और उन देशोंके प्रायः सभी पक्षपात रहित सज्जन इन बातोंकी सचाईको स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि इन बातोंका आरम्भ ही कुछ उदार योरोपीय विद्वानोंने किया। लेख लम्बा हो चुका है अन्यथा इस विषयके अनेक अवतरण पाठकोंके सम्मुख रख सकते हैं। इस दशामें ये बातें अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनना अथवा पक्षपात-पूर्ण कैसे कही जासकती है। रहे प्रमाण, उनके विषय मेंमें आरम्भमें ही लिख चुका हुं कि इस छोटेसे लेखमें उनका समावेश नहीं किया जा-सकता। इसके अतिरिक्त विशेष प्रमाण मिल भी कहांसे सकते हैं। हमारे ज्ञान भंडारोंकातो विदेशियोंने सत्यानाश कर दिया। मुसलमानों तथा दूसरे आक्रमण कारियोंने यहांके लाखों अनमोल ग्रंथ जला डाले। कलाकौशलके नष्ट करनेमेंभा कमी नहींकी गई। नाना प्रकारके अत्याचारकरके भारतको दीन हीन मलीन निःसत्व कर डाला गया। सब कुछ सहकर भी यह जो इतना बचा हुआ है यही आश्चर्यका विषय है। यही इसकी सर्वोत्कृष्टता, विद्या-कला-कुशलता तथा वैज्ञानिक उन्नतिका सबसे बड़ा दृढ़ प्रमाण है। जिन अत्याचारी लूटैत राजों तथा आयातियोंके कारण भूमण्डलपरसे बड़ी बड़ी जातियोंका नाम मिट गया, अनेक कुछ की कुछ हो गई, उन सबको सहकर भी यह स्थित है, जीवित है, इतना ही नहीं वरन् पुनः शीर्षस्थान प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, यह कोई साधारण महत्व रहित बात नहीं। वरन् इसकी सर्व श्रेष्टताका अनुपमेय अखण्डनीय अटल अचल प्रमाण पत्र है।

इस प्रकार अब से कई सहस्र वर्ष पूर्व भारतवर्षमें विज्ञानकी बहुत कुछ उन्नति हुई थी। उस समय यहां भी बड़े बड़े विज्ञानाचार्य पाये जाते थे, जो नाना प्रकारकी परीक्षायें करके नये नये आविष्कार करते थे। एडीसनका भी मात कर सकने वाले जैसे शिल्प अविष्कारक यहां मौजूद थे। पर तो भी वर्तमान समयमें इस विज्ञानका कोई चिन्ह नहीं मिलता। उन अपूर्व विमानो (जहाजोंका) एक नमूना भी नहीं दिखलाई पड़ता। जलमें स्थल और स्थलमें जलका दृश्य दिखलानेवाले महलोंके खंडहर भी टूटे नहीं मिलते। इसका कारण यही जान पड़ता है कि भारतवासियोंकी यह वैज्ञानिक उन्नति बहुत पुरानी है। और कालचक्रके प्रभावसे अब उसके समस्त चिन्ह लुप्त हो गये हैं। ऊपर वर्णन किये गये अत्याचार भी इसके कारण है। साथ में एक कारण यह भी है कि यह सब उन्नति करने पर भी आर्यगण भक्ति विद्याके प्रेमी थे। भौतिक उन्नतिका उनकी दृष्टिमें अधिक मूल्य न था। अतएव पूर्ण भौतिक उन्नति कर लेनेके पश्चात् उनका प्रेम इस ओर से हट गया। और आध्यात्मिक विषयमें अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। सम्भव है कि एक दिन यूरोपकी भी ऐसे ही दशा हो, इसके कुछ कुछ लक्षण अब भी मालूम पड़ते हैं। विशेषकर महाभारतके सर्वनाशी युद्धके पश्चात् भारत उन्नति पथपर गमन करना छोड़ अधोगतिका पथिक बन गया। उसके पीछे यहां सैकड़ों प्रकारके पाखन्ड फैल गये। लोग शिल्पियोंकी घृणाकी दृष्टि से देखने लगे। उनको विद्या पढ़ाना बन्द कर दिया गया। इस कारण आविष्कारोंका होना घटने लगा और शिल्पकी अवनति होने लगी लोगोंके हृदय संकीर्ण हो गये। स्वार्थ बढ़ गया। इससे सब लोग अपनी अपनी विद्या, कला, तथा आविष्कारोंको गुप्त रखने लगे। और इसके फलस्वरूप भारतमेंसे हजारों कलाओंका मूलोच्छेद हो गया, सैकड़ों विद्याओंका नाम शेष रह गया। इसके पीछे तो यहां की ऐसी दुर्दशा हुई कि लोगोंको अपना जीवन व्यतीत कर सकना ही बड़ी बात मालूम होने लगा। चारों ओर अराजकता फैल गई, सब एक दूसरेसे ईर्षाद्वेष करने लगे,

फूटने भारतवासियोंपर अपना अटल प्रभाव जमा लिया, समस्त भारतवर्ष ज़राज़रासे टुकड़ोंमें बंट गया। और इन बातोंके फलस्वरूप सबप्रबन्धकारक विद्यायें कला-कौशल विज्ञान आदि नष्ट भ्रष्ट हो गये। जो शेष बचा उसका विदेशियोंने आकर अन्त कर दिया।

अन्तमें हमारा निवेदन है, कि इस लेखका आशय किसीकी निन्दा करना नहीं है। और न अपनी प्रशंसाकी झूंठी, डींग हांकना; हमारा सुनिश्चित मत है, कि किसीके विषयमें यह कहना कि 'वह पहिले ऐसा बड़ा था यों उन्नत था, इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ था आदि' कुछ मूल्य नहीं रखता। आवश्यकता यह जानने की है कि वह अब क्या है। भारतकी वर्तमान दुर्दशा के होते हुये पूर्व गौरव-श्रेष्ठताकी बातें करना एक प्रकारसे उपहास योग्य है। तथापि मनुष्यके हृदयमें अपने पूर्वजोंके प्रतिस्वाभाविक ही कुछ श्रद्धा होती है। और उनकी यथार्थ प्रशंसा करना बुरा नहीं समझा जा सकता। इस लेखका दूसरा उद्देश्य सच्ची बातका प्रकट करना भी है। अनेक लोग बिना कुछ जाने बूझे जो भारतको निन्दा करते हैं, अबसे पहिले और अब भी उसे असभ्य बतलाते हैं, आजकलके समस्त ज्ञान विज्ञानका मूल योरोपको मानते हैं, उनकी बातें नहीं सही जा सकती। जिस भारतको किसी समय समस्त जगत गुरुभावसे देखता था, जिसका शिष्य बनना गौरवकी बात समझा जाता था,उसको यदि कोई सदाका गया गुजरा; तुच्छ, उन्नतिरहित, महत्वहीन, बतलावे तो यह प्रत्यक्ष ही सत्यकी हत्या करना है। और ऐसी दशामें प्रमाणों द्वारा इन बातोंका खण्डन करना, तथा प्राचीन भारतवर्षके यथार्थ स्वरूपको प्रगट कर देना प्रत्येक न्याय प्रिय मनुष्य पसन्द करेगा। इसी कारण इस लेखमें लोगोंके झूंठे विश्वासों, अनुचित धारणाओंको दूर करनेके लिये प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक उन्नतिका किञ्चित वर्णन किया गया है। यह विषय प्राचीन इतिहास सम्बन्धी है। इसमें गलतियां, भूलें, तथा भ्रम होना सम्भव क्या आवश्यकता है। और मतभेद होना तो अनिवार्य बात है। अतएव यदि इसकी कोई बात किसी सज्जनको अनुचित तथा असत्य जान पड़े तो उसके लिये क्षमाप्रदान करनेकी कृपा करें।

ईश्वरकी असीम अनुकंपासे भारतवासियोंकी आंखें अब खुलने लगी हैं। कुछ समयसे भारतका भाग्यचक्र लौटना आरम्भ हुआ है। परमपिता जगदीश्वरकी दयादृष्टि इसपर होने लगी है। और इसके फल स्वरूप देशमें सब प्रकारकी उन्नतिके शुभ चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। भारतके योग्य समर्थ, पुत्र, पुत्रियां अपने कर्तव्यको कुछ कुछ समझ गये हैं। देशोद्धारके लिये अनेकों आन्दोलनोंका भी श्रीगणेश किया जा रहा है। और थोड़ी-बहुत सफलता भी होती दिखलाई देती है। अब भारतमें दीर्घकालसे गये विज्ञानके भी पुनः दर्शन होने लगे हैं। उसकी तेजस्वी किरनें देशमें फैलने लगी है। श्रीजगदीशचन्द्र बसु, श्री प्रफुल्लचन्द्र राय, प्रोफेसर गज्जर आदि जैसे विज्ञानाचार्योंका अविर्भाव भी भारतमें होना आरम्भ हो गया है। और आशा है कि यदि इसी प्रकार परमात्माकी कृपा बनी रही तो यह देश पुनः अपने प्राचीन गौरवके प्राप्त कर सकने में समर्थ हो सकेगा, पुनः आपने सर्व श्रेष्ठ पदपर आसीन होगा पुनः ज्ञान विज्ञानका पूर्णज्ञाता बन कर जगतगुरुकी पदवीको यथार्थ कर सकेगा। भगवान ऐसा दिवस शीघ्र दिखलावें। यही प्रत्येक भारतवासीकी प्रार्थना है।

चन्द्रप्रभा क्या है ?

[लेखक-सत्यव्रत शर्मा]

शारङ्गधर संहिताके योग परिभाषा प्रकरणमें लिखा है ।

पदौषधंतु प्रथमंयस्य योगस्य कथ्यंते ।
तन्नाम्नैवस योगोहि कथ्यतेऽत्र धिनिश्चयः ॥

अर्थात्—जिस योगके आरम्भमें जो ओषधि कही गयी है इस ग्रंथमें उस नामसे ही उस योगको कहा गया है यह निश्चय है—नियम है । इसीलिए—नागरं देव काष्ठं च इत्यादिको नागरादि तथा क्षुद्रा किरात तिक्तं इत्यादिको क्षुद्रादि क्वाथ कहा है । इस प्रकार चन्द्रप्रभा बचा । मुस्तमें चन्द्रप्रभा शब्द है जो किसी, औषध विशेषकी संज्ञा है । इस संज्ञा की संज्ञी औषध क्या है, इसपर विचार करना है, और यही इस विचारका प्रारंभिक प्रश्न है कि चन्द्रप्रभा क्या है ? हमने शारङ्गधर संहिताकी एक भाषा टीकामें चन्द्रप्रभा—आभा, ऐसा पाठ देखा था । इससे कुछ पता नहीं चलता कि चन्द्रप्रभा—जिसका टीकाकार आभा नाम लिखते हैं क्या है, क्योंकि आभा नामक भी कोई औषध प्रसिद्ध नहीं, जिसका कोई वैद्य इस चन्द्रप्रभाके स्थानमें प्रयोग करते हों ।

हां प्रचलित प्रथाके अनुसार प्रायः वैद्य लोग इस नामसे या इसके अभावमें कचूर लेते हैं परन्तु हमने जहां तक देखा है किसी निघण्टुमें कचूरका नाम चन्द्रप्रभा नहीं मिला । इससे जान पड़ता है कि कचूर चन्द्रप्रभा नहीं किन्तु जिसके अभावमें जो औषधि ली जाती है उसका कुछ न कुछ कहीं विधान पाया जाता है । चन्द्रप्रभाके विषयमें ऐसा भी अबतक नहीं मिला । इसलिए उसके अभावमें कचूर लेते हैं, यह भी ठीक नहीं प्रतीत होता और बात सन्दिग्ध ही रह जाती है ।

भैषज्य रत्नावलीकी टिप्पणीमें चन्द्रप्रभाका नाम सोमराजी लिखा है । कई निघण्टुओंके देखनेसे सोमराजी बाकुचीका नाम मिलता है । यदि इस टिप्पणीको ठीक मानें तो चन्द्रप्रभा बाकुची होनी चाहिये परन्तु टिप्पणीके ठीक होनेमें हेतुकी आवश्यकता ।

इतना अवश्य है कि निघन्टु शिरोमणि और बनौषधि दर्पण आदिमें बाकुचीके नामोंमें चन्द्रलेखा शब्द आया है जो चन्द्रप्रभा शब्दका समानार्थक है । सम्भव है टिप्पणीकारने इस समानतासे ही चन्द्रप्रभाका पर्याय सोमराजी दिया हो, परन्तु यह बात भी निश्चय नहीं, संदिग्ध है । अतः कोई विचारशील वैद्य इसके विषयमें अपने निश्चयात्मक विचार प्रकट करें कि चन्द्रप्रभा अमुक वस्तु है । हम भी विचार कर रहे हैं आगामी अंकोंमें यथावकाश अपना विचार प्रकट करेंगे ।

[Medicine वैद्यक]

धारामापक

[ले० प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव एम० एस० सी०]

(कुम्भाङ्कके आगे)

ह धारामापक $\left(\frac{1}{10}\right)^6$ एम्प तककी धारा नाप लेता है । किन्तु इससे भी दुर्बल धारा नापनेके लिए इसमें यह परिवर्तन करना पड़ता है । बजाए एक चुम्बकके दो चुम्बक एक तारसे जोड़ दिये जाते हैं,
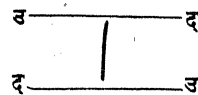
चित्र १४

जैसा चित्र १४में दिखलाया है । इनके सिरे फेर दिये जाते हैं । एक चुम्बकके दक्षिणी सिरेके नीचे दूसरेका उत्तरी और उत्तरी सिरेके नीचे दक्षिणी सिरा होता है । तारकी लपेटें इस प्रकार होती हैं कि बहती हुई धारा दोनों चुम्बकोंको एक ही ओर हटाती है । दो चुम्बकोंको इस प्रकार जोड़ देनेसे पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिका असर बहुतही कम

[Electricity विद्युत् शास्त्र]

हो जाता है। चुम्बक बहुत छोटे छोटे होते हैं, जिनका बोझ दर्पण सहित २० मिली ग्रामसे अधिक नहीं होता है और सिकताके (Quartz) बहुत ही पतले तारसे लटका दिये जाते हैं। सिकता (Quartz) में यह गुण है कि इसके जितने बारीक तार बनाये जा सकते हैं दूसरे किसी भी पदार्थके बनाना असम्भव है। यह सभी जानते हैं कि जितना तार या तागा मोटा होता है उतनी ही अधिक शक्ति उसके ऐंठनेमें लगती है। जब चुम्बक किसी पदार्थके धागे या तारसे लटकाया जाता है तो चुम्बकके अपने स्थानसे हटनेपर इस धागेमें भी ऐंठन पड़ती है, जो खुलना चाहती है अर्थात् चुम्बक पर दो शक्तियां, पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्ति और तारकी ऐंठन, ऐसी हैं जो इसके विचलनको रोकती हैं और जब विचलन उत्पन्न करनेवाली शक्ति हट जाती है तो इस चुम्बकको अपने स्थानपर ले आती है। पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्ति कम करनेकी विधि तो ऊपर बतला दी गयी है और इस ऐंठनकी रोकको कम करनेके लिए तार जितना बारीक हो सकता है, लिया जाता है। बारीक तार अधिक बोझ नहीं उठा सकता। इसलिए चुम्बक बहुत हलका बनाया जाता है। जैसा ऊपर बतलाया है यदि सिकता(Quartz)के अतिरिक्त किसी और पदार्थका तार लें तो देखनेमें आयगा कि कभी कभी चुम्बक विचलन पाकर अपने स्थानको नहीं लौटता और जितना बारीक तार होता है उतना ही यह एब ज़्यादा होता है। परन्तु यह बात सिकता (Quartz) के तारोंमें बिल्कुल नहीं होती है। इसीलिए जहां तक हो सकता है इसीका बारीक तार काममें लाते हैं। तारके इस गुणको जिसके कारण चुम्बक अपने स्थानको लौट कर आ जाता है तारकी स्थिति स्थापकता कहते हैं। इन धारा मापकोंको जिनमें चुम्बक कीलीपर रखा है और तार या धागेसे लटका होता है और धारा चुम्बकके विचलनसे नापी जाती है चुम्बक धारामापक कहते हैं।

इन चुम्बक धारामापकोंको उत्तर दक्षिण दिशामें रखना पड़ता है। इसलिए इनके इस्तेमालमें कभी कभी असुविधा होती है। उस समय एक दूसरे प्रकारके धारामापक काममें आते हैं। इनका वर्णन नीचे दिया जाता है। इन धारामापकोंमें चुम्बक नहीं घूम सकता, वह स्थिर रहता है, किन्तु तार की लपेटें जिनमें होकर धाराका प्रवाह होता है वह घूम सकती हैं। केवल स्थिर और घूमने वाली चीजोंपर ही ध्यान दें तो यह धारामापक चुम्बक धारामापकके उलटे हुए।

यदि एक सीधे खड़े तारमेंसे धाराका प्रवाह ऊपरसे नीचेकी ओर होता हो तो चुम्बकका उत्तरी सिरा इसके पास दक्षिणमें लानेसे पश्चिमकी ओर हटेगा। यह बात एम्पियरके नियमसे तुरन्त सिद्ध कर ली जा सकती है। अब यदि चुम्बकको स्थिर कर दें और तार हट सके तो तार पूर्वकी ओर हटेगा। जिस तारमें होकर धारा बहती हो और तार चुम्बकीय क्षेत्रमें लटका हो तो उसके हटनेकी दिशा निकालनेकेलिए भी एक नियम है, जिसको बाएं हाथ वाला नियम कहते हैं और वह नियम यह है—
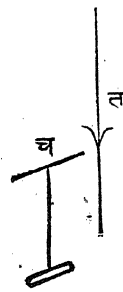
त

च

चित्र १

'बाएं हाथकी पहली और बिचली अंगुलियां और अंगूठेको इस प्रकार फैलाओ कि बिचली अंगुली हतेलीसे और अंगूठा पहली अंगुलीसे समकोण बनावे। जैसे यदि पहली अंगुली उत्तरकी ओर और अंगूठा पूर्वकी ओर हो तो बिचली अंगुली नीचेकी ओर होनी चाहिये। अब यदि पहली अंगुली चुम्बकीय क्षेत्रकी दिशामें हो और धारा बिचली अंगुलीकी दिशामें बहती हो तो तार अंगूठेकी दिशामें हटेगा।' [देखो चित्र १६]
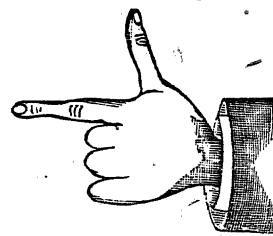
चित्र २

अब यदि इस नियमको ऊपर दिये हुये प्रयोगमें लगाएं तो दोनोंका सम्बन्ध सत्य मालूम पड़ेगा। धारा तारमें नीचेको जाती है, इसलिए बिचली अंगुली नीचेकी ओर हुई, चुम्बकका उत्तरी सिरा तारके दक्षिणमें है, इसलिए चुम्बकीय क्षेत्रकी दिशा दक्षिण उत्तर हुई। पहली अंगुली उत्तरकी ओर होगी। ऐसी दशामें अंगूठा पूर्वकी ओर होगा, प्रयोगमें तारका हटाव भी पूर्वकी ओर ही था।

एक नाल चुम्बक लेकर उसके दोनों सिरोंके बीचमें एक लोहेका टुकड़ा रख देते हैं। लकड़ी या तांबेका एक चौखटा च इतना बड़ा बनाते हैं कि लोहेका टुकड़ा उसके भीतर आजावे और चौखटा टुकड़ेकी चारों ओर आसानीसे घूम सके। इस चौखटेपर तार लपेट दिया जाता है। लपेटोंके तारका एक सिरा केतून के टुकड़ेसे जोड़ देते हैं। केतून के टुकड़ोंका दूसरा सिरा एक पेचके नीचे दबा रहता है। केतून के टुकड़ेसे चौखटा चुम्बक के सिरोंके बीचमें लोहेके टुकड़ेके चारों ओर लगा रहता है। लपेटोंका दूसरा सिरा नीचेकी ओर केतून की कमानीके एक सिरेसे जोड़ दिया जाता
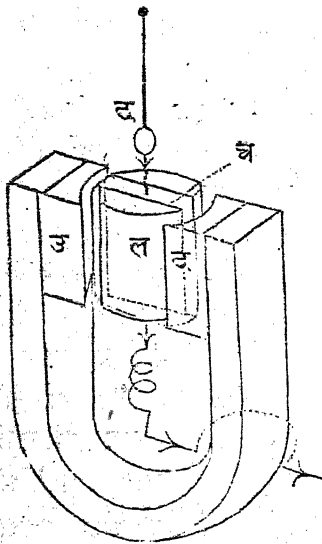
चित्र ३

है। इस कमानीका दूसरा सिरा एक पेचके नीचे दबा दिया जाता है. ऊपर और नीचेके पेचोंके नीचे तार दबाकर धारामापक चक्करमें सम्मिलित कर दिया जाता है। जहां केतून तारसे जोड़ा जाता है वहां एक तारकी छोटीसी छड़ चौखटेके ऊपर लगी होती है। इसी छड़ पर द दर्पण लगा दिया जाता है। यदि चौखटेको लटकाना मजूर न हो तो लोहेके टुकड़ेपर कीली लगा कर चौखटा उस कीलीपर रख दिया जाता है और घड़ीकी कमानी चौखटेसे लगा दी जाती है। इसी छड़में सूचक भी लगा सकते हैं। यदि चुम्बकके सिरे इसी प्रकार हों जैसे दिखलाये गये हैं तो चुम्बकीय क्षेत्रकी दिशा बांईसे दांई ओर हुई और धारा लपेटोंमें इस प्रकार बहे कि दक्षिणी सिरेके पास वाले लपेटोंके हिस्सेमें ऊपर जाय और उत्तरी सिरेके पास वाले लपेटोंमेंसे नीचेकी ओर आय, तो बाएं हाथ वाले नियमकी सहायतासे हम यह जान सकते हैं कि उत्तरी सिरेके पास वाली चौखटेका बाजू पाठककी ओर आयगा और दक्षणी सिरेके पासवाले चौखटेका बाजू पाठकसे हटेगा। अर्थात् चौखटेके दोनों बाजुओंपर शक्तियां एक दूसरेके विरुद्ध और समानान्तर हुईं जो युगल बना लेंगी और चौखटा घूम जायगा और उस स्थानपर आकर ठहरेगा जहां केतून के टुकड़ेकी ऐंठन इस युगुलकी तुलना कर लेगी। दर्पण यदि लगा हो तो लम्पके बिम्बके हटावसे और यदि सूचक लगा हो तो उसके हटावसे हमको चौखटेके विचलनका कारण ज्ञात हो जायगा चुम्बक धारामापकमें पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्ति विचलन उत्पन्न करने वाले युगलकी तुलना करती थी और चुम्बकको अपने स्थानपर ले आया करती थी इस धारामापकमें केतून के टुकड़ेकी ऐंठन या कमानी उस युगलकी तुलना करती है और चौखटेको अपने स्थानपर ले आती है।

इन धारामापकोंको जिनमें चुम्बक स्थिर रहता है और तारकी लपेटें घूमती हैं, लपेट-

धारामापक कहेंगे। इन धारामापकोंको एक नियत दिशामें रखनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण यह अधिक प्रचलित हैं और खिच बोर्डोंपर प्रायः यही देखनेमें आते हैं।

पैमाइश

(कुम्भाँकके आगे)

पैमाइशकी विधि

[ले० श्रीयुत नन्दलालजी तथा श्री० मुर्लीधरजी, एल.ए.जी.]

पैमाइश उस विज्ञानका नाम है जिसकी सहायतासे हम किसी परावेष्टित क्षेत्रके विशेष स्थानोंको नापकर उनको रेखाओं द्वारा इस प्रकार कागज़पर दिखा सकते हैं कि उनकी दिशा, दूरी और आकारका पता आसानीसे लग जाय। धरतीके किसी भागके एक ऐसे छोटे चित्रको जिसके देखनेसे यह ठीक ठीक ज्ञात हो जाये कि उसमें खेत, आबादी, नदी नाले, जंगल रेलकी सड़क आदि किन किन स्थानोंपर हैं नक़शा कहते हैं।

क्योंकि हम यह चाहते हैं कि ऊपर दी हुई चीज़ोंकी वास्तविक आकृति उनकी एक दूसरेसे दूरी और दिशा ज्ञात हो जाय इसलिए यह आवश्यक है कि उस स्थानको जहांपर वह है जरीब या रस्सी या फ़ीते या किसी और नापनेके यंत्रसे नापें। इस प्रकारके नापनेको पैमाइश कहते हैं अभी यह बता चुके हैं कि नक़शा किसी देशका एक छोटा चित्र है, इसलिये यह आवश्यक है कि जो स्थान ज़मीनपर एक या दो मील हों वह हमारे चित्र अर्थात् नक़शेमें कम दूरीपर दिखाये जायँ, क्योंकि जिस दूरीपर वह वास्तवमें हैं, उतना लम्बा चौड़ा नक़शा बनाना असंभव है। इसीसे नक़शा बनानेसे पहिले यह निश्चित कर लेना चाहिये कि ज़मीनकी कितनी दूरी नक़शेपर कितनी लम्बी लकीरसे दिखाई जायगी। इस प्रकार दूरीके निश्चित किये हुये अनुपातको उस नक़शेका पैमाना कहते हैं। यदि यह इच्छा हो कि नक़शा क्षेत्रके वास्तव आकारका $\frac{१}{१०}$ हो तो नक़शेपरकी प्रत्येक लकीर उस दूरीको जो ज़मीनपर नापी गई है ठीक $\frac{१}{१०}$ रखी जानी चाहिये और वह लकीर एक दूसरेसे नक़शेमें उचित अन्तरपर और उचित दिशामें हो। अंग्रेज़ी नापमें एक मील १७६० गज़का होता है। परन्तु नक़शोंपर यह इंचोंमें दिखाया जाता है। इस प्रकार नक़शेपरकी ८ इंच, १६ इंच, ३२ इंच या ६४ इंच लम्बी लकीरें ज़मीन परके १ मील १०, ५० या १०० मीलकी दूरीकी पैमानेके अनुसार सूचित करती हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि नक़शेके नीचे पैमाना $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{४०}$, $\frac{१}{१००}$ आदि लिख दिया जाता है जिसका अभिप्रायः यह होता है कि नक़शेपरकी प्रत्येक लकीर वास्तविक लम्बाईकी $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{४०}$, $\frac{१}{१००}$ है। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये। नक़शे परका पैमाना अपनी आवश्यकताके अनुसार निश्चित किया जाता है। मान लो कि बड़े देशका नक़शा बनाना है जिसमें केवल बड़े बड़े विशेष स्थान बनानेकी आवश्यकता है तो नक़शा बहुत छोटे पैमानेपर, जैसे १ इं=५० मील १०० तथा ५०० मील आदि बनाते हैं; उदाहरण देशों और महाद्वीपोंके नक़शे।

परन्तु जब नक़शेमें बहुत छोटे छोटे स्थान भी दिखाने होते हैं, जैसे गाँवके नक़शेमें खेत, कुएँ नाले आदि तो वह बड़े पैमानेपर बनाया जाता है। जैसे १६ इं=१ मील। यदि खेत अति छोटा होतो ३२ या ६४ इं=१ मीलके पैमानेपर नक़शा बनाया जा सकता है। पैमाइश कई प्रकारकी होती हैं, जैसे थियोडो-लाइट, प्रिज़्मैटिक, कम्पास, तख़ता मुसत्ता और जरीबी पैमाइश आदि। पहिली दो प्रकारकी पैमाइश टरावर्स अर्थात् हदबस्तके लिए होती हैं और आजकल उनसे विशेष काम नहीं पड़ता। इसलिए हम केवल दो अंतकी

पैमाइशोंका हाल बिस्तार पूर्वक लिखेंगे, जो साधारण गाँवका नक़शा बनानेके काममें आती हैं। जरीबी पैमाइश किश्तवारके लिए अति उत्तम है जहाँ ज़मीन ऊँची नीची न हो या जंगल और मकानोंसे रुकावट नहो इस प्रकारकी पैमाइश करनी चाहिये। जब ज़मीन ऊँची नीची होती है या मकान जंगल आदिसे बीचमें रुकावट पड़ जाती है तो तख़्ता मुसत्तासे काम लिया जाता है।

जरीबी पैमाइश

इस पैमाइशमें केवल झंडी, जरीब, सूजा लट्टा और राइटएँगिलकी आवश्यकता होती है। इसका साधारणसा ढँग यह है कि पहिले दो स्थिर स्थानोंके बीचमें एक सीधी जरीबी लेन डालते हैं और फिर दाएँ बाएँके कोने आदिके उसपर लम्ब लेकर उनका स्थान निश्चित करते हैं। किसी खेतकी पैमाइश करनी है तो सुगमता इसमें होगी कि दो आमने सामनेके कोनोंपर झँडियाँ गाड़कर उनके बीचकी दूरी नापलें और फिर इस जरीबी लैनपर जो दो गाड़ी हुई झँडियोंके बीचमें डाली गई है शेष कोनों और मेड़के लम्ब, उठाकर दूरी नापलें।

मानो कि अ ब स द एक खेत है जिसकी पैमाइश करनी है।

इसलिए अ स कोनोंपर दो झँडियाँ लगाईं और उनके बीचकी दूरी नापनेके लिए जरीब डालनी आरम्भ की स बिन्दुसे चलनेपर ६० कड़ीकी दूरीपर दाईं ओर खेतका कोना द मिला, जिसके लम्बकी लम्बाई नापी तो १३५ कड़ी निकली। फिर और आगे बढ़कर २२८ कड़ीकी दूरीपर बाएँ और कोना ब मिला, जिसका लम्ब १२० कड़ीका उठा।
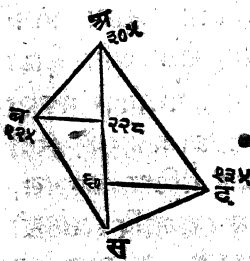
चित्र ४

उसके पश्चात् जब कोने अ पर पहुंचे तो मालूम हुआ कि स बिन्दुसे उसकी दूरी ३०५ कड़ी है। इस प्रकार कुल खेतकी पैमाइश पूरी हो गई। इसकी फ़ील्ड बुक बनाकर नक़शा बनाया जा सकता है। उपरोक्त विधिसे कई एक ऐसे खेतोंकी पैमाइश एक जरीबी लैनपर हो सकती है जिनके कोने या मेड़ोंके मोड़ जरीबी लैनसे $१\frac{१}{२}$ जरीब से अधिक दूरीपर नहों; उदाहरणके लिए देखिये फ़ील्डबुक।

नोट—जब कई खेतोंकी पैमाइशकेलिए केवल एक लैन डालते हैं तो यह ध्यान रखा जाता है कि जहाँतक हो सके लैन उनके बीचो बीच करण रूपमें गुज़रे जिससे खेतोंके कोने उस लेनसे अधिक दूरीपर न पड़े।

हम अभी लिख चुके हैं कि एक लैनपर केवल उस खेतकी या उन खेतोंकी पैमाइश हो सकती है जिसके कोने और टेढ़ १५० कड़ीसे अधिक दूरीपर नहों। यदि किसी बड़े क्षेत्रकी पैमाइश इस विधिसे ऐसी जरीबी लैन डालकर करें कि उनका आपसमें कोई सम्बन्ध न होतो उनके बीचका कौण और उनकी दूरीका अनुपात ज्ञात न हो सकेगा। इसलिए उस क्षेत्रका नक़शा न बन सकेगा।

अतएव बड़े क्षेत्रकी पैमाइश एक या कई त्रिभुजोंकी सहायतासे निम्न प्रकार की जाती है।

पैमाइश आरम्भ करनेसे पहिले सुगमताके लिए कुल क्षेत्रके चारों ओर घूमकर उसका एक कच्चा चित्र बना लेना चाहिये। जिसकी सहायतासे यह निश्चित कर सकें कि किनकिन स्थानोंके बीच त्रिभुज बनाना उचित होगा। यदि कुल क्षेत्रकी पैमाइश एक त्रिभुजसे नहीं हो सकती तो उसको दो त्रिभुज या चतुर्भुजमें घेर कर पैमाइश करते हैं। जब यह निश्चित हो गया कि किन किन स्थानोंके बीचमें त्रिभुज या चतुर्भुज बनाना है तो उन स्थानोंपर झँडियाँ गाड़ दी जाती हैं और

जिन दो झँडियोंके बीचकी दूरी बहुत होती है उनके बीचमें एक झंडी और गाड़ दी जाती है, जिससे जरीब सीधी खींची जासके।

त्रिभुजोंके भुज जहांतक मुमकिन हों उस क्षेत्र की सीमाके पास होकर निकलें जिसकी पैमाइश करना है, ताकि जो स्थान उसकी भुजाओंके बाहर पड़ते हों वह भुजोंपर लम्ब डालकर निश्चित कर लिए जावें। इस त्रिभुजकी भुजाओंकी पैमाइश ठीक उसीरीतिसे होती है जो झंडियोंके बीचकी रेखापर खेत नापनेकेलिए बतलाई जा चुकी है। केवल उनकी पैमाइश करते समय कोने और झुकाव जो त्रिभुजके भीतर या बाहर उस रेखाके पास पड़ते हों लम्ब डालकर निश्चित कर लिये जाते हैं और कुल भुजाओंकी पैमाइश लम्ब और कटान इत्यादि सहित पहिले नियमानुसार फील्ड बुकमें लिखी जाती है। जब इस प्रकार सब भुजाओंकी पैमाइशकर चुकेंगे तब एक टाइलैन त्रिभुजके किसी कोणसे सामने वाली भुजापरके किसी विन्दु तक नाप लेनी चाहिये।

नोट (१) त्रिभुज जितना ही सम त्रिभुजसे मिलता होगा उतनाही काम अच्छा होगा।

नोट (२) अगर क्षेत्र इसकदर बड़ा हो कि उसकी पूरी किश्तवार पैमाइश केवल त्रिभुजकी तीनों भुजाओं और टाइलैइनपर लम्ब डाल कर नहीं हो सकती, उसकी भुजाएं नापते समय जरीबी लाइनमें ऐसे स्थानोंपर जहांसे शिकमी रेखा या मुरब्बाताराशी (बर्गकाट) की रेखा ले जानेकी आवश्यकता मालूम होती हो, चांदेका गोल चिन्ह ज़मीनपर खोद कर उसकी दूरी फील्डबुकमें लिख लेनी चाहिये। और जो मेंड़ इत्यादि जरीबी रेखासे कटें उनको भी जहां वास्तवमें उनपर जरीब निकली हो थोड़ासा उसी ओर जोड़ देना चाहिये, जिस ओर जरीब गई है ताकि आवश्यकता हो तो उनके बीच शिकमी रेखाएँ डाली जा सकें।

नोट (३) मुरब्बाताराशी (वर्ग काट) और शिकमी (आन्तरिक) रेखाओंका विस्तृत वर्णन आगे होगा। यहां पर केवल इतना बतलाते हैं कि अगर रक़बा, जिसकी पैमाइश करनी है, बहुत बड़ा हो तो उसमें झंडियोंके स्थानोंको सीमाके स्थिर स्थान मान कर उनके बीच चांदे और कटान वैसे-ही बनाने चाहिये जैसेकि एक नये शीटकी किश्तवार पैमाइशके लिये वर्ग काटके विषयमें बतलाया जायगा और उसी प्रकार खाका भी बनाना चाहिये। उनको पलाटकर लेनेके पीछे त्रिभुजके बाकी भीतरी खेतोंकी पैमाइश भी उपरोक्त सिद्धान्तपर किसी ऐसे दो स्थानोंके बीच रेखा डालकर की जाती है जो नकशे और धरती दोनों पर निश्चित हो चुके हैं। अर्थात् जो कटान और वांट प्रथा धरती पर खोदनेके लिए बतलायी गयी है यह प्लाट होनेपर नकशे पर भी स्थापित हो जाय और पृथ्वीपर तो यह पहिले ही निश्चित हो चुके हैं। पस भीतरी खेतोंकी पैमाइश पूरी करनेके लिए सामनेकी भुजाओंपर ऐसे स्थान नियत करने चाहिये जिनके नीचे रेखा डालनेसे रक़बेकी पूरी पैमाइश हो जायं और बहुतसे लम्बन डालने पड़े। त्रिभुजकी सहायतासे पैमाइश करना यद्यपि बहुत ठीक होता है और अगर जरीब ठीक डालकर फील्डबुक ठीक तय्यारकी गई हो तो उसको प्लाट करनेसे खेतों इत्यादि की शकल नक़शेमें स्वयम ही ठीक हो जाती है तो भी यह न समझना चाहिये कि त्रिभुजी पैमाइशमें गलतीका होना असम्भव है।

इसलिए त्रिभुजकी जांच करनेकेलिए हमेशा एक टाईलैन (जांचकी रेखा) डालते हैं। टाईलैन डालनेके लिए त्रिभुजकी किसी भुजापर कोई विंदु लेकर सामनेके कोणसे इस विंदुतक जरीब डालते हैं; जो दूरी असली नापमें आती है वही इन दोनों विन्दुओंके बीच नकशेपर पलाट करनेसे आनी चाहिये। अगर ऐसा न हो तो समझना चाहिये कि कोई भुजा गलत नापी गई है। इसलिए सबकी नए सिरेसे नाप करनी चाहिये। इससे त्रिभुजकी शुद्धताका निश्चय हो जाता है और जिन खेतों-

की पैमाइश त्रिभुजकी भुजाओंपर लम्ब लेकर नहीं हो सकती उनके कोनोंके लम्ब इस रेखापर लेकर त्रिभुजका किश्तवार पूरा कर लेते हैं। छोटे त्रिभुजोंका किश्तवार प्रायः इन चार रेखाओंपर पूरा हो जाता है लेकिन अगर त्रिभुज बड़ा हो और चारों रेखाओंपर लम्ब लेकर उनका किश्तवार पूरा न होता हो तो इसमें अवश्यकता अनुसार शिकमी रेखाऐं डालकर भीतरी ब्योरेकी पैमाइश कर लेनी चाहिये।

नोट (१) पमाइश किश्तवारमें १०० जरीबमें १० कड़ीकी ग़लती ध्यान देने योग्य नहीं है लेकिन जरीबी और लम्बकी दूरियोंको बहुत ही ठीक नापना चाहिये।

नोट (२) लम्बकी दूरी प्रायः लट्ठ से नापी जाती है लेकिन अगर जमीन ऐसो हो कि जिसपर ठीक ठीक लट्ठ से नापना कठिन हो तो जरीबसे नापना चाहिये।

नोट (३) अगर कोई विशेष स्थान नियत करना हो और जो ज़्यादा दूरीपर हो; यानी उसके लम्बकी दूरी १०० फ़ट या १॥ जरीबसे अधिक हो तो उसको राइटएंगिलकी मदद्से नियत न करना चाहिये बलकि जरीबी रेखाके किसी दो स्थानोंसे उसकी दूरी नापकर फील्ड बुकमें लिखनी चाहिये। प्लाट करनेके समय वह बिंदु उसी प्रकार नकशेपर निर्दिष्ट किया जायगा जिस प्रकार त्रिभुजको प्लाट करते हैं।

प्लाट किये हुये शीटकी किश्तवार पैमाइश

जैसा कि हम बतला चुके हैं पैमाइशका सिद्धान्त यह है कि दो नियत स्थानोंके बीच सीधी पैमाइश रेखा डालकर उसके दाहिने और बाएंकी, खेतोंकी सीमाएँ बगैरा लम्बोंके द्वारा निश्चित कर ली जाती हैं; वैसेही गावोंकी पैमाइशकेलिए पहिले उनके तिहद्दों और दुहद्दोंको नियत स्थान मानकर उनको नकशेपर स्थापित करते हैं और फिर उनके बीचकी सीधी रेखाओंपर दाहिने बाएँ लम्ब लेकर गाँवकी सीमा स्थापित करते हैं और किस्तवारके लिए योग्य स्थानोंपर चांदे और कटानके चिन्ह धरती और नकशे दोनोंपर बना देते हैं। अगर ऐसी नयी शीट मिल जाय जिसमें एक एक इञ्चके वर्ग बने हों तो पहिली पैमाइशके शीटसे चांदे और सिहद्दे गुनियोंकी सहायतासे अत्यंत शुद्धताके साथ प्लाट हो सकते हैं। जब पैमाइश करनेवालेको ऐसी शीट किश्तवार पैमाइशके लिए दी जाय जिसपर सीमाके पत्थरोंके चिन्ह पहले नकशेसे चुभोकर बनाए गए हों, तो उसको चाहिये कि किश्तवार आरम्भ करनेके पहिले यह जांच ले कि जो चिन्ह सीवाना शीटपर बने हैं यह ज़मीन पर भी उसके अनुसार अपने ठीक स्थानोंपर हैं या नहीं। जब गांवका नक़शा एकसे अधिक शीटोंपर हो तो जब एक पूराहो जाय तो दूसरा आरम्भ करना चाहिये और पहिले उस शीटकी पैमाइश करनी चाहिये, जिसपर गांवका पच्छिम उत्तर भाग हो। सीवानाके पत्थरोंकी जांच नीचे लिखी विधिसे सुगमतासे हो जाती है। और शीटका रक़बा जिसकी पैमाइश करनी है छोटे छोटे वर्गोंमें बंट जाता है; जिससे किश्तवार पैमाइशमें बहुत कुछ सुगमता होती है।

१ पहिले शीटसे नकल किये हुए सीवानाके चिन्ह और उनकी बीचकी रेखाओंसे जो शकल नए शीटपर बनी हों करीब करीब वैसीही एक नज़री शकल दूसरे काग़ज़पर जिसको खाका कहेंगे बनानी चाहिये।

२-तब उस कागजको लेकर सीवानाके बीचके पत्थरोंकी दूरी नाप कर उसपर लिखना चाहिये।

३-सीवानाके पत्थरोंके बीचकी दूरी नापनेके लिए जो रेखाएँ डाली जायं उनमें भिन्न भिन्न स्थानोंपर जहां से किश्तवार पैमाइशके लिए दूसरी रेखाऐ गांवके आर पार लेजानेमें सुगमता हो (अर्थात् घर पेंड़ झाड़ी इत्यादि बीचमें न हों) वहां चांदेके गोल चिन्ह आठसे बारह जरीबदकी दूरीपर ज़मीनपर बनवाकर उनकी भी दूरी उसपर लिख लेनी चाहिये और जहां जहां यह

रेखाएं स्थायी सीमाओं (खेतों की मेड़ें इत्यादि) को काटें वहां भी जैसा बतलाया जा चुका है कटानके चिन्ह ज़मीनपर बनवाकर उनकी दूरी भी लिख लेनी चाहिये।

(नोट) पैमाइश करने वाला अगर उन रेखाओंपर लम्ब डालकर लिखे जिनसे गांवकी सरहद्दी रेखा बन जावे तो बहुत अच्छा हो ताकि पत्थरोंके ठीक होनेका निश्चय करनेके साथ साथ हद्दबंदी भी हो जावे और उसकेलिए दुबारा काम न करना पड़े।

४-फिर किसी एक दिशाके पत्थरों और पैमाइश चांदोंसे जो गोल चिन्ह खोदकर ज़मीनपर बनाये गये हैं उनके सामनेकी दिशाके पत्थरों और चांदोंको जिनके बीच कोई मकान पेड़ झाड़ी इत्यादि रोक न होती हो रेखाएं लेजाना चाहिये; और उन रेखाओंपर भी आवश्यकता अनुसार पहिलेकी भांति पैमाइश चांदे ज़मीनपर खोदकर बनवा देना चाहिये और इन सब कटानों और चांदोंका हद्दी खाकेपर लिख लेना चाहिये।

इसके पीछे पत्थरों और गांवके बीचमें स्थापित किये हुये चांदोंमेंसे एक दूसरेके बीच और गांवके बाकी दो दिशाओंमें जो पत्थर हों या चांदे बनाए गए हों उसी प्रकार रेखाओं द्वारा और मेंड़ें कटानें ज़मीनपर बनवाकर उनकी दूरी लिख लेनी चाहिये। इससे पैमाइशका कुल रकबा बहुतसे छोटे छोटे चतुर्भुजों और त्रिभुजोंमें बंट जायगा अर्थात् इस प्रकार पूरे रकबेकेभीतर आवश्यकतानुसार चांदे स्थापित करके उनके सम्बन्धकी रेखाओंपरके कटान इत्यादि सब जमीनपर खुदवाकर उनकी दूरी खाकेपर लिख ली जाय। इस कामको वर्ग काटना (मुरब्बा तराशी) कहते हैं और हर एक छोटे हिस्सेको जो इस प्रकारसे बन जाता है (वर्ग मुरब्बा) कहते हैं। अर्थात् वह रकबा बहुतसे छोटे छोटे हिस्सोंमें बट जाता है जिससे पैमाइशमें सुगमता होती है। वर्ग काटमें (मुरब्बा तराशी) में यह आवश्यक नहीं है कि वर्गोंकी सब भुजाएं बराबर हों या समकोण बनाती हों बल्कि जरीबी रेखापर अपनी सुगमताके अनुसार चाहे जिस बिन्दुपर चांदा बनाकर उसको चिरस्थायी मान सकते हैं।

[असमाप्त]

भारत-गीत-३०

शुरू भी हुआ न तेरा काम
मनसूबा करते दिन डूबा, हुई सुबहसे शाम

(२)

आठो जाम सोच करनेसे सूख गया तेरा चाम
फिर भी रहा सोच ही करता, सोचका यही मुक़ाम
शुरू भी हुआ न तेरा काम

(३)

शुरू शुरूमें सोच मचाया, सोचा नहिं अँजाम
समझ गये तेरी समझ है कैसी, सभी ख़ास और आम
शुरू भी हुआ न तेरा काम

श्रीपद्मकोट, प्रयाग, १३-११-१८ —श्रीधरपाठक

प्रकाशोत्पादक जीवाणु

(लेखकः—श्री शालग्राम वर्मा बी. एस-सी.)

पाठक! क्या आपने कभी जुगनूको देखकर यह विचार किया है कि इस क्षणभंगुर कीटमें प्रकाश कहांसे आया! यदि नहीं, तो आइये; आज प्रकृति देवीकी इस आतिश बाज़ीका कुछ हाल जाननेकी चेष्टा करें। विज्ञानके पाठकोंको यह भली भाँति मालूम हो चुका है कि प्रकृति परिवारमें जीवाणु क्या २ कार्य कर रहे हैं। प्लेग और हैज़ा उत्पन्न करना, मृतक जानवरों तथा पोदोंके शरीरको पंचभूतमें मिला देना जमीनकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाना पनीर आदिक भोज्य पदार्थोंको स्वादिष्ट करना; तथा ख़मीर

[Bacteriology जीवाणु शास्त्र]

उत्पन्न कर देना इत्यादि २, इनके बहुतसे कार्य हैं परन्तु इनका एक मुख्य गुण यह भी है कि यह प्रकाश भी उत्पन्न करते हैं। इस गुणकी विशेषताका एक कारण यह भी है कि यही प्रकाश यानी सूर्यका प्रकाश इनका काल है

यूरोप देशमें कई समुद्रोंके किनारे (Sand-hopper) नाम का एक जानवर होता है जो अँधेरेमें चमका करता है। इन जीवोंमें स्वयम् कोई प्रकाश नहीं होता, पर इनके शरीरमें रहने वाले जीवाणुओंके गुणसेही इनमें भी यह गुण आगया है (Mackerel) मैकरल और हैडक (Haddock) नामी मछलियोंका शव भी रातको अथवा अँधेरेमें चमका करता है। भूमध्य सागर में (Sea-pen) सीपैन में तो इतनी रोशनी होती है कि इसके द्वारा अक्षर पढ़ लिये जा सकते हैं। परन्तु इन आलोक संचारी जीवाणुओंके इस विशेष गुण का इस समयतक कोई संतोष जनक कारण ज्ञात नहीं हो पाया है।

कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि जिस प्रकार हमारे मांस रज्जुओं (Muscles)) में बिना डुलाये फिराये ही गरमी उत्पन्न होती रहती है तथा जिस प्रकार तारपैडों मे' विद्युत पैदा हो जाती है, ठीक इसी प्रकार इन जीवाणुओंमें भी प्रकाशोत्पादन शक्ति मौजूद है। अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ है कि जुगनू इत्यादिक जीवोंकी कोषभित्तियोंके अंदर ही यह प्रकाशोत्पादक मसाला जलता रहता है। परन्तु (Crustaceous) खोलधारीजीव, शतपदी, स्फुर प्रकाशित (phosphorescent) कीड़ोंके शरीरोंमें यह मसाला मलरूपमें बाहर निकलकर प्रकाशित होता है। यह मसाला इनके शरीरके छिद्रोंमेंसे स्वेदस्राव की भांति पानी तथा ज़मीनपर टपक पड़ता है और वहींपर चमकता रहता है। डाक्टर न्यूटन हारवे- (Harvey) ने अपने प्रयोगोंद्वारा यह निश्चित करनेकी चेष्टा की है कि यह जीवाणु ही इन जीवोंके प्रकाशोत्पादक गुणके कारण हैं। हारवेमहाशयने इन जीवाणुओंको सुखाकर मार डाला परन्तु ओषजन घुले समुद्रके पानीसे भिगोते ही इनमें फिर चमक पैदा हो गई। इससे यह प्रमाणित हो गया कि इन जीवाणुओंके सजीवत्व पर इनका यह प्रकाशोत्पादक गुण निर्भर नहीं है। दूसरे प्रयोगमें डाक्टर हारवेने इन जीवाणुओं को खूब पीस कर इनकी लेही (Emulsion) सीबनाडाली और इसे बड़े बारीक छन्ने (Filter) में छाना तो काले रंगका एक तरल पदार्थ प्राप्त हुआ, जिसपर अनेकों प्रयोग करने पर भी आलोक संचार न हो सका! हां, छानकर बची हुई छूंछमें समुद्रका पानी मिलाते ही पहिलेकी भाँति फिर प्रकाश उत्पन्न होगया। इसी प्रकार इन जीवाणुओंको ईथर तथा क्लोरोफार्ममें भी घोला गया, परन्तु इस से भी कोई विशेष उल्लेखनीय परिणाम न निकला। इन सब प्रयोगोंसे (Dr Harvey) ने यह नतीजा निकाला कि इन आलोक संचारी जीवाणुओंमें ' जीवन शक्ति न रहते हुये भी प्रकाशोत्पादक गुण व्याप्त रहता है, परन्तु उनके अणुवीक्षणिक (microscopic) शरीरका ढांचा ज्योंका त्यों बना रहना चाहिये।

इन जीवाणुओंको एक कांचकी शीशीमें रखकर यदि उसकी हवा निकाल ली जाय तो इनका चमकना बंद होजाता है। परंतु यदि फिर हवा भर दी जाय तो इनकी चमक भी लौट आती है। इससे ज़ाहिर होता है कि इनके इस गुणके लिये ओषजन परमावश्यक है। इन्हें रेतके साथ खूब बारीक पीसकर समुद्रका पानी छिड़कने पर भी चमक नहीं आती, इससे उपरोक्त मतकी पुष्टि होती है। इसी प्रकारके अनेकों प्रयोगों द्वारा डाक्टर हारवेने यह मत निकाला है कि पानी तथा ओषजनकी मौजूदगीमें एक प्रकारके जलनशील मसालेपर किएव द्वारा अन्तरुत्सेक (fermentation) होकर प्रकाश उत्पन्न होता है, और इस घटनाके संघटित होने के लिये यह परमावश्यक हैकि इन जीवाणुओंका शारीरिक ढांचा तित्तर बित्तर न हो जाय।

अभी यह भी स्थिर नहीं हो पाया है कि इस प्रकाश द्वारा इन कीटाणुओंके जीवनपर कोई असर भी होता है या नहीं; अथवा प्रकृति देवी- ने केवल अपने मनोविनोद के लियेही यह आतिश बाज़ियां बना रक्खी हैं। विज्ञानकी उन्नतिके साथ ही इसका भीं रहस्योद्घाटन होगा यही हमारा दृढ़ निश्चय है। (Literary Digest)

उत्पादक शक्ति तथा संपत्ति

[लेखक प्रोफेसर प्राणनाथ विद्यालंकार]

संपत्तिशास्त्रके आचार्य आदम स्मिथने अपनी 'जातीयसंपत्तिका स्वरूप तथा कारण' नामी पुस्तकमें लिखा है कि "यह आवश्यक नहीं है कि संपत्ति तथा संपत्ति उत्पत्तिके कारण एकही हों, प्रायः यह दोनों परस्पर भिन्न देखे गये हैं"। दृष्टान्तके तौरपर यदि किसी एक व्यक्ति- के पास पितृपितामहों द्वारा संचित संपत्ति हो परन्तु उसके पास उस संपत्तिके उत्पन्न करनेकी शक्ति न हो तब एकदिन आसकता है जबकि वह अपनी संचित संपत्तिका उपभोग कर चुके और संपत्ति विहीन होकर दरिद्रताके भयंकर जालमें फंस जावे। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट ही है कि व्ययकी अपेक्षा अधिक कमाता हुआ कोई भी पुरुष शीघ्रही स्मृद्ध हो सकता है। सारांश यह है कि संपत्तिकी अपेक्षा संपित्तको उत्पन्न करनेकी शक्तिका होना अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्तियोंके सदृश ही जातियोंकी अवस्था है। प्रत्येक सदीमें जर्मनी दुर्भिक्ष रोग तथा युद्धों- से उजड़ता रहा है परन्तु इन विपत्तियोंमें उसकी उत्पादक शक्ति कभी भी नष्ट न हुई। परिणाम इसका यह हुआ कि उसने पूर्व खोई हुई शक्तिको- पुनः शीघ्रही प्राप्तकर लिया। परन्तु स्पेनकी दशा जर्मनीसे सर्वथा विपरीत रही है। स्पेन अतिशय स्मृद्ध था परन्तु उसकी उत्पादक शक्ति नष्ट प्राय हो चुकी थी। यही कारण है कि भूमि, कान तथा जलवायुके उत्तम होते हुए भी स्वेच्छाचारी पुरोहितों तथा राजाओंके अत्याचारोंसे पीडित होकर स्पेन उस भयंकर दरिद्रताके पंकमें फंस- गया जिसमेंसे अबतक नहीं निकल सका है। अमेरिकाने स्वतन्त्रताके प्राप्त करनेमें किरोड़ों रुपया व्यय कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्त करतेही वहांके व्यवसाय उत्तम दशामें हो गये और उसने शीघ्र ही इतना धन कमा लिया कि उसका युद्धोंके धन व्ययका भार हलका होगया। और यह होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि स्वन्त्रता तथा व्यव- साय का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जब कोई जाति परतन्त्रतासे स्वतन्त्र हो जाती है उसका व्यव- साय शीघ्रही समुन्नत हो जाता है। यही नहीं, जब कोई जाति व्यवसायमें उन्नत होने लगती है तब स्वतन्त्रता भी उसको शीघ्रही प्राप्त हो जाती है। अमेरिका यही शिक्षा देता है। अन्य देशभी इसी नियमको पुष्ट करते हैं।

परन्तु आदमस्मिथ इस सत्यको न जान- सका। उसने स्वतन्त्रताको जातियोंकी स्मृद्धिका मुख्य कारण न समझ करके श्रम विभाग तथा श्रमकी कार्यक्षमताको ही एकमात्र कारण बतलाया है। वह लिखता है कि "श्रम वह कोष है जहांसे प्रत्येक जाति अपनी संपत्तिको प्राप्त करती है। संप- त्तिकी वृद्धि श्रमकी कार्यक्षमता तथा श्रमियोंकी संख्यापर निर्भर करती है।" यह सत्य है। परन्तु श्रमियोंकी कार्यक्षमता स्वतः किसपर निर्भर करती है? यदि इसका उत्तर यह हो कि "उनके भोजन छादन पर" (जोकि स्वयं जातिकी स्मृद्धिपर निर्भर करता है) तो यह उत्तर कभी भी सन्तोष- प्रद नहीं हो सकता। क्योंकि जातियोंकी स्मृद्धि श्रमियोंकी कार्यक्षमतापर और उनकी कार्यक्षमता

---

* 'संपत्ति शास्त्रके अध्ययनका उचितमार्ग, नामक लेखक की पुस्तकसे यह लेख उद्धृत है यह पुस्तक अभी तक छपी नहीं है। लेखक.

[Ecoromics संपत्ति शास्त्र]

जातियोंकी स्मृद्धिपर निर्भर करती हुई यदि कही जावे तो यह एक ऐसा चक्र है जिसका कोई सिरा नहीं है। न्यायशास्त्रमें इसीको 'इतरतराश्रम' दोषमें गिना है। सारांश यह है कि जातियोंकी संपूर्ण उन्नतिका एकमात्र आधार उनकी स्वतन्त्रता है। यदि किसी राष्ट्रमें व्यक्तियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो, न्याय तथा आत्मसंरक्षण निर्विघ्न हो, व्यवसाय, कृषि, शिक्षा आदिकी उन्नतिमें राज्य पूर्ण साहाय्य देता हो, धर्म, सदाचार तथा विचार निर्बाध हो, और उपनिवेशों द्वारा शक्ति-वृद्धिमें अवसर मिले तो ऐसे राष्ट्रमें संपत्तिकी वृद्धि दिनदूनी रातचौगुनी होती है।

स्मिथ साहब इस सत्यके समीपतक न पहुंच सके। वह घटनाचक्रके अन्तः प्रवेश न करके ऊपरसे ही उसकी गतिका अनुमान करते रहे। जिस 'श्रम' पर उनके ग्रन्थका दारोमदार है वह जातीय संपत्तिके उत्पन्न करनेमें एक अत्यन्त तुच्छ कारण है। कुछ समय हुआ दासोंका श्रम सस्ता था तथा जनताको बहुतायतसे उपलब्ध था। परन्तु इसपर भी पाश्चात्य देशोंके प्राचीन पुरुष वर्तमान समयके मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत ही कम स्मृद्ध थे। इसका कारण यह था कि उनका उस संचालक शक्तिपर प्रभुत्व न था जोकि जातीय संपत्तिके चक्रको चलाती है। आजकल सभी जातियां अपनी मानसिक पूंजीको बढ़ानेका घोर प्रयत्नकर रही हैं। नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उन्नतियोंके सम्पादन करनेमें प्रत्येक जाति प्रचुर धन व्ययकर रही है। यह सब इसीलिये है कि वह अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्थाकी पूरी तौरपर उन्नति करनेमें समर्थ हो सके। शोकसे कहना पड़ता है कि प्राचीन संपत्ति-शास्त्र-विशारद जितना एक सुअरके पालनेको उत्पादक समझते हैं उतना इन उपरोक्त कार्योंको नहीं मानते। इतना ही होता तब भी कोई बात न थी। विचित्रता तो यह है कि वह कृषि तथा व्यवसायकी उन्नतिमें भी किसी प्रकारका अन्तर नहीं समझते। परन्तु इसके बिना कार्य कैसे चल सकता है? एकमात्र कृषि-प्रधान राष्ट्रमें कौनसी ऐसी त्रुटि है जो विद्यमान न हो। ऐसे राष्ट्रोंमें लोभ, दारिद्र, दौर्वल्य, द्वेष, अज्ञान जहां अपना निवास-गृह बनाते हैं वहां इनके प्रभावसे उन राष्ट्रोंकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंका विकास सर्वदाके लिये प्रतिबद्ध हो जाता है और प्राकृतिक शक्तियोंका प्रयोग पूरी तौरपर न हो सकनेसे पूंजी भी एकत्रित नहीं होती। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार प्राचीन संपत्ति शास्त्रज्ञोंके विचार सर्वथा अपरिपक्व थे। उत्पादक शक्तिके रहस्यको न समझ कर उन्होंने जितनी भूलें की हैं उसका वर्णन करना कठिन है। उनके विचारमें जातीय व्यवसायोंकी अपेक्षा विदेशी व्यापार जातीय संपत्ति तथा स्मृद्धिको देनेवाला है। परन्तु भारतके व्यवसाय संबंधी अधःपतनके इतिहासको जाननेवालोंको यह पता है कि यह विचार कितना असत्य तथा हानिकारी है। प्रत्येक वर्ष अंग्रेजीराज्य भारतियोंको 'विदेशी व्यापार' की उन्नतिकी बधाई देते हुए उनको स्मृद्धि दिखानेका यत्न करता है परन्तु वास्तव में हो क्या रहा है? जितना जितना विदेशी व्यापार बढ़ता जाता है उतना ही भारत धन धान्यरहित तथा निःसार होकर दुर्भिक्षका पात्र हो रहा है। वास्तवमें बात तो यह है कि व्यावसाय शक्ति, नागरिक-स्वतन्त्रता, बुद्धि, विज्ञान, कला कौशल, और व्यापारिक तथा राजनैतिक उन्नति की माता है। इसके द्वारा परतन्त्रता तथा अज्ञानके अलंकारभारमें दबे हुये कृषकोंकेकष्ट कम होते जाते हैं तथा उनको सुखमय जीवन व्यतीत करनेका अवसर प्राप्त होता है। यदि विदेशी व्यापार द्वारा विदेशी पदार्थोंके उप भोगसे किसी राष्ट्र की संपत्ति तथा स्मृद्धि बढ़ सकती हो तो उस अवस्थामें उस राष्ट्रकी संपत्ति तथा स्मृद्धि किस सीमातक बढ़ सकती है जब कि वह अपने ही व्यवसायद्वारा उपार्जित स्वदेशी पदार्थों

का उपभोग करे। सारांश यह है कि किसी जाति को व्यावसाय-शक्ति प्राप्त होने से जो लाभ पहुंच सकते हैं उन लाभों का हजारवां भाग भी उसको विदेशसे सस्ते पदार्थोंके खरीद करनेसे नहीं प्राप्त हो सकता। जातियों को व्यावसायिकशक्ति प्राप्त हो जाने से निम्नलिखित लाभ पहुंचते हैं।

(१) उनका आचार तथा स्वभाव उन्नत हो जाता है।

(२) उनकी मानसिक शक्ति उत्तम तथा समुन्नत हो जाती है।

(३) उनकी स्वतंत्रता तथा जीवन सुरक्षित हो जाता है।

(४) कला कौशल द्वारा बहु मूल्य पदार्थों-के उत्पन्न होनेसे उनकी समृद्धि बढ़ जाती है।

इस संपूर्ण विवरणसे हमारा जो कुछ तात्पर्य है वह यही है कि जातियोंकी उत्पादक शक्ति प्राप्त करनेका अपेक्षित: अधिक यत्न करना चाहिये; और विदेशी व्यापार द्वारा सस्ते सस्ते पदार्थोंको मंगाकर अपना धन लुटानेसे बचना चाहिए।

हर जातिको उत्पादक-शक्ति प्राप्त करनेमें पर्याप्त कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसको वर्तमान सुखोंका परित्याग करके भावी सुखोंकेलिये यत्न करना पड़ता है। यदि कोई राष्ट्र अपनी जातिको शिक्षित करनेमें धन व्यय करता है तो उसको प्रत्यक्षमें कोई संपत्ति नहीं मिल जाती। होता क्या है कि शिक्षाके द्वारा जातिकी उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है और यह स्वयं राष्ट्र तथा जातिकी विपत्ति कालमें प्रबल सहायकका काम करती है।

इसी विचारसे आजकल स्वदेशी व्यवसायों-की समुन्नतिमें प्रत्येक राष्ट्रका ध्यान है। सभी विद्वान स्वदेशी व्यवसायोंको जातीय सभ्यता तथा स्वतंत्रताका आधार समझते हैं और उनके समुत्थानमें प्रत्येक व्यक्तिको तन मन धन समर्पित करनेके लिये उत्तेजित करते हैं। विदेशी व्यवसाय सम्बन्धी पदार्थोंका खरीदना सर्वथा हानिकर है। इससे क्षणिक सुख तो प्राप्त हो सकता है परन्तु जातीय जीवन सर्वदाके लिये नष्ट हो जाता है। इसको उस शराबसे उपमा दी जा सकती है जो कि कुछ समयतक अत्यंत आनंद देती है परन्तु अन्तमें भयंकर विनाश उपस्थित करती है। यह विचार चिरकालसे उठा हुआ है कि स्वदेशी व्यवसायोंके समुत्थानमें सामुद्रिक-कर-वृद्धि का प्रयोग न करना चाहिये क्योंकि इससे व्यव-साय सम्बन्धी पदार्थोंकी कीमतें चढ़ जाती हैं और जनताको विशेष कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु हमारी सम्मतिमें यह विचार सर्वथा निरर्थक तथा हानिप्रद है। क्योंकि यदि इसी शैलीपर विचार करना प्रारम्भ करें तो यह कहना भी उचित ही होगा कि बालकोंको न पढ़ाना चाहिये क्योंकि उनके पढ़ानेके लिये धन उपार्जन करनेमें माता पिताओंको विशेष कष्ट उठाना पड़ेगा। विचित्रता यह है कि सभी उत्तम काम ऐसे हैं जिनमें कुछ न कुछ कष्ट अवश्य है तो क्या उत्तम काम करना ही छोड़ देना चाहिये। यदि भोजन करनेमें हाथ हिलाना पड़े तो क्या भोजन ही न करना चाहिये। इस अवस्थामें यह कौन मान सकता है कि कुछ समयतक पदार्थ मंहगे मिलेंगे। इसलिए स्वतंन्त्रता, समुन्नति, तथा सभ्यताके आधारभूत स्वदेशी व्यवसायोंके समुत्थानके लिये बाधक-सामुद्रिक-कर का प्रयोग न करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं है कि आरम्भमें बाधक-सामुद्रिक-करके प्रयोगसे पदार्थोंके मंहगे होनेसे हमको कुछ कष्ट पहुंच सकता है परन्तु जब स्वदेशी व्यवसाय उन्नत होकर जनतामें जातीय जीवन तथा स्वतंत्रताका भाव जागृत कर देगा तो यह सब कष्ट सहज ही में दूर हो जावेंगे।

सारांश यह है कि जातीय संपत्तिकी उत्पत्ति तथा वृद्धि उसकी उत्पादक शक्ति या व्यावसाय सम्बन्धी शक्ति पर निर्भर करती है जो कि स्वयं जातीय स्वतंत्रतासे उत्पन्न होती है। यह जातीय स्वतंत्रताको चिरकाल तक सुरक्षित रखनेमें

बड़ा भारी भाग लेती है। इसी बातको समझ कर विद्वानोंने कहा है कि स्वतंत्रता तथा व्यवसाय सदा साथ रहते हैं। व्यवसाय सम्बन्धी शक्ति किसी जातिको तभी प्राप्त हो सकती है जबकि वह स्वतंत्र हो। पर तंत्रताका इस शक्तिसे कुछ भी संबंध नहीं है।

भारत-गीत नं० ५५

(१)

घर घर गवै प्रेम-संगीत
फवै प्रेम की ध्वजा फहरती, घर घर प्रभा पुनीत

(२)

परम पुरातन, सदा सनातन, भारत की जो रीति
सुकृत-नीति की, अमिट प्रीति की, उसमें बढ़ै प्रतीति
घर घर गवै प्रेम-संगीत

(३)

धर्म कर्म की मर्म भूमि में मिलै प्रेम को जीत
फलै न निपट-कपट-पट-लिपटी, शठ-लंपट हठ-नीति
घर घर गवै प्रेम-संगीत

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, १४-२-१६ } —श्रीधर पाठक

प्रकाश विज्ञान

प्रकाशका अणुसिद्धान्त

(कुम्भाङ्कके आगे)

[ले० प्रोफेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

प्रकृतिके गूढ़ रहस्योंके उद्घाटन करने वालोंका जीवन द्विविध होता है। साधारणतया वे अपनी इन्द्रियों आंख, कान, आदिसे, प्रयोग करते हैं और अनुभव प्राप्त करते हैं। परन्तु जब कभी कोई बारीक प्रश्न, जैसे "प्रकाश क्या है ?"

[Light प्रकाश]

उपस्थित होता है तो उन्हें इन्द्रिय जन्य संसारसे परे जाना पड़ता है। तब उन्हें उस संसारमें विचरना पड़ता है जहां उनका मन स्वतंत्रता पूर्वक कल्पना शक्तिसे काम ले सकता है, परन्तु स्मरण रहे कि उस कल्पना शक्तिसे नहीं, जिससे अफ़ीमची काम लेते हैं और वे सिर पैरकी बातें गढ़ा करते हैं। वैज्ञानिक लोग सुसंस्कृत तथा सुपरिष्कृत कल्पना शक्तिसे काम लेते हैं। उसीके द्वारा वे प्रयोगोंका वास्तविकरहस्य जाननेका प्रयत्न करते हैं और प्रयोग-जन्य ज्ञानकी त्रुटियोंको पूरा करते हैं। इससे आशय यह नहीं है कि उनकी कल्पना शक्ति नई बातोंकी रचना करती है, परन्तु बिथरे हुए प्रयोग-जन्य ज्ञानको सिद्धान्तरूपी सूत्रमें पिरोकर अनुपम विज्ञान स्वरूपमाला विद्वानोंके लिए तैय्यार कर देती है।

उपरोक्त बातका बहुत अच्छा उदाहरण हमें न्यूटनके जीवनसे मिलता है। "प्रकाश क्या है ?" इस प्रश्नका उत्तर देनेमें उसकी कल्पनाशक्तिने जो काम किया है उससे स्पष्ट है कि इस शक्तिकी गति इस इन्द्रिय-जन्य संसारसे परे नहीं हो सकती। प्रकाशके सिद्धान्तोंपर विचार करनेके पहिलेही उन्हें गमनके नियम भली भांति ज्ञात थे और वह यह भी अच्छी तरह जानते थे कि स्थितिस्थापक पदार्थ एक दूसरेसे टकरा कर नियमित पथका अवलम्बन करते हैं, और समधरातलसे टकरानेपर तो आयात कोण और परावर्तन कोण बराबर होते हैं। प्रकाश परावर्तनका भी नियम यही है, यह समता देखकर उन्होंने कल्पनाकी कि सम्भव है कि प्रकाश भी स्थितिस्थापक पदार्थ है और समधरातलसे टकरा कर बराबर कोण बनाता है। किन्तु वह कुछ बिलियर्डकी या कांचकी गोली तो हो नहीं सकता। कल्पनाने परिमाण बदलकर कहा कि बहुत ही छोटी छोटी गोलियां होसकती हैं। (अत्यन्त सूक्ष्म कण) जो एक के पश्चात् एक आकर टकराती हैं और परावर्त्तित हो जाती हैं। उनका

वेग भी बहुत ही अधिक होना चाहिये क्योंकि प्रकाशका वेग असाधारण है। इस प्रकार बिना आंख, कानकी सहायताके उनको कल्पनाने स्थिर किया कि प्रकाशवान वस्तुसे असंख्य अत्यन्त छोटे अणु जिनमें स्थिति-स्थापकता खूब है निकल कर बड़े वेगसे चलते हैं और इसी प्रवाहको प्रकाश कहते हैं। यही नेत्रोंसे टकराकर हमें दृश्य ज्ञान प्राप्त कराते हैं। संचालक शक्ति हमारे नेत्रों-तक इन्हीं कणोंके साथ आती है। शक्तिके एक स्थानसे दूसरे स्थानतक परिमित वेगसे जानेके पिछले लेखमें दिये हुए दो उपायोंमेंसे यही ठीक जान पड़ता है।

किन्तु इतना ही क्यों? एक बात और है जो इसके पक्षमें हैं। न्यूटनके गति संबंधी प्रथम नियमके अनुसार ऐसे कणोंको सदा सरलरेखा-में ही गमन करना चाहिये। और यह प्रकाशके सरलरेखात्मक गमनके सर्वथा अनुकूल है। कल्पनाको इस बातसे अपना विचार स्थिर कर देनेमें बहुत ही सहायता मिली।

परन्तु एक कठिनता अवश्य हुई होगी। यदि असंख्य परमाणु इतने अधिक वेगसे किसी वस्तु-पर टकरावें तो उसपर तो बहुत बड़ा दबाव पड़ना चाहिये। प्रकाशके कारण तो दबाव पड़ता नहीं। कल्पनाशक्तिने तुरन्त ही उन कणोंको इतना छोटा बना दिया कि उनका दबाव नापना अत्यन्त कठिन हो। उस समय इस दबावके नापनेका कोई उपाय न था किन्तु अब यह प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो गया है कि प्रकाशका भी दबाव पड़ता है और यह दबाव नाप भी लिया गया है। अतः यह बात भी इस सिद्धान्तके अनुकूल ही हुई।

अब वर्तनकी बारी आई। सीधा चलता हुआ कण अपनी दिशा क्यों बदलेगा? इसका उत्तर देनेमें भी न्यूटनने अपने पूर्व ज्ञानसे काम लिया। किसी कणपर एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें घुसते समय कुछ बल लगना चाहिये, यह आवश्यक है। न्यूटन इससे पहिले गुरुत्वाकर्षणका अध्ययन कर चुके थे और आकर्षण शक्तिके कार्योंसे भली भांति परिचित थे। शायद उनका मस्तिष्क इस आकर्षणसे इतना भरा था कि वे प्रकाश कण-पर और किसी प्रकारका बल लगना सोच ही न सकते थे। जो हो उन्होंने विचारा कि उस कण पर भी आकर्षण शक्तिके ही द्वारा बल लगता है। हवामें चलते चलते जब वह पानी या कांचके निकट पहुँचता है तब आकर्षणके कारण उसका मार्ग बदल जाता है। यही नहीं पृथ्वीके आकर्षण-के कारण जिस प्रकार पत्थरका वेग बढ़ जाता है और उसका मार्ग वक्र हो जाता है उसी प्रकार प्रकाश अणुका वेग भी पानी या कांचकी सतहके निकट पहुंचनेपर बढ़ जाता है और उसका पथ भी वक्र हो जाता है। दोनोंमें वेगका लम्ब रूप घटक (vertical component) बढ़जाता है, पर क्षितिज घटक (Horizontal component) ज्योंका त्यों रहता है क्योंकि उस पर कोई बल नहीं लगता।

उस अणुपर यह असर तबतक नहीं पड़ता जबतक कि वह काचकी सतह भ श (चित्र १) से बहुत निकट प क पर नहीं पहुंच जाता। अतः जो वेग क पर होता है वही ख पर भी रहता है और क से ख तक वह सीधा ही चलता है। इसके
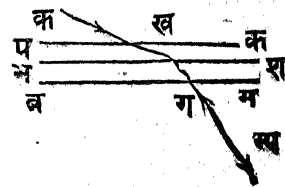
चित्र नं० १

पश्चात् आकर्षण प्रारम्भ होता है। उसके वेगके दो घटक वेगों-एक लम्बरूप और एक क्षितिजस्थ-मेंसे लम्बरूप वेग बढ़ने लगता है और कण वक्र पथसे चलता है। कांचमें ग पर पहुंचकर यह आकर्षण खतम हो जाता है। अब कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस दिशामें वह ग पर चल रहा हो उसी दिशामें अब वह उतने ही वेगसे चला

जाता है। जबतक वह कांचमें चलता रहता है, उसका वेग उतना ही बना रहता है, जितना ग पर होता है।

यदि वह प्रकाश कण पहिले अधिक वर्त्तक पदार्थमें घ ग मार्गसे चल रहा हो तब भी ग पर पहुंचनेपर उसपर नीचेकी ओर आकर्षणका बल लगेगा और उसका लम्ब रूप वेग जो भ श की ओर था इस बलके कारण घट जायगा और वह अणु ठीक ग ख क मार्गसे ही चलेगा।

मान लीजिये कि हवामें ख तक उसका वेग व था और आमान कोणका परिमाण च। इसी प्रकार ग से परे कांचमें वेग वं और वर्त्तिन कोण छ। तब क्षितिज वेगमें कोई परिवर्तन न होनेके कारण व × ज्या च = वं × ज्या छ

$$\text{अर्थात्}\ \frac{\text{ज्या च}}{\text{ज्या छ}} = \frac{\text{वं}'}{\text{व}} = \text{स्थिर}$$

यही स्नेलियसका नियम है।

व वं और कोण च छ में जो सम्बंध ऊपर लिखा है उससे यह परिणाम स्पष्ट रूपसे निकलता है कि यदि च छ से बड़ा हो तो वं भी व से बड़ा होगा। अर्थात् अधिक वर्त्तक पदार्थोंमें प्रकाशका वेग अधिक होता है काँचमें या पानीमें प्रकाश हवाकी अपेक्षा अधिक वेगसे चलता है। क्योंकि यह हम ऊपर देख ही आये हैं कि हवासे जल या कांचके समान भारी पदार्थमें जाते समय किरण लम्बकी ओर झुकती है और वर्तत कोण आपात कोणसे छोटा होता है। यह परिणाम बड़े महत्वका है, क्योंकि यदि प्रकाशका वेग भिन्न भिन्न पदार्थोंमें नाप लिया जाय तो इस सिद्धान्तकी सत्यताकी परीक्षा हो सकती है। किन्तु दुर्भाग्यसे न्यूटनके समयमें प्रकाशका वेग नापनेका कोई उपाय न था और इस कारण वह परीक्षा नहीं हो सकी।

इस प्रकार सरलरेखात्मक गमन, परावर्तन, और वर्तनके नियम इस सिद्धान्तके अनुसार ठीक उतरे; तब तो कल्पनाशक्तिने प्रकाश सम्बन्धी और भी बातोंको इसमें घटित करनेका प्रयत्न किया। रंगोंका कारण उन्होंने यह समझा कि कण छोटे बड़े हैं। सब समान आकार और आयतनके नहीं हैं। जब सबसे बड़े कण आकर नेत्रमें प्रविष्ट होते हैं तब तो लाल रंगका ज्ञान हो जाता है और सबसे छोटे कणों द्वारा नील या बैंजनी रंग मालूम होता है मंझले आकारके कणोंसे पीले हरे इत्यादि रंगोंके प्रकाशकी सृष्टि होती है। कोत्रिपार्श्व इन कणोंको छांट देता है, सबसे बड़ों को एक ओर भेज देता है, और छोटोंको दूसरी ओर। इस कारण रश्मिचित्र (Spectrum) बन जाता है। इस छांटका कारण यह हो सकता है कि उन अणुओंका वेग भिन्न भिन्न हो या उनपर आकर्षण शक्ति जुदे जुदे परिमाणमें बल लगावे।

किन्तु कठिन प्रश्न तो यह था कि "क्या कारण है कि एकही किरणके कुछ अणु तो परावर्त्तित हो जाते हैं और कुछ वर्त्तित। इसका सीधासा उत्तर तो यह हो सकता था कि अणु दो प्रकारके होते हैं। एक तो परावर्त्तित होने वाले और दूसरे वर्त्तित होने वाले। निरी कल्पनाके लिए तो यह उत्तर संतोषजनक हो सकता है किन्तु ज्योंही कल्पना संसारको छोड़ हम इस इन्द्रिय जन्य संसारमें लौटते हैं, त्यों ही ज्ञान होता है कि यह उत्तर ठीक नहीं हो सकता। क्योंकि यदि एक किरण कांचके एक टुकड़ेसे परावर्त्तित होकर दूसरे पर पड़े तो उसका कुछ अंश तो कांचमें होकर निकल जाता है और कुछका वर्त्तन नहों जाता है जो कण एक बार परावर्त्तित हो गये वे सदैव ही परावर्त्तित नहीं होते और न वे कण जिनका एक बार वर्त्तन हो गया वे ही सदा परावर्तनसे वंचित रहते हैं। न्यूटनको यह सब बातें ज्ञात थीं और उन्हें यह भी ज्ञात था कि यदि उनका यह सिद्धान्त ठीक हो तो इसके द्वारा इस बातका भी वास्तविक रहस्य मालूम हो जाना चाहिये। एक ही कणके एक बार परावर्त्तित होने और दूसरी बार वर्त्तित हो

जानेके लिए कल्पना शक्तिको यह आवश्यक जान पड़ा कि उसकी अवस्थामें कुछ परिवर्तन होना चाहिये। इसलिए न्यूटनने "दौरे" (fits) के मतका आविष्कार किया। प्रकाश कणोंको मृगीके रोगियोंकी भांति दौरा आता है। जिस प्रकार वह कभी हंसने और कभी रोने लगता है उसी प्रकार यह अणु भी कभी परावर्तित हो जाते हैं और कभी वर्त्तित।

यद्यपि न्यूटनने इस दौरेका कारण कहीं साफ साफ नहीं बतलाया है तो भी इसमें सन्देह नहीं कि इसकल्पनाका आधार भी उसका पूर्व अनुभव ही था। यह सब कोई जानते हैं कि चुम्बकके दो छोर होते हैं। एक चुम्बकके एक छोरके समीप दूसरे चुम्बकका एक छोर लानेसे आकर्षण होता है किन्तु दूसरा छोर लानेसे निराकरण होता है। व्यक्त पदार्थोंमें अव्यक्त पदार्थोंकी मूर्त्ति देखनेके अभ्यासी न्यूटनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह प्रकाशकणोंको भी दो ध्रुव वाले समझ लेते। कांचकी सतहपर पहुंचते समय यदि अणुओंके आकर्षक ध्रुव सामने हो तो वे कांचमें घुस जाते हैं और उनका वर्तन हो जाता है और यदि निराकारण कारी ध्रुव सामने हों तो परावर्तन हो जाता है। इस कल्पनासे प्रायः सभी आपत्तियां मिट गईं।

पतली झिल्लियां, जैसे साबुनके बुदबुदों, के रंगोंकी व्याख्या करनेके लिए इस सिद्धान्तमें एक और कल्पना जोड़नी पड़ी। यहां पर यह नहीं लिखा जा सकता कि इस बातकी आवश्यकता क्यों हुई। आगे चलकर जब इस विषयमें विशेष लिखा जायगा तब इस आवश्यकताका कारण भी बताया जा सकेगा। किन्तु यहां पर यह लिख देना अनुचित न होगा कि क्या बात इस सिद्धान्तमें जोड़ी गई। न्यूटनने यह निश्चय किया कि कण केवल सीधे ही नहीं चलते, वे चक्कर लगाते हुए भी चलते हैं। जिस प्रकार गाड़ीके पहिये घूमते भी हैं और आगे बढ़ते भी जाते हैं उसी प्रकारकणों काभी चलते समय कभी एक ध्रुव और कभी दूसरा ध्रुव आगे हो जाता है। न्यूटनकेलिए यह बात नई न थी। ज्योतिष शास्त्रके ज्ञानसे उन्हें पृथ्वीके गमनसे पूर्ण परिचय था। पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा भी करती है और अपनी अक्ष पर भी घूमती जाती है। २४ घंटेमें अक्षीय चक्कर पूरा हो जाता है, किन्तु सूर्यकी परिक्रमामें एक वर्ष या ३६५ दिन लगते हैं। प्रायः १५ लाख मील आगेकी ओर बढ़नेमें वह एक अक्षीय चक्कर लगा चुकती है। इसी प्रकार प्रायः इंचके नव्बे सहस्त्रवें भागकी दूरी तै करनेमें प्रकाश अणु एक चक्कर लगा लेता है। अतः उसका कौनसा ध्रुव अमुक समय सामनेकी ओर होगा यह सर्वथा अनिश्चित व आकस्मिक बात नहीं है। यदि इस समय आकर्षक ध्रुव सामने है तो हवामें इंचके प्रायः एक लाख अस्सी हज़ारों भाग आगे बढ़ कर निराकारकारी ध्रुव सामने हो जायगा। प्रकाश कण पृथ्वीके समान बड़ा नहीं है और न १५ लाख मील ही इंचके नव्वे हज़ारवें भागके बराबर हैं। किन्तु भाव एक ही है। कल्पनाने केवल परिमाण मात्र बदल दिया है। किन्तु यद्यपि सिद्धान्तोंका निर्माण काल्पनिक संसारमें होता है तथापि उनकी परीक्षा तो यहीं इस प्रत्यक्ष इंद्रिय जन्य जगत्में होती है। सिद्धान्तकी मूल बातोंको लेकर हम विचारते हैं कि इनसे क्या क्या परिणाम निकलना चाहिये कौन कौनसी घटनायें इस सिान्तके अनिवार्य परिणाम हैं। यदि यह घटनाएँ वही है जिन्हें हम अपनी इंद्रियोंसे प्रत्यक्ष जानते हैं तो उस सिद्धान्तमें कुछ सत्यता जान पड़ने लगती है। और नई बातें मालूम होती जाती है यदि यह भी उस सिद्धान्तके प्रतिकूल नहों तो उसके पक्षमें अधिक बल आ जाता है। और यदि उस सिद्धान्त द्वारा ऐसी ऐसी घटनाओंका भी वर्णन हो सके जो आज तक कभी देखी सुनी न गई हों और समय पाकर यह भविष्यत् वाणी ठीक निकले तब तो उस सिद्धान्तमें अविश्वास होनेका कोई स्थान नहीं रह जाता।

अर्थात् यदि कोई सिद्धान्त ज्ञात घटनाओंकी व्याख्या कर सके, निष्कृत बातें भी उसके प्रतिकूल न पड़े और भविष्यमें आविष्कृत होने वाली घटनाओंको भी अभीसे वह बतला सके तब समझना चाहिये कि यह सिद्धान्त माननीय हो सकता है।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि कण सिद्धान्त भी धीरे धीरे बढ़ा कर इस योग्य बना लिया गया कि उसके द्वारा प्रकाशकी सभी साधारण घटनाओंकी व्याख्या हो सके। यह सच है कि ऐसा करने में सदैव मूल सिद्धान्तमें नई नई बातोंका समावेश करना पड़ा और इस सिद्धान्तकी आरम्भिक सरलताका प्रायः लोप ही होता गया।

किन्तु जब हम नवाविष्कृत "विकृति" की ओर दृष्टि फेरते हैं तब ज्ञात होता है कि प्रकाशके सीधे रास्तेको छोड़कर उस्तरेकी धार परसे या छोटे छिद्रमेंसे निकलते समय मुड़ जाना इस सिद्धान्तके प्रतिकूल होता है। इस घटनाकी यह सिद्धान्त कोई सन्तोषजनक व्याख्या नहीं कर सकता। आगे व्यतिकरण और यंगके प्रयोगके सम्बन्धमें तो यह कठिनाई इतनी अधिक हो जाती है कि उस पर विजय प्राप्त करना प्रायः असम्भव है। कल्पनाकी चरम सीमापर पहुंच कर भी यह किसी प्रकार समझमें नहीं आ सकता कि दो पौङ्गलिक अणु, एक दूसरेसे टकराकर सर्वथा नष्ट हो जावें। ध्रुवी भवन को लीलिये। इस सिद्धान्तको माननेवालोंमेंसे सर्व श्रेष्ठ बुद्धिमान मनुष्योंने भी इसकी व्याख्याका आभास मात्र भी करनेमें सफलता प्राप्त नकी। सीधी रेखा पर चलने वाले कणोंमें एक पदार्थमेंसे निकलनेपर ऐसा गुण उत्पन्न हो जाय कि एक ही पदार्थमेंसे वह एक स्थितिमें तो निकल सके और दूसरीमें नहीं यह किसी प्रकार समझमें नहीं आ सकता।

इसके अतिरिक्त अब हमें हवा और अन्य पदार्थोंमें प्रकाशका वेग नापनेके उपाय भी ज्ञात हो गये हैं। इस कारण जो परीक्षा न्यूटन नहीं कर सका वह अब सरलतासे हो सकती है। इस परीक्षाका परिणाम कण सिद्धान्तके प्रतिकूल निकला है। पानीमें प्रकाशका वेग नाप लिया गया है और वह हवाकी अपेक्षा अधिक न निकल कर कम ही निकला है। पानीमें उसका वेग हवा से प्रायः तीन चौथाई मात्र है। यह बात ऐसी है कि जो इस सिद्धान्तके सर्वथा प्रतिकूल है और इसीके कारण लोगोंने प्रायः इस सिद्धान्तका साथ छोड़ दिया है।

अब रहा केवल भविष्य घटनाओंका वर्णन सो आजतक इस सिद्धान्तने एक भी बात ऐसी न बतलाई कि जो आगे चल कर ठीक निकली हो

यह सच है कि मूल सिद्धान्तमें नई नई बातों का समावेश करके प्रायः सभी आपत्तियोंका निराकरण हो सकता है और यही कारण है कि लापलास (Laplace) और Malus मैलस बायो (Biot) और ब्रुस्टर (Brewstr) केसमान प्रखर बुद्धि वाले लोग भी अभी १८६०—१८७० तक इस सिद्धान्तमें विश्वास करते थे। किन्तु इन नई बातोंके कण सिद्धान्तमें सम्मिलित हो जाने पर परीक्षा करनेसे ज्ञात होगा कि उन कणोंमें प्रायः वे सभी बातें आ गई जो तरंगोंमें होनी चाहियें। ऐसा हो जाने पर फिर इन काल्पनिक कणोंकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। तरंगों ही से प्रकाश सम्बन्धी समस्त घटनाओंकी व्याख्या हो जाती है। इस कारण इस सिद्धान्तके प्रतिकूल अंतिम बात यह है कि कणोंका अस्तित्व प्रकाशके लिये आवश्यक नहीं है।

यह प्रश्न हो सकता है कि जब सिद्धान्त सन्तोष जनक नहीं है और इस परसे वैज्ञानिकों का विश्वास भी उठ गया है तब इस पर इतना विचार करनेकी आवश्यकता ही क्या है। इस विषयमें सर जार्ज स्टोक्स (Stokes) कहते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टिके अतिरिक्त भी यह विषय बहुत महत्वका है। इससे हम भविष्यमें सत्यकी खोज करनेके लिये बहुत ही आवश्यक बातें सीख

सकते हैं। सबसे पहिले तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृतिका रहस्य और उसके नियम जाननेके लिये केवल मानसिक कल्पनाओंसे ही आशा न रखनी चाहिये। किन्तु उस कठिन तर-पथका अनुसरण करना चाहिये जिसमें इंद्रियोंकी सहायतासे नई घटनाएं और नये नियम सीख सकें और फिर उनके परिणाम स्वरूप सिद्धान्तों को स्थिर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि किसी सिद्धान्तको केवल इस ही कारण न छोड़ बैठना चाहिये कि उसमें कुछ आपत्तियां है बशर्ते कि वे आपत्तियां प्रयोग सिद्ध बातोंके सर्वथा प्रतिकूल न हों। अंत में हम उससे यह भी सीखते हैं कि बड़े बड़े नामों-के भरोसे ही न रह कर जो कुछ हम देखे सुनें उस पर पक्षपात रहित होकर विचार करना चाहिये।

यह अँतिम वाक्य विशेष महत्वके है क्योंकि जब हम तरंग सिद्धान्तका अध्ययन करेंगे तब हमें ज्ञात होगा कि कितनी ही बार अंतमें सत्य सिद्ध होने वाली अनेक सुन्दर कल्पनायें केवल इस कारण दब गई कि अमुक बड़े आदमीका मत उसके विरुद्ध हैं।

भारत-गीत-२९

प्रेमकर अपनों ही से प्रान
सबसे बड़ा, बड़ेसे भी बढ़, अपनों ही को मान

(२)

अपनोंसे जो काम सरेगा कोइ न करेगा आन
जिसने तेरा काम करा नहिं उसे न अपना जान
प्रेमकर अपनों ही से प्रान

(३)

अपना जान माल तन मन कर अपनों पर कुरबान
मान उन्हें तू खान प्रेमकी, डाल प्रेमकी बान
प्रेमकर अपनों ही से प्रान

श्रीपद्म कोट, प्रयाग, ३-११-१८ —श्रीधर पाठक

जलकी मनोरञ्जक गाथा।

[ले०—प्रो० मनोहरलाल भार्गव एम० ए०]

१—वरुण लोककी उत्पत्ति।

आज से करोड़ों, अरबों वर्ष पहिलेकी बात है कि हमारी यह शस्य श्यामला बसुंधरा उस महान नीहारिकासे अलग नहीं हुई थी, जिससे कि सारे सौर मंडलकी उत्पत्ति हुई है। ज्यों ज्यों यह नीहारिका ठंडी होती गई इसका आयतन कम होता गया और वह सिमट सिमट-कर केन्द्रकी ओर हटने लगी। साधारण नियमा-नुसार इसका बाहिरी भाग अधिक शीघ्रतासे ठंडा होने लगा और इसीसे उसका विशिष्ट गुरुत्व बढ़ने लगा। कुछ काल व्यतीत होने पर इसका गुरुत्व इतना अधिक हो गया कि इसके लिए नीहारिकाके साथ साथ उसके केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाना असम्भव हो गया। अतएव यह बाहिरी हिस्सा नीहारिकासे अलग होकर उसके केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। आरम्भमें इसका आकार छल्लेकासा गोल था और यह नीहारिकाको चारों तरफसे घेरे हुए था। पर अधिक ठंडे होने पर इसमें भरा हुआ स्थूल पदार्थ एक जगह इकट्ठा होने लगा और कई लाख बर्षमें एक अलग गोला बन गया। इसी प्रकार नीहारिकासे समय समय पर चक्राकार भाग अलग हो होकर गोलकार रूप धारण करके, नीहारिकाकी परिक्रमा करने लगे। इस प्रकार सारे संसारके ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई और जो अंश बच रहा, वही इन सब ग्रहोंका केन्द्र स्थान हो सूर्य कहलाने लगा। संभव है यह क्रियायें इस समय भी जारी हों और इनके फल स्वरूप भविष्यमें अन्य नये ग्रहोंकी उत्पति हो।

जिस प्रकार सूर्यसे ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई उसी भांति ग्रहोंसे उपग्रहोंकी हुई। यहां पर यह सब कथा कहनेका यह अभिप्राय है कि पृथ्वीकी उत्पत्ति

सूर्य से हुई है और चन्द्रमाकी पृथ्वीसे। जिस समय पृथ्वी सूर्यसे अलग होकर उसकी परिक्रमा देने लगी, उस समय यह बिल्कुल वायवीय रूपमें थी। धीरे धीरे यह ठंडी होने लगी और एक ऐसा समय आया जब धातुओं और चट्टानोंकी वर्षा उसी भांति होती थी, जिस भांति आजकल पानी की होती है। इस जमानेमें वायुमंडलका दबाव इतना ज़्यादा था कि आजकल उसका अन्दाज़ा करना भी कठिन है। प्रति वर्ग इञ्चपर लगभग २८० मनका दबाव था। नीहारिकामें जो ओषजन और उज्जन विद्यमान थीं, उनके संयोगसे जल उत्पन्न हुआ और यह पृथ्वीके उत्तप्त पिण्डको वाष्पकी अवस्थामें घेरे हुआ था। जब पृथ्वीका तापक्रम ३७०° श हो गया तो यह वाष्प जलका रूप धारण करके पृथ्वीपर बड़े वेगसे गिरने लगी। स्मरण रहे कि गैसोंका यह नियम है कि वह एक विशेष तापक्रमसे ऊपर कितना ही दबाव उनपर क्यों न डाला जाय, द्रवावस्थामें परिणत नहीं होती। इस विशेष तापक्रमको संकट-तापक्रम (Critical Temperature) कहते हैं। यह जुदा जुदा गैसोंके लिए जुदा जुदा होता है जल-वाष्प के लिए यह ३७०° श है। अतएव २८० मन प्रति इंचका दबाव रहते हुए भी जल-बाष्प जलमें नहीं परिणत हुई थी। परन्तु जब पृथ्वीका तापक्रम ३५०° श हो गया तो सब जल-वाष्प सहसा जल-रूप धारण कर सहस्रोंधाराओंके वेगसे पृथ्वीकी ओर चली। उस समय ऐसा प्रतीत होता होगा कि प्रलय कालके मेघ जल रूपी अग्निकी वर्षा कर रहे हैं। परन्तु पृथ्वी तलका तापक्रम बहुत ऊंचा था, इसीसे उस पर जल पड़ते ही बड़े बड़े विस्फोटन होने लगे और बड़ा भयङ्कर नाद उत्पन्न हुआ। खाना पक चुकनेपर, आग निकाल कर चूल्हेमें पानी डाल दीजिये; फिर देखिये चूल्हेकी गति क्या होती है। या गरम तवे पर पानी छोड़ दीजिये, फिर तमाशा देखिये कि पानी कैसा नृत्य दिखाता है। यही कैफ़ियत उस समय हुई थी। उत्तप्त पृथ्वीपिण्ड पर इतने गरम पानीकी जब वर्षा हुई तो पानी वाष्पमें परिणत होकर फिर वायुमंडलमें जा मिला और पृथ्वी तलपर बड़े बड़े तूफ़ान और अंधड़ पैदा कर गया। इसी भांति पानीका उलट फेर लगभग १०० वर्ष तक जारी रहा। (लार्ड केल्विनका यही अनुमान है, पर अरिनियसका कहना है कि किसी सूरतमें भी १००० से अधिक वर्ष इस परिवर्तनमें नहीं लगे होंगे) अन्तमें सब वाष्प जल में परिणत हो पृथ्वीपर एकत्रित हो गई। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि वायु मंडलमें बिल्कुल ही बाष्प न रही, सब पृथ्वीपर आगिरी वास्तवमें पानीका वाष्पमें परिणत हो बादलोंका बनना और बारिश होना, उसी भांति जारी, रहा जैसे पहले था और अब भी है। परन्तु पहिले पृथ्वी-तल पर जल ठहरता ही न था पर इस ज़मानेमें ही अधिकांश जल पृथ्वी तलपर ही एकत्रित हो गया। उस समय वर्तमान समयसे हज़ारों गुनी ज़्यादा बारिश हर रोज़ हुआ करती थी। सम्भवतः आरम्भमें यह जल पृथ्वी तलपर फैल गया और हर जगह इसकी गहराई समान हो रही; पर पृथ्वीके ठंडे होने के कारण इसका आयतन कम होता गया और इसका पृष्ठ तल कहींसे ऊंचा और कहींसे नीचा हो गया। जहां जहां यह निचान आ गये वहां अधिक पानी जमा हो गया और समुद्र और सागर उत्पन्न हो गये। पृथ्वीके आन्तरिक भयङ्कर परिवर्तन से भी पृष्ठ तलमें अनेक परिवर्तन होते रहते हैं इस कारण भी पृष्ठ तलकी असमानता पैदा हो सकती है।

इस प्रकार आजसे करोड़ों अरबों वर्ष पहले बरुण लोक समुद्रों और सागरोंकी उत्पत्ति हुई थी। समुद्रके तट पर खड़ा होकर जब मनुष्य अपनी दृष्टि दौड़ाता है और उसके ओर छोरका पता लगानेका मानसिक प्रयास करता है तो उसके अनन्त विस्तार, असीम गम्भीरता और अज्ञेय प्राचीनताका विचार कर बुद्धि थक जाती है। जब

उसके गर्भस्थ गूढ़ रहस्यों और उसकी पर्वताकार तरङ्ग मालाओंकी शक्तिका मनन कर मन अकर्मण्य हो जाता है, तब मनुष्य ईश्वर अथवा प्रकृतिका गुण गान करके गदगद हो जाता है। काल तू बड़ा बली है! तू संसारकी समस्त चीज़ोंको बनाता बिगाड़ता रहता है परन्तु समुद्रके आगे तेरी भी कुछ पेश नहीं जाती। भूगर्भ शास्त्रके किसी समयका भी विचार कीजिये, तब भी तरङ्ग मालाधारी हमारा यह बन माली अपनी बंसी बजाता और कभी कभी सुदर्शन चक्र नचाता नज़र पड़ता ही रहा है। उसकी सदा वही मस्ताना चाल, वही टेढ़ी चितवन, वही निर्मल नीलिमा युक्त आभा मनको लुभाती नजर आती रही है, परन्तु तूफान रूपी शिशुपालके सामने आने पर वह भयङ्कर रूप धारण कर बातकी बातमें बड़े २ परिवर्तन कर डालता है।

Time writes no wrinkles on thy azure brow
Such as creation's dawn beheld, thou rollest now.
—Byron

पृथ्वीके इतिहासमें यदि कुछ परिवर्तन हुए हैं तो पृथ्वीमें, समुद्रमें नहीं। जिन किनारोंसे समुद्र की लहरें टकरा टकरा कर किलोलें किया करती हैं, वह अनेक बार बदल चुके। धन धान्य सम्पन्न द्वीप और महाद्वीप अनेक बार द्वारकापुरीकी तरह जल मग्न हो चुके और उनके स्थान पर आज भी समुद्र सिंहनाद कर रहा है। टेनीसनने कैसा अच्छा कहा है:—

' There rolls the deep where grew the tree,
O Earth, what changes hast thou seen!
There where the long streets roars hath been
The still ness of the central Sea"

समुद्रकी उत्पत्तिके अनन्तर, वर्तमान समयतक सृष्टिका सारा क्रम ही बदल गया। मीलोंतक फैलनेवाले बड़ पांचसौ हाथ ऊँचे यूकिलिप्टस, कीड़ोंकी शिकार खेलनेवाले सनड्यू तथा डंक मारनेवाले बिच्छू पेड़, आदि आश्चर्यजनक वानस्पत्तिक सृष्टि सूक्ष्मातिसूक्ष्म, डाइएटम, से ही इस अनन्तकालमें हुई है। इसी कालमें अणुवीक्षणीय कीटाणुओंसे, व्हेल जैसे महाकाय, अजगर जैसे भयानक और मनुष्य जैसे बुद्धिमान जन्तुओंकी उत्पत्ति हो गई। पर समुद्र जैसे पहले था, वैसा अब भी है।

२–समुद्रकी आयु

हम पहिलेही कह चुके हैं कि इसका ठीक ठीक पता चलाना कठिन है। परन्तु वैज्ञानिक लोग अपनी बुद्धिसे काम लिए बिना नहीं रहते। प्रोफ़ेसर जोली (Prof Joly) महोदयने इसका कुछ अन्दाज़ा लगाया है। जितना नमक प्रतिवर्ष समुद्रमें जाकर गिरता है और जितना अब उसमें विद्यमान है, इन दोनोंकी तुलना करनेसे पता चलता है कि कमसे कम दस किरोड़ वर्षसे नमक घुल घुलकर समुद्रमें पहुंच रहा है। अतएव स्पष्ट है कि समुद्रकी उत्पत्ति दस किरोड़ वर्षसे बहुत पहले हुई होगी।

३–पृथ्वीपर कितना जल है?

पृथ्वी तलपर पानीकी मात्रा क्या है आइये पहिले इसपर ही विचार करें। पृथ्वी तलका लगभग पौन भाग जलमग्न है। शेष एक चौथाई सूखी ज़मीन है। समुद्रकी औसत गहराई १४६४० फुट या लगभग तीन मील है। सबसे ज़्यादा गहराई जो अभीतक नापी गई है वह ३१७०० फुट या लगभग ६ मील है। इन बातोंपर विचार कर यह अन्दाज़ा लगाया गया है कि समुद्रका जल यदि इकट्ठा कर लिया जाय तो उसका ८५० मील व्यासका एक गोला बन जायगा।* अगर मनोंमें आप हिसाब पूछें तो यों समझ लीजिये कि सब समुद्रोंके पानीका भार ७० संख अर्थात् ७ अरब करोड़ मन है!!

४–जीवोंमें कितना जल है?

समुद्रके अतिरिक्त पानी समस्त जीवोंके अङ्ग प्रत्यङ्गमें रमा हुआ है। प्रत्येक प्राणीके रोम रोममें

* बेननी (Bonney) ने अपनी 'The story of our planet' नामक पुस्तकमें ऐसा लिखा है।

कण कणमें पानी मौजूद है। खुश्कीके पौदोंमें ५०—७० प्रतिशत पानी रहता है। जलीय पौदोंमें यह मात्रा ६५-६८ तक बढ़ जाती है। पशु, पक्षियों और मनुष्योंमें भी उनके भारका लगभग ८० प्रतिशत पानी होता है। इस सम्बन्धमें (Stream of life) नामक पुस्तकमें लिखा है:—'सूखीसे सूखी बुढ़िया भी, जिसे देखकर शायद लोग डाकिन (जादूगरनी) समझें, को लेकर किसी विधिसे उसके शरीरका सब जल निकाल लिया जाय, तो उसकी जर्जरीभूत (लटी दूबरी) देह भी बहुत कुछ पिचक जायगी। किसी साधारण मनुष्यकी देहमेंसे यदि सब पानी निकाल दिया जाय तो वह खासा ममी (पुराने ज़मानेका रक्षित शव) बन जायगा और कदाचित कोई मनुष्य दानियाल लेम्बर्ट सरीका दानव देहधारी मिल जाय (जिसका कि वज़न मरते समय ५३ स्टोन अर्थात् सवा नौ मन था, शरीरका घेर नौ फुट—४ इंच था, पिंडली १ गज़ मोटी थी, और वह सात मन बोझ उठाकर ले जा सकता था) और उसकी देहका पानी सुखा दिया जाय तो वह एक इक हरे बदनके बालकके समान हो जाय ....प्रतिदिन मनुष्य अपने फेंफड़ों और त्वचा द्वारा सेरभर पानी निकाल देता है। यदि देहमें पानी न हो तो वह अपने पट्ठों और नसोंको हिला डुला भी नहीं सकता। पानीमें ही रस पहिले घुलते हैं और तब कहीं हाड़ और मांस बनाने योग्य होते हैं।"

समुद्रोंमें जल अनन्त परिमाणमें भरा हुआ है। प्रत्येक प्राणीके रोम रोममें पानी व्याप रहा है। पर पानीकी व्यापकता यहां ही समाप्त नहीं होती। मट्टीके कण कणमें (सहारा जैसे मरु भूमिके कुछ अत्यन्त उत्तप्त विभागोंको छोड़कर) पानी मौजूद है। रत्नगर्भाके गर्भस्थ समस्त खनिजोंमें पानी पाया जाता है। पृथ्वीके पृष्ठतलके नीचे जलकी अनन्त धाराएँ इधर उधर बह रही हैं; जो कहीं कुओंमें और कहीं सोतोंमें आ निकलती हैं। नदियोंका जन्म भी इन्हीं अदृश्य धाराओंसे होता है। बहुतसी नदियां तो ऐसी हैं, जिन्होंने सूर्यका दर्शन आज तक किया ही नहीं है। पर्वतोंकी कन्दराओंमें ही वह योगियोंकी तरह विचर कर अपना अनहद नाद जगाया करती हैं।

सारांश यह कि पानीकी वास्तविक मात्रा ७० संख मनसे हज़ारों गुनी ज्यादा है, और उसका ठीक ठीक अन्दाज़ा लगाना अत्यन्त कठिन है।

क्या समुद्रके पेंदेमें से पानी रिसता नहीं है?

मामूली तौर पर आप गड्ढा खोदकर पानी भर दीजिये, देखिये पानी कितनी जलदी धरतीमें प्रवेश कर जाता है। तो अब प्रश्न उठता है कि क्या नदी, नालों, और समुद्रकी तलैटीकी धरतीमें पानी प्रवेश नहीं करता। साधारण तौरपर जो पानी कुण्डों; तालाबों, झीलों और नदियोंमेंसे धरती सोख लेती, है उसपर जो कुछ गुज़रती है, उसका सब हाल तहतोड़ कुएं नामक लेखमें विज्ञान भाग ५ संख्या ४ पृष्ठ १४८) दिया हुआ है। परन्तु यहां पर हम समुद्रके जलके पृथ्वीपर समा जाने पर विचार करेंगे। पहले यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पानी किन किन चीज़ोंमें प्रवेश कर सकता है। सुनिये इस विषयमें मिलटन महोदय अपने ग्रन्थ (Stream of Life) जीवन प्रवाहमें क्या लिखते हैं:—

"जल प्रायः सभी चीज़ोंमें प्रवेश कर जाता है। प्रायः सब प्रकारकी मट्टियां (धातुओंपिद) पथरी, चूना, फिटकिरी, मेग्नीसिया और चिकना मट्टीमें इसका अंश मौजूद रहता है। सख़तसे सख़त धरतीमें भी पानी प्रचुर परिमाणमें विद्यमान रहता है-किसी किसीमें लगभग ग्यारहवां अंश जलका रहता है और किसी किसीमें लगभग आधा; सभी तरहकी चट्टानोंमें पानी घुस जाता है। पत्थर (रेतीले) की तहोंमें इतना पानी निकलता है कि कुओंमें से १० या २० लाख गैलन पानी रोज़ मर्रा निर्भय होकर निकाला जा सकता है। खरियाकी तहोंमें और भी अधिक परिमाणमें पानी

पाया जाता है। ग्रेनाइटके प्रत्येक घन गजमें २ गैलन पानी पाया जाता है।

अब बतलाइये ऐसी कौनसी चीज बची जिसमें पानी प्रवेश नही कर पाता? इसीसे यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि सृष्टिके आदिमें जितना पानी पृथ्वी तलपर मौजूद था, उससे बहुय कम अब मौजूद है। समुद्रोंका आयतन बराबर घटता चला जा रहा है। प्रतिवर्ष करोड़ों मन पानी वाष्प बनकर समुद्रकी सतहसे वायुमण्डलमें पहुंचता है। वहां जाकर बादलमें बदल जाता है। जब बादल बरसते हैं तो यही जल समस्त पृथ्वीतल पर गिरता है और उसका सोषण आरम्भ हो जाता हैं। इसका बहुत कुछ अंशतो नदी नालों, झरनों, आदि द्वारा समुद्रमें जा मिलता है परन्तु कुछ अंश स दाकेलिए पृथ्वीके कठोर पृष्ठके अवयवोंके साथ मिल जाता है। इस प्रकार बेचारे समुद्रोंकी सम्पत्तिका हरण प्रतिवर्ष होता रहता है। अनन्तकाल से समुद्रका जल इस भांति बराबर घट रहा है। अनुमानतः समुद्रोंका एक तिहाई जल अबतक ग़ायब हो चुका है और बहुत सम्भव है कि भविष्यमें एक ऐसा समय आय, जब समुद्र खाली हो जाय और उनकी वही दशा होजाय जो ग्रीष्ममें छोटे छोटे पोखरोंकी हुआ करती है।

समुद्रकी तलहटीमें कितना पानी रम जाता है उसमें प्रवेश कर और कहां पहुंचता है और उसका क्या परिमाण होता है? यह प्रश्न बड़े महत्वके हैं और इनके समझ लेनेसे प्रकृति के गूढ़ रहस्योंका पता चलता है।

क्या काँचमें पानी प्रवेश कर सकता है? यदि समुद्र का पेंदा कांचका बना होता तो क्या पानी उसमें जज़्ब न होता? साधारणतया पानी केवल मसामदार (Porous) पदार्थोंमें ही प्रवेश कर पाता है, परन्तु यदि पानी का दबाव ज़्यादा बढ़ा दिया जाय तो पानी उन चीज़ोंमें भी प्रवेश कर जाता है, जो प्रायः मसामदार नहीं मानी जातीं, जैसे काँच आदि। कई वर्ष हुए संयुक्त राज्य अमेरिकाके जहाजी बेड़ेके कुछ अफसर समुद्रकी पैमाइश कर रहे थे। उन्होंने यह देखा कि यदि मोटी दीवालों वाली खोखली कांचकी गैंद पानीमें फांस दी जाती हैं, तो बाहर निकालनेपर उनके भीतर पानी भरा मिलता है। कांच न कहींसे चटकता है न टूटता है, पर पानी कांचकी मोटी तह भेदकर अन्दर पहुंच जाता है। उन्होंने यह भी देखा कि जितनी अधिक नीचे तक यह गैंदें उतारी जाती है, उतना ही अधिक जल गैंदोंमें भर जाता है। इन गैंदोंकी अणुवीक्षण यंत्रोंसे परीक्षाकी गई। पर कहीं किसी भाँतिका छेद दिखाई नहीं दिया। अतएव यही मानना पड़ता है कि पानीके दबावके कारण, जो १५००० पौण्ड प्रतिवर्ग इञ्चसे शायद ही कुछ कम होगा पानी काँचको भेदकर घंटे भरमें गैंदके अन्दर पहुंच गया। इस परीक्षासे यह सिद्ध हुआ कि कांच जैसे पदार्थमें भी पानी, दबाव अधिक होने पर प्रवेश कर जाता है। अब सोचिये कि समुद्रकी तलहटीपर कितना अधिक दबाव रहता है। स्पष्ट है कि यह दबाव गहराईके अनुपातमें होगा। जितना अधिक गहरा समुद्र होगा उतना ही अधिक दबाव होगा। एक मीलकी गहराई पर पानीका दबाव २८ मन प्रति इञ्च होता है। अर्थात् यदि आप एक मीलकी गहराईपर एक पैसा हाथमें थामकर ऊपर की ओर उठाना चाहेंगे तो आपको इतना बल लगाना पड़ेगा जितना २८ मन बोझ उठानेमें लगता है। जहां छः मील गहराई है वहां तो आपको इतना बल लगाना पड़ेगा जितना १७० मन बोझके उठानेमें लगाना पड़ता है। अब सोचिये कि यदि समुद्रका पेंदा कांचका भी बना देते तो क्या पानी उसमें ठहरता? फिर मट्टी और कंकड़की क्या हैसियत है? उनमें होकर लाखों करोड़ों मन पानी रिसकर भीतर की ओर बड़े वेगसे जा रहा है। फिर यह कहां जाकर ठहरता है?

पृथ्वीका ऊपरी पृष्ठ तो ठँडा होकर कठोर हो

गया है, परन्तु ज्यों ज्यों इसके भीतर जाइये तापक्रम बढ़ता जाता है। अनुमानतः यह ठोस ऊपरी पर्त छः मीलसे ज़्यादा मोटा नहीं है। इसके बाद लाल लाल दहकता हुआ भाग आ जाता है। इस तहकी मोटाई भी १० मीलसे अधिक न होगी। इसके नीचे श्वेत उत्तप्त * भाग आता है, जिसकी गहराई ३० मीलसे अधिक शायद ही हो। उसके नीचे उत्तप्त द्रव और गैसें भरी हुई है। पानी रिस रिस कर २० से लेकर ४० मील नीचे तक चला जाता है, जहां कि उसका सामना श्वेत उत्तप्त पदार्थों से होता है। वहां यह वाष्पमें परिणत हो जाता है और बड़े बड़े धड़ाके होते हैं। अन्तमें या तो पानीमें फिर आ मिलती है या यह वाष्प किसी एक स्थानपर इकट्ठी हो, धरतीको हिला देती है और बड़े बड़े उपद्रव खड़े करती है।

यदि उपर्युक्त सिद्धान्त ठीक है तो बड़े बड़े भूचाल उन्हीं प्रदेशोंमें होने चाहिये, जहां अधिक पानी पृथ्वीमें प्रवेश करता है अर्थात् उन प्रदेशोंमें जहां समुद्र बहुत गहरा है (क्योंकि जहां समुद्र बहुत गहरा होता है वहां ही अधिक पानी पृथ्वीमें प्रवेश करता है) जापानके पूरबमें अलूशियन द्वीप समूहके पास, दक्षिणी अमेरिकाके पश्चिममें गुआम (Guam) के पास, सेमोआ (Samoa) और न्यूज़ीलेण्डके बीचमें समुद्र बहुत गहरा है। अतएव क्या आश्चर्य है कि इन्हीं प्रदेशोंमें बड़े बड़े भूचाल आते हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि वर्षाका बहुतसा जल मट्टी, चट्टानें और खनिज पदार्थ सोख लेते हैं। समुद्रके पेंदेमें भी पानी प्रवेश करता है, परन्तु ३० या ४० मीलसे अधिक नहीं जाने पाता। गरम तहोंमें पहुंच कर वहांसे लौट फिर ऊपर आ निकलता है। ज़मीनका अन्दरूनी गरम हिस्सा पानीके सोखे जानेमें इस तरह एक रुकावट पैदा करता है। सृष्टिके आदिमें यह उत्तप्त भाग ऊपरी सतहसे लगा हुआ ही था, इसलिए पृथ्वीका समस्त जल ऊपरी पृष्ठ तलपर ही था। परन्तु ज्यों ज्यों पृथ्वी ठंडी होती गई और यह उत्तप्त भाग संकुचित होता गया और पृष्ठ तलसे दूर होता गया, त्यों त्यों अधिकाधिक पानी पृथ्वीमें बैठने लगा। अबसे करोड़ों वर्ष बाद जब पृथ्वीका भीतरी भाग भी उतना ही ठण्डा हो जायगा जितना ऊपरी पृष्ठतल है तब तो सारे समुद्रोंका जल पृथ्वीमें इस प्रकार घुस जायगा, जैसे स्पंजमें। उसीके कुछ समय पीछे सारा वायुमण्डल भी पृथ्वी रूपी क़ब्रमें दफ़न हो जायगा और पृथ्वी घोर स्मशानसे भी अधिक भयानक हो जायगी। इन वाक्योंको लिखते समय, चिड़ियोंका मधुर गान सुनाई दे रहा है। अरुणोदय हो रहा है। सूर्यकी किरणें कमरेमें आकर नववधूके समानो, धीरे धीरे लज्जा त्याग अपना मनोहर रूप दिखला रही है। पश्चिममें बहुत दूरतक अनेक प्रकारके पेड़ मस्त हाथियोंकी तरह झूम रहे हैं और उनमेंसे बहुतसे पृथ्वीपर सुमन वर्षा कर रहे हैं, मानो अपनी धात्रीकी पूजा प्रातः काल उठकर कर रहे हैं। यह सुहावना दृश्य बहुत दूर तक चला गया है और कोई दस मीलकी दूरीपर पहाड़ियोंकी पंक्तितक अपनी छटा दिखा रहा है। पहाड़ियोंके ऊपर हँस ऐसे श्वेत वर्ण बादल दिखलाई दे रहे हैं। देखते देखते ही इनमें भी पूरबकी लालिमाका प्रकाश दिखलाई देने लगा। मानो मित्रका संकट देख मित्रका दिल दुखी हो रहा हो।

यह दृश्य उस अनन्त भविष्यमें, जब जल और वायु दोनों पृथ्वीमें समा जायँगे, कहां देखनेमें आयँगे। न पृथ्वीपर फल फूल होंगे न पशु न पक्षी, न नदियाँ होंगी न नाले। परन्तु इस दृश्यको देखने

* जब किसी चीज़ को गरम करते हैं तो पहिले उसका रङ्ग हलका लाल दिखाई पड़ता है। तापक्रम बढ़ने पर वह खूब लाल हो जाता है। अत्यन्त उत्तप्त होने पर अन्तमें रङ्ग सफ़ेद हो जाता है? किसी जालीके लेम्प किटसन लम्प की ओर देखिये। उसकी जाली बिलकुल श्वेत उत्तप्त होती है। बुझने पर देखिये कि पहले लाल सुर्ख़, फिर हलकी छि ख और अन्तमें प्रकाश ही न हो जाती है।

वाला भी कोई प्राणीन होगा। केवल सूर्य भगवान इस महा प्रलयके दृश्यको देखा करेंगे। यह दशा चन्द्रलोककी पहिले ही हो चुकी है। आप जब चाहें तब उसे देख सकते हैं। चन्द्रमामें जो बुढ़िया आपको बैठी नज़र आती है, वह वास्तवमें मृत-ज्वालामुखी और जलशून्य समुद्र है। टेनिसनने लिखा है:—

"Where never creeps a cloud or moves a wind
Nor ever falls the least white star of snow,
Nor ever lowest roll of thunder moans,
Nor sound of human sorrow mounts to mar
Their sacred, ever lasting calm"

हिन्दुस्तानी हाथके छापे कपड़े

(अनुवादक–श्री महावीरप्रसाद गुप्त)

(गतांकसे सम्मिलित)

छापनेकी विधि

एक अधउजल कपड़ा लेकर उसे भैंसके दूधमें, जिसमें बारीक पिसे हुए कदो (Kadou-a mynobolan) के सूखे फल मिले होते हैं, डोब देते हैं। जब वह अच्छी तरह भीग जाता है, तो निकाल कर निचोड़ डालते हैं और धूपमें सुखा लेते हैं। दूसरे दिन साफ़ पानीमें हलके तौरसे धो डालते हैं और छायामें फैला देते हैं। इस आन्तरिक क्रियाके उपरान्त वाह्य क्रिया की जाती है जिसमें उसे चिकना करते हैं, जिससे कूंची फेरनेमें खुरदरापन ज़रा भी न मालूम हो। इसकेलिए कपड़ेकी चार या छः तह करके किसी बारीक दानेकी गोल चिकनी लकड़ीके टुकड़ेसे पीटते हैं। कपड़ेको उसी प्रकारके लकड़ीके दूसरे टुकड़ेपर पहिले रख लेते हैं। इन टुकड़ोंकी मोटाई भुजाकी मोटाईके बराबर होती है। फिर कपड़ेको उलट कर पीटते हैं। दो मनुष्य आमने सामने बैठकर तबतक पीटते रहते हैं, जबतक उन्हें देखनेमें और अनुभवसे उसमें उचित प्रकार-की चिकनाई मालूम होने लगती है।

छापने वाला या चित्रकार अपने चित्र या नक़शेका नमूना (design) काग़ज़पर तैयार करता है। फिर चित्रके ख़ाकेपर (मुख्य रेखाओंपर) पतली सूईसे छेद करना आरम्भ करता है। छेद हो जाने पर उस कागजको वह कपड़ेपर रख देता है और कोयलेकी बुकनीसे भरी हुई एक पोटली उसपर फेरता है। इसमेंसे बुकनी निकलकर काग़ज़ पर गिरती जाती है और छेदोंमें होकर कपड़ेतक पहुंच जाती है। इस प्रकार कपड़ेपर चित्रका ख़ाका खिंच जाता है।

काला रंग बनानेकी तरकीब पहिले दी जाती है। लौह चूर्ण और मैल इकट्ठा करके केलेकी पत्तियोंकी आगमें गरम करते हैं। दूसरे प्रकारके ईंधन-से केलेकी पत्तियां शायद इसलिए अधिक पसंद की जाती हैं कि यह ओषजन अलग करने वाली (ऋणद) हैं। इस प्रकारसे जो ओषिद् (oxide) मौजूद होते हैं वे धातुमें बदल जाते हैं; ठंडा होने पर उक्त पदार्थ बर्तनमें रख देते हैं और उनपर मांड़ डालते हैं। सम्भवतः मांड़को पहिलेसे तैय्यार करके रखते हैं, जिससे काम आनेके पहिले ख़मीर उठआवे और कुछ खटाई पैदा हो जाय। इसबर्तन-को कुछ देर धूपमें रखते हैं और फिर पानीको फेंक कर लोह चूर्णके वर्तनमें खट्टी नारियलकी शराब भर देते हैं। इस प्रकार लोहेका और सिरकेका यौगिक लौह सिरकात (iron acetate) बनकर तैय्यार हो जाता है। इसे कई दिन तक धूपमें रख छोड़ते हैं, इस प्रकार कामके योग्य लोहेका घोल प्राप्त हो जाता है। इस बातका ध्यान रहे कि घोलमें अधिक लोहा न हो, क्योंकि लोहा सूतको खा जाता है। जब इस घोलका प्रयोग ऊपरकी विधिसे तय्यार किये हुए कपड़ेपर करते हैं तो कदाओंके चूर्णके साथ मिलकर यह अच्छा चटकीला काला रंग दे देता है।

समालोचना

प्रेम मन्दिर आराकी पुस्तकें।

इस मन्दिरके सुयोग्य पुजारी कुमार देवेन्द्र-प्रसादजी साक्षात् प्रेमकी मूर्ति हैं। आपकी प्रकाशित कितनीही पुस्तकें हैं जो रूपरङ्ग, सजधज, और ठाट बाटमें बड़ी सुन्दर, मनोहर एवं अनूठी हैं उनमेंसे हमारे सामने इस समय निम्न लिखित पुस्तकें समालोचनार्थ उपस्थित हैं:—

१—प्रेम-पथिक—लेखक हरिप्रसाद द्विवेदी मूल्य ।) यह पुस्तक सरल सरस और सुपाठ्य पद्यमें है लेखकने उच्च प्रेम भावोंकी खूब छटा दिखाई है। सभी प्रेमियोंके योग्य है।

२—प्रेम शतक लेखक 'हरि' मूल्य =) यह भी एक छोटीसी प्रेम विषयक पद्यात्मक पुस्तक है। इसमें प्रेम परिपूरित १०० दोहे हैं। कविता अच्छी है। इसके लेखक प्रेमरङ्गमें खूब रंगे हुए हैं। आप लिखते हैं:—

प्रेम हमारो इष्ट है, हम प्रेमीके मीत।
उर निकुञ्जगुंजहि भ्रमर, प्रेम प्रीतिके गीत

३—फिर निराशा क्यों? लेखक बाबू गुलाबराय एम. ए. एल एल. बी मूल्य ।=)

इस पुस्तकके अन्तर्गत विषयोंसे अभ्रान्त सिद्ध है कि जीवन संग्राममें वेही मनुष्य विजयी होते हैं-वेही जीवनके उच्च उद्देश्योंको कार्यरूपमें परिणत कर सकते हैं जो अनेक कठिनाइयोंसे आपत्तियोंका सामना करते हुयें, अपने नियुक्त कार्यके करनेमें कभी उत्साहहीन, खिन्नहृदय व हताश नहीं होते। वे रामायणकी इस चौपाईको अच्छी तरह समझे हुये होते हैं:—

कादर मनकर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

यह पुस्तक सभीके पढ़ने योग्य है—नवयुवक हो या वृद्ध! इसके पढ़नेसे शरीरमें एक अभिनव शक्ति और उत्साहका सञ्चार होने लगता है। पुस्तककी हिन्दी शुद्ध, सरल, सरस और सुपाठ्य है। पुस्तक अपने सुपठित दार्शनिक विद्वान् लेखककी लेखनीके योग्य है।

४—शान्ति-महिमा लेखक मोतीलाल एम. ए. मूल्य ।=) यह पुस्तक जोर्ज जोर्डनकी "दी मैजस्टी आफ़ कामनेस" का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद अच्छा है-भाषा बड़ी सरल और रोचक है। पुस्तकका मुख्य विषय शान्ति उत्पन्न करना है। शान्तिसे ही सुखकी उत्पत्ति है, पुस्तकमें सुखकी मीमांसा बड़े मार्केकी है और वह यह है:—

सुखकी प्राप्ति सब देशों और सब हालतोंमें हो सकती है। सुख ब्रह्म पदार्थोंमें नहीं है। उसका उगद्म-स्थान मनुष्यका हृदयही है। जैसे सूर्यसे प्रकाश आता है वैसेही हृदयसे सुख उत्पन्न होता है—धनादि बाहरी पदार्थोंमें सुख नहीं है वह हमारे हृदयके भावोंपर निर्भर है। जिसके हृदयमें शान्ति है उसीको सुख मिलता है।

सुखकी यह मीमांसा भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोककी रूपक है:—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चा युक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्ति र शान्तस्य कुतः सुखम्।

सौभाग्यरत्न माला—लेखिका पण्डिता श्री चन्दाबाई मूल्य ॥)

पुस्तक स्त्री-शिक्षा विषयक है। महिलाओंके पढ़ने योग्य है। विदुषी लेखिकाने पुस्तकको परमोपयोगी बनानेमें कोई चेष्टा उठा नहीं रक्खी है। सत्य, सत्संग, पतिव्रत, सच्चा सुख इत्यादिक उच्च विषयोंपर सरल और सुपाठ्य हिन्दीमें निबन्ध दिये हैं। पुस्तक, कन्या पाठशालाओंमें पढ़ाने योग्य है

६—बालिका विनय—सम्पादिका एक जैन महिला मूल्य =)

पुस्तकमें कन्याओंके गाने योग्य पद और भजन हैं इनके विषय शिक्षाप्रद है। पुस्तक कन्या पाठशालाओंमें विशेषतः जैन कन्या पाठशालाओंमें काममें लाने योग्य है।

भविष्य—साप्ताहिक पत्र, श्रीयुत सुन्दरलालजी द्वारा सम्पादित । वार्षिक मूल्य ३) मैनेजर, भविष्य प्रेस, ३ सिटी रोड, प्रयाग से प्राप्य ।

इस साप्ताहिक पत्रका पहिला अंक हमारे सामने प्रस्तुत है। इसमें लेख, एकसे एक अच्छे हैं। उनकी न केवल भाषा ही अच्छी और प्रौढ़ है, बरन विषय गम्भीर विचारणीय और पढ़नेयोग्य हैं। यों ते हिन्दीके बहुतसे पत्र निकलते हैं और नये निकलते जा रहे हैं, परन्तु दे चारको छोड़ शायद ही कोई ऐसा पत्र हो जो किसी निर्दिष्ट उद्देश्यसे निकलता है और जिसके आज बन्द हो जानेसे किसी तरहका अभाव दिखाई पड़ेगा। इस अंकको देखकर हमें आशा होती है कि भविष्य की गणना भी इन्हीं गिने चुने पत्रोंमें करनी चाहिये।

हमें पूरी आशा है कि इसकी पूरी क़द्र की जायगी और यह खूब फले फूलेगा।

बिजली—मासिकपत्र, श्री शिवनारायण वर्मा द्वारा सम्पादित। वार्षिक मूल्य २)

मैनेजर जेनरल प्रेस इटावेसे प्राप्य। इस पत्रिकाका निकलना फरवरीसे आरम्भ हुआ है। पहिला अंक अच्छी सज धजसे निकला है। लेख अच्छे और मनन योग्य हैं। कुछ कविताएँ और आख्यायिकाएँ भी हैं।

हिमालय—मासिक पत्रिका। पं० अम्बिकादत्त पन्त द्वारा सम्पादित। वार्षिक मूल्य २) मैनेजर 'हिमालय' रानी खेत (अल्मोड़ा) से प्राप्य। इस पत्रिका का प्रकाशन जनवरीसे आरम्भ हुआ है। अल्मोड़ा प्रान्तके निवासियोंको इसे विशेषतः अपनाना चाहिये। अन्य प्रान्तोंके रहनेवालोंको भी इसमें कुछ मनोरंजनका मसाला मिल सकता है।

जैसवालजैन—श्री श्यामलाल जैसवाल द्वारा सम्पादित । वार्षिक मूल्य १) 'जैसवाल जैन' कार्यालय मान पाड़ा, आगरेसे प्राप्य। यह जैसवाल जैन सभाका मुख पत्र है। लेख अच्छे रहते हैं। जैसवाल जैनियोंको विशेषतः इसके प्रचारकी कोशिश करनी चाहिये।

कायस्थकुल सेवक—श्री चिरञ्जीलाल माथुर, बी० ए० एल० टी० द्वारा सम्पादित। जोधपुरसे प्रकाशित। वार्षिक मूल्य २) कायस्थोंको उर्दू और फारसीसे प्रायः अधिक प्रेम होता है परन्तु समय कुछ और ही चाहता है। उसीका नमूना 'कायस्थ कुल सेवक है। कायस्थोंमें हिन्दी-भाषाका प्रेम उत्पन्न करनेका यह पत्र अच्छा साधन होगा। लेख सब अच्छे और पढ़ने योग्य हैं। कायस्थोंको छोड़ अन्य सज्जन भी इस पत्रके लेखोंसे लाभ उठा सकते हैं॥

हम मु० चिरञ्जीलालजीको इस महत्व पूर्ण कार्यके लिए बधाई देते हैं। ईश्वर उन्हें चिरायु करे और वह इसी प्रकार हिन्दीकी सेवा करते रहें।

भारतीय—श्री कन्हैयालाल गुप्त द्वारा सम्पादित मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य २)। मैनेजर 'भारतीय' न्यू सिविल लाइन्स, लखनऊसे प्राप्य।

अगस्त सं० १६१८ से इसका प्रकाशन आरम्भ हुआ है। लेख अच्छे हैं। नवम्बरके अङ्कमें 'बाल-साहित्य' शीर्षक लेख बहुत अच्छा है। मनोरंजक पद्य भी रहते हैं।

सौ अजान और एक सुजान

यह पुस्तक डबल क्रौन १६ पेजी पृष्ठ संख्या—४+१४+१०१+१४ मूल्य ॥) है मिलनेका पताः—महादेव भट्ट-अहियापूर-इलाहाबाद।

हिन्दीमें मौलिक उपन्यासोंकी प्रायः बहुत ही कमी है भट्टजीकी लेखनीसे निकले हुए इस उपन्यासको हिन्दी प्रेमी भाषाकी एक प्रकारकी शैली देखनेको अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक इस योग्य समझी गई है कि "हिन्दी–साहित्य सम्मेलन" ने अपनी प्रथमा परीक्षामें इसे पाठ्य–पुस्तक नियत किया है; इसीसे परीक्षार्थियोंके सुभीतेके लिये स्वर्गीय भट्टजी की संक्षिप्त जीवनीके साथ साथ तरह तरहके विषयोंके लेखोंमें तरह तरहकी भाषाओंकानमूना भी दिखाया गया है और

पुस्तकके अन्तमें उन्हींके सुभीतेके लिये कठिन शब्दोंकी शब्दार्थ सूची भी दी गई है—जगह जगह इसमें प्राकृतिक छटाओं तथा मनुष्यके स्वाभाविक चरित्रोंका वर्णन बड़ी खूबसूरतीसे दिया गया है। हिन्दी प्रेमी अवश्य उसे पढ़े।

साहित्य-सुमन

डबलक्राउन १६ पेजी पृष्ठ संख्या १२०+४ मूल्य ॥) मिलनेका पता--महादेव भट्ट अहिया पूर इलाहाबाद।

हिन्दी संसारमें स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्टकी सुललित लेखनीसे प्रायः सब ही परिचित हैं। उक्त भट्टजीने ३२ साल तक बराबर हिन्दीकी सेवार्थ हिन्दी 'प्रदीप' का सम्पादन किया। इस पुस्तकमें साहित्य और नीति विषयक सब २५ लेखोंका संग्रह है जो एकसे एक बढ़ कर उपदेशात्मक हैं-भाषा इन लेखोंकी अत्यन्त रसीली और लालित्य पूर्ण है। प्रत्येक हिन्दी हितैषी से हम इसे पढ़नेके लिए आग्रह करते हैं—

वैज्ञानिकीय

पश्चिममें उदय होनेवाला चन्दा

कदाचित् हमारे सूर्य और चन्द्रमा पूरबमें उदय होनेकी बजाय पश्चिम में उदय और पूरबमें अस्त होने लगें, तो हम लोगोंको कितना आश्चर्य हो। हमारे बहुतसे भाई तो मारे डरके अधमरे हो जायं और प्रायः यह समझ बैठें कि अब प्रलय काल समीप आ पहुंचा। परन्तु मंगल ग्रहके निवासी, यदि वहांके कोई निवासी हैं तो, प्रतिदिन इस दृश्यको देखते होंगे। जिस प्रकार हमारे गृह, पृथ्वी, के चारों ओर चन्द्रमा चक्कर लगाता है, उसी प्रकार मङ्गल ग्रहकी परिक्रमा देनेवाले दो चन्द्रमा हैं। यह दोनों बहुत ही छोटे हैं, इन दोनों मेंसे बड़ेका व्यास केवल ५० मीलका है। बड़ेका नाम "फोबोस" और छोटेका "डियिमोस" है। डियिमोस तो पूरबमें उदय होता है और पश्चिममें अस्त होता है। परन्तु फोबोसकी गति ही निराली है, यह पश्चिममें उदय होता है और पूरबमें जा छिपता है।

पाठको! क्या यह प्रकृतिके भ्रमण-नियमोंका अपवाद है? यदि नहीं, तो इस विलक्षणताका क्या कारण? इसकी यह धुन कैसी? विचार करने और इन उपग्रहों (चन्द्रमाओं) का वेग नापनेसे इसका कारण झट मालूम हो जाता है। यह परिक्रमा तो उसी दिशामें देता है, जिसमें अन्य ग्रह सूर्यकी और उपग्रह, ग्रहोंकी देते हैं, परन्तु इसका वेग डियिमोस तथा मङ्गल ग्रह दोनोंसे अधिक है। इसीसे यह पश्चिममें उदय होता और पूरबमें अस्त होता दीखता है। यह बात एक उदाहरणसे समझमें आ जायगी।

मानलो कि आप एक चक्कर लगानेवाले रहट (merry-go round) में चक्करोंका आनन्द उठा रहे हैं। एक आदमी जिसके पास पैसे नहीं हैं या जिसे चक्कर आ जाते हैं, उसमें न बैठ कर उस रहटके चारों तरफ उसी दिशामें चक्कर लगा रहा है, जिसमें कि रहट घूम रहा है। एक तीसरा तमाशबीन घोड़ेपर सवार होकर उसी प्रकार बड़े वेगसे (रहटसे भी अधिक वेगसे) चारों तरफ घूम रहा है। विचारिये कि आप रहटमें बैठे हुए उन दोनों आदमियोंको किस क्रमसे देखेंगे?

पहिले आपको पैदल चलनेवाला आदमी सामने दीखेगा, परन्तु आप उससे अधिक वेगसे घूम रहे होंगे, इसलिए उसे पीछे छोड़ जायंगे। फिर दूसरे चक्करमें वह आदमी सामने दीखेगा और पीछे रह जायगा। इसी बातको यों भी कह सकते हैं कि पूरबमें पहिले नज़र आयगा और पश्चिममें रह जायगा। अब सोचिये कि आपको घुड़सवार सामने नज़र आया। आपसे वह ज़्यादा तेज़ीसे घूम रहा है, इसलिए, आपके सामने ग़ायब हो जायगा और फिर पीछे आ निकलेगा। इसी प्रकार वह हर बार पीछेसे आया करेगा और आगे निकल जाया करेगा।

ऊपरके उदाहरणसे भली भांति समझमें आ-

गया होगा कि उसी दिशामें भ्रमण करते हुए भी एक चन्द्रमा पूरबमें उदय होता और पच्छिममें अस्त होता दीखेगा और दूसरा पूरबमें छिपता और पश्चिममें निकलता हुआ नज़र आयगा।

(२) संसारमें सबसे अधिक हलकी लकड़ी

संसारमें सबसे हलकी बालसा (balsa) या कार्क वुड (cork wood) होती है। यह लकड़ी पोर्ट लिमन (Port Limon, Costa Rica) में बहुत पैदा होती है और वहांके आदमी इसकी किश्तियां आदि बनाया करते हैं। आशा की जाती है कि भविष्यमें यह वायुयानोंके निर्माणमें काम आया करेगी।

(३) यशद गंधिदका धातुओंका सा एक गुण

रसायन शास्त्र जानने वालोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि यशद गंधिदके, जो जस्ते और गंधकका यौगिक होता है, तार खींचे जा सकते हैं। यह तार धातुओंके तारोंके समान बिजलीकी धाराका सुचालक या सुबाहक होता है। यदि तार साधारण तापक्रमपर खींचा जाय, तो विशिष्ट बाधामें तापक्रमके घटने बढ़नेसे न्यूनाधिकता होती रहती है। परन्तु यदि तार ऊँचे तापक्रमपर खींचा जाय तो विशिष्टबाधा प्रायः एक समान बनी रहती है।

(४) चमड़ा कड़ा करनेकी एक नई तरकीब

नौरवे देशके एरेनडेल (Arendal) नगरके एक इञ्जीनियरने चमड़ेके कड़े करनेकी एक नई तरकीब निकाली है। उनका कहना है कि चमड़ा इतना मज़बूत किया जा सकता है जितनी लकड़ी होती है, तिसपर भी उसके काममें लानेमें किसी तरहकी तकलीफ़ न हुआ करेगी, क्योंकि लोच उसमें उतना ही रहेगा। दूसरे चमड़ेको उक्त विधिसे कमानेपर, चमड़ा सरदी गर्मीसे जल्दी ख़राब न होगा। उक्त इञ्जीनियर महोदय अपने आविष्कारको पेटेन्ट करा रहे हैं और शीघ्र ही नार्वेसे उनका तय्यार किया हुआ चमड़ा बाहर भेजा जाने लगेगा।

(५) वृक्षोंकी चेतन शक्ति!

मामूली तरह पर जो चीज़ अपने आप चल फिर सकती है, जिसमें देखने, सुनने, मालूम करने तथा उत्तर देनेकी शक्ति है, हम उसे चैतन्य वस्तु कहते हैं। इस परिभाषाके अनुसार वृक्ष चैतन्य न होकर जड़ ही कहे जा सकते हैं; क्योंकि पशु, पक्षियों तथा कीड़ों मकोड़ोंकी भांति उनमें चेतन-शक्ति प्रदर्शित करने वाली एक भी इन्द्रिय मौजूद नहीं है। अरस्तू (Aristotle) जिसे पाश्चात्य विज्ञानका आदि पुरुष माना जाता है, एक जगह पर लिखता है कि 'परमात्मा पत्थरमें सोया हुआ है, वृक्षोंमें स्वप्नावस्थामें हैं, तथा जानदारोंमें जाग्रत अवस्थामें मौजूद है'। परन्तु जलमें, थलमें, खड्ग खम्भमें ईश्वरको व्यापक मानने वाले भारतवासी इस महापुरुषके विचारसे सहमत न हो सके; और अन्तमें यह सौभाग्य इसी देशको प्राप्त हुआ कि सर जगदीशचन्द्र बोसने सारे संसारको यह दिखलाकर चकित कर दिया कि वृक्षोंमें भी चेतन शक्ति मौजूद है; अर्थात् फल, फूल, पत्ती तथा किसी भी वानस्पतिक (tissue) तन्तु पर आघात करनेसे (response) प्रतिस्पन्दन होता है।

वृक्ष बड़े नाज़ुक जीव हैं, ये साधारणसे साधारण आघातका प्रति-स्पन्दन करते हैं; परन्तु यह क्रिया इतनी शीघ्रता तथा शान्तिके साथ हो जाती है कि हमारी इन्द्रियोंको इसका पता चलना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है। अस्तु वृक्षोंमें चेतन-शक्ति प्रमाणित करनेके लिये बड़ी भारी आवश्यकता ऐसे यंत्रकी है जो इन क्षण मात्रमें हो जाने वाली अनेक क्रियाओंको न केवल निदिर्शित ही कर सके वरन उन्हें नाप भी सके। सर जगदीशचन्द्र बोसने क्रेस्कोग्राफ़ नामी यंत्र ऐसा सरल तथा उत्कृष्ट बनाया है कि इसके द्वारा एक सैकंडके हजारवें भागमें जितनी बाढ़ पौदोंमें होती है बड़ी सुगमतासे अंकित कर नापी जा सकती है। अनुनादी-अंकी द्वारा वृक्षोंकी पत्तियोंमें जितनी

ताल बद्ध (Rhythmical) क्रियायें (तथा स्फुरण) होती है वे सभी आंखसे देखी जा सकती हैं। यह क्रियायें ठीक उसी प्रकार होती हैं जैसे किसी जीवके हृदयकी धड़कनमें आकंचन तथा सकुंचन होता है। विषैले पदार्थों द्वारा जिस प्रकार प्रत्येक प्राणीका हृदय स्तब्ध होकर उसकी मृत्यु हो जाती है, ठीक उसी प्रकार वृक्षोंका भी हाल है। एक स्वक्रिय-रचना (Automatic arrangement) द्वारा वृक्षकी प्रति क्षण विद्युत धारासे उत्तेजना पहुंचाई जाती है इसके प्रति उत्तर देनेसे पौदेमें जो थकान उत्पन्न हो जाती है तथा उसमें जो स्वक्रिय-विष-प्रसार (automatic Poisoning) पैदा हो जाता है, इसका भी माप मृत्यु-सूचक यंत्र द्वारा किया जा सकता है। ये क्रियायें बड़ी सूक्ष्म होती हैं अतः इन्हें निदर्शित करनेके लिये इस यंत्र-में एक छोटासा आईना लगा होता जो इतना सूक्ष्मग्राही (Sensitive) होता है कि पौधेमें जरासा भी विद्युत-प्रसार होनेसे घूमने लगता है। अब यदि इस शीशेपर इसकी ठहरी हुई अवस्था-में एक झिरी द्वारा प्रकाश पड़कर किसी क्रम चिन्हांकित (Graduated) पटरीपर इसका प्रतिबिंब पड़ता हो, तो आईनेके घूमनेसे यह प्रकाश-बिंब एक सीधी प्रकाश रेखासी जान पड़ेगी। बस इसी प्रकार वृक्षोंकी सूक्ष्म क्रियाओं-को (Magnify) बड़े आकारका करके आंखके द्वारा सारा दृश्य देखनेको मिल जाता है।

इन्हीं प्रयोगों द्वारा डाक्टर बोसने यह प्रमाणित कर दिया है कि जीवधारियोंकी भांति वनस्पतियोंमें भी एक प्रकारकी (Nervous impulse) स्नायुक आवेग मौजूद है। पौदोमें (Nerves) स्नायु न होने पर भी इनकी कोष-भित्तियों (Cell-walls) केछोटे २ छिद्रों द्वारा, एक कोषका जीवाणु-तत्व (Protoplasm) दूसरे कोषके जीवाणुतत्वसे संसर्ग पैदा कर लेता है। इस तरह पर सारे पौदेमें आघात या उत्तेजना फैल जाती है। यही कारण कि 'छुई मुई' छूते ही मुरझा जाती है। बोस महाशयने अनेक प्रयोगों द्वारा यह भी दिखला दिया है कि पौदे भी (अपने तौर पर) दिन रात-का ज्ञान रखते हैं। बहुतसे पौदे रातमें सोनेकी जगह सबेरेके वक्त सो जाते हैं, और दुपहरको जब सूर्य का प्रकाश खूब फैल जाता है, जाग जाते हैं। जैसे डेजी कमल तथा सूर्यमुखीके फूल रात-को मुरझा जाते हैं और सबेरा होते ही फिर खिल उठते हैं। इसी प्रकार (Cactus) के फूल दिन भर सोते रहते हैं, पर रातको जग जाते हैं। डाक्टर बोसने यह भी प्रमाणित किया है कि जिस प्रकार प्रत्येक जीवधारीकी मृत्युके पश्चात उसके शरीर-के तत्वोंका रसायनिक विश्लेषण होने लगता है इसी प्रकार इन पौदोंमें भी यह क्रम जारी हो जाता है। अस्तु पौदे भी अन्य जीवधारियोंकी भांति चैतन्य रूपसे जीवन-व्यवस्थाके मुख्य अंग हैं और इन्हें जीवन प्रदान करने तथा उसके प्रसार में उसी जगन्नियन्ताकी चेतन शक्तिका आभास मौजूद है।

अभी हाल ही में सर जगदीशचन्द्र बोसने पौदोंकी चेतन शक्तिके विषयमें एक नया आविष्कार यह किया है कि प्रायः सभी पौदोंमें बेतार की तार खबर ले जाने वाली वृहत ईथर कंपों द्वारा स्पन्दन होता है तथा इन कम्पोंका उन्हें बोध भी होता है। ईथरके रश्मि चित्रकी Ultra-violet rays के लिये पौदे बहुत sensitive होते हैं। अब अध्यापक सुने इस रश्मि चित्रकी Infra-red rays द्वारा भी पौदोंमें प्रतिस्पन्दन होना प्रयोगों द्वारा प्रमाणित कर दिखलाया है। हमारी इन्द्रियां ऐसी शीघ्र ग्राहिन नहीं हैं कि हमें इन किरणों का अनुभव प्राप्त हो सके। अतः इस आविष्कार द्वारा यह सिद्ध हो गया कि पौदों को इन्द्रियां मनुष्योंकी ज्ञानेन्द्रियोंसे कहीं अधिक उन्नत अवस्थामें हैं। Balanced क्रेस्को ग्राफ़ नामी यंत्र द्वारा, जिसे विज्ञानाचार्यजी ने हाल हीमें निर्माण किया है, बहुतसे पौदोंके प्रतिस्पन्दनका अभ्यन्तरिक इतिहास उन्हींके लेखों द्वारा अंकित हो जाता है।

६-एक नया चमत्कार।

रसायनाचार्य सर प्रफुल्ल चन्द्र रायका सुनाम आज सभी वैज्ञानिक संसारमें देदीप्यामान हो रहा है। भारतवर्षकी दीन हीन अवस्थामें आपने ही अपने स्वार्थत्याग तथा निरन्तर परिश्रम द्वारा रसायन शास्त्र विशारदोंकी एक नई विद्यापीठ स्थापित कर हमारे देशमें रसायन संबन्धी खोजकी नींव डाली है। आपके ही परिश्रमका फल स्वरूप आज दिन बंगाल कैमिकल एण्ड फ़रमाक्यूटिकल वर्क्स बड़ी छोटी पूंजीसे स्थापित हो इस उन्नत अवस्थाको प्राप्त है। ऐन्द्रिक तथा निरैन्द्रिक नत्रितों पर आपके स्वयम् तथा आपके शिष्योंके साथ करीब १०० नवीन लेख Transactions of Chemical Society अन्य यूरोपीय वैज्ञानिक पत्रों तथा Journal of the Asiatic Society of Bengal में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके प्रयोगों के परिणाम सारे सभ्यजगतको मान्य है। हाल ही में आपके दो सुनाम धन्य शिष्योंने भौतिक रसायन शास्त्रमें भी अपनी योग्यता, कल्पना-शक्ति तथा प्राच्यदेश समुचित विचार-प्रणालीका परिचय दिया है। डाक्टर नीलरत्नधरको Farday society ने आधुनिक अणुविश्लेषण वाद (Ionisation Theory) पर विचार करनेके लिये नई संगठित समितिका सदस्य बनाकर इङ्गलेण्डमें बुला सम्मानित किया है। इस अग्रगण्य समिति द्वारा सम्मानित होना इसके पूर्व सर जगदीशचन्द्र बसुको ही प्राप्त हुआ है। डाक्टर धरका नंबर दूसरा है।

मिस्टर ज्ञानेन्द्रचन्द्र घोषने तो भौतिक-रसायन शास्त्रमें एक नया ही चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। (Arrhenius आरीनियस महाशय जो इस समय (Ionisation Theory) के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं, इस नये हिन्दू रसायनज्ञकी कोतूहलोत्पादक कल्पना शक्ति तथा खोज करनेकी शैली पर विमुग्ध हैं। घोष महाशयने अभी हालमें एक सप्रमाण लेख द्वारा यह निर्धारित किया है कि अणुओंके पारस्परिक वैद्युत आकर्षणका विचार न करनेसे इन वैज्ञानिकोंको अणुविश्लेषण वाद द्वारा घटित काल्पनिक घटनाओं और वास्तविक परिणाममें भेद मालूम पड़ा है। विज्ञान भाग ७ अंक १ में ६० पृष्ठ पर बतलाया गया है कि किसी भी संयुक्त पदार्थमें विद्युतधारा बहानेसे उसका विश्लेषण हो जाता है। अब यदि अम्ल तथा क्षारोंका तेज़ घोल लिया जाय तो उसका भी आणुविक विश्लेषण होगा सही परन्तु इसपर किये गये प्रयोगोंसे जो परिणाम निकलेगा, उसमें तथा इन्हीं पदार्थोंके तरल तर घोलपर किये हुये प्रयोगोंके परिणाममें बड़ा अन्तर पड़ जायगा। (Vant Hoff) और (Arrhenius) दोनों ही इस भेदका वास्तविक कारण नहीं बतला सके, और उन्होंने कई अन्य कल्पनाओं द्वारा इसे समझानेकी चेष्टा की है। परन्तु घोष बाबूने अपने सप्रमाण लेखों तथा गणित द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि यह अणुविश्लेषण सिद्धान्त हर हालतमें घटित है। स्थानाभावसे हम अगले अंकमें इसे विशेष रूपसे वर्णन करनेके लिये मजबूर हैं।

महुएसे मोटरका तेल (Spirit)

आजकल हैदराबाद (दक्खिन) में महुएके फूलोंसे मोटरकार चलानेका तेल तैयार करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। वहांके एक सरकारी अधिकारी श्री० वेकफील्ड (Mr. Wakefield) कहते हैं कि पेट्रोल (Petrol) के आधे ही दामोंमें हम लोगोंने महुएसे निकाले हुये तेलसे कई प्रकारके मोटरकार चलाये हैं। हैदराबाद तथा सिकन्दराबादमें पेट्रोलका खर्च १००, ००० गैलन है परन्तु हम लोगोंको उतने ही दिनोंके लिए केवल १५०० टन महुएकी ज़रूरत है। यदि (Motor Spirit) मोटर स्परिट सस्ता हो जायगा, तो रेलवे, मोटर, पानीका पम्प इत्यादिके चलानेमें खर्चकी कमी हो जायगी।

बकरीका दूध

इस देशके बहुतसे मनुष्योंका यह अन्ध विश्वास है कि बकरीका दूध बहुत ही अच्छा होता है और उसमें भिन्न प्रकारका स्वाद भी

होता है। परन्तु यह ठीक नहीं। सच है कि यह बहुत स्वादिष्ट होता है, परन्तु इसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो किसी प्रकार हानिकारक हो। नीचे लिखे हुये खाद्यांश-सूची (Food Proportions) से भली भांति सूचित होगा कि बकरीके दूधमें गायके दूधकी अपेक्षा अधिक चीनी होती है।

	माताका दूध	गायका दूध	बकरीका दूध
घी	३·५६	२·:४	७·०२
चीनी	६·५०	४·७१	५·२८
नमक	०·४७	०·६१	१.०१
पानी	८७·७३	८७·०२	८२·०२
केसीन	१·५०	४·४७	४·६७

परन्तु जब यह दूध बच्चोंको पिलाया जावे तब इसे इसकी असली दशामें न देना चाहिये, क्योंकि इसमें ज़्यादा अंश चर्बीका होता है। अतः पीनेके योग्य बना कर देना उचित है।

रद्दी कागज़का दाम

आजकल काग़ज़ बहुत महंगा होता जाता है। फ्रैंकलेंड्रम (Mr. Frank Lendrum) जो रद्दी काग़ज़के सौदागर हैं कहते हैं कि यह आवश्यक है कि हर तरह कागज़ बचाया जावे। पता लगा है कि केवल संयुक्त राज्यके सरकारी विभागोंमें एक सप्ताहमें २००० टन काग़ज़ ख़र्च किया जाता है और एक छोटा सा पुर्ज़ा तक बचाया जाता है। इसका उपयोग केवल समाचारपत्रोंके लिये ही नहीं होता, किन्तु युद्धकी सामग्री तैयार करनेमें भी होता है। रद्दी काग़ज़के १ टनसे १५ हन्ड्रेडवेट नया काग़ज़ तैयार होता है।

—बलदेव उपाध्याय

भारत गीत।

नं० ५०

(१)

अपने सत्व को निर्धार
लक्ष्य रख कर तत्व पर कर तथ्य तथ्य विचार

(२)

क्या है तेरे सत्व का अस्तित्त्व या आधार
तत्व क्या अस्तित्त्व का है, वस्तु क्या है सार
अपने सत्व को निर्धार

(३)

फेर दृग हर तर्फ़, फिर फिर देख दृष्टि पसार
क्या न तेरेहि सत्व का सब तर्फ़ है इज़हार?
अपने सत्व को निर्धार

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, ११—१—१६

—श्रीधर पाठक।

सूचना

हमें यह लिखते हुये कुछ संतोष है कि मीन (मार्च) का अँक प्रकाशित होनेके पश्चात् हम दो ही सप्ताहके बाद मेष (अप्रेल) का अङ्क प्रकाशित कर सके हैं। मई तथा जूनके अङ्क भी इसी प्रकार प्रकाशित होकर, आशा है कि शीघ्र ही विज्ञानके जीवनमें पहिली बार होने वाली देर को दूर कर सकेंगे।

मैनेजर,

वैदिक विज्ञान ग्रन्थमाला

लेखकः—आर्य्यसमाजके प्रसिद्ध लेखक तथा वक्ता आर्यन फिलासोफर राज्य-रत्न आत्मारामजी एज्युकेशनल इन्सपेक्टर बड़ौदा तथा प्रधान आर्य्यसमाज कोल्हापुर।

प्रकाशकः—जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा।

प्रथम, सचित्र, वैज्ञानिकीय-अनुसन्धान-युक्त, अपने विषयकी प्रथम तथा अनूठी पुस्तक।

सृष्टि विज्ञान

इसमें विकाशवादकी आलोचना करते हुए सृष्टि-उत्पत्ति सम्बन्धी वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। पुस्तक मनन करने योग्य है। सृष्टि-उत्पत्ति जैसे महत्वके विषयपर अच्छा प्रकाश डाला है। मूल्य २)

द्वितीय सचित्र वैज्ञानिक पुस्तक शरीरविज्ञान

में बड़ी योग्यतासे दिखाया गया है कि शरीरविज्ञान तथा शिल्पविद्याका आदि मूल वेदोंमें है। इसमें आर्य्योंकी चिकित्सा तथा शिल्पकर्म सम्बन्धी उन्नतिके विषयमें बहुत सी गवेषणात्मक बातें लिखी हैं मूल्य ।≥)

ग्रन्थमालाकी दोनों पुस्तकें लेनेवालोंको उक्त लेखक कृत 'ब्रह्मयज्ञ' पुस्तक अर्ध-मूल ।≥) में दी जावेगी।

हिन्दी गुजराती शिक्षक ।≥)
बच्चोंका जीवन सुधार ।।−)
हमारेदेशकी प्राचीन उन्नति ।।)
शरीर रक्षा ।)
संस्कार चन्द्रिका २।।)

मिलनेका पताः—

जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५०
भाग ६
Vol. IX.

वृष १९७५ । मई १९१९

Reg. No. A-708
संख्या २
No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ९ } वृष, संवत् १९७५। मई, सन् १९१९। { संख्या २

बरफ़के चमत्कार

[ले० मौलाना करामत हुसेन कुरेशी एम एस-सी०]

बरफ़का जादू

आज कल गरमियोंके दिन हैं। लाखों मन बरफ़ सभ्य (!) संसारमें नित्य प्रति बनाई जाती और ख़र्च होती है। इसका सबसे बड़ा चमत्कार तो यही है कि इसने करोड़ों आदमियोंपर मोहिनी डाल रखी है। बाज़ारमें शामको जाकर देखिये शर्बत, सोड़ा लेमनेड, लैमजूस, स्ट्राबेरी, रसभरी, की कैसी बहार दिखाई देती है। इन सबका मुकुटमणि बरफ़ निर्गुण ब्रह्मकी नाईं सर्वव्यापी हो रहा है। ग़रीब मज़दूर जो दिन भर परिश्रम कर पांच आनेके पैसे लेकर आता है, वह भी एक पैसेकी बरफ़ पीकर अपनी तृष्णा बुझाता है। पर क्या वस्तुतः बरफ़से तृष्णा बुझती है। सच पूछिये तो बरफ़के इस्तैमालसे प्यास दुगनी लगती है, हाज़मा ख़राब होता है, और स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंकी खूब ही हत्या होती है। बरफ़ के कारख़ानेसे चलकर रेलमें लदना, स्टेशनोंपर पड़ा रहना, बुरादेका सड़कोंपर सुखाया जाना—यह सब कार्य स्वच्छताके नमूने हैं। कहां हैं अर्थशास्त्रके प्रचारक, वह आयँ और देखें कि कितना सद् व्यय होता है उस देशमें जहां करोड़ो आदमियोंको खाने तक को नहीं मिलता !

जब कभी ओले गिरते हैं, बालक, बुड्ढे, जवान सभी दौड़ कर उठा उठा खाने लगते हैं। फिर उन्हें होश नहीं रहता कि कहां गिरते हैं, कहाँसे उठाते हैं और संसारमें कोई ऐसे भी व्यक्ति हैं 'या नहीं, जिनकी इस समय हानि हो रही है।' यह यदि बरफ़ या ओलोंके मोहनास्त्रका प्रभाव नहीं तो क्या है।

बरफ़का बनना

इसी बर्फ़के विषयमें कुछ विचार करना उचित जान पड़ता है, यह सभी जानते हैं कि बरफ़ पानीका रूपान्तर है। पानीको जब बहुत ठण्ड पहुंचती है तो वह बरफ़में परिणत हो जाता है। शि-

Physics भौतिक शास्त्र]

मला आदि पहाड़ी प्रदेशोंपर जहां बहुत सरदी पड़ती है, बरफ़की प्रायः बरषा हुआ करती है। मैदानोंमें भो जिस वर्ष सर्दी बहुत पड़ती है रातको पानीकी बरफ़ बन जाती है। तालाबों और झीलों के ऊपर बरफ़की तह जम जाती है। पर प्रायः यह देखनेमें आता है कि केवल ऊपरकी तह ही बरफ़में परिणत होती है। इसका कारण यह है कि ज्यों ज्यों पानी ठण्डा होता जाता है, त्यों त्यों उसका गुरुत्व बढ़ता जाता है। अतएव जब बहुत ठण्ड पड़ती है, तो ऊपरकी तह ठण्डी होकर अर्थात् भारी होकर नीचेके अधिक गरम यानी हलके पानीमें डूब जाती हैं, और नीचेका हलका पानी ऊपर आ जाता है। यह भी ठँडा होकर नीचे बैठ जाता है। इस तरह यह सिलसिला जारी रहता है, यहां तक कि कुल झीलका पानी ४° श तक ठंडा हो जाता है। अब यदि ऊपरकी तह ४° श से भी अधिक ठंडी हुई तो फिर वह ऊपरकी ऊपर ही बनी रहती है, क्योंकि ४°शसे अधिक ठंडे पानीका गुरुत्व कम होता है। या यों समझिये कि पानीका गुरुत्व, जैसे जैसे उसका तापक्रम घटता जाता है ४° शतक बराबर बढ़ता जाता है, पर ४°शसे नीचे यह क्रम पलट जाता है और गुरुत्व फिर घटने लगता है। इसी कारण यद्यपि कुल झील, ताल आदिका तापक्रम जलकी तापवाहन धाराओंके कारण ४°शतक उतर जायगा, परन्तु इससे भी ज़्यादा ठंड हुई तो ऊपरकी तह ही ठंडी होकर बरफमें परिणत हो जाती हैं। इसीसे जाड़ोंमें या सरदी पड़नेपर झील आदिके ऊपर बरफ़की तह जम जाती है, परन्तु इसके नीचे ४°श तापक्रमका पानी बना रहता है। इस बरफ़के बननेके बाद भी नीचेका पानी धीरे धीरे ठंडा होता रहता है, परन्तु उसके ठंडे होने और जमनेमें उपरोक्त क्रियासे हज़ार गुना समय लगेगा, क्योंकि बरफ़ और पानी दोनों तापके कुवाहक हैं। जहां बरफ़ और पानी (४° श तापक्रम वाला) मिलेंगे, वहाँ बरफ गलेगा और पानी ठंडा होगा, पर बरफ़के गलनेसे जो पानी बनेगा वह बरफके साथ सटा हुआ होगा और धीरे धीरे फिर बरफमें परिणत हो जायगा। यह सिलसिला जारी तो रहेगा, परन्तु इसकी चाल बहुत धीमी होगी।

प्रकृति जलीय जीवोंकी रक्षा कैसे करती है ?

प्रकृति, जीवोंकी रक्षा करनेके कैसे अद्भुत उपाय निकाला करती है। कदाचित साधारण मीठे पानी का गुरुत्व सबसे ज़्यादा ४°श पर न होता और ४°शके नीचे इसी भाँति बढ़ता चला जाता तो झीलें और नदियाँ जाड़ोंमें ऊपरसे नीचे तक एक दम ठोस हो जातीं और उनमें विचरने वाले कुछुए, मेंढ़क, मछली आदि जीव मर जाते। परन्तु पानीके उपरोक्त गुणके कारण बिचारे जलीय जीव बरफकी चादरसे ढके हुए पानीमें रहकर अपनी जान बचा लेते हैं। इस प्रकार बरफके अन्दर बन्द हो जाने पर इन जीवों को श्वासोछ्वास क्रियाके लिए ओषजन कहाँसे मिलती है ? प्रकृतिने इसका भी प्रबन्ध कर दिया है। वायु पानीमें घुलती रहती है। पानीका एक गिलास भर कर धूपमें रख दीजिये, थोड़ी देरमें आप देखेंगे कि गिलासकी दीवारोंपर छोटे छोटे बुद बुदे जम गये हैं। यह बुद बुदे उस वायुके होते हैं जो पानीमें घुली रहती है। इसी घुली हुई वायुका पानकर बरफ़में कैद हुए जलीय जीव जीते रहते हैं। कुछ जीव कछवे मेंढ़क आदि तो समाधि लगा जाते हैं। इस समाधिक्रियाको पाश्चात्य पंडित (Hybernation) हिंबरनेशन कहते हैं। समाधिमें जीवन कर्म बहुत सूक्ष्म हो जाते हैं। यही कारण है कि बरसात ख़तम होने पर या नदियोंके सूख जाने पर कुछुए, मेंढ़क आदि धरतीमें खोदकर पचास पचास हाथ नीचे तक पहुंच जाते हैं और वहां निश्तब्ध होकर पड़े रहते हैं। जब बरसात फिर आती है तो यह भी निकल आते हैं।

बरफ़ जमाना

बरफ ०° श पर गलती है, इसीसे इस तापक्रमको बरफका द्रवण बिन्दु कहते हैं। इसे जमने-

का बिंदु भी कहते हैं, क्योंकि जब कभी बरफ़ बनती है तो उसका तापक्रम ०° श होता है। पर यह साफ़ साफ़ समझ लेना चाहिये कि पानीको ०° श तक ठंडा करनेसे बरफ नहीं बनती। बरफ बनानेके लिए यह ज़रूरी है कि पानीका तापक्रम -५° श से -१०° श तक हो जाय। तब कहीं बरफका बनना आरम्भ होता है। परन्तु जिस समय बरफ बननी शुरू होगी तापक्रम ०° श हो जायगा। इसका कारण यह है कि जब पानीसे बरफ बनती है तो गरमी पैदा होती है। यह गरमी तापक्रमको बढ़ा देगी, जो -५° श या -१०° श से ०° श हो जाता है। १ ग्राम पानी जब बरफमें परिणत होगा तो ८० क्लारी (तापकी इकाई) गरमी पैदा होगी। अब मान लीजिये कि आपने एक बर्तनमें १०० ग्राम पानी लेकर उसका तापक्रम -१०° श कर दिया। अब यदि १२ ग्राम पानीकी बरफ बन जाय, तो १२ × ८० = ९६० क्लारी गरमी पैदा होगी, जो सब पानीका तापक्रम ०° श कर देगी अब फिर पानीका तापक्रम -१०° श हो जाना चाहिये तब फिर १२ ग्राम बरफ बन जायगी। इस प्रकार बरफ बनानेके लिए -१०° श तक पानीको बहुत देर तक ठंडा रखना पड़ता है। नवलकिशोर बरफ़खाना, लखनऊमें बरफ ७२ घंटेमें तय्यार होती है। भार्गव बरफखाना आगरेमें ४८ घंटेमें। तापक्रम -१०° श या इससे भी नीचा रखनेके लिए द्रवित अमोनियाका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जो गरमी द्रवसे ठोस बननेमें पैदा होती है, या जो ठोससे द्रव बननेमें जज़्ब होती है गुप्त-ताप कहलाती है, क्योंकि इस गरमीसे पिघलने वाले पदार्थका तापक्रम नहीं बदलता। आप एक गिलासमें पानी और एकमें पानी और बरफ रखकर गरम कीजिये। पानीका तापक्रम बराबर बढ़ता चलाजाता है, पर बरफ और पानीवाले गिलासका तापक्रम, जब तक बरफ उसमें रहती है, ०° श ही बना रहता है। गरमी दोनों गिलासोंमें पहुंच रही थी, पर एकमें तापक्रम बढ़ता है, दूसरेमें नहीं। इसका कारण यही है कि बरफ़के गलनेमें वह गरमी ख़र्च हो जाती है। इसी भांति द्रवसे वाष्प बननेमें गरमी गुप्त हो जाती है और वाष्पसे द्रव बननेमें ताप प्रगट होता है।

समुद्रका पानी कैसे जमता है ?

जो कुछ ऊपर बतलाया गया है वह केवल शुद्ध जलके सम्बन्धमें ठीक है। समुद्रके जलकी दशा कुछ विचित्रही है। शुद्ध पानी ०° श पर बरफ़में परिणत हो जाता है, परन्तु पानीमें कुछ घोल दिया जाय तो वह कठिनाईसे जमता है। उसके जमानेके लिए ०° श से नीचे तापक्रमकी आवश्यकता पड़ती है। जितनी अधिक मात्रा उसमें घोल दी जायगी उतना ही अधिक नीचा तापक्रम उसके जमानेके लिए चाहिये। नमकका सम्प्रक्त घोल -२३° श पर जमता है। साधारण समुद्रका जल -२८° श पर जमता है। समुद्रका जल लेकर यदि ठंडा किया जाय तो उसका गुरुत्व बढ़ता जाता है यहां तक कि वह अन्तमें -२८° श पर पहुंच कर जम जाता है। शुद्ध पानीकी तरह उसके गुरुत्व बढ़नेका क्रम पलटता नहीं है।

इसीसे जब वायुमण्डलका तापक्रम घटने लगता है, समुद्रकी ऊपरकी तहोंका जल ठँडा होकर नीचे चला जाता है और नीचेका गरम पानी ऊपर आजाता है। यह क्रम बराबर जारी रहता है। अतएव सबसे अधिक ठंडा जल समुद्रकी तलहटीमें मिलता है, और ऊपर सतहपर नीचेकी अपेक्षा गरम पानी रहता है। इसीसे समुद्रमें बरफका बनना तलहटीमें आरम्भ होता है। शुद्ध जलकी नाई ऊपरी तहपर बरफ नहीं बनती।

प्रकृतिकी अद्भुत चतुराई

अब ज़रा सोचिये कि समुद्रकी तलहटीमें बरफ़का बनना आरम्भ हुआ। यदि बरफ़ पानीसे हलकी न होती तो क्या परिणाम होता। किसी वर्ष तलहटीमें बरफ़ जमा होजाती, या गरमीके मोसिममें केवल ऊपरका जलही गरम होने पाता क्योंकि एक तो जल गरमीका कुबाहक है दूसरे,

गरम होकर, पानी से हलका होनेके कारण ऊपरही उतराता रहता। इस प्रकार प्रति वर्ष पेंदेपर जमी हुई बरफ़की मात्रा बढ़ती जाती और अन्तमें कोई ऐसा समय आता जब समुद्र जम जाता। फिर गरमियोंमें केवल ऊपरही ऊपर थोड़ीसी बरफ़ गलकर पानी बन जाया करता। बाकी सब समुद्र कठोरावस्थामें रहता। जो बरफ़ गरमियोंमें पिघल कर पानी बनता वह फिर जाड़े-में बरफ़ बनजाता इस भाँति गरम देशोंको छोड़, समस्त समुद्र जम जाते।

बरफ़पर दबावका प्रभाव

बरफ़का एक बड़ा डला (कोई दो सेरका) लीजिये। उसे किसी सकड़ी चीज़पर जमाकर रख दीजिये। फिर एक तार लेकर उसके दोनों सिरोंमें दो दो सेरका बाँट बांध दीजिये और तार-को बरफ़पर इस प्रकार रख दीजिये कि बांट दोनों तरफ लटकते रहें। बहतर हो अगर तारके ऊपर एक और बरफ़का टुकड़ा रख दिया जाय। दस पन्द्रह मिनट बाद देखिये, तो तार बरफ़में आध अंगुल धंसा हुआ मिलेगा। तारके ऊपर बरफ़ ज्योंकी त्यों बे टूटी मिलैगी। फिर यह तार बरफ़को बिना तोड़े कैसे बरफ़में घुस गया। उसको देखने से तो ऐसा मालूम पड़ेगा मानो किसीने बरफ़मेंसे छेद करके तार पिरो दिया हो। इसका कारण यह है कि दबाव ज़्यादा होनेसे बरफ़का द्रवण बिन्दु घट जाता है। साधारण दबाव पर बरफ ०°श पर गलने लगती है, इसीसे नीचेके तापक्रमों पर नहीं गलती। परन्तु यदि अधिक दबाव डाला जायतो और नीचेके तापक्रमों पर भी गलने लगती है।

तारका दबाव बरफपर पड़ रहा है; दबाव बढ़-नेसे नीचेकी बरफ़ गल जाती है क्योंकि इस बढ़े हुवे दबावके कारण उसका द्रवण बिन्दु ०°श से भी कम हो जाता है, गलकर पानी ऊपर आजाता है और दबाव हट जाने के कारण तारके ऊपर आते ही जम जाता है। इसी भाँति दबाव पड़ने से नीचेकी बरफ गलती जाती है और जल ऊपर आ आकर जमता जाता है।

समुद्रके पेंदेमें जाकर ठंडा पानी जमा होता जाता है परन्तु दबाव अधिक होने के कारण वह सहजही जमता नहीं है। इस प्रकार भी प्रकृति-ने समुद्रोंको जमने से बचाया। अस्तु अब यह भली भाँति ज्ञात होगया होगा कि समुद्रोंको जमने से रोकने वाली तीन बातें हैं—

(१) बरफ़का पानीसे हलका होना (२) दबाव ज़्यादा होनेसे बरफ़का ०°श से भी नीचे तापक्रम पर बनना (३) पृथ्वीकी भीतरी गर्मीके कारण समुद्रकी तलहटीके पानीका गरम होते रहना।

बरफ़की बदौलत हमें खाना मिलता है

धरतीकी उर्वराशक्ति, उसमें पौधोंके योग्य समस्त खाद्य पदार्थों तथा उचित प्रकारके जीवाणुओंकी उपस्थितिपर निर्भर है। पौधोंके खाद्य पदार्थोंमें पोटाशियम यौगिक भी है। खुश्कीके पौधोंमें पोटाशियम और जलीय पौधोंमें सोडियम होना परमावश्यक है। हर साल जो खेती होती है, उससे पोटाशियम भूमिमेंसे निक-लता रहता है। इसीसे पोटाशियम खादोंके रूपमें देना आवश्यक है। शोरेका प्रयोग खादोंमें इसी-लिए होता है। पर क्या प्रकृतिने अपनी ओरसे कोई प्रबन्ध नहीं किया? प्रकृति क्या कभी ऐसी भूल कर सकती है? चट्टानोंमें पोटाशियम तथा अन्य धातुओं (मेग्नीसियम, अलूमिनियम आदि) के शिलाकेत (Silicates) विद्यमान रहते हैं। जहां दो चट्टानोंके बीचमें वर्षाका जल भरा रहता है और जाड़ेमें जम जाता है, वहां ही चट्टानोंका एक भाग टूट जाता है। इसका कारण यह है कि बरफ़ पानीसे हलकी होती है अर्थात् पानी जमने पर फैल जाता है (अधिक जगह घेरता है) उसका (Volume) आयतन अधिक हो जाता है। अतएव बरफ़ बननेपर यदि पानीको फैलनेको जगह नहीं मिलती तो वह इधर उधरकी चीज़ों-को तोड़ देता है। एक बार एक अफ़सरने लोहेकी

एक इंच मोटी चद्दरका गोला लिया, उसमें पानी भरा और रातको चौड़ेमें डाल दिया। ठंडा होकर पानीकी बरफ़ बनने लगी, परन्तु बरफ़ तो ज़्यादा जगह घेरती है, वह फैले तो किधर फैले? सुबह लोगोंने देखा कि गोलेमें एक दरार हो गई, गोला चटख गया और उसमेंसे बरफ़की एक झालर निकल पड़ी। ठंडे देशोंमें पानीके बंबोंमें बरफ़ जम जानेसे बम्बे (पाइप) फट जाते हैं। अस्तु चट्टानोंकी दरारोंमें घुसकर और वहां कठोर रूप धारण करके पानी धीरे धीरे चट्टानोंको तोड़ा करता है। इन्हीं चट्टानोंका चूर्ण वर्षा होनेपर भूमिमें पहुंच 'अमिय मूरिमय चूरण चारू' का काम देता है और भूमिकी उर्वराशक्तिको बनाये रखता है।

चट्टानोंका धूम्रपान (हुक्का पीना)

हमारे शौक़ीन दोस्त चौंके नहीं। सम्पादक महोदय आप शौक़ किया करते हैं या नहीं, यदि आप धूम्रपान नहीं करते तो आप चट्टानोंसे भी गये बीते हैं। विज्ञान परिषद्के मंत्रीजी! आप भी शिक्षा ग्रहण कीजिये और आज ही गुड़गुड़ी ख़रीद लीजिये।

पर क्या वास्तवमें चट्टानें धूम्रपान करती हैं। मनुष्य तो मसख़रापन करता है, चट्टानें ही सच्चा धूम्रपान करती हैं। मनुष्य ख़मीरेको फूंक धूम्रको फेफड़े द्वारा खींच मुंहसे, और कुछ शौक़ीन नाकसे, निकाल देते हैं। प्रायः सारा धुआं कलेजेको थोड़ासा कालाकर बाहर निकल जाता है। नयकी जो दशा होती है वही तम्बाकू पीनेवालोंकी श्वास नली और फेफड़ोंकी हो जाती है उनकी श्वासमें गन्ध आने लगती है। परन्तु यही धुआं जो शौकीन पीनेवाले छोड़ देते हैं, खाना पकानेवाले ईंधन जलाकर पैदा करते हैं, व्यवसायवाले कोयला, कोक आदि जलाकर बनाया करते हैं। इसी धुंएं (कर्बन द्विओषिद) रूपी विषको कैलाश (पहाड़ों) की चट्टानें दिन रात पिया करती हैं। कैलाशपतिने तो हला हलको पिया था, पर कैलाश इस विषको पीता रहता है। इसका सविस्तार वर्णन किसी आगेके लेखमें किया जायगा, पर यहाँ पर यह बताना था कि चट्टानें कर्बन द्विओषिद्का पान करके मर जाती है, उनमेंसे सिकता निकल जाता है और उसका स्थान कर्बन द्विओषिद् ग्रहण करती है। इस क्रियामें भी चट्टानोंका चूर्ण हो जाता है और वह वर्षाके जलके साथ खेतोंमें पहुंच भूमिकी उर्वरा शक्ति बढ़ाती हैं।

बरफ़की पहाड़ियां

ऊँचे पहाड़ोंपर या समुद्रमें बरफ़के बड़े बड़े टुकड़े रहते हैं, जो आकारमें छोटी छोटी पहाड़ियोंके बराबर होते है। इनके नीचेको बरफ़ दबाव पड़नेसे गल जाती है और फिर यह ढलावकी तरफ़ सरकना आरम्भ कर देते हैं। 'ग्लेसियर' या बरफ़के पहाड़ प्रायः घँटेमें ४ फुट चल पाते हैं। जो धीरे चलते हैं, वह तो प्रति दिन या प्रति सप्ताह मुश्किलसे एक या दो इंच चल पाते हैं।

बरफ़के रवे

बरफ़का एक टुकड़ा ले उसपर एक तालद्वारा प्रकाश डालिये और फिर दूसरी ओरसे उसे देखिये। उसके अन्दर विविध भांतिके कण या रवे दिखलाई देंगे। [देखो विज्ञान भाग १ पृष्ठ ४२ 'जलके अनेक रूप शीर्षक लेख]

बरफ़ ही बरफ़

एक समय था जब पृथ्वीका बहुत कुछ भाग बरफ़से ढका था (Ice age)। एक समय आयगा जब सँसार भरका पानी पृथ्वीके ध्रुवोंपर जाकर बरफ़में परिणत हो जायगा और सम्भवतः मनुष्यको अपने कामके लिए पानी ध्रुवीय देशोंसे बड़ी बड़ी नहरें खोदकर लाना पड़ेगा। यह भी वह केवल गरमीके मौसिममें कर सकेगा, जैसे कि मंगल ग्रह निवासी (यदि वहांके कोई निवासी हैं तो) आजकल किया करते हैं।

पृथ्वी, बरफ़मय थी और बरफ़मय हो जायगी।

पाठको! गरमियोंके मौसिममें बरफ़का बहुत

ध्यान किया, अब सरदी लगने लगी और कलम भी रुक चली। इसीसे बरफ़से विदा होकर ज़रा आपका आश्रय लेंगे।

राजगृहके गरम झरने

[लेखकः—प्रो० व्रजनंदन सहाय बी. एस-सी,]

राजगृह बड़ा प्राचीन नगर है। पौराणिक कथाओंके महाबली राजा जरासिंधका यहां राजधानी थी और महाराजा बिम्बिसार तथा उनके पुत्र अजात-शत्रु यहीं पर राज्य करते थे। यह नगर पांच पर्वतोंसे घिरा हुआ है। उन पांच पर्वतोंके नाम यह हैं वैभारगिरि, विपुल गिरि, रत्नगिरि अथवा पाण्डवगिरि; सोनागिरि और उदयगिरि। रत्नगिरिका नाम पाण्डवगिरि इसलिये पड़ा कि जब श्रीकृष्ण और अर्जुन जरासिंधसे युद्ध करने आये थे तब उन्होंने रत्नगिरि-पर वास किया था। आज भी उस स्थानपर जरासिंध और बिम्बसारके समयके अनेकों चिन्ह बतलाये जाते हैं। यहीं पर महात्मा बुद्धदेवका जन्म हुआ था। इस स्थानकी खुदाई करनेपर पुरातत्व विभागको अनेक बौद्धकालीन स्मृत चिन्ह मिले हैं। वैभारगिरि और विपुलगिरिके बीच पुराने नगरके उत्तरी फाटकका चिन्ह है, इस फाटकसे लगभग ३०० फीट उत्तर वैभारगिरिके तलके पास बहुतसे गरम जलके झरने हैं। इन झरनोंको वहांके लोग कुन्ड कहते हैं और हर तीसरे वर्ष जब लौंद लगता है तब बहुत दूर दूरसे लोग आकर इन कुन्डोंमें स्नान करते हैं। पहाड़ोंपर जैन और बौद्ध महात्माओंकी बहुतसी मूर्त्तियां हैं, इस वजहसे चीन, जापान और तिब्बतके लोग भी राजगृह आते हैं। राजगृह एक ऐसा स्थान है कि यहां हर तरहके लोगों का दिल बहलाव हो सकता है। यदि आप धार्म्मिक बन कर जाइये तो आपके लिये मन्दिर और मूर्त्तियां मौजूद हैं। योगी बनकर जाइये तो पहाड़की अनेक गुफ़ाएं और गिरिकोट जैसे अनेक स्थान आपका स्वागत करनेको तैयार हैं। स्वास्थ्य सुधारनेके लिये जाइये तब भी वहांकी जल वायु आपके लिये लाभदायक होगी। यदि वैज्ञानिक लोग वहां जांय, तो उन्हें (Research) खोजके लिये बहुतसी सामग्री मिले। इन कुन्डोंके आधुनिक नाम सरस्वती कुन्ड, लङ्गट कुन्ड, काशी कुन्ड ब्रह्मकुन्ड सप्तधारा, भैरवकुन्ड, शिव कुन्ड, आनन्दकुन्ड, गंगा कुन्ड, यमुनाकुन्ड और मरीछ कुन्ड हैं। पञ्च कुन्डका जल पृथ्वीसे बुदबुदोंकी तरह निकलता है और उसके साथ ही साथ किसी प्रकारकी गैसके भी बुदबुदे निकलते हुये मालूम होते हैं। काशीकुन्डमें स्त्रियां स्नान करती हैं इसलिये पुरुष वहां नहीं जा सकते। काशीकुन्डके नीचे लङ्गट कुन्ड है। पिछली बरसातमें शिवालयका एक हिस्सा उस कुन्डमें गिर गया है इस कारण उस कुन्डमें उतरना असम्भव है। ब्रह्मकुन्डसे ऊपर चढ़कर सप्तधारा मिलती है। मुझे मालूम होता है कि सप्तधारा वास्तवमें एक ही झरना है किन्तु उसीमेंसे सात धारायें निकाल दी गई हैं। जो धारा झरनेके निकट है उसका तापक्रम अधिक है और जैसे जैसे धारा झरनेसे दूर होती गयी है वैसे वैसे तापक्रम कम होता गया है। निम्नलिखित सूचीमें सप्तधाराके नाम और तापक्रम क्रमानुसार दिये गये हैं। सप्त धारामेंसे जल एक समकोण होज़में गिरता है इसहोज़के चारों ओर पक्की दीवारें हैं।

तापक्रमका नाप मैंने उस दिनके पहिले सन्ध्यामें छः बजे भी लिया था परन्तु दो बार देखनेपर भी विशेष अन्तर नहीं पाया गया। किन्तु, एक दिनके नापसे यह अनुमान करना कि तापक्रम दिन रात एक ही सा रहता है ठीक नहीं है। सप्तधारामें स्नान करनेके पहिले ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेकी आज्ञा नहीं है। विज्ञानके मतसे यह आज्ञा बहुत योग्य है क्योंकि ब्रह्मकुण्डका तापक्रम सप-

वायुका तापक्रम २३·३°श

नंबर	धाराओंके नाम	डाक्टर बुकाननका नापा हुआ तापक्रम (जनवरी १८१२)	मेरा नापा हुआ तापक्रम (७ फ़रवरी १९१९)	नाम स्थान	जलका वेग
१	कश्यप	....	३९·५°श	पश्चिम दिशाकी उत्तर वाली धारा	धीमा
२	अत्रि	....	४०·२°श	नं० १ के दक्खिन वाली धारा	,,
३	यमदग्नि	३९·०°श	४०·५°श	नं० २ के दक्खिन वाली धारा	,,
४	गौतम	४२·६°श	४१·[illegible]°श	नं० ३ ,, ,,	,,
५	वशिष्ट	....	४१·२°श	नं० ४ ,, ,,	तेज़
६	विश्वामित्र	३७·६°श	३९·८°श	दक्खिन दिशामें पश्चिमवाली धारा	,,
७	भरद्वाज	३९·७°श	३९·६°श	नं० ६ के पूरबवाली धारा	,,
	औसत	३९·७°श	४०·२°श		

धाराके तापक्रमसे अधिक है। पश्चिम दिशाकी दीवारमें एक स्लेटके टुकड़ेपर खुदा हुआ है कि इस दीवार और हौज़को गया ज़िलेके बकसन्डा निवासी बाबू सीतारामने ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी संवत १९०३ को बनाया था। सप्तधाराके ऊपर ही अमांवा राज्यकी एक कोठी है। अमांवा कोठीके सामने भैरव और शिव कुन्ड दो अलग २ हौज़ोंमें बने हैं। इन दोनोंके उत्तर तरफ़ आनन्दकुण्ड है। आनन्दकुण्ड-से पश्चिम एकही हौज़में गंगा और यमुना कुण्ड हैं। मिस्टर जैक्सनने पटना कौलिजके मैगज़ीनके दूसरे अंकमें जो सन १९०९ ईस्वीमें छपी है लिखा है-"गंगा यमुना और आनन्दकुण्डोंको सूखे हुए दो वर्ष बीत गये और अब मारकंडे कुण्ड सूखेगा उसी लेखके नोटमें लिखा है "मेरी पिछली यात्राके बाद मारकंडे कुण्ड बिलकुल सूख गया" जिस समय मैं गया था कोई कुण्ड सूखे हुए नहीं थे कुण्डोंका सूख जाना अथवा बहते रहना वार्षिक वर्षापर निर्भर है। अमांवा कोठीसे १०० क़दम दक्षिण एक छोटासा मैला गरम जलका झरना है इसका नाम मरीछ कुण्ड है। इसका तापक्रम ३८·५° श है। इसमें स्रोतमेंसे निकलकर पानी बहुत धीरे धीरे चट्टानोंमें होकर बहता है। लोगों-का विश्वास है कि जिस स्त्रीके बच्चे जन्मके थोड़े ही दिन बाद मर जाते हैं, वह यदि इस कुण्डमें स्नान करे तो उसके बच्चे जीवित रह कर युवा अवस्थाको प्राप्त होंगे। काशी कुण्डके नीचे सर-स्वती कुण्ड है यह ठंडे जलका स्रोत है। सप्तधारा-के साथ और गंगा यमुनाके दो झरने मानकर वैभारगिरिकी तलहटीके नीचे १७ कुण्ड हैं। वा-स्तवमें गंगा यमुना एक ही झरना है क्योंकि दोनों-का तापक्रम एक ही है और दोनों सटे हुए हैं। नीचे वैभारगिरिके झरनोंका नाम और तापक्रम लिखते हैं।

डाक्टर बुकाननने भी इन झरनोंका तापक्रम नापा था किन्तु जो नाम उन्होंने लिखे हैं वे आधु-निक नामोंसे नहीं मिलते। अब विपुलगिरिके

(वायुका तापक्रम २३·३° श)

नंबर	कुण्डोंके नाम	मिस्टर जैकसनके नापे हुये तापक्रम (जनवरी १६०६)	मेरे नापे हुये तापक्रम (७-२-१६१६)	जलका वेग
१	लंगट कुंड	....	.. ..	जल पृथ्वीमेंसे निकलता है
२	काशी कुंड	.. ..	....	
३	ब्रह्म कुंड	४०·३° श	४१·४° श	,,
४	सप्तधारा	४०·३° श	४०·३° श	×
५	भैरव कुंड	३२·६° श	३६·८ श	धीमा
६	शिव कुंड	३६·६° श	३८·५° फ	तेज़
७	आनन्द कुंड	सूखता जाता है	३६·७° श	धीमा
८	गंगा कुंड	,,	४१·७° श	तेज़
९	यमुना कुंड	,,	४१·७° श	तेज़
१०	मराल कुंड	....	३८·६° श	चट्टानसे जल निकलता है
११	सरस्वती कुंड	... ...	२१·० श	यह एक स्रोत है

वायुका तापक्रम २३·३° श

नंबर	डाक्टर बुकाननके समयमें प्रचलित नाम	नये नाम	तापक्रम १८१२ ई०	तापक्रम १६०६ ई०	तामक्रम १६१६ ई०	जलका वेग
१	सूर्य	सीता	३६·५° श	३५·२° श	३४·७° श	धीमा
२	शान्तनु	सूरज	४१·१° श	३६·५° श	४०·५° श	,,
३	सोम	चन्द्रमा	३६·०° श	३६·६° श	३८·० श	,,
४	गणेश	गनेश	३६·०° श	३७·५ श	३८·१° श	,,
५	राम	राम	...	२१·४° श	२१·३° श	,,
६	लक्ष्मण	लछमन	...	३३·५° श	२१·३° श	बहुत धीमा
७	मखदूंम	श्रङ्गी ऋषि	३६·१° श	३५·०° श		

झरनोंकी ओर चलिये। सरस्वती नामका स्रोत पार करनेके बाद पूरब दिशामें नानकशाह कुण्ड है। उसका जल ठंडा है। नानकशाह कुण्डसे २०० क़दम उत्तर चलकर गरम जलके झरने हैं उनके नाम और तापक्रम भी लिखे जाते हैं। यहांसे आधे मील पर मकदूम कुण्ड है नामसे आप समझते होंगे कि यह सब आधुनिक कुण्ड हैं। नहीं, थोड़ा परिश्रम करने से आपको इन कुण्डों का पुराना नाम मिल जायगा। डाक बङ्गलेसे एक मील पश्चिम तीन ठंडे जलके झरने हैं उनके नाम वैतरणी भरत और शालग्राम हैं। गरम जलके झरनेकी टोंटीके पास सिंह, गाय, बैल, और हाथीके मुखोंकी पत्थरकी मूर्तियां बनी हुई हैं और पानी इन्हीं मुखोंके द्वारा बाहर गिरता है। किसी २ में केवल पत्थरकी नालियां बनी हुई हैं और जल उनसे गिरकर पत्थर जड़ी हुई भूमिमें जमा होता है। "यहां बहुतसे देशोंके लोग स्नान करने आते हैं और इन कुण्डोंमें स्नान करके बहुतसे रोगी आरोग्य

हो जाते हैं। प्रसिद्ध चीनोयात्री हुएनसांगने अपनी यात्राके वर्णन में इन जल स्रोतोंका हाल लिखा है और इनके इस गुणकी बड़ी प्रशंसाकी है। कुछ लोगोंका यह अनुमान है कि कुण्डोंका जल सूखता जाता है और तापक्रम कम होता जाता है। ऊपरकी सूचियां देखनेसे स्पष्ट है कि यह अनुमान ठीक नहीं है। झरनोंका जल गरम है इसीसे यह बात सम्भव है कि जल धरातलके बहुत नीचेसे आता होगा यह भी सम्भव है कि जलमें हीलियम इत्यादि वायु गैस मौजूद है।*

उन नालियोंमें जिनमें होकर गरम जल बह कर बाहर निकलता है एक तरहकी दूध जैसी उजली और बारीक मिट्टी जम जाती है। जहां जल सूख जाता है वहां इस मिट्टीके बहुतसे स्तर मिलते हैं ऐसी ही मिट्टी जरासिंधके अखाड़ेमें पायी जाती है। प्रिंसपेल देवेन्द्रनाथ सेनका अनुमान है कि पुराने समयमें यह अखाड़ा जल जमा होने का स्थान था। आजकल अहरा, शब्द बिगड़कर अखाड़ा हो गया है।

यह झरने आसपासकी मट्टी और चट्टानोंके बड़े बड़े कणोंको घुला डालते हैं और इनके जलका दबाव और तापक्रम अधिक होनेसे हीलियम आदिक वायुमेंसे भी घुल जाती हैं। पृथ्वीतल पर पहुंचकर जलका तापक्रम और दबाव घट जाता है इसलिए जो वस्तुएं इनके अधिक होने पर जलमें घुली हुई थीं अब इस अवस्थामें नहीं रह सकती। परिणाम यह होता है कि इनका कुछ भाग तो जलमें घुला रहता है और बाकी तलेमें बैठ जाता है। इन्हीं पदार्थोंके तलमें बैठ जानेसे उपरोक्त स्तर बन जाते हैं। इन स्तरोंकी बनावटका विशेष हाल इनकी रासायनिक जांच होनेपर मालूम हो सकेगा।

रश्मि विकीरक (Radio active) पदार्थोंका यह गुण है कि उनकी ताप निस्सरण गति बराबर एकसी रहती है और समयके साथ साथ इसका ह्रास नहीं होता। यही कारण है कि हम इन झरनोंका तापक्रम घट जाना सत्य नहीं मानते।

राजगृहके आसपास और भी कई गरम झरने हैं। सप्तधारासे छः कोस पर तपोवन नामका स्थान है वहां भी ऐसे ही कई झरने हैं। तपोवनसे १ मीलपर अग्निधारा कुन्ड है। आज कल इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि वैज्ञानिक लोग इन स्थानोंपर जाकर इन स्रोतोंके चमत्कार तथा रहस्य पूर्ण प्रभावोंका पूरा पूरा पता लगावें।

*विज्ञान भाग ८ संख्या १ के ११ वें पृष्ठपर ऐसे ही प्राकृतिक जल स्रोतोंका वर्णन दिया गया है। इस लेखमें लेखकने उन स्रोतोंके इस गुणका कारण भी विस्तारपूर्वक लिखा है।

पैमाइश

[ले० श्रीयुत नन्दलालजी तथा श्री० मुर्लीधरजी, एल,ए जी.]

(मेषांक से सम्मिलित)

अगले पृष्ठोंपर दी हुई चार शकलोंमेंसे नम्बर १ एक गांव की सीमा है। नम्बर २ उसी गांवका प्लाट किया हुआ नया शीट है, जो पैमाइश करने वालेको नये सिरेसे पैमाइश करनेके लिए मिला है और शकल ३ उसका ख़ाका है जो किश्तवार पैमाइशके लिये मौकोंपर पैमाइश करके बनाया जाता है और शकल नं० ४ उस गांवका पूरा नक़शा है। जब उपरोक्त रीतिसे ख़ाकातैयार हो जाय तो उसकी सहायतासे पहिले सब सिवानोंसे पत्थरोंके बीचकी दूरी जो नये शीटपर पुराने नक़शोंसे नक़ल करनेपर आई है ख़ाकेपर लिखी हुई दूरियोंसे मिलाकर देख लेना चाहिये कि वह सब ज़मीन परकी दूरीसे मिलती हैं या नहीं। और तब जो पैमाइशी चांदे और कटान ज़मीनपर बनाये हैं उनको ख़ाकेकी सहायतासे शीटपर प्लाट कर लेना चाहिये। उनके प्लाट करनेमें यह भी देख लेना चाहिये कि जो दूरियां ख़ाकेमें लिखी हैं वह शीटपर ठीक आती हैं या

नहीं। अगर ज़मीनकी दूरी नक़शे परकी दूरीसे न मिले तो इस भेदके दो कारण हो सकते हैं।

(१) अगर अंतर केवल इतनाहो जितना काग़ज़के सिकुड़ने या बहुत ज़्यादा जरीब खींचने या ढीली डालनेसे मुमकिन है तो उस अंतरको कुल रेखामें निम्न प्रकार से बाँट देना चाहिये (अ) मानलो कि रेखाकी लम्बाई ४१ जरीब ५० कड़ी है और नकशेपर ४१ जरीब ५८ कड़ी है तो पहिले रेखाके एक सिरेसे १ जरीब ५० कड़ी पर परकारसे निशान लगाकर बाक़ी रेखाको चार बराबर भागोंमें बांट देना चाहिये। इस रेखाका हर भाग १० जरीबके बराबर माना जायगा। ऐसा करने से जो आठ कड़ीका अन्तर था वह चार बराबर भागोंमें बट जायगा, अर्थात् हर दस, जरीबमें दो कड़ीका अन्तर रह जायगा जिसकी कुछ परवाह न करनी चाहिये।

(ब) अगर कुल रेखा ज़मीनपर ५८ जरीब १० कड़ी है और नक़शेपर ५७ जरीब ६५ कड़ी आती है तो नक़शेपर रेखाके एक सिरेका ६० कड़ी बढ़ाकर बढ़ाये हुये भाग सहित कुल रेखा को६ बराबर भागोंमें बाँट देनेसे जो १५ कड़ीका अन्तर था अढ़ाई कड़ी प्रति १० कड़ी रह जायगा जो ध्यान देने योग्य नहीं है। इस क्रियाको अन्तरका बांट देना (तक़सीम तफ़ावत) कहते हैं और यह शिजरे के सुधारनेमें बहुत काम आती है।

(२) अगर अंतर अधिक और ध्यान देने योग्य है तो यह समझना चाहिये कि जरीब डालनेमें ग़लती हुई और उसे दोहराना चाहिये। अगर दोहरानेमें भी वही अंतर आय तो जानना चाहिये कि या तो ज़मींनपर पत्थर ठीक स्थानोंपर नहीं गड़े हैं या वह शीटपर ग़लत दिखलाये गये हैं। दोनों हालतोंमें उनकी जांच आवश्यक है। इसके लिए जिन पत्थरोंके ठीक होनेमें शक है उनकी जांच मिले हुये गांवोंके सरहद्दी पत्थरोंसे करना चाहिये और जब पत्थरोंके ठीक होनेका निश्चय हो जाय तब उन सब रेखाओंपर चाँदों और कटानोंको जो ख़ाकेमें लिखे हैं शीट पर प्लाट करना चाहिये।

नोट—यह मालूम रहे कि अगर अंतर केवल शीटपर पैमाइशके चिन्हके ग़लत प्लाट होनेके कारणसे है तो शीटकी दुरुस्ती करके ख़ाकेसे उसपर प्लाट किया जासकता है। लेकिन अगर पत्थर ही ग़लत गड़े हैं तो सब पैमाइश दुबारा करके नया ख़ाका बनाना होगा और वह ख़ाका शीटपर प्लाट किया जायगा।

(३) जब उपरोक्त कुल बातें शीटपर प्लाट हो जायँ तो उन वर्गोंकी पैमाइश एक एक करके करनी चाहिये। शीटपर पैमाइश करने वालेको बहुतसे मुस्तक़िल स्थान मिलेंगे जो पृथ्वीपर भी स्थित हैं, वह उनके बीच शिकमी रेखा डालकर अपना किश्तबार पूराकर सकता है अर्थात् उन टुकड़ोंकी भुजाओंपर जो कटान धरती और नकशे दोनोंपर बने हैं उनमेंसे किसी कटानसे उसके सामनेके किसी कटानको शिकमी रेखा छोड़कर उसके भीतरके सब खेत सड़क नाले और आबादी इत्यादि के लम्ब इसपर लेकर पैमाइश करे और नकशेपर प्लाट करता जाय। इस प्रकार सब रक़बेकी पैमाइश पूरी हो जायगी।

नोट १—पच्छिम उत्तरवाले टुकड़ेसे किश्तवार आरम्भ करना अच्छा है और शिकमी रेखायें जहां-तक बन पड़े खेतोंकी मेड़ोंपर या उनके निकट डाली जायँ।

नोट २—अगर गाँव या नकशा एकसे अधिक शीटोंपर हो तो यह आवश्यक है कि सीवानेके पत्थरोंकी जाँच करनेके बाद पृथ्वीपर उस रेखा के चिन्ह बना दिये जायँ जो दूसरे शीटके हाशियोंसे मिलाते हों। अगर कुछ पैमाइशी चांदे उस हाशियेके पास होंतो उनको दूसरे शीटके हाशियोंपर स्थापित करके उनकी सहायतासे काम करना चाहिये, और अगर पैमाइशी चांदे या मुरब्बेकी रेखा कोई भी हाशियेके पास नहीं बल्कि दूर हो तो उनकी सहायतासे तख़्ता मुसत्ता द्वारा
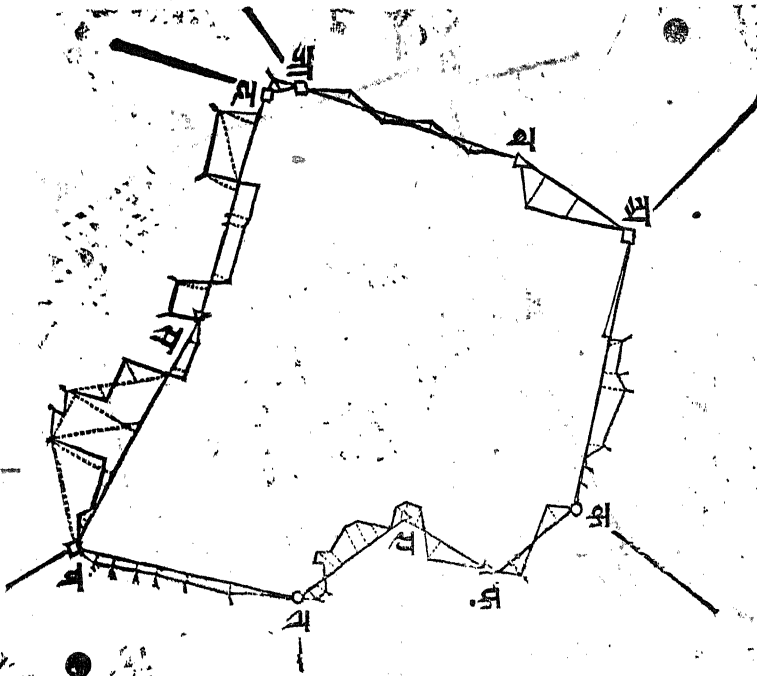
चित्र नं० १
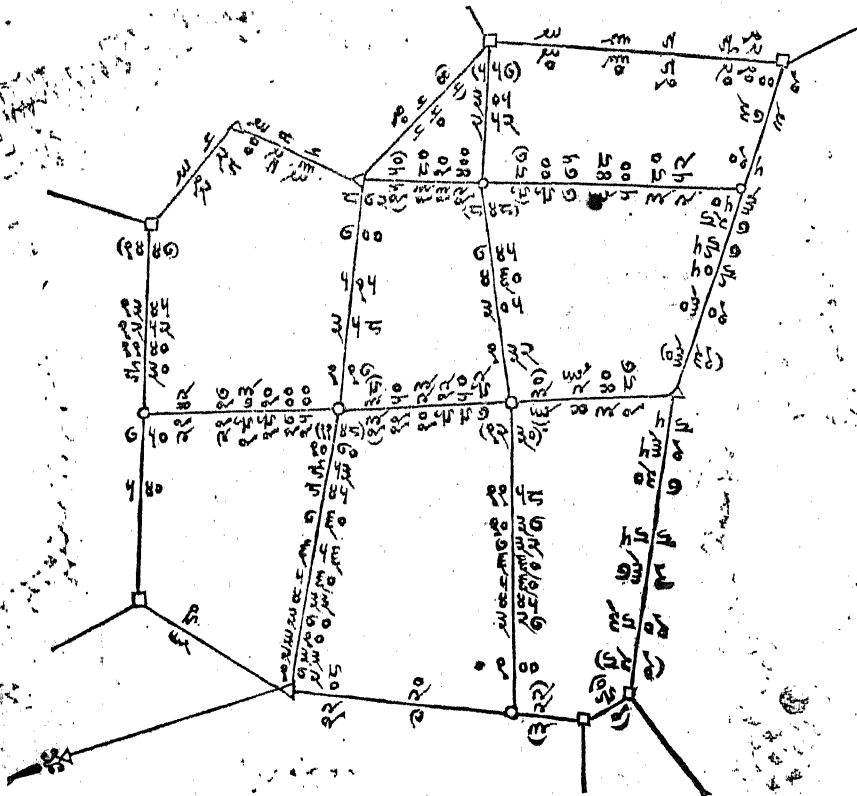
चित्र नं० २
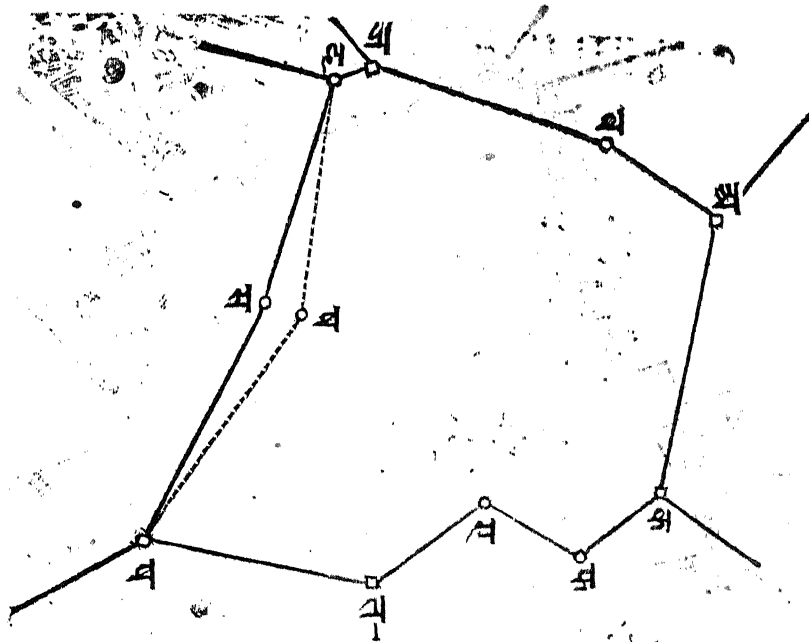
चित्र नं०२

चित्र नं० ४

हाशियेकी रेखापर नये चांदे स्थापित करने चाहिये और फिर उनके सीवानेके चिन्ह मानकर दूसरे शीटकी पैमाइश उपरोक्त रीतिसे करना चाहिये। सुगमता इस बातमें अधिक होगी कि पहिले शीट-की पैमाइश करते समय ही दूसरे शीटकी पैमाइश-का ध्यान रखकर थोड़े पैमाइशी चाँदे हाशियेपर बना दिये जावें जो दोनों शीटोंकी पैमाइशमें काम आ सकते हों।

[असमाप्त]

उन्नतिका सिद्धान्त*

[अनुवादक-श्री शालिग्राम वर्मा बी. एस. सी.]

प्रस्तावना

आज कल उन्नतिका अर्थ परिवर्तन-शील और अनिश्चित सा है! साधारण रीतिपर वृद्धि होना ही उन्नति समझी जाती है। किसी जातिके मनुष्योंकी गणना तथा किसी साम्राज्य-के आधीन देशोंके विस्तारकी वृद्धि को भी उन्नति कह सकते हैं। कृषि और शिल्प आदि कलाओं-में उन्नतिका विचार इनके द्वारा प्राप्त पदार्थोंकी संख्याके बाहुल्यमें मौजूद है। इन पदार्थोंकी निकृष्ट, समान और उत्तम अवस्थाओंमें, तथा इनके निर्माण-विधिकी श्रेष्ठता और हीनतामें भी उन्नतिका ही प्रकाश झलक रहा है। मनुष्योंकी धार्मिक सामाजिक और मानसिक अवस्थाओंके विवेचन करनेमें भी उन्नतिका आश्रय लेना पड़ता है। और उनके अनुभव और विचारोंके निगूढ़ सिद्धान्तोंके अन्वेषणमें, (जिन्हें हम विज्ञान (Sciene) और कलाकैशल (Art) के नामसे पुकारते हैं) उन्नतिकी ही तूती बोल रही है। साधारण दृष्टिसे देखनेपर तो उन्नतिकी यह व्याख्या सत्य प्रतीत होती है, परन्तु यदि वास्त-विक दृष्टिसे देखा जाय तो उन्नतिका यह आधुनिक अर्थ न केवल सँदिग्ध ही वरन् कुछ अंशोंमें भ्रांति-मूलक भी जान पड़ता है! क्योंकि उन्नतिकी यथा-र्थता की अपेक्षा यह उसके आभासका ही द्योतक मालूम होता है! मामूली तरहपर शैशवावस्था-से युवावस्था प्राप्त होने तक तथा असभ्य मनुष्य से शिक्षित और ज्ञानी हो जानेमें जो मानसिक उन्नति होती है उसका निर्णय हम इस बातसे कर सकते हैं कि इन अवस्थाओंमें इन मनुष्योंने अधिक बातोंका ज्ञान प्राप्त किया है तथा बहुतसे सिद्धान्तोंके रहस्योंको समझा है; परन्तु वास्त-विक उन्नति उन आन्तरिक विकारोंपर निर्भर है जिनका बोध हमें इस ज्ञान-वृद्धि द्वारा होता है। आजकल सामाजिक उन्नतिकी परिभाषामें मानसिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति और तृप्तिके लिये बहुतसे और नवीन पदार्थोंका उत्पन्न करना, जान मालकी भलीभाँति रक्षा होना तथा हर व्यक्तिको उसकी इच्छानुसार कार्य करनेमें अधिक स्वतंत्रता देना ही श्रेय समझा जाता है; परन्तु सामाजिक संगठनकी रचनाओंके परिवर्तनको ही यथार्थमें सामाजिक उन्नति कहा जा सकता है! इसी परिवर्तनको उन सब नतीजोंका आदि कारण समझना चाहिये!

उन्नतिके इस आधुनिक अर्थके अनुसार तो संसारका प्रत्येक पदार्थ उन्नति प्राप्त होने के हो हेतु बनाया गया मालूम होता है। इस सिद्धान्त-को अंग्रेज़ीमें (Teleologicalism) अर्थात् हेतुवाद कहते हैं। इस सिद्धान्तके मानने वालोंका यह दृढ़ निश्चय है कि संसारमें न्यूनातिन्यून वस्तु भी उस जगत-पिताने किसी न किसी हेतुसे हो बनाई है, अतः संसारकी सभी वस्तुएं उपयोगी और लाभदायक हैं।

Nothing in this world is useless,
Each thing in its place is best;

हम उन्नतिके अर्थमें केवल उन्हीं बातोंका विचार करते हैं जो मानुषिक सुख और स्मृद्धि

---

* यह लेख हरबर्ट स्पेंसरके (Progress its Law and Cause) नामक विख्यात प्रबन्धका स्वतंत्र अनुवाद है।

की द्योतक हैं। सारांश यह कि आजकल हम लोग केवल उसी परिवर्तनको उन्नतिके नामसे पुकारते हैं जिससे प्रत्यक्ष, अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रीतिसे मनुष्यजातिका हित-साधन हो! परन्तु उन्नतिका सच्चा अर्थ समझनेके लिये यह परमावश्यक है कि हम अपनी अर्थचिन्तना छोड़कर इस परिवर्तनके वास्तविक रूपको समझनेकी चेष्टा करें। जैसे, यदि हम यह विचार थोड़ी देरके लिये अपने चित्तसे दूर कर दें कि भूतत्व-विषयक क्रमिक विकारों के ही कारणसे हमारी पृथ्वी लाखों वर्ष पर्य्यन्त मनुष्योंके रहने योग्य हो पाई है; अतः यही उसकी (Geological) भूगर्भ विद्या-सम्बन्धी उन्नति है, तो इस उन्नतिका यथार्थ रहस्य जाननेके लिये हमें इन सब विकारोंका एक ऐसा गुण तलाश करना पड़ेगा जो सबमें सामान्यतः पाया जाता हो। अथवा यों कहिये कि हमें एक ऐसा सिद्धान्त ढूंढ़ निकालना पड़ेगा जिसके यह सब अन्तर्गत हों! अच्छा, अब हम इसी सिद्धान्तकी खोज प्रारंभ करते हैं।

इस भौतिक संसारके प्रत्येक जीवधारीके विकाशमें किस प्रकार क्रमोन्नति होकर वह अपनी आधुनिक अवस्थाको पहुंचा है, इस सिद्धान्तकी विशेष खोज करनेका श्रेय जर्मनोंके विद्वानोंको ही मुख्यतया प्राप्त है। वोलफ, गेटे और वोन बायर के अन्वेषणों द्वारा यह बात प्रायः सिद्ध हो चुकी है कि बीजके अंकुरित और पल्लवित होकर वृक्ष बनने में, तथा अण्डज द्वारा किसी योनिजकी उत्पत्ति होनेमें जो परिवर्तन प्रतीत होता है वह उसके शारीरिक संगठनकी समानताका विभिन्नतामें परिवर्तित होने का चिन्ह है! अपनी पूर्वावस्थामें तो अङ्कुर (germ) ऐसी वस्तुका बना हुआ होता है जो अपने विन्यास और रासायनिकसंगठनमें भी एकसाही होता है। इसके विकाशमें सबसे पहिली बात इसके अंगके किसी भी दो भागोंमें विभिन्नता उत्पन्न हो जाना है! शरीर-शास्त्रवेत्ता इस नवीन घटनाको (Differentiation) विभेद या प्रभेद कहते हैं। कुछ काल पर्य्यन्त इन्हीं भागोंके और हिस्सोंपर इस घटनाका असर फैलने लगता है और धीरे धीरे विभिन्नताकी यह लहर बढ़ते २ समस्त योनिज पर अपना अधिकार जमाकर उसके पूर्वोक्त रंग रूपमें असाधारण परिवर्तन पैदा कर देती है। यही परिवर्तन वास्तविक दृष्टिसे देखनेमें ऐसी ऐसी अगणित घटनाओंका कारण है और इन्हीं घटनाओंके अपरिमित भेदोपभेद होनेसे जीव, जन्तु, वृक्ष तथा मनुष्य देहके पेचदार और विस्तृत रग-पट्ठे बन गये हैं। प्रायः समस्त जीवधारियोंकी उत्पत्ति अथवा क्रमिक विकाशकी यही एक रहस्यपूर्ण और विलक्षण कथा है। अस्तु इस सिद्धान्तके मतानुसार समस्त जीवधारियोंके विकाशमें समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होता चला जाता है!

परन्तु इस सिद्धान्तको सब घटनाओंपर घटानेकेलिये हमें इसकी सार्वभौमिकता सिद्ध करनी पड़ेगी! अथवा हमें साफ़ तौरसे यह निश्चित कर देना पड़ेगा कि पृथ्वी और उसके जीवोंकी उत्पत्तिमें, समाज साम्राज्य (government) कलाकौशल वाणिज्य व्यापार, साहित्य, विज्ञान, तथा भाषा तक की उत्पत्ति और विस्तारमें, यही सिद्धान्त स्थायी रूपसे व्याप्त हो रहा है। इस विश्वकी परम प्राचीन आदिम घटनाओंसे लेकर अर्वाचीन सभ्यताकी आधुनिक उन्नति तक जितने भी परिवर्तन हुये हैं सभीमें समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होनेके चिन्ह विद्यमान हैं।

"द्युलोक और पृथ्वीकी उत्पत्ति"

अपने उपरोक्त कथनके पक्षमें हम पहिले यही जाननेकी चेष्टा करते हैं कि द्युलोक और पृथ्वीके उत्पन्न होनेमें यह सिद्धांत कहांतक सत्य प्रतीत होता है। हम थोड़ी देरके लिये यह बात मान लेते हैं कि सूर्य और अन्य ग्रह जिस पदार्थके बने हुए हैं वह किसी समयमें भापके परमाणुओंकी भांति विस्तृत अवस्थामें था और इन परमाणुओंकी

पारस्परिक आकर्षण शक्तिके कारण धीरे २ यह विस्तृत परमाणु एक दूसरेके पास आते गये अथवा उनकी पारस्परिक दूरीमें न्यूनता होने लगी।

अंग्रेजीमें इस कल्पनाका नाम नीहारिकावाद (Nebular Hypothesis) है। इसके मतानुसार द्युलोक अपनी आदिम अवस्थामें अनियमित रूपसे विस्तृत और समान माध्यम था। अतः उसका तापक्रम, गुरुत्व आदिक भौतिक गुणोंमें सामान्य मौजूद था। परमाणुओंके संश्लेषण (aggregation of atoms) के कारण अब इस द्युलोकके अंतरंग और बाह्यांगकी तापक्रम और गुरुत्वमें समानताका नाश होकर विभिन्नताका प्रादुर्भाव हो गया। संश्लेषण द्वारा जो बाहरी भाग केन्द्रकी ओर दबने प्रारम्भ हुये तो इसका परिणाम यह हुआ कि इस द्युलोक में अपने केन्द्रके चारों ओर भिन्न भिन्न कोण-गतियोंसे (Angular Velocities) घूमनेकी नई शक्ति उत्पन्न हो गई। इन (Differentiation) प्रभेदोंकी गिनती और अवस्थामें वृद्धि होनेसे ही अन्तमें इस द्युलोक का स्वामी सूर्य और उसके साथी नक्षत्र-आदिकी उत्पत्ति हुई। अब हम यदि इन नक्षत्रादिकी बनावट और उनके तापक्रम तथा गुरुत्व की तुलना करें तो हमें इन सबमें बड़ा असाधारण भेद दृष्टिगोचर होगा। सूर्य और अन्य नक्षत्रोंके आकार और गुरुत्वमें कितना बड़ा अन्तर है। तथा इन नक्षत्रोंके पारस्परिक आकार और गुरुत्वका फ़र्क भी बहुत अधिक है। इसी प्रकार सूर्य और अन्य नक्षत्रोंमें एक बड़ा भेद यह भी है कि सूर्य अन्य नक्षत्रोंकी अपेक्षा स्थिर है और यह नक्षत्र बड़े वेगके साथ सूर्यके चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। इन ग्रहों और इनके उपग्रहोंमें और भी अधिक भेद व्याप्त हैं। ग्रह तो सूर्यकी परिक्रमा करते हैं पर उपग्रह ग्रहकी परिक्रमा करते हुये सूर्यकी भी प्रदक्षिणा करते हैं। सूर्य और अन्य ग्रहोंके तापक्रममें भी बड़ा अन्तर मौजूद है और उपग्रहोंमें इस भेदके अतिरिक्त यह फ़र्क और भी है कि सूर्य से प्राप्त उष्णताकी मात्रामें भी कमी और ज़्यादती पाई जाती है। इन सब बातोंके अतिरिक्त जब हम इस बातका विचार करते हैं कि यह ग्रह और उपग्रह पारस्परिक दूरीके अलावा सूर्यसे भी जुदे जुदे फ़ासलेपर हैं, इनकी कक्षायें विभिन्न हैं, इनकी धुरियोंका झुकाव जुदा २ है, इनके परिभ्रमणका समय भी एक नहीं है, इनके गुरुत्वमें भी एकताका अभाव है, तथा इनकी भौतिक रचनामें भी बहुत कुछ सादृश्य नहीं है; तो हमें विवश हो कहना पड़ता है कि वही पिण्ड जो अपनी मेघवत, (nebulous) अवस्थामें समान मालूम पड़ता था अब कितना अधिक विभिन्न हो गया है।*

परन्तु इस विवादग्रस्त कल्पनाके विषयमें और अधिक न लिखकर हम अब ऐसे मतका आश्रय लेते हैं जो वैज्ञानिकसंसारमें सबको मान्य है। वह मत यह है कि पृथ्वी जिस पर कि आज दिन हम ऐसे आनन्दसे विचर रहे हैं, किसी समयमें पिघले हुये द्रव्यका पिंड थी। यह मत भौतिक शास्त्रवेत्ता तथा भूतत्व विशारद, दोनों ही को मान्य है। इस मतके अनुसार जब हम पृथ्वीको पिघले हुये द्रव्य का पिंड मानते हैं तो उस समय हम अवश्य इसके गुरुत्वकोसमानावस्थामें मानसकते हैं। प्रत्येक

---

* नोट—सर जार्ज डारविनने अपने ज्योतिषके ग्रंथमें जहां पृथ्वीके पुत्र चन्द्रमाका प्राचीन तथा भविष्यत इतिहास लिखा है उसमें वर्णन है कि किसी कालमें यह दोनों एक दूसरेके बहुत ही पास थे; चन्द्रमा और पृथ्वी दोनोंपर ३ या ४ घंटेका दिन हुआ करता था। इस सामीप्य के कारण पृथ्वीपर उस समय ज्वार भाटेका बड़ा प्रबल वेग रहा होगा। इससे पृथिवीकी परिभ्रमण गतिमें ज़रूर अन्तर पड़ा होगा, और पृथ्वी और चन्द्रमाके बीचकी दूरी भी, प्रतिक्रियाके वशीभूत हो, बढ़ती ही गई होगी। परिणाम इसका यह हुआ कि दिन और महीनोंका काल भी बढ़ता गया। यहां तक कि अब २४ घन्टोंका दिन तथा सवा सत्ताईस दिनका चन्द्रमास होने लग गया। यह काल में समानता से विभिन्नता होकर उन्नति होनेका उदाहरण है।

द्रव पदार्थके परमाणु बड़े चंचल तथा अस्थिर होते हैं, और जब यह द्रव गरम होता है तो इसमें वाहन लहरें पैदा हो जाती हैं जिस प्रवाहके कारण इस द्रवके समस्त अंगमें तापक्रम एकसा रहता है। इन तरङ्गोंके उत्पन्न हो जानेसे जिस समयका हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय हमारी पृथ्वीके उस पिघले हुये पिंडके चारों ओर जल मिश्रित वायु तथा अन्य तत्व भी वायु रूपमें ऊंचे तापक्रमपर विद्यमान थे। ज्यों विकिरण क्रिया (Radiation) द्वारा इन तत्वोंका तापक्रम कम होता गया वैसे ही ऊपरी चिप्पड़ ठंडा होकर ठोस बनता गया। यह विकिरण क्रिया उस समय बड़े तीव्र वेगसे जारी रही होगी; क्योंकि आज दिन भी हम अपने चारों ओर हर समय इसके अनेकों उदाहरण देखा करते हैं। गिलासमें थोड़ी देर रक्खे रहनेसे ही गरम दूधके ठंडे हो जानेका कारण यही क्रिया है।

इस चिप्पड़के बनते ही हमें (Differentiation) प्रभेद का प्रथम दृश्य देखनेको मिलता है। शीतकी प्रधानता हो जानेके कारण ही यह चिप्पड़ अब अधिक मोटा होने लगा होगा और चारों ओरकी हवामें जो तत्व वायु रूपसे अदृश्य थे अब अपनी उस अवस्थाको क़ायम न रख सके होंगे। परिणाम यह हुआ होगा कि यह तत्व भी ठोस होकर इसी चिप्पड़पर फैलने लग गये होंगे और इनके साथ साथ भाप भी प्रत्यक्ष रूप धारण करके मेघ वर्षा करने लगी होगी। बस यहीं पर दूसरे (Differentiation) विभेदका श्री गणेश हो गया। अब जैसे २ शीतका प्राबल्य इस पिंडके ठंडे भागों पर होता गया वैसे २ मेरु (North polar regions) और सुमेरु लोकों (South polar regions) की सृष्टि होनेसे इस पृथ्वीपर पहिले पहल भौगोलिक नियमानुसार जुदे २ खंड बनने लग गये। अबतक जो बातें हम लिखते आ रहे हैं वे निरी कल्पना ही नहीं है, परन्तु भौतिक शास्त्रके निश्चित सिद्धान्तोंपर अवलंबित होनेके कारण हमारा यह वृतांत सत्य ही समझा जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त भूगर्भ शास्त्रने तो और भी अनेक उदाहरण प्रतिष्ठापित कर दिये हैं।

"भूगर्भ और लुप्त जन्तु शास्त्रोंकी साक्षी"

भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओंके अनुसंधान द्वारा अब यह विषय प्रमाणित हो चुका है कि हमारी पृथ्वी का चिप्पड़ जितना अधिक मोटा होता चला जा रहा है पृथ्वीके आकार प्रकारमें भी उतनी ही अधिक विभिन्नता होती चली जा रही है? पृथ्वी का तल भाग बननेमें जो स्तर (Strata) मिलते हैं वे पहिले आग, वायु और जलके ही कारण बने होंगे। क्योंकि भूगर्भ विद्याके जानने वालोंने पृथ्वीकी बनावटको बड़े ध्यानसे देखा है, वे जानते हैं कि बर्फ़की टक्करसे समुद्रके किनारेके पहाड़ों की चट्टानें चूर २ हो कर आकर्षण शक्तिकी सहायतासे नीचे पहुंच जाती हैं। यहां नदियोंके प्रवाह में पड़कर घिस जाती हैं और रेत, तथा कीचड़ बनकर समुद्रमें पहुंचती रहती हैं। यह क्रम बहुत प्राचीन समयसे जारी है। इसी प्रकार ज्वाला मुखी पहाड़ोंके उबल पड़नेपर जो पिघले हुये पत्थरोंकी धारायें तथा राखके ढेर बन जाते हैं, वे धीरे २ इकट्ठे होकर थोड़े ही दिनोंमें उस जगहकी सूरत शकलमें कुछका कुछ परिवर्तन कर देते हैं। बस इन्हीं घटनाओंके कारण पृथ्वी नित्यप्रति विभिन्नता प्राप्त करती जाती है।

भूगर्भ विद्यासे ही हमें यह पता चला है कि संसारके छोटे २ पहाड़ ही बहुत पुराने हैं और उनके सामने हिमालय बिलकुल ही नया है। इसी प्रकार समुद्र तलका भी हाल है। प्रशान्त महासागर जो सब समुद्रोंसे अधिक गहरा है बहुत प्राचीन नहीं है। इन अनुमानोंका परिणाम वैज्ञानिक भाषामें यों कहा जायगा कि पृथ्वी तलकी ऊंचाईमें सदैव परिवर्तन होता रहता है। इसी परिवर्तनके कारण हमारी पृथ्वीका आज दिन कोई भी भाग किसी दूसरे भागसे समानता नहीं रखता। बहुत स्थानोंपर तो मील मीलकी

दूरीपर ही विभिन्नताका पता चलता है। परन्तु इसीके साथ २ प्राकृतिक परिवर्तन भी जारी रहा है। जैसे २ पृथ्वी ठंडी होती गई और उसका चिप्पड़ जम कर ठोस होता गया वैसे ही इसके जुदे २ स्थानोंकी गरमीमें भी फ़र्क पड़ता गया। जो भाग सूर्यके ठीक सामने था वह अधिक गरम रहा और दूसरा भाग जो सामने नहीं था उसकी अपेक्षा ठंडा रहा। इस क्रमके जारी रहनेके कारण यह अन्तर और भी अधिक बढ़ता गया, यहां तक कि आज दिन यह इतना अधिक बढ़ गया है कि हम पृथ्वीके कुछ भाग ऐसे पाते हैं जहां हमेशा बर्फ़ पड़ा करती है, और जहां जाड़ा और गरमी दोनों हीएकसे रहते हैं। पृथ्वीके अन्य भागोंमें इसी अन्तरके कारण सदैव गरमीका ही मौसम मौजूद रहता है। इसके अतिरिक्त हमारी पृथ्वीके तल भागमें ऊंचाई और गहराईके उपस्थित रहनेके कारण जल और थलपरकी आबहवामें फर्क़ पड़ गया है। यह आबहवाका फर्क़ भी उतना ही अधिक मौजूद है जितना कि ऊंचाई और गहराई का है। अतः पृथ्वीके प्रत्येक भागमें इतना बड़ा अन्तर देखकर यह बात स्पष्ट ही सिद्ध है कि पृथ्वीकी प्राचीन और अर्वाचीन अवस्थामें बहुत बड़ी विभिन्नता मौजूद है।

अब यदि इस विषयके प्रतिपादन करनेके लिये हम कुछ और आगे बढ़ें और पृथ्वीपर रहने वाले जीव जन्तु तथा वृक्षोंकी उत्पत्तिपर ध्यान दें तो हमें यहां भी इसी सिद्धान्तकी सार्वभौमिकताका पता चलेगा। जीव विज्ञान वेत्ताओंके अनुसंधान द्वारा अब यह सिद्धान्त निश्चित हो गया है कि हर प्राणीका विकाश पहिले साधारण अवस्थासे प्रारंभ होकर मिश्रित (complex) अवस्थाको प्राप्त होता है। तथा आदिम प्राणीका शारीरिक संगठन, उसके अवयवोंकी बनावट आदि बहुतही साधारण थीं परन्तु विकाश सिद्धान्तके अनुसार जैसे २ यह प्राणी बढ़ता गया है वैसे ही उसकी इस साधारणताका लोप होकर उसमें जटिलता आती गई। परन्तु यदि हम इसी सिद्धान्तको प्रत्येक जीव और वृक्षकी उत्पत्ति का रहस्य जानकर प्रतिपादन करना चाहें तो हमें अवश्य ही बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। इस सिद्धान्त के निश्चित करने के लिये हमें यह जान लेना चाहिये कि हमारी पृथ्वीके अर्वाचीन जीव जन्तु और वृक्ष प्राचीन समयसे विभिन्न हैं अथवा नहीं। परन्तु इस तुलनात्मक सिद्धान्त को निश्चित करलेना बहुत कठिन प्रतीत होता है; क्योंकि अब प्राचीन समयके जीव, जन्तु और वृक्ष कहांसे लाये जायें। दूसरी कठिनाई यह है कि पृथ्वीका अधिकांश भाग जल मग्न है। शेषका यह हाल है कि वहां अभीतक भूगर्भ विद्या विशारदोंके चरण बड़ी मुश्किलसे पहुंच पाये हैं। इङ्गलेण्ड सरीखेके उन्नत देशके हर भागकी अच्छी प्रकार जांच परताल नहीं हो पाई है; फिर भला अन्य देशोंका तो कहना ही क्या है। ऐसी अवस्थामें यह पता ठीक २ लगा लेना कि किस समयमें किस प्रकारके और कौन २ से जीव जन्तु विद्यमान थे बहुत कठिन प्रतीत होता है। इस कठिनाईका तीसरा कारण यह है कि इस संसारमें प्रति क्षण न मालूम कितने प्रकारके जीवोंका नाश होकर न मालूम कितने नये नये जीवोंकी सृष्टि होती चलीजा रही है और न मालूम किस किस स्तरका रूपांतर (metamorphosis) हो गया है और होने वाला है। ऐसी अवस्थामें इन जीवों और वृक्षोंके विषयमें कोई सिद्धान्त स्थिर कर लेना बड़ा दुष्कर कार्य्य जान पड़ता है।

भूगर्भ विद्याकी प्रारंभिक अवस्थामें जिसे अभी १०० वर्षसे अधिक समय नहीं हुआ है किसीको भी यह विश्वास नहीं हो सकता था कि पृथ्वीके स्तरोंमें पृष्ठमें वंशीय (Vertebrate) जीवोंके अस्थि पिंजरोंका पता लगेगा। उस समयके लोगोंका अनुमान था कि इन स्तरोंके खोदनेसे मछलियोंकी हड्डी पसली आदिक का मिल जाना कोई आश्चर्य्य जनक बात नहीं है परन्तु उन्हें यह कभी

ध्यान नहीं आया कि सर्पयोनिज जीव भी कभी इसी प्रकार पाये जा सकेंगे। इसी प्रकार उस युग-के विद्वानोंको स्वप्नमें भी यह बात नहीं आई थी कि पृथ्वीके इन अंतरंग भागोंमें स्तनपायी जीवोंकी भी अस्थियां प्राप्त हो सकेंगी। इसी-लिये उपरोक्त कठिनाइयोंके भयसे निराश होकर वैज्ञानिक अनुसंधानमें अकर्मण्यता दिखलानेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता; परन्तु आधुनिक अनुसंधानकी सफलतासे यह भी अनुमान कर लेना अनुचित मालूम होता है कि हमें आदिम कालीन योनिजोंका पता चल गया है। क्योंकि जिन स्तरोंको हम आज प्राचीनतम विचारे बैठे हैं, कौन कह सकता है कि उनसे पूर्वके स्तरोंका पता लग जाना असंभव है, तथा वे भी जल, वायु अग्नि आदिक शक्तियों के प्रचंड प्रभावसे अनेक परिवर्तित अवस्थाओंमें होकर नहीं गुज़र चुके हैं।

यदि हम यह मान लें कि प्राचीनतम स्तरोंमें अग्निके प्रचंड प्रभावसे रुपान्तर होगया है तो हमें यह भी अवश्य मालूम करना पड़ेगा कि, यह रूपाँतर कब प्रारंभ हुआ। इसका निश्चय कर लेनेमें हम असमर्थ हैं। अतः यह बात सत्य है कि जिन (sedimentary) उच्छिष्ट स्तरों को हम (Paleazoic) प्राथमिकके नामसे अबतक पुकार रहे हैं वे वास्तव में आदिम कालीन नहीं हैं वरन् अपने सुभीते के लिये ही हमने उन्हें यह नाम देना उचित समझा है। ऐसी अवस्थामें क्या इस बातमें किसीको शक हो सकता है कि पृथ्वीके जीवन-शास्त्र विषयक इतिहास की हमारे पास बहुत कम सामग्री प्राचीन कहलाने योग्य मिल पाई है। इससे यह सिद्ध हो गया कि इस ओर कुछ अधिक तथ्य मिलना बड़ा कठिन है। परन्तु फिर भी हमें कहना ही पड़ेगा कि यथोचित साक्षी न मिलने पर भी, जहां तक अनुसंधान ने हमारा साथ दिया है उससे यह विदित होगया है कि मिश्रित योनिजकी सृष्टि हुए अभी बहुत युग नहीं गुज़र पाये हैं और जैसे २ समय बढ़ता गया है वैसेही नये २ और विभिन्न आकर प्रकार वाले योनिजों की सृष्टि उत्पन्न होती चली गई है। हम अपने विचार की पुष्टि के लिये एक उदाहरण देकर पाठकोंको समझानेकी चेष्टा करेंगे।

[असमाप्त।

अद्भुत यंत्र

(एक वैज्ञानिक कहानी)

(लेखक प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी बी०, एस०. सी०,)

(१)

"मिसरानी" बाबूजी तो आज भी न खायंगे; आग वाग बुझाकर सोओ। मिश्रानीजी बोली "कौन! महरा? क्या आज फिर निगोड़े बाबू (हंस कर) हैं! हैं! मुझसे कहतेहो नहीं बनता। क्या कहैं हैं उनको, निवारम बाबू आये हैं? तो फिर कल ही की तरह आज भी सबेरा होगा—मैं यहीं सोती हूं कभी रातमें बाबूजी को खानेकी याद आये तो मुझे बुला लेना। क्या तमाशा है! देखो तो सही; खाना पीना सब भूल गये हैं। बहूजीके नाकों दम रहता है; रातों रात बिचारी जागा करती थी। उनको तो अब ननिहालमें आराम मिलेगा; पर इनकी बन आई है। बड़े बाबू कहा करते थे "मिश्रानी यह लड़का बड़ा बुद्धिमान होगा"। अब निकली बुद्धिमानी! सिवाय उन लकड़ीके टुकड़ों और तारके गुच्छों के और किसी चीज़ पर ध्यान ही नहीं है; न मालूम क्या कर रहे हैं क्या बना रहे हैं। इस अंग्रेज़ीकी पढ़ाईने सब लड़कोंको ख़राबकर दिया। विनोदी बाबूके लड़के-का क्या हाल है? अपनी बहूको लिये २ फिरता है शिव २! राम २! शरम न लाज—मैं इतनी बुढ्ढी हो गईपर आजतक किसी मर्दको मुंह नहीं दिखाया। वो तो ठेटर (थियेटर) में बाईकोप (बायस्कोप) में सब जगह घूमती फिरती है उसीका क्या? बड़े लल्लाके घरमें अब क्या हाल है, वहां भी तो बूट फूट चलने लग गये हैं—कलियुग आगया

घोर कलियुग ! अब तो किसी तरह आखें बन्दहो जांय सोई अच्छा ! कोई अपनी मर्यादामें रहै भी उसकी यह दशा है। वैसे ही वह विरजन भी रात दिन किताब ही पढ़ा करता है बी० ए० पास करके भी नौकरी नहीं करता। उसकी बहू कहा करती है कि "मिश्रानीजी जब हमारे बाबूजी नौकर हो जावेंगे तब तुम्हें तीरथ कराऊंगी'। कहांसे नौकर होते हैं; वो तो कौंसिलमें जानेको कहता है क्या होती है वह कौंसिल ? अभी वकालत पढ़ेगा फिर न मालूम और क्या २ पास करेगा तब कहीं कौंसिल मिलेगी। पहिले ज़मानेके लोग थोड़ा पढ़ कर नौकरी कर लेते थे फिर धीरे २ बढ़ जाते थे। अब तो हाल ही कुछ और है; बुड्ढे होने तक पढ़ते रहते हैं। फिर यह तमाशा। बिचारी बहू पर रहम आता है कल उसके पास गई थी, कितनी भली औरत है, बिचारी ने दो बड़े बड़े आम मुझे ज़बरदस्ती देही दिये। वोतो अच्छा हुआ बाप खाते पीते लोग है नहीं तो बुरी दशा होती क्या... " महरा ! कहां तक खोपड़ी खाली करोगी। बुढ़िया है कि पानियर अख़बार तमाम कलकत्ताके लड़कन की गिन्ती कर डाली; मुंहमें एक दांत नहीं, पर ज़बान ऐसी चलत है जैसे रेल गाड़ी "

इधर बुढ़ियाकी रेलगाड़ी चलती गई और उधर मेहरा अपनी अढ़ाई चावलकी खिचड़ी पकाता गया। न मालूम यह कबतक जारी रहा पर इतना निश्चय है कि आधी रात होने पर दोनोंको निद्रा देवीने आ दबाया।

पाठक ! यह नारद मुनिकी नानी बुढ़िया और टर्रे खाँ मेहरा हमारे नायककी चाकरीमें हैं जिनका हाल हम आपको सुनाते हैं। बाबू नलिनीकान्त घोष एम. ए. बी. एल. सी आई. ई कलकत्तेके एक नामी वकील हो गये हैं। आपने सन १८७० ईस्वीमें बी. ए. पास कर स्कूलमें नौकरीकी और वहींसे एम. ए. और बी. एल की परीक्षा पास कर वकालत करना आरम्भ कर दिया। आप बड़े योग्य पुरुष थे और आपको वकालतमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। अपनी भलाईसे आप कुछ ही समयमें सारे समाजमें मशहूर हो गये और सब सामाजिक कार्योंमें अग्रसर रहने लगे। सरकारने भी आपकी समाज सेवासे प्रसन्न हो आपको सी. आई-ई की उपाधि प्रदानकी।

आपके दो पुत्र थे उनमेंसे बड़ेका नाम हरीकान्त घोष था। यही हमारी कहानीके नायक हैं। हरी बालकपन से ही पढ़ने लिखनेमें सबसे पहिले नंबर रहते थे। १५ वर्षकी अवस्थामें आपने मैट्रीक्युलेशन पास किया और यूनीवर्सिटीमें प्रथम रहे। तदुपरान्त आपने प्रेसीडेन्सी कालिजसे बी. ए. परीक्षा पासकी। इसमें भी आप प्रथम ही रहे। आपको सबसे अधिक प्रेम विज्ञानसे था इस विषयमें आपको बालकपन से ही रुचि थी। जब आप मैट्रीक्यूलेशनमें पढ़ते थे तो आपने अपने साइन्स मास्टरको प्रयोग करते समय दो एक बार टोका था। अपने पिताकी आज्ञासे आपने दो एक विद्युतघट अथवा दो एक और छोटे मोटे यंत्र अपने घरमें मंगवा लिये थे और इनसे आप सदा प्रयोग किया करते थे। आपके पिता तथा उनके और मिलने वालोंको निश्चय था कि यह लड़का कुछ न कुछ नई बात निकालकर अपना नाम प्रख्यात करेगा। बी. ए. के उपरान्त हरीकान्तने विद्युत शास्त्रमें एम. ए. पास किया अब भी आपने ही सबसे अधिक नम्बर प्राप्त किये।

अब इनके पिताका विचार इनको विलायत भेजनेका हुआ पर अभी बंग समाज छूत छातके झगड़ोंसे बरी नहीं हुआ था; अभी समुद्रयात्रा बंगालियोंकेलिये टेढ़ी खीर थी; दो एक युवक जो समुद्रयात्रा कर आये थे बिरादरीसे अलग कर दिये गये। अभी लोग धर्मके नाम पर अपने पुत्रोंको भी त्यागनेमें नहीं हिचकते थे। ऐसी दशामें समाजके बीच रहते अथवा संसारके व्यवहारमें फंसे हुए समाजके विपरीत चलनेका साहस वकील साहबको न हुआ। आज कुछ मित्रोंसे वादविवाद हुआ, कल स्त्रीने गिड़गिड़ाकर धरमके नामपर दुहाई

दी, अगले दिन पुरोहितजी से शास्त्रार्थ छिड़ गया; योंही सोच विचारमें एक वर्ष पूरा हो गया और हरीकान्तका विलायत जाना निश्चय न हो पाया। अंतमें अपने ज्येष्ठ भ्रातासे सम्मति लेनेके लिये वकील साहबने पुरी जानेका विचार किया। दो पहरको जहाज़ चलने वाला था, वकील साहब ठीक मुहूर्तपर घरसे चल निकले और घाटपर पहुंच जहाज़पर सवार हुये, जहाज़ने लंगर उठाया और आनन फ़ाननमें बंगालकी खाड़ीमें जा घुसा। १० बजे रात तक सब ठीक रहा पर इस समय बड़ा भारी तूफ़ान समुद्रमें उठ आया और कुछ देर डगमगा कर सब यात्रियोंको ले जहाज़ रसातल पहुंचा। वकील साहबके डूबनेका शोक समाचार कलकत्ते पहुंचा, घरमें हाय तोबा मच गई; हा हा कार पड़ गया; तमाम शहरमें लोग शिव!२ राम!२ ही कहते सुनाई दिये। इनके पुत्रोंसे सहानुभूति प्रगट करनेके लिये बड़ी भारी सभा की गयी। इधर इनके पास सहस्त्रों सहानुभूति सूचक पत्र आये।

पिताजीका बारहवां किया ही था कि इनकी माता को जो पति वियोगसे खिन्न हो गई थीं ज्वर आने लगा। कई प्रकारकी औषधियां इनको दी गईं पर कुछ लाभ न हुआ अन्तमें वकील साहबकी मृत्युके एक मास बाद यह देवी भी स्वर्गलोकको सिधारीं।

इस प्रकार माता पितासे छुट्टी पा हरी बाबू विद्युत शास्त्रके पढ़नेमें दत्तचित्त हो गये। तमाम दुनियांके वैज्ञानिक अख़बार इनके पास आते थे। विद्युतके विषयमें जितनी पुस्तकें छपतीं आप सब ही मंगवा डालते, इस शास्त्रसे आपका इतना प्रेम बढ़ गया था कि कभी २ आप खाना पीना तक भूल जाते थे। अपनी स्त्रीको उसके मां बापके पास भेज आप अकेले रहा करते और दिन रात विद्युतके प्रयोग किया करते। आपके साथ काम करने वाले एक निवारनचन्द्र विस्वास आया करते थे ये वही महाशय हैं जिन्हें बूढ़ी मिश्रानी निगोड़े निवारम बाबू कहती हैं।

(२)

एक ही पेड़के दो फूलोंमेंसे एक को मालिन चुनकर गूंधती है और वह फूल किसी महानुभावके कंठकी शोभा बढ़ाता है। दूसरा डाल हिलने से पृथ्वीपर गिर पड़ता है और सड़ कर कीड़ोंका ग्रास बनता है।

पाठक, यह संसारका नियम है, कोई बड़ा है तो कोई छोटा, कोई राजा है तो कोई रंक, भगवानकी लीला अद्भुत है। क्या कारण है कि कभी २ एक ही बापके दो बेटोंमेंसे एक बड़ा पराक्रमी और बुद्धिमान व भाग्यशाली होता है और दूसरा सब प्रकार अभागा?

किया किसीको धनी द्रव्य दे बहुत सा,
दिया किसीको राज काज सब देशका।
बना किसीको रंक फिराया दर बदर,
मांगे टुकड़ा नहीं मिले यह की क़दर।
लीला लीलाधामकी अद्भुत और अनन्त है,
लाखों ही भटका किये, उसका मिला न अन्त है।

उत्तर सब यही देते हैं कि "पूर्व जन्मके संस्कार"! ऐसा ही होगा—

यही भेद बाबू हरीकान्त और बाबू निवारनचन्द्रमें है। एक ही समाजके दो बालक, एक साथ खेलने कूदने वाले, एक साथ रहे और साथ ही पाठशालामें पढ़कर पास हुए-हरी पहिले दर्जेमें पास हुये और निवारन तीसरेमें।

क्या निवारन मेहनत कम करता था? नहीं यह बात नहीं थी-ये दोनों बड़े गाढ़ेमित्र थे साथ ही रहते और पढ़ते थे, पर भगवानकी दैन-हरीकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और निवारनकी साधारण। इसके अतिरिक्त हरीके पिता धनवान थे पर निवारनके बाप बंगाल बैन्कमें २५) रु० माहवार के बाबू थे।

इनकी सामर्थ न थी कि निवारनको कालिजमें पढ़नेका खर्च दे सकें। इस कारण मेट्रिक्यूलेशनके बाद हरी तो कालिजमें भर्ती हुये पर निवारनको

नौकरीकी खोज करनी पड़ी। पाठक जानते हैं कि मेट्रिककी क्या पूछ होती है-कहीं दफ़्तरमें बाबू बन गये तो बहुत जानो। पर बिचारे निवारनको यह भी नहीं मिल सकती थी। कारण-इनका लिखना ऐसा ख़राब था कि ये स्वयं ही उसे पढ़नेमें असमर्थ थे। बड़ी कठिनाईसे तो मेट्रिक हुए फिर भी नौकरी न मिली। समाचारपत्रोंमें (Wanted) आवश्यकता ढूंढ़ा करते पर जहां भी क्लर्ककी आवश्यकताका इश्तहार होता वहीं यह लिखा रहता कि अपने ही हाथसे लिखी अर्ज़ी भेजो। तो फिर निबारनकी कहां दाल गलती? बिचारे अपने मन्द भाग्यपर रोने लगते। एक रोज़ शामको निबारन अपने पिताके साथ बैंकके बड़े साहबके पास पहुंचे और अपना सारा हाल कह सुनाया। साहबने बूढ़े बाबूजीसे सहानुभूति प्रगटकी और खेदसे कहा कि बैंकमें सुलेखक ही नोकरी पा सकते हैं।

इस प्रकार अंतिम आशासे भी हाथ धो निवारन सीधे हरी कान्तके पास आये और उन्हे अपनी दुख भरी कहानी कह सुनाई। हम पहिले ही कह आये हैं कि हरी निवारनको भाई की तरह प्यार करता था और इस कारण इनके दुर्भाग्य पर बड़ा दुखी हुआ।

निवारन—"अब तो हम कहीं परदेश चले जावें। कुछ तो काम मिलेगा-न मिला तो किसीकी धोती ही धोयेंगे और हमारे लिये क्या रक्खा है। एक छोटा भाई है उसको पढ़ानेका भार तुम पर सौंपते हैं...।" निवारन इतना कह कर गदगद हो गये और आगे कुछ बोल न सके।

हरी कुछ देर सोचते रहे। कहने लगे "अरे यार निवारन तुम इतने निराश क्यों होते हो? तुम्हारे योग्य काम मैं तुमको बताता हूं। तुम्हें बालकपनसे ही घड़ी इत्यादिके पुर्ज़े बिगाड़नेका शौक़ था। अब भी जो कोई यंत्र देख लेते हो उसके बारेमें पूछ ताछ करते फिरते हो। इससे यह प्रत्यक्ष है कि तुम्हारी स्वाभाविक रूचियंत्रसाज़ीकी ओर बहुत है; हम चाहते हैं तुम किसी यंत्रकारके साथ काम सीखो। यदि इसमें पक्के हो गये तो फिर क्या ही कहना है हम तुम मिलकर विद्युतके अच्छे अच्छे यंत्र बनावैंगे फिर रुपया और नाम दोनों हमारे ही हैं--कहो कैसी कही?"

निवारन—"यह तो ठीक है पर किस यंत्रकारके पास नौकरी ढूढ़ें? हाँ! ई-आई-रेलवेके कारख़ानेमें कहीं नौकरी मिल जाती तो सम्भव था कि मैं बिजली घरमें काम सीख लेता। पर वहां मुझे कौन पूछे? जिस जगह लोग बी. ए. एम. ए पास कर बड़ी कठिनाईसे भर्ती होते हैं वहां मुझसे कूड़ेको कौन नौकरी देगा?"

हरी०—"अरे यार खूब याद दिलाई! कारखानेके "फोरमैन" मि० पिचार्ड हमारे प्रोफ़ेसर पिचार्डके नातेदार हैं--कल कालिज जाते ही साहबसे कहूंगा। अगर कोई जगह हुई तो अवश्य तुम्हें मिल जायगी।"

इस उत्तरसे फिर निवारनकी जानमें जान आई; मुरझाई हुई आशालता फिर हरी हुई और ये उत्साहित हो अपने घर गये।

दूसरे दिन हरीने कालिज पहुंच अपने मित्रकी गाथा प्रोफ़ेसरसे कह सुनाई। प्रोफ़ेसर पचार्ड योंहीं भले मानस थे पर हरी जैसे योग्य और बुद्धिमान छात्रसे हर कोई खुश रहता था प्रोफ़ेसरने उसी क्षण टेलीफ़ोन द्वारा अपने चचेरे भाईसे निबारनके लिये बहुत ज़ोर देकर कहा और उनसे प्रण करवा लिया कि एक सप्ताह के भीतर निबारनको कोई जगह मिल जायगी।

ठीक एक सप्ताह उपरान्त निबारन २५) रु० पर कारख़ानेमें भर्ती हुये; अपनी रूचिका काम मिलनेसे इन्हें बहुत हर्ष हुआ और ये दत्तचित्त हो काम सीखने लगे। कुछ ही समय उपरान्त यह ४५) रु० मासिक वेतनपर स्थाई नौकर हो गये इस बीचमें इन्होंने गाड़ीको टकरानेसे रोकनेके लिये एक यंत्र बनाया। पर बिचारोंका दुर्भाग्य

मि० पिचार्डको लम्बी छुट्टीपर विलायत जाना पड़ा और उनकी जगह एक बड़ा द्रोही युवक आ डटा-यह बाबू जी की तीक्ष्ण बुद्धिसे संतुष्ट न रहा और इनको इसने किसी प्रकार सर उठाने नहीं दिया। अस्तु ग़रीबी, नहीं ! नहीं ! महा ग़रीबीकी दशामें निबारन कारख़ानेकी चक्की पीस अपना जन्म बिताने लगे। (३)

यूरोपके वैज्ञानिकोंमें इस समय बड़ी खल बली मची हुई है। पियर्स ओलिवर लौज, मारकोनी,इत्यादि, वैज्ञानिक बेतारके समाचार भेजनेका प्रयोग कर रहे हैं। यह बात जर्मनीके वैज्ञानिक हर्ज़ साहेब १८८७ ईस्वीमें बता चुके थे कि विद्युतकी लहरें होती हैं और जिस प्रकार पानीमें पत्थर फेंकनेसे लहरें उत्पन्न हो चारों ओर फैलती हैं उसी प्रकार किसी स्थानपर विद्युत उत्पन्न करनेसे चारों ओर वायुमंडलमें विद्युतकी लहरें फैलने लगती हैं। बिचारे हर्ज़ केवल ३२ वर्षकी अवस्थामें संसारको यह सिद्धान्त बता देव लोकको सिधारे। इनके बाद कई वैज्ञानिक इन लहरोंसे प्रयोग करने लगे और अंतमें इटलीके इनजीनियर मारकोनीने यंत्र रचकर संसारको यह बतला दिया कि किसी नियमित प्रकारकी विद्युत लहरें हम वायुमें पैदा कर सकते हैं पर अभी यह निश्चय नहीं हो पाया कि इन लहरोंका अन्य स्थानवालेको क्योंकर पता चल सकेगा। यह निश्चय हो जानेपर बेतारके तार बड़ी सुगमतासे भेजे जा सकेंगे।

हमारे हरी बाबूको इन सब बातोंका पता था आपको यह भी ज्ञात था कि कौन वैज्ञानिक किस किस प्रकारके प्रयोग इन लहरोंके ज्ञात होनेके लिये कर रहा है। अहा ! यदि हरी बाबू ही इसकी कोई सुगम रीति बतादें तो क्या ही अच्छा हो ? नामका नाम हो और धन भी खूब पैदा किया जाय।

बस बाबूजीको रात दिन इसी बातकी चिन्ताग्रस्त किये रहती थी और आप सदा यही सोचा करते थे कि कैसा यंत्र इन लहरोंको ग्रहण करनेके लिये बनाया जाय। किताबोंके ढेरोंके बीचमें बहुतसे यंत्रोंका ढाँचा हाथमें लिए बाबूजी रात दिन डटे रहते थे। खाना पीना तक हराम था। उठते बैठते सोते जागते इसी धुनमें आप लगे रहते थे।

बाबूजीमें एक बातकी बड़ी भारी कमी थी। आप बहुत कुछ जाननेपर भी केवल किताबी कीड़े थे, व्यवहारिक रीतिसे आप कोई भी काम नहीं कर सकते थे। यह आप भले ही बतावें कि इस प्रकार बिजलीके तारोंको जोड़ इस प्रकारका यंत्र लगा यह फल निकलना सम्भव है। पर यहीं तक आपकी दौड़ थी। यंत्रकारीकी ओर तो आपकी रुचि ही न थी। इस कारण इस बड़े कार्यमें आपको किसी सहायक की आवश्यकता हुई। सहायक आपको ऐसा चाहिये था कि जिस पर आप पूर्ण विश्वास कर सकें। जिससे आपको यह आशा कदापि न हो कि वह आपके बनाये यंत्रको अपना कहकर प्रचलित करे।

सौभाग्यसे ऐसा सहायक आपको मिल सकता था। और यह सहायक थे बाबू निवारनचन्द्र विस्वास। चार पांच बरस कारख़ानेमें काम कर आपने यंत्रकारीमें दक्षता प्राप्त कर ली और जैसा हम कह आये हैं दो चार यंत्र भी आपने नये बनाये थे।

बालकपनेसे परस्पर प्रेम करनेवाले एकही साथ खाने, पीने, खेलने, कूदने वाले हरी और निवारन आपसमें एक दूसरेको कदापि धोखा न देंगे। इसके अतिरिक्त हरी न होते तो निवारनका निर्वाह होना भी कठिन हो जाता। हरी बाबूहीने तो अपने प्रोफ़ेसरसे कहकर इनको कारख़ानेमें नौकर करवाया था। क्या निवारन इस अहसानको भूल जावेंगे ? नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। पर निवारनको विद्युतका हाल तो मालूम नहीं यह किस प्रकार हरीबाबूको सहायता दे सकते हैं ?

कोई चिन्ता नहीं। हरी इनको पहिले विद्युतके साधारण नियम समझावेंगे और फिर धीरे २ विद्युतकी लहरोंका हाल बतलावेंगे आशा है दो

एक दिनमें निवारन इन्हें सहायता देने योग्य हो जायं।

यही सोच हरीने निवारनको अपने घर बुलवाया और अपने चित्तकी सारी बातें उनसे कह सुनाईं। जैसा हरीबाबूने सोचा था निवारन विद्युतके बारेमें कुछ भी नहीं जानते थे। इस कारण यह निश्चये हुआ कि हरी निवारनको कलसे विद्युतपर दो एक व्याख्यान दें और निवारनका इस विषयसे भलीभांति परिचय करा दें।

[असमाप्त]

प्रकाश विज्ञान।

'तरंगे'

[ले०-प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस. सी.]

(गतांकसे सम्मिलित)

जब बहुतसे गोले एक रस्सीमें बंधे हों और रस्सी तनी हुई हो तो उनमेंसे कोई एक गोला निकटवर्ती दूसरे गोलोंको हिलाये बिना नहीं हिल सकता। जब एक गोला अपनी जगहसे हटेगा तो उसके पास वाले दूसरे गोले भी बंधनोंके खिचावके कारण थोड़े बहुत अवश्य संचालित हो जावेंगे। इस प्रकार एकके पश्चात् दूसरा, फिर तीसरा तथा सबही गोले हिल जावेंगे; यदि पहिला गोला पुनः अपने स्थानपर लौट आवे तो अन्य सब भी यथा समय अपने २ पूर्व स्थानपर पहुंच जावेंगे। यदि पहिला घड़ीके लटकनके समान कभी इधर कभी उधर चले तो और सभोंको भी उसी प्रकार चलना पड़ेगा।

किन्तु यह उसी वक्त तक घटित हो सकता है जबकि रस्सी तनी हुई हो। रस्सीका ढीला होना और उन गोलोंका बन्धन रहित होना प्रायः एकही सा है। अन्तर केवल इतना ही है कि गोलोंके सर्वथा पृथक होने पर एक गोलेको चाहे जहां ले जाइये दूसरा गोला कभी न हिलेगा। ढीली रस्सी होनेपर, जबतक वह तन न जाये तबतक तो दूसरा गोला न हिलेगा किन्तु ज्यों-ही रस्सी तनी कि दूसरे भी हिल जायेंगे। ढीला-पन जितना अधिक होगा उतने ही अधिक समय-के बाद दूसरा गोला पहिलेका अनुगामी बन सकेगा। इससे यह भी परिणाम निकला कि तनाव जितना ही अधिक होगा उतनी ही शीघ्रता से दूसरे गोलेमें गति पहुंचेगी।

इसी बातको संक्षेपमें यों कह सकते हैं कि बन्धन स्थितिस्थापक (Elastic) होना चाहिये। साधारणतया रबड़को स्थितिस्थापक पदार्थ कहते हैं और ऐसा कहनेका हम लोग यह अर्थ समझते हैं कि यद्यपि रबड़को खींचनेसे वह बढ़ जाती है तौ भी खींचने वाला बल हटा लेनेपर वह पुनः ज्योंकी त्यों हो जायगी। उसे स्थिति-स्थापक इस कारण नहीं कहते कि वह खिच जाती है किन्तु इसलिये कि वह अपनी पूर्व स्थितिपर क़ायम रहनेका प्रयत्न करती है; और खिचाव कम होते ही तुरन्त ज्योंकी त्यों हो जाती है। जिस पदार्थकी स्थिति परिवर्तन करनेमें और भी अधिक बल लगे और बल हटाने पर वह पुनः पूर्व स्थितिको प्राप्त हो जाय तो वह पदार्थ रबड़ से भी अधिक स्थितिस्थापक होगा। फ़ौलाद और कांच ऐसेही पदार्थ हैं जिनमें स्थितिस्था-पकता रबड़से कहीं अधिक है। पानीमें भी यह गुण बहुत अधिक है। ऐसे भी बहुतसे पदार्थ हैं जिनकी स्थितिमें, आकृति अथवा आयातनमें परि-वर्तन करनेमें बहुत बल लगाना पड़ता है किन्तु एक बार विकृत हो जाने पर वे पुनः पूर्व स्थिति उपलब्ध नहीं कर सकते, जैसे सीसा। वे स्थिति-स्थापक नहीं हैं। उपरोक्त प्रयोगमें रस्सी जबतक ढीली रहती है तबतक वह स्थितिस्थापक नहीं। तन जानेपर उसमें यह गुण आ जाता है। अतः बन्धन जितना ही अधिक स्थितिस्थापक हो

उतनीही शीघ्रतासे गति एक गोलेसे दूसरे गोले-तक पहुंच जावेगी।

किन्तु यह आवश्यक नहीं कि गोलोंमें बन्धन किसी पौद्गलिक पदार्थका ही हो। यदि उनमें परस्पर आकर्षण हो तब भी एकके हिलानेसे सभी हिल जावेंगे। अपसरण होने पर भी यही होगा। अतः किसी भी स्थितिस्थापक पदार्थके विषयमें हम यह कल्पना कर सकते हैं कि उसके परमाणु आपसमें ऐसे ही बंधनोंसे बंधे हुये हैं। पानीको लीजिये। उसमें भी असंख्य परमाणु ऐसे बंधनों द्वारा बंधे होनेके कारण एक पत्थर डाल देनेसे अर्थात् कुछ परमाणुओंको नीचेकी ओर ढकेल देनेसे अन्य परमाणु भी नीचेकी ओर चलने लगेंगे। निकटवर्ती परमाणु शीघ्र ही चलेंगे और दूरवर्ती कुछ समयके बाद; इस प्रकार सारे पानीमें आन्दोलन उत्पन्न हो जायगा। यह सब कोई जानता है और ऐसे ही आन्दोलनको तरङ्ग कहते हैं।

किन्तु यह घटना यहीं ख़तम नहीं हो जाती। जो परमाणु नीचेकी ओर सरक गये हैं उनका क्या होता है, क्या वे सदाके लिये नीचे ही रह जाते हैं? यदि ऐसा हो तब तो पानीकी सारी सतह नीची हो जाय, और तालाबके पानीका आयतन भी कम हो जाय। किन्तु यह बात असम्भव है। स्थितिस्थापकता ही उन परमाणुओंको पुनः ऊपरकी ओर ढकेल देती है और वे अपना पूर्व स्थान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। जब वे पर-माणु ऊपरकी ओर उठने लगते हैं तब धीरे २ और सब भी उनके अनुगामी बनने लगते हैं। पहिलेकी भांति फिर एक तरङ्ग बन जाती है जो पहिली तरङ्गके पीछे २ चलती है। पहिली तरङ्गमें परमाणु नीचेकी ओर चल रहे थे किन्तु इसमें वे ऊपरकी ओर चलते हैं।

ऊपरकी ओर चलते २ जब परमाणु अपने पूर्व स्थानपर पहुंचते हैं तो क्या वे सहसा ठहर जाते हैं? इस प्रश्नकाउत्तर ऐसेहीअन्य प्रश्नोंके उत्तर पर निर्भर है। क्या दोलक, घड़ीका लटकन या झूला ऊपरसे नीचेकी ओर आते समय सहसा अपने निश्चल अवस्थाके स्थानपर ठहर जाते हैं? फ़ौलादकी पत्तीको एक सिरेसे पकड़कर खींच-कर छोड़देने पर क्या वह पुनः सीधी होतेही ठहर जाती है? ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि पूर्व बलके कारण इतनी दूर चलते २ उसमें कुछ वेग उत्पन्न हो जाताहै और न्यूटनका नियम कहता है कि जबतक कोई विरुद्ध बल न लगाया जाय, चलती हुई वस्तु अपने आप नहीं ठहर सकती। तथा यह बल कितनाही अधिक क्यों न हो, उसे वस्तुके ठह-रानेमें कुछ समय अवश्य लगेगा। इतने समयमें वे परमाणु अपने पूर्व स्थानसे कुछऊपर उठ जावेंगे। स्थितिस्थापकता उनका विरोध करते २ उन्हें ठहरा देगी और तब फिर उन्हें नीचेकी ओर खींच लेगी। और दूसरे परमाणु भी इसी तरह इनके साथ नीचेकी ओर खिचने लगेंगे।

दोलककी भांति ये परमाणु हज़ार दो हज़ार बार ऊपर नीचे नहीं जा सकते क्योंकि जो शक्ति हमने पहिले पहल कुछ परमाणुओंको नीचे ढकेलने-में लगाई थी, उसीमेंसे एक भाग ख़र्च करके दूसरे परमाणुओंमें गति उत्पन्न करते हैं। तब स्वयं उन-की गति कुछ कम अवश्य हो जाती है और जितनी दूर वे नीचेकी ओर जा सकते थे उतने ऊपर नहीं जा सकते। फिर नीचेकी ओर जाते समय और भी कम दूर जा सकेंगे। इस प्रकार घटते २ वे अंतमें ठहर जायेंगे। और यदि इस प्रकार शक्ति वितरण कुछ अधिक हुआ तो शायद एकही दो बार ऊपर नीचे जाकर वे स्थिर हो जायं। झूला भी हवा और बंधनकी रगड़के कारण थोड़ी देरमें ठहर जाता है। दोलक भी कुछ समयमें निश्चल हो जाता है। किन्तु जलके परमाणुओंपर यह प्रभाव बहुत अधिक होता है और वे बहुतही शीघ्र ठहर जाते हैं। यदि किसी कारणसे वे पहिले परमाणु ऊपर नीचे चलतेहो रहें तो वहांसे तरंगें भी चलती ही रहेंगी। जब वे नीचे जावेंगे तब वहांसे ऐसी

तरंगें चलेंगी जिनमें सब परमाणु नीचेकी ओर चल रहे हों, और जब वे ऊपरकी ओर जावेंगे तब ऐसी कि जिनमें सब परमाणु ऊपरकी ओर चलें। जितनी बार वे परमाणु ऊपर नीचे जावेंगे उतनीही तरंगे भी उत्पन्न होंगी।

इसके अतिरिक्त जब पहिले परमाणुओंने अपनी समस्त शक्ति न देकर उसका कुछ भागही समीपवर्ती परमाणुओंको दिया तो आवश्यक है कि ये दूसरे परमाणु पहिलेकी अपेक्षा कम दूर ऊपर नीचे जा सकेंगे। उनके बादवाले और भी कम और इसी प्रकार उत्तरोत्तर कमी होती जायगी। अर्थात् जो परमाणु तरंगके जितनी दूर होंगे उतनाही उनका कम्पविस्तार कम होगा। किन्तु जब किसी प्रकार पहिले परमाणुओंमें शक्ति बराबर पहुंचाई जाती है तब थोड़े समयमें दूसरे परमाणु भी उतनेही विस्तारसे भ्रमण करने लगते हैं। इससे यह नतीजा निकलता है कि जो शक्ति पहिले परमाणुओंको दी जाती है वही एकसे दूसरेके पास होती हुई दूरके परमाणुओंके पास पहुंच जाती है बीचमें उसकी कुछ भी क्षय नहीं होती। परन्तु यह बात तबही होती है जब तरंग केवल एकही दिशामें जावे। पानीमें कंकड़ डालनेसे तो तरंग चारों ओर फैल जाती है। अतः ज्यों ज्यों तरंग दूर जाती है त्यों त्यों परमाणुओंमें शक्ति विभाजित होती जाती है और दूरके परमाणुओंका कम्प-विस्तार कभी उतना नहीं हो सकता जितना पहले परमाणुओंका था।

दोलक और पानीके परमाणुओंके गमनकी समता इस बातमें भी है कि दोनों नियत समयमें एक कम्पन पूर्ण कर लेते हैं। दोनोंका गमन सामयिक होता है। पूरे कम्पनके समयको अनुकालिक समय (Periodic time) कहते हैं।

जिस समय पहिले परमाणु नीचेकी ओर यात्रा खतम करके पुनः ऊपरकी ओर चलने लगते हैं, उस समय दूरके कुछ परमाणु नीचेकी ओरही चलते होते हैं, और कुछ अधिक दूरके परमाणु तो अभी स्थिरही हैं ; क्योंकि गतिको एक परमाणुसे दूसरे तक पहुंचनेमें कुछ समय लगता है। इस प्रकार एकही समयमें पानीके कुछ परमाणु नीचेकी ओर चलते हैं, उनके पीछे वाले ऊपरकी ओर उनके भी पीछे वाले नीचेकी ओर उनके भी पीछे वाले पुनः ऊपरकी ओर; इस प्रकार इनके पीछे उन्नत और नत तरंगे चलती रहती हैं। एक नत तरंगसे दूसरी नत तरंग तक जो अंतर होता है उसे तरँगान्तर कहते हैं। मान लीजिये कि जितनी देरमें एक परमाणु नीचेकी ओर जाकर, फिर ऊपरकी ओर (जहां तक जा सकता है) पहुंचकर पुनः नीचेकी ओर चले और अपने पूर्व स्थानपर पहुंच जाय, तथा दूसरे कम्पनके लिये प्रस्तुत हो जाय और उतनी देरमें तरंग ४ फुट चली जाय। तो दूसरी नत तरंग वहांसे चलकर अनुकालिक समयमें (Periodic time) ४ फुट चली जायगी। पहिली चार फुट और आगे बढ़ जावेगी और तीसरी अब चलना प्रारंभ करेगी। अर्थात् दो नत तरंगोंका अन्तर सदा ४ फुट ही रहेगा। अनुकालिक समयमें (Periodic time) तरंग जितनी दूर चल सकती है उसीका नाम तरँगान्तर है ; यदि तरंगवेग 'व' हो और अनुकालिक समय 'स' तो तरँगान्तर $त = व \times स$ या $व = \frac{त}{स}$ तरंगोंके चलते २ व बदल नहीं सकता, और स स्थिर है ही, अतः त भी स्थिर हुआ। उन्नत तरंगोंमें भी यही अन्तर होता है क्योंकि एक उन्नत तरंगके ठीक अनुकालिक समयके (Periodic time) पश्चात् दूसरी उन्नत तरंग रवाना होती है। यह भी स्पष्ट है कि एक तरँगान्तरमें दो तरंगें हुईं। एक उन्नत और दूसरी नत। इन दोनोंमें अर्ध तरंगान्तरका अन्तर हुआ। वास्तवमें इन दोनों तरंगोंके समुदायको पूर्ण तरंग कहते हैं।

तरंगोंके बननेका जो वर्णन ऊपर दिया गया है उसमें सबसे अधिक महत्वकी बात यह है कि यद्यपि तरंग पानीकी सतहपर क्षितिज धरातलमें चलती है तो भी पानीके परमाणु उसके साथ नहीं

चलते। वे केवल ऊपर उठते हैं और नीचेकी ओर चले जाते हैं, और योंही अपने स्थानपर कम्पन किया करते हैं। इसका प्रमाण बहुत सरल है। तरंगोंमें एक लकड़ीका टुकड़ा डाल दीजिये। वह पानीपर तैरेगा। यदि पानीके परमाणु आगे बढ़ेंगे तो वह टुकड़ा भी उनके साथ चलेगा। किन्तु आप देखेंगे कि तरंगें उसके नीचेसे निकल जाती हैं और वह केवल अपने ही स्थानपर ऊपर नीचे कूदता रहता है। जो लोग तैरना जानते हैं उन्हें यदि बड़ी बड़ी लहरों में तैरनेका अवसर मिला है तो इन्हें ज्ञात होगा कि उन लहरोंमें वे किस प्रकार ऊपर नीचे होते थे किन्तु लहरके साथ आगे नहीं बढ़ते थे। जो चीज़ आगे बढ़ती है वह तो केवल गति या उस गतिको उत्पन्न करने वाली शक्ति है। पानीके परमाणु तो उस गतिको आगे बढ़ानेमें सहायता करनेकेलिये उछलते कूदते हैं। अब इन दो प्रकार की गतियोंकी भिन्नता जानना कुछ कठिन न होगा। एक तो तरंगोंकी गतिका आभास है और दूसरी परमाणुओंकी वास्तविक गति है जो सदा कम्पन रूप होती है।

तरंगोंकी बनावटको और भी अच्छी तरह समझनेके लिये एक उदाहरण लीजिये। मान लीजिये कि एकही ऊंचाईके कई मनुष्योंकी एक पंक्ति है। उनमेंसे पहिले मनुष्यसे कहिये कि वह घुटनोंको झुकाकर ५ सैकंडतक धीरे २ बैठनेका प्रयत्न करे। इस प्रयत्नमें मान लीजिये कि उसका सिर एक फुट नीचा होगया तब वह पुनः सीधा खड़ा होनेका प्रयत्नकरे और ५सैकंडमें उसका सिर पुनः अपने स्थानपर पहुंच जावे। इस मनुष्यके घुटनेझुकानेके एक सैकंडबाद दूसरे मनुष्य को भी वैसाही करनेकी आज्ञा दीजिये, इसके एक सैकंड बाद तीसरेको; और इसही प्रकार एक २ सैकंडके बाद औरोंकोभी ऐसाही करने दीजिये, उन मनुष्यों-के सिरोंकी सरल पंक्तिकी एक २ सेकंडके बाद क्या दशा होगी वह नीचेके चित्रसे स्पष्ट हो जायगी। इसमें सिरोंके स्थानमें बिन्दु रखदी गई है।

इस प्रकार उस शिरोंकी पंक्तिमें एक द्रोणि बन जाती है और वह आगेकी ओर बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होती है, एक सेकंडमें वह एक मनुष्य से दूसरेके पास पहुंच जाती है और ऐसा मालूम होता है कि तरंग आगे चल रही है, किन्तु प्रत्येक शिर वस्तुतः केवल ऊपर नीचे थोड़ासा हिलता है।
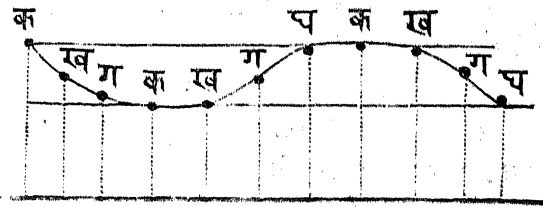
चित्र १

अब मान लीजिये कि उन स्वतंत्र व्यक्तियोंके स्थानमें जो हमारी आज्ञाका पालन करते हैं, हमारे पास बहुतसे परमाणु हैं जो एक दूसरेसे स्थिति-स्थापक माध्यम द्वारा बंधे हुये हैं। उनमें से एक क को नीचे ढकेलने से एक सेकंड बाद ख भी नीचेकी ओर चलने लगता है। तब ग भी खिसकना प्रारम्भ करता है। इसी प्रकार तरंग बन जाती है।

यही बात एक मोटी रस्सीको छतसे लटका कर भी देख सकते हैं। उसका नीचेका सिरा हाथमें पकड़कर ज़रा रस्सीको तान लीजिये, और हाथको रस्सीके समकोण दिशामें दाहिनी तरफ शीघ्रतासे झटका लगाकर पुनः अपने स्थान पर ले आइये। रस्सीका कुछ भाग संचालित हो जायगा और उसकी आकृति चित्र २ में अ$_{१}$ द$_{१}$ ब$_{१}$ के समान होगी। थोड़ी देर पश्चात्‌की आकृति नीचे-के चित्रोंमें दी गई है। अ द भाग रस्सीपर आगेकी ओर दौड़ता जान पड़ता है।

अब तक यह माना गया है कि पहिला व्यक्ति या परमाणु क एक वार चलकर अपने स्थानपर ठहर गया। किन्तु यदि वह वहां न ठहर कर पुनः

दूसरा तीसरा चक्कर लगावे तो और भी तरंगें बनेंगी जिनका चित्र नीचे दिया गया है। चित्र २ मेंअ$_३$ द$_३$ ब$_३$ । इनमें नततरंगके पीछे एक उन्नत तरंग ठीक वैसी ही बन गई है; और यदि वे परमाणु ठहर न जावें तो उसके पीछे पुनः एक नत तरंग बन जायगी। रस्सीमें भी झटका केवल दाहिनी तरफ न लगाकर साथ ही बायीं तरफ भी लगा दिया जावे और उसमें भी दाहिनी तरफ वाले झटकेके बराबर ही समय लगे तो उस रस्सीकी जो आकृति बनेगी वह चित्र २ में अ$_४$ द$_४$ ब$_४$ में दिखाई गई है।
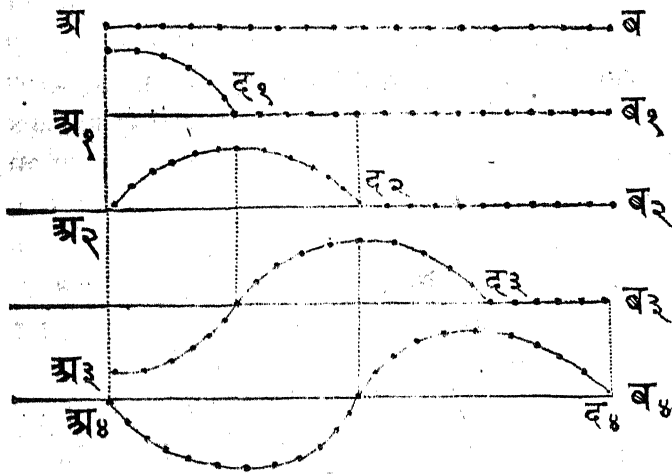
चित्र २

किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि तरंग चलने की दिशाके सम कोण दिशामें परमाणु गमन करें। वे तरंगकी दिशामें भी कम्पन कर सकते हैं। ऐसी दशामें ऊपरके चित्र पड़े होने की बजाय खड़े लिटालिये जायंगे इनके समझनेमें कोईकठिनाई नहीं। अ द का गमन ऊपर नीचे न होकर दाहिनी बाईं तरफ़ होगा। किन्तु यहां नत और उन्नत तरंगें नहीं हैं। केवल कहीं परमाणु अधिक निकट इकट्ठे हो गये हैं और कहीं कहीं वे एक दूसरेसे अधिक दूर हो गये हैं। अर्थात् जिस पदार्थमें ऐसी तरंगे चलें उसमें कहीं घनत्व अधिक और कहीं कम हो जाता है। उन्नत और नत तरंगोंके स्थानपर इसमें सघन और विरल तरंगें होती हैं। इसके अतिरिक्त इन तरंगोंमें जिन्हें अनुदैर्घ्य (longitudinal) तरंगें कहते हैं और पहिली प्रकारकी तरंगोंमें जिन्हे तिर्यक् तरंग (Transverse) कहते हैं और कोई विशेष भेद नहीं है। ऐसी तरंगोंको साधारणतया लोग नहीं जानते क्योंकि घनत्वकी घट बढ़को कोई नेत्रोंसे नहीं देख सकता। किन्तु वायुमें शब्दकी तरंगें ऐसी ही होती हैं।

यही नहीं। परमाणु सरल रेखामें न चल कर किसी वक्र रेखामें कम्पन करें तो भी तरंगे बन सकती हैं। गमनपथ चाहे वृत्ताकार हो, चाहे वृत्ताभास हो, चाहे अन्य किसी आकारका, आवश्यक केवल यह है कि गमन अनुकालिक होना चाहिये। किन्तु इन तरंगों पर विचार करनेको यह स्थान उपयुक्त नहीं है।

[असमाप्त]

रोगके जीवाणु

[लेखकः—प्रो० तेजशंकर कोचक बी. एस-सी.]

(पूर्वा कसे सम्मिलित)

जीवाणुओंके द्वारा बहुत तरहके रोग उत्पन्न होते और फैलते हैं। मानवी संसारमें हैज़ा प्लेग आदिक बहुतसे रोगोंके कारण यही जीवाणु हैं। परन्तु यह कभी न समझना चाहिए कि हर रोग जीवाणुओं द्वारा ही उत्पन्न

[Bacteriology जीवाणु शास्त्र]

होता है तथा बिना जीवाणुओंके कोई रोग होही नहीं सक्ता। ऐसे रोगों की उत्पत्ति होनेसे पहिले दो बातोंका होना आवश्यक है:—

(१) रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओंकी स्थिति।

(२) शारीरिक अवस्थामें ऐसी ख़राबी मौजूद होना जिससे यह जीवाणु उत्पन्न होकर बलिष्ट होसकें।

पहिले हम इस दूसरी आवश्यक बातपर विचार करेंगे। मनुष्यकी देहका ताज़ा रक्त एक दल पर रखकर अणुवीक्षण यंत्रसे देखनेपर मालूम होगा मानों फूलकी थालीमें जल भरा हो और उसमें चमकती हुई तांबेकी नई सिक्के वाली पाइयां बिखरी हों। यह पाइयां अनियमित रूपसे बिखरे होनेके कारण एक ऐसा बड़ा चक्र बना देंगी जिसका हर भाग गोलाकार विंदुओंसे बना हो।

रक्तके तीन मुख्य भाग होते हैं। पहिला रक्त द्रव है जो सफ़ेद जलकी भांति होता है। इसके अन्दर पांइयोंके आकारके कण होते हैं जो खूनके लाल रंग होनेका कारण हैं। यह कण रक्त द्रवमें तैरते रहते हैं और इनके संयोगसे मांस बनता है। इन लाल कणोंके अतिरिक्त रक्तमें श्वेत कण भी होते हैं पर इनकी संख्या बहुत कम होती है। रक्त में उत्पन्न हुए मलको लाल कणोंसे बाहर निकाल कर फेंक देनाही इन कणोंका मुख्य काम है। इसी प्रकार जब कभी रोगोत्पादक कीटाणु रक्त में प्रवेश कर जाते हैं तो यह कण उन्हें मारकर खाजानेकी चेष्टा करते हैं। मलकी ज़्यादती होनेपर बहुतसे श्वेत कण एकही जगह पर आकर इकट्ठे होजाते हैं इसीलिए उस जगहपर गर्मी पैदा हो कर सूजन आजाती है। जब कभी आंखमें कोई कीट या तिनका इत्यादि गिर जाता है तो उसमें एक प्रकारकी कर कराहट पैदा होकर आंसू बहने लगते हैं और कभी २ सूजन भी आजाती है। जैसे मोरियोंमेसे कूड़ा निकालनेके लिए हम उन्हें पानी से धोते हैं इसी प्रकार इस तिनकेको बाहर निकाल फेंकनेके लिए प्रकृति आंसूकी धारा बहाने लगती है। यदि इससे काम न चला तो श्वेत कणोंकी बारी आती है। यह उस तिनकेको अन्दर जानेसे रोकनेके लिए आडटते हैं और आंखमें कर कराहट तथा सूजन पैदा होजाती है।

हमारे रक्तमें एक और भी वस्तु मौजूद है जिसे हम (Alexine) अलेग्ज़ीन कहते हैं। यह रोगोत्पादक जीवाणुओंकी रक्तमें वृद्धि होना रोक देती है। इन सब बचावके साधनोंके अलावा हमारे कुल शरीरपर एक ऐसा ग़िलाफ़ चढ़ा हुआ है कि इसे मामूली तौरपर भेद डालना इन जीवाणुओं के लिए मुश्किल काम है। इन बातोंसे पाठकोंको भली भांति विदित हो गया होगा कि प्रकृतिकी ओरसे हमारे शरीरकी रक्षाके लिए बड़ा अच्छा प्रबंध किया गया है। परन्तु जिस प्रकार कवच पहनकर कोई मनुष्य सदा आघातों से नहीं बच सक्ता उसी प्रकार इस सुप्रबंधके होते हुए भी मनुष्यको पीड़ा होती हो है। रोगोत्पादक जीवाणु किस प्रकार हमारे शरीरमें प्रवेश कर भयानक रोग उत्पन्न करते हैं इसके समझने के लिए पहिले हम नीचे लिखी हुई बातोंका विचार करेंगे।

(१) जब शरीरके किसी भागमें यह रोगोत्पादक जीवाणु बहुत बड़ी संख्यामें आक्रमण करते हैं तथा थोड़ीही संख्यामें परन्तु बार बार बहुत दिनों तक आक्रमण करते रहते हैं तो रक्तके श्वेत कण शिथिल होकर हार जाते हैं और यह कीटाणु उन्हें दबाकर शीघ्रही बहुत बड़ी संख्यामें उत्पन्न होकर फैलने लगते हैं।

(२) बहुतसे मनुष्योंकी जन्मसे ही शारीरिक अवस्था हीन क्षीण होती है इसलिए इन्हें कोई विशेष रोग उतपन्न होजाना अचम्भेकी बात नही। जीव परम्परागति के अनुसार यदि किसीके दादा या परदादा की पाचन शक्ति बहुत कमज़ोर होतो (यदि इलाज न किया गया) उनके संतानकी पाचन शक्ति भी इसी अनुपातमें कम होती

चली जायगी। ऐसी दशामें इस घरानेमें उदर रोग-की पीड़ा बहुत होगी और इसी प्रकारके रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओंको अपने आक्रमणमें कृति कार्य्य होनेका पूरा पूरा मौक़ा मिलेगा।

(३) जब शरीरमें कोई रोग उत्पन्न होगया हो या उसके कारण कोई भाग दुर्बल होगया होतो उस भागमें जीवाणुओं द्वारा रोग उत्पन्न होजाना संभव है। जैसे किसी मनुष्यको कुपच होगया हो और वह ऐसी जगह जाय जहां हैज़ा फैल रहा हो तो उसका रोग ग्रस्त होजाना मुशकिल बात नहीं।

(४) जिन स्थानोंकी जल वायु अच्छी न हो, वे गंदे हों तथा आस पास से सड़ायन आती होतो ऐसे स्थानमें भी रहने से जीवाणुओं द्वारा रोग होसक्ता है।

(४) बुरे आचरण और नित्य कर्म्मकी अनियमित्तासे भी रोग होजानेका भय रहता है।

इन अवस्थाओं में से किसी एक या एक से अधिक दशाओंमें रोग उत्पन्न होनेका भय रहेगा। जीवाणु नीचे लिखी हुई राहोंसे रक्तमें प्रवेशकर रोग उत्पन्न करते हैं।

(१) छूतसे। जैसे कहीं चोट लगने पर बदनमें घाव होजाय या खरोंचा लग जाय तो घावके खुले रहनेसे जीवाणु अन्दर प्रवेश कर जांयगे।

(२) यदि खाने पीनेकी चीज़ोंको साफ़ बरतन-में न रखकर उन्हें खुलाही छोड़ दिया जाय तो भी वायुमेंसे बहुत से जीवाणु उनमें प्रवेश कर पेटमें जा पहुंचेंगे। हम पहिले अध्यायमें लिख आए हैं कि खाना पकानेसे बहुतसे जीवाणु मर जाते हैं इस लिए ताज़ा खाना न सिर्फ़ जल्दीही हज़म होता है बल्कि बहुतसे रोगोंसे भी बचाता है।

(३) वायुके द्वारा भी रोग उत्पन्न हो सक्ता है अर्थात् सांसमें होकर शरीरमें जीवाणुओंका प्रवेश हो जाता है। वायुके द्वारा खाने पीने की वस्तुओंमें जो जीवाणु गिर जाते हैं वे भोजन पकाते समय मर जायंगे परन्तु जो वायुके द्वारा-सांसमें होकर जा रहे हैं उनसे मनुष्यको कैसे बचाया जाय। नाकके बालोंसे अन्दर जाने वाली वायु छनकर जाती है। इसके अतिरिक्त वायुके स्वच्छ करने की यूरोपियन विद्वानोंको और कोई रीति नहीं मालूम हुई है। Dy. W. H. Conn लिखते हैं:—"वायु द्वारा छूतके रोगोंसे बचानेके लिए हमारे पास बहुत थोड़े उपाय हैं ... ... परन्तु हवा सांसमें लिए बगैर रह ही नहीं सक्ते; न ही हमारे पास हवाको शुद्धकरने की कोई उत्तम रीति ही है"।

यूरोपियन डाक्टरोंकी उन्नतिकी इतनी डींग हांकनेपर भी एक साधारणसी बातमें इतनी कमी मौजूद है। हमारे आर्य्य ऋषि जीवाणु शास्त्र में बड़े निपुण थे और उन्होंने इस कमी को पूरा करनेका भी पूरा पूरा उपाय कर दिया था। वायु-के जीवाणु वाले अध्यायमें हम यह बतला चुके हैं कि हवन करनेसे वायु शुद्ध हो जाती है। यह रीति बहुत सहल, सस्ती और हर स्थान तथा हर मनुष्यके करने योग्य है। न हीं इससे किसी प्रकार-की हानि पहुंच सक्ती है। आधुनिक वायुशोधनकी रीतियोंमेंसे हरित गैस द्वारा भी वायु शुद्ध की जा सक्ती है परंतु ऐसा करनेमें अगर कहीं इस गैस-की मात्रा बढ़जाय तो मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, इत्यादि सब का नाश करदेगी परंतु हवनहो एक ऐसी रीति है कि इसकी सामिग्रीमें किसी भी वस्तु की ज़्यादती हो जानेसे कोई हानि नहीं हो सकती। जीवाणुओंसे रोग दो प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं।

(१) जीवाणुका शरीरमें प्रवेश करना। ऐसी दशामें जीवाणु रक्तके कणोंको शिथिलकर उन-पर पूरा पूरा क़ाबू कर लेते हैं और उन्हें अंग भंग कर डालते हैं।

(२) जीवाणुओंके शरीरमें प्रवेश करनेके पश्चात् उनके अंगमेंसे एक प्रकारका विष निकलना आरम्भ हो जाता है इसको हम विषाणु (Toxin)

कहतेहैं। केवल शरीरमें जीवाणुओंके प्रवेश हो जानेको छूत लगना (Infection) न कहना चाहिये क्योंकि शरीरमें सैकड़ों जीवाणु आते हैं और मल मूत्र द्वारा निकल जाते हैं। छूत जभी लगती है जब कोई रोगका जीवाणु शरीरमें स्थिर होकर अपनी सन्तान बढ़ाना आरम्भ कर देता है और जब इन जीवाणुओंकी संख्या कुछ समयमें काफ़ी हो जाती है तब विषाणु भी अधिक मात्रामें निकलता है। और रोगके लक्षण शरीरमें दिखलाई पड़ने लगते हैं। इसी समयको रोगकी प्रच्छन्नावस्था (Incubation period) कहते हैं। यह रोगके बीज प्रवेश और उसकी उत्पत्तिका मध्यवर्त्ती समय होता है। इस प्रच्छन्नावस्थाके अन्तपर रोग आरम्भ होता है इसका समय जुदे २ जीवाणुवोंमें जुदा जुदा है परन्तु साधारण दशामें एक दिनसे चालीस दिन तक होता है। बाज़ जीवाणु रक्तमें प्रवेश होकर तमाम शरीरमें फैल जाते हैं और रोगके लक्षण शरीरमें उत्पन्न हो जाते हैं। जो भाग दुर्बल होता है उसपर उनका आक्रमण भी अधिक दुखदाई होता है। दूसरे वो जीवाणु हैं जो शरीरके किसी भागमें उपस्थित होते हैं और उस भागमें कुछ पीड़ा होती है और वहांसे विषाणु निकल कर शरीरमें एक प्रकारकी किण्व क्रिया उत्पन्न कर देते हैं और इस अन्तरुत्सेक के रोकनेके लिये रक्तमें (alexine) के अतिरिक्त अविषाणु पदार्थ पैदा होना शुरू हो जाते हैं। यह विषाणुको नष्ट करते हैं और किण्व क्रियाको रोकते हैं। अगर किण्व द्वारा अन्तरुत्सेक रुक जाय और विषाणु भलीभांति नष्ट हो जायं तो रोग उत्पन्न नहीं होता। और अगर विषाणुका वेग बढ़े और अविषाणु उसको नष्ट न कर सके तब शरीरमें विषके फैलनेसे पीड़ा होती है। पहिले ज्वर आ जाता है फिर रोगके लक्षण दिखलाई देते हैं। इसके पश्चात् शरीर कुछ समयतक रोगी रहनेके बाद अच्छा हो जाता है और विष कुछ तो नष्ट हो जाता है और कुछ मल मूत्र और पसीने द्वारा निकल जाता है। शरीरमें रोग उत्पन्न कर देने वाला यह विष जिन जीवाणुओंसे उत्पन्न होता है उन्हें भी अपनी ज्वालासे भस्म कर डालता है। ऐसे जीवाणु बहुत ही कम हैं जिनका नाश उन्हींके उत्पन्न किये हुये विषाणु द्वारा न हो सके। यहीं पर हम टीका लगानेके विषयमें संक्षिप्त वर्णनकर देना उचित समझते हैं। हम यह बात अभी बतला चुके हैं कि अविषाणु (anti-toxin) विषाणुओंको नाश कर देते हैं। यह विषाणु रोगोत्पादक जीवाणुओंके काल होते हैं। (Alexine) की वजहसे जीवाणु रक्तमें कठिनाईसे उत्पन्न हो पाते हैं। हमारे शरीरको खाल बहुतसे जीवाणुओंको शरीरमें प्रवेश होनेसे रोकती है। रक्तके श्वेतकण बहुतसे जीवाणुओंको खा जाते हैं। सृष्टि कर्ताने यह सब प्रबन्ध हमारी रक्षाकेलिये किये हैं। हम लोग सदा खाते, पीते, हंसते, खेलते, गाते, बजाते, रहते हैं; पर क्या हम थोड़ासा भी समय इस बातके विचारनेमें बिताते हैं कि हमारे शरीरके भीतर हमारी स्थिति बनाये रखनेके लिये कैसा घोर संग्राम मचा हुआ है। सैकड़ों जीवाणु शत्रु रात दिन हमारे शरीरपर आक्रमण करते रहते हैं और हमारे रक्तके कण इनसे लड़कर हमें बचाते रहते हैं। जब यह कण हार जाते हैं तो हमारे शरीरमें पीड़ा होने लगती है और हमें ख़बर होती है कि किसी प्रकारकी गड़बड़ पैदा हो गई है। जैसे हमारे चहरोंकी बनावट एकसी नहीं होती, और हर मनुष्यकी शक्ति भी समान नहीं है, उसी प्रकार मनुष्योंके रक्तके कणोंकी भी शक्ति जुदी २ होती है। यही कारण है कि एक मनुष्यको कोई विशेष रोग हो और दूसरे मनुष्यको न हो। कोई रोग बालकोंको ही होता है परन्तु युवा या वृद्ध मनुष्यको नहीं होता। इसी प्रकारसे कोई २ रोग युवा अथवा वृद्ध मनुष्योंको ही सताते हैं। यदि किसी स्थानपर जीवाणु रोग फैला हो तो ऐसा देखा गया है कि कोई मनुष्य तो वहां पहुंचते ही बीमार पड़

जाता है और मर जाता है और किसीपर असर भी नहीं होता।

यह विषाणु इतने ज़हरीले होते हैं कि अगर उनमेंसे एक या दो भी रक्तमें जीवित रह जायं, तो वे बड़ी असाधारण तेज़ीसे अपनी वंश-वृद्धिकर सारे रक्तको ज़हरीला बना डालते हैं और ऐसी हालतमें जान लेकर ही पीछा छोड़ते हैं। परन्तु एक बात बड़ी विचित्र है कि बहुत थोड़ीसी गरमीसे इन विषाणुओंका नाश हो जाता है। हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि विषाणुके उत्पन्न होने पर हमारे शरीरमें अविषाणु उत्पन्न होते हैं। जैसे चेचकके जीवाणु शरीरमें प्रवेश होनेपर चेचकके विषाणु भी उत्पन्न होने लगते हैं और शरीर रोगी हो जाता है। परन्तु साथ ही साथ शरीरके विषको नाश करनेके लिये रक्तमें अविषाणु भी उत्पन्न होने लगते हैं। जब यह चेचकके विषको नाश कर देते हैं शरीर अच्छा हो जाता है। परन्तु अविषाणुका प्रभाव रक्तमें रह जाता है और इसका नतीजा यह होता है कि फिर रक्तमें चेचकके जीवाणु उत्पन्न नहीं हो सकते।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अगर हम जीवाणुओंके रोकनेके लिये चेचकके अविषाणु उत्पन्नकर सकते हैं तो फिर और जीवाणुओं द्वारा पैदा होने वाले दूसरे रोगोंकी रोकके लिये भी अविषाणु क्यों न तैयार किये जावें। या यों कहिये कि जैसे चेचकके विषाणु रक्तमें उत्पन्न हो जानेपर अविषाणुओंके कारण चेचक अच्छी हो जाती है और क़रीब २ जीवन भरके लिये इस भयानक रोगसे छुट्टी हो जाती है, इसी प्रकार यदि दूसरे रोगोंके विषाणु रक्तमें पैदाकर दिये जांय तो उनके अविषाणु उत्पन्न होकर उन रोगोंसे भी मनुष्यको बचा देंगे। इस चिकित्साका यही सिद्धान्त है। आजकल इसी सिद्धान्तके अनुसार जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाले बहुतसे रोगोंकी रोककी जाती है। और इसीको टीका लगाना कहते हैं। रोगके इन जीवाणुओंको प्रयोगशालाओंमें अलग २ उत्पन्न करके उनसे उनके विषाणु भी प्राप्तकर लेते हैं और फिर इन विषाणुओंको तापके द्वारा या और किसी प्रकारसे निर्जीव करके मनुष्य या पशुकी देहमें प्रवेशकर देते हैं यह विषाणु इतनी थोड़ी मात्रामें रक्तमें पहुंचाये जाते हैं कि जिससे शरीरमें रोग तो उत्पन्न हो जाता है परन्तु वह इतना भयानक नहीं होता कि मृत्यु हो जाय। शरीरमें विषाणुओंके टीका लगानेपर रक्तमें अविषाणु उत्पन्न हो जाते हैं, जो विषाणुओंको नाशकर डालते हैं और फिर रक्तके कणोंमें ऐसी शक्ति उत्पन्न कर देते हैं कि उस रोगके जीवाणुओंका असर होना असंभव नहीं तो कठिन ज़रूर हो जाता है। चेचकका टीका लगानेके लिये जिस प्रकार बसन्त बीज (Lymph) तैयारकी जाती है, हम आगे चलकर उसीका वर्णन करेंगे। पांच या छः महीनेके किसी स्वस्थ्य बछड़ेको सात आठ दिन तक एक अलग साफ़ स्थानपर रखते हैं। फिर इसकी अच्छी तरह पर जांच कर यह देखते हैं कि उसे किसी प्रकारका रोग तो नहीं है। अगर वह बिलकुल निरोग हुआ तो उसे प्रयोगशालामें ले जाते हैं और उसके पेटकी त्वचाको औषधियों द्वारा बिलकुल निर्जीव कर देते हैं। इसके पश्चात् एक पिचकारीके द्वारा चेचक विषाणुको त्वचामें प्रवेश करा देते हैं। यह बछड़ा अलग एक साफ़ स्थानपर रक्खा जाता है पांच छः रोजमें इसके पेटपर बड़े २ छाले निकल आते हैं। अब किसी शुद्ध बरतनमें जिसका संक्रमण दोष दूर किया जा चुका हो, शुद्ध नश्तरसे इन छालोंको फोड़कर इनका पस निकाल लेते हैं। स्वस्थ बछड़ोंमें इसकी मात्रा प्रायः छः ग्राम होती है।

इसको छःगुनी शुद्ध ग्लेसरीनमें मिला देते हैं और बन्द बरतनमें उठाकर रख देते हैं। एक महीने तक यह प्रयोगशाला में ही रक्खा रहता है और बार २ इसकी जांचकी जाती है। अगर यह शुद्ध और निर्जीव सिद्ध हुआ तब अस्पतालोंको टीका

लगानेके लिये बांट दिया जाता है। आठ महीने तक इसका असर कम नहीं होता और न यह बिगड़ता है। इसी तरहसे जुदी २ रीतियों द्वारा दूसरे जीवाणुओंके विषाणु टीका लगानेके लिये प्राप्त किये जाते हैं।

सन् १८५० ई० से पहिले पश्चिमी देशोंमें विद्वानोंमें जीवाणु शास्त्रका ज्ञान बहुत कम था और अब भी उतना ज्ञान नहीं है जितना कि आर्य ऋषयोंको था। जैसी २ सरल उपयोगी और अति उत्तम व्यवहारिक बातें आर्य्यावर्तमें प्रचलित थी वैसी अभी तक पश्चिमी देशोंमें प्रचलित नही हुई हैं। पश्चिमी देशोंमें पुराने ज़मानेमें केवल औषधियों का प्रयोग किया जाता था, पर औषधियोंसेही सारे रोग नही जा सकते। हमारे शरीरमें रक्त के कण जितनी हमारी सहायता करते हैं उतनी सहायताके लिये अगर हम कोई औषधि प्रयोग करें तो उसकी मात्रा उलटा हमारा काल हो जाय। इसलिये हमको अपने रक्तके कणोंको पुष्ट और शुद्ध रखनेके लिये परिश्रम करना चाहिये। जब रक्तके कण अनायास ही रोगको हटानेमें कृतकार्य न हों तो उस दशामें औषधिका प्रयोग करना चाहिये। अगर हमारे रक्त कण प्रबल नहीं हैं तो किसी औषधिसे नतो हमारी आयुही बढ़ सकती है और न स्वास्थ्य कीही रक्षाहो सकती हैं। इसी बिचारसे हमारे यहाँके ऋषयोंने ब्रह्मचर्य्य इत्यादि धारण करना सिखलाया था। लेकिन यह भी आवश्यक है कि जहांतक हो सके ऐसा यत्न किया जाय कि हमारे खाने पीनेकी वस्तुयें शुद्ध रहें और हमारे शरीरमें किसी प्रकारके हानिकारक जीवाणु उपस्थित न रहने पायें। इसीलिये पंचामृतका ग्रहण करना नित्यकर्ममें रक्खा गया था। पंचामृतमें दही, शहद, तुलसीदल, दूध और गंगाजल होता है। यह पांचो चीज़ें वास्तवमें अमृत ही हैं। प्रोफ़ेसर हैफ़किन इस बातको परीक्षाओंसे सिद्ध करगये हैं कि गंगाजलमें किसी प्रकारके जीवाणु नही होते और न गंगामें जीवित रह सकते हैं। शहदसे बढ़कर बहुत कम वस्तुयें ऐसी है जो हृदयको पुष्ट और फेफड़ोंको साफ़ रख सकती हों। तुलसीदल बहुत प्रकारके ज्वरोंको नाश करनेवाली बड़ी उत्तम औषधि है। दही और मट्ठे इत्यादिमें पय-जीवाणु होते हैं यह जीवाणु बहुतसे साधारण जीवाणुओं को नाशकर डालते हैं। और बहुतसे जीवाहारी भी इनसे नष्ट हो जाते हैं। उदरके रोगोंको दूर रखनेवाली यह अद्भुत बस्तु है। और अब पश्चिमी विद्वानोंनेभी इसके गुणको मान लिया है। जब कोई औषधि काम नहीं करती तब ऊपर दिये हुये रोगोंको दूर करने के लिये केवल मट्ठा पिलाते हैं। कभी बिसमथ सबनाईट्रेट, पिपरम्यन्ट, मेगनीशियम कारबुनेट मेगनीशियम सलफ़ेटके एक या दो ग्रेन मिलाकर मट्ठा पीनेके बाद चूरन फांक लेते हैं ऐसा करने से थोड़ेही दिनोंमें अजीर्ण जाता रहता है। फोड़े फुंसी इत्यादिक त्वचा संबंधी रोगोंमें भी दहीका प्रयोग किया जाता है। अन्डीकी खली, काली मिर्चें, बराबर मात्रामें पीसकर दहीमें मिलाकर एक दिन फेन उठने देते हैं इसके पश्चात् प्रयोग करते हैं। यह एक नया सिद्धान्त है जो अभी पश्चिमके विद्वानों को सीखना है। ये मानी हुई बात है और पश्चिमी जीवाणु शास्त्रनेभी सिद्ध करदी है कि मनुष्य और पशुओंके शरीरमें ऐसी शक्ति है कि जिसके द्वारा रक्त घावको अपने आप भर कर अच्छा कर देता है। अगर यह शक्ति क्षीण होजाय तो किसी औषधिसे घाव अच्छा नहीं हो सकता। औषधिका तो केवल यही काम है कि जीवाणुओंको घावपर उत्पन्न न होने दे और घावको साफ़ रक्खे। इसीलिये विषमर्दन (Antiseptic) औषधियोंका प्रयोग करते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि विषमर्दनही प्रयोग किये जांय। ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करना भी लाभदायक होगा जिनसे जीवाणु उत्पन्न होकर हानिकारक जीवाणुओंका नाश कर डालें और घाव अच्छा होजाय।

अणु-विश्लेषण वाद

(लेखकः-श्री शालिग्राम वर्मा बी. एस. सी)

पाठकोंको यह बात भली भाँति मालूम है कि जब किसी विद्युत्पात्रके दोनों तार जोड़कर कुंडली पूरी करदी जाती है तो विद्युत्धारा बह निकलती है। यह धारा बाटरीमें भरे हुए पदार्थोंको रासायनिक क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है इसलिए साधारण रीतिसे देखनेमें बाटरीमें इस क्रियाके होनेका कोई पता नहीं चलता। तारके गरम होजाने, उसके दोनों सिरोंके मिलानेपर चट्चट करती हुई चिनगारियां निकलने, अथवा धारामापक जोड़ देने पर उसमें विचलन होनेसे हम कह सकते हैं कि बाटरीमें धारा बह रही है। डानियलके विद्युत्पात्रमें एक तांबेके बर्तन में नीला थोता या तूतियाका घोल भरा होता है। इसमें तूतियेके कुछ डेले भी पड़े हुए होते हैं। इसी बर्तनमें नौ हिस्से पानी और एक हिस्सा गंधकाम्ल-से भरा हुआ एक चीनी मिट्टीका गिलास रक्खा रहता है। यह गिलास मसामदार होता है जिसमें होकर दोनों बर्तनोंके घोल नहीं मिल सके परन्तु अणु एकघोलसे दूसरेमें जा सकते हैं। इसी गिलास में जस्तेकी एक डंडीरक्खी रहती है। इस बाटरी-में गिलासके भीतर जस्तेसे गंधकाम्लके घोलमें धारा बहेगी और तूतिया वाले बर्तनमें तूतिएके घोलसे तांबेमें; फिर इस बर्तनके बाहर तांबेके पेच से तारमें होती हुई जस्तेमें धारा प्रवेश करेगी।

अगर हम तांबेके पेच और जस्तेसे जुड़े हुए तारोंको पानीके कटोरेमें डालदें जिसमें गंधकाम्ल घुला हुआ हो तो हम देखेंगे कि विद्युत्धाराके प्रवाहके साथही साथ कटोरेके पानीमें रासायनिक क्रिया उत्पन्न होगई और तारके दोनों सिरोंपर गैसके बुद बुदे जमा होने लग गए। यदि इन गैसों-को अलग २ परीक्षा नलियोंमें भरकर देखा जाय तो यह ओषजन और उज्जन होंगी। जो तार तांबे से जुड़ा हुआ था उसके सिरेपर ओषजन निकलेगी और जो जस्तेसे जुड़ा था उसपर उज्जन। अब अगर हम इस प्रयोगको जारी रक्खें और किसी प्रकार दोनों तारोंके बीचके पानीको मिलनेसे रोक सकें तो हम देखेंगेकि जिस तारके सिरेपर ओषजन निकली है वहां गंधकाम्ल जमा हो जायगी। पहिले प्रयोगमें विद्युत्धारा बहती है परन्तु उसके साथ-ही साथ पदार्थमें कोई हलचल नहीं होती। दूसरे प्रयोगमें विद्युत्धाराके साथ रासायनिक क्रिया द्वारा पदार्थोंका विश्लेषण हो उनके परमाणुओंमें गति पैदा हो जाती है। इस व्याख्याके अनुसार विद्युत्धारा प्रवाह दो प्रकारसे होता है जिसका वर्णन ऊपर किया जाचुका है।

पिघले हुए क्षार और लवणोंको छोड़कर अन्य बहुतही कम ऐसे पदार्थ हैं जिनमें शुद्ध अव-स्थामें वैद्युतिक विश्लेषण होता हो अथवा जो इस विश्लेषणके सुवाहक हों। बहुतसी धातुओं-को शुद्ध करनेमें उनके पिघले हुए यौगिकोंका वैद्युतिक विश्लेषण करना बहुत ही सुगम उपाय है। डेवी साहबने कास्टिक पोटास और सोडाको इसी प्रकार विश्लेषण कर पोटाशियम और सोडि-यम धातुएं प्राप्तकी थीं। आजकल अल्यूमीनियम धातु भी इसी प्रकार बनाई जाती है; मैंगनीज़ क्रोमियम इत्यादिक धातुओंको शुद्ध करने मेंभी इसी रीतिका अनुसरण किया जाता है। वैज्ञानिक उप-योगके लिए सोना चांदी इत्यादि धातुएं अब क़रीब २ इसी रीतिसे शुद्धकी जाती हैं। इस विषय में अबतक जितने अनुसंधान हुए हैं वे रासा-यनिक दृष्टिसे इस क्रियाका कोई संतोषप्रद वर्णन नहीं दे सके। अस्तु इस क्रियाका रासायनिक ज्ञान प्राप्त करनेकेलिए हमें दूसरे प्रकारके विश्लेषण-शील पदार्थों (घोलों) की शरण लेनी होगी।

जब हम बाटरीके तारोंको शुद्ध पानीमें डालते हैं तो विश्लेषण इतना कम होता है कि वह प्रायः न होनेके बराबर है। इसी प्रकार जब हम शुद्ध नमक-के तेज़ाबमें बैटरीके तार डाल देते हैं तोभी विश्ले-

षण नहीं होता। इससे मालूम हुआ कि शुद्ध रूपमें इन दोनों पदार्थोंकी परिचालन क्षमता (conductivity) बहुतही कम है। अब यदि इन दोनोंको मिला दिया जाय तो तारोंके लगातेही बड़े ज़ोरोंमें विश्लेषण होना शुरू होजायगा। इस प्रयोगसे यह स्पष्ट है कि इस घोलके उपादान संचालनशील नहीं है परन्तु यह गुण इस कुल घोलमें मौजूद है। क्लोरोफ़ार्म या ईथर भी परिचालनशील नहीं है। न इनके घोलमें नमकका तेज़ाब। अस्तु, घोलककी प्रकृतिपर ही यह बात निर्भर है कि उसका घोल परिचालनशील होगा या नहीं। इतना ही नहीं वरन् ये परिचालन क्षमता घुले हुए पदार्थोंकी प्रकृतिपर भी निर्भर है। अस्तु अम्ल, क्षार और लवण इन सबका (पानीमें) घोल परिचालनशील होता है। अलकोहल-शकर इत्यादि अपरिचालन शील हैं; अमोनियां, सिरकाम्ल इत्यादि अर्द्ध परिचालनशील हैं। इन पदार्थोंको इस प्रकार तीन भागोंमें बांट देना सहल काम नहीं है। इनका अंतर केवल इनके घोलोंकी परिचालनक्षमताकी मात्रापर निर्भर है।

जिस ध्रुवपर ओषजन निकलता है उसे धनात्मिक तथा जिसपर उज्जन निकलता है उसे ऋण ध्रुव कहते हैं। इस हिसाबसे उज्जन धनविद्युत पदार्थ और ओषजन ऋणविद्युत पदार्थ है।

इस प्रयोगमें अगर हम गंधकाम्ल, नमकका तेज़ाब, कास्टिक सोड़ा तथा सोडियम गंधेत इत्यादि किसीका भी घोल लेकर उसको विश्लेषण करें और कटोरेमें तारोंके सिरोंपर दो नलिकाएं पानी भरकर उलटी खड़ी कर दें तो हम देखेंगे कि थोड़ी ही देरमें एक नलिकाका पानी दूसरी नलिकासे क़रीब दूनी मात्रामें बाहर निकल गया है। जिस नलिकामें पानी सबसे अधिक निकला है उसके अन्दरकी गैस जांच करने पर उज्जन होगी। उसका आयतन ओषजनसे दूना होगा; अथवा यों कहिए कि अगर पांच मिनट तक धारा जारी रक्खी जाय तो ओषजनकी नलिकामें जितना गैस भरेगा वह उज्जन वाली नलिकाके आयतनका आधा होगा। इसी प्रकारउपरोक्त घोलोंका विश्लेषण करनेसे उज्जनका आयतन सदा एक ही रहेगा (अगर सब घोलोंमें उतनीही
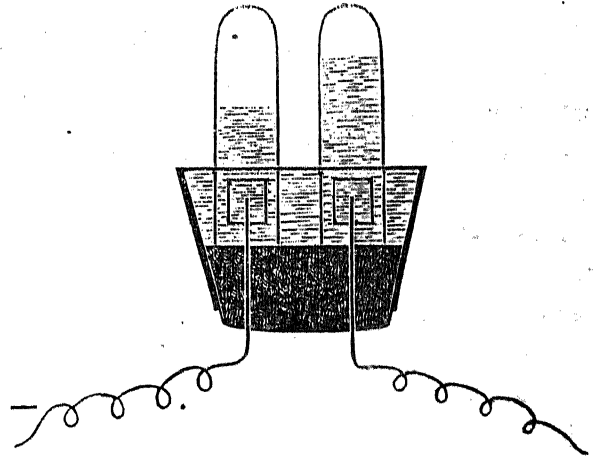
चित्र १

धारा जारी रक्खी जाय)। हम जानते हैं कि पानी उज्जन और ओषजनका यौगिक है, और इसमें उज्जन और ओषजनकी मात्रा दो और एकके अनुपातमें हैं। यानी दो भाग उज्जन और एक भाग ओषजन मिलनेसे एक भाग पानी बनता है। इस प्रयोगसे मालूम हुआ कि यह गैसें उसी अनुपातमें निकलती हैं जिसमें कि वे पानीमें मौजूद थीं। इसी प्रकार अगर हम तूतियाके घोलमें धारा बहावें तो तांबेकी जितनी मात्रा ऋण ध्रुवपर जमा होगी उतनी ही ओषजन धन (ध्रुव) पर निकलेगी। इससे यह नतीजा निकला कि अगर हम गंधकाम्ल और तूतियाके घोलोंमें विद्युत्धाराकी एक ही मात्रा जारी रक्खें तो तूतियाके घोलसे जितना तांबा जमा होगा गंधकाम्लके घोलमें उतना ही भार उज्जनका मिलेगा। फेराडेने विश्लेषण क्रियाके इस मापका पता लगाया था अस्तु रासायनिक विश्लेषण तथा विद्युत्की मात्राके अनुपात फेराडेके सिद्धान्तके नामसे मशहूर हैं।

ध्रुवोंके चारों ओर वाले घोलके निवेशन (Concentration) में परिवर्तन हो जाता है, इस बातकी विवेचना करनेके लिये फेरेडे (Faraday) ने यह कल्पनाकी कि विश्लेषण क्रियामें पदार्थोंके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग, जिन्हें उन्होंने अणु कहना शुरू कर दिया, घोलमें विद्युत्धाराके प्रवाहसे प्रवाहित होने लगते हैं। धन ध्रुवकी तरफ़ जाने वाले अणुओंको धनात्मक अणु तथा ऋण ध्रुवकी तरफ़ जाने वालोंको ऋणात्मक अणु का नाम दिया गया। वास्तवमें यह अणु क्या हैं, इसपर अधिक विचार न कर फेराडेने यह मान लिया कि अम्लोंके घोलमें उज्जन ऋणात्मक अणु होता है तथा शेष अम्ल भाग धनात्मक अणु है। लवणोंके घोलमें धातु अथवा धातुके अणु 'ऋणात्मक अणु होते हैं और अम्ल भाग धनात्मक अणु, इसी प्रकार क्षारोंके घोलमें धातु, भाग ऋणत्मक अणु तथा क्षार भाग 'धनात्मक' अणु होता है। ऋण अणु धन विद्युत पूर्ण होते हैं इसीलिये वे ऋण ध्रुव-(Negative electrode) की तरफ़ जाते हैं। धन अणु ऋण विद्युतवाहक हैं इसीलिये वे धन ध्रुवकी तरफ़ चलते हैं। अस्तु इस कल्पना-के अनुसार इन दोनों प्रकारके अणुओंको प्रत्येक पदार्थका सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग माना गया है। प्रत्येक अणु विद्युतकी जितनी मात्रा संचारित करता है उसे एक फैराडे कहते हैं। गंधकाम्ल मिश्रित पानीका जब विश्लेषण होता है तो उज्जन-का प्रति ग्राम अणु एक फैराडे धन विद्युत राशिसे संचारित होकर ऋण ध्रुवकी तरफ़ बढ़ने लगता है। ध्रुवपर पहुंचकर धन विद्युत निःस्रत (Discharge) हो जाती है और यह उज्जन अणु साधारण उज्जन हो ध्रुवपर गैसके बुद बुदों के रूपमें जमा होने लगता है। विद्युत्धारा तो सारी कुन्डलीमें होकर बह ही रही है इसलिये ऋण ध्रुवकी इस घटनाके साथही साथ धन ध्रुव पर भी समान ऋण विद्युत राशि निःस्रत होनी चाहिये। ४८ ग्राम अम्ल भागमेंसे ऋण विद्युतकी यह मात्रा प्राप्त होती है। धन ध्रुवपर पहुंचकर यह गओ$_४$ अणु विद्युत निःसरण कर साधारण गओ$_४$ के परमाणु हो जाते हैं। इस अम्ल भाग और पानीकी रासायनिक क्रिया द्वारा धन ध्रुवपर, जैसा हम पहिले बतला चुके हैं, गंधकाम्ल जमा होने लग जाती है और ओषजन गैस निकलकर परीक्षा नलीमें जमा होने लगती है। समीकरण द्वारा हम इन घटनाओंको इस भांति लिखेंगे।

$$\text{उ २ ओ} \longrightarrow \text{२ उ + ओं} \qquad (१)$$

$$\text{उ}_२ \text{ ग ओ}_४ \longrightarrow \text{२ उ + ग ओ}_४ \qquad (२)$$

$$\text{उ}_२ \text{ ओ + ग ओ}_४ \longrightarrow \text{उ}_२ \text{ ग ओ४ + ओं} \qquad (३)$$
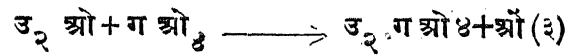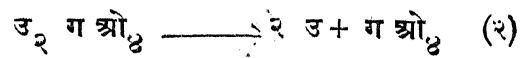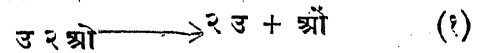
अगर हम पांच विश्लेषण प्याले लेकर उनमें गंधकाम्ल, हरिदाम्ल, नमकका पानी, तूतियाका पानी तथा दाहक सोडाके घोल भर दें और एक प्यालेके ध्रुवको दूसरे प्यालेके ध्रुवसे तार लगा कर जोड़ दें तो अंतमें पहिले और पांचवे प्यालेके जो एक एक ध्रुव बिना जुड़े बाकी रह जायेंगे इन्हें भी बाटरीके तारोंसे जोड़ते ही हम देखेंगे कि पांचों प्यालोंमें एक ही साथ विश्लेषण शुरू हो गया है। इसी प्रकार यदि हम एक खूब लंबी कांचकी नली लेकर उसे उसके दोनों सिरोंके पाससे मोड़कर उसमें नमकका घोल भर दें और फिर किसी बाटरीके तारोंके दोनों सिरे दोनों बाजुओंमें डाल दें तो हम देखेंगे कि तारोंके डुबाते ही विश्लेषण क्रिया प्रारंभ हो जाती है।

अब हम पहिले इस सिद्धान्तका ऐतिहासिक विकाश लिखकर इसके आधुनिक रूपका विचार करेंगे। ग्रोटोने सबसे पहिले यह कल्पनाकी कि जब किसी अम्ल, क्षार या लवणके घोलमें होकर विद्युत्धारा प्रवाह होता है तो यह विद्युत ही उसके विश्लेषण करनेका काम करती है तथा विद्युतधाराके ही प्रभावसे इन घोलोंके परमाणु धन और ऋण अणुओंमें विभाजित होकर ध्रुवोंकी

तरफ़ आकर्षित होते हैं। ध्रुवोंके आस पासके परमाणुओंपर ही यह असर नहीं होता बल्कि ध्रुवोंके बीचमें भरे हुये घोलके परमाणु भी इसी सिलसिलेमें बंटकर क्रमबद्ध जमा हो जाते हैं।

	ध					ऋ	
		उ ह	उ ह	उ ह	उ ह		
	उ	ह उ	ह उ	ह उ	ह		
उ		ह उ	ह उ	ह उ			ह
		उ ह	उ ह	उ ह			

इस प्रकार विद्युत्धारा कडली बनते ही पहिले तो यह अणु क्रमानुसार अपने अपने स्थान ग्रहण कर लेते हैं फिर ध्रुवोंके पास वाले अणु अपना विद्युत भार निःसारण कर साधारण परमाणुओंके रूपमें इन ध्रुवोंपर निकलने लगते हैं। ग्रोटोने अपने इन विचारोंको ऊपर दी हुई (Scheme) व्यवस्था द्वारा स्थापित करनेकी चेष्टाकी थी। इस व्यवस्थामें हरिताम्लको सांकेतिक भाषामें उह लिखा क्योंकि इस अम्लके १ परमाणुमें १ परमाणु उज्जन तथा १ परमाणु हरित है। जब उह के घोलमें विद्युत्धाराका प्रवेश हुआ तो उह के परमाणु उ तथा ह अणुओंमें विभक्त हो गये, जिनमें उ अणु धन विद्युतका परिचालक है और ह अणु ऋण विद्युतका। इसलिये दूसरी अवस्थामें यह अणु इस प्रकार क्रमसे जमा हो गये कि उ अणु धन ध्रुवके पास आ गया और ह अणु ऋण ध्रुवकी तरफ़ चल दिया। बीचके परमाणु जिनका आणुविक विश्लेषण हो चुका था अब अपने साथियोंका उलट फेर कर ऐसी अवस्थामें होगये जैसा कि दूसरी लाइनमें दिखलायी गयी है। इसके बाद उ और ह अणु ध्रुवोंपर पहुंचकर, विद्युत् निःसारणकर उज्जन और हरितके साधारण परमाणुओंके रूपमें प्रगट हो गये। यही बात तीसरी लाइनमें दिखलाई गई है। उज्जन और हरितके परमाणुओंके निकल जानेके बाद फिर उपरोक्त क्रियायें दुहराई जाने लगीं।

इस प्रकार ग्रोटोके मतानुसार विश्लेषण होकर विश्लेषण प्यालेके ध्रुवोंपर उज्जन तथा ओषजनके परमाणु जमा होने लगे। इस जगह भी हरितके परमाणु पानीमें घुलकर हरिताम्ल बना डालते हैं और ओषजन निकलने लगती है।

उह ———→ उ' + ह' ... ... (१)

उ२ओ ———→ २उ' + ओं ... ... (२)

उ२ओ + + २ह' ——— २उह × ओं ... (३)

ऊपर दिये हुये सांकेतिक विवरणसे पाठकोँ की समझ में आजायेगा कि ह अणुका पानीसे संयोग होनेपर उह हरिताम्ल बन जाती है और ओ ओषजनके परमाणु निकल जाते हैं।

ग्रोटोकी इस सुन्दर कल्पनापर वैज्ञानिक लोग बहुत मुग्ध हुये, परन्तु क्लाज़ियसने इस कल्पनाका अधिकांश ग्रहण करते हुये, इसमें कई त्रुटियां निकाली हैं। सबसे पहिली त्रुटि तो यह है कि अगर हम यह मानलें कि विद्युत प्रवाहक शक्ति (Electromotive Force) द्वारा ही इन घोलोंका आणुविक विश्लेषण होता है तो हमें यह माननेमें कोई आपत्ति होही नहीं सकती है कि जबतक इस विश्लेषण क्रियाके लिये उपयुक्त विद्युतप्रवाहक शक्ति मौजूद न होगी, विश्लेषण होही न सकेगा। दूसरे यदि इसी शक्तिके व्ययसे विश्लेषण होता है तो जैसे २ विश्लेषण अधिक होता जायगा बाटरीकी विद्युत्-प्रवाहक शक्ति कम होती जायगी। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। अस्तु ग्रोटोकी यह कल्पना भ्रांतिपूर्ण बतलाकर क्लाज़ियसने खुदही इस प्रतिवादका उत्तर अपनी कल्पना द्वारा दिया। इनके विचारानुकूल हर द्रव पदार्थके परमाणु स्वयम् तथा दूसरे भ्रमणशील परमाणुओंके आघातोंसे बड़ी अनियमित और अनिश्चित दिशामें घूमते रहते हैं। विद्युत-प्रवाहक शक्तिकी सहायताकी इन्हें कोई आवश्यकता नहीं होती। द्रव पदार्थोंके प्रसारका कारण यही परमाणु होते हैं तथा इनके तापक्रमका घटना बढ़ना भी इन्हीं परमाणुओंकी गतिके घटाव बढ़ावपर

अवलंबित है। इन परमाणुओंका भ्रमणपथ अनिश्चित होनेके कारण इनमें पारस्परिक आघात और प्रत्याघात जल्दी २ होता है और बड़े वेगसे भी। इसका परिणाम यह हो सकता है कि साधारण तापक्रमपर भी परमाणु टूटकर धन और ऋण अणुओंमें विभाजित हो जाते हैं। इसलिये क्लाज़ियसके मतानुसार हर पदार्थके घोलमें कुछ परमाणु विश्लिष्ट अवस्थामें अवश्यही मौजूद रहते हैं। ऊंचे तापक्रमपर इनकी मात्रा बढ़ जाती है और इनमें विघटन घटन क्रिया उत्पन्न हो जाती है।

[असमाप्त]

चन्दन और चन्दनका तेल।

[ले०श्री के० कृष्ण स्वामी नायडू एम० ए०]

बहुतसे पदार्थोंका उपयोग जंगली यूरोप वालों ने सभ्य भारत से हाल ही में सीखा है। उनमें से चन्दनका तेल भी है। चन्दन कीक़द्र करना तो वह अब भी नहीं जानते। चन्दनके तेलका बेशक दवाओं में वह उपयोग करने लगे हैं। पर यह तेल उन्हें मिले कहां से? भारत भूमि को छोड़ श्री खण्डका एक खण्ड भी अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। अतएव प्रति वर्ष बहुत सा चन्दन यहांसे विदेशोंको चालान किया जाता रहा है।

भारत वर्षमें चन्दन मद्रास प्रान्त, मयसूर और कुर्गमें मिलता है। यहां पर प्रायः सभी जंगल सरकारी हैं, यद्यपि मद्रासमें कुछ व्यक्तियोंके भी निजके उपवन हैं। नीचे की सारिणीसे ज्ञात होगा कि प्रतिवर्ष कितना चन्दन बाहर जाता रहा है:—

१९०५—०६	...	१, ११४, ७७०	रु०	का
१९०६—०७	...	१, १३०, ८८०	"	"
१९०७—०८	...	१, २०३, २७५	"	"
१९०८—०९	...	१, ०३५; १२०	"	"
१९०९—१०	...	७४६, ३५५	"	"
१९१०—११	...	१,३ ३६, ००५	"	"
१९११—१२	...	१,३२९, ८७०	"	"
१९१२—१३	...	१,५२२, ८३५	"	"
१९१३—१४	...	१९ २९ ३९०	"	"
१९१४—१५	...	५३८७७३	"	"
१९१५—१६	...	१५ ५६ ९ ३५	"	"
१९१६—१७	...	१८ ९० २४५	"	"

तीन साल पहिले तक तीनों प्रदेशोंमें यह प्रथा थी कि साल भरके इकट्ठे हुए चन्दनका नीलाम नवम्बर या दिसम्बर मासमें कर दिया जाता था। किस वर्ष किस प्रदेशमें कितना चन्दन बिका, उससे कितनी आमदनी हुई, फ़ीमनके औसत दाम क्या उठे, आदि बातें नीचे की सारिणी से मालूम होगीं।

ऊपर दिये हुए अंकों से उस चन्दन की मात्रा ज्ञात होती है जिसकी या तो देशमें ही खपत हो गई या जो विदेश को भेज दिया गया।

१९१४-१५ के अंकों को देखने से मालूम होगा कि चन्दन की विक्री उस वर्ष सहसा कम हो गई। मयसूर राज्य को उस वर्ष बहुत हानि हुई। साढ़े उन्नीस लाख रुपियों की आमदनी में जब एक दम कमी हो गई तो रियासत की आंख खुली। सच है बिना ठोकर खाये किसीमें अक़लनहीं आती।

सारिणीसे मालूम होगा कि सं० ११ तक औसंतन चन्दन का मूल्य ५००) रु० फ़ी टन रहा, परन्तु सं० १२ तथा १३ में दाम बढ़ गये और दुगने हो गये। इसका कारण था जर्मन तेल निकालनेवालोंके आढ़तियों की खींचा तानी; परन्तु युद्ध प्रारम्भ होते ही जर्मनी को चन्दन की रफ़ूतनी वन्द हो गई। और उसीका परिणाम यह हुआ कि मयसूर रियासत को इतना अधिक घाटा उठाना पड़ा।

१९१४ के अन्तमें मयसूर व्यवसाय विभागके अध्यक्षने यह प्रस्ताव किया कि चन्दनका तेल निकालनेका एक कारख़ाना खोलना चाहिये। उनके ही कहने से ताता इनसटीट्यूट ओफ़ सायंस बंगलोर में आरम्भिक परीक्षाएं होने लगीं और

वर्ष	मयसूर			कुर्ग प्रान्त			मदरास प्रान्त	
	कितना बिका	कितने में बिका	दाम फी टन	कितना बिका	कितने में बिका	दाम फी टन	कितना बिका	कितने में बिका
	टन	रुपया	रुपया	टन	रुपया	रुपया		रुपया
१९०६—०७	२३८२	१२८४९८५	५३९	२३६	१२८०६५	५४२	...	७४४८४
१९०७—०८	२४८९	१३७०२५७	५५१	२४९	१३८८३५	५५७	...	७५२१४
१९०८—०९	२११४	१०५२५६५	४९८	२०५	१०९३७७	५३३	...	८७१६०
१९१०—११	२४६९	११४६२२१	४६४	१८१	८२[illegible]२८	४५७	...	१२६१६०
१९११—१२	२३६३	१२५९३०१	५३४	१८१	९९८४७	५५२	...	१४३०४३
१९१२—१३	२४१८	२२६७६५८	९३७	१८५	११४९[illegible]३	६२१	...	२७१८७०
१९१३—१४	२४१७	२२५६९४३	१०५१	१६४	१६१९३०	९८७	...	१५२३७५
१९१४—१५	३३४	३०६९७६	९१८	३२	४१४३	७५४	...	१७६१६२
१९१५—१६	२०१०	१६९९६५७	८४२	३८०	३४४३०३	९०६	...	२४७[illegible]५६

थोड़ेही दिनोंमें उतनी उत्तम कोटिका तेल बना लिया गया जैसाकि यूरोपमें निकलता था। युद्ध आरम्भ होनेके पहिले भी भारतमें चन्दनका तेल निकाला जाता था, परन्तु वह कुछ स्याही माइल होता था यद्यपि वह बहुत शुद्ध होता था। काले रंगके कारण उसमें मिलावट करना आसान था, इसीलिए यूरोपमें उसकी मांग बहुत कम थी।

सं० १९१५ के सितम्बर मासमें मयसूर राज्यने १००० सेर तेल प्रतिमास निकालनेके योग्य एक छोटासा कारख़ाना खोलनेके लिए एक लाख रुपयेकी मंजूरी दी। इस कारख़ानेके लिए बंगलोरके पास ही एक जगह तजवीज़ की गई। ऐसा करनेमें बंगलोर सायंस इंस्टिट्यूटके अध्यापकगण उनकी प्रयोगशाला तथा यंत्रोंसे भी समय समयपर सहायता मिलना सम्भव होगया।

अब लड़ाईके कारण विदेशसे यंत्रों-मशीनों आदिका मंगाना बड़ा कठिन जान पड़ा, इसलिए आरम्भसे ही यह निश्चय किया गया कि जो कुछ सामान देशमें नया या पुराना मिल जाय वही लेलिया जाय और बाक़ी देशी कारख़ानोंमें तय्यार करा लिया जाय। मद्रासकी इण्डियन अल्यूमीनियम कम्पनी (Indian Aluminium Company of Madras) तथा बंगलोर के इंजीनिरी महकमे के पानीके रसदके बेड़े (Water Supply Division of the P.W.D. of Bangalore) के (वर्कशाप) मिस्त्री ख़ानोंने बड़ी सहायता दी। फ़ेकृटरीका काम १० मई, १९१६ को जारी हो गया और ३० जून सं० १९१७ तक २५३४५ सेर तेल तैयार हुआ। जर्मनी से सन्दलका तेल आना बन्द होही गया था, इस वजह से तेलकी मांग बहुत बढ़ रही थी। अतएव मयसूर राज्यको खूब आमदनी हुई और शीघ्रही सं० १४ में जो हानि उठाई थी पूरी हो गई।

जब तेलकी मांग बढ़ती ही गई तो राज्यने यह निश्चय किया कि हम भविष्यमें चन्दन बाहर जानेही न देंगे। जितना चन्दन हमारे यहां निकलेगा उसका भापके द्वारा तेल निकालेंगे। इस उद्देश्य से कारख़ाना विस्तृत किया गया और बंगलोरमें ३००० सेर तेल निकलने लगा। मयसूरमें भी एक और कारख़ाना खोला गया, जिसमें

पूरा होनेपर १०००० सेर तेल प्रतिमास निकला करेगा। इस दूसरे कारख़ानेका सूत्रपात होगया है और सितम्बरमें इसका कार्य आरम्भ होगया अब दोनों कारख़ानोंमें प्रतिमास ६००० सेर तक तेल निकलता है। दो सालमें १५ लाख रुपयेका तेल तैय्यार हो चुका है और १९१७ के अन्तमें लगभग ४ लाख रुपये महीनेका तेल निकलता था।

सौमन चन्दनमें से ५ मन तेल निकलता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जो धन वहांसे यूरोपतक चन्दन पहुंचानेमें व्यर्थ नष्ट होता था, उसमें कितनी बचत होगई।

कारख़ानेमें काम दिनरात बराबर जारी रहता है, कभी कभी सफ़ाईके लिए काम बंद होता है। काम करने वालोंके तीन विभाग हैं। प्रत्येक विभाग ८ घंटे काम करता है और उसका अध्यक्ष हिन्दुस्तानी रसायनशास्त्र विशारद होता है। इसके अलावा तेलको साफ़ करके, पैक कराने की देख भालके लिए अलग रसायनज्ञ नियुक्त किये गये हैं।

भारतीय राज्योंमें न मालूम कितने पदार्थ मिलते हैं। यदि उनको विदेश न भेजकर उन-से उपयोगी पदार्थ तय्यार कराये जायं तो राज्यों-को कितना लाभहो सकता है। परन्तु शोकके साथ लिखना पड़ता है कि देशी राजा प्रायः एशो आराम में इतने फंसे रहते हैं कि उन्हें इन बातोंका ध्यान ही नहीं आता। उन्हें जब रुपयेकी ज़रूरत हुई तो कर बढ़ाकर ग़रीबोंका गला काटा। बहुत किया तो ठेका देदिया, मानों ग़रीबोंके सरपर क़साई बैठा दिया।

जौ

[ले० श्री गोपीनाथ वर्मा एम. ए.]

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहां अनेक प्रकारकी फसलें उत्पन्न होती हैं। इनमेंसे कुछ तो ऐसी हैं जिनको छोटे बड़े सभी जानते हैं और प्रतिदिन बर्तते भी हैं जैसे जौ, चना, चावल, गेंहू इत्यादि, परन्तु मामूली तौरसे यदि कुछ दाने जौके हाथ पर रख कर किसी भारतवासीसे पूछा जाय कि यह कौन वस्तु है? तो वह तत्काल उत्तर देगा कि यह जौ हैं। क्योंकि वह उसके बहिरंग आकारसे परिचित है, और भी दो चार मोटी बातोंके बारेमें वह कह सकता है जैसे जौके दो भाग होते हैं एक छिलका व भूसी जोकि जानवरोंका भोज्य पदार्थ है और दूसरा गूदा अर्थात् आटा जिसको मनुष्य खाते हैं।

जौ बहुत प्राचीन समयसे भोज्य पदार्थ है। पाषाण युगके जौके नमूने स्विटज़रलैन्डकी झीलों-की तलहटीमें खुदाई होने पर पाए गए हैं। इसमें (Gluten*) न होनेके कारण इसकी। रोटी नहीं बन सकती। तब भी यह बड़ा पुष्ट-कारी है और इसमें स्फुरिताम्ल (Phosphoric Acid) का बहुत बड़ा भाग मौजूद है। आजकल जौ भोजन तथा शराब बनानेके लिए बोया जाता है। अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखनेसे मालूम होता है कि इसकी भीतरी बनावट गेहूंसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। यूरोपियन लोगोंने इसका बहुत कुछ अनुसंधान किया है। इससे इन्होंने कई नई नई वस्तुएं भी बना डाली हैं और इसी कारण इसका प्रयोग भी बहुत बढ़ गया है। इसके कड़े दाने बनानेके लिए इसके ऊपरी खोलको पीस-कर निकाल देते हैं। इस जौका नाम अंग्रेजीमें (Pot Barley) है। जब अधिक संघर्षण किया जाता है तो इसकी छोटी छोटी गोलियां बन जाती हैं जिन्हें (Pearl Barley) के नामसे पुकारते हैं। इसे पीसकर जो आटा बनाया जाता है उसका नाम (Patent Barley) है। इससे एक नई वस्तु बनाई जाती है जो साधारण और प्रदाह ज्वरके मरीज़ोंके लिए बड़ी शांति देने वाले मुफ़र्रह शर्बत का काम देती है। जौका शोरबा बनानेसे पहिले

* ग्लूटिन वह लसदार चिपकीला पदार्थ है जो गेहूंके आटेमें खूब होता है।

जौको एक विशेष प्रकारकी चक्कीमें डालकर उसका भूसा तथा ऊपरी कड़ा छिलका उड़ा दिया जाता है। ऐसा करनेसे जौके रवे या दलिया निकल आता है जिसे पानीके साथ उबालकर शोरवा बना लेते हैं।

जौ का दाना अकसर जानवरोंको भी दिया जाता है। बहुतसे लोग इसका दलिया पकाकर और उसमें गुड़ या नमक मिलाकर मवेशियोंको इसलिए खिलाते हैं कि वे खेती बारीका काम करनेके लिए खूब मज़बूत हो जांय। वैज्ञानिक रीतिके अनुसार मवेशियोंको जो नाज खानेके लिए दिए जांय उनमें यह देख लेना परमावश्यक है कि उनमें सुपाच्य और नत्रजन रहित उपादान किस मात्रामें मौजूद हैं। यह जानना इतना आवश्यक नहीं है कि वे इन उपादानोंको कितनी मात्रामें दे सकते हैं। इन्हीं नत्रजन रहित उपादानोंसे चर्बी प्राप्त होती है, और मवेशियोंको स्थूल बनाती है। नत्रजनित पदार्थोंसे जो नत्रजन मिलती है उसका बहुत थोड़ा भाग मवेशियोंके शरीरमें रह जाता है बाकी सब मल मूत्रके रूपमें होकर खात बन जाता है। इसलिए मवेशियोंको स्थूल बनानेके लिए तथा यह गुण क़ायम रखनेके लिए ऐसे भोज्य पदार्थ दिए जाने चाहिए जिनमें नत्रजनके यौगिकोंकी मात्रा भी कम न हो; पर उनमें सुपाच्य और नत्रजन रहित उपादान अधिक हों। वैज्ञानिकोंने अपने अनुसंधान द्वारा यह भी प्रमाणित किया है कि जो मवेशी बोझा ढोनेके काममें आते हैं तथा जिन्हे बहुत दौड़ धूप करनी पड़ती है ये इन्ही नत्रजन रहित उपादानोंका अधिक व्यय करते हैं इसलिए मवेशियोंके प्रतिपालन तथा उनकी देह और उनकी शक्ति बढ़ानेके लिए उनके शारीरिक अवयवोंकी मांगके अनुसार सुपाच्य और नत्रजन रहित या चरबी बढ़ाने वाले उपादानोंकी अधिक आवश्यकता है। इन परिणामोंके अनुसार मवेशियोंको जो नाज खानेके लिए दिया जाय उसमें यह देख लेना बहुत ज़रूरी है कि ऊपर बतलाए हुए गुण कहां तक मौजूद हैं।

खेती बारीके काममें खादकी बड़ी ज़रूरत है। और खाद इन्ही मवेशियोंके मलमूत्र और हड्डियोंसे निकलेगा। इसलिए इस विचारसे भी इन मवेशियोंको ऐसे अनाज खानेके लिए दिए जाने चाहिए जिनमें नत्रजनके यौगिक मौजूद हों। हमारे देशमें मक्का जौ ज्वार चना इत्यादि नाज मवेशियोंको खिलाए जाते हैं। लेकिन वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा यह बात मालूमकी गई है कि उबाले हुए बिनौलोंकी रोटीमें इन सब चीज़ोंसे चौगुनी नत्रजन होती है। मवेशियोंके भोज्य पदार्थोंकी उपयोगिताका विचार ऊपर बतलाए हुए गुणोंकी अधिकताके अनुसार करनेसे यह मालूम हुआ है कि उबाले हुए बिनौलोंकी रोटी तथा अलसीकी खली खिलानेसे बहुत ज़्यादा फ़ायदा होता है। इसलिए हमारे देश वासियोंको अपने मवेशियोंको यही चीज़ें देनी चाहिए और जौ इत्यादिक नाजोंका दुरुपयोग न कर उनके द्वारा अधिक उपयोगी वस्तु बनानेकी कोशिश करना चाहिए।
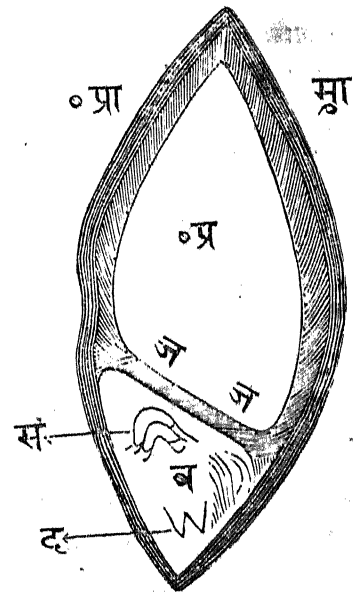
इस चित्रमें जौके ख़ास २ भाग दिखलाये गये हैं।

अ को अंगरेजीमें ऐन्डोसपर्म (Endosperm) अन्तर्बीज कहते हैं, यहां स्टार्च रहता है। यदि थोड़ा गेहूं अथवा जौका आटा एक मलमलके टुकड़ेमें बांध कर पानीके भीतर मला जाय तो पानी सफ़ेद हो जायगा और यदि यह पानी स्थिर होनेके लिए रख दिया जाय, तो थोड़ी देरमें उसके नीचे सफ़ेद चूर्णके समान एक वस्तु बैठ जावेगी। फिर पानीको नितार कर इस पौडरको हवामें रख कर सुखा सकते हैं। यह पौडर अरारूट (arrowroot) के समान चिकना और सफ़ेद होता है जिसको स्टार्च (मांड़) कहते हैं। यह लगभग सब फलोंमें मौजूद है। चावल और आलूसे स्टार्चको निकाल कर कपड़ोंमें लगाया जाता है यह जीवोंका एक बड़ा भारी भोज्य पदार्थ है। अरारूट, सागो, साबूदाना यह सब स्टार्चके नमूने हैं। ब स्थानमें अंकुर रहता है जहांसे नवीन वृक्ष उत्पन्न होता है और अ और ब के बीचमें लकड़ीकी एक बहुत पतली झिल्ली रहती है ज ज जिसको स्कुटिलम (Scutellum) कहते हैं।

स बीजका वह हिस्सा है जो ऊपरकी ओर बढ़ता है और जिसमें पत्तियां बनती है। इसे धड़ (Plumule) कहते हैं। द बीजका वह भाग है जो कि नीचेकी ओर बढ़ता है और जिससे नये वृक्षकी जड़ें बनती हैं। इसको (Radicle) जड़ कहते हैं।

उपरोक्त बस्तुएँ केवल आँखसे देखकर मालूम की गई हैं।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों इसकी वैज्ञानिक जांच भी की जिससे १०० भागोंमें निम्नलिखित पदार्थोंका पता चला है।

१ जल	... ...	१२·५ भाग
२ तेल (oil)	... ...	१·६
३ प्रोटीन (proteins)	...	८·१
४ कारबोहाइड्रेटस (carbohydrates)		७२·०
५ लकड़ीके रेशे	... ...	३·२
६ खनिज पदार्थ	... ...	२·३
		१००·०

उपरोक्त पदार्थोंमेंसे केवल दो एक ही से पाठकगण परिचित होंगे। इसलिए उनका कुछ वर्णन करना यहां आवश्यक होगा जब जीव इनको खाते हैं तब इनसे उनके शरीरके कौन कौन भाग बनते हैं, यह भी यहां लिखे देते हैं।

(१) जलको तो सभी लोग जानते हैं तेल तिल्ली, सरसों इत्यादिमें रहता है इसी प्रकार जौ से भी निकाला जाता है। परन्तु तिलहनके दानोंमें बहुत अधिकतासे होता है और जौ में कम। जब यह तेल जीवोंके शरीरके भीतर जाता है तब इसका कामवही होता है जैसे और तेलोंका। यह शरीरमें गरमी और शक्तिको उत्पन्न करता है और यदि कुछ अधिकतामें है तो शरीरमें जमकर चर्बीका रूप धारणकर लेता है और शरीरको स्थूल बना देता है।

प्रोटीन एक बड़ा मिश्रित पदार्थ है। इसके अनेक रूप हैं और लगभग सब नाजोंमें रहता है दूध इत्यादि वस्तुओंमें भी पाया जाता है। जब गेहूंका आटा एक मलमलके टुकड़ेमें बांधकर पानीमें मसला जाता है तब एक सफ़ेद सफ़ूफ अथवा पौडर पानीमें घुलकर निकल जाता है और कपड़ेमें एक चिपकनी वस्तु रह जाती है। यह एक प्रकारकी प्रोटीन है जिसको ग्रटिन भी कहते हैं। जब दूध फट जाता है तब वह दो भागोंमें विभाजित हो जाता, एक भाग जलके समान रहता और दूसरा ठोस हो जाता हैं। यह ठोस वस्तु एक प्रकारकी प्रोटीन है और इसको कसीम कहते हैं। यह प्रोटीन जब जीवके शरीरमें जाता है तब वहां तीन प्रकारके काम करता है। सबसे बड़ा काम इसका मांस बनानेका है और जीवोंके शरीरका मांस इसके ही सेवनसे बना है। दूसरा काम इसका शरीरमें गरमी

उत्पन्न करनेका है। जब भोज्य पदार्थमें कारबोहाइड्रेट इत्यादि कम होते हैं तब यह गरमी उत्पन्न करता है अन्यथा इससे मांस ही बना करता है। तीसरा काम इसका यह है कि जब यह शरीरके भीतर जाता है तो इसका कुछ थोड़ा भाग अपने अंशोंमें विभाजित हो जाता है और तेल बनकर शरीरमें चरबीका काम करने लगता है।

कर्बोज शब्द (कारबोइड्रेट) का अर्थ बड़ा विस्तृत हैं। उन पदार्थोंको कारबोहइड्रेट कहते हैं जिनमें तीन तत्व रहते हैं। कारबन, उज्जन और ओषजन; उज्जन और ओषजन इस परिमाणमें होनी चाहिये जैसे वे जलमें रहते हैं। इस श्रेणीमें अनेक पदार्थ आते हैं जैसे मांस शक्कर इत्यादि। जब कारबोहाइड्रेट शरीरके भीतर जाते हैं तब इनके दो काम होते हैं। एक तो गरमी और शक्ति उत्पन्न करना दूसरा इसका कुछ अंश चरबी बन जाता है जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। जौमें जो वस्तुऐं रहती हैं उनके उपरोक्त परिमाणके देखलेनेसे मालूम होता है कि जौमें सबसे अधिक कारबोहाइड्रेट ही है जिससे तत्ववेत्ताओंने कई उपयोगी और व्यापारिक वस्तुएं बनाई है, जिन का वर्णन पहिले ही दिया जाचुका है, लकड़ीके रेशे जीवोंसे बहुत कम पचते हैं और यदि कुछ पचते भी हैं तो उसका फल शरीरमें सिवाय गरमी पैदा करनेके और कुछ नहीं होता।

खनिज पदार्थोंसे अधिक तर शरीरकी हड्डियां बनती हैं इस बातको सभी जानते हैं कि जौ मनुष्यों और अन्य जीवोंका भोज्य पदार्थ है। परन्तु विज्ञानवेत्ताओंने इससे कुछ और भी चीजें बनाई हैं जिनका व्यवहार केवल मनुष्य ही करते हैं।

माल्ट और मदिरा बनाना

इस क्रियाके चार उपक्रम होते हैं।

१—(Steeping) जौको पानीमें भिगोना।

२—(Conching) फरैरा करना।

३—(Flooring) फर्श पर फैलाना।

४—(Kilndrying) भट्टी पर सुखाना।

१—पत्थरके बड़े बड़े हौज़ोंमें जिनमें सीमेन्ट लगा होता है अच्छी जातिके बड़े बड़े जौ छांट कर ऊपरसे डाल दिये जाते हैं और इस पर पांच या छः इन्च पानी भर दिया जाता है। ऐसा करने से जो तिनके इत्यादि इनमें मिले होते हैं वह पानी पर उतरा आते हैं और थोड़ी देर बाद इस पानी को निथार कर कूड़ा करकट निकाल दिया जाता है अब किल्ले फूटना शुरू होता है। जौका दाना बड़ा कड़ा होता है और उस पर भूसीकी त्वचा भी खूब अच्छी तरहसे चढ़ी रहती है इसी लिए अगर इसे पानीमें डुबो कर नम न किया जाय तो अंकुर निकलना मुशकिल हो जाय। जौको चालीस पचास घंटे तक पानीमें डूबा रखते हैं। जब चुटकी में दबानेसे इसमेंसे सफ़ेद आटेका सा गूदा निकले तो समझ लेते हैं कि परिवर्तन पूरा हो चुका है। अगर दबानेसे कड़ा मालूम हो तो दो चार घंटे और नम रहने देते हैं। इसी प्रकार अगर सफ़ेद दूध सा निकलने लगे तो यह अधिक भिगोए जानेकी निशानी है। गरमीके दिनोंमें पानीमें किएव क्रिया उत्पन्न हो जाया करती है इसलिए पानी कई बार बदलना पड़ता है। जब यह क्रिया समाप्त हो जाती है तो पानीको मोरीकी राहसे बाहर निकाल दिया जाता है। अब जौको निकाल कर दूसरे हौज़ोंमें ले जाते हैं।

२—यह हौज भी पत्थरके बने होते हैं परन्तु इनकी एक दीवार लकड़ीके ऐसे तख़्तोंकी बनी होती है जिन्हें हटाया जा सकता है। इन हौज़ों में भिगोए हुए जौ चौबीस घन्टे तक फरहरे किए जाते हैं।

३—जब जौ कुछ कुछ सूखने से लगते हैं तो इन्हें बड़े बड़े तख़्तों पर बिछा देते हैं अब इनमें किल्ले निकलने लगते हैं इसलिए इन्हें उलटते पलटते भी रहते हैं। इस क्रियामें तख़्तों के नीचे बहुत धीमी गरमी भी पहुंचाई जाती है जिससे किल्ले फूटने में बड़ी सुगमता होती है। इस अवस्था

में बड़ी होशयारीसे काम लेना चाहिए और दानों की खूब उलट पलट करनी चाहिए। जैसे जैसे किल्ले निकलते आते हैं इन्हें फैलाते जाते हैं और फिर बार बार समेट कर ढेर लगा देते हैं। थोड़ी देरमें दानों में से पके हुए सेब की सी खुशबू आने लगती है इस दशामें अगर इन्हें हाथसे चलाया जाय तो ऐसा मालूम होता है कि हाथ पसीज गया हो। जैसे जैसे अकुंर बढ़ता जाता है ग्लूटीन ग़ायब होकर दाने सफ़ेद पड़ते जाते हैं तथा पके हुए फलों की भाँति मीठे हो जाते हैं। ऐसा होने में यह बहुत सी वायु सोख लेते हैं और कर्बन द्विओषित गैस बना कर निकालते रहते हैं। अब जौ हलका हो जाता है और उसे पानी छिड़क कर अधिक प्रकाश लगने से बचाया जाता है।

४—अब इसे भट्टी पर लेजाते हैं, यह भट्टियाँ कोठरियों की भाँति बनी होती हैं और इनका फ़र्श जालीदार तारों का या छोटे छोटे छेददार लोहे की तख़्तियों का बना होता है। फ़र्श को इस प्रकार बनाने का यह फ़ायदा है कि इन पर जौके दाने डाल कर चलाने से उनकी जड़ें टूट टूट कर गिर जाती हैं; दूसरा फ़ायदा यह भी होता है कि इन छेदों द्वारा गरम हवा पहुंचती रहती है जिसकी गरमी से किल्ले फूटना बन्द हो जाता है। इन भट्टियोंके ऊपर ढकनों में भापके बाहर निकल जानेके लिए रास्ता बना होता है। इस क्रियामें दानोंको गरम करनेसे यह फ़ायदा होता है कि जिस मांडकी शक्कर नहीं बन पाती वह अब शक्करके रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार सुखाये हुये दानोंको माल्ट (malt) कहते हैं।

अब इस जौ से शराब बनानेमें आठ क्रियाओंका प्रयोग होता है।

१—(Grinding) इस क्रियामें सुखाए हुए जौ चक्की द्वारा खूब पीस डाले जाते हैं। यह चक्कियां एंजनसे चलती हैं और इनके द्वारा जौ जितना चाहें बारीक पीसा जा सकता है।

२—(mashing) अब इस पिसे हुए जौ को गरम पानीके बड़े बड़े कड़ाहोंमें रखकर लकड़ीके कलछुलोंसे खूब घोटते हैं। इस पानीका तापक्रम ६०° श से ६५° श तक रक्खा जाता है। ऐसा करनेसे डायस्टेज़ (diastase) रासायनिक क्रिया द्वारा मांडमेंसे घुलनशील (dextrin) डेक्सट्रीन और माल्टशकर बना देता है। घुले हुये पदार्थका नाम (wort) वोर्ट है। इस वोर्टको अलग कर माल्टके बाक़ी अनघुल पदार्थोंको छोड़ दिया जाता है। इस वोर्टको तांबेकी बड़ी २ कड़ाहियोंमें भर कर गरम किया जाता है। उबालते समय इसमें जौ के सूखे हुये फूल डाल देते हैं। इन फूलोंके डालनेसे इसका स्वाद कड़वा हो जाता है, परन्तु यह फूल वोर्टको रक्षा करते हैं और इसे सड़नेसे भी रोकते हैं।

३—(Sparging) इस क्रिया द्वारा गरम किये हुए वोर्टको उथली थालियोंमें रखकर इनमें (Glucose) द्राक्ष-शर्करा मिला देते हैं और इन पर फुहारोंसे जल छोड़ते हैं।

४—(Boiling) अब इन थालियोंको एक विशेष प्रकारकी ख़ानेदार अलमारीमें चुन कर भाप द्वारा गरम करते हैं। यह गरमी उस समय तक पहुंचाई जाती है जब तक वोर्टमें खूब उबाल आने लगता है।

५—(Cooling) अब इस उबाले हुये (वोर्ट) फेनको बड़ी शीघ्रतासे ठंडा किया जाता है।

वोर्टको ठंडा करनेकी कई रीतियां हैं। हर कारख़ाना अपनी मशीनोंकी तादाद तथा अपनी पूंजीके अनुसार ठंडा करनेकी रीतियोंका प्रयोग करता है! किसी २ कारखानेमें फेनको एक विशेष प्रकारके बरतनमें रखकर उसे बड़ी तेज़ीसे घुमाकर ठंड पहुंचाई जाती है कहीं ठंडी हवा चला कर इसे ठंडा करते हैं।

६—(Fermenting) ठंडा हो जानेपर (wort) वोर्टको बड़े २ पीपोंमें भरकर इसमें किण्व (yeast) मिला दिया जाता है और इनका तापक्रम १५°श

से लेकर १७°श तक रक्खा जाता है। द्राक्षशर्करा मिला देनेकी उपयोगिता अब समझमें आती है। वोर्टमें सिर्फ़ माल्ट-शकर मौजूद होती है इसलिये अगर द्राक्ष-शकर न मिलाई जाय तो किराव क्रिया समाप्त हो जानेपर सिर्फ़ माल्ट-शकरसे हो मदिरा बनेगी। द्राक्ष-शकर मिला देने से मदिराकी मात्रा दुगनी हो जाती है। वोर्टमें दूसरे परमाणुक जीव या जीवाणु भी जीवित रह सकते हैं, तथा उनके द्वारा नये २ प्रकारकी किराव क्रियाओं द्वारा जुदी २ वस्तुयें पैदा हो जाती हैं। इसलिये (yeast) किराव की उचित मात्रा डालनेसे अच्छी बीयर (Beer) शराब बन सकेगी। इसक्रियामें ज़रा भी असावधानी हो जानेसे, पूरी २ सफ़ाई न रखनेसे, तथा गंदे किराव मिला देनेसे नई २ किराव क्रियायें होकर (Disease of Beer) बियर रोग उत्पन्न हो जाते हैं और इसका स्वाद बिगाड़ देते हैं।

७-(Cleansing) विज्ञान भाग २ संख्या १ के ३७ पेजपर (Coffey's still) काफ़ी स्टिलका चित्र दिया गया है। इसी भपके द्वारा अशुद्ध बियर शुद्धकी जाती है।

८-(Packing and storing) शुद्धकी हुई बियर शराब बड़े २ पीपोंमें भरकर विशेष रीतिसे बनाये हुये गोदामोंके तहख़ानोंमें जमाकर दी जाती है। जब इसे बाहर भेजना होता है तो बोतलोंमें भरकर काग लगा इनका मुंह लाखसे झाल दिया जाता है। आप लोगोंने देखा होगा कि विलायती शराबकी बोतलें कुछ ख़ाली रक्खी जाती हैं। गरम मुल्कोंमें जाकर जुदे २ तापक्रमोंका उनपर असर नहीं होता है। इसका कारण यह है कि बोतलें पूरी नहीं भरते हैं। जितनी जगह ख़ाली रहती है उसमें शराबकी गैस मौजूद रहती है। गरमी ज़्यादा होनेपर यह गैस अधिक बन जाती है इस लिये जाड़ोंके दिनों की बनिसबत गरमियोंमें बोतलें ज़्यादा ख़ाली मालूम पड़ती हैं। अगर यह ख़ाली जगह न छोड़ी जाय तो ऊंचे तापक्रमपर बोतलमें भरी हुई शराब-की गैसको जगह न मिलनेके कारण वह कागको उड़ा दे!

संसार चक्र

[ले० श्री० मधुसूदन प्रसाद, बी. एस-सी.,]

मनुष्य जब सूर्य्य चन्द्र और तारे, समुद्र आकाश और पृथ्वी, पहाड़ नदी और नाले देखता है और इनके सौन्दर्य और विचित्रता-पर ध्यान देता है तो चकित रह जाता है। उस-के हृदयमें यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि संसार चक्र कैसे चलता है? प्रकृतिने अपना सौन्दर्य कहां-से पाया? मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ, इस चराचार सृष्टिका कैसे आरम्भ हुआ, कबसे आरम्भ हुआ, और इसका परिणाम क्या होगा? विचारवान मनुष्य विचारके अगाध समुद्रमें डुब-कियां लेने लगता है। न ज्ञानसे, न ध्यानसे और न कर्म्मसे ही परम पिताकी इस अपार लीलाका रहस्य जान पाता है। भगवानकी क्रीड़ामें निमग्न होकर पुरुषार्थी प्रश्नकर्ता प्रेममें लीन होकर भक्ति मार्गका अवलम्बन करता है। राम राम जप कर जीवनके शेष अंशको परमात्माकी आराधनामें इस आशासे बिता देता है कि जीवनके समाप्त होनेपर भगवानके दर्शन हों और इस संसार चक्रके झंझटसे सदाके लिए छुटकारा मिल जाय। ऋषियों और मुनियोंने, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों-ने बहुत हाथ पैर मारे, हज़ारों वर्षोंसे प्रयत्न करते चले आ रहे हैं, कि सृष्टिकी उत्पत्ति और विनाशका रहस्य मालूम हो जाय; परन्तु लाखों वर्षोंके निरन्तर परिश्रम और उद्योगके बाद भारतवर्षके ऋषि, यही दो चार मंतव्य पुराणों और स्मृतियों-में छोड़ गए। एक ही बात निश्चित रूपसे उन-को मालूम हो सकी कि परमेश्वरकी यह सृष्टि अनादि है और अनन्तकालतक इसी प्रकार मनुष्य और प्राणी संसारके बन्धनोंमें लिप्त होकर दुख

और सुखका भोग करते रहेंगे। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने सैकड़ों वर्षोंके उद्योगके बाद दो चार सिद्धान्त निश्चित किए जिनके अनुसार इस अनन्त ब्रह्मांडमें सूर्य्य ग्रह चन्द्र और पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है।

अबतक ज्योतिष शास्त्र और गति विद्यामें संसारके वैज्ञानिकोंने जो अनुमान और प्रयोग द्वारा ज्ञान संचित किया है उससे हमको कुछ कुछ पता चलता है कि हमारा सूर्य्यमंडल ब्रह्मांडके गर्भमें किस प्रकार आया होगा और उसकी कैसे उत्पत्ति हुई होगी, एकके बाद दूसरा और दूसरेके बाद तीसरा ग्रह कैसे उत्पन्न होता गया, पृथ्वी कैसे बनी और उसका बेटा चन्द्रमा देवताओंमें कैसे शामिल हुआ? यह सब कहानी जाननेके लिए सभी लोग उत्सुक रहते हैं। कुछ संक्षिप्त विवरण हम यहांपर लिखेंगे।

सब जानते हैं कि पृथ्वीमें एक प्रकारकी आकर्षण शक्ति है जिसके द्वारा पृथ्वी सब पदार्थोंको अपनी ओर खींच रही है। यही कारण है कि पृथ्वी तलपर सब निराधार वस्तुएं पृथ्वीकी ओर गिरती रहती हैं। चाहे जिस शक्तिसे गेंद आकाशकी ओर फेंका जाय पर पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति उसे पृथ्वीकी ओर खींच लाती है। वैज्ञानिकोंका मंतव्य है कि इसी प्रकारकी आकर्षण शक्ति सब ग्रहों, सूर्य्य और तारोंमें मौजूद है; सूर्य्य, पृथ्वी, चन्द्रमा और अन्य ग्रह एक दूसरेको सदा अपनी अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा खींचते रहते हैं जिससे सब अपनी २ जगहपर जमे हुए हैं। यह तय हो चुका है कि प्रकृतिके प्रत्येक परमाणुमें एक प्रकारकी आकर्षण शक्ति मौजूद है जिसके द्वारा प्रत्येक परमाणु अन्य परमाणुओंको अपनी ओर खींचता रहता है। इसी आकर्षण शक्तिके कारण प्रकृतिके परमाणु एक दूसरेकी ओर खिंचते जाते हैं और धीरे धीरे असंख्य परमाणु एक दूसरेसे मिलकर सृष्टिके कारणरूप बन जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह आकर्षण शक्ति, या यों कहिये कि प्रकृतिका यह गुण सृष्टिकी उत्पत्ति, विकाश और विनाशका प्रधान कारण है। मामूली तौरपर कहा जाता है कि यह आकर्षणका नियमही सृष्टिका कारण है परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अनन्त शक्तियोंमेंसे यह एक प्रकारकी शक्ति है और परमात्माके करोड़ों नियमोंमेंसे यह एक नियम है। न जाने कितने और कौन कौन से नियम हमारे चारों ओर न मालूम कितनी शक्तियोंका प्रादुर्भाव करते हैं जिनके द्वारा इस ब्रह्मांडकी स्थिति और प्रलय होती रहती हैं। यदि यही आकर्षण शक्ति अकेली संसारमें काम करती होती तो सूर्य्य ग्रह और तारे अलग अलग अपनी चालें न चल पाते वरन् सब एक दूसरेकी ओर खिंच कर अपना अपना सर फोड़ लेते। इनकी जगह एक बड़ा भारी ढेर होता; न जीव होते, न जन्तु होते, न हम होते, न आप होते! परमात्माकी लीला अपरम्पार है वही इस संकटमय संसारको नियम बद्ध किये हुए नियमित रूपसे चला रहा है। सूर्य्य मंडलमें कई और शक्तियां काम कर रही हैं जिनके द्वारा इस आकर्षण शक्तिका प्रतिरोध होता रहता है। इन सब शक्तियोंके मिलित फलके कारण यह सब ग्रह और उपग्रह अपनी प्रमाणिक चाल चलते रहते हैं। स्वर्गीय राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ने अपने 'चन्द्रकला भानु कुमार नाटक' के आरम्भमें सूत्रधार द्वारा जिन सुन्दर और भावपूर्ण शब्दोंमें मंगलाचरण कहलवाया है, उन्हें हम यहां इसलिए उद्धृत किये देते हैं कि वह हमारे आशयको पूर्ण रूपसे व्यक्त करते हैं।

तिहारे का बरनै गुन जाल,
जासु अकथ महिमा वर दीसत।
दस दिसि तीनिहुं काल ॥ १॥
अगनित रचे चन्द्र ग्रह तारे
निराधार जे नभ बिच न्यारे,
द्वै बिधि अद्भुत शक्ति सहारे
करत प्रमानी चाल ॥ २॥

कौन बसत पुनि तिन लोकन में
कौन प्रकार कौन रूपनमें,
तिल तिल अखिल चरित चिंतन में
थकति बुद्धि ततकाल ॥ ३ ॥
तोहिं अनादि अनंत बिचारत
ध्यान अपार गगनको धारत,
तुव जस को अनुमात्र उचारत
मति उरझति भ्रमजाल ॥ ४ ॥
चींटी मीन बिहग नर हाथी
जीव अमित जग अगनित जातीं,
सिरजि पालि मारत केहि भाँती
धन्य अखिल रखवाल ! ॥ ५ ॥
कानन शैल विशाल बनावै
कुसुमित हरित, छटा सरसावे,
प्रति तरवर प्रभुता दरसावै
पात, फूल, जड़ डाल ॥ ६ ॥
सूक्ष्म वस्तु जो लखी न जावै
सोऊ रचि अति रुचिर बनावै,
रँग विचित्र लखे बनि आवै
धन्य सुकला विशाल ॥ ७ ॥
मात उदर में पिंड बनावत
दै आकार जीव जनमावत,
ज्याय पाल पुनि मार नसावत
जानो जात न हाल ॥ ८ ॥
प्रानी जात कहाँ तनु त्यागी
पितु सुतादि रोवत जेहि लागी,
झेलत दीन अजान अभागी
महा दुःख जंजाल ॥ ९ ॥
प्रान नाथ ! पूरन ! अविनाशी
क्षमा शील सुन्दर सुख राशी,
श्री सच्चिदानन्द अघनाशी
जय जय विश्व भुआल ॥ १० ॥

संसार शब्द ही ऐसा है जिससे बोध होता है कि जिसे हम संसार कहते हैं वह चलता रहता है, या यों कहिये कि उसमें गति है। संसार शब्द संसारकेलिए बिलकुल उपयुक्त है। इस संसारमें जो कुछ भी है सब चलायमान है। हमारे सूर्य्यसे करोड़ों गुने बड़े तारे और सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमाणु सब गतिवान हैं। पशु पक्षी और अन्य जीवधारी ही चलते फिरते दिखायी पड़ते हैं। पेड़, पहाड़, लोटा और खटिया चलते नहीं हैं–इनमें कोई गति नहीं, ऐसा प्रतीत होता है। पर यह बात नहीं है। जितने जड़ पदार्थ हम देखते हैं और जिनको हम समझते हैं कि यह स्थिर हैं, उनमें कोई गति नहीं, वस्तुतः वह सब एक नहीं कई प्रकार की गतियोंके आधीन हैं। यह स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए कि संसारमें गति ही गति है, कहींपर भी स्थिरता नहीं। किसी सूक्ष्मसे सूक्ष्म अणुको भी ढूंढ़कर निकालना सम्भव नहीं जो स्थिर हो, जिसमें गति न हो, जो चलता न हो। हम जिस वस्तुको स्थिर समझते हैं वह यथार्थमें स्थिर नहीं है। जिसे हम स्थिरता समझते हैं वह कोई और ही चीज़ है। संसारकी सर्वव्यापी गतिको पूर्ण रूपसे समझनेके लिए ज़रूरी है कि गति और स्थिरताका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय।

जब आप कहते हैं कि अमुक जीवधारी चल रहा है तो आप जीवधारीकी गतिका तभी ध्यान कर सकते हैं जब कोई पदार्थ स्थिर हो, जिससे जीवधारीके चलनेकी तुलनाकी जा सके। जिस किसी गतिका हम ध्यान करेंगे उसके साथमें सदा किसी अन्य पदार्थकी स्थितिका ध्यान करना आवश्यक होगा। जब आप खुद स्थिर होंगे तो अन्य वस्तुओंको अपने आपसे तुलना करनेपर ही आप निश्चयकर सकेंगे कि वह वस्तुएं स्थिर हैं अथवा गतिवान हैं। संसारमें जिस किसी गतिका ध्यान किया जा सकता है वह सदा तुलनात्मक होगी। जो गति हमारे ध्यानमें आ सकेगी वह सापेक्ष गति होगी। यदि सब पदार्थ चलते हुए हों और हम भी चल रहे हों तो हम इनकी असली गतिका ध्यान कभी न कर सकेंगे। यह कहना मुश्किल है कि सापेक्ष गतिके अतिरिक्त निरापेक्ष (absolute) गति कुछ है

ही नहीं। हमारा आशय केवल यह है कि मनुष्य सापेक्ष गतिका ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है (absolute) निरापेक्ष गतिका ज्ञान बिना तुलना किये हुए प्राप्त कर लेना उसकी शक्तिके बाहर है।

गतिके बारेमें हम जो कुछ वर्णन कर आये हैं वह स्थिरताके विषयमें भी घटित होता है। इसका भी ज्ञान सदा तुलनात्मक होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि इस ब्रह्माण्डमें कोई अणु स्थिर नहीं है। सम्भव है कि स्थिरता उपस्थित हो सके। पर यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि हमें सापेक्ष स्थिरताका ही ज्ञान हो सकता है।

हमारे चारों तरफ़ अनेक शक्तियां काम कर रही हैं। गति उत्पन्न होनेकी आदि कारण यही शक्तियां हैं। किसी स्थिर वस्तुको शक्ति लगाये बिना गतिवान बनाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार किसी गतिवान वस्तुको शक्ति लगाये बिना स्थिर करना भी असम्भव है। यदि किसी वस्तुपर दो बराबर और विरुद्ध शक्तियां लगा दी जायं तो स्थिरता उपस्थित हो जायगी; परन्तु यदि एक शक्ति दूसरीसे ज़रा भी ज़्यादा हुई तो उसीकी दिशामें गति उत्पन्न हो जायगी। इससे यह बात बहुत सरलतासे समझी जा सकती है कि गति और स्थिरता दोनों शक्तिके ही रूपान्तर हैं। शक्तियोंके जुदे जुदे संगठनपर, या यों कहिये कि किसी वस्तुपर कई शक्तियोंके अलग अलग ढंगसे लगाये जानेपर, कभी तो वही वस्तु गतिवान हो जायगी और कभी स्थिर। इससे यह नतीजा निकलता है कि शक्ति संसारमें व्याप्त हो इसके सारे कामोंको चला रही है। शक्तिका दूसरा रूप गति है। इसीके कारण यह विश्व चल रहा है और इसीलिए इसका नाम संस्कृतमें संसार है।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि सब पदार्थ भ्रमणशील हैं। इसकी व्याख्या हम दो प्रकारसे करेंगे। हमारे चारों ओरकी वस्तुएं और हम पृथ्वीपर रहनेके कारण उसके साथ बड़ी तेज़ीसे सूर्य भगवानकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। हम लोग ३६५ दिनमें सूर्य देवके चारों ओर चक्कर लगा लेते हैं। साथ ही साथ पृथ्वी अपनी धुरीके चारों ओर भी घूमती है और हम लोगोंको २४ घन्टोंमें २५ हज़ार मीलका चक्कर लगाना पड़ता है। इतनी तेज़ीसे चलनेपर भी हमारी जान नहीं छूटती, सूर्य मंडल स्वयम् बड़ी तेज़ीसे (Sirius) सीरियसके चारों तरफ़ घूम रहा है। इस गतिका तो अबतक हमें अनुमान ही नहीं हो पाया है। सूर्यके साथ पृथ्वी और पृथ्वीके साथ हम इस बेतहाशा दौड़में लगे हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि कोल्हूके बैलकी तरह चक्कर लगाना ही हमारा कर्तव्य है!

इस संसारके सभी पदार्थ अणु और परमाणु द्वारा बने हुए माने गये हैं। यह सब परमाणु प्रतिक्षण असाधारण वेगसे घूम रहे हैं। इनकी गति किसी ग्रहसे कम नहीं है। वैज्ञानिकोंकी राय है कि पदार्थोंका तापक्रम परमाणुओंकी गतिपरही निर्भर है। अब आप लोगोंकी समझमें आ गया होगा कि जिन पदार्थोंको हम साधारण तौरपर ठहरा हुआ समझे हैं वे बड़े भारी वेगसे चलायमान हैं। इसके अलावा इनके परमाणु तो और भी असाधारण गतिसे भ्रमण करते रहते हैं। अस्तु प्रत्येक पदार्थमें न मालूम कितने ब्रह्मांड मौजूद हैं और सौर जगतकी भांति न मालूम किस अनन्त वेगसे वे चक्कर लगा रहे हैं।

[असमाप्त]

वैज्ञानिकीय

(१) हवाके ज़ोरसे गाड़ी लौट गयी

३ मईको जब मदपुर-कटवा रेलवेकी ६ नम्बर की मिक्स्ड ट्रेन अजय (Ajai) सौथब्लाक हट के सामने पहुंची तो इस ज़ोरका अंधड़ चलने लगा कि ट्रेन उलट गई। ई. आई. आर. तथा एम. के. आर की लैनें रुक गईं, परन्तु थोड़ी ही देर बाद

ई. आई. आर. को लैन साफ़ कर दी गई। अंधड़ोंका कभी कभी बड़ा ज़ोर होता है, यहां तो केवल एक ट्रेन ही उलट गई। सं १८७९ में टे नदीका पुल भी एक अंधड़में टूट गया था। यह ६० लाखकी लागतका था। उस समय इसपरसे एक रेल जा रही थी वह भी नदीमें गिर पड़ी।

(२) सूर्य लोकमें पानी और अमोनिया

सूर्यका तापक्रम लगभग ६०००°श या १०८००° फा है। यह आदमीके तापक्रमसे लगभग १६० गुना है। अब तक लोगोंका यह ख़याल था कि इतने ऊंचे तापक्रम पर किसी भी पदार्थकेलिए यौगिक बनाना असम्भव है क्योंकि यौगिक इस तापक्रमपर ठहर नहीं सकता। यह विश्वास हमारे रसायन शास्त्रके ज्ञानके अनुकूल भी है। परन्तु अब जान पड़ता है कि रासायनिक युयुत्सा (affinity) के विषयमें जो हमारे विचार हैं उन्हें बदलना पड़ेगा। डा० फौलरने सूर्यके रश्मि-चित्रका अध्ययन बड़े परिश्रमसे कई साल तक किया है और अब यह नतीजा निकाला है कि सूर्यमें जल वाष्प और अमोनिया मौजूद है। तथापि हमें यह देखना है कि अन्य वैज्ञानिक भी डा० फौलरका समर्थन करते हैं या नहीं।

(३) ढाई मील व्यासका नया तारा (ग्रह)!

अभी तक शायद पाठक समझते रहे होंगे कि तारोंका व्यास हज़ारों मील होता होगा, परन्तु अब उनको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऐसे भी तारे हैं जिनका व्यास २॥ मील है। मार्च १९१८ में वुल्फ महोदय (Wolff) ने आकाशमें एक छोटे तारेका निरीक्षण किया। उसकी अच्छी तरह जांच करनेपर मालूम हुआ कि वह एक क्षुद्र ग्रह (asteriod) है। यह सूर्यकी परिक्रमा २॥ वर्षमें लगाता है। इसका व्यास २॥ मील है इसपर किसी एक स्थानसे चलकर कोई भी मनुष्य पूरे ग्रहका चक्कर लगाकर आनन्दसे २ घंटेमें फिर उसी स्थानपर पहुंच सकता है। इसके पृष्ठ तलका क्षेत्रफल लगभग २० वर्ग मील है, यह इलाहाबाद शहरके म्युनिसिपेल ऐरियासे भी कम है।

(४) पृथ्वीसे निकटतम सितारा

एलफ़ासेन्टोरी (Alpha Centauri) के पास एक छोटासा सितारा है, जो सूर्यसे हज़ारवां गुना कम चमकने वाला है। यह सितारा पृथ्वीसे निकटतम प्रतीत होता है। इसका पृथ्वीसे फ़ासिला केवल ४.१ या ४.३ प्रकाश वर्ष है। तारोंकी दूरी प्रकाश वर्षोंमें नापी जाती है। अर्थात् यह तारा इतनी दूर है कि उसका प्रकाश पृथ्वीतक ४.३ सालमें पहुंचता है। प्रकाश एक सैकंडमें १८६००० मील चलता है। इसलिए एक प्रकाश वर्षका अर्थ हुआ ३६५ × २४ × ६० × ६० × १८६००० मील अर्थात् ५८६५६९६ × १०^{६} मील।

(५) रश्मि चित्र दर्शक द्वारा मात्रिक जांच

अब तक रश्मिचित्रदर्शक द्वारा तारोंका रश्मिचित्र देखकर यह पता लगाया जा सकता था कि अमुक तारेमें अमुक अमुक मौलिक मौजूद हैं, पर हाल ही में ऐसी तरकीब निकाली गई है जिससे रश्मिचित्रके ही अवलोकन मात्रसे मौलिकोंकी मात्राओंका भी ज्ञान हो सकेगा।

(६) भूतोंका गड्ढा (Grotto del Cave)

नेपिल्स नगरके पास एक गड्ढा है, जिसमें कुत्ते प्रवेश करते ही मर जाते हैं। वहांके अनपढ़ निवासी समझते थे कि यह एक ऐसे भूतका निवासस्थान है जिसे कुत्तोंसे द्वेष है। अतएव कुत्तोंको वह मार डालता है। जब वैज्ञानिकोंको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने जाकर परीक्षाकी; मालूम हुआ कि उसमें कुछ छिद्र हैं जिनमें होकर कर्बनद्विओषिद निरन्तर निकला करती है। भारी होनेके कारण यह गड्ढेमें भरी रहती है। अतएव जब कोई छोटा जानवर या बालक उसमें आ, कर्बन द्विओषिदमें डूब जाता है और उसे श्वासोच्छ्वासकेलिए वायु नहीं मिलती तो उसका प्राणान्त हो जाता है।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

Reg. No. A- 708

पूर्ण संख्या ५१
भाग ६
Vol. IX.

मिथुन १६७५ । जून १६१६

संख्या ३
No. 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

[एक प्रतिका मूल्य ।)

वार्षिक मूल्य ३)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ६ } मिथुन, संवत् १९७५। जून, सन् १९१८। { संख्या ३

भापकी भपकी

[ले० मौलाना करामतहुसैन कुरेशी एम. एस. सी.]

किसी बर्तनमें पानी भरकर रख दीजिये। थोड़े दिनोंमें आप देखेंगे कि पानी ग़ायब हो जाता है। थोड़ा पानी रखनेसे यह घटना दो चार घंटेमें ही देखी जा सकती है। यह पानी कहां जाता है? क्या यह नष्ट हो जाता है? यदि नहीं, तो नज़र क्यों नहीं आता? पानीके इस तरह ग़ायब हो जानेके कुछ नियम भी हैं या नहीं?

पदार्थकी तीन अवस्थाओं गैस (वायवीय), द्रव, और ठोससे तो प्रायः सभी परिचित होंगे। गरम करनेसे ठोससे द्रव और द्रवसे गैस बन जाती है। इसी तरह ठंडा करनेसे गैससे द्रव और द्रव से ठोस बन जाता है। बरफ़को गरम करनेसे पानी और पानीको गरम करनेसे भाप बनती है। भापके ठंडा करनेसे पानी और पानीको ठंडा करनेसे बरफ़ बनती है। आइये ज़रा इन परिवर्तनोंपर कुछ विस्तारसे विचार करें। विशेष प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक पदार्थके अणु निरन्तर भ्रमण किया करते हैं। भ्रमणका परिणाम सबसे अधिक गैसोंमें और सबसे कम ठोसोंमें पाया जाता है। ठोसोंमें अणुओंकी अलग अलग मंडलियां बनी होती हैं। प्रत्येक मंडलीके अणु एक केन्द्र विशेषके चारों ओर घड़ीके लटकनकी तरह छोटेसे वृत्तखण्ड (arc) पर घूमा करते हैं। एक मंडलीके अणु प्रायः उसीमें बने रहते हैं। शायद ही कभी कोई अणु अपनी मंडलीको छोड़ दूसरीमें जाकर मिलता हो।

द्रवोंमें अणुओंका प्रजासत्ताक राज्य है। वहां उनके विचरनेमें कुछ बाधा नहीं है। वह जहां चाहें जा सकते हैं, पर अपने देशको (द्रवके आयतन) छोड़कर बाहर जानेका उनके लिये निषेध है। द्रवके अणुओंके बीचका स्थान-अन्तराणु स्थान-ठोसोंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। गैसोंमें अन्तराणु दूरी और भी अधिक होती है और उनके अणु बड़े स्वेच्छाचारी होते हैं। जहां

[Physics भौतिक शास्त्र]

चाहें जा सकते हैं। एक नगरसे दूसरे नगरतक एक देशसे दूसरे देशतक, तथा एक ग्रहसे दूसरे ग्रहतक भी पहुंच जाना उनके लिये बाएं हाथका खेल है।

अब सोचना यह है कि द्रवोंको गैस (वायवीय) रूप धारण करनेमें क्या बाधा है। समस्त द्रव गैस, बनकर स्वतंत्र रूपसे देश भरमें क्यों नहीं विचरने लगते। कदाचित ऐसा होता तो हमारी शस्य श्यामला वसुन्धरा न मालूम कब की मरुदेश हो गई होती और इस पर पानी अमृतके समान दुर्लभ हो जाता।

द्रवोंपर दो प्रकारकी शक्तियां निरन्तर काम करती रहती हैं और उनको वाष्प रूप धारण करनेसे रोका करती हैं। एक तो है उनका तलतनाव (Surface tension) जो उनके तल-देशकी रक्षा उसी प्रकार करता रहता है जैसे हमारे शरीरकी त्वचा। दूसरी शक्ति है वायु मंडलका दबाव।

किसी पतली नलीमें आप पानी भरिये। पानीका तल सम न होकर नतोदर होगा। पारा भरिये, तल उन्नतोदर होगा। क्या कारण है, यह तल-तनावके ही करिश्मे हैं। पानी थालीमें भरकर ऐसे स्थानपर रखो जहां हवा न जा सके और एक सुई आहिस्तासे पानीपर रख दो सुई पानीके ऊपर पड़ी रहेगी। और पानी पर एक शिकन पड़ जायगी। यहां, साफ़ दिखलाई देगा कि पानीके ऊपर एक झिल्ली है। तल-तनाव ही द्रवके आयतनमें स्वच्छन्दतापूर्वक घूमनेवाले अणुओंको बाहर निकलनेसे रोकता है। वायु मंडलका दबाव इसके विरुद्ध काम करता है। इस बातके समझनेमें तो कोई मुश्किल ही नहीं होनी चाहिये। यदि कोई सज्जन लेटे हुए हों और उनके बदनके प्रति इंच पर १० सेर बोझ रख दिया जाय तो उनको सहज ही पता चल जाय कि वायुमंडलका कितना दबाव होता है। [मामूली तौरसे वायुमंडलका दबाव नीचे ऊपरसे, आगे पीछेसे, दाएं बाएंसे, पड़ता है इसी वजहसे मालूम नहीं होता। यदि एक तरफ़से ज़रा भी हटा लिया जाय, जैसे सिंगी लगानेमें होता है तो खून निकल पड़ता है।]

द्रवसे गैस कैसे बनती है

द्रवके अणु बराबर भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु उन सबका वेग समान नहीं होता। कुछका बहुत ज़्यादा, कुछका बहुत कम, औरोंका औसत दर्जेका। यही मन चले, तेज़ मिज़ाज, अणु जब चक्कर लगाते हुए द्रवकी सतहतक पहुंच जाते हैं तो अपने वेगके कारण तल-तनावका तिरस्कारकर हवाकी चादर उठा वायु मंडलमें पहुंच जाते हैं। इस भांति प्रति क्षण कुछ अणु द्रवमेंसे निकलते रहते हैं। इसी क्रियाको द्रवका उड़ जाना या वाष्पीभवन कहते हैं। पानी आदि द्रव सदा उड़ा करते हैं। उनके कुछ अणु प्रतिक्षण निकलते रहते हैं। अतएव इन गैसके रूपमें विचरने वाले अणुओंका भी कुछ दबाव होता है। यही द्रवोंका वाष्पीय दबाव कहलाता है।

अगर धूपमें रखनेसे या अन्य प्रकारसे द्रवको गरमी पहुंचाई जाय तो क्या होगा? तापक्रम बढ़ेगा, अर्थात् वेग सम्भूत शक्ति बढ़ेगी। सारांश यह कि अणुओंका वेग बढ़ेगा। इससे स्पष्ट है कि इस भांति प्रतिक्षण बाहर निकल जाने वाले अणुओंकी संख्या बढ़ जायगी। प्रतिक्षण अधिक अणु द्रवको छोड़ वायु मंडलमें जा मिलेंगे अर्थात् अधिक भाप बनने लगेगी और वाष्पीयदबाव बढ़ जायगा।

इस प्रकार तापक्रमके अधिकाधिक बढ़नेसे वाष्पीयदबाव बढ़ता जायगा और किसी तापक्रम विशेष पर वाष्पीयदबाव, तल-तनाव, और वायु मंडलके दबावके बराबर हो जायगा। तब तो अणुओंके वायु रूपमें निकल जानेमें कोई बाधा न होगी। इसी तापक्रमको क्वथनांक या उबालविन्दु कहते हैं। इसी तापक्रमपर द्रव उबलने लगता है द्रवका क्वथन होने लगता है।

शायद यहां पर यह शंका खड़ी हो कि क्वथनांक पर पहुंचते ही कुल पानी भाप बनकर क्यों

नहीं उड़ जाता ? इसका कारण पहिले ही बता चुके हैं। सब अणुओंका वेग एक समान नहीं होता ! क्वथनांक तक तापक्रम बढ़नेसे पहिले वह अणु निकल जायँगे जिनका वेग बहुत ज़्यादा होगा। जितनी ज़्यादा गरमी पहुंचेगी, उतनी ही ज़्यादा भाप बनेगी। इसीसे सब पानीका एकदम भाप बन कर उड़ जाना मामूली तौर पर खौलानेमें असंभव है। हां यदि थोड़ा सा पानी तवे पर डालें, तो सब पानी एक दम भापमें परिणत हो उड़ जायगा।

ऊपरके कथनसे दो बातें स्पष्ट हो गई होंगी। एक तो द्रवोंका क्वथनांक जो वायु मंडलके दबाव-बदलनेसे बदला करता है-जितना अधिक दबाव किसी द्रव पर डालेंगे उतने ही अधिक ऊंचे तापक्रम पर वह उबलने लगेगा। दूसरे यह कि द्रवसे गैस बननेमें द्रवके अणु गरमी ग्रहण करते हैं।

यदि तल पर दबाव कम कर दिया जाय तो द्रव जल्दी उबलने लगते हैं। यदि हम भारमापक यंत्र ले कर किसी पहाड़ पर चढ़ना आरम्भ करें और बीच २ में यंत्रसे वायु मण्डलका दबाव नोट करते जांय तो मालूम होगा कि जैसे २ हम ऊपर चढ़ते जाते हैं, वायु मंडलका दबाय घटता जाता है। अतएव पहाड़ों पर पानी आदि द्रव जल्दी उबलने लगते हैं।

गौरी शंकर पर दाल बनाना असम्भव

पानी १००° श पर खौलने लगता है। इस तापक्रम पर उसका बाष्पीय दबाव वायु मण्डलके दबाव अर्थात् ७६० सहस्रांशमीटर पारेके बराबर होता है। परन्तु गौरी शंकर पर्वत पर वायु मंडल का दबाव बहुत कम हो जाता है अतएव पानी १००°शसे नीचे ही खौलने लगता है। इस तापक्रम पर पानीमें दाल सिजाना या आलू उबालना असम्भव है।

चन्द्र मण्डल पर पानी

चन्द्र मण्डलमें ख़ुदाके फ़ज़लसे पानी है ही नहीं। कदाचित वहां पानी होता तो काफ़ूरकी तरह उड़ जाया करता। जिन पदार्थोंका द्रवण विन्दु क्वथनांकसे अधिक होता है वह बिना पिघले ही भापमें परिणत हो जाते हैं। परन्तु हम जानते हैं कि दबाव बढ़ानेसे क्वथनांक बढ़ जाता है। इस लिये काफ़ी दबाव बढ़ानेसे काफूर आदि पदार्थ भी गलाये जा सकते हैं। चन्द्रलोकमें वायु मण्डल है ही नहीं, इस लिये इसका दबाव ही क्या हो सकता है। यदि यहां पानी होता तो उसका क्वथनांक ०° श से भी कम होता। मान लीजिये कि यहां पर एक बरफ़का पहाड़ कहींसे आ गिरे तो उसे पानी होनेका तो अवसर ही न मिल सकेगा। बरफ़से पानी बननेका तापक्रम ०° श है इस लिये इस तापक्रम पर पहुंचनेके पूर्व ही वह वाष्प रूपमें परिणत हो जायगा।

पानीका क्वथनांक कहां तक बढ़ाया जा सकता है?

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि पानीके ऊपर दबाव बढ़ाते चले जायं तो उस का क्वथनांक कहां तक बढ़ सकता है ? इसका उत्तर भी वैज्ञानिकों ने खोज लिया है। दबाव बढ़ाते बढ़ाते पानीका क्वथनांक ३७०° श तक बढ़ाया जा सकता है, परन्तु इस तापक्रमके ऊपर पानी हज़ार प्रयत्न करने पर भी द्रवावस्थामें नहीं रह सकता। सहसा वाष्पमें परिणत हो जाता है। इसी प्रकार यदि भापको गरम करके उसका तापक्रम ३७०° से कुछ ज़्यादा कर दिया जाय तो लाखों वायु मंडलका दबाव डालने पर भी भाप पानीका रूप धारण न करेगी। हां, यदि तापक्रम ३७०° श होगा तो १९६ वायु मण्डलोंके दबावसे भाप पानी में परिणत हो जायगी।

समुद्रकी तलहटीमें पानी

'जलकी मनोरंजक गाथा' शीर्षक लेखमें हमने दिखलाया है कि पृथ्वी मण्डलके ठँडे होने-पर पानीका द्रवरूप धारण करना पहिले पहल उस समय आरम्भ हुआ होगा, जब उसका तापक्रम ३७०° श रहा होगा। ३७०° श तक ठंडा होनेके पहिले पानीका द्रव बनना असम्भव था। उसी

लेखमें यह भी बतलाया गया है कि समुद्रकी तलहटीके कुछ मील नीचे ही लाल लाल दहकती हुई चट्टानें मौजूद हैं। पानी इन चट्टानोंतक पहुंचकर फिर भापमें परिणत हो जाता है और समुद्रमें ही आमिलता है। अब यहांपर यह सोचना है कि प्रकृतिने जो पानीका यह गुण रखा है कि दबाव अधिक होनेसे उसका क्वथनांक बढ़ जाता है, उससे प्रकृतिके कार्यालयमें कुछ लाभ भी होता है या नहीं ?

कदाचित ऐसा न होता और पानीका क्वथनाँक सदा १००° श रहता तो समुद्रकी तलहटीमें पानी सदा उबलता रहता और पानीमें बड़ा उथलपुथल हुआ करता। इसका यह परिणाम होता कि समुद्रका तापक्रम बहुत बढ़ जाता। समुद्र उबलते हुए पानीसे भरे हुए होते और पृथ्वीके ठंडे होनेका वेग अधिक बढ़ जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि महाप्रलयका काल ही आ उपस्थित होता।

इस ऊंचे दर्जेकी गर्मीपर पानीके गुण भी पलट जाते हैं। देखिये गीकी (Geikie) महाशय इस विषयमें क्या लिखते हैं। "साधारण तापक्रमोंपर पानी अत्यन्त बलहीन क्षार या अम्ल है। १८°श पर वह सिकताम्लसे १०० गुना कमज़ोर अम्ल है, परन्तु तापक्रम बढ़नेसे इनकी पारस्परिक कमज़ोरीमें बड़ा अन्तर हो जाता है। ३००°श पर पानी सिकताम्लके जोड़का अम्ल हो जाता है। १०००° श पर सिकताम्लसे ८० गुना और २०००° श पर ३०० गुना अधिक बलवान हो जाता है।"

इससे मालूम हुआ कि समुद्रकी तलहटीका उत्तप्तजल बहुतसे पदार्थोंको अपनेमें घुला लेता होगा, जिसका परिणाम यह होता है कि पानीका क्वथनांक और अधिक बढ़ जाता है और उसका भापमें परिणत होना और भी अधिक मुश्किल हो जाता है। भूगर्भ सम्बन्धी परिवर्तनोंमें इस भांति पानी अपूर्व शक्तिशाली पदार्थ है।

क्वथन (उबलना) और वाष्पी भवन

हम यह देख चुके हैं कि पानीका वाष्पीभवन अर्थात् वाष्प बनना सदा जारी रहता है और तलके ऊपरका ही पानी वाष्पमें परिणत हो कर उड़ जाता है। परन्तु क्वथन होनेपर पानीके आयतनके प्रत्येक अंशमें से भाप बनती है उस समय भापका दबाव वायुमण्डलके दबावके बराबर होता है।

घड़ों, मटकों सुराहियों, बरतनों, तालाबों नदियों, समुद्रों और महासागरों के ऊपरी तलसे भाप बना करती है। जल-प्रपात, नदियोंकी लहरें, समुद्रोंकी तरंगें इस क्रियाकी सहायक होती हैं। सूर्य भगवानकी किरणें भी इस क्रियाका वेग बढ़ा देती हैं। हवाके झोंके भी पानीपर डाका ज़नी किये बिना नहीं मानते।

यह सब तो वाष्पीभवनके साधारण मार्ग हैं। प्रकृतिके अद्भुत रहस्य हैं। वह अपना कार्य न जाने किन किन तरीक़ोंसे करा लेती है। मनुष्य आदि प्राणियोंकी नाक पकड़कर और दिल दबाकर प्रकृति यही काम निकालती है। दिलकी धड़कन श्वासोच्छ्‌वास क्रियाको जारी रखती है। श्वासोच्छ्‌वास क्रिया नाक द्वारा होती है। उच्छ्‌वासमें पानी रहता है, यह बात सहजही सिद्धकी जा सकती है। जाड़ेके दिनोंमें लड़के अपने मुंहसे भाप निकालकर इंजनकी नक़ल किया करते हैं कभी कभी तो बुड्ढोंको भी इसका शौक़ पैदा हो जाता है और कुछ न सही तो बच्चोंको बहलानेके लिए ही धुआं निकालने लगते हैं।

पेड़ कितना पानी उगलते है ?

मनुष्य आदि प्राणी केवल सांस लेनेमें ही भाप को बाहर नहीं निकालते परन्तु त्वचाके रंध्रोंमें से भी बराबर भाप निकालते रहते हैं। वृक्षोंमें भी यह दोनों क्रियाएं होती हैं। इन क्रियाओं द्वारा वृक्ष जलका अनन्त परिमाण पृथ्वीमेंसे खींचकर वायु मण्डलमें छोड़ देते हैं। एक सज्जन लिखते हैं :—

समस्त पौधोंमें जलका प्रचुर परिमाण विद्य-

मान रहता है। जलीय पौधोंमें ६५–६६ प्रतिशत और साधारण पौधोंमें ५०--७० प्रतिशत जल रहता है। यह सभी प्रकारकी वनस्पतियोंमें पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जल या रसोंकी एक धारा वनस्पतियोंके तनोंमें चढ़कर पत्तियोंतक पहुंचती रहती है। इन पत्तियोंमें अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र रहते हैं, उन्हीके द्वारा यह जल भापके रूपमें निकलकर वायुमें मिल जाता है। ओक वृक्ष की एक पत्तीमें लगभग बीसलाख (२, ०००, ०००) छिद्र होते हैं। यही रस पत्तियोंको ताज़ा और बलवान रखता है। इसी रसधाराके द्वारा पौधेकी प्रत्येक सेल (कोष) तक पानी पहुंचता है और उसका भरण पोषण होता है।

इस प्रकार जो पानी पौधे ज़मीनसे सोखते हैं, उसकी मात्रा बहुतही आश्चर्यजनक है। चार महीनेमें एक एकड़में बोये हुए गोभीके पौधे लगभग सवा लाख मन पानी रंध्रो द्वारा निकाल देते हैं। अकेला एक ओक वृक्ष, जिसमें सात लाख पत्तियां मानली जावें, पांच महीनेमें लगभग ३००० मन पानी पत्तियोंमें से बाहर निकाल देता है"

यह तो हुई दो चार महीनेकी बात। वृक्ष अपने जीवनमें कितना पानी ज़मीनसे निकाल वायुमण्डलमें फेंक देते हैं। ओकका वृक्ष लगभग १००० वर्ष जीवित रहता है। यह वृक्ष अपने जीवनमें क़रीब २ सत्तर लाख मन पानी वाष्पमें परिणतकर देता है। कैलीफ़ोरनियाके 'मेमथ' वृक्ष तो लगभग ३००० वर्ष पुराने होंगे। कनारी द्वीप (Canary Islands) के अन्तर्गत ओरेटावाका ड्रेगन वृक्ष (Dragon tree of Oratava) तो अनुमानतः १०००० वर्षका होगा। जिस समय श्रीकृष्ण गीताका उपदेश दे रहे थे यह वृक्ष ५००० वर्षका हो चुका था। अनुमान कीजिये कि पृथ्वीतलके असंख्य पौधे, वृक्ष, लता आदि सब मिलकर प्रति वर्ष कितने पानीकी भाप बनाते हैं और संसारका कितना उपकार करते हैं। न जाने संसारके समुद्र कै बार इस प्रकार वृक्षोंके रंध्रोंमें होकर परिक्रमाकर चुके होंगे।

यदि वायुमंडलमें जल वाष्प न होती तो क्या होता?

यदि वायुमंडल में वाष्प न रहती तो वर्षाका होना असम्भव हो जाता। फिर वनस्पति जीवन का अन्त होनेमें देर न लगती। मनुष्य आदि प्राणियोंका ज़िन्दा रहना भी मुश्किल हो जाता। पृथ्वी रातको–२५०°श तक ठंडी हो जाया करती और दिनमें उसका तापक्रम १८०°श हो जाया करता। फिर तो बिना प्रयास ही रातके समय वायु द्रव रूप धारण कर लिया करती और दिनमें मटन चोपके शौक़ीन मज़ेमें मटन सेक सेक खाया करते।

ऐसा क्यों होता, इसका क्या कारण है? पानीकी भाप जो वायुमंडलमें विद्यमान रहती है वह सूर्यकी ज्योतिहीन तापकिरणावलीको ऊपर ही ऊपर सोख लेती है, उन्हें पृथ्वीतक बहुत कम परिमाणमें पहुंचने देती है। केवल प्रकाश और ताप किरण ही पृथ्वी तल तक आने पाती हैं। यह पृथ्वीको गरम करती रहती हैं। रातके समय यह गरमी पृथ्वीमेंसे निकलने लगती है उस समय वायुमंडलकी जल वाष्प कम्बलका काम देती है और उसे शीघ्र ठंडा नहीं होने देती।

इस प्रकार जल वाष्प दिनमें जला देने से और रातको बरफ़की तरह जमकर मरने से रक्षा करती है।

कदाचित आज वायुमण्डलकी समस्त जल वाष्प निकाल ली जाय, तो पृथ्वीका तापक्रम २०° श घटजाय और यूरोप, अमेरिका आदि बरफ़से ढकजायं। केवल भारतवर्ष आदि गरम देश ही सही सलामत बचें।

वायुमंडलमें कितनी जल वाष्प है?

वायुके प्रत्येक १०० भागमें १·३ भाग जल वाष्प पाई जाती है, अर्थात् १०० मन वायुमें ८४ मन जल वाष्प रहती है। समस्त वायुमंडलमें १३७५०००, ०००, एक अरब ३७ करोड़ ५० लाख मन जल वाष्प विद्यमान है। यदि यह जलमें परिणत कर एक जगह इकट्ठी करली जाय तो

१२००० वर्गमील क्षेत्रफल की एक मील गहरी झील बनजाय।

पाठकगण-गरमीके दिनोंमें इस कल्पित झील की सैर कीजिये। इसका विचार करनेसे ही गरमी न लगेगी। हां गरमियोंमें हवाकी भी ज़रूरत होती है। इस लिए अगले मासमें वायुपर विचार करेंगे।

अद्भुत यंत्र

(एक वैज्ञानिक कहानी)

[ले०-प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी बी० एस० सी]

(४)

बुड्ढी मिश्रानीने दुनियांका तजुर्बा पैदा कर लिया है। अपने डिपार्टमैन्टमें ये भी एम. ए-है। झूठ, प्रपंच, मिलावट, बातें बनाना, फुसलाना, बहकाना, धमकाना, बहलाना, ग़र्ज़ कि कोषमें जितने प्रकारकी शैतानी लिखी हैं उन सबमें ताक़ हैं। क्यों नहो! किसी काममें इसके मालिक अग्रसर तो किसीमें बुढ़िया अव्वल!

मिश्रानीजीसे पूछिये, "क्यों मिश्रानीजी भोजन कर लिये?" उत्तर मिलेगा "लल्ला हमारे क्या भोजन होते हैं। पहले वैसे ही मेरा अहार कम था अब बुढ़ापे में और भी कम हो गया है। सेर सवासेर आटा कभी एक बार खा लेती थी वह भी आजकल बन्द है"। पूछिये "क्यों?" उत्तर मिलेगा "हमारा काम बिना मालिक को खिलाये खानेका नहीं है। तीन दिनसे रोटी जमा है (मिश्रानीजीके पेटमें) कभी खाते ही नहीं। रोज़ पकाती हूं रोज़ रख देती हूं, क्या करूं मैं भी इसी घरमें पली हूं। इसलिये कहीं जानेको जी भी नहीं करता—ठाकुर लोग बुलाते थे पर मैंने मना कर दिया।

मिश्रानीजी जावें क्यों? भला पूछिये ३ दिन तक बाबूजी ने खाना नहीं खाया तो रोटी पहले ही क्यों करली? और तुर्रा यह है, कि बाबूके खानेका खर्चा ५०) महीना पड़ता है।

ऐसी जगह को छोड़ जहां मालिक कभी तीसरे चौथे खाना खावे, और वह भी बासी फुलके खा मस्त रहै, और ५०) माहवारका सामान मिश्रानीजीका नैवेद्य हो, वहांसे कोई क्यों कर जावेगा?

अब रही तन्ख़्वाहकी बात इस बारेमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। १००) महीना बाबूजी बंकसे मंगवाते हैं, और मिश्रानीजीके सुपुर्दकर देते हैं। यह महीनेमें बराबर हो जाता है। यों तो मिश्रानीजीका वेतन ८) महीना है पर वास्तव में वह क्या बना लेती हैं इसके उत्तरमें एक ख़ानसामेका क़िस्सा याद आता है। ख़ानसामेसे किसी ने पूछा "कहो मियां अद्दन कहां हो? क्या तनख़्वाह मिलती है?" उत्तर मिला "भाई आबू पहाड़ में बाटली साहबके पास काम करता हूं तनख़्वाह क्या मिलती है, यार यों ही काम चलता जाता है; सब मिलाकर ११०) हो जाते हैं।" बस यही बात मिश्रानीजीपर भी घटती है।

पाठकोंको स्मरण होगा कि मिश्रानीने मेहरा-से कहा था यदि बाबूजीको खानेकी सूझे तो मुझे जगा लेना—मैं यहीं सोती हूं'। यहीं सोने-का मतलब? मेहराको दिखाकर मिश्रानीने पूरे आठ पराठे बनाये थे और कहतीं थीं कि कदाचित बाबूजीका इससे भी पेट न भरे, क्योंकि उन्होंने दो दिनसे कुछ नहीं खाया है। पर ज्यों २ रात बढ़ती जाती है बुढ़ियाके पेटमें परावठे एक २ कर अस्त होने लगते हैं और २ बजे राततक केवल दो ही तीन परावठे शेष रह जाते हैं।

हरीकान्तने महराको पुकारा। वह जमुहाई लेता हुआ उठा और मिश्रानीजीको जगाने पहुंचा। पर मिश्रानी पहलेहीसे सचेत थीं (सोई कब थीं?)। अस्तु हाथ मुंह धो बाबूजी खानेको बैठे।

बाबूजीको भूख अवश्य लगी थी पर ठंडे

परावठे वे क्यों करचबा सकते। मिश्रानीसे कहा "इन्हें गर्म करो" उत्तर मिला "लल्ला तुम्हारे पिताजी कहा करते थे कि आधी रातके बाद अग्निदेवको दुख न देना चाहिये। इसी कारण आग नहीं जलाई। कहो तो अब जलालूं"।

हमने पहले कहा है कि बाबूजी सदा मर्य्यादासे रहते थे। एक ही काम सदा करनेसे उनकी दूसरी शक्तियां शिथिल हो गईं थीं और वे ऐसी वैसी बातोंमें बहुत वहम करते थे। इसलिये बिचारे चुपचाप परावठे चबाने लगे।

... ...

एक रोटी ज्यों त्यों निगली थी कि निवारन पागलोंकी तरह भागते रसोई घरमें घुस आये और कहने लगे, "अरे यार ऐसी सूझी कि क्या बताऊं, बस बातकी बातमें सब कुछ तैयार।"

हरी खाना पीना सब भूल गये; एक बार तरह २ के बिचार उनके चित्तमें फिर उत्पन्न होने लगे। फ़ौरन चौके ही से निबारनको पकड़ लिया और बड़े चावसे पूछने लगे "कहो क्या किया?" निबारन, कमरेमें चलो तब बतलावेंगे—

हरी०—"नहीं २ यहीं बताओ तुम्हें हमारी सौगन्ध! यहीं! अभी बताओ।"

जब हरी किसी प्रकार न माने तो लाचार निबारनने एक कोयला हाथमें लिया और पीढ़े पर चित्र बना समझाना आरम्भ किया "देखो यह एक नली है-लहरोंके आने पर यह बुकनी सिमटी- अच्छा अब ऐसा करना चाहिये कि यह नली एक लकड़ीकी मेज़पर रक्खी जाय। इस मेज़के नीचे बिजलीकी घंटी इस प्रकार लगाई जाय कि जब २ घंटी बजे इसकी हथौड़ी लकड़ीकी मेज़पर ठोकर दे। ऐसा होनेसे नली हिल जावेगी और बुकनी फिर फैल जायगी।

हरी०—"ठीक, पर तुमने यह कैसे किया?"

निबारन०—"देखो २ बताते हैं। मानलो यह नली है। इसका एक सिरा बिजलीकी घंटीकी एक खूंटीसे जोड़ा जाय घंटीकी दूसरी खूंटी तारकी कमानीसे जुड़े-कमानी बैटरीसे जुड़े और बैटरीका दूसरा सिरा नलीसे जोड़ा जाय समझेना?"

हरी०—"हां हां ठीक! कहो २।"

निबारन०—देखो यह सब तुम्हारी बताई बातें हैं। यह तो जानता ही था कि बिजलीसे घंटी बजती है पर यह तुमने मुझे नहीं बतलाया कि यह कैसे बजती है। इसलिये मैंने तुम्हारी मेज़पर पड़ी हुई घन्टीको ख़ूब ग़ौरसे देखा और इसके बारेमें मैंने जो अटकल लगाई तुम्हें बताता हूं। अगर इसमें कोई ग़लती हो तो मुझे बतलाना— निबारनने पट्टीपर कोयलेसे विद्युत घंटीका चित्र खींचकर सारे यंत्र जहांके तहां जोड़ तोड़कर कहा बस, इसी प्रकार घंटी बजने लग गई।

हरी०—"बिलकुल ठीक है-वाह क्या कहना है। अब आगे क्या किया?"

निबारन०—"अब रहही क्या गया? लहरोंको डंडेने पकड़ा और इन्हीं लहरोंने नलीके भीतरकी बुकनीको इकट्ठा कर दिया-बैटरीसे विद्युत बहने लगी-कमानीने खटका दिया उसके साथ २ घन्टी भी बजी। हथौड़ीने लकड़ीके चबूतरेको ठोकर दी चबूतरा हिला इससे नली भी हिली और बुकनी फिर फैल गई। दूसरी लहर आई फिर मंडल पूरा हुआ, फिर कमानीका खटका हुआ, फिर घन्टी बजी और बुकनी फैली। यही तो तुम चाहते थे ना? कि बार २ नलीको हाथसे ठोकना न पड़े।

हरी०—"ठीक है। चलो इसे प्रयोग करके देख लें।"

पाठक कहेंगे। क्या बेपरकी उड़ाई है। कहां राजा भोज कहां गंगुआ तेली। हरीकान्त ऐसे योग्य, विद्युत शास्त्रके धुरन्धर पंडित, इतनी सरल बात न सोच सके। और यह सूझी किसको कारख़ानेके एक साधारण बाबूको? ऐसा ही होता तो ये बाबू भी कोई बड़े आदमी होते। पर नहीं। यह सोचना भ्रम है।

छोटी चींटीसे लेकर बड़े हाथी तक, ग़रीब भिखारीसे लेकर चक्रवर्ती राजा तक, सबके भाग्यकी डोरी पकड़े हुये, एक ऐसी शक्ति मौजूद है जिसका नाम ईश्वर है। उस ईश्वरकी लीला अपार है; उसके डिपार्टमेन्टका नियम निराला है—सांसारिक डिग्रियां उसके यहां कुछ काम नहीं देतीं; बड़ा छोटा उसके सामने कोई नहीं है? सं० १८७७ ई० में अथवा उससे पहिलेसे लोगोंको यह मालूम था कि विद्युत मंडलके निकट चुंबककी सुई स्थिर नहीं रह सकती। वर्स्टेड (Oersted) ने सं १८७७ में यह नियम भी बताये थे कि चुंबकका उत्तरी ध्रुव विद्युत धाराके नीचे और ऊपर बहने से किस ओर मुड़ेगा। उनका यह भी प्रश्न था कि कुछ दूर रखने से चुम्बककी सुई विद्युतके कारण किस तरफ़ हिलेगी? पर उस समयके लोगोंने इसपर अधिक विचार न किया। प्रयोग होते गये, कई नये उपयोगी यंत्र भी बने, औलिवरलोज, पियर्स, लिन्डज़े, डाक्टर बोस इत्यादि सबने प्रयोग किये पर यह मार्कोनी का ही सौभाग्य था कि वे ही बेतार समाचार भेजनेके यंत्रके जीवनदाता कहे जावें? और सुनिये।

कहते हैं कि संवत १८४७ में प्रोफ़ेसर गैलवेनीकी स्त्रीको डाक्टरोंने मैंढक खानेकी आज्ञा दी, मैंढककी टांग मेज़पर रक्खी गई जैसे ही उन्होंने इसे कांटे छुरी से काटना चाहा कि वह अपने आपसिकुड़ने लगी! सामने ही प्रोफ़ेसर साहब का एक शिष्य विद्युतोत्पादक यंत्रसे प्रयोगकर रहा था। प्रोफ़ेसरको निश्चय हुआ कि उसी यंत्रकी विद्युतसे यह टाँग सिकुड़ी है। आपने जन्म भर इसी बातपर विश्वास किया कि विद्युतद्वारा निर्जीव टांगमें भी स्पन्दन होने लगता है। इन्हें इस समय यह सूझ न आई कि विद्युत यंत्र अलग हटाकर अगर फिर उसी प्रकार उस टाँगको छुरी कांटेसे छुआ जाय तो क्या होगा? यदि कहीं उनके हृदयमें यह प्रश्न जम जाता तो संभव था कि वे ही विद्युत तरंगोंका रहस्य जान सकते?

इन्हींके समकालीन वैज्ञानिक वोल्टाने जब यह हाल सुना उन्हें निश्चय हुआ कि दो जुदी २ धातुओंके सम्पर्कसे विद्युत उत्पन्न होनेके कारण टाँगमें स्पन्दन हुआ था। उन्होंने प्रयोगों द्वारा अपने इस विचारकी पुष्टिकी और वोल्टा पाइल नामक यंत्रसे विद्युत बनानेमें कृतकार्य हुये।

इनकी इस महान कल्पनाको चिरस्थायी बनानेकेलिये अबतक इस तरंग विद्युतका नाम (Voltaic Electricity) वोल्टाइक विद्युत प्रसिद्ध है।

ऐसी दशामें क्या आश्चर्य है कि हरीको न सूझकर यह बात निबारनको सूझे कि यंत्रमें घण्टी जोड़ देने से काम बन जावेगा?

निबारन कारख़ानेमें आरे चलाना इत्यादि बढ़ईका सब काम सीखे हुए थे इस कारण कुछ ही देरमें लकड़ीका चबूतरा चढ़ा उसपर नली रख तार जोड़ इन्होंने सब ठीककर डाला। दो मेजोंपर दो यंत्र रक्ख गए एकओर लहर भेजने वाला, दूसरी ओर 'पकड़ने' वाला। बस हरीने चाबी दबाई कि इधर खट हुई और घंटी टनसे बजी; फिर चाबी दबाई फिर उधर खटका हुआ और घंटी बजी।

निबारन बाबू अपने घर चले गये। दोनों मित्रों में यह निश्चय हुआ कि किसी एकान्त जगह जाकर बड़े २ यन्त्र ले उन्हें दूर २ रखकर इस प्रयोगकी जांच की जावे। सफल हो गया तो फिर दोनों हाथ लड्डू हैं।

जिस समय प्रयोग किया जा रहा था हरीने निबारनसे कहा "कहो कैसा यन्त्र बनाया"? निबारनने उत्तर दिया "तुमने बनाया या मैंने?"

हरी बोले "बतलाया तो सब कुछ मैंने मैं। न होता तो तुम्हें स्वप्नमें भी यह न सूझती कि विद्युत क्या वस्तु है।"

निबारनका उत्तर था "अजी रहने भी दो

बतलानेसे क्या होता है—ऐसे बतलाने वाले थे तो अपने आप ही न बना लिये होते। मेरी क्या आवश्यकता थी"!

इस झगड़ेके बाद यह निश्चय हुआ कि ये दोनों मित्र दारजिलिङ्ग जावें। वहां हरीकांतके मामूंका एक बंगला पटाड़की चोटीपर है यह निर्जन स्थल इनके लिये उपयुक्त होगा, इसलिये वहीं प्रयोग किये जांय। हरीकान्त सुबह अपने मामूंको तार भेजेंगे और उत्तर आने पर निवारन को सूचना देंगे और उसी दिन ४ बजे शामकी गाड़ीसे दोनों दार्जिलिंग चल देंगे। प्रयोग सफल हो जानेपर इस यंत्रका पेटेन्ट "घोष निवारण यंत्र" के नामसे कराया जावेगा और आमदनी-में बराबर हिस्सा रहेगा।

हरी अभी सोये नहीं हैं—सामने मेज़ोंपर यन्त्र रक्खा हुआ है और वे उसकी ओर देख रहे हैं। क्या हरी कुछ सोच रहे हैं? नहीं क्या उनको कुछ कष्ट है? नहीं क्या किसीके आनेकी बाट देख रहे हैं? नहीं फिर क्या मामला है? हरी जाकर सोते क्यों नहीं हैं।

पाठक यह ख़ुशी है। वह ख़ुशी ही क्या जो आदमीके चेहरेसे मालूम न हो? जिससे आदमी हँसे नहीं, उसका मुख कमल विकसित न हो!

आनन्द ऐसी अपूर्व शक्ति है कि इसका अंकुर जमते ही मानवी हृदय एक नई ज्योतिसे परिपूर्ण हो सांसारिक वेदनाओंको आनन्दपूर्ण अनुभव करने लगता है। यह वह कोमल मधुर, नवजीवन-संचारी तथा आत्मसंयमी राग है जिसके सुरोंकी झनकार से मानवी हृदय-तंत्रिमें एक विचित्र कंपन उत्पन्न होकर मनुष्य तन्मय हो जाता है। जल, थल, चर, अचर, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, आनन्द पूरित हृदयके लिये सभी आनन्दमय हैं! उसके स्वच्छ हृदयमें प्रतिबिम्ब पड़कर हर चीज़ आनन्द रश्मियों से जगमगा उठती है! उसके हृदयकेन्द्रसे निकल कर आनन्द रश्मियां सारे संसारको ज्योतिपूर्ण तथा आनन्दोत्फुल्ल बना देती हैं! हर मनुष्यका सारा जीवन इसी आनन्दकी तलाशमें ख़तम हो जाता है। आनन्द इस जीवनकी चरम सीमा है यही सबकी ध्येय वस्तु है!

निवारनके चले जानेपर हरी कुछ देरतक सोचते रहे। कई बरसोंके परिश्रमके बाद आज इनका जीवन सफल हुआ, दोही तीन दिनके बाद हरीका नाम प्रख्यात हो जायेगा। हरीकी तसवीर उतरेगी तमाम समाचारपत्र उनका जीवन चरित्र छापेंगे। हरीको स्थान २ से बुलावा आवेगा। विलायत जा व्याख्यान देंगे। नाम होगा–अपना नाम अपने पिताका नाम जातिका नाम–कल कत्तेका नाम बंगालका नाम–सारे भारतवर्ष-का नाम!!

निवारनके चले जानेके बाद हरीने एक बात और सोची; यह यंत्र तो सार्वजनिक सम्पत्तिकी तरह रहा, सब लोग इस यंत्रसे विद्युत लहरें उत्पन्नकर सकेंगे। दूसरा यंत्र लेकर जिसके जीमें आयेगा वही उनके द्वारा भेजे हुए समाचारको समझ लेगा। इसलिये यंत्र ऐसा होना चाहिये कि जिसमें तुम्हारी भेजी ख़बरें तुम्हारा ही यंत्र ग्रहणकर सके दूसरा नहीं। यह किस तरह होगा इसका भी हरी निश्चय कर चुके थे। दार्जिलिंग चलकर एक बार इस यंत्रसे प्रयोग करेंगे फिर नये यंत्र की ओर ध्यान देंगे। अब रास्ता खुल गया है हरीके सम्मुख कोई भी बात कठिन नहीं दीखती; सम्भव है कि एक स्थान पर बैठकर लिखो और दूसरे स्थानपर उसकी आप ही नक़ल हो जाय। सम्भव है कि किसी यंत्रकी सहायतासे अपने घर बैठे हुये तमाम संसारकी सैर करलो। सम्भव है कि कोई ऐसा यंत्र बना लिया जाय जिसकी सहायतासे कलकत्तेके समाचार बम्बई और बम्बईके कलकत्ते सुन लो। सब कुछ सम्भव है। धीरे २ सब कुछ कर लेंगे आज नहीं तो दो वर्षमें, दस वर्षमें, एक बार नाम हो गया अब जिस जगह जावेंगे वहीं प्रतिष्ठा होगी, मान होगा। इस प्रकार ज्यों २ हरी सोचते गये

उनकी खुशी बढ़ती गई आखिर सब शून्यसा दीखने लगा।

लड़का परीक्षामें उत्तीर्ण होता है उसे भी खुशी होती है। किसीके लड़का उत्पन्न हो उसे भी खुशी होती है। किसीको पदवी मिले उसे भी खुशी होती है। पर यह खुशियां उस प्रकारकी नहीं है जिस प्रकारकी खुशी हमारे हरी बाबूको हुई है। यह वह खुशी है जिसमें आदमी हंसने पर भी रो देता है, और रोते २ हंसने लगता है। जिसमें आदमी आदमी नहीं रहता, जिसमें आदमीके सब अंग साथ २ चलते हैं और चलने पर भी सुन्न रहते हैं। इसका वर्णन हमसे नहीं हो सकता। इसे आप पागलपन कहें, समाधि कहें, योग निद्रा कहें, सब थोड़ा है।

हरीकान्त इस दशामें कबतक रहे हम नहीं कह सकते हमने इसके बाद इन्हें दूसरे दिन ४ बजे सायंकाल रेलके स्टेशनपर ही देखा।

कहते हैं कि शैतान रुपये वालेके पीछे भागता है। पर हमारा यह कहना है कि शैतानके पीछे ग़रीब भागता है अथवा शैतान ग़रीबको अपनी ओर खींच लेता है। यह ग़रीब कई बार ठोकर भी खाता है, कई बार गिरता है, पर ज्यों ही संभला कि फिर भागने लगा।

क्यों हैं संसारमें इतनी बुराइयां। जिस समय पाठक समाचारपत्रोंमें पढ़ते होंगे कि अमुक व्यक्तिने एक छोटेसे बालकके हाथ काट उसका गहना उतार लिया आप सोचते होंगे वह बड़ा निर्दयी पुरुष था। व्यक्ति निर्दयी नहीं है अगर निर्दयी है तो उसकी ग़रीबी! जो भला है वह मनुष्य मात्रको भला लगता है। यह कहना अनुचित है कि अमुक भली बात अमुक व्यक्तिको भली नहीं लगी। यदि ऐसा कहीं देखनेमें आवे तो निश्चय जानिये कि उस भलाईमें कुछ त्रुटि अवश्य होगी। जो वास्तवमें भला है वह सबको भला लगता है एक बापके जितने बेटे होते हैं उनमें कुछ न कुछ समानता अवश्य होती है चाहे यह समानता रूपमें हो चाहे रंगमें चाहे गुणमें हो पर होती अवश्य है। तो क्या सबके जीवनदाता सर्व शक्तिमान सद्गुण समूह — परमात्माकी सन्तानमें भलाईका अंश अथवा भलाईसे प्रेम नहीं होता? अवश्य होता है। फिर क्या कारण है कि उसी व्यक्तिके बारेमें आप यह कहें कि वह बड़ा निर्दयी है। हाथ काटने वाला तो इस बातका विचार भी नहीं करता?

चोर छिपकर चोरी करता है। उसकी आत्मा उसे बतलाती है कि यह काम बुरा है। उसका सारा अंग कांप २ कर और कलेजा धड़क २ कर उसे सूचना देते हैं कि यह काम बुरा है। फिर वह क्यों चोरी करता है? एक बार चोरीकी, पकड़े गये, सज़ा हुई, मान हानि हुई, फिर छूटे, फिर कुछ सहारा न पाया. फिर चोरीकी, यह क्यों?

पाठक यह दोष हाथ काटने वाले का नहीं है। चोर का नहीं है--दोष है उनकी ग़रीबो का, 'मरता क्या न करता" वास्तवमें सत्य है। कहते हैं कि सतयुग में चोरी नहीं होती थी पर उसके साथ २ यह भी कहा है कि उस समय सब लोगों को भर पेट खाना मिलता था सब लोग सुखी थे? फिर क्यों न हो? क्यों कोई चोरी करने जाय?

ग़रीबी मनुष्यसे जो न करवाले सो थोड़ा है। किसीने सत्य कहा है 'विभुक्षितः किं न करोति पापम्'। चाहे ग़रीबी पाप नहो पर यह पापोंका कारण अवश्य होती है।

४५) माहवार मिलने परभी निबारन बाबू बड़ी ग़रीबीके साथ दिन काटते थे। कलकत्तेका रहना सहना, इस परभी घरमें खानेवाले १० प्राणी, फिर बच्चोंकी पढ़ाईका ख़र्च, ऐसी दशामें ४५) से क्या हो सकता है?

पेटैन्ट करानेके नियम तथा उसके बारेमें अन्य आवश्यक बातें निवारनने हरीसे बड़ी उत्कंठा से पूछी थीं। शैतानने निबारनको अपनी ओर आकर्षित किया और वह घर चलते २ यह सोचने लगा

कि इस यंत्रको अपनेही नामसे पेटैन्ट करवालें। बक्सोंमें बन्द कराने के लिये सब यंत्र हरीने इन्हें दे दिये थे और इनसे प्रण करा लिया था कि ये इन्हें बड़ी सावधानी से बन्दकर अपने साथ स्टेशन लावेंगे।

ग़रीबीका भूत निवारनपर सवार हुआ। कारख़ानेसे चार दिनकी छुट्टी ली और अपने घरका इन्तज़ामकर यंत्रोंको ले सीधे पेटैन्ट आफ़िस जा पहुंचे।

(६)

दार्जिलिङ्गकी चढ़ाईमें यात्री तो दूर रहे रेल गाड़ी भी थक जाती है। पहाड़ पर रेल जा रही है, सीधी चढ़ नहीं सकती, इससे गधेकी चाल चलनी पड़ती है। एक बार उत्तरको गई फिर दक्षिणको फिर उत्तरको मुड़ी फिर दक्षिणको-बस यों ही घंटे बीत जाते हैं। एक ओर गाड़ीको एक इञ्जन खींचता है दूसरी ओर दूसरा।

गाड़ी आधी पहाड़ी तक भी नहीं पहुंची है पर यात्री सब उकता गये हैं सब यही सोच रहे हैं कि कब इस झिक २ से पल्ला छूटे। कोई अख़बार उठा पढ़ने बैठ जाता है, कुछ समय बाद उसे फेंक दूसरे मुसाफ़िरसे बातें करने लगता है, फिर चुपचाप हो बाहरकी तरफ़ देखने लगता है।

एक व्यक्ति गाड़ीमें ऐसा भी है जो चुपचाप आंखें बन्द कर गाड़ीके कोनेमें बैठा २ सोच रहा है। अन्य यात्रियोंको थकान दूर करने अथवा जी बहलानेके लिये चारों ओर प्रकृतिकी शोभा मौजूद थी पर इस व्यक्तिको सारी प्रकृतिकी शोभाका आनन्द आंखें बन्द करनेमें ही आ रहा था।

यह महाशय हैं हमारे हरीकान्त बाबू। आप उसी यन्त्रकी बनावट सोच रहे थे जिसकी सहायतासे अपने भेजे समाचार ये ही ग्रहण कर सकें। इनको यह भी भय था कि कहीं इनके बनाये यंत्रको कोई और अपने नामसे प्रचलित न करे अथवा कोई और वैज्ञानिक इसी प्रकारके यंत्रको न निकाल चुका हो।

इतनी शंका होने पर भी हरीने यंत्रको अपने नाम तुरन्त ही "पेटैन्ट" नहीं करवाया। कारण यह है कि हरी वैज्ञानिक थे। अच्छी तरह पर बिना परीक्षा किये हुये वे अपने यंत्रकी रजिष्ट्री कराना ठीक नहीं समझते थे। और न ही उसकी पूरी जांच किये बिना उससे शेख़चिल्लीकी तरह नये २ मन गढ़न्त नतीजे निकाल सकते थे। बिना आज़माये उनको विश्वास होना कठिन था। बिना सोचे बिचारे वे कोई काम कर हो नहीं सकते थे। यह बात वैज्ञानिककी प्रकृतिके विरुद्ध भी है। हरी वैज्ञानिक थे। उन्हें यंत्रको पेटैन्ट करानेके पूर्व यह बात निश्चय कर लेनी थी कि क्या यह यंत्र दूरीपर भी काम दे सकता है। पर निवारन एक साधारण पुरुष था उसे तो पारस मिल गया था वह क्यों चूकता? बस इसी पर हरी धोखा खा गये।

गाड़ी जानेके दस मिनट पूर्व निवारन स्टेशन पहुंचे। सामान तुलवा गार्डको दिया गया और गाड़ी बातकी बातमें कलकत्तेको कोलाहलको छोड़ हरे भरे खेतोंके बीच भागती हुई बढ़ निकली और दूसरे दिन ६ बजे सायंकाल दार्जिलिङ्ग जा पहुंची। अपना सामान सब कुलियोंको दे ये दोनों मित्र सीधे हैप्पी व्यू (Happy view) नामक बंगलेपर पहुंचे और कुछ खा पीकर सो रहे। दूसरे दिन प्रातः काल उठ, ये अपने प्रयोगोंके लिये स्थान ढूंढने निकले।

बंगलेके बाईं ओर पहाड़ कुछ ऊंचा था उसी स्थानपर ये दोनों पहुंचे। एक ओर पहाड़ सीधा घाटीकी तलहटीतक उतर गया था। तलहटी से पहाड़की चोटी १००० फुट ऊंची होगी। दूसरी ओर पहाड़ ढाल खाकर फिर ऊंचा हो गया था।

कुछ वादानुवादके पीछे यह निश्चय हुआ कि इस ऊंची चोटीपर लहरें भेजने वाला यंत्र रक्खा जाय और दूसरे टीलेपर इनका बनाया समा-चार लेने-वाला यंत्र रहे।

तैयारियां हो ही रही थीं कि दूसरे बंगले

'सर्वे डिपार्टमैन्ट' (Survey Department) के कुछ गोरे आ पहुंचे। इसपर यह निश्चय हुआ कि खंभोंके लिये गड्ढे खोद लिये जांय और सामान सब अपने २ स्थानपर रख दिया जाय, पर प्रयोग रातको हों।

आधी रात गये एक टिम टिमाती बत्तीकी रोशनीमें ये दोनों युवक अपना काम करने लगे· खंभे गाड़ दिये गये एक बार हरीने समाचार भेजा और निबारनने उसे सुना फिर इन्होंने स्थान बदले

प्रयोग सफल हुआ। हरीकान्त खुशीमें उन्मत्त, भागता हुआ निवारनके पास आया। निवारन इस समय पहाड़की चोटीपर रक्खे समाचार भेजने वाले यंत्रके पास था। निवारनके पास पहुंच हरीने समाचार मिलाया "मैंने कहा था तुम कौन हो" निवारनने उत्तर दिया " ठीक " हरी " वाह २ अब चलकर इस यंत्रको 'पेटैन्ट' करवायेंगे क्यों ?" निवारन—"हरी किस भूलमें हो यंत्र तो मेरा है" हरी—" फिर वही झगड़ा निकाला-तुम्हारा हमारा दोनोंका है"

निवारन—"दोनोंका हो कैसे सकता है बिलकुल मेरा ही है"

हरी—"अधिक बोलोगे तो अपने ही नाम पेटैन्ट करवा लूंगा'

निवारन—"अब इसके लिये बहुत देर हो गई"

हरीका माथा ठनका। "देर होगई" ये शब्द हरीकान्तपर बज्रपातकी तरह गिरे। डर तथा क्रोधसे कांपते हुए उसने निबारनसे पूछा "देर हो गई इसके क्या माने ?"

निबारन "मैं कलकत्ते से चलते स्यंत्रको अपने नाम "पेटैन्ट" कराआया, इसीसे तो स्टेशन पहुंचनेमें देर हुई यह देखो (पेटैन्टका काग़ज़ निकाल हरी कान्तको दिया) पेटैन्टको देखते ही हरी पागल हो गये और गुस्सेमें भरकर कहने लगे "अरे दुष्ट! पापी, ऐसी बेईमानीसे क्या होगा ? क्या मैंने तुमसे नहीं कहाथा कि दोनोंका नाम रखेंगे और दोनों यंत्रसे लाभ उठावेंगे—फिर क्यों बेइमानीपर कमर बांधीं ? पर जैसा तुमने कहा है अब बहुत देर होगई—एक चांडालके पाजीपनसे मुझे धोखा हुआ वास्तवमें बड़ी देर होगई। लो इस पेटैन्टको भी फाड़े डालता हूं।"

हरी पेटैन्ट फाड़नेहीको थे कि निवारन उनकी तरफ़ झपटा इस झगड़ेमें बत्ती बुत गई और चारों ओर सन्नाटा होगया

... ...

... ...

देखना हरी देखना! निबारन संभलना। पीछे भारी गढ़ा है। १००० फ़ीट नीचे गिरोगे सावधान ख़बरदार!

खड़ड़म्—खड़ खड़ड़म् खड़ड़म्......

हैं! यह क्या हुआ ? डंडा गिरा होगा। शायद डंडेको पकड़े हरी या निबारन खड़े हों! अरे राम २ ऐसा विचार ही क्यों किया जाय ? वे दोनों कहीं इधरही खड़े लड़ रहे होंगे

कहीं दूर घाटीकी ओरसे एक चीख आई! आह क्याही भयानक शब्द है!

पाठक सुनिये तो क्या कोई और भी शब्द सुनाई दिया।

नहीं! चारों ओर सन्नाटा है संसार सुख निद्रामें सो रहा है। रात अब पूरी होनेको है। प्रातःकालके पूर्व एक बार घोर अन्धकार होता है। वही अन्धकार इस समय भी छाया हुआ है। पाठक कुछ देख नहीं सकते आवाज़ तो दीजिये।

निवारन ओ निवारन! पहाड़से शब्द लौटकर आता है 'बि...बा ... अ...न...ओ...बि...वा... अन। 'हरी बाबू, पहाड़ उत्तर देता है अ...री ...आ...ऊ!

यह क्या ? क्या दोनों नहीं हैं ? शायद बंगलेको चले गये होंगे वहीं चलकर देखें। वहां भी सब सूना पड़ा है ?

... ...

... ...

इस घटनाके १० दिन बाद दार्जिलिङ्गके "हिमालियिन हैरेल्ड (Himalayan Herald) नामक पत्रमें यह लिखा था—

दार्जीलिङ्ग पुलीसको यह ख़बर मिली है कि हैपी वेली नामक घाटीसे जाती हुई सड़कपर एक लाश पड़ी हुई थी। सब-इन्सपैक्टर राय जो इस मामलेकी तहक़ीक़ात करने भेजे गये थे, लिखते हैं कि मौक़े वारदातके देखनेसे मालूम होता है कि एक आदमीको किसीने पहाड़की चोटी-से धक्का दिया। यह भी साफ़ है कि यह आद-मी एक या अधिक मित्रोंके साथ कुछ बेतारके तार भेजनेके प्रयोगकर रहा था। इसी बीचमें इन लोगों-में कुछ अनबन होगई और एकने दूसरेको धक्का देकर गिरा दिया। मुलज़िम फ़रार है" हमारे पाठक तथा अन्य वैज्ञानिक इस बातको जाननेके इच्छुक होंगे कि यह वैज्ञानिक कौन था और क्या प्रयोग कर रहा था पर दुर्भाग्यसे लाश इस बुरी हालत में है और उसे गिद्धोंने इस प्रकार नोंच डाला है कि इस अभागे वैज्ञानिकको पहचानना असम्भव है पुलिस मामलेकी तहक़ीक़ात कर रही है।

पाठक पता चला? हमारे दो मित्रोंमेंसे एक-को दूसरेने धक्का देकर खंडरमें फेंक दिया पर यह कौन है। दूसरा कहां गया इसका कोई पता नहीं कहीं पकड़े जानेके भयसे भाग गया होगा।

किएव क्रिया और कीटाणु

[ले०—प्रो० तेजशंकर कोचक बी० एस० सी]

(गतांकसे सम्मिलित)

कीटाणु और जीवाणुओंमें क्या भेद है, हम पहिले इसकी व्याख्या कर किएव क्रियापर कुछ विचार प्रगट करेंगे।

(१) दतूनसे मुंहको खूब साफ़ कर कुल्ली कर डालिये। अब एक शीशेके गिलासमें लगभग एक चमचेके थूक एकत्रित कीजिये। किसी दूसरे बर्तनमें थोड़ासा पानी और अरारोट उबाल कर गाढ़ी लेही सी बना लीजिये। इसमेंसे थोड़ी लेही थूकमें डाल दीजिये। लेही कितनी ही ज़्यादा हो परीक्षामें कुछ हर्ज नहीं होगा। लेही थूकमें पड़ते ही कुछ मिनटोंमें पानीके समान हो जायगी और उसका गाढ़ापन जाता रहेगा। अब दूसरे गिलासमें थूक लीजिये और इस गिलासके थूक-को आगपर कुछ समय उबालिये और उबालनेके पश्चात् इसमें भी थोड़ीसी लेही डालिये। आप देखेंगे कि यह लेही गाढ़ी बनी रहेगी और पतली न होगी। इन सब बरतनोंमें एक एक बूंद टिंचर आयोडीन डालिये। रंग नीला हो जायगा, मांड़ अर्थात् स्टार्चकी यही परीक्षा है। बिना गरम किये हुए थूकके बर्तनका स्टार्च घुलनशील हो जायगा। थूकमें एक विशेष प्रकारकी वस्तु होती है जो जीवाणुओंकी सदृश होती हैं, उसे हम कीटाणु कहते हैं। कीटाणु और जीवाणुमें क्या अन्तर होता है, यह हम आगे चलकर बतलायेंगे। कीटाणु कई प्रकारके होते हैं, थूकमें जो कीटाणु हैं उन्होंने अरारोटके मांड़को घुलनशील बना दिया है। जिस गिलासके थूकको हमने गरम कर दिया है उसमें कीटाणु मर गये। इस कारण उस बर्तन-का मांड़ घुलनशील नहीं रहा।

(२) Pancreas (पैनक्रियाज़) अर्थात् क्लोम इसे बूचड़ लिबलिबा कहते हैं। बूचड़खानेसे बकरीका लिबलिबा मंगाकर उसे खरलमें पानी मिलाकर कुचल डालो और छानकर इसका रस एक बर्तनमें रख छोड़ो। दूसरे बर्तनमें कुछ चर्बी लेकर इस रसको उसमें डालदो। कुछ मिनटोंमें यह चरबी गल जायगी। तीसरे बर्तनमें अंडेकी सफ़ेदी लेकर उसमें पानी डालकर उबालो जब यह जम जाय तो ठन्डा हो जानेपर इसमें भी लिबलिबेका रस छोड़ दो। कुछ मिनटोंमें यह भी घुलनशील हो जायगा। लिबलिबेके रसकी भी उबालकर परीक्षा करो। उबालने पर इसमें भी

[Bacteriology कीटाणु शास्त्र]

किसी मांड़दार चीज़को घुलनशील बनानेकी शक्ति नहीं रहती। लिबलिबेमें भी कई प्रकारके कीटाणु होते हैं। मुंहमें, पेटमें, जिगरमें, लिबलिबे में और आंतोंमें कई प्रकारके कीटाणु हैं। इनके काम जुदे जुदे हैं। हम बतला चुके हैं कि जीवाणुओंसे जीवाणु उत्पन्न होते हैं परन्तु कीटाणुओंसे कीटाणु नहीं उत्पन्न होते। जिस प्रकार मुंहमें से थूक निकलता है उसी प्रकार यह कीटाणु मनुष्य, पशु, वृक्ष, अथवा किसी और जीवधारीके शरीरके किसी भागसे रिसकर निकलते हैं। यह पानी और ग्लेसूरीनमें घुल सकते हैं और उबलते पानीके तापक्रमपर मर जाते हैं। विष मौजूद होने पर जीवाणु नाश हो जाते हैं परन्तु यह कीटाणु नहीं मरते।

थोड़े ही से कीटाणु बहुतसी चीज़ोंमें असाधारण रासायनिक परिवर्तन उत्पन्नकर सकते हैं। वनस्पतियोंमें भी कीटाणु होते हैं।

शक्कर कई प्रकारकी होती है। ईखकी शक्कर, अंगूरी शक्कर, और दुग्धशर्करा इत्यादि। ईखकी शक्कर गन्ने या ईखके रससे मिलती है। यह साधारण शक्कर है जो बाज़ारोंमें चीनी, बूरा, या शक्करके नामसे बिकती है। अंगूरोंमें भी मिठास होता है। इनसे भी एक प्रकारकी शक्कर बनाई जाती है जिसे अंगूरी शक्कर कहते हैं। इसमें और ईखकी शक्करमें कुछ थोड़ासा अन्तर होता है। ईखकी शक्करमें अगर पानी और गंधकाम्ल डालकर उबालें तो यह अंगूरी शक्कर हो जायगी। दूधमें मिठास केवल दुग्धशर्कराके कारण होता है।

थोड़ेसे जौ लेकर इनको पानीके बरतनमें रख देनेसे दूसरे दिन इनमें अंकुर फूट आवेगा। अब इनको कुचलकर छान डालो और रस अलग निकाल लो। अरारोटकी गाढ़ी लेही बनाकर उसमें इस रसको छोड़ दो नौ दस मिनटमें लेही पतली पड़ जायगी और पन्द्रह बीस मिनटमें इसमें माँड़ न रहेगा।

परीक्षा करनेपर मालूम होगा कि मांड़की जगह अंगूरी शक्कर बन गई है। जौ में अंकुर फूटनेपर कीटाणु पैदा हो जाते हैं, यह कीटाणु जौके रसमें मौजूद थे। इन्होंने लेहीको घुलनशील बनाकर अंगूरी शक्करमें परिवर्तित कर दिया।

ईख, पौंड़ा, गन्ना, इत्यादि वृक्षोंकी पत्तियोंमें मांड़ अर्थात् स्टार्च होता है। यह श्वेतसार रासायनिक परिवर्तनसे ईखकी शक्कर बन जाता है। जब गन्ना ईख इत्यादि वृक्ष बहुत दिनों तक खेतमें खड़े रहते हैं या काटकर डाल दिये जाते हैं और तुरन्त पेरकर रस नहीं निकालते, तो इन कीटाणुओं द्वारा परिवर्तन होकर अंगूरी शक्कर बन जाती है।

बहुतसे पदार्थोंमें, आप ही आप, साधारण अवस्थामें ही, रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं। गरमीके दिनोंमें अगर सुबहको रोटी बनानेके लिये आटा गूंधकर रख दिया जाय तो शामको वह पतला होकर कटोरेमेंसे बह निकलता है। इस वक्त ऐसा मालूम होता है जैसे दालमें उबाल आनेसे वह गिर पड़े। तापमापक यंत्र द्वारा इस आटेका तापक्रम जांच करने पर उतना ही मिलेगा जितना सुबहके वक्त था अथवा जितना उस समय कमरेका हो। इससे मालूम होता है कि किसी विशेष क्रिया द्वारा आटेमें उबाल तो आया परन्तु उसका तापक्रम नहीं बढ़ा। इसी क्रियाको अन्तरुत्सेक या किण्व क्रिया कहते हैं। इसी तरह एक शीशेके गिलासमें ताज़ा ताड़ी भर कर रख दो। ध्यान रहे कि गिलास पूरा भरा हुआ न हो। आठ या दस घंटे बाद देखनेसे मालूम होगा कि ताड़ीमें उबाल आने लगा है और वह गिलासमें भर कर नीचे गिरना शुरू हो गई है। साथ ही गिलास भी छूनेसे गरम मालूम होगा परन्तु तापमापक द्वारा तापक्रममें अन्तर न मिलेगा। किण्व क्रियाका यह दूसरा उदाहरण है। विज्ञान भाग ६ संख्या ४ के १५३ पेज पर सिरका बनानेका वर्णन करते हुये इस किण्व क्रियाकी विस्तृत व्याख्याकी गई है।

थोड़ेसे अंगूर कुचलकर उनका रस निकालो और उसे चार परखनलियों में भर दो। एक ट्यूबमें थोड़ासा कार्बोलिक एसिड डालकर उसे काग लगाकर रक्खो। दूसरीमें थोड़ीसी गंधकाम्ल मिलाकर काग बन्द कर दो। तीसरी नलीके रसको खूब उबालकर उसमें डाट लगादो चौथी ट्यूबको यों ही रक्खा रहने दो। कुछ समय बाद देखनेसे मालूम होगा कि पहिली तीन नलियोंका रस ज्योंका त्यों मौजूद है परन्तु चौथी ट्यूबका काग ढीला करते ही अन्दरसे गैसके दबावके कारण वह भकसे उड़ जायगा और ट्यूबमें (Alcoholic yeast) मदिरा किण्व रह जायंगे। तीसरी ट्यूबको थोड़ी देर खुला रखनेसे उसमें किण्व क्रिया उत्पन्न हो जायगी और कर्बन-द्विओषित गैस निकलने लगेगी। इस प्रयोगमें किण्व क्रिया उत्पन्न होने पर कर्बन द्विओषित गैस बनेगी, इसकी जांच करनेके लिये इस ट्यूबका काग खोलनेसे पेश्तर एक दूसरी नलीमें चूनेका पानी भरकर उसमें एक छेदवाला काग लगा एक पतली नली लगादो और इसे मोड़कर दूसरे कागमें लगा उस कागको पहिली ट्यूबमें लगा देनेसे गैस निकलकर चूनेके पानीमें घुलने लगेगी और इस पानीको दूधिया बना देगी।

देहातमें गन्ने और गुड़के रससे सिरका बनाते हैं। इन लोगोंने अपने अनुभवसे इस विषयमें निम्नलिखित परिणाम एकत्रित किये हैं।

(१) जाड़ेमें सिरका अच्छा और जल्दी बनता है।

(२) बार बार हाथ डालनेसे सिरका ख़राब हो जाता है।

(३) गुड़से सिरका अच्छा बनता है और गन्नेके रसमें गुड़ छोड़ देनेसे और भी अच्छा। केवल गन्नेके रससे सिरका कठिनाईसे बनता है और अच्छा भी नहीं बनता।

(४) सिरका बनानेके पीपेमें एक प्रकारकी फुई पैदा हो जाती है इस फुईको रसमें डाल देनेसे सिरका जल्दी बनता है। थोड़ासा (अल्कोहल) मद्यसार एक कांचके गिलासमें रखकर उसमें (Yeast) फुई रखदी जायं और उसका तापक्रम ३५° श के लगभग रक्खा जाय तो कुछ देर बाद मद्यसारकी जगह सिरका बन जायगा। अस्तु जीवाणशास्त्रके मतानुसार मद्यसारका कीटाणुओं द्वारा रासायनिक विश्लेषण होनेसे सिरका बनता है।

अगर कुछ देरतक धौंकनीद्वारा मदिराके घोलमें हवा प्रवेशकी जायतो भी सिरका बन जायगा। परन्तु इस क्रियामें बहुत देर लगेगी। (Platinum Black) प्लेटिनम ब्लैकपर अगर मदिराके घोलकी बूंदे टपकाई जाँय तो जो बूंदें ऊपरसे इस पर गिरेंगी और इसमें होकर नीचे दूसरे बर्तनमें जायंगी उसमें मदिराके स्थानपर सिरका मिलेगा। साधारण दशामें जब हम रससे सिरका बनाते हैं तब घोलके ऊपर एक प्रकारकी फफूंदी (mould) पैदा हो जाती है। इस फफूंदीमें जीवाणु होते हैं। इन जीवाणुओं द्वारा वायुका आक्सिजन और मदिराका रासायनिक संयोग होकर सिरका बन जाता है। जब घोलमें १४ चौदह प्रति सैकड़े से अधिक अम्ल होता है तो यह जीवाणु अपना काम बन्दकर देते हैं। इसलिये अगर घोलमें १४ चौदह प्रति सैकड़ेसे अधिक सिरका होगा तो वह न बिगड़ेगा। अब यह देखना है कि कितनी शक्कर अथवा गुड़ डालनेपर घोलमें १४ चौदह प्रति सैकड़ा सिरका बन जायगा। ११४ सेर शक्करसे ९२ सेर आलकोहल मद्यसार बनता है। ९२ सेर आलकोहलसे १२० सेर सिरका बनता है अर्थात् ११४ सेर शक्करसे १२० सेर सिरका बनेगा। बाज़ारमें जो शक्कर मिलती है वह स्वच्छ नहीं होती उसमें मैल मिला रहता है इसीलिये ११४से कुछ अधिक मात्राकी आवश्यकता होती है। इसलिये यह कहना असत्य न होगा कि जितनी शक्कर पड़ती है उतनाही सिरका बनता है अर्थात् घोलमें १४ चौदह प्रति सैकड़ा शक्कर

डालनेसे १४ चौदह प्रति सैकड़ा सिरका बनजायगा और यह बिगड़ैगा भी नहीं।

परन्तु यह याद रखना चाहिये कि सिरके की फूईके जीवाणु केवल शक्करके अहारपर जीवित नहीं रह सकते इनको स्फुरज और प्रोटिन्सकी भी आवश्यकता होती है। अगर गुड़का प्रयोग करें तो उससे यह वस्तुयें जीवाणुओंको भलीभाँति मिल सकती है परन्तु सेरभर अच्छे दानेदार गुड़ में आधसेर से अधिक शक्कर नहीं निकलती। इसका अर्थ यह हुआ कि १४ चौदह सेरके स्थानपर २८ अट्ठाईस सेर गुड़ १०० सौ सेर जलमें डालना चाहिये। जब सिरका बन जाय तो फूईको निकाललो और पानीसे धोकर तुरन्त दूसरे ताज़े घोलमें छोड़दो यह इस घोलको भी सिरकेमें तबदीलकर देगी। जिस घोलका सिरका बन गया है उसमें चौगुना पानी मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। बाज़ारमें जो सिरका बिकता है उसमें ३-४ प्रति सैकड़ा सिरका होता है। सिरका बनानेका बर्तन नांदके रूपकासा लकड़ीका होना चाहिये क्योंकि हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि सिरका बनानेके लिये वायुको आवश्यकता होती है। घड़ेमें वायुका प्रवेश भलीभाँति नहीं हो सकता। सिरका बननेके लिये ३३°श तापक्रमकी आवश्यकता होती है। और इससे अगर कुछ कम ताप होतो हानिकारक नहीं होता।

हिन्दू बालकके आविष्कार !

[लेखक—महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी. एस्-सी, एल.टी., विशारद]
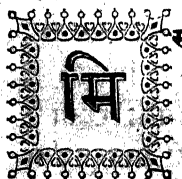
मिस्टर पी. सी. दत्त बैरिस्टरका पुत्र ई० दत्त मध्यप्रान्तके जबलपुर नगरमें वि० १९५६ के आषाढ़ मासमें पैदा हुआ था। इस बालकका शरीर बचपनसे ही बड़ा क्षीण और दुर्बल था। बचपनका अधिकांश इँगलैंडमें बीता जहां लंडनके सेंटपालकी प्रारम्भिक पाठशालामें ही स्कूली शिक्षा पानेका इसे सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालिज किसे कहते हैं इसका अनुभव इस बालक को नहीं हुआ है। इँगलैंडमें ही इस बालककी प्रवृत्ति रसायन-विज्ञानकी ओर थी! यूरोपीय युद्धके कारण बालक ई० दत्तको १९७२ वि० के वैशाख मासमें जबलपुर आना पड़ा जहां इसकी प्रतिभाका विकास आरम्भ हुआ। यहां क्रियात्मक तथा व्यवहारिक रसायन और भूगर्भ-विज्ञानकी खोजमें प्रयत्न होने लगा! पिता बैरिस्टर होते हुए भी उद्योग धंदेमें नाम कर चुका था और आसपासके जंगलकी कई खानोंका मालिक था। पुत्रने पिताकी खानोंको कई बार जांच पड़ताल करके यह निश्चय किया कि रसायनशास्त्री बनूंगा। पुत्रको निरा बालक समझकर मनमानी करने देने के लिए रोकना तो दूर रहा, पिताने उसके उत्साहको बढ़ा दिया और इस विषयकी खोजके लिए जिस सामग्रीकी ज़रूरत थी सब इकट्ठी कर दी और अपने बंगलेके पास ही अपने रुपयेसे एक रसायन-शाला खुलवा दी। सी० पी० की गवर्नमेंटने भी लड़केकी प्रतिभा का हाल सुनकर यह आज्ञा दे दी कि जबलपुरके कालिजकी रसायन-शालासे वह जितना चाहे काम ले सकता है। बालक ई० दत्त उन तरह तरहके पत्थरोंको जांच करने लगा जो पिताकी खानोंमें मिलते थे। विश्लेषणसे जो परिणाम निकला उसका ब्योरेवार वर्णन इँगलैंडको लिख भेजा जहां यह सिद्ध हुआ कि ठीक इसी परिणामपर वहांके बड़े बड़े विज्ञान-विशारद भी पहुंचे हैं।

बालकने विश्लेषण और परीक्षाका काम जारी रखा और दोही महीने बाद यह मालूम कर लिया कि मीथेन गैस जिसकी आवश्यकता हर उद्योग धंदेमें इंजन चलानेके लिए पड़ती है हर जगह थोड़ेही ख़र्चमें बनायी जा सकती है। यही इस बालकका पहला और महत्वका आविष्कार था। इसके बाद तीनही महीनेमें इसने कोई पन्द्रह

General साधारण]

रीतियाँ निकालीं जिनसे जिप्सम नामक खनिजसे शुद्ध गन्धक तैयार किया जा सकता है। पिछले कई महीनोंसे बालक दत्त बम्बईमें अपने आविष्कारोंको प्रयोग करके दिखला रहा है जहां यह पूरी तरह सिद्ध हो गया है कि इन आविष्कारोंसे बड़े बड़े उद्योग धंदे चलाये जा सकते हैं। बंबई के बड़े बड़े व्यापारियोंने एक संघ बनाया है जिसने मिस्टर दत्तसे गंधक, पोटाश, सोडा इत्यादि बनानेका पेटेन्ट अधिकार प्राप्त कर लिया है। जब प्रयोगोंका दिखलाना समाप्त हो जायगा तब दो करोड़ रुपयेकी पूंजीसे एक कम्पनी बनेगी जो उपर्युक्त रासायनिक पदार्थोंको तैयार करेगी। इस व्यापारके लिए भारतमें कच्चे मालकी कमी नहीं है—गंधक तैयार करनेके लिए जिप्सम (खटिकगंधेत) राजपूतानेके बीकानेर और जोधपुरके राज्योंमें, उत्तर पच्छिम सीमा प्रान्तोंमें, कालाबाग़ और सिन्धमें बहुतायतसे मिलता है। इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि गंधकका तेज़ाब जिसकी खपत बहुतसे छोटे मोटे उद्योग धंदोंमें होती है बहुत सस्ता बनने लगेगा जिससे बहुतसे नये उद्योग धंदे चल पड़ेंगे और बहुतसे धंदे जो इस तेज़ाबकी कमीसे मृतप्राय थे सजीव हो जायँगे। बालक दत्तने इस देशके साधारण पत्थरोंसे सोडा अलुमिना और पोटाश तैयार करनेकी बहुत ही सुगम और सस्ती रीति निकाली है। खादके लिए पोटाशकी खपत युरोप और अमेरिकामें बहुत होती है। जिन जिन देशोंमें इसकी मांग थी वे सब अबतक इसके लिए जर्मनीके आश्रित थे। अब बालक दत्तके अविष्कार द्वारा भारतवर्ष दुनिया भरको पोटाश पहुंचा सकता है।

मीथेन गैसको हर जगह तैयार करनेकी रीति दो वर्ष पहले ही बालक दत्तने निकाली थी परन्तु पेटेन्ट कराते समय ग्रेटब्रिटेनकी गवरमेंटने यह प्रार्थनाकी कि लड़ाईके दिनोंमें यह आविष्कार बिल्कुल गुप्त रखना चाहिए नहीं तो सम्भव है कि जर्मनीके वैज्ञानिक सुनकर अपने यहां बना कर इसका दुरुपयोग करने लगें।

पैमाइश

[ले० श्रीयुत नन्दलालजी, तथा श्री० मुरलीधरजी, एल,ए जी.]

८—ड्राइङ्ग यानी नक़शा खींचनेके नियम

(गतांकसे सम्मिलित)

(१) नक़शा खींचनेके लिये मामूली कड़ी नोकीली पेन्सिल काममें लानी चाहिये। पेन्सिलको बहुत ज़ोरसे न दबाना चाहिये, बल्कि लकीर ऐसी हलकी होनी चाहिये जो आंखसे दिखलाई पड़े।

२—अगर लम्बी लकीरकी ज़रूरत हो तो पहले छोटी लकीर खींचकर उसको दुबारा न बढ़ाना चाहिये; बल्कि शुरुहीमें इतनी लम्बी लकीर खींचनी चाहिये जितनी ज़रूरत हो, या अधिक लम्बी खींचकर उसमेंसे काटली जावे।

३—जब किसी विंदुसे कोई रेखा खींचनी हो तो हमेशा उसी नुक़तेसे बाहरकी तरफ खींचना चाहिये बाहरसे खींचकर विन्दुपर मिलानेकी कोशिश न करनी चाहिये।

४—जब किसी दो विन्दुओंके बीचमें रेखा खींचनी हो तो रूल या पटरी रखकर पहले ख़ाली पेन्सिल दौड़ाकर यह इतमीनान कर लेना चाहिये कि रेखा खींचनेपर इन दोनों विन्दुओंके बीचमें होगी।

५—रेखाएं हमेशा बाएंसे दाएंको खींचनी चाहिए।

६—जब जुदी जुदी लम्बाइयोंके कई टुकड़ोंके बराबर कोई सरल रेखा बनानी हो तो इन टुकड़ोंके बराबर छोटी छोटी रेखाएं खींचकर बड़ी रेखा न बनानी चाहिये, बल्कि पहले ही एक रेखा काफ़ी लम्बाईकी खींचकर उसको आवश्यकतानुसार टुकड़ोंमें बांट देना चाहिये।

७—जो रेखाएं खींची जांय वह एकसी मुटाईकी होनीं चाहिये कहीं मोटी या पतली या टूटी हुई न हों।

८—पहले नक़शा पेन्सिलसे तैयार करना चाहिये और फिर उसको स्याहीसे पक्का करना चाहिये।

९—किसी रेखाको दो बराबर हिस्सोंमें बांटना—मानलो कि क ख एक सरल रेखा है, जिसको दो बराबर हिस्सोंमें बांटना है। क और ख को केन्द्र मान-

चित्र १
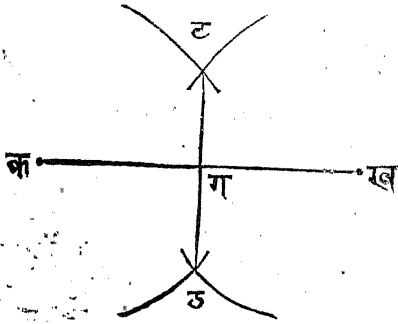
कर दो वृत्तखण्ड खींचो, जिसका अर्ध व्यास आधी रेखासे कुछ अधिक हो। जिन बिन्दुओंपर यह दोनों वृत्त एक दूसरेको काटें उनको मिलानेसे जो रेखा बने, और वह रेखा जिस बिन्दुपर क ख को काटे वह विंदु क ख को दो बराबर हिस्सोंमें बांट देगा। चित्र १ में ग विन्दु क ख रेखाको दो बराबर हिस्सोंमें बांटता है।

१०—किसी रेखाको कई बराबरके हिस्सोंमें बांटना—मानलो कि रेखा क ख को सात बराबर हिस्सोंमें बांटना है। क से एक रेखा ग तक खींचो, जो रेखा क ख से न्यून कोण बनाए। इस क ग रेखापर प से आरम्भ कर परकारकी सहायतासे किसी लम्बाईके सात टुकड़े प फ, ब भ म आदि नापलो ग विंदु सातवें भागके अन्तपर रखो और ग को ख से मिला दो। अब ग परके विंदुओंसे क ग के समानान्तर रेखाएँ खींचो। यह रेखाएँ जिन विंदुओं (त, थ आदि) पर क ख से मिलेंगी वही विंदु क ख को सात बराबर हिस्सोंमें बाटेंगे।
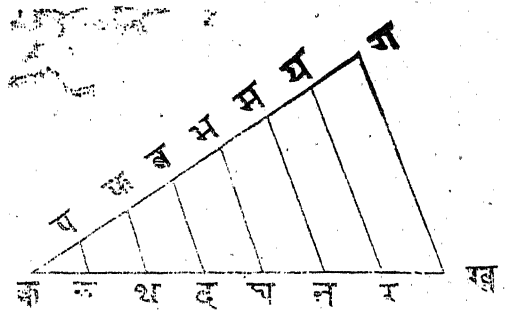
चित्र २

११—किसी रेखापरसे लम्ब खींचना या किसी बाहरी बिन्दुसे किसी रेखापर लम्ब डालना—

मानलो कि क ख रेखापर एक लम्ब डालना है।

(क) जबकि वह बिंदु ब जिससे लम्ब खींचना है क ख में हो तो गुनियांका बांटा हुआ किनारा बिंदु व पर इस तरहसे रखो कि उससे बीचवाली रेखाके दोनों सिरे क ख रेखाके बिलकुल ऊपर रहें। अब व बिंदुसे जो रेखा गुनियांकी सीधमें खींची जायगी वह क ख पर लम्ब होगी।
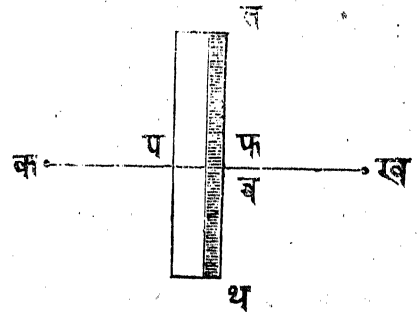
चित्र ३

(ख) जब व बिंदु क ख रेखासे बाहर हो—गुनियांको उपरोक्त रीतिसे क ख पर रखकर उसको नीचे ऊपर हटाकर ऐसे स्थानपर लाओ कि उसका बांटा हुआ किनारा व बिंदुसे छूटा रहे

और उसके बीचकी आर पार रेखाके दोनों सिरे क ख रेखासे मिलते रहें। ऐसी अवस्थामें जो रेखा व बिंदुसे क ख तक गुनियांकी सीधमें खींची जावेगी वह क ख पर लम्ब होगी।

१३—एक ऐसा त्रिभुज बनाना जिसकी भुजाएं तीन दी हुई रेखाओंके बराबर हों—

मानलो कि क ख, ग ब च, छ रेखाएँ दी हुई हैं। पहले एक रेखा प फ, क ख के बराबर खींचो। फिर उसके एक सिरे प को केन्द्र और ग ब के
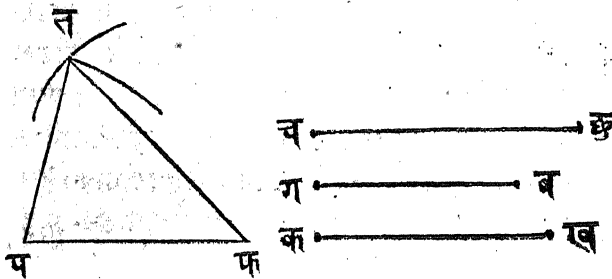
चित्र ४

बराबर अर्धव्यास मानकर वृत्तखण्ड (धनुष) खींचो। फिर दूसरे सिरे फ को केन्द्र और च छ को अर्धव्यास मानकर दूसरा धनुष रेखाकी उसी ओर खींचो जिधर पहिला खींचा था। जहां यह दोनों धनुष एक दूसरेको काटें उस बिंदुको प फ से मिला देनेसे त प फ ही वाञ्छित त्रिभुज होगा।

१२—किसी दी हुई रेखाके बराबरके अर्धव्यासका वृत्त खींचना—

१२—मानलो कि क ख एक दी हुई रेखा है और ब एक विंदु है, जिसको केन्द्र मानकर वृत खीचना है। पहले परकारकी नोक क और ख पर रक्खो। फिर
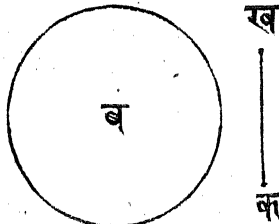
चित्र ५

फैली हुई परकारकी एक नोक ब विंदुपर जमाकर दूसरीको घुमाओ—तो वृत्त बन जायगा।

१४—किसी दिये हुए समलम्ब चतुर्भुजके बराबर दूसरा समलम्ब चतुर्भुज बनाना—
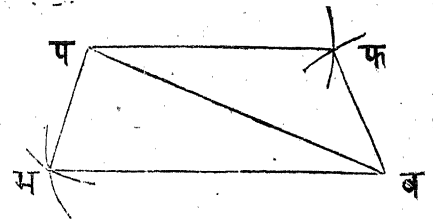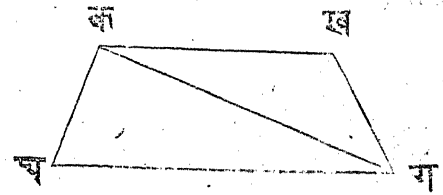
चित्र ६

मानलो कि क ख ग घ एक समलम्ब चतुर्भुज है। क ग को मिलादो। अब कोई रेखा प ब, क ग के बराबर खींचकर उसके एक ओर त्रिभुज प फ ब त्रिभुज क ख ग के बराबर और दूसरी ओर त्रिभुज प फ ब त्रिभुज क ग घ के बराबर उसी रीतिसे बनाओ जो नियम १३ में बतलाई गई है। प ब पर के दो त्रिभुज मिलकर प फ ब भ समलम्ब चतुर्भुज बन गया जो क ख ग घ के बराबर है।

१५—प्लाट करना अर्थात् पैमाइश किएहुए मौक़ोंका नक़्शा फ़ील्डबुककी सहायतासे पैमानेपर तैयार करना।

(क) एक रेखापर पैमाइश किये हुए खेतोंका प्लाट करना।

(१) पहिले नक़्शा तय्यार करनेके लिए आवश्यकतानुसार एक पैमाना नियत करलो। फिर एक सीधी रेखा काफ़ी लम्बी खींचो। इसके पीछे परकारसे अपनी जरीबी रेखाकी कुल दूरी पैमानेपर नापो और उतनाही लम्बा टुकड़ा उस सीधी रेखासे अलग करलो।

नोट—इस प्रकार अलग किया हुआ टुकड़ा तुम्हारी जरीबी रेखा है। इसलिए उसके दोनों बिन्दुओंपर अर्थात् जहांसे पैमाइश शुरू हुई हो और जहां खतम हो छोटे वृत अर्थात् चांदे [०] बना देने चाहिए।

(२) अगर जरीबी रेखाकी लम्बाई इतनी अधिक है कि पैमाने और परकारसे एक दफ़ामें नापी नहीं जा सकती तो मुनासिब होगा कि पहिले रेखापर परकारसे पांच पांच जरीबें नापकर दहाई और पंजेके चिह्न लगा दिये जावें, और अन्तमें जो भाग पांच जरीबसे कम बचे वह अन्तिम पंजेके पीछे बढ़ा दिया जावे, ताकि सम्पूर्ण रेखाकी लम्बाई जरीबी रेखाके बराबर हो जावे और तब उसके दोनों सिरोंपर चांदेके चिह्न बनाये जावें। मानलो कि जरीबी रेखाकी लम्बाई ३७ जरीब १३ कड़ी है। इसके बराबर नक़शेपर एक रेखा बनानी है। इसलिए परकारसे पैमानेपर पांच जरीब नापी और उसकी सहायतासे नक़शेमें उस रेखापर पाँच पाँच जरीबके सात चिह्न लगाए सातवें चिह्नके बाद २ जरीब १३ कड़ीका अन्तर बचा, उसको फिर परकारसे पैमानेपर नापकर सातवें चिह्नके आगे बढ़ा देना चाहिये और तब उस बिन्दु और शुरूके बिन्दुपर चाँदेके चिह्न बना देने चाहिये।

(३) जो चिह्न पैमाइशी रेखापर १० जरीबको दूरीपर लगाये जाते हैं वह दहाई और जो ५ जरीबकी दूरीपर लगाये जाते हैं वह पंजा कहलाते हैं और नक़शेपर दहाई और पंजेके चिह्न इस प्रकार बनाये जाते हैं जैसे चित्र (७) में बतलाये हैं। दहाई और पंजेके चिह्न लगानेसे एक तो यह फ़ायदा होता है कि परकार ज़्यादा खोलनी नहीं पड़ती, जिससे ग़लती होना असम्भव है। दूसरा फ़ायदा यह होता है कि प्लाट करनेमें हर मरतबा चलनेके स्थानपर परकारकी नोक रखनेकी ज़रूरत नहीं होती है बल्कि हर पांच जरीबके प्लाट हो जानेके पीछे उन चिह्नोंसे जरीबी रेखापर दूरी नापी जाती है। इस प्रकार जहांसे चलते हैं वह स्थान खराब नहीं होता।

——०—— ०——

(१) दहाईका निशान (२) पंजेका निशान

चित्र ७

मानलो कि पांच पांच जरीबके फ़ासिले चलनेके स्थानसे नापकर प्लाट लिक गये हैं। अब ६ जरीब ५५ कड़ी नापनेके लिए यह काफ़ी होगा कि एक जरीब ५५ कड़ी पैमानेपर नापकर पहिले पंजोंके चिह्नसे नकशे पर नापा जावे। इसी प्रकारसे दस जरीबतककी दूरी पहिले पंजेसे नापनी चाहिए। उसके पीछे अगर १२ जरीब ४५ कड़ी नापना हो तो केवल २ जरीब ४५ कड़ी पैमानेपर नापकर दहाईके चिह्नसे आगे नक़शेपर नाप लिया जाय। इसी प्रकार अगर १८ जरीब ६५ कड़ी नापना हो तो केवल ३ जरीब ६५ कड़ी पैमानेपर नापकर तीसरे पंजेके आगे नक़शेपर नाप लिया जावे।

जब जरीबी रेखा ठीक बन जाय तो काग़ज़को अपने सामने इस तरह रक्खो कि इस पर आरंभ और अन्तके बिंदु ऐसे सामने आ जायं जैसेकि वह पैमाइशके समय वास्तवमें मौक़ेपर थे यानी जब कि फ़ील्डबुक तय्यारकी गई थी। अब बनाई हुई रेखाको जरीबी रेखा मानकर उस बिन्दुसे प्लाटका काम शुरू करो जिससे वास्तवमें पैमाइश शुरूकी गई हो। इस मानी हुई जरीबी रेखापर पैमाने और परकारकी सहायतासे वह बिन्दु मालूम करो जहां कोई कटान या लम्ब पहले मिला हो। अगर कटान मिला है तो केवल उसकी दूरी नापकर रेखापर एक हलका बिंदु बनादो। परंतु यदि लम्ब मिला है तो जहां से यह उठा हो वह बिंदु रेखापर मालूम करलो, फिर उससे मिलती हुई गुनियां रेखापर रखकर जैसाकि बतलाया जा चुका है, गुनियांसे आवश्यकतानुसार दाहिने या बाएँ लम्ब खींचलो और उसकी दूरी मालूम

करके वहाँ बिंदु लगादो। इसके बाद उस बिंदु-को, अगर यह आरम्भ करनेके स्थानसे फ़ील्डबुक-में मिलाया गया हो तो उससे मिलादो, वरना उससे आगे जो कटान या लम्ब फ़ील्डबुकमें लिखा हो उसका बिंदु उपरोक्त रीतिसे स्थापित करो। और उसको पहिलेके स्थापित किये बिंदु या आरम्भके स्थान इत्यदि, जहांसे भी फ़ील्डबुकमें मिलाया गया हो, मिलाकर आगे बढ़ो। इसी प्रकार एकके पीछे दूसरे जो कटान और लम्ब पैमाइशके समय ज़मीनपर मिले हों उनको उसी सिलसिलेसे अपने नक़शेपर क़ायम करके उनके सम्बन्धी बिंदु एक दूसरेसे मिलाते जाओ। इस तरहपर ज्यों ज्यों बिंदु निश्चित करके उनको उनके सम्बन्धी बिन्दुओंसे मिलाते जाओगे पैमाइश किये हुए खेतोंका नक़शा तैयार होता जायगा।

उदाहरण—एक दी हुई फ़ील्डबुका जो रेखा क ख पर पैमाइश करके तैयारकी गई है पैमानेके हिसाबसे प्लाट करके नक़शा तैयार करते हैं। इसलिये पहले एक रेखा काफ़ी लम्बाईकी खींचकर उससे एक टुकड़ा २६५ कड़ी यानी कुल रेखाकी लम्बाईका अलग किया और उसके दोनों सिरों क और ख परगोल चिन्ह चांदेके बना दिये और काग़ज़को अपने सामने इस भांति रक्खा कि क और ख बिलकुल हमारे सामने एक सीधमें रहे। इसके पीछे उस रेखा-परक बिन्दु यानी चलनेके स्थानसे परकार और पैमाने द्वारा १०८ कड़ी नापकर एक हलका चिन्ह लगा दिया (अर्थात् पहले परकार-की दोनों टांगोंको पैमानेपर १०८ कड़ीकी दूरीपर रखा और जब उन टांगोंके बीचकी दूरी पैमानेपर ठीक १०८ हो गई तो इसी परकारसे एक नोक चलनेके स्थानपर जमाकर दूसरी नोकसे रेखा क ख में एक हलका निशान लगा दिया जो चलनेके स्थान क से १०८ कड़ी पर पड़ेगा। उस निशानसे गुनियांका विभाजित किनारा मिलाकर उसको रेखा क ख पर इस तरह रखा कि उसके आर पार वाली रेखाके दोनों सिरे रेखा क ख पर रहें। अब गुनियां रेखापर समकोण बनाती है, इसलिए उसके चिन्होंकी सहायतासे दाएँ और २० कड़ी कीदूरीपर एक हलका बिन्दु लगा दिया (यानी यह बिन्दु १०८ कड़ीके बिन्दुसे मिलकर क ख रेखापर लम्ब बनावेगा)। चूंकि फ़ील्डबुकमें यह लम्ब चलनेके स्थानसे मिलाया गया है। इसलिये नक़शेमें भी
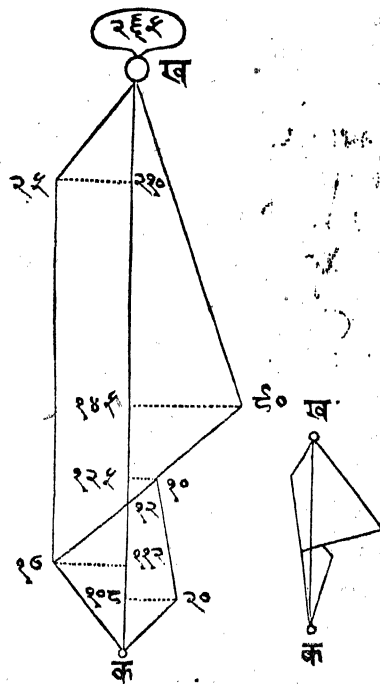
चित्र ८

उसको क बिन्दुसे जो चलनेका स्थान है मिला दिया। उसके पीछे इसी तरहसे रेखापर पैमाने और परकारकी सहायतासे ११२ कड़ी नापकर एक दूसरा हलका चिन्ह लगाया और उस चिन्ह से भी गुनियांकी सहायतासे १७ कड़ीका लम्ब उठा लिया और इस लम्बके बिन्दुको भी जैसा फ़ील्डबुकमें क बिन्दुसे मिलाया गया है चलनेके स्थानसे मिला दिया (अब पहले खेतकी दो मेड़ें नक़शेपर बन गईं)। फिर उसी तरहसे परकार

द्वारा चलनेके स्थानसे १२० कड़ी नापी। यह कटान है, और फ़ील्डबुकमें १७ के कोणसे मिलाया गया है। इसलिये प्लाटमें भी उसको १७ के कोणसे मिला दिया। इसके बाद १२५ कड़ीपर दाहिने ओर १० कड़ीका लम्ब है इसलिये पहिले पैमाने और परकारकी सहायतासे प्लाटकी ज़रीबी रेखा-पर कसे १२५ कड़ीकी दूरीपर चिन्ह बनाया और उस चिन्हपर गुनियांकी सहायतासे दाहिनी ओर १० कड़ीपर बिन्दु बनाया और चूंकि यह बिन्दु भी फ़ील्डबुकमें १२० के कटानसे और २० वाले कोनेके पास मिला है,इसलिए प्लाटमें भी मिला दिया गया। अब खेतका नक़शा-पैमानेपर पूरा प्लाट हो गया। इसके बाद १४५ कड़ी नापकर जरीबी रेखापर चिन्ह लगाया और उस चिन्हसे दाहिनी ओर ६० कड़ीका लम्ब बनाया और उसको फ़ील्डबुकके अनुसार १० वाले कोनेसे मिला दिया। फिर जरीबी रेखापर २१० कड़ी नापकर, उस बिन्दुसे बाईं ओर १५ कड़ीका लम्ब बनाया। अब हमारी जरीबी रेखा समाप्त होनेके बिन्दुसे ६० और १५ कोने वाले लम्ब विन्दु फ़ील्डबुकमें ख से मिले हैं इसलिये प्लाटमें भी मिला दिये गये और दोनों खेतोंका नक़शा पूरा हो गया।

नोट १—केवल उस अवस्थामें गुनियां जरीबी रेखासे समकोण बनावेगी जब उसकी आर पार वाली रेखा उस रेखाके ठीक ऊपर होगी। ज़रा भी टेढ़ी रहनेसे वह समकोण नहीं बनावेगी इसलिये उस अवस्थामें जो लम्बका बिन्दु बनाया जायगा वह ग़लत होगा और नक़शा भी ग़लत हो जायगा।

नोट २—प्लाट करनेमें यह ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है कि जो लम्ब या कटानके बिन्दु लगाये जायँ वह फ़ौरन ही अपने सम्बन्धी बिन्दुओंसे मिला दिये जायँ। इन बिन्दुओंको बिना मिलाये इस ख़्यालसे हरगिज़ न छोड़ा जाय कि थोड़े बिंदु लगाकर उन सबको एकबारगी मिला दिया जायगा। क्योंकि मुमकिन है कि पीछे एकबारगी मिलानेसे ग़लती हो जाय।

नोट ३—प्लाटमें फ़ील्डबुकके विन्दुसे लिखने या विंदुओंके लम्बकी रेखाएँ दिखलानेकी आवश्यकता नहीं है।

नोट ४—जो विंदु बनाये जायँ उनपर परकार या पेन्सिलकी नोक ऐसी ज़ोरसे न दबाना चाहिये कि छेद हो जायँ या काग़ज़के दूसरी ओर चिन्ह मालूम हों। हलके हाथसे हलके निशान लगाने चाहिये, जो दूसरे बिंदुसे मिलाते समय दिखाई दे जायँ।

(ख) त्रिभुजी पैमाइशकी फ़ील्डबुकका प्लाट करना—पहिले काग़ज़पर त्रिभुजका एक भुज उपरोक्त नियम १३ के अनुसार इस लिहाज़से बनाना चाहिये कि उसकी दो बाक़ी भुजाएँ काग़ज़पर उस भुजाके उस ओर आ सकें जिस ओर वह मौक़े पर है। इसके बाद (जैसा बतलाया जा चुका है) उस भुजाके एक सिरेको केन्द्र मानकर दूसरी भुजाकी दूरीपर जो मौक़ेपर उस सिरेसे मिलता हो परकारसे धनुष खींचा जाय और उसी तरहसे दूसरेसिरे को भी केन्द्र मानकर तीसरे भुजकी दूरीपर इस तरहसे धनुष खींचो कि वह पहले धनुषको काट दे। तब जिस बिंदुपर यह धनुष एक दूसरेको काटें उसको पहले बनी हुई भुजाके दोनों सिरोंसे मिलादो। जो त्रिभुज इस तरह पर बनेगा वही वाञ्छित त्रिभुज होगा। अब इस प्लाट-की हुई त्रिभुजकी जांच उस टाईलैनसे करो जो त्रिभुजकी एक भुजाके किसी बिंदुसे अपने सामने-के कोण तक डाली गई है। अगर इस टाईलाइन-की दूरी प्लाट किये हुए त्रिभुज पर ठीक आय तो समझना चाहिये कि त्रिभुजकी तीनों भुजाएँ ठीक नापी गई हैं। वरना ग़लती है और जांच करनेके लिए तीनों भुजाओंकी दुबारा मौक़ेपर पैमाइश करनी चाहिये।

जब त्रिभुजकी तीनों भुजाएँ और टाईलैन प्लाट होकर, उसके ठीक होनेका बिश्वास हो जाय

तो जिस सिलसिलेसे मौक़ेपर पैमाइशकी थी यानी जो भुजा पहले नापी थी उसपरके लम्ब और कटान पहले उसी तरह प्लाट करलो जिस तरहसे एक लाइनपर पैमाइश किये हुये खेतोंके प्लाटकेलिए बतलाया है, और इसके पीछे वैसे ही दूसरी और तीसरी भुजापर प्लाट करो। फिर अगर कुछ लम्ब टाईलैनपर लिये गये हों तो उनको प्लाट करो। इन चार रेखाओं पर प्लाट करनेसे छोटे त्रिभुजके कुल भीतरी खेत नक़्शेपर बन जायंगे। लेकिन अगर भीतरी खेत इनपर पूरे पैमाइश न हुए हों और शिकमी रेखाओंपर किश्तवार पूरा क्रिया गया हो तो उसी तरहसे इन शिकमी रेखाओंको भी प्लाट करना चाहिये।

नोट १—जिस सिलसिलेसे पैमाइशके समय फ़ील्डबुक तैयार हुई है, बिलकुल उसी सिलसिलेसे नक़्शेका प्लाट करनेमें सुगमता होती है।

नोट २—जैसे फ़ील्डबुकके विषयमें बतलाया गया है कि पैमाइशका सिद्धान्त यह है कि दो स्थानोंको स्थाई मानकर उनके बीचकी रेखापर उसके दाएँ और बाएँके कोने और कटान राईट ऐंगिल द्वारा लम्ब लेकर बनाये जाते हैं और उन लम्बों और कटानोंको एक दूसरेसे जैसे वह मौक़ेपर मिलते हैं मिला देते हैं; वैसे ही प्लाट करनेमें भी दो माने हुये स्थानोंके बीच एक सीधी रेखाको जरीबी रेखा मानकर दाएँ और बाएँके स्थापित किये हुये स्थानोंको गुनियां द्वारा स्थापित करते हैं। और उनको उनके संबंधी लंबो और कटानोंसे मिला देनेसे पैमाइश किये हुये खेतकी पूरी शकल बन जाती है।

नोट ३—लम्बकी दूरी लिखने और उनकी रेखाओंके बनानेकी आवश्यकता नक़्शेमें इसलिए नहीं होती कि फ़ील्डबुक नज़री ख़ाका है। इसपर दूरी इत्यादि किसी पैमानेमें नहीं बनाई जातीं, इसलिए जबतक दूरी वग़ैरा इसपर न लिखी जायं या रेखाओं द्वारा लम्ब न दिखलाये जायं उनकी ठीक शकल पैमानेके अनुसार नक़्शेपर नहीं बनाई जा सकती। लेकिन नक़्शा एक निश्चित पैमानेपर बनाया जाता है। इसलिए उसपर किसी अंकोंके लिखनेकी आवश्यकता नहीं होती।

(ग) तीनसे अधिक भुजाओंकी शकलका प्लाट—पैमाइशके ब्यानमें बतलाया जा चुका है कि जो क्षेत्रफल एक त्रिभुजमें घेर कर सरलतासे नापा नहीं जा सकता उसको दो या अधिक त्रिभुजोंमें घेरकर पैमाइश करते हैं। इस सिद्धान्तकी ओर प्लाटमें भी ध्यान रखा जाता है। इसके प्लाट करनेकी यह रीति है कि पहले उपरोक्त रीतिके अनुसार उस त्रिभुजकी भुजोंको प्लाट करना चाहिये जिसकी पैमाइश मौक़ेपर पहिलेकी गई हो। केवल उस त्रिभुजको प्लाट करते समय यह ख़्याल रखना ज़रूरी है कि वह काग़ज़पर ऐसे मौक़े से या उसके ऐसे हिस्सेमें, बनाया जाय कि बाक़ी और त्रिभुज भी जो उसके पीछे नापे जायं वह पहिले त्रिभुजके सिलसिलेमें उस काग़ज़पर आ सकें। पहिल त्रिभुजके पीछे जो त्रिभुज प्लाट होंगे उनकी केवल दो ही भुजाएँ पहिले त्रिभुजकी उस भुजाके सिरोंको केन्द्र मानकर प्लाट होंगी, जिनसे उनका संबंध हो और फिर सब त्रिभुजका प्लाट वैसेही होगा, जैसाकि ऊपर बतला चुके हैं। अगर कोई रक़बा पैमाइश के लिए चार झण्डियोंसे घेरा गया हो तो उसको प्लाट करनेके लिए करणकी लम्बाई नापना ज़रूरी है, ताकि उस शकलको दो अलग त्रिभुजोंमें प्लाट किया जाय, जिनकी एक भुजा यानी करण साझेमें होगा।

(घ) ट्रावर्स किये हुए शीटोंका प्लाट—ऐसे शीटोंकी पैमाइशके विषयमें हम बतला चुके हैं कि कुल रक़बेको छोटे छोटे टुकड़ोंमें बांट लेते हैं और इन टुकड़ोंकी भुजाओंपर ज़मीन और नक़्शा दोनोंपर किश्तवार पैमाइश की सरलताकेलिए कटानोंके काफ़ी चिन्ह लगा दिये जाते हैं। जैसे किसी टुकड़े-

की भुजाके कटानसे उसके सामनेवाली भुजाके कटानको जरीब डालकर नापते हैं, वैसे ही नक़्शेपर भी इन्हीं कटानोंके बीच शिकमी रेखा स्थापित करके किश्तवारका प्लाट किया जाता है; और इसी तरहपर एक एक शिकमी रेखा प्लाट करके कुल नक़्शेका किश्तवार पूरा किया जाता है।

नोट—ज्ञात रहे कि हर नक़्शेमें उत्तरी रेखाका होना ज़रूरी है। तख़ता मुसत्ता द्वारा पैमाइशके अध्यायमें बतलाया जायगा कि यह उत्तरी रेखा पहले ही बनाली जाती है लेकिन जरीबी पैमाइशसे बनाये हुये नक़्शेपर निम्न लिखित रीतिसे बनाई जा सकती है।

(१) पैमाइश किये हुये रक़्बेमें रातको कहीं एक झंडी गाड़ दी जाय और उससे कुछ दूरीपर एक दूसरी झण्डी इस तरह गाढ़ी कि दोनों झंडियां और उत्तरी ध्रुव एक सीधमें हों। इसके पीछे दोनों गाढ़ी हुई झंडियोंके चिन्ह नक़्शेपर प्लाट करके उनके बीच एक रेखा खींच दीजाय, और इस रेखाके समानान्तर दूसरी रेखा नक़्शेके बाहर शीटके किसी हिस्सेमें खींचकर उसपर उत्तरकी तरफ़ झंडीका फरेरा बना दिया जाय।

(२) जब नक़्शा तैयार हो जाय तो इसको तख़ता मुसत्तापर जमाकर किसी एक रेखाके दोनों सिरोंमें मौक़ेपर झंडियां गाड़ दी जाती है और उन दोनों झंडियोंके नुकतों पर नक़्शेमें आलपीन खड़ी करके मौक़ेसे एक झंडी हटाकर उस स्थानपर तख़ता लगा देते हैं। इसके बाद शिस्तको नक़्शेपर इस तरहपर रखते हैं कि इसका एक किनारा आलपीनोंसे मिला रहे और उसकी तार वाली झिरी झँडीकी ओर रहे। अब तख़्तेको घुमाकर शिस्तकी पतली छेदवाली झिरीसे दूसरी झंडीको देखते हैं; अगर यह शिस्तकी दूसरी झिरीके तारकी सीधमें हो जाय तो समझना चाहिये कि नक़्शा अपनी असली दिशापर आ गया। अबक़ुतुबको तख़्तेपर रखकर उसकी सहायतासे उत्तरी रेखा बनालेनी चाहिये।

(३) अक्स कशी—अकसर नक़्शोंकी कई नक़लों की आवश्यकता होती है। इसलिये इनका अक्स उतारा जाता है। अक्स उतारनेके पहले नक़्शेको तख़्ते या मेज़पर फैलाकर बिलकुल चौरस जमा देते हैं कि उसपर कोई शिकन बाक़ी न रहे। इसके बाद मोमी काग़ज़, बारीक कपड़ा या बारीक काग़ज़ जिसपर अक्स करना हो और जिसपर नक़्शेकी लकीरें साफ़ साफ़ दिखलाई पड़ें, नक़्शेके ऊपर ऐसी होशियारीसे फैला देते हैं कि उसपर भी कोई शिकन बाक़ी नहीं रहती। अब दोनोंको (यानी असली नक़्शे और अक्सके कपड़े या काग़ज़को) उसी हालतमें पिनोंसे भली भांति कस देना चाहिये। और उसके पीछे अक्स खींचना आरम्भ करना चाहिये। पहले नक़्शेकी बाहिरी सीमाएँ पटरीकी सहायतासे कुछ मोटी रेखाओं द्वारा अक्स करनी चाहिएँ और जब सीमाका अक्स हो जाय तो भीतरी खेतोंकी मेड़ें केवल हाथसे अक्स करनी चाहिये। अगर कोई लम्बी सरल रेखा अक्स करनी हो तो उसको पटरीकी सहायतासे खींचना चाहिये। अक्स करनेमें हमेशा याद रखना चाहिये कि सब रेखाएँ बाएँसे दाहिनेको खींची जायँ और दायेंसे बाएँको, या खड़ी रेखाएँ हरगिज़ न खींचनी चाहिये। जब एक दिशाकी सब रेखाएँ जो बाएँ से दायेंको खींची जा सकती हैं, खींच ली जावें तो या तो तख़्तेको घुमाकर ऐसी ओर रख लेना चाहिये कि बाक़ी रेखाएँ बाएँसे दायेंको खींची जा सकें या अक्स खींचनेवालेको स्वयं हटकर ऐसी जगह खड़ा होना चाहिये कि वह बाक़ी रेखाओंको बाएँसे दाईं तरफ़ क़लम चलाकर पूरा कर सके। अभिप्राय यह है कि क़लम बाएँसे दाहिनी ओरकी अतिरिक्त और किसी ओर न चलानी चाहिये।

नोट १—अक्स आरम्भ करनेके पहले नक़्शा

खींचनेकी काली स्याही चीनीकी प्यालीमें घोलकर इस प्रकार तैयारकर लो कि उसका तेज़ रंग हो और जल्दी चले। इसकी जांच करनेकेलिये पहले रद्दी काग़ज़पर कुछ रेखाएँ खींचकर यह देख लेना चाहिये कि स्याही और क़लम दोनों ठीक हैं या नहीं।

नोट २—मोमी काग़ज़ अकसर बहुत चिकना होता है। इस वजहसे उसमें रोशनाई ठीक नहीं दौड़ती। इसलिए अक्स करनेसे पहिले किसी साफ़ कपड़ेमें थोड़ा पिसा हुआ सूखा चूना या पिसी हुई खड़िया मिट्टी लेकर उसपर घिस देना चाहिये।

नोट ३—अक्समें भी इस बातका ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है कि सब रेखाएँ एकसी मोटाईकी हों और एक सिरेसे दूसरेतक एक सी हों, कहीं मोटी और कहीं पतली और टूटी हुई न हों।

नोट ४—कुल नक़शेमें एकसां गहराईकी तेज़ रोशनाई इस्तेमाल करनी चाहिये। कुछ हिस्सेमें तेज़ और कुछमें फीकी न होनी चाहिये।

नोट ५—खेतोंकी सीमा अक्स करनेके पीछे उनके नम्बर चिन्ह और उत्तरी रेखा जो कुछ भी असली नक़शेपर हों अक्सकर लेना चाहिये।

नोट ६—अगर नक़शेपर रंग भरनेकी ज़रूरत हो तो उसमें जिस तरफ़ रेखाएँ खींची हैं रंग न लगाना चाहिये, बल्कि उसकी पीठपर जल्दीसे बुरुशसे लगाना चाहिये ताकि ऐसा न हो कि कुछ हिस्सेमें रंग अधिक जम जावे और कुछमें कम; बल्कि सब जगहमें एकसी गहराईका रहे। रङ्ग लगानेसे पहले पानीमें थोड़ी फिटकिरी घोलकर उसमें एक साफ़ कपड़ेका टुकड़ा भिगोकर नक़शेकी पीठको थोड़ा गीलाकर देना चाहिये। ताकि रङ्ग अच्छी तरह लगे और बहुत दिनोंतक रहे।

नोट ७—मोमी काग़ज़पर हाथकी चिकनाई लगकर धब्बा पड़ जाता है और अकसर हवासे धूल जमकर नक़शा मैला हो जाता है। इसलिए नक़शा खींचनेमें यह ख़याल रखना चाहिये कि खींचे हुए हिस्सेको जब स्याही सूख जाय तो किसी काग़ज़ या सोख़तेसे ढक दें और अक्स करते समय हाथके नीचे भी काग़ज़ या सोख़ता रख लिया जाय।

(४) एक नक़शेसे दूसरा नक़शा छोटे या बड़े पैमानेपर तैयार करना—पहले असली नक़शेके कुल शीटपर पेन्सिलसे एक इञ्चके वर्ग जितने बन सकें बनालेने चाहिये; और फिर जिस शीटपर दूसरा नक़शा खींचना हो उसपर भी उपरोक्त वर्गोंकी अपेक्षा उतने छोटे या बड़े वर्ग बनाने चाहियें जितना छोटा या बड़ा नक़शा बनाना हो। इसके बाद नक़शेवाले वर्गोंके भुजाओंपर जो सीमांकी रेखाएँ जहाँ जहाँ हैं वह सादे शीटके (अनुकूल) जवाबी वर्गोंके भुजाओंपर नाप नापकर उसी मौक़ेसे बनानी चाहिये। जैसे एक रेखा नक़शेमें उत्तर पच्छिमके वर्गकी एक भुजासे $\frac{१}{१०}$ इञ्चकी दूरीपर है और दूसरी भुजासे $\frac{३}{१०}$ इञ्चपर तो अगर नया नक़शा दूने पैमानेपर बनाना चाहते हैं तो यह रेखा सादा शीटके जवाबी वर्ग यानी उत्तर पच्छिमके वर्गमें जवाबी भुजासे $\frac{२}{१०}$ इञ्च और $\frac{६}{१०}$ इञ्चकी दूरीपर बनाई जायगी। जब इस तरह नये नक़शेकी हदबस्तर सीमाकी रेखा बन जाय तो भीतरकी रेखाएँ भी वैसे ही खींचनी चाहिये जैसे कि सीमाकी खींची गई हैं।

बीज-ज्यामिति

[ले० बनमाली]

(मीनाङ्कसे सम्मिलित)

१. दो विन्दु (क, ख) और (ग, म) दिये हुए हैं। उस सरल रेखाका समीकरण निकालना है जो इन विन्दुओंमें होकर जाती है।

विज्ञान भाग ८ संख्या ३ पृष्ठ १०६ पर सिद्ध

कर आए हैं कि सरलरेखाके समीकरण का एक रूप होता है—र = स. य + इ,.......... (१)

मान लीजिए कि (क, ख) और (ग, घ) विंदुओं-से होकर जानेवाली सरलरेखा का यही समीकरण है। अब यदि स और इ निश्चित हो जायं तो सरलरेखाका समीकरण ज्ञात हो जायगा।

(क, ख) विन्दु सरलरेखापर स्थिति है, इसलिए

$$ख = स. क + इ \qquad ,......(२)$$

(ग, घ) विन्दु सरलरेखापर स्थित है, इसलिए

$$घ = स. ग + इ \qquad ,......(३)$$

अब (१) में से (२) को घटाया तो

$$र - ख = स\ (य - क)......(४)$$

$$\text{अथवा} \quad स = \frac{र - ख}{य - क}$$

और (१) से (३) को घटाया तो

$$र - घ = स\ (य - ग)......(५),$$

इसमें स के लिए $\frac{र - ख}{य - क}$ रक्खें तो—

$$र - घ = \frac{र - ख}{य - क}\ (य - ग),$$

अस्तु सरलरेखाका समीकरण ज्ञात हो गया।

२. दो दी हुई सरलरेखाओंके बीचका कोण निकालना है—

मान लीजिए अ $द_२$ और अ $द_१$ दी हुई दो सरलरेखाएँ हैं। इनके बीचके कोण $द_१$ अ $द_२$ को मालूम करना है।
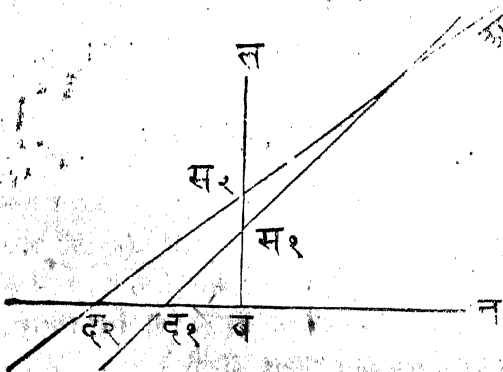
चित्र ६

(अ) मान लीजिए कि इन सरलरेखाओंके समीकरण हैं—

$$र = स. य + इ \text{ और } र = सि. य + ई$$

तो—स्प अ $द_१$ त = स और स्प अ $द_२$ त = सि

$$कोण\ द_१\ अ\ द_२ = कोण\ अ\ द_१\ त = कोण\ अ\ द_२\ त$$

$$\therefore स्प\ द_१\ अ\ द_२ = स्प\ (अ\ द_१\ त - अ\ द_२\ त)$$

$$= \frac{स्प\ अ\ द_१\ त - स्प\ अ\ द_२\ त}{१ + स्प\ अ\ द_१\ त.\ स्प\ अ\ द_२\ त}$$

$$= \frac{स - सि}{१ + स.\ सि}$$

जब स्प $द_१$ अ $द_२$ मालूम है तो कोण मालूम हो गया।

(इ) यदि सरलरेखाओंमेंके समीकरण हों—

$$त. य + थ. र + द = ० \text{ और } ति. य + थि. र + दि = ०$$

इन समीकरणोंका रूप बदल देते हैं। पहले समीकरणको थ से और दूसरे को थि से भाग देने-पर निम्नलिखित रूप दे सकते हैं—

$$र = -\frac{त}{थ}. य - \frac{द}{थ} \text{ और } र = -\frac{ति}{थि}. य - \frac{दि}{थि}$$

अब इन समीकरणोंको (अ) के समीकरणोंसे तुलना करनेसे प्रतीत होता है कि

$$स = -\frac{त}{थ} \text{ और } सि = -\frac{ति}{थि}$$

इस प्रकार सरलरेखाओंके बीचका कोण मालूम हो जायगा।

$$स्प\ द_१\ अ\ द_२ = \frac{स - सि}{१ + स. सि} = \frac{\frac{त}{थ}\left(-\frac{ति}{थि}\right)}{१ + \left(-\frac{त}{थ}\right)\left(-\frac{ति}{थि}\right)}$$

$$= \frac{थ.ति - त.थि}{त.ति + थ.थि}$$

. यदि दो सरलरेखाएँ एक दूसरेके समानान्तर हों तो उनके समीकरणोंमें क्या सम्बन्ध उपस्थित होगा?

जब दो सरलरेखाएँ समानान्तर होती हैं तो उन के बीच कोई कोण नहीं होता या यों कहिए कि कोण शून्यके बराबर है। त्रिकोणमितिसे सिद्ध है कि स्प ०=०

इसलिए स्प द$_१$ अ द$_२$ $= \frac{स - सि}{१ + स.सि} = \frac{थ.ति - त.थि}{त.ति + थ.थि} = ०$

$\therefore$ स − सि = ० या स = सि

तथा　थ. ति − त. थि = ०

या $\frac{त}{थ} = \frac{ति}{थि}$

४. दो सरलरेखाएँ एक दूसरेपर लम्ब कब होंगी ?

मान लीजिए कि इन सरलरेखाओंके समीकरण हैं—

इ = स. य + र और र = सि. य + ई

यदि इन सरलरेखाओंके बीच कोण ठ हो तो हम अभी सिद्ध कर आए हैं कि

स्प ठ $= \frac{स - सि}{१ + स.सि}$ ....(१)

यदि यह सरलरेखाएँ एक दूसरेपर लम्ब होंगी तो ठ = समकोण = ९०° और स्प ठ = ∞ (असंख्य राशि)।

इस बातपर ध्यान देनेसे प्रतीत होता है कि समीकरण (१) में दाहिनी ओरकी राशिका भाजक (denominator) शून्य के बराबर होगा।

इसलिए निश्चय हुआ कि जब सरल रेखाएं एक दूसरे पर लम्ब हो गईं तो।

१ + स. सि = ०; या स. सि = −१

यदि दी हुई सरलरेखाओंके समीकरण निम्न लिखित हों—

त. य + थ. र + द = ० और ति. य + थि. र + दि = ०

और सरलरेखाओंके बीचका कोण ठ हो तो जैसे २ (इ) में सिद्ध कर आएँ हैं −

स्प ठ $= \frac{थ.ति - त.थि}{त.ति + थ.थि}$

और सरलरेखाओंके समकोण होनेपर

त. ति + थ. थि = ०

अथवा त. ति = − थ. थि;

या $\frac{त}{थ} = -\frac{थि}{ति}$; या $\frac{त}{थ} \times \frac{ति}{थि} = -१$;

या $\left(-\frac{त}{थ}\right) \times \left(-\frac{ति}{थि}\right) = -१$

ऊपर २ (इ) में जो तुलना की थी उस में,

स $= -\frac{त}{थ}$ और सि $= -\frac{ति}{थि}$

इसलिए स. सि = −१।

यही ऊपर सिद्ध भी कर आए हैं।

५. दो सरल रेखाएँ दी हुई हैं जिनके समीकरण हैं—

त. य + थ. र + द = ०.........(१)

और　थ. य − त. र + दि = ०.........(२)

तो　(१) का स $= -\frac{त}{थ}$

और (२) का सि $= \frac{थ}{त}$

यहां स. सि. $= -\frac{त}{थ} \times \frac{थ}{त} = -१$

इससे सिद्ध हुआ कि सरलरेखाएँ (१) और (२) एक दूसरेपर लम्ब हैं।

(१) और (२) पर ध्यान देने से एक नियमका पता लगता है जिसकी सहायतासे किसी सरलरेखाका समीकरण दिया हो तो उसके लम्बका समीकरण तुरन्त लिखा जा सकता है। सरलरेखाएँ जिनके समीकरण (१) और (२) हैं एक दूसरे पर लम्बन सिद्ध हो चुकी हैं। (१) और (२) में ऐसा सम्बन्ध है कि (१) के य का (coefficient) गुणक (२) के र का और (१) के र का (coefficient) गुणक (२) के य का (coefficient) गुणक है और इन दोनों गुणकों मेंसे केवल एकका चिह्न भिन्न है। और (१) और (२) की अचल-राशियां र और दि भिन्न हैं।

इसलिए (१) दिया हो तो (२) बड़ी सरलता से लिख सकते हैं। (१) के य और र के (coefficients)

गुणकोंको एक दूसरेसे बदलकर इनमेंसे एक का चिह्न बदल देते हैं और (१) की अचलराशि द को बदलकर कोई और अचलराशि दि लिख देते हैं। इस प्रकार समीकरण (२) बन जाता है।

एक बात पर विचार करना उचित होगा कि समीकरण (२) की अचलराशि दि हमारी इच्छापर ही निर्भर है वरन निश्चित नहीं है। प्रत्येक सरलरेखाको निर्धारित करनेकेलिए दो अवस्थाओं अथवा स्थितियोंका मालूम होना ज़रूरी है। यहां हमको केवल एक अवस्था या स्थिति ज्ञात है कि सरलरेखा (२) सरलरेखा (१) पर लम्ब है। जब हमको सरलरेखा (२) की दूसरी अवस्था या स्थिति भी मालूम होगी तो सरलरेखा (२) निश्चित हो जायगी और समीकरण (२) की अचलराशि दि भी मालूम हो जायगी। यह बात इस प्रकार भी समझ में आ सकती है कि एक सरलरेखा पर अनेक लम्ब पड़ सकते हैं और जब यह कहेंगे कि उनमेंसे अमुक लम्ब जो, किसी ख़ास स्थिति या अवस्थामें है चाहिये तो, भी एक लम्ब विशेष निश्चित होगा।

आलोककारी पदार्थोंकी रसायन

[ले० प्रो० मनोहरलाल भार्गव, एम. ए.]

प्रकाश—भौतिक अथवा मांसिक-एक अद्भुत चित्ताकर्षक पदार्थ है। मनुष्य सदासे इसके लिए अविक्रान्त परिश्रम करता रहा है। सृष्टिके आदिमें जब मनुष्यकी उत्पत्ति हुई, आकाशमें विचरने वाले ज्योतिपिण्डों को देखकर उसकी बुद्धिका विकाश होने लगा। इस बाहिरी (भौतिक) प्रकाशने भीतरी प्रकाश (ज्ञान, विज्ञान) की नींव डाली। रात्रिके अंधेरे या परिमित उजालेके उपरान्त दिनमें सूर्य भगवानके प्रखर प्रकाशको देख कर मनुष्यको कितना आनन्द होता था और अब भी होता है—वैदिक कालके ऋषियोंने नीचेके मंत्रों में इसे भलीभांति प्रकाशित किया है:—

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १॥

[जिस अंधकारमें हम घिरे हुए थे, उससे निकल आये हैं और ऊंचे आकाश तथा उत्तम प्रकाशवाले सूर्यके दर्शन हमने किये हैं।]

ॐ उदुत्यं जात वेद संदेवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यं।

[सब जीनेवाली वस्तुओंको जानने वाले देवके चोबदार (किरणें) उन्हें ऊपर उठा रहे हैं, जिससे हम सब उनके दर्शन कर सकें।]

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्
सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
ॐ तच्च चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छु क्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं।
शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतम्।
अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

[अहा, देवताओंका नेता आ उपस्थित हुआ है। वह मित्र, वरुण तथा अग्निकी आंख है। वह चराचरकी आत्मा है। उससे वायु, पृथ्वी और आकाश सब व्याप्त हैं।]

हम सौ वर्षतक देखते रहें, सौ वर्षतक जीते रहें, सौ वर्षतक बोलते रहें, सौ वर्षतक धनी बने रहें—बल्कि सौ वर्षसे अधिकतक मनुष्यको क्या सारी प्रकृतिको ही सूर्योदयके समय महत आनन्दका अनुभव होता है। चिड़ियां अपना मधुर गान सुनाकर, पत्तियां पाद्य अर्घ्य देकर, कलियां खिल खिलाकर और अपना सौरभ वायुमें फैलाकर, आकाश मण्डल रंग बिरंगे कुमकुमोंसे होला खेलकर, हवा अपनी अठखेलियां दिखाकर सूर्यके शुभागमनपर प्रमोद प्रदर्शित करती हैं। वसुंधरा अनोखा शान्त उज्ज्वल, लावण्यमय रूप धारण-

— Organic Chemistry ऐन्द्रिक रसायन]

कर और मधुर प्रकाशकी चादर ओढ़ आगति पतिकी नायका बन जाती है।

मनुष्यको, अपनी उत्पत्तिके बादही जानवरों से अपनी रक्षा-करनेका प्रयत्न करना पड़ा होगा। पहले तो अनुभवतः यह वृक्षोंपरही रहते होंगे, परन्तु बादमें घर बनाकर रहना सीखा होगा। वृक्षवासन कालमें ही उन्होंने यह देखा होगा कि वायुके वेगसे निकटस्थ वृक्षोंकी टहनियोंमें संघर्षण होता है और अग्नि पैदा हो जाती है। इसी अनुभवसे उन्होंने आग जलाना और प्रकाश पैदा करना सीखा। घरोंको जंगली पशुओंके आक्रमणसे रक्षा करनेकेलिए उन्होंने पहले पहल इस आरम्भिक रीतिसे प्रकाश करनेकी तरकीब निकाली, क्योंकि जंगली पशु प्रकाशसे भय मानते हैं और उसे देखकर भाग जाते हैं। कुछ मनुष्योंका तो ख़याल है कि प्रकाशको देख भूत भी भाग जाते हैं, पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि डरपोक आदमीमें भी प्रकाशकी उपस्थितसे साहसका संचार हो जाता है।

संसारमें सबसे पहली तरकीब रोशनी पैदा करनेकी यही थी। मनुष्य जैसे उन्नति करता गया, रोशनी करनेके तरीक़ोंमें तरक्क़ी होती गई। कृषिका प्रचार होने और तेलहन पदार्थोंके उपयोग जान लेनेके बाद हमारे चिरपरिचित दिया बातीका जन्म हुआ होगा। इसके बाद मोमका प्रयोग मोमबत्तीके लिए होने लगा।

मोमबत्ती

बहुत पुराने ज़मानेसे मोमबत्तियां मधुमक्षिकाके मोमसे बनती रही हैं, परन्तु पीछेसे जानवरोंकी ठोस चर्बियोंका प्रयोग होने लगा। मोमबत्तियां बनानेका पुराना ढंग यह था कि मोम या चर्बीको किसी बरतनमें रखकर पिघला लेते थे। तदुपरान्त एक विशेष प्रकारके पौदेके अन्दरूनी भाग (pith of rush) या रुईकी बत्तीका उचित लम्बाईका टुकड़ा लेकर उसमें डुबोते थे। और निकालकर सुखा लेते थे। सूख जानेपर फिर डुबोते थे। इस भांति बारबार डोब देकर सुखाते जाते थे, जबतक कि बत्तीके चारों ओर मोमकी काफ़ी मोटी तह न जम जाती थी। इंगलैण्डमें इस प्रकारकी बत्तियोंको, उनके बनानेकी विधिके कारण डिप्स (dips) कहते थे।

पुराने ज़मानेमें इंगलैण्ड आदि देशोंमें यह प्रथा थी कि स्त्रियां चर्बी बचा बचाकर रखती जाती थीं और घरका काम कर चुकनेपर रातकेलिए मोमबत्तियां तैय्यार किया करती थीं। भारतवर्ष जैसे सर्व सम्पन्न देशमें इस बातकी इतनी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि यहां तो इतने विविध भांतिके और सस्ते तेलहन पदार्थ मिलते थे कि उनसे तेल निकालकर जलानेमें अधिक किफ़ायत होती थी। इन पुराने ढंगकी बत्तियोंमें एक और ऐब होता था, इन्हें जलानेपर बहुतसा द्रव पदार्थ इनमेंसे निकलकर बहता था, जिससे बड़ी असुविधा होती थी।

रसायनने जहां मनुष्यके अन्य उपकार किये तहां बिचारी यूरोपकी स्त्रियोंकी यह दोनों दिक़्क़तें भी मिटा दीं। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें ही एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक शिव्रुल (Chevreul) ने वानस्पतिक तथा पार्शव चर्बियां और तेलोंकी परीक्षा आरम्भकी और उनकी प्रकृतिका निर्णय कर उसने यह निर्धारित किया कि यह सब ग्लिसरीनके यौगिकोंके मिश्रण होते हैं। प्रत्येक तेल या चर्बीमें (वानस्पतिक हो चाहे पार्शव) ग्लिसरीन [क$_3$ उ$_8$ ओ$_3$ $C_3H_8O_3$] नीचे दिये हुए अम्लोंमेंसे किसी एक या अधिकके साथ यौगिक बनाकर रहती हैः—

खजूराम्ल (Palmitic aicd)

क$_{16}$ उ$_{32}$ ओ$_2$ ($C_{16}H_{32}O_2$)

वसाम्ल (Stearic acid)

क$_{18}$ उ$_{36}$ ओ$_2$ ($C_{18}H_{36}O_2$)

ज़ैतूनाम्ल (Oleic acid)

क$_{18}$ उ$_{34}$ ओ$_2$ ($C_{18}H_{34}O_2$).
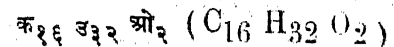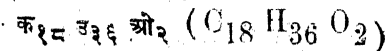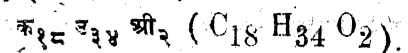
इनमेंसे पहले दो अम्ल तो ठोस हैं और उनके यौगिक (एस्टर) भी ठोस होते हैं, परन्तु अन्तिम अम्ल द्रव है और उसके यौगिक (एस्टर) द्रव होते हैं। यह अम्ल ज़ैतूनके तेल (Oleic oil) में पाया जाता है। जिन चर्बियोंमें ग्लिसरीनके ज़ैतून एस्टरका अंश होता है वह बहुत ही बहती हैं। इसलिए ग्लिसरीन ज़ैतूनेतको मोमबत्ती बनानेके पहले चर्बियोंमेंसे निकाल देना चाहिये।

मोमबत्ती बनानेकी आधुनिक रीति

चर्बीको पहले तेज़ाब मिले हुए पानीमें उबालते हैं जिससे उसके रेशे अलग हो जायं। तदुपरांत चर्बीको उत्तप्त भापमें गरम करते हैं और उसके साथ थोड़ासा बुझा हुआ चूना भी रख देते हैं। ऐसा करनेसे चर्बी विश्लिष्ट जाती है और उसके अवयव ग्लिसरीन तथा अम्ल अलग अलग हो जाते हैं। अम्लोंको शुद्ध करके भपकेमें गरम करते हैं और द्रव अम्लोंको (ज़ैतूनाम्ल) ठोस अम्लों (खजूर तथा वसा अम्ल) से अलग कर लेते हैं। जो ठोस इस प्रकार प्राप्त होता है उसमें अधिकांश वसाम्ल स्टियेरिक एसिड या स्टियारिन होता है। इसमें थोड़ासा पाराफ़िन मोम मिलाकर आजकल मोमबत्तियां बनाई जाती हैं। पुरानी चर्बीकी मोमबत्तियोंकी अपेक्षा यह बत्तियां अधिक कड़ी, साफ़, अपारदर्शी होती है और जलनेपर न तो मुड़ती हैं और न बहती हैं। इनकी लौ भी धूम रहित और स्वच्छ प्रकाशमान होती है।

पाराफ़िन मोम

यहांतक हमने चर्बीसे मोमबत्ती बनानेका ज़िक्र किया है। इससे अधिक परिमाणमें तथा सस्ता मिलने वाला एक और पदार्थ है, जिसे पाराफ़िन मोम कहते हैं। पहले यह स्काटलैंएड केलोदियंज़ प्रान्तके तेलिया डामर (Oil Shale) को भपकेमें गरम करके बनाया जाता था। आजकल तो जर्मनीमें यह भूरे कोयले या लिगनैटको गरम करके और अमेरिकामें पेट्रोलियमको गरम करकेभी बनाया जाता है। इसके अवयव प्रायः वह यौगिक होते हैं जिनमें केवल कर्बन तथा उज्जन पाये जाते हैं और इसीलिए कर्बोज्ज कहलाते हैं। स्पष्ट है कि यह पाराफ़िन चर्बियोंको जातिका यौगिक नहीं है। बत्ती बनानेके पहले मोमको शुद्धकर लेते हैं और उच्च तापक्रमपर गलनेवाले अंशको ही लेते हैं। इस मोमकी बत्तियोंमें केवल एक त्रुटि होती है कि गरमीकी मौसिममें रखी रखी ही टेढ़ी हो जाती हैं और गरम देशोंमें गरमी के मौसिममें जलानेमें बड़ी असुविधा होती है।

हम पहले बतला चुके हैं कि पहले पहल मोम बत्तियां मधुमक्षिकाके मोमकी बनाई जाती थीं। यह मोम चर्बी तथा तैलोंकासा ही यौगिक होता है। इसमें मिलिस्सिल अल्कहल और खजूराम्लके मूल (अंश) रहते हैं।

व्हेल मछलीके (Physeter mocro Cephalus) तेलसे भी एक पदार्थ निकाला जाता है जिसे स्परमेसीटी कहते हैं। इससे भी मोमबत्तियां बनती हैं, पर बहुत मंहगी होती हैं। इनका महत्व केवल इतना ही है कि यह प्रकाश नापनेकी प्रमाण मानी जाती हैं। इनकी लौ बड़ी और एकसी रहती है।

मोमबत्तियोंकी एक बड़ी भारी त्रुटि कैसे निकाली

पाठको! आप तो आरामसे मोम बत्ती जलाते हैं, आपको यह मालूम भी न होगा कि आजसे सौ वर्ष पहले भले मानसोंको बत्तियां जलानेमें कितनी असुविधा होती थी। उन विचारोंको थोड़ी देर बाद बत्ती कैंचीसे काटनी पड़ती थी। ऐसा क्यों करना पड़ता था इसका पूरा पूरा ब्यौरा तब समझ में आयगा जब हम यह जान लें कि बत्ती जलती कैसे है।

मोमबत्ती कैसे जलती है

स्मरण रहे कि यद्यपि मोम जलने वाला पदार्थ है, परन्तु वह उस वक्त तक नहीं जलता जबतक कि भापकी दशामें परिणत होकर एक विशेष तापक्रम तक, जिसे ज्वलन विन्दु कहते हैं, गरम नहीं हो

जाता। जब मोमबत्तीकी बत्तीके पास जलती हुई दियासलाई लाते हैं, तो उससे लिपटा हुआ मोम टिघलता है और भापमें परिणत हो गरम होकर जलने लगता है। यह सब कारंवाई एक सैकण्डमें हो जाती है। परन्तु बत्तीमें मोम थोड़ा सा रहता है। अतएव लौ छोटी होती जाती है और नीचेको उतरती है। जहां यह मोमतक पहुंची कि उसका टिघलना आरम्भ हुआ और वह बत्तीके रेशों द्वारा ऊपरको चढ़ने लगा। जब वह लौ तक चढ़ जाता है तो भापमें परिणत हो जाता है औरगरम होकर लौको बढ़ा देता है। अन्तमें ऊपर चढ़ते हुए मोम और नीचे आनेवाली गरमीमें साम्यावस्था आ जाती है और लौ एक समान जलती रहती है। यह टिघला हुआ मोम बह क्यों नहीं जाता? इसका कारण यह है कि बत्तीके जलनेमें जो हवा ज़रूरी होती है वह नीचेसे खिंचती है और यह मोमबत्तीके बाहरी भागको ठंडा करती हुई बत्तीतक पहुंचती है। परिणाम यह होता है कि लौके नीचे पिघले हुए मोमका एक सुन्दर गोल ताल बन जाता है, जिसमें लौ कमलके समान सुशोभित होता है।

अब जो मोम बत्तीमें चढ़कर भापमें परिणत होजाता है वह एक प्रकारका खोलसा बना लेता है जो केवल बाहरही बाहर जलता है और भीतर गैसें भरी रहती हैं। यह गैसबत्तीको हवासे बचाये रखती है और उसे पूरी तौरपर जलने नहीं देती। नतीजा यह होता है कि बत्ती लम्बी होती जाती है। उसमें मोम बहुत चढ़ता है, जो अच्छी तरह जल नहीं सकता अतएव लौ लम्बी होकर ज्योतिहीन होती चली जाती है और धुआं देने लगती है। इस अध जली बत्तीको काटकर, लौका आकार घटानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं जिससे फिर वही साम्यावस्था आ उपस्थित हो।

पुराने ज़मानेमें इसीलिए बारबार बत्तीको काटना पड़ता था, जिससे न तो ज़्यादा मोम बत्तीमें चढ़कर धुआँ देता था और न ख़राब होता था और न लौ लम्बी और ज्योतिहीन होती थी। इसी लिए गेटेने लिखा हैः—

There could be no greater discovery made,
Than of candles to burn without Snuffers aid.

यह आविष्कार भी एक फ्रांससीसी कोमबासीरस (Cambaceres) ने १८२५ में किया। उसने कहा कि बटी हुई बत्तियोंकी जगह गुथी हुई या बुनावटकी बत्तियोंका प्रयोग करना चाहिये। यह सभी जानते हैं कि गुथी हुई चीज़ जलनेपर ख़म खाजाती है। यह बात प्रत्येक व्यक्ति आजकलकी मोमबत्तियोंमें देख सकता हैं। बत्ती जलकर मुड़ जाती है। इस प्रकार उसका अध जला (झुलसा हुआ) ऊपरी भाग हवातक पहुंच जाता है और पूरा जल जाता है। बत्ती अपने आप कटकर या जलकर स्वाहा होजाती है और अब हम मोमबत्ती बिना बार बार काटे हुये जला सकते हैं।

बत्तीकी मोटाई, उसकी बुनावट, उसे मोमबत्ती बनानेके पहले शोरेके घोलमें या किसी अन्य रासायनिक पदार्थमें डुबोकर, सुखाना आदि बातें मोमकी प्रकृतिपर निर्भर करती हैं। इन सब बातोंका बड़ा अहतयात रखना पड़ता है।

घी और काफ़ूर

भारतमें घी भी जलानेके काम आता था। आजकल भी कमसे कम पूजा पाठके समय घी काममें लाते हैं। बड़े आदमी कपूर या कपूर बत्तियां जलाया करते थे। आजकल यह केवल आर्ती उतारनेके काम आता है।

मट्टीका तेल कबसे काम आने लगा

हम पहले कह चुके हैं कि स्टाकलैण्डमें एक प्रकारका तेलिया डामर खानसे निकलता है। उसको भपकेमें गरम करके मोम निकाला करते थे। परन्तु गरम करनेपर बहुतसा तेल भी निकलता था। पहले तो यह योंही बरबाद कर दिया जाता था, पर बादमें विज्ञानभक्त जर्मन इसे बहुत सस्ते दामपर मोल ले जाते थे। खोज करनेपर पता चला कि उन्होंने एक लम्पका आविष्कार किया है

जिसमें वह तेल जलाते हैं। इस प्रकार खनिज तेलका प्रयोग करना पहले पहल जर्मनोंने संसारको सिखाया।

इस घटनाके बाद स्काटलेण्डकी आमदनी भी बढ़ गयी। परन्तु सबका काल एकसा नहीं जाता, थोड़े ही दिन बीते थे कि रशिया और अमेरिकामें तेलके कुओंका पता लग गया; तब तो स्काटलेण्डको सिवा अपनी आमदनीसे हाथ धो बैठनेके कोई चारा ही न था। परन्तु

'क्षत्रिय तनुधर समर सकाना
कुलकलंक तेहि पांवर जाना'

विज्ञानका खड्ग हाथमें ले स्काटलेण्ड प्रतियोगिताके रण अजिरमें आडटा। वहांके वैज्ञानिकोंने इस व्यवसायमें ऐसे सुधार परिवर्तनादि किये कि वह आजतक बड़े फ़ायदेके साथ चल रहा है।

मट्टीका तेल

यह कहांसे निकलता है और कैसे निकाला जाता है, इन प्रश्नों पर "सरस्वती" तथा "विज्ञान" दोनोंमें लेख निकल चुके हैं। उन लेखोंको पढ़कर पूरी जानकारी हो जायगी। यहां हम केवल मिट्टीके तेलकी रसायन पर विचार करेंगे अर्थात् यह निर्णय करेंगे कि उसका संगठन कैसा है, उसमें कौन कौनसे यौगिक मिले हैं और उन यौगिकोंके अवयव क्या हैं।

मौलिकोंके परमाणुओंमें आपसमें मिलनेकी बड़ी प्रबल इच्छा रहती है। इस इच्छाको युयुत्सा और मिलनेकी शक्तिको योग-शक्ति कहते हैं। प्रायः परमाणु स्वतंत्र नहीं मिलते। यातो वह आपसमें ही मिल जाते हैं या अन्य जातिके परमाणुओंसे मिलकर यौगिक बना लेते हैं। जहांतक हो सकता है परमाणु विजातियोंसे ही सम्बंध करते हैं, अपने कुटुम्ब तथा गोत्रको सम्बंध करनेमें वह भी बचाते हैं। पर कर्बनके परमाणुओंमें यह विलक्षणता है कि उनमेंसे बहुतसे एक दूसरेसे मिलते हुए चले जाते है। यही कारण है कि कर्बनके यौगिक अनन्त हैं। इन सब यौगिकोंमें कर्बनकी योगशक्ति अवश्य एक समान रहती है, अर्थात् न चारसे बढ़ती है और न घटती है।

कर्बन और उज्जनके यौगिकोंको कर्बोज्ज कहते हैं। इनकीसंख्याभीबहुत है, इनमेंसरलतम यौगिक मिथेन (क उ$_{४}$) हैं, जिसका संगठन इस प्रकार दिखाया जा सकता है

```
        उ
        |
    उ — क — उ
        |
        उ
```

इससे अधिक जटिल कर्बोज है इथेन जो यों व्यक्त हो सकता है:—

```
      उ   उ
      |   |
 उ — क — क — उ
      |   |
      उ   उ
```
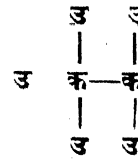
इससे और जटिल यौगिक प्रपेन, बुटेन, पंचेन, षड़ेन आदि हैं, जिनके अणु सूत्र इस प्रकार लिखे जा सकते हैं—

```
     उ   उ   उ                 उ   उ   उ   उ
     |   |   |                 |   |   |   |
उ — क — क — क — उ ;      उ — क — क — क — क — उ
     |   |   |                 |   |   |   |
     उ   उ   उ                 उ   उ   उ   उ
     (प्रपेन)                      (बुटेन)
```
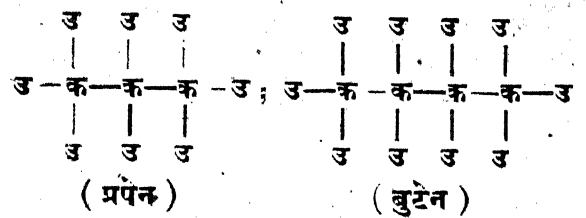
ध्यान देनेसे मालूम होगा कि इन सब यौगिकोंमें उज्जनके परमाणुओंकी संख्या, कर्बनके परमाणुओंको संख्याकी दुगुनीसे दो अधिक है। इसीसे उनका व्यापक सूत्र हुआ क$_{न}$ उ$_{२ न + २}$।

उपरोक्त कर्बोज्जोंमें कर्बनको पूरी योग शक्ति उज्जनके परमाणुओंके संयोगसे तृप्त हो जाती है। प्रत्येक कर्बन चार परमाणुओंसे मिला है। जबतक कि उससे जुड़ा हुआ कोई उज्जन परमाणु नहीं हट जाय, उसके लिये किसी नये परमाणुसे मिलना कठिन है। परन्तु कुछ कर्बोज्ज ऐसे भी पाये जाते हैं जिनमें उज्जन परिणाम कम होता है। यह कर्बोज्ज अतृप्त (unsaturated) कहलाते हैं और पूर्वोक्त तृप्त (saturated)।

उदाहरणकेलिए अतृप्त कर्बोज्जोंके अणु-सूत्र दिये जाते हैं :—

$$\begin{matrix}\text{उ} \\ \text{उ}\end{matrix} > \text{क} = \text{क} < \begin{matrix}\text{उ} \\ \text{उ}\end{matrix} \;;\; \begin{matrix}\text{उ} \\ \text{उ}\end{matrix} > \text{क} = \begin{matrix}\text{उ} \\ | \\ \text{क}\end{matrix} - \begin{matrix}\text{उ} \\ | \\ \text{क} \\ | \\ \text{उ}\end{matrix} - \text{उ} \;;\; \text{इत्यादि}$$
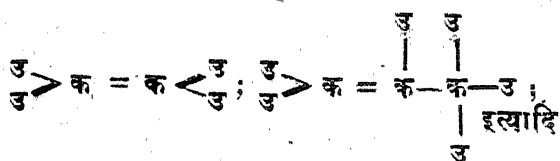
$\text{क}_२ \ \text{उ}_४$ (इथिलीन) $\text{क}_३ \ \text{उ}_६$ (प्रपिलीन)

इथिलीनमें इथेनकी और प्रपिलीनमें प्रपेनकी अपेक्षा २ उज्जनके परमाणु कम हैं। यह कर्बोज्जोंकी एक भिन्न श्रेणी है जिसका व्यापक सूत्र है $\text{क}_{\text{न}}$ $\text{उ}_{२\text{न}}$ । पहिली श्रेणी को मिथेन या पाराफिन श्रेणी कहते हैं। दूसरीको इथिलीन श्रेणी कहते हैं। एक और तीसरी श्रेणी है, जो दूसरीसे भी अधिक अतृप्त है, जिसे एसेटिलीन श्रेणी कहते हैं। इसका व्यापक सूत्र $\text{क}_{\text{न}}$ $\text{उ}_{२\text{न}-२}$ है । इस तीसरी श्रेणीका पहला मेम्बर एसेटिलीन गैस है, जो लम्पोंमें गैस मसालेसे तय्यार करके जलाया जाता है और जिसका सूत्र $\text{उ}-\text{क}\equiv\text{क}-\text{उ}$ है। इन तीन श्रेणियोंके अतिरिक्त और भी कई श्रेणियां हैं, जैसे बेंज़ीन, जिसका मूल पुरुष बेंज़ीन ($\text{क}_६$ $\text{उ}_६$) है, इत्यादि।

अमेरिकन पेट्रोलियम या मट्टीके तेलमें प्रायः मिथेन श्रेणीके कर्बोज्ज $\text{क}\,\text{उ}_४$ से लेकर $\text{क}_{३०}$ $\text{उ}_{६२}$ तक मिले होते, परन्तु रूसके पेट्रोलियममें बेंज़ीन श्रेणीके कर्बोज्ज पाये जाते हैं। इन श्रेणियोंके आरम्भिक मेम्बर तो गैस या द्रव होते हैं, पर ज्यों ज्यों उनमें कर्बनकी मात्रा बढ़ती जाती है, अणुभार अधिक होता जाता है, त्यों त्यों वे कम उड़नशील होते जाते हैं अर्थात् उनका उबाल विन्दु बढ़ता चला जाता है। जब कर्बनकी संख्या सोलहसे अधिक हो जाती है तो यौगिक ठोस हो जाता है। अतएव जब पेट्रोलियमको गरम करते हैं तो उबाल विन्दुओंके क्रमसे उसमें से भाप बनकर यौगिक निकलने लगते हैं। जो भाप १२०° और १४०° शाके बीचमें निकलती है, उसे पेट्रोलियम ईथर कहते हैं । इसी प्रकार अन्य पदार्थ मिल जाते हैं । स्मरण रहे कि भापको भपके में ठण्डा करके फिर द्रवमें परिणत कर इकट्ठा करते जाते हैं ऐसा करने से प्रायः नीचे दी हुई चीज़ें भिन्न भिन्न तापक्रमोंपर इकट्ठी कर ली जाती हैं:—

तापक्रम	पदार्थ	किस काम आता है
१२०°–१४०°श	पेट्रोलियमईथर	घोलक है
१६०°–१८०°श	पेट्रोलया गैसोलीन	मोटरकार चलाने और गैस बनानेके काम आता है।
२५०°–३००°श	(Benzine) बेंज़िन	चमड़े या कपड़ेपर चर्बीके दाग़ धब्बेपड़ जाते हैं, उनके छुड़ानेमें काम आता है।
३००°–५७०°श	केरोसीन तेल	लम्पोंमें जलता है और गैस बनता है।

इससे भी ऊँचे तापक्रम पर वैसेलीन, पाराफ़िन मोम और औंघनेके तेल प्राप्त होते हैं।

यह तो मालूम हो गया होगा कि कैरोसीनमें जो कर्बोज्ज होते हैं उनमें कर्बनका अंश बहुत ज़्यादा होता है। अतएव उन्हें जलानेके समय चिमनियोंका प्रयोग किये बग़ैर बहुत धुआं निकलता है। चिमनीके प्रयोगसे हवा उचित परिमाणमें पहुंचती रहती है और स्वच्छ निर्मल ज्योति प्रकट होती है। जिन लम्पोंमें गोल बत्तियां काम आती हैं, उनमें केवल चिमनीसे ही काम नहीं चलता। उनमें लौके बीचमें हवा पहुंचानेकेलिए एक और नलीकी आवश्यकता पड़ती है जैसा डिटमारके टेबिल लेम्प तथा लटकनोंमें प्रायः देखा होगा।

'भक विन्दु'

जिन दिनों पहले पहल मट्टीका तेल काममें आने लगा था, धड़ाके अक्सर हुआ करते थे और लम्पोंमें आग लग जाया करती थी। इसका कारण

यह था कि नीचे उबाल विन्दु वाले, अर्थात् अधिक उड़नशील अवयव अच्छी तरहसे अलग नहीं किये जाते थे। ऐसा न करनेके कारण लौकी गर्मीसे पेटीमें बहुतसी भाप बन जाती थी और धड़ाका होकर आग लग जाया करती थी। इन घटनाओंको रोकनेके लिए यह आईन आवश्यक बनाना पड़ा कि वही तेल लम्पोंमें जलानेके लिए बेचा जाय जिसमेंसे जलने वाली भाप एक विशेष तापक्रम तक गरम हुए बिना न निकले। यह तापक्रम 'भक-विन्दु' (Flash Point) कहलाता है। यह १०३° फ़ा आईनसे निश्चित है। परीक्षाके लिए तेल एक विशेष प्रकारके बर्तनमें रखकर गरम किया जाता है और यह निश्चय कर लिया जाता है कि बर्तनके मुंहपर लौ लानेसे निकलती हुई भाप किस तापक्रमपर भकसे जल उठती है। जिस तेलमें भकसे जल उठने वाली भाप ७३° फ़ा के पहले निकलने लगती थी, वह बाज़ारमें नहीं बिक सकता था। प्रत्येक पीपेपर यह 'भक-विन्दु' या 'फ्लेशपौइंट' लिखा रहता है।

समयका हेर फेर

[ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी. एस-सी. एल टी.,]

ह ! साढ़े छ बज गये और अभी-तक सूरज नहीं निकला, कलकत्ते में तो सुबहकी नमाज़का वक्त छ बजेके पहले ही हो जाता था।"

मियां दिल्दार खां इतना ही कहने पाये थे कि बाबू रामचन्द्र बोल उठे, "क्या आपको मालूम है कि कलकत्ते से आप कितनी दूर पच्छिम आगये?"

दि०-"मालूम क्यों नहीं कल सबेरे ही जब मैं कलकत्ते से चलने लगा घड़ी अच्छी तरह मिला ली थी। कल दिन भर और रात भर इसी डाकगाड़ीसे चला आ रहा हूं और आज दोपहरको बम्बई पहुंच जाऊंगा। मगर इससे क्या ? अभी कलकी बात है कि सूरज छ बजनेसे कुछ पहले कलकत्ते में निकल आया था, क्या एक ही दिनमें आध घंटेसे ज़्यादाका फ़र्क हो जायगा ?"

राम—आध घंटा तो कोई चीज़ नहीं है कई घंटोंका फ़र्क हो सकता है। अगर आप घंटेमें अस्सी नव्वे मील उड़ने वाले हवाई जहाज़पर सवार हो कर पच्छिमकी ओर दिन रात चलें तो आपकी घड़ीमें जब आठ साढ़े आठ बजेगा तब कहीं सूरज निकलेगा।

दिल्दार खां—ऐसा क्यों साहब ! मेरा लड़का जो आजकल कलकत्तेके एक स्कूलमें आठवें दर्जे में पढ़ता है कहा करता है कि १२ वीं मार्चको दिन रात बराबर होते हैं यानी बारह घंटोंका दिन और बारह घंटोंकी रात होती है। मगर आज मुझे मालूम हो रहा है कि एक दिन रातमें २४ घंटेकी जगह २५ घंटे बीत गये। कल सूरज छ बजे निकला था मगर आज पौने सात बज गये पर उसका कोई पता नहीं।

रामचन्द्र—लड़केका कहना ठीक है। अगर आप एक ही जगह रह कर सूरज निकलनेका वक्त देखें तो २४ घंटेके बाद ही दूसरे दिन सूरज निकलेगा और जब आप उस जगहसे सैकड़ों मील पच्छिम या पूरब जायंगे तब वह देरके बाद निकलता दिखाई देगा। अगर आप पच्छिम होंगे तो वह २४ घंटेसे पीछे निकलेगा और पूरब होंगे तो २४ घंटे से पहले ही दिखाई देगा।

दिल्दार खां—यह तो एक अजीब बात है। अभी तक तो मैं यह समझता था कि सूरज निकलनेसे पहले या उसके डूबते वक्त जब मुसलमान भाई नमाज़ पढ़ते हैं तो चाहे वे जहां हों सबकी नमाज़ एक ही वक्त होती है और सब ख़ुदाकी इबादत एक ही वक्त करते हैं। मगर आपके कहनेके मुताबिक इसमें बहुत फ़र्क हो जाता है। भला आप बतला सकते हैं कि जिस वक्त लोग मक्काशरीफ़ में नमाज़ पढ़ते हैं उसके कितना पहले हम लोग कलकत्ते में पढ़ते हैं ?

[Astronomy ज्योतिष]

रामचन्द्र – यह बतलाना मुश्किल नहीं मगर इसके लिए एशियाका नक़शा चाहिए। छोटे, ज़रा अपना अटलस तो निकालो और देखो कि कलकत्ते और मक्केके देशान्तरमें (Longitude) क्या फ़र्क़ है।

छोटे कलकत्तेका देशान्तर ८८° पूरब और मक्केका ४०° पूरब है।

रामचन्द्र—हां साहब, कलकत्तेमें सूरज जिस वक़् निकलता है उसके सवा तीन घंटे बाद मक्केमें दिखाई पड़ेगा। इसलिए मक्का वाले जिस वक़् नमाज़ पढ़ते हैं उससे पौने दो घंटे पहिले ही आप लोग पढ़ चुकते हैं।

दिल्दारख़ां—क्या आप मिहरबानी करके इसकी वजह भी बतला सकते हैं ?

रामचंद्र—क्यों नहीं, यह तो हमारा काम ही है। पहले मैं आपको एक मिसाल देना चाहता हूं। आप गाड़ीके एक किनारे मेरी तरफ़ मुंह करके बैठ जाइए और छोटे दूसरे किनारे। देखिए इस लोटे पर मैं एक निशान करके इसको धीरे धीरे घुमाता हूं। ध्यान रखिए जैसे ही आप इसको देखें हां कर दें। छोटे, जिस वक्त तुम देखो तुम भी तुरंत ही हां कर देना।

दिल्दारख़ां—हां।

छोटे – हां।

रामचंद्र—बतलाइए छोटे ने आपसे कितनी देर पीछे हां किया ?

दिल्दारख़ां—जनाब ठीक ठीक वक़् तो नहीं बतला सकता, इतना कह सकता हू कि हम लोगों ने इस निशानको एक ही साथ नहीं देखा।

रामचंद्र—अब मैं इस निशानसे कुछ दूर दूसरा निशान भी बनाता हूं। आप थोड़ी ही दूरीपर बैठ जाइए। मैं इस लोटेको फिर घुमाता हूं। पहले की तरह जब जब निशान सामने आवें तुरंत ही हां कर दीजिए।

दिलदारख़ां—हां...... हां।

रामचंद्र—बतलाइए एक ही साथ दोनों निशान क्यों नहीं दिखलाई पड़े ?

दिलदारख़ां—एक ही साथ कैसे दिखाई पड़ सकते हैं ? जब वे सामने आवेंगे तभी दिखाई पड़ेंगे। यह ज़ाहिर है कि एक ही साथ दोनों निशान सामने नहीं आ सकते क्योंकि वे एक दूसरे से कुछ दूरी पर हैं। लोटेको आप कितनी ही तेज़ी से घुमाइए यह मुमकिन नहीं कि दोनों एक 'साथ' सामने आवें। यह और बात है कि लोटेके बहुत तेज़ घूमनेकी वजहसे हमें फ़र्क़का पता न चले।

रामचंद्र—आप थोड़ी देरकेलिए मान लीजिए कि ये निशान जानदार हैं और इनके आंखें हैं तो आपको पहले कौन देख सकेगा।

दिलदार—जो पहले सामने आवेगा वही पहले देखेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि दोनों एक 'साथ' ही देख सकें।

रामचन्द्र—बस काम हो गया। यह तो आप जानते ही होंगे कि ज़मीन अपनी धुरी पर २४ घंटे में एक बार इसी लोटेकी तरह घूम जाती है; और अगर नहीं जानते तो थोड़ी देरके लिए मान लीजिए क्योंकि इसके समझानेमें कुछ वक़् लगेगा जिससे मुमकिन है कि जो बात छिड़ी है वह पूरी न हो पावे। हां एक बात ख़ूब याद आयी। लोटे से अच्छी मिसाल तो बैसिकिलका पहिया है। इसके पहियेमें २४ कड़ियां हैं जो धुरीसे रबरटायर तक लगी हुई हैं। हर दो कड़ियोंके बीचके कोन बराबर हैं इसलिए अगर यह पहिया एक ही चाल से २४ घंटेमें एक चक्कर लगावे तो आपके सामने एक एक घंटे पर एक एक कड़ी आवेगी। अगर आपको सूरज मान लिया जाय, इस पहियेको ज़मीनका एक पेटी (Belt) माना जाय, इस कड़ीके सामने कलकत्ता और दो कड़ी छोड़ कर चौथीके सामने मक्का लगी तो यह ज़ाहिर है कि जिस वक़् कलकत्ता सूरजके सामने आवेगा यानी जिस वक्त कलकत्तेमें सूरज निकलेगा उसके तीन घंटे बाद मक्कामें। कलकत्तेसे जिस ओर मक्का है उस ओर

नहीं बल्कि दूसरी ओरकी कड़ी मंडाले हो तो मंडालेमें सूरज कलकत्तेसे भी पहले निकलेगा।

दिल्दारखां—इससे तो वक्त मालूम करनेमें बड़ा धोका हो सकता है। अगर मेरी घड़ी कलकत्ते के वक्तसे मिली हुई हो और मैं उसे ले कर मक्के चला जाऊं तो जब इसमें दो बजेंगे तो मक्का वाले दोपहरकी नमाज़का वक्त समझेंगे।

रामचंद्र—इस धोकेसे तो कोई हर्ज नहीं हो सकता क्योंकि मक्केमें आप नमाज़ तभी पढ़ेंगे जब मक्के वाले पढ़ेंगे। मगर ऐसी मिसालें सैकड़ों हैं जिनसे मालूम होता है कि वक्तके इस हेर फेरसे क्या क्या हानियां हो सकती हैं। पहले पहल रेल चली थी लोगोंका ख़्याल था कि जो वक्त रेलकी घड़ीमें होगा वही सब जगह होगा। इसी विचारसे जब अपनी घड़ीमें रेलके आनेका वक्त देखकर चलते तो स्टेशनपर पहुंचकर सुनतेकि गाड़ी तो छूट गयी। अब वे लाख कोशिश करें अदालत नहीं पहुंच सकते जहां उनके लाखोंका वारा न्यारा है। ऐसी घटनाएं अमेरिका या कनाडा में बहुत हुईं क्योंकि अमेरिकाके पूरब और पच्छिमके किसी शहरमें इतनी दूरी है कि जिस वक्त पूरबके शहर में सुबह होती है पच्छिमवाले शहरमें आधीरात होनेसे, लोग ख़र्राटे लेते रहते हैं।

दिल्दारखां—क्या अब ऐसा धोका नहीं होता?

रामचन्द्र–धोकेसे ही तो आदमी सीखता है। अब लोग अपनी घड़ीको स्टेशनकी घड़ीसे मिलाये रखते है जिसका वक्त सब स्टेशनों पर एक ही रहता है। स्टेशनकी घड़ियोंका वक्त ऐसा रक्खा जाता है जो बहुतसी जगहोंके लिए एक ही होता है। ऐसे वक्तको 'मध्यमकाल' (Standard-Time) कहते हैं। सारे हिन्दुस्तानका मध्यम-काल एक रखा गया है जो किसी जगहके स्पष्ट समयसे (Local Time) घंटे सवा घंटे आगे पीछे होता है। हिन्दुस्तानका मध्यमकाल वही है जो मिरज़ापुरके आसपासका स्पष्ट समय है क्योंकि मिरज़ापुर ऐसी जगह है जहांसे हिन्दुस्तान के सबसे पूरबके शहर रंगून और सबसे पच्छिम वाला कराँची क़रीब क़रीब बराबर दूरी पर है। इसके सिवा मिरज़ापुरका मध्यमकाल ग्रीनिच के मध्यमकालसे साढे पांच घंटा आगे बढ़ा रहता है।

दिल्दारखां—ग्रीनिच कहां है और इससे मिरज़ापुरका क्या सम्बन्ध है?

रामचन्द्र—यहतो आपने सुना होगा कि मल्का विक्टोरियाका राज्य सारे संसारमें फैला हुआ है जिससे उसके राज्यमें सूरज नहीं डूबता। इसका क्या मतलब? यही न, कि इंगलैण्डके निवासी अपने उद्योगसे सारे संसारमें फैले हुए हैं और फिर भी एक सूतमें बंधे हुए हैं। राज्यके इतने बड़े होनेसे दूर दूरके शहरोंके स्पष्ट कालमें बारह बारह घंटोंका फ़र्क़ हो जाता है। इसी धोकेसे बचनेके लिए सबका मध्यमकाल ग्रीनिचका स्पष्ट काल माना जाता है। यह इंगलैंडके उस शहरका नाम है जहां पुराने वक्तसे एक बहुत बड़ी वेध-शाला (Observatory) है जिसमें सूरज चांद, सितारे वग़ैरह की चालसे समयका मिलान किया जाता है और उसी समयके अनुसार जहाज़ चलानेवाले अपनी घड़ी रखते हैं। यह भी दूरदूरके लोगोंको एक सूत्रमें बांधनेका एक बड़ा भारी तरीक़ा है। पुराने ज़मानेमें जब उज्जैन सारे हिन्दुस्तानका प्रधान नगर था वहींके वेधालयका मिलाया हुआ समय मध्यमकाल समझा जाता था और पंचांगोंमें सूरज, चांद और ग्रहोंके स्थान वही दिये जाते थे जो उज्जैनमें किसी ख़ास वक्त होते थे। आजकल तो हिन्दुस्तानमें जहां और बातोंमें भेद भाव है यहां इसमें भी। जितने आदमी उतने मत। अंग्रेज़ोंको देखिए कि वे चाहे जहां रहें उनका मध्यम-काल ग्रीनिचका समय समझा जाता है। दुनिया के नक़शेमें ग्रीनिचका स्थान भी मध्यमें रखा जाता है। इनके यहां जो जन्त्री बनती है वह ग्रीनि-चके समयके मुताबिक़ है और उसीको सब लोग मानते हैं। हमारे यहां तो इसमें भी लबड़धोंधों है।

काशीके पंडितोंमें ही मतभेद है। काशीसे कई पंचांग छपते हैं मगर सबमें एक दूसरेसे कुछ न कुछ फ़र्क़ रहता है। फिर नदिया, पटना, जयपुर, बम्बईके पंचांगोंकी बात ही न्यारी है। यह नहीं होता कि सब मिलकर एक नियम करलें और पंचांगोंमें अपने अपने स्पष्ट कालोंको छोड़कर एक मध्यमकाल काममें लावें।

बा० रामचन्द्र जब इतना कह चुके तब एक पंडितजी जो इन दोनोंकी बातें बड़े ध्यानसे सुन रहे थे बोल उठे "क्यों भैया बम्बई, काशी और कलकत्तेके पंचांग एक कैसे हो सकते हैं? हमारे यहां तो हर एक पर्वके लिए और हर एक उत्सव अथवा संस्कारके लिए तिथियां नियत हैं जो चन्द्रमा और ग्रहोंकी गतिके कारण प्रत्येक स्थानके लिए भिन्न भिन्न मान की होती हैं इसीलिए भिन्न भिन्न पंचांगोंकी आवश्यकता होती है।

रामचन्द्र—बात तो आप बहुत ठीक कहते हैं किन्तु क्या आपने इस पर भी विचार किया है कि कलकत्ते और बम्बईकी गणनाओंमें क्या अन्तर पड़ सकता है और क्यों यह अन्तर इतना बड़ा है कि पर्व और संस्कारोंके समयमें उलट पलट हो जाय। भारतवर्षके एक छोर से दूसरे छोरकी इतनी दूरी है कि सूर्योदयके समयमें डेढ़ घंटेका अन्तर हो सकता है परन्तु यदि मध्यमकाल काशीका रखा जाय जो केन्द्रमें है तो केवल पौन घंटे का अन्तर हो सकता है। सूर्योदयका अन्तर कुछ विघ्न नहीं डाल सकता क्योंकि बहुतसे धार्मिक कृत्य प्रत्येक स्थानके स्पष्टकालसे अब भी होते हैं। रही तिथि, नक्षत्र इत्यादिकी बात सो उसमें बहुत कम अन्तर होता है। आप जानते हैं कि दिन रातमें चन्द्रमाकी मध्यमगति १३ अंशके लगभग होती है जो एक घंटेमें केवल तीस कलाके क़रीब हुई। क्या इस अन्तरसे कोई बड़ी हानि हो जायगी? सूक्ष्म गणनाके लिए ग्रहोंकी स्थिति अब भी निकालनी ही पड़ती है और तब भी निकालनी पड़ेगी जब सब पंचांगोंका मध्यमकाल एक रखा जाय इसलिए इसमें कोई विशेष अड़चन नहीं हो सकती।

दिल्दारखां—जनाब अब वक़्त बहुत क़रीब आगया है। मिहरबानी करके मेरी बात पूरी कर दीजिए।

रामचन्द्र—आप इतना तो समझ ही गये हैं कि मध्यमकाल और स्पष्टकालमें क्या फ़र्क़ है और रेलगाड़ीके लिए मध्यमकाल क्यों ठीक समझा जाता है। अब यह बतलाना रह गया है कि स्थानीय व्यवहारके लिए सब जगह ग्रीनिचका टैम मध्यम नहीं माना जाता। इसके लिए नियम बन गया है कि जो जगहें ग्रीनिचसे १५° पूर्व देशान्तर रेखाके बीचमें हैं जैसे जर्मनी, स्विज़रलैंड, फ्रान्स, अफ्रीकाके कुछ प्रान्त, उनका मध्यमकाल ग्रीनिचकालसे आध घंटा पहले समझा जाता है। १५° से ३०° पूरब देशान्तर रेखाओंके बीचका मध्यमकाल ग्रीनिचसे डेढ़ घंटा पहले समझा जाता है। इसी तरह और भी समझ लीजिए। ग्रीनिचसे पच्छिमके देशोंमें १५° पच्छिम देशान्तर रेखातक आध घंटा पीछे और १५° से ३०°तक डेढ़ घंटा पीछे मध्यमकाल माना जाता है।

उन्नतिका सिद्धान्त

[लेखक श्री शालिग्राम वर्मा, बी० एस० सी]

"जीवोंकी उत्पत्ति"

प्रष्ठवंशीय (Vertebrata) जीवोंमें सबसे पुराने अस्थि पिंजर मछलियोंके मिले हैं। मछलियां इस जातिके सब जीवों में अधिक समाकार होतीहैं। इनके बाद सर्पयोनिज जीवोंकी बारी है। तत्पश्चात पक्षी और स्तन पायी जीवोंका नम्बर आता है। अब यदि हम इन सब योनिजोंके आकार प्रकारकी भली भांति जांच करें तो हमें अवश्य ही इस सिद्धान्तकी सार्थकताका

प्रमाण मिल जायगा । परन्तु बहुतसे वैज्ञानिकोंका मत है कि (Paleozoic)प्राथमिक युगमें संभव है कि बहुतसे ऐसे जीव इस पृथ्वी पर जीवित रहे हों जिनकी अस्थियोंका उस समयके स्तरोंमें पता लगना दुष्कर है (क्योंकि उस युगके स्तर जल प्रवाहसे नहीं बने थे) इसलिये हम किसी विशेष युगके जीवोंका हाल न लिखकर स्तनपायी जीवोंके ही वर्णनसे अपने सिद्धान्तकी पुष्टि करेंगे।

स्तनपायी जीवोंमें सबसे नीची श्रेणीके जीव (Marsupials) द्विगर्भकोषी जन्तु हैं । इन्हीं जीवों को सबसे प्राचीन कहा जाता है क्योंकि पुरानीसे पुरानी स्तरोंमें जहां स्तनपायी जीवोंकी अस्थियों-का पता चला है वहां इन्हीं जीवोंके अतिरिक्त और किसीका भी नाम निशान मौजूद नहीं है। मनुष्य इस जातिके सब जीवोंमें श्रेष्ठ और नया है इसीलिये प्राचीन समयके स्तरोंमें इसका कहीं पता भी नहीं चलता है। अब इस बातके प्रमाणित करनेकी तो कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती कि मनुष्यके शारीरिक अवयवोंकी बनावटमें (Marsupials) द्विगर्भकोषी जन्तुकी अपेक्षा बहुत अधिक विभिन्नता प्रतीत होती है।

प्राथमिक युगके प्राणियों में सिर्फ़ मछलियां ही पाई गई हैं। आजकल सर्पयोनिज, पक्षी, स्तनपायी तथा अन्य जातियोंके प्राणियोंकी भी इसी वंशमें गणना है। इससे यदि यह नतीजा निकाला जाय कि प्राथमिक युगके प्राणी बहुत कम विभिन्न थे, तो विपक्षियों द्वारा यह कहा जा सकता है कि अगर उस युगके जल प्रवाह द्वारा बने हुये स्तरोंका पता लग सके तो उनमें और दूसरी जाति के जीवोंके अस्थि पिंजरों का भी मिल जाना संभव है। परन्तु इस वाद विवादमें न फंस कर हम एक अकाट्य प्रमाणकी सहायतासे अपने सिद्धान्तको स्पष्ट करते हैं। वह प्रमाण यह है कि प्राथमिक युग-के पृष्ठवंशीय समुद्री प्राणियोंमें केवल तरुणास्थि-विशिष्ट (Cartilaginous) मछलियां ही मुख्य थीं और आधुनिक समयके इस प्रकारके सामुद्रिक जीवोंमें अस्थिमय (Osseous) मछलियोंकी बहुतसी जातियां मिलती हैं। अतः स्पष्ट ही सिद्ध हो गया कि प्राचीन समयके जीव जन्तुओंकी अपेक्षा आधुनिक कालीन जन्तु ही अधिक विभिन्न हैं। इसी प्रकार इस प्रमाणका भी कोई प्रतिरोध नहीं हो सकता कि द्वितीय (Secondary) युगकी अपेक्षा तृतीय युगमें नाना प्रकारकी जातियोंके स्तनपायी जीवोंकी अस्थियां बहुतायतसे पायी जाती हैं। यदि इससे भी अधिक प्रत्यक्ष प्रमाणकी आवश्यकता हो हम इस विषयके एक अद्वितीय विद्वान Dr: Carpentr का मत इस विषयमें उद्धत किये देते हैं जिससे हमारे पक्षकी हर प्रकारसे पुष्टि होती है। आप लिखते हैं कि " लुप्तजन्तुशास्त्र (Palaentology) के साधारण सिद्धान्तोंसे इस विचारकी पुष्टि होती है कि किसी प्राणी विशेषके जीवन का जिस प्रकार विकाश हुआ है ठीक उन्हीं नियमोंके अनुसार इस भूमण्डल के प्राणिजीवन का विकाश होता हुआ दिखलाया जा सकता है'। हम अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें Professor Owen के विचार उद्धत कर सकते हैं। इनका यह निश्चय है कि अगर हम किसी एक प्रकारके प्राणीसमूह के मेम्बरों की एक दूसरेसे तुलना करें तो पता चलेगा कि पहले उनमें एक दूसरे के प्रति बहुत कम विभिन्नता होती थी और उनके मौलिक स्वभावों में बहुत समानता थी; परन्तु कुछ युगोंके बाद उसी समूहके प्राणियोंमें एक दूसरे कि प्रति बहुत विभिन्नता उपस्थित होगई। अमेरिकामें कुछ लुप्त जन्तुओंके अस्थि पिंजर प्राप्त होनेसे अब यह सिद्धान्त निश्चित हो चुका है कि साधारण योनिजों और जीवोंके ही रूपान्तर से मिश्रित और श्रेष्ठ जीवोंकी उत्पत्ति हुई है।

* Marsupials वह चतष्पद जीव हैं जिनके शरीर में अपूर्णांग उत्पन्न हुये बच्चेको पालने पोसने के लिये एक थैली होती है।

"शरीरकीबनावट"

यदि इन प्रमाणोंके रहते हुये भी कुछ लोगोंको इस बातके माननेमें सन्देह हो कि पृथ्वीके समस्त जीवधारियोंके विकासमें समानतासे विभिन्नता प्राप्त कर लेनेका ही प्रमाण मिलता है, तो भी इस बातके मान लेनेमें उन्हें कुछ भी उज्र न होगा कि संसार का सबसे श्रेष्ठ, अर्वाचीन, और शारीरिक संगठन तथा प्रत्येक अवयवकी बनावटमें बड़ी भारी विभिन्नता रखनेवाला जीव—मनुष्य—इस सिद्धान्तकी सत्यताका जीता जागता उदाहरण मौजूद है। जबसे पृथ्वीपर मनुष्यका प्रादुर्भाव हुआ है, इस जातिके सभ्य जीवों की मानुषिक योनिमें भी अधिक विभिन्नता होती गई है और नई २ जातियोंकी उत्पत्तिके कारण इस विभिन्नताकी मात्रा प्रतिदिन बढ़ती ही चली जा रही है। अपने इस कथनके प्रमाणमें यदि हम (Placental) स्तनपायी जीवोंके अवयवोंकी तुलनात्मक वृद्धि पर विचार करें तो हमें पता लग जायगा कि असभ्य जातियों की अपेक्षा सभ्य मनुष्यका शारीरिक संगठन अधिक विभिन्न है। उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया प्रदीपके आदिम निवासियोंको ही लीजिये! इनके शरीरके अन्य भाग हम लोगोंके ही शरीरके भागोंकी तरह हैं; परन्तु इनकी टांगे हम लोगोंकी अपेक्षा बहुत छोटी हैं। इनकी टांगोंकी छुटाई देखकर चिम्पानज़ी और गौरिला नामक बनमानसोंकी टांगोंसे सादृश्य मालूम होने लगता है।

इन मनुष्योंका टांगों और हांथोंमें बहुत कम अन्तर देख पड़ता है परन्तु हम लोगोंके हाथ और पैरोंमें बड़ा भारी फ़र्क़ है। हम लोगोंकी टांगे अधिक लंबीं और भारी हो गई हैं। इसी तरह पर चहरे और सिरकी हड्डियोंकी बनावटमें भी बड़ा भारी अन्तर मौजूद है। पृष्ठवंशयोनिओंकी रीढ़ और खोपड़ीकी हड्डियोंकी बनावटकी साधारणता और जटिलतासे इन योनिओंकी निकृष्टता और श्रेष्टताका पता लगता है। इससे प्रमाणित हुआ कि श्रेष्ठ प्राणियोंके शिरकी अस्थियां बहुत बड़ी और जटिल होती हैं तथा इनके जाबड़े बहुत छोटे होते हैं। उपरोक्त गुणोंकी मात्रा इन जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें ही अधिक पाई जाती है और मनुष्योंमें भी असभ्य जातियोंकी अपेक्षा सभ्य जातियों में इसकी वृद्धि होगई है।

इसी तरहपर सभ्य मनुष्यकी मानसिक शक्तियोंके बाहुल्य पर विचार करनेसे पता लगता है कि असभ्य जातियों की अपेक्षा इनके स्नायुचक्रों में बहुत बड़ी जटिलता और विभिन्नता है। इसी बातका एक और उदाहरण यहहै कि दिमाग़ और उसके निकटवर्ती स्नायुगुच्छमें जो भेद है तथा इनके मुड़ाव में जो विभिन्नता दिखलाई पड़ती है वह भी सभ्य जातियोंकी इसीशारीरिक विभिन्नताकी द्योतक हैं। यदि इससे भी अधिक स्पष्टीकरनकी आवश्यकता समझी जावे तो हम अपने पाठकोंका ध्यान उनके बच्चोंकी शारीरिक बनावटकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। सभ्य जातियोंके बच्चोंमें भी असभ्य जातियोंके शारीरिक संगठनसे समानताके बहुतसे चिन्ह मौजूद होते हैं! उदाहरणार्थ नाकके पांसेका चपटापन तथा नासावंश (nose-bridge) का दबा होना, नथनोंका फूला हुआ और ऊपरको उठा होना, होठोंका मोटा होना और नीचेके ओठ का बड़ा होना, सामनेकी (Sinus) नाड़ीका न होना, आंखोंके बीचकी चौड़ाईमें बाहुल्य और पैरोंका छोटा होना, इत्यादि २ बातें हमारे उपरोक्त कथनका समर्थन करती हैं। शरीर-संस्थापन-शास्त्रवेत्ताओंका मत है कि (Embryo) अण्डजके विकाश होनेमें विभिन्नताही एक मात्र कारण है। इन बच्चोंके इन अंग प्रत्यंगोंमें बड़े हो जाने पर इतना बड़ा रूपान्तर हो जाना ही इस बात को प्रमाणित करता है कि इसी क्रमानुसार असभ्य जातियोंसे सभ्य जातियोंकी उत्पति हुई है। आदिम प्राणीसे विकसित होकर इस अवस्था

तक पहुंचनेमें समय २ पर जो भेदोपभेद उपस्थित होकर मनुष्यका प्रादुर्भाव हुआ है, ९ महीने पेट में रहकर भ्रूण उन सब भेदोपभेदों में होता हुआ अन्त में शिशु बन पाता है। इसी प्रकार जङ्गली मनुष्योंकी श्रेणीसे सभ्यावस्थाके प्राप्त करनेमें मनुष्यको जितनी अवस्थाओंमें होकर गुज़रना पड़ता है, वे सब परिवर्तन नवजाति शिशुमें एक सालके भीतर हो जाते हैं। जन्मके समय शिशुकी शकल जङ्गली मनुष्योंसे बहुत कुछ मिलती जुलती है; परन्तु धीरे २ इसमें बहुत अन्तर पड़ जाता है और अन्त में सभ्य मनुष्योंके मौलिक चिह्न उपस्थित हो जाते हैं। इस उदाहरण से भी यही पाया जाता है कि समानता से विभिन्नताकी ओर विकाश होता है।

नृशंसविद्यासे पता चलता है कि मनुष्य जाति के केवल शारीरिक संगठन और अवयवोंमें ही यह विभिन्नता नहीं पाई जाती, परन्तु इस अन्तर के चिन्ह सारी जातिके पारस्परिक भेदोपभेदोंमें भी विद्यमान हैं। अगर हम यह भी मानलें कि मनुष्य जाति कई जुदे २ मूलवंशोंसे उत्पन्न हुई है तो भी हमें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इनसे जो जुदी २ जातियां उत्पन्न हुई हैं वे भी अब अपने पूर्वजोंसे बहुत कुछ विभिन्न हैं। हमारे इस कथनका तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी मौजूद है। अमेरिकन और आस्ट्रेलियन जातियां जो भिन्न २ जातियोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुई हैं यथार्थ ही दोनों पुरानी जातियोंसे बहुत कुछ विभिन्न हैं! इन दो जातियोंका इस प्रकार से भिन्न होना ही हमारे उन्नतिके सिद्धान्तको पुष्ट करता है।

अणु विश्लेषण वाद

[ले० श्री० शालिग्राम वर्म्मा बी. एस. सी.]

(गतांक से सम्मिलित)

हम लिख चुके हैं कि जब किसी पदार्थके घोलमें बाटरीके दोनों तार जोड़कर विद्युत प्रवाह किया जाता है तो क्लाज़ियसके मतानुसार उस पदार्थके परमाणुओंका विश्लेषण होकर वे धन और ऋण विद्युतपूर्ण अणुओंमें विभाजित हो जाते हैं। इस विश्लेषणकेलिये विद्युत धाराकी कोई आवश्यकता नहीं होती। यह तो घोलक और घुलनशील पदार्थोंका स्वाभाविक गुण माना गया है। परन्तु जैसा हम बतला चुके हैं यह गुण घोलक और घुलनशील पदार्थमें मौजूद नहीं है—उनके घोलमें ही यह गुण विद्यमान है। अब यदि हम इस विचारको मान लें तो इस वैद्युतिक विश्लेषणमें विद्युत-प्रवाह-शक्ति (Electromotive Force) की कोई ज़रूरत नहीं मालूम पड़ती। तो क्या इस विश्लेषणके लिये विद्युत-प्रवाहक-शक्तिकी कोई आवश्यकता नहीं है? क्या इस शक्तिके बिना विश्लेषण होना संभव है? इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये क्लाज़ियसने यह विचार प्रगट किये कि जब किसी घोलके परमाणुओंका विश्लेषण होकर वे धन और ऋण अणुओंमें विभाजित हो जाते हैं तो विद्युत-प्रवाहक-शक्ति इन्हीं अणुओं पर काम करती है! हम पहले ही लिख चुके हैं कि यह अणु बड़ी तेज़ीसे अनिश्चित और अनियमित मार्गोंमें भ्रमण करते रहते हैं। विद्युत-प्रवाहक शक्ति इनके भ्रमण पथमें ज़रा सा फेर डाल देती है। इस शक्तिके कारण धन अणु ऋण ध्रुवकी तरफ़ बिल्कुल न जाकर सिर्फ़ धन ध्रुवकी तरफ़ मुड़ जाते हैं और उसी ओर चलने लगते हैं। इसी तरह ऋण अणु धन ध्रुवकी तरफ़ न जाकर ऋण ध्रुवकी ओर चल पड़ते हैं। अस्तु क्लाज़ियसके मतानुसार विद्युत-प्रवाहक-शक्ति पर-

[Physical Chemistry भौतिक रसायन]

माणुओंको तोड़कर अणु रूपमें परिणत नहीं करती है वरन् घोलमें उन्हें पहिले ही से टूटा हुआ पाकर उन्हें एक नियमित दिशाकी ओर चलनेको बाध्य करती है। हर पदार्थके घोलमें थोड़ेसे परमाणु अवश्य ही विश्लिष्ट अवस्थामें मौजूद होते हैं। बाटरी जोड़ते ही विद्युत-प्रवाहक-शक्ति इन टूटे हुये विश्लिष्ट अणुओंको धन और ऋण ध्रुवोंकी तरफ़ जानेको बाध्यकर देती है। धन ध्रुवका निकटवर्त्ती धन अणु ध्रुवपर पहुंचकर अपना विद्युतभार निस्सरणकर साधारण परमाणुके रूपमें ध्रुव पर मौजूद हो जाता है। जैसे २ यह अणु मौलिकोंके साधारण परमाणु बनकर गैसके रूपमें उपस्थित होते जाते हैं, घोलके परमाणुओंमें विश्लेषण होता रहता है। तात्पर्य्य यह है कि जैसे ही एक परमाणु अणु रूपमें विश्लिष्ट होकर निकल जाता है, उसके स्थानमें तुरन्त दूसरे परमाणुका आणुविक विश्लेषण होकर विश्लिष्ट अणुओंकी मात्रा सदा एक ही बनी रहती है। यह मौक़ा कभी नहीं आने पाता कि घोलमें विश्लिष्ट होनेवाले परमाणुओंके मौजूद रहते हुये विश्लेषण क्रिया बन्द हो जाय। सारांश यह है कि क्लाज़ियसके मतानुसार वैद्युतिक संचालन (conduction) और विश्लेषण दोनों क्रियायें साथ २ जारी रहती हैं।

उपरोक्त विचारोंके अनुसार हम विश्लेषण क्रियाकी कल्पनाकर अणुवाद द्वारा पदार्थोंके संगठनका एक नया चित्र खींचकर, एक रासायनिक क्रियाकी वैज्ञानिक, परन्तु कल्पनातीत व्याख्याकर सकते हैं। परंतु इस व्याख्याको वैज्ञानिक प्रमाणित करनेकेलिये यह परमावश्यक है कि हम विश्लिष्ट तथा अविश्लिष्ट अवस्थाओंमें विघटनशील पदार्थोंका सापेक्ष परिमाण भी जान सकें। (Arrhenius) आरहीनियस महाशयने इस कल्पनाको परिमाणस्वरूप प्रदानकर आज दिन अणु-विश्लेषण-वादको एक अतिशय रोचक काल्पनिक वादकी श्रेणीसे निकालकर उसे दृढ़ वैज्ञानिक सिद्धांत प्रमाणित करनेकी चेष्टाकी है। इन महाशयके विचारानुकूल जिन पदार्थोंका घोल प्रचुर विद्युत-प्रवाहक होता है उनका पूर्णरूपसे आणुविक विश्लेषण हो जाता है परन्तु जिन घोलोंकी परिचालन क्षमता (Conductivity) कम होती है उनका विश्लेषण भी पूरी तरहपर नहीं होता, अथवा यों कहा जा सकता है कि घोलोंकी परिचालन क्षमता ही उनके विश्लेषणके परिमाणकी द्योतक होती है। परिचालनक्षमताकी कमी या ज़्यादती ही विश्लेषणकी कमी और ज़्यादतीका पैमाना है। या यों भी कहा जा सकता है कि विश्लिष्ट परमाणुओं द्वारा ही हर पदार्थके घोलमें विद्युत परिचालन होता है। अविश्लिष्ट परमाणु इस काममें कुछ भी सहायता नहीं देते हम पहले बतला चुके हैं कि अम्ल क्षार और लवणोंके घोल प्रचुर विद्युत प्रवाहक होते हैं, परन्तु हर अम्ल और क्षारकी परिचालन क्षमता जुदी २ है। इससे ज़ाहिर होता है कि हर अम्ल तथा क्षारके घोलमें विश्लेषणकी मात्रा समान नहीं है अथवा विश्लिष्ट अणुओंकी संख्यामें अन्तर है। अम्ल और क्षारोंकी सापेक्ष प्रबलताका यही एक कारण है।

इस विवेचनासे स्पष्ट है कि हर घोलकी परिचालनक्षमता दो बातोंपर निर्भर है एक तो घोलमें विश्लिष्ट अणुओंकी संख्या और दूसरी इन अणुओंकी गति। यह दोनों बातें प्रयोगों द्वारा नापी जा सकती हैं (Kohlrausch) कुलहरोश ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणितकर दिया है कि जैसे २ किसी लवणके घोलका तनूकरण (Dilution) बढ़ता जाता है उसकी परिचालनक्षमता भी बढ़ती जाती है परन्तु इस परिचालनक्षमता की वृद्धिगतिमें कमी होती जाती है। अगर हम एक ग्राम नमक (सोडियम हरिद) को १०० ग्राम पानीमें घोलकर उसकी परिचालनक्षमता नापें; फिर एक २ ग्राम नमकको १००० ग्राम, दस हज़ार ग्राम, बीस हज़ार ग्राम इत्यादि पानीमें घोलकर उसकी परिचालनक्षमता नापें, तो हमें पता चलेगा कि

उसकी मात्रा बराबर बढ़ती जा रही है। परन्तु १०० ग्राम पानीके घोलसे १००० ग्राम पानीके घोलमें जितनी परिचालनक्षमता बढ़ जाती है, १००० ग्राम पानीके घोलसे १०००० ग्राम पानीके घोलमें उतनी ही वृद्धि नहीं होती। अगर पहिली अवस्थामें परिचालन क्षमता ४० से बढ़कर ६० हो जाती है तो दूसरी अवस्था में वह ६० से ७० तक ही बढ़ेगी। परिचालनक्षमताकी यह वृद्धि गति इस प्रकार घटते २ अन्तमें यह परिचालनक्षमता स्थाई हो जाती है। इस अवस्थापर तनूकरण कितनाही बढ़ायाजाय परन्तु परिचालनक्षमतामें कोई भेद नहीं आने पाता।

अगर एक परमाणुभार यानी ५८·५ ग्राम नमक (सोडियम हरिद) को १ लिटर अथवा १००० घनशतांशमीटर पानीमें घोलकर एक कांचके बरतनमें रखा जावे और उसमें प्लाटीनम-के पत्र लटकाकर इनमें विद्युत पात्रके तार जोड़ दियेजावें, तो इस घोलमें विद्युत प्रवाहकेलिये जो बाधा पड़ेगी उसका नाप ओह्ममें कर लेते हैं। बाधाकी इस संख्याका व्यतिक्रम उस घोलकी परिमाणुविक परिचालनक्षमता (Molecular-Conductivity) कहलाती है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि तनूकरण बढ़ानेसे यह परिचालन-क्षमता भी बढ़ती जाती है और अन्तमें स्थिर हो जाती है। हम यह भी बतला चुके हैं कि परमाणु-विक परिचालनक्षमता विश्लिष्ट अणुओंको संख्या तथा उनकी गतिपर निर्भर है। अस्तु हम यह जानना चाहते हैं कि इन दोनोंमेंसे कौनसा कारण तनूकरण बढ़नेके साथ २ परिचालनक्षमता को बढ़ाता है। यह बात तो साधारण रीतिसे समझमें आ सकती है कि जिस घोलकी बाधा अधिक होगी उसमें मौजूद रहनेवाले अणुओंकी गति कम होगी तथा कम बाधा वाले घोलोंमें अणुओंकी गति तेज़ होगी। जैसे अगर कोई आदमी सीधी सड़कपर भागता हुआ एक मील तै करे तो उसकी गति उस आदमीसे अवश्य ही तेज़ होगी जिसे मील भर दौड़नेमें कई जगह चढ़ना उतरना पड़ता है। आरहीनियसका विचार है कि पानीकी मात्रा बढ़ाते जानेसे अणुओंकी गतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि घोलकी (Viscosity) स्निग्धता-में कोई फ़र्क नहीं आता और इस अवस्थामें विद्युत प्रवाहकी बाधा बढ़ती है। इससे ज़ाहिर होता है कि परिचालनक्षमता अणुओंकी संख्या पर निर्भर है। ऊपर जिस पात्रमें नमकका घोल रखकर परिचालनक्षमता नापी गई है अगर उसी घोलका तनूकरण बढ़ाकर जुदी २ अव-स्थाओंमें परिचालनक्षमता नापी जाय तो मालूम होगा कि यह बराबर बढ़ती ही जाती है। पात्रमें नमकका परिमाण तो उतना ही मौजूद है जितना पहलेथा। परन्तु पानीकामात्रा बढ़ानेसे अणुओंकी संख्या बढ़ती जाती है। अस्तु परिचालनक्षमता-के बढ़नेका यही कारण हो सकता है कि जैसे २ तनूकरण बढ़ता है नमकका विश्लेषण होकर विद्युतवाहक अणु बढ़ते जाते हैं और जब कुल नमकके परमाणु टूट २ कर अणु हो जाते हैं तो परिचालनक्षमता का बढ़ना बन्द हो जाता है। अब चाहे जितना पानी बढ़ाया जावे नमकके पर-माणु न रहनेके कारण आणुविक विश्लेषण न होगा और अणुओंकी संख्या न बढ़नेके कारण परि-चालनक्षमता स्थिर हो जायगी।

विश्लेषण क्रियाकी इस विवेचनासे जो विशेष परिणाम हमने स्थापित किये हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

(१) परिचालनशील पदार्थोंके घोल विद्युत-वाहक होते हैं। इस परिचालन क्रियामें घुलन-शील पदार्थोंके परमाणु धन और ऋण अणुओंमें टूटकर विभाजित हो जाते हैं। ऋण ध्रुवपर जितने ऋण अणु जमा होते हैं, धन ध्रुवपर जमा होनेवाले धन अणु उनके रासायनिक संयोगके समान अनुपातमें होते हैं। विश्लेषण होनेपर धन और ऋण अणु अपना विद्युत भार निस्सरणकर ध्रुवोंपर मौलिकोंके साधारण परमाणु जाते हैं।

(२) धन ध्रुवपर जो धन अणु निकलता है वह उसी परमाणुका भाग नहीं है जिसमेंसे ऋण अणु निकलकर ऋण ध्रुवपर जमा होता है।

(३) घोलक और घुलनशील पदार्थके संयोग से परिचालनशील माध्यम बन जाता है। घोलके उपादानोंमेंसे कोई भी स्वतंत्र रूपसे परिचालनशील नहीं है।

(४) किसी परिचालनशील घोलको इस अवस्थामें लानेकेलिये बहुत ही कम समय लगता है ध्रुवोंपर आवश्यक (Potential) अवस्था-भेद उत्पन्न होते ही विश्लेषण क्रिया उत्पन्न हो जाती है

समालोचना

१६७६ का सौर-पंचांग

ज्ञानमण्डल कार्यालय काशीद्वारा प्रकाशित दाम ।=)। काशीके छपेहुए कई प्रकारके पंचांग बाज़ारमें मिलते हैं। सौर-पंचांग उन सबमें श्रेष्ठ और सस्ता है। और पंचांगोंमें जितनी बातें रहती हैं वे सब तो इसमें दी ही गयी हैं साथही साथ कुछ बातें ऐसी हैं जो उनमें नहीं रहतीं। तिथि मान और नक्षत्रमान घड़ी पलोंमें न देकर घंटा मिनटोंमें दिया हुआ है जो अधिक व्यवहारोपयोगी है।

इस पंचांगमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक पृष्ठ पर बड़े बड़े अक्षरों और अंकोंमें वार और सौर-तिथियां दी गयी हैं। प्रत्येक सौर-तिथिके साथ साथ छोटे अंकोंमें चन्द्रतिथि तथा उसी पृष्ठ पर किसी एक खानेमें उस मासकी अंग्रेज़ी तिथियां दी हुई हैं। इस पृष्ठके सिरेपर मासभरकी लग्नसारिणी घंटा मिनटोंमें दी हुई है जिससे यह मालूम किया जा सकता है कि 'किस सौर तिथिको किस लग्नका कितने बजे अन्त होगा'। बीच बीचमें जहां जगह मिली है वहां ग्रहोंकी स्थिति तथा पर्वोंकी सूची भी दी गयी है।

यही एक पंचांग है जिसमें हिन्दी भाषाद्वारा यह समझाया गया है कि ग्रहोंका उदय अस्त कब होता है, अट्ठाईस नक्षत्र कौन कौन हैं, राशि कितनी हैं, योग कितने होते हैं, करण क्या है और उनकी गणना कैसेकी जाती है, संवत्सर कितने हैं, संकल्प क्या है, सूर्य चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहोंकी गतियां कितनी होती हैं, सप्तऋषिकी गति क्या है और भचक्रगतिका क्या तात्पर्य है, कल्प, मन्वन्तर और चतुर्युगी क्या हैं। हिन्दी संसारको ज्ञानमण्डल कार्यालयके इस उद्योगकेलिए कृतज्ञ होना चाहिए और उनका उत्साह बढ़ाना चाहिये।

१६७६ का सौर रोज़नामचा

ज्ञानमण्डल कार्यालयसे प्रकाशित दाम ।।)

यह डायरी भी अनोखी है। प्रत्येक पृष्ठपर सौर-तिथिके साथ साथ चन्द्रतिथि और अंग्रेज़ीतिथि दी गयी हैं जिनसे किसी भी मनुष्यको सौरतिथियोंके नयेपनके कारण कठिनाई नहीं हो सकती। हर पृष्ठकेनीचे अच्छे अच्छे कवियोंके दोहोंका पूर्वार्द्ध तथा दूसरे पृष्ठपर उत्तरार्द्ध दिया है। यदि ये सब दोहे इकट्ठे किये जांय तो दो, सवा दो सौके लगभग नीति और उपदेशके दोहोंका संग्रह हो जाय। आरम्भमें रेल सम्बन्धी बातें, डाक और तारके नियम, प्रेसके लिए तारके नियम, अदालतका रसूम, भारतवर्षमें विविध भाषाओंके बोलनेवालोंकी संख्या, हिन्दीके सामयिक पत्रों और राष्ट्रीय संस्थाओंके नाम दिये गये हैं। इसके बाद सारिणीमें प्रत्येक मासके वार, चन्द्रतिथि, सौरतिथि, फ़सली, हिजरी, ईस्वीकी तारीखें और प्रति दिनके सूर्योदय और सूर्यास्तका समय दिया गया है। नीचे हिन्दू, मुसलमानी और ईसाई पर्वोंके नाम भी दिये गये हैं। इसके बाद भारतके राजनैतिक नेताओंकी तथा सुकवियोंकी जयन्तियां, पर्वसूची, व्याज फैलानेका नक़शा, एक दिनके वेतनका नक़शा,

दिये गये हैं। इस सूचीसे मालूम हो गया होगा कि व्यवहारोपयोगी कितनी बातें आगयी हैं। भारतके राजनैतिक नेताओं तथा सुकवियोंकी संख्या बहुत कम दिखलायी गयी है। अगले साल यह कमी पूरी कर देनी चाहिए। जन्मतिथिके साथ यदि जन्मसम्वत भी दिया जावे तो मेरी समझमें अधिक अच्छा हो। भारतवर्षके कमसे कम सौ दो सौ वर्ष इधरके समाज-सुधारकोंकी जन्मतिथि और सम्वत भी देनेकी आवश्यकता है।

भूकंप

गंगा-पुस्तकमालाका चौथा पुष्प, लेखक श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा; प्रकाशक गंगापुस्तकमाला कार्यालय, ३६ लाटूशरोड लखनऊ, पृष्ठसंख्या १६८। सजिल्दका दाम ।।=) और सादीका ।=) कुछ अधिक है। साईज़ छोटा और छपाई उत्तम है। ग्रन्थकारके ही शब्दोंमें "भूकंप क्या है? वह क्यों और कैसे आता है? जल और स्थल आदि पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है" आदि प्रश्नोंके उत्तर बड़ीही रोचक और सरल भाषामें दिये गये हैं। इसके पढ़नेसे साधारण पढ़े लिखे आदमी भी भूकंपके बारेमें बहुत कुछ जान सकते हैं। यह दिखलाया गया है कि भूकंपसे जल स्थलके दृश्यों, मनुष्य, पशु, पक्षियोंके स्वभाव तथा बहुतसी भौतिक शक्तियोंमें क्या परिवर्तन हो जाते हैं। विज्ञान-वेत्ताओंकी भूकंप सम्बन्धी जितनी कल्पनाएं है सबपर थोड़ा बहुत विचार किया गया है। कहीं कहीं भाषा विचारणीय है-सैंतीसवें पृष्ठकी तीसरी पंक्तिमें 'विद्युतका निर्देश प्रभाव चुम्बककी सूईकी दिशा पलट देता है' समझमें नहीं आया। ११६ वें पृष्ठमें तीसरी पंक्तिमें लिखा हुआ है "भूकंपके समय एक प्रकारकी हाइड्रोजन गैस इतनी अधिक निकली थी कि उसके कारण एक जहाज़ बिलकुल काला हो गया।" यहां हाइड्रोजनकी जगह हाइड्रोजन सल्फ़ाइड या उज्जन गन्धिद होना चाहिए। इन दो एक भूलोंसे पुस्तककी उपयोगितामें बाधा नहीं पड़ सकती। यदि यह पुस्तक स्कूलोंमें पारितोषिकके लिए रखी जाय तो लाभके सिवा हानि नहीं हो सकती। इससे बालकोंको ज्वालामुखी और भूकंप संबंधी स्पष्ट ज्ञान हो सकता है और उनकी कल्पनाशक्ति भी जागृत हो सकती है।

सूर्यसिद्धान्त

हिन्दी अनुवाद तथा मूल ग्रंथ—अनुवादक और सम्पादक पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी-प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यालय, प्रयाग । पृष्ठ संख्या ३+१६+४६+१८३ आकार मंझोला मूल्य १) रु०।

४६ पृष्ठोंकी प्रस्तावनामें पंडितजीने सूर्य सिद्धान्त सम्बन्धी बहुतसे प्रश्नोंके उत्तर अच्छी तरह दिये हैं और सिद्ध किया है कि सूर्यसिद्धान्त के रचयितापर यूनानी या पच्छिमी ज्योतिषियोंका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

क्योंकि सूर्यसिद्धान्त सत्ययुगके अन्तमें २१ लाख वर्ष पहले प्रकट हुआ था और राम, नन्द जिन इत्यादि संख्यासूचक शब्द अनादि कालसे नहीं तो कमसे कम महाभारतके समयसे (५००० वर्ष पहलेसे) प्रयोग होते आये हैं। यहां पंडितजी यदि वैदिक ग्रन्थोंसे कुछ श्लोकोंको उद्धृत कर देते जिनमें ये संख्यासूचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं तो अच्छा होता। अपनी सुमति-प्रकाशिकाकी उन उक्तियोंको भी संक्षेपसे लिख देते जिनसे यह सिद्ध होता है कि पुराणोंके नवनन्द महानन्द वाले नव नन्द नहीं हैं तो ठीक होता। ज़रासी बातके लिए नये ग्रन्थका ख़रीदना कोई पसन्द नहीं करता है। एक जगह यह भी लिखा गया है कि सूर्यसिद्धान्तमें आकर्षण सिद्धान्तका स्पष्ट वर्णन है। जिन श्लोकोंके आधारपर यह कहा गया है उनसे हमें केवल यही मालूम हुआ है कि ग्रहोंकी गतिके कारण शीघ्रोच्च, मन्दोच्च, और पात हैं जो प्रवाह वायु रूपी रश्मियोंके द्वारा ग्रहोंको खींच लाते हैं। इन शब्दों और न्यूटनके आकर्षण सिद्धान्तमें आकाश पातालका अन्तर है। यदि न्यूटनका

आकर्षण सिद्धान्त पहले विदित होता तो प्रवह वायु द्वारा भचक्र परिभ्रमणके मानने की आवश्यकता ही न होती।

मूलसे अनुवाद करते समय अनुवादकको यह सदैव ध्यानमें रखना चाहिए कि मूलका भाषानुवाद ही करना उद्देश्य नहीं है वरन् जहां कहीं व्याख्या और टीका टिप्पणीकी ज़रूरत हो वह विशद रूपसे की जाय। वर्तमान अनुवादमें इस बातकी बड़ी कमी है। परिभाषाके जितने शब्द प्रथम दो अध्यायोंमें आये हैं उनकी कहीं भी व्याख्या नहीं है और न ही यह बतलाया गया है कि ये हैं क्या चीज़। मैंने कई बार सारी पुस्तक पढ़ी परन्तु कहीं भी शीघ्रोच्च, मन्दोच्च पात, लम्बज्या, अक्षज्या इत्यादिकी परिभाषा नहीं देखी। विद्यार्थी रटरटा कर चाहे सूर्यसिद्धान्तका ज्ञानी होजाय परन्तू इस अनुवाद से समझ कर कुछ मतलब नहीं निकाल सकता। दूसरी कमी यह है कि इस अनुवादमें आदिसे अन्त तक कोई भी बात उदाहरणों या चित्रों द्वारा नहीं समझायी गयी है। गणितका विषय स्वयम् गूढ़ होता है, जब उदाहरण या चित्र नाम मात्रको भी न रहें तो उसकी कठिनता कितनी बढ़ जाती है इसका अनुभव वही कर सकता है जिसको रेखागणित शब्दों द्वारा समझाया जाय और स्लेट बत्ती या कागज़ पेनिसलका प्रयोग न होने पावे।

प्रेसके भूतोंने तो प्रायः प्रत्येक पृष्ठपर भूलें की हैं जो कहीं कहीं ऐसी भयंकर हैं कि खांई का पहाड़ और पहाड़की खांई हो गयी हैं। पृष्ठ २४ में ५०२६ की जगह ५५०२६, पृष्ठ ४३ में २३५ की जगह २२५ और ३९ की जगह ४० तथा पृष्ठ १०६ में ८० की जगह ८ ऐसी भूलोंके उदाहरण हैं। फिर भी अशुद्धिपत्र नहीं दिया गया है।

भाषाभी कहीं कहीं संशोधनीय है। त्रिप्रश्नाधिकारके दूसरे श्लोकके 'छायाग्रं' का अनुवाद छायाकी नोक और 'स्पृशेत्' का 'छूए' होना चाहिए 'काटे' नहीं।

आशा है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन जबतक इसका दूसरा संस्करण नहीं निकालती तबतक भूलों और उनके संशोधनकी एक सूची छपवा कर पुस्तकमें चिपकवा देगी।

वैज्ञानिकीय

विमानोंमें मुसाफ़िर

यूरोपीय महाभारतमें विमानोंसे जो जो काम लिये गये हैं, उनमेंसे बहुतसे पाठकोंपर ज़ाहिर हैं। शत्रुकी सैना, छावनी, क़िले, बन्दरगाह इत्यादिकी देख रेख करना, उनके गुप्त भेद जानना, सेनाओंकी स्थिति तथा संगठनका पता लगा लेना, क़िलों, मोरचों, गोले बारूदकी फ़ैक्टिरयों, ज़हाज़ों, हवाई जहाज़ों, पनडुब्बी नावों इत्यादिके बनानेके कारख़ानोंको तहस नहस करनाही इनके मुख्य कर्तव्य रहे हैं। इसीलिये इन वायुयानोंका बनाना युद्धके चार ही बरसोंमें इतना बढ़ गया कि हर राष्ट्रके सैना विभागमें एक नये युगका श्रीगणेश होकर युद्ध करनेके पहिले ढंगोंमें घोर परिवर्तन हो गया। सभी बड़े राष्ट्रोंने सैकड़ों हवाई जहाज़ बना डाले। परन्तु युद्ध समाप्त होते ही सैनाके काममें जितने विमान पहिले लाये जाते थे अब उनकी ज़रूरत न रहेगी। इसीलिये अब इन विमानों द्वारा न सिर्फ़ डाक ले जाना ही निश्चय किया गया है बल्कि इनमें बैठकर यात्री भी एक देशसे दूसरे देशको बड़ी शीघ्रतासे जाया करेंगे। हालहीमें पाठकोंने, अटलांटिक महासागर पार करनेके लिये जो शर्तें की गई थीं तथा मिस्टर हौकर (Mr: Hawker) ने जिस अनुपम साहसका परिचय दिया था, इसका हाल समाचार पत्रोंमें पढ़ा होगा। अब इङ्गलेण्डसे आस्ट्रेलियातक उड़कर पहुंचनेका बाज़ी लगाई जा रही है। इन सब कार्रवाइयोंका नतीजा यह होगा कि अमेरिकासे इङ्गलेण्डतक हवाई रास्ता स्था-

पित हो जायगा। इससे मुसाफ़िरी विमानोंको बहुतसी सुविधायें हो जायंगी। कमाण्डर पोर्टे (Commander Porte) ने सं० १९७१ में ही अटलांटिक पार करनेका विचार किया था, परन्तु महायुद्ध प्रारंभ हो जानेके कारण उन्हें अपना इरादा स्थगित करना पड़ा। आजकल इस उड़ानके लिये दो ही राहें विशेष सुविधा और महत्वकी समझी जाती हैं। आयर्लैण्डसे न्यूफ़ाउण्डलैण्ड वाला हवाई रास्ता बहुत सीधा है परन्तु इसमें कई बड़ी बड़ी अड़चनें हैं। हां (Azores) अज़ोर्स द्वीप वाला रास्ता सुगम है। अमेरिका पहुंचकर न्यूफ़ाउण्डलैण्डके किनारे सकुशल उतरना बड़ी टेढ़ी खीर है क्योंकि यहां पर बड़ा घना कुहरा पड़ा करता है। अज़ोर्सके रास्ते होकर जानेमें (Trade winds) व्यापारानुकूल हवायें अनुकूल पड़ती हैं परन्तु इनसे भी ऊंचे पर पूरबकी तरफ़ बहनेवाली (Anti Trade winds) व्यापारप्रतिकूल हवायें लौटते समय अनुकूल होंगी या प्रतिकूल यह बिल्कुल संदिग्ध है। इससे आगे बढ़कर पछांई हवा तो मिलती है परन्तु इस रास्तेमें इतने तूफ़ान आते हैं कि इसे स्थापित करना बड़ा कठिन है। (Mr: Hawker) मिस्टर हौकरने अपने उड़ानका जो हाल बतलाया है तथा उन्होंने जो (meteorological observations) वायुमण्डल संबन्धी निरीक्षण नोट किये हैं, वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें वे बड़े महत्वके हैं। एटलांटिक महासागरकी इस प्राथमिक हवाई तथा (meteorological) वायुमंडल संबन्धी पैमाइशके कौतूहलोत्पादक परिणाम अभी सभ्य संसारको जानने बाक़ी हैं।

पृथ्वीके नीचे बेतारकी ख़बरें

बेतारकी तार ख़बर भेजना तो अब साधारणसी बात हो गई है। हालमें ही (Prof James R. Rogers) प्रोफ़ेसर जेम्स आर रोजर्सने पानीके अन्दर तथा पृथ्वीके भीतरभी बेतारकी ख़बरें भेजना प्रारंभ किया है। आपके आविष्कार द्वारा जलमग्न नौकाओं तथा खानोंके भीतर ही भीतर ख़बरें भेजी जा सकेंगी। संयुक्त-राज्य अमेरिकाके नौसेना विभागने आपके प्रयोगोंकी जांच कर अब इन्हें व्यवहारमें लाना शुरू कर दिया है।

मच्छड़ोंसे युद्ध

फ़िलिपाइन द्वीपमें मच्छड़ोंसे बचनेका एक नया उपाय निकाला गया है। वैज्ञानिकोंने इस बातका पता लगाया है कि चिमगादड़ मच्छड़ोंको खूब खाते हैं। इसलिये जिस जगह चिमगादड़ोंकी ज़ियादती होगी वहां मच्छड़ोंकी दाल गलना कठिन है। इसी विचारसे फ़िलिपाइन द्वीपके (Bureau of Science) विज्ञान परिषदने चिमगादड़ पालनेके विषयमें बहुतसी पुस्तकायें छपवा कर बांटना प्रारंभ किया है जिनमें जनतासे इस बातका अनुरोध किया गया है कि मलेरिया आदिक भयंकर रोगोंसे बचनेके लिये उन्हें चिमगादड़ोंके घोंसले बनानेमें देरी न करना चाहिये।

दुर्घटनाकी सूचना

संयुक्तराज्य अमेरिकाके खानिक विभागने खानोंके भीतर काम करनेवाले मज़दूरोंको दुर्घटनाओंकी सूचना देनेका हालहीमें एक नया तरीक़ा निकाला है। यह तरीक़ा उन खानोंमें विशेष उपयोगी है जहां लोहा, तांबा इत्यादि धातुयें निकाली जाती हैं और (compressed) हवासे सारे काम लिये जाते हैं। जिन पम्पों द्वारा (compressed) हवा भेजी जाती है उनमें एक बड़ी तीक्ष्ण बदबूदार गैसका समावेश करते ही सारी खानमें दुर्गंध फैल जानेसे सब आदमियोंको दुर्घटनाकी सूचना मिल जाया करेगी। इस रीतके आविष्कार कर्ताका कहना है कि १ मिनटके भीतर सारी खानमें दुर्घटनाकी सूचना पहुंचाना संभव है।

सूर्यकी गति

रश्मि-चित्र-यंत्र द्वारा सूर्यके समवेग (Linear Velocity) नापनेका उद्योग गत २१ बरसोंसे जारी है। कई वैज्ञानिकोंके मतानुसार १८६ से २०८ किलोमीटर प्रति सैकंड इसकी गति (Velocity) है। इस नापमें कई कठिनाइयां इस कारणसे आ

पड़ती कि हैं सूर्य बिल्कुल ठोस पदार्थ नहीं है। इसके उत्तरी गोलार्धका वेग दक्षिणी गोलार्धके वेग से जुदा है। सूर्यके चारों ओरके वायु स्तरोंका वेग नापनेमें भी भेद मिलता है।

अग्नि और पवनकी इस्तीफ़ा

दुनियांके सभी मुल्कोंमें हर चीज़के सुखानेमें धूपका आश्रय लेना पड़ता है। अगर जल्दी सुखाना मंजूर हुआ अथवा बरसातका मौसम हुआ तो आग जलाकर धूपकी गरमीका काम लिया जाता है। सुखानेमें हवाका भी भाग रहता है। सब लोग जानते हैं कि बरसातके दिनोंमें गरमियोंकी बनिस्बत धोती देरमें सूख पाती है। बरसातकी हवामें ख़ुनकी मौजूद होती है और गरमियोंकी हवा ख़ुश्क होती है। मनुष्यने समय समयपर गरमीकी मात्रा बढ़ाने तथा हवामेंसे खुनकी कम करनेके उपाय निकाले हैं, परन्तु बहुतसे आवश्यक कामोंके लिये ये चीज़ें जितनी अधिक मात्रामें चाहियें, इसका आविष्कार तो इस बीसवीं शताब्दीमें ही हुआ है। इस आविष्कारके साथही साथ अब इसका प्रयोग बहुतसे उद्योग धन्धोंमें किये जानेकी कोशिश हो रही है। बहुतसे उद्योग धंधों में सुखानेकी विशेष अवस्थाओंमें सुखाये जानेवाले पदार्थोंमें नमीकी मात्रा जुदी २ होती है। इसलिये इन जुदी २ अवस्थाओंमें सुखानेके वास्ते हवा और तापकी मात्रा भी अलग २ होनी चाहिये। जिस तापक्रम और (Humidity) आर्द्र अवस्था पर कोई सुखाई जानेवाली वस्तु पहिले रक्खी जाती है वह हर अवस्थामें उसके लिये ठीक नहीं होता; जैसे २ वह सूखती जाती है उसके लिये दूसरे तापक्रम तथा आर्द्रावस्था (Humidity) की ज़रूरत पड़ती है। अस्तु इस कृत्रिम रीति सेसुखानेके लिये यह आवश्यक है कि एक कारखानेमें अथवा यंत्रमें कई एक हिस्से ऐसे सिलसिले वार रक्खे जायं कि उनमें हवा, तापक्रम और (Humidity) आर्द्रावस्था जुदी २ रक्खी जा सकें और कोई भी वस्तु जिस हदतक चाहें सुखाई जा सके। इसी तरह पर इस कृत्रिम रीतिसे सुखानेमें यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि जिस अवस्थामें सूखनेमें जितना समय मामूली तरहपर आवश्यक है, उतनाही लगाया जाय क्योंकि अगर कोई चीज़ बहुत जल्दी सुखा डाली जाय तो उसमें ऐसी बहुतसी ख़राबियां आ जानी संभव हैं जो मामूली तौरपर धीरे २ सुखानेसे नहीं आ सकतीं थीं।

वायुयान और जहाज़ बनाना यूरोपीय महा भारतमें हर राष्ट्रके लिये आवश्यकही नहीं था बल्कि उन्हें बड़ी जल्दी बना लेनेमें पर ही उनका अस्तित्व निर्भर था। इसीलिये विमान और जहाज़ बनानेके लिये लकड़ी पकाने और सुखानेका काम इसी रीतिसे लिया गया था। इङ्गलैंडके हर भागमें यह सुखानेके कारख़ाने मौजूद हैं और लकड़ीका इस प्रकार (Progressive Seasoning) उत्तरोत्तर पकाना भी ब्रिटिश आविष्कार है। इन कारखानोंमें एक खूब लम्बी सुरङ्ग बनी होती है जिसमें रेलकी पटरियां बिछी होती हैं। इन पटरियोंपर गाड़ियोंमेंलदे हुये लकड़ीके लम्बे २ शहतीर जमा रहते हैं। हर रोज़ यह शहतीर छः फीट आगे बढ़ा दिये जाते हैं और अन्तमें दूसरे सिरेपर पहुंच कर सुरङ्गसे पकी हुई लकड़ी मिलती है। सुरङ्गके मुंहपर ऐसी हवा मौजूद होती है जिसमें नमी खूब होती है। जैसे २ सुखानेकी क्रियामें वृद्धि होती जाती है तापक्रम बढ़ाते जाते हैं और (Humidity) आर्द्रावस्था कम होती जाती है। परन्तु इस क्रियाके आदिसे अन्ततक हवामें थोड़ीसी नमी अवश्य रक्खी जाती है जिससे लकड़ी एक दम सूखकर चटखने न लग जाय। साधारण बाइलर (Boiler) से कूड़ा करकट जलाकर भाप बनाईजाती है और इसी (Low pressure) अल्प दबावकी भाप द्वारा सुखानेकी क्रियाका सम्पादन होता है। भापका (Latent heat) गुप्त ताप सुरङ्गमें छोड़ी हुई नम हवाकी (humidity) आद्रविस्था कम कर देता है और तापक्रम बढ़ा देता है। लकड़ीकी

जलीय भाप पानीमें परिणत होकर जो गरमी देती है वह एक पम्प द्वारा बाइलरमें पहुंच जाती है और भाप बनानेमें सहायक होती है। सुरंगके मुंहसे होकर हवा बराबर जाती रहती है, इसके द्वारा अन्दर वाली हवा संपृक्त विन्दु (Saturation point) तक ठंडी हो जाती है। इस हवाको बाहर निकाल दिया जाता है और नई हवा बराबर आती रहती है। इस तरहपर बिना किसी ख़ास यंत्रकी सहायताके हवाका चक्रगति संचालन (Rotatory circulation) होता रहता है। रेलोंके नीचे लटके हुये (Steam radiators) वाष्पविकीरकों के द्वारा यह अन्दर आनेवाली हवा बारबार गरम होती रहती है और इस तरह सुखाईका काम निरन्तर जारी रहता है। अमेरिकामें इस रीतिसे तरकारियां सुखाई जाने लगी हैं और ईंटें और खपरेल सुखाने और पकानेके काममें तो यह रीति अब विशेष रूपसे उपयोगी हो गई है।

कंकरीटकी बनी हुई कुठिया

इङ्गलेण्डमें लड़ाईके कारण नाजकी इतनी कमी हो गई थी कि गवर्नमेंटने टिकटों द्वारा भोजनकी सामग्री बांटनेका प्रबन्ध किया था। इसी कार्यके लिये (Food controller) भोजन नियामक नामका एक विशेष आफ़िसर नियुक्त किया गया था। इसी संबंधमें एक राजकीय आज्ञा द्वारा किसी किसानके खलयान अथवा नाजके गोदाममें चूहोंका पाया जाना निषेध किया गया था। जिनके गोदामोंमें चूहे पाये जाते थे उनपर बड़ा कड़ा जुर्माना किया जाता था। चूहोंके कारण तो बेचारे किसान परेशान थे ही, अब इस नई राजाज्ञाने उन्हें और भी तंगकर दिया। परन्तु आवश्यकता होने पर आविष्कार होना भी परमावश्यक है। बस इसी सिद्धांतके अनुसार कंकरीटकी कुठियां बनाई जाने लगीं और अब इन आक्रमणकारी जीवोंकी लूट खसोट बहुत कम हो गई है। इन गोदामोंका फ़र्श कंकरीटका बना होता है और दीवारें झिझरीदार बनाई जाती हैं। इन दीवारोंमें अन्दरकी तरफ़ लोहेकी जाली लगी रहती है। ऐसा करनेसे हवाकी आमदरफ़्का भी पूरा पूरा इन्तज़ाम रहता है।

जहाज़ डूबकर कहां पहुंचता है ?

इस प्रश्नके उत्तरमें मत भेद है। कुछ लोगोंका विचार है कि जब जहाज़ गहरे समुद्रमें डूबता है तो उस गहराईपर पानीका दबाव ज़्यादा होनेसे उसके कई टुकड़े हो जाते हैं। और इसलिए वह तहमें नहीं बैठता। परन्तु दूसरे वैज्ञानिकोंका विचार है कि इस दबावका जहाज़के डूबने और तलहटीमें बैठनेसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार हमारे शरीरपर दबाव अधिक होनेका हमारे ऊपरसे गिरनेसे कोई सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार गहरे समुद्रमें पानीका दबाव ज़्यादा होनेसे जहाज़के डूबनेपर कोई असर नहीं हो सक्ता। हमारे ऊपर हवाका दबाव आगे पीछेसे, दाएं बाएंसे, तथा ऊपर नीचेसे एकसा रहता है। हम हवामें हो कर इसलिए गिर पड़ते हैं। कि हवाके उस आयतनसे हमारा आयतनभार ज़्यादा होता है। इसी प्रकार लोहेका जहाज़ समुद्रमें इसलिए डूब जाता है कि उसका आयतनभार पानीके भारसे अधिक होता है। अधिक गहराईपर दबावकी ज़्यादतीसे जहाज़के टुकड़े टुकड़े अवश्य हो जाते हैं परन्तु इसका आयतन घटनेसे, और इसलिए पानीकी अपेक्षा उसका भार बढ़ जानेसे, और भी जल्दी डूब जाता है। दबाव बढ़ानेसे पानीका आयतन कम करना क़रीब क़रीब असम्भव सा है। गहरे से गहरे समुद्रकी तलहटीमें, तलकी अपेक्षा पानीका भार प्रति घन फ़ीट केवल $\frac{१}{५}$ हिस्सा बढ़ता है और लोहा पानीसे ७·७ गुणा भारी है इसलिए जहाज़ डूबते ही बड़ी शीघ्रतासे समुद्रकी तलहटीमें पैठ जाता है।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५२ Reg. No. A-708

भाग ६ कर्क १९७६ । जुलाई १९१९ संख्या ४

Vol. IX. No. 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ९ } कर्क, संवत् १९७६। जूलाई, सन् १९१९। { संख्या ४

उज्जनके चमत्कार

[ले० प्रो० मनोहर लाल भार्गव एम. ए,]

उज्जन एक ऐसी गैस है, जिससे विज्ञानकी बारह खड़ी जानने वाले भी परिचित हैं। विज्ञान पढ़ने वाले प्रायः इसी गैसको पहले पहल बनाया करते हैं। इसके बनानेकी सहल तरकीब यह है कि एक परखनलिका लेकर, उसमें जस्तेके कुछ टुकड़े डालकर, गंधकका कुछ पतला तेज़ाब डाल दो, देखोगे कि नलिकामेंसे कुछ बुदबुदे बड़े आनन्दसे यशदके टुकड़ोंके आस पास-से निकल निकलकर नृत्य करते हुए तेज़ाबकी सतह तक आकर ग़ायब हो जाते हैं, हवामें मिल जाते हैं। यदि जलती हुई दियासलाई इस नलिकाके मुंहके पास लाई जाय तो थोड़ी ही देरमें नलिकामें कुछ जलती हुई ज्वालासी दिखाई देगी। यह ज्वाला जलती हुई उज्जनकी है। यह तो उज्जन बनानेकी खेलकी रीति हुई। प्रयोग करनेकेलिए इस वायुको अधिक मात्रामें तय्यार करके वायुघटोंमें इकट्ठा करके रखनेकी विधि विज्ञान भाग ५ संख्या ४ पृष्ठ १५२ परदी हुई है। वहांपर इस वायुके कुछ गुण तथा कुछ चमत्कारोंका वर्णन भी दिया हुआ है। संक्षेपसे इसके गुण यहां गिनाये जाते हैं।

General साधारण]

उज्जनके भौतिक तथा रासायनिक गुण

जितनी गैसें मनुष्यको मालूम हैं, उन सबमें यही सबसे ज़्यादा हलकी है। हवा इससे लगभग साढ़े चौदह गुनी भारी है। पानीमें यह घुलनशील नहीं है। जलता फ़लीता दिखानेसे यह जल उठती है। यदि हवा या ओषजनके साथ यह मिलाकर जलाई जाय तो ज़ोर का धड़ाका होता है। यदि इस गैसका पान किया जाय तो स्वर बहुत ऊंचा हो जाता है।

उज्जन बनाने की दो नई रीतियां

धातुओंको तेज़ाबोंमें गलानेसे उज्जन पैदा होती है, यह बात पहले बतलाई जा चुकी है। पानी-में भी उज्जन विद्यमान है, यह बात दो प्रकार-

से सिद्ध की जा सकती है—संश्लेषणसे अथवा विश्लेषणसे । उज्जनको जलाइये पानी बन जायगा। पानीमें विद्युद्धारा का प्रवाह कराओ उज्जन और ओषजन पैदा हो जायगी । अतएव पानीसे भी उज्जन निकाल सकते हैं। इसकी एक तरकीब तो अभी बतला चुके हैं, जब विद्युदप्रवाह तेज़ाब मिले पानीमें होगा तो धन ध्रुवपर ओषजन और ऋण ध्रुवपर उज्जन निकलने लगेगी। [देखो विज्ञान भाग ७ अंक २ पृष्ठ ५६] दूसरी तरकीब यह है कि पानी और धातुओं की रासायनिक क्रिया कराई जाय। कुछ धातुएं तो ऐसी हैं जो पानीके सम्पर्कमें आतेही पानीमें घुलने लगती हैं और पानीमेंसे उज्जन निकलने लगती है। यह धातुएं सोडियम, पोटाशियम आदि हैं। कुछ धातुयें ऐसी भी हैं जो गरम पानी या भापके साथ क्रिया करती हैं। इनमें लीदियम मग्नीसियम, लोह आदि हैं । यदि उत्तप्त लोहेके ऊपर होकर भाप निकले तो उज्जन बनेगी और लोह ओषिद रह जायगा। यह एक साधारण क्रिया है, जिसकी जब चाहें परीक्षा कर सकते हैं। परन्तु कमसे कम एक दफ़ा तो यह बड़ी भयानक घटनाका कारण हो चुकी है।

वात भट्टा उड़ गया

बुलपर हेम्पटन नगरमें लोहे बनानेका वात भट्टा कुछ दिनसे यथा विधि कामकर रहा था, पर एक दिन अचानक ऐसा धड़ाका हुआ मानों सैकड़ों जगह बिजली गिरी हो। और १०० फ़ीट ऊंचे भट्टेके छोटे छोटे टुकड़े होकर चारों तरफ़ दूर दूर तक ऐसे गिरे जैसे ओलोंकी वर्षा होती हो। इन पत्थर और ईंटोंके टुकड़ोंके साथ मट्टी और पिघले लोहेकी वर्षा भी हुई, जिससे आस पासके मकानों और काम करने वालोंको बड़ी हानि पहुंची।

इस दुर्घटनाका कारण यह था कि 'टौवरसे' सम्बन्ध रखनेवाली एक नालीमें थोड़ा पानी पहुंच गया था; उधर वात भट्टे के पेंदेमेंसे रिसरिसकर श्वेत उत्तप्त लोहा भी उसी नालीमें पहुंचने लगा। परिणाम यह हुआ कि उत्तप्त लोह और पानीकी क्रियासे उज्जन पैदा हो गई जो वायुके ओषजनके साथ मिलकर बड़े ज़ोरके धड़ाकेके साथ जल उठी। इसी धड़ाकेसे भट्टीका पेंदा उड़गया और उसमें से १००० मन पिघला हुआ लोहा निकल पड़ा। फिर क्या था, जहां जहां इस ज्वालामयी नदी और पानीकी भेंट हुई वहीं सलामी दग़ने लगी। पासके कई मकान टूट गये। थोड़ी दूरपर ही छः आदमी कामकर रहे थे वह भी धड़ाकेके वेगसे इधर उधर उड़कर जा पड़े और धूल मट्टी, कंकड़ पत्थर, और गरमा गरम लोहेके टुकड़ोंसे दब गये। बेचारे बड़ी बुरी तरहसे घायल हुए, पर ग़नीमत इतनी ही थी कि उनकी जान बच गई।

एक जर्मन जंगी जहाज़ का बैलट फट गया।

कुछ वर्ष हुए एक जर्मन जंगी जहाज़केलिए बैलट तैयार हो रहा था। एक बैलटमें कुछ कारीगर कामकर रहे थे। उनके पास कुछ जस्ता था। जब वह बैलट तय्यार हो चुका तो कारीगर जस्ता उसीमें छोड़कर चले गये। बैलट जहाज़पर चढ़ाया गया, उसमें पानी भरकर गरम किया और इंजन अपनी मधुर ध्वनि करते हुए चक्कर लगाने लगे। जहाज़ने बन्दरको छोड़कर समुद्रमें प्रवेश किया। उस दिन उसकी परीक्षा होनेवाली थी। जहाज़की चाल देखकर अफ़सर लोग बड़े प्रसन्न हो रहे थे कि इतनेमें बिजली गिरनेका सा प्रकाश और शब्द हुआ। जहाज़ एकदम रुक गया। सारा जहाज़ भभकती हुई भापसे भरगया और इंजनरूमके प्रायः सभी आदमी मर गये। इस घटनाका क्या कारण था यह किसी की समझमें नहीं आया। जहाज़ फिर बन्दरमें लाया गया और उसकी मरम्मत होने लगी। कुछ दिन बाद बैलट में वही जस्तेके टुकड़े मिले, तब उस दुर्घट घटनाका सच्चा कारण जान पड़ा। खौलते हुए पानीमें जस्ता गलने लगता है। अतएव जब पानी बैलटमें खौलने लगा तो जस्ता उसमें गलने लगा और उज्जन पैदा होने लगी। यह उज्जन बैलटमें मौजूद

रहने वाली ओषजनके साथ मिल गयी और इस प्रकार एक विस्फोटक वायुमिश्रण पैदा हो गया। बेचारे काम करने वालोंको इसका बिलकुल पता भी नहीं था, कि थोड़ी देरमें इस विस्फ़ोटक मिश्रणके विस्फ़ोटनसे बैलट फट जायगा। जिन मिस्त्रियोंने जस्ता उस बैलटमें छोड़ दिया था, उन बेचारोंके ख़यालमें भी यह बात नहीं आयी थी, कि इस तुच्छ घटनाका परिणाम इतना भयानक होगा और उनकी ज़रासी भूलसे उनके इतने निर्दोष भाइयोंकी जान जायगी।

दिया सलाईकी नगड़दादी उज्जन बत्ती।

उज्जन ज्वलनार्ह पदार्थ है, परन्तु इसको जलाएँ कैसे। आजकल तो दियासलाईसे जला सकते हैं, पहले ज़मानेमें तो दियासलाई होती न थी। उस ज़मानेमें प्रत्येक गृहस्थ अपने घरमें आग दबाकर रखता था। जब आवश्यकता होती थी, घास फूस रखकर फूंका और ज्वाला उत्पन्न हो गई। उसीसे अपने लम्प दीपक आदि जला लिया करते थे। परन्तु डोबेरीनर महोदय ने (१७८०—१८४६) जो एक जर्मन रसायनज्ञ थे, उज्जनके एक अद्भुत गुणकी परीक्षा की। उन्होंने यह मालूम किया कि यदि बहुत बारीक प्लाटीनम* पर उज्जन वायुकी बहुत बारीक धारा टक्कर खाय तो गरमी पैदा होती है और उज्जन जल उठती है। उज्जनका यही गुण वह उज्जन बत्तीके बनानेमें काम में लाये। उज्जन बत्तीको हम आधुनिक दियासलाईकी नगड़दादी कह सकते हैं।

रसायनज्ञोंकी दृष्टिमें उज्जनका महत्व

उज्जन उन सब पदार्थोंसे जो पृथ्वीपर मिलते हैं हलकी होती है। [अनुमान किया जाता है कि सूर्य आदि सितारोंमें एक उज्जनसे भी हलका पदार्थ विद्यमान है, जिसे कोरोनियम नाम दिया गया है।] अतएव रासायनिक नाप तौलमें उज्जनको ही प्रमाण पदार्थ मानते हैं। इसका गुरुत्व १ मानकर समस्त पदार्थोंका वाष्प गुरुत्व (वायवीय दशामें गुरुत्व) निकालते हैं। इसीके परमाणुका भार एक मानकर समस्त मौलिकोंका परमाणु भार निकालते हैं। इसीकी युयुत्सा एक मानते हैं, इसकी योग-शक्ति एक है। इसमें और भी कई विलक्षणताएं हैं, जिनका यहां वर्णन करना रुचिकर न होगा।

प्रौट (Prout)ने पहले पहल मौलिकोंके परमाणु भारोंकी परीक्षाकी, तो उन्हें पता चला कि परमाणु भार प्रदर्शक संख्याएं प्रायः पूर्णांक होती हैं। इस निरीक्षणसे उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि परमाणु भारोंमें जो पूर्णांकोंसे अधिकता या न्यूनता है वह प्रयोगोंकी भूलके कारण है और वास्तवमें परमाणुभार पूर्णांक होने चाहिए। इसका कारण उन्होंने यह ठहराया कि उज्जन ही मूल प्रकृति है। उसीसे समस्त मौलिकोंकी उत्पत्ति हुई है। मौलिकोंके परमाणु, उज्जनके परमाणुओंके संग्रह मात्र हैं। अतएव जब उज्जनका परमाणुभार एक माना जायगा, तो अन्य मौलिकोंकी परमाणु भार सूचक संख्याएं आपही पूर्णांक होंगी।

इस सिद्धान्तका विरोध बड़े ज़ोरके साथ हुआ। स्टास; ड्यूमा, मेरिग्नेक आदिने मौलिकोंके परमाणुभार बड़ी होशियारीके साथ ठीक ठीक निकाले और यह सिद्ध किया कि वह पूर्णांक नहीं हैं। प्रौटने जो मान लिया था कि पूर्णांकोंसे परमाणु भारोंका अन्तर, प्रायोगिक अशुद्धियों और त्रुटियोंके कारण होता है, ऐसा मानना न्याय संगत नहीं है; क्योंकि प्रयोगोंमें इतनी अधिक भूलका होना असंभव है। उदाहरणः—यदि क्लोरीन (हरिद) का परमाणु भार ३५.५ है तो इसमें .३५ की भूल होना असंभव है। यदि

* यह पदार्थ पहले भारतवर्षमें निकाला जाता था, पर प्रायः फेंक दिया जाता था। जो लोग नदियोंकी रेतको धोकर सोना निकालते थे, उन्हें कभी कभी केवल सफेद रवे मिला करते थे। इस पदार्थको वह सफ़ेद सोना कहा करते थे और इसका उपयोग न जानने से इसे फेंक दिया करते थे। यही सफ़ेद सोना प्लाटीनम था।

उसका परमाणु भार ३५·१ होता; तो शायद यह मान भी लेते कि वास्तवमें परमाणु भार ३५ है। इस प्रकार प्रौटके प्रोटैल (मूल प्रकृति) वादका अन्त हुआ। पर थोड़े दिनोंसे फिर वैज्ञानिक संसार एक नये प्रोटैल वादको मानने लगा है, जिसमें उज्ञनका स्थान विद्युत् कणोंने ले लिया है। अब यह माना जाता है कि विद्युत्कणोंकी भिन्न भिन्न संख्याओंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे रचना करके एकत्रित हो जानेसे ही भिन्न भिन्न मूल तत्वोंकी उत्पत्ति हुई है।

उज्जनकी द्रवावस्था

जिस प्रकार अन्य गैसें ठंडक पहुंचाने और दबाव डालनेसे द्रव हो जाती हैं, उसी प्रकार उज्ञन भी द्रव रूपमें परिणतकी जा सकती है। बहुत दिनों तक वैज्ञानिकोंका यह ख़्याल बना रहा कि उज्ञन उन गैसोंमेंसे है जो द्रवी भूत नहीं हो सकतो। ऐसी गैसोंको स्थायी (Permanent) गैस कहते थे। परन्तु १८८४ में ओलज़्यूस्कीने द्रव उज्ञन तय्यार करके इस विचारको निर्मूल सिद्धकर दिया। ओलज़्यूस्की केवल थोड़ा सा द्रव तय्यारकर सका था और वह भी थोड़ी देरकेलिए, परन्तु देवरने बहुत सी द्रव उज्ञन तय्यारकर डाली और उससे परीक्षाएँ भी कीं। द्रव उज्जनका तापक्रम-२५२·६° श होता है। बरफ़के तापक्रमसे भी २५२°श कम नीचे। यह तापक्रम शून्यसे केवल-२१°श अधिक है। शून्यका तापक्रम तो महाप्रलयका तापक्रम समझना चाहिये। उस तापक्रमपर पदार्थमें पूर्ण निस्तब्धता आ जाती है। अणुओंकी गति रुक जाती है और पदार्थके गुणोंमें अद्भुत परिवर्तन आ जाता है। तेज़से तेज़ तेज़ाब इस तापक्रमपर पानी से भी अधिक निष्क्रिय हो जाते हैं। द्रव उज्जन पानीकी तरह निर्मल और स्वच्छ होती है। हां, इसकी शीतलता प्रचण्ड दावानलसे भी अधिक दाहक है। तुलसी दासजी, ने जब यह लिखा कि शीतल सिख भी दाहक प्रतीत हुई, उस समय उनको शून्यके आस पासके तापक्रमोंके विषयमें कुछ नहीं मालूम था। जिस बातको उन्होंने अस्वाभाविक बतलानेकी कोशिश की, वह वस्तुतः स्वाभाविक है। यदि द्रव उज्जनकी एक बूंद किसी अंगपर डाल दी जाय तो त्वचा और रुधिर जमकर पत्थर हो जांय और उसी प्रकारका घाव हो जाय जैसा गरम गरम लोहेके स्पर्श करनेसे होता है। द्रव उज्जन पानीसे १४ गुनी अधिक हलकी होती है। उसमें काग, लकड़ी और तेल उसी भांति डूब जाते हैं जैसे पानीमें पारा या सीसा। इस द्रवको यदि जल्दी जल्दी उड़ाया जाय तो वह स्वयम् ठोस हो जाता है और तापक्रम-२५९°श तक कम हो जाता है। द्रव उज्जनको बड़ी तेज़ीसे वाष्पमें परिणत करनेसे हीलियम गैसको द्रवीभूत किया गया है, जो ४·५° केवल पर उबलती है। द्रव हीलियमको अपने आप उड़नेसे ३°श केवल तक तापक्रम घटा सकते हैं। इस प्रकार द्रव उज्जनने केवल तापक्रम के शून्य अर्थात् महाप्रलयके तापक्रमका कुछ अनुभव प्राप्त होनेका द्वार खोल दिया है। जिन सूर्य सम्प्रदायोंके सूर्य ज्योतिहीन हो गये हैं, उनके ग्रहों और उपग्रहोंका तापक्रम केवल शून्य है। वायुमण्डलके बाहर यदि हम जा सकें तो प्रायः यही तापक्रम हमको मिलेगा। यदि सूर्य भगवान, ज्योति तथा ताप देना बन्द करदें तो हमारे पृथ्वी मण्डलकी भी यही दशा हो जाय।

उज्ञनकी अद्भुत व्यापकता।

यहांपर यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उज्जन कहां कहां औरकिस किस रूपमें पायी जाती है। वायुमण्डलमें थोड़ी बहुत उज्जन सदैव रहती हैं। यह वायुमण्डलमें आती कहांसे है? सुनिये, आपके उच्छ्वासमें उज्जन रहती है। जो गैसें मिट्टीके तेलके कुओं और ज्वालामुखी पर्वतोंमेंसे निकलती रहती हैं, उनमें उज्जनका कुछ अंश रहता है। पौधोंकी उच्छ्वासमें भी उज्जन रहती है। किसी किसी खानमेंसे भी उज्जन निकला

करती है। जर्मनी प्रदेशान्तर्गत स्टासफ़र्टकी पोटाशकी खानोंमेंसेभी यहगैस निकलती रहती है। कभी कभी तो उक्त खानमें कारनेलैटकी तहोंमेंसे बिलकुल शुद्ध उज्जन बड़े वेगसे निकलने लगती है। अनन्त देशमें भी उज्जन व्याप रही है। अतएव जैसे जैसे सूर्य भगवान अपनी सम्प्रदाय सहित नौमील फ़ी सैकण्डके वेगसे न मालूम किस लक्ष्यसे दौड़ लगाते हुए आगे बढ़ते हैं, उक्त उज्जनमेंसे थोड़ीसी पृथ्वीके वायुमण्डलमें भी खिंच आती है।

ऊपर जितने उज्जनके निर्गम स्थान बतलाये हैं, उन सबसे आई हुई उज्जन यदि वायुमण्डलमें ही रहती तो अबतक उसकी ख़ासी मिक़्दार इकट्ठी हो जाती, परन्तु ऐसा नहीं होने पाता। इसका कारण ? जब जब बिजली चमकती है, कुछ उज्जन ओषजनसे संयोगकर पानीमें परिणत हो जाती है। दूसरे पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक नहीं है, कि उज्जनको वायुमण्डलमें ही रख सके। इसलिए उज्जन वायुमण्डलमेंसे निकल निकलकर अनन्त देशमें विचरने लगती है।

यौगिकोंमें उज्जन

उज्जनका सबसे साधारण यौगिक पानी है। एक मन पानीमें लगभग साढ़े नौ सेर उज्जन होती है। पानीकी मात्रा इस पृथ्वी मण्डलपर कितनी है यह अनुमान करना भी कठिन है। अतएव उज्जन पृथ्वी मण्डलपर अनन्त परिमाण में मौजूद है। फिर कोयला मिट्टीका तेल, मीठी शक्कर, कड़वी कौनेन, चिकने घी और चर्बी, आटा, दाल, चावल, आलू, रतालू, शफ़तालू कहांतक गिनाएँ, कोई जीती जागती जिन्स नहीं है जिसमें उज्जन विद्यमान न हो। समस्त वानस्पतिक तथा पार्शव जीवोंमें इसका अंश रहता है। आपके बैठनेकी चौकी, पढ़नेकी मेज़, लिखनेकी क़लम, पढ़नेकी किताबें, पहननेके कपड़े, जूते और टोप सबमें उज्जन है।

उज्जन ही उज्जन

पृथ्वीपर तो उज्जन इस प्रकार रम रही है, अब ज़रा यहांसे उड़कर तारोंकी सैर कीजिये। पृथ्वीके वायुमण्डलसे निकले नहीं कि बहुत सूक्ष्म रूपमें उज्जन अनन्त देशमें व्यापी हुई मिलेगी। इसके बाद चलिये ज़रा सूर्य मण्डलको देखिये। यह क्या, पृथ्वीपरसे तो यह गोल मटोल, चिकना थालीसा नज़र आता था। यहां तो इसमेंसे बड़ी बड़ी ज्वालाकी शिखाएँ निकल रही हैं। ठीक है, तभी दूरबीनमेंसे देखकर यंग (Young) महोदयने १८७१ में कहा था कि सूर्य मण्डलमेंसे बड़ी बड़ी अग्नि शिखाएँ निकलती हैं। एकका आकार इन्होंने १००००० मील लम्बानमें और ५४००० मील ऊंचाई में बतलाया था। १८८० में लेंगलेने तो एक शिखा ३५०००० मील ऊंची देखी थी। यह लौ हमारी पृथ्वीसे हज़ारों गुनी बड़ी हैं, तथापि ज्योतिषियोंका कहना है कि यह अन्य सूर्योंकी लौके मुक़ाबिलेमें हाथीके सामने चींटीके समान भी नहीं हैं। क्योंकि अनन्त आकाशमें कोई कोई सूर्य हमारे सूर्यसे लाखों करोड़ों गुने बड़े हैं। सबसे ज़्यादा आश्चर्यकी बात यह है कि यह लौ उज्जनकी हैं। उज्जन सब तारों और नीहारिकाओंमें मौजूद है। कुछ उत्तप्त तारेतो केवल उज्जनकेही बने हुए हैं। उज्जन इन आकाशी पिण्डोंमें उस अवस्थामें नहीं है, जिसमें पृथ्वीपर पाई जाती हैं। इन पिण्डोंमें तो वह अपने दबावसे ही फ़ौलादसे भी ज़्यादा कठोर हो गई है, पर यह चैनसे एक जगह नहीं रहने पाती, क्योंकि मिनट मिनटमें बड़े बड़े भूकम्प, जिनका अन्दाज़ा हम ख़्वाबमें भी नहीं लगा सकते, हुआ करते हैं और उज्जन सहसा उड़कर वायुके रूपमें लाखों मीलकी ऊंचाई तक पहुंच जाती है। तभी यह लौके रूपमें हमको दीखती है। सूर्य मण्डलमें ४०० मील प्रतिसेकण्ड के वेगसे इसी प्रकारके अंधड़ चला करते हैं।

उल्का और उज्जन

कभी कभी उल्काओंमें उज्जन पायी जाती है,

जिससे उपरोक्त रश्मिचित्रदर्शक द्वारा किये गये निरीक्षणोंकी पुष्टि होती है। उल्का किसी नष्ट हुए ब्रह्माण्डके या तारेके टुकड़े होते हैं जो कभी कभी विचरते हुए हम तक आ पहुंचते हैं। यह हमारे वायुमण्डलमें प्रवेश करते ही, बहुधा संघर्षण द्वारा पैदा हुई गरमीमें जलकर राख हो जाते हैं, परन्तु कभी कभी पृथ्वी तल तक पहुंच कर ठण्डे हो जाते हैं। ऐसे ही एक उल्काकी परीक्षा (Grahm) ग्रेहम ने १८६७में की। उसमें उज्जन भरी हुई थी। इसे पता चलाकि जिस तारेका यह उल्का अंश था उसमें उज्जन अवश्य होगी। यह भी सम्भव है कि उज्जन आकाशमें से ही इस उल्काने सोखली हो। एक बात और भी हो सकती है कि उल्का केवल आकाशीय धूल कणोंके एकत्रित होनेसेबनगया हो औरयह उज्जन आकाश व्यापिनी उज्जनमेंसे ही आई हो। असली बातका पता लगाना कठिन है, परन्तु इतना निश्चय है कि पृथ्वी मण्डलके बाहर भी उज्जन मौजूद है।

उज्जन मय आदि मध्य और अवसान

सबसे नये अर्थात्, सबसे अधिक गरम तारों में प्रायः उज्जन ही उज्जन पाई जाती है। अन्य गैसोंका बहुत कम अंश रहता है। ज्यों ज्यों तारे ठंडे होते जाते हैं उनमें पदार्थोंके चिन्ह भी पाये जाने लगते हैं। किसी तारेका एक या दस बीस मनुष्य-जीवन की अवधिमें इतना ठण्डा हो जाना सम्भव नहीं, परन्तु आकाशविहारी तारोंकी परीक्षा करनेसे उन्हें हम एक विकाश क्रमसे विभाजितकर सकते हैं; और यह अनुमान कर सकते हैं कि विकाशके आरम्भसे लेकर भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें तारोंका रूप परिवर्तन किस नियम से हुआहोगा। इन तारोंका जीवन इतना दीर्घ होता है कि मनुष्य की कल्पनासे परे है। सम्भव है इन तारोंपर हमारे ग्रहकी नाईं हज़ारों क्या लाखों बार विज्ञानकला सम्पन्न जातियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार हो चुकाहो या होने वाला हो।

तारोंकी उत्पत्ति नीहारिकाओंसे, जो उज्जन प्रधान वायवीय पिण्ड होते हैं, होती है। उनका अन्त कैसे होता है? या तो जब तारे बिलकुल ठंण्डे होकर ज्योति हीन हो जाते हैं, या ऐसे दो या अधिक ज्योतिहीन पिण्ड आपसमें टक्करखा जाते है। टक्करके वेगसे असीम उत्ताप प्रकटहोता है और प्रायः दोनों पिंड उत्तप्त होकर वापिस लौट जाते है। इनकी टक्करका फल स्वरूप एकनया ब्रह्मांड बीचमें पैदा हो जाता है। यह नीहारिका होता है। एकतो यह विधि है जिससे नये ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और मृत पिण्डोंको जीवन दान मिल जाता है। दूसरी एक और विधि है, जिसमें कोई पिंड सहसा जल उठता है, उसमें बड़े ज़ोर का धड़ाका होता है और वह वाष्पमें परिणत हो इधर उधर बिथर जाता है।* यह घटना आकाशमें ज्यतिषियोंने अनेक बार देखी है। प्रतिवर्ष ऐसे अस्थायी तथा अपने आपको जलाकर भस्मकर देने वाले तारे दीखा करते हैं। यों तो ज्योतिषी स्वयम इस महाप्रलयका दृश्य अपनी आंखों देखते हैं पर छाया चित्रों द्वारा ही इनका ठीक पता चलता है। इनअस्थायी तारोंपर एक विस्तृत लेख [विज्ञान भाग ५ पृष्ठ २६६ तथा, भाग ६ पृष्ठ ४३] निकल चुका है। इसलिए यहां केवल एक घटनाका उल्लेख किया जाता है। परसियस नक्षत्रमें एक तारा कुछ दिन हुए दिखलाई दिया। कुछ दिनमें वह आकाशस्थ समस्त तारोंसे अधिक प्रकाशमान हो गया। परन्तु २४ घन्टे बाद ही वह धीमा पड़ने लगा, उसका रश्मिचित्र बदलने लगा और अन्त में नीहारिका सा हो गया। इससे अनुमान किया जाता है परमाणुविक विस्फोटन या फटन हुआ। छायाचित्रोंकी परीक्षासे पता चलाकि इसमेंसे छोटे छोटे नीहारिकावत पिंड निकल निकलकर प्रकाशके वेगसे चारों ओर बिथर गये। इस प्रकार एक

*इन दोनों सिद्धान्तों को विस्तारसे पढ़ना हो तो विज्ञान भाग ६ पृष्ठ ४५ पर पढ़लीजिये।

सच्ची महाप्रलयके देखनेका सौभाग्य कुछ ज्योतिषियोंको प्राप्त हुआ।

तारों का जन्म नीहारिकाओंसे होता है और अन्त भीनीहारिकाओंके रूपमेंपरिणत होकर होता है। जबतक तारेस्थिर रहते हैं तबतक उनमें उज्जन आदि बहुतसे पदार्थ पाये जाते हैं। इस भांति हम कह सकते हैं कि तारोंका आदि, मध्य, और अवसान उज्जनमय होता है। आदिमें उज्जनही उज्जन रहती है, वह ही सम्भवतः अनेक रूप धारण करलेती है, और अन्तमें फिर उज्जन ही उज्जन रह जाती है। यही अनीन्द्रिक विकाशवाद है।

व्योम विहरण।

पाठक वृन्द! इसलेखकने पृथ्वीसे लेकर करोड़ों मीलकी दूरीपर स्थित तारों तककी ख़बर ली, परन्तु यह न सोचा कि मनुष्य वायुमण्डलमें ही कितनी दूर जा सकता है। विज्ञानकी कोई भी शाखा इतनी साहस पूर्ण और शोक जनक घटनाओंसे परिपूरित न होगी, जितनी कि व्योम विहरणका इतिहास है। परीक्षा करने वालों और प्रयोग करताओंने जितना निस्वार्थ, सत्य प्रियता, और आत्मत्याग, तथा मृत्युका दार्शनिक निरादर इसकला की पुष्टि और परवृद्धिमें दिखालाया है, उतना कहीं और देखनेमें नहीं आता।

पर स्मरण रहे कि इस कलाकी सफलता मुख्यतः उज्जनकी बदौलत हुई। यह सबसे अधिक हलकी गैस है। इसका एक घन गज़डेढ़ सेर बोझको पृथ्वी परसे उठा सकता है। इसका पहले पहल प्रयोग बैलूनमें प्रोफ़ेसर चार्ल्सने फ्रांसमें १८४० वि०में किया था। बैलून बहुत ऊंचे चढ़सकते हैं। १८६१ वि० में (Guay Lussac) गैलुसेक २३००० फ़ीट ऊंचा, १६०७ वि० में बेरल और बिक्सिस (Barral and Bixis) २४००० फ़ीट चढ़े और १८६२ वि० में ग्लैशर और कोक्सवेल (Glaisher and Coxwell) ३७००० फ़ीट तक चढ़े। इतनी ज़्यादा ऊंचाई तक अभी वायुयान नहीं चढ़ सके हैं। अन्तिम उड़ान का पूरा विवरण विज्ञान भाग ८ पृष्ठ १६५ पर अद्भुत व्योम विहरण शीर्षक लेखमें पढ़ चुके हैं।

डिफ़्थीरिया और उसके जीवाणु

[ले० श्री मुकट विहारीलाल दर, बी० एस-सी]

डिफ़्थीरिया शीत प्रधान देशोंका एक भयानक रोग है। इसमें नाक, कंठ और स्वरयंत्रका प्रदाह (वरम) हो जाता है। कभी कभी तो यह ऐसा प्रबल रूप धारण करता है कि एक ही दो दिनमें रोगीकी मृत्यु हो जाती है। परन्तु कभी ऐसा सामान्य तथा हलका आक्रमण होता है कि ज़ुकाम तथा 'गला आकर' ही रह जाता है। यह रोग बच्चोंको ज़्यादा होता है। इसकी पूर्वावस्था (Incubation Period) अर्थात् शरीरमें विष प्रवेश होनेके मुहूर्त्तसे रोगके लक्षण दिखलाई देनेका मध्यवर्त्ती समय २—८ दिन तक है परन्तु यह कम भी हो सकता है।

"डिफ़्थीरियाके जीवाणु"

डिफ़्थीरियाका जीवाणु एक प्रकारका बीजाणु-बैसिलस (Bacillus) होता है। यह ज़्यादातर गलेमें पाया जाता है परन्तु बहुधा मुंह नाक और स्वर नली (Larynx) में भी मिलता है। स्वर नलीके डिफ़्थीरिया को ही (Membranous Croup) झिल्लीकृत स्वरघ्न कहते हैं।

यह बेसिलस दूधके सिवाय शरीरके बाहर और कहीं नहीं बढ़ता। अगर किसी पदार्थसे चारों ओरसे रक्षित न हो तो सुखानेसे नाश हो जाता है। यह बहुत दिनोंतक जीवित रह सकता है। जो बच्चे रोगकी प्रारम्भिक अवस्था (First stage) में हैं उनके होठोंसे छुई हुई स्लेटकी पैंसिलको सूक्ष्मदर्शनयंत्र द्वारा देखनेसे मालूम हुआ है कि यह बीजाणु इन पर बहुत दिनोंतक जीवित रहते हैं। यह भी देखा गया है कि डिफ़-

Bacteriology जीवाणुशास्त्र]

थीरियाके रोगियोंके गलेकी सुखाई हुई झिल्ली (Membranes) में यह बीजाणु महीनों जीवित रहते हैं।

डिफ़थीरियाके जीवाणुओंका शरीरमें प्रवेशः—

डिफ़थीरियाके जीवाणु शरीरमें मुंह या नाक द्वारा प्रवेश करते हैं। वे एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें कई प्रकारसे पहुंच जाते हैं। वे या तो रोगीके खांसने पर या उसके थूकनेपर ज़मीनपर गिरकर हवामें मिल जाते हैं और सांसकी हवाके द्वारा दूसरे मनुष्यतक पहुंचते हैं। खांसने, छींकने, हंसने और किसी हद्द तक बात करनेमें भी थूकके छोटे छोटे बुदबुदे हवामें मिलकर कई फ़ीट (३ से ६ फ़ीट तक) उड़ कर दूर जा गिरते हैं। कुछ तो उनमेंसे इतने छोटे होते हैं कि बीस मिनटतक हवामें उड़ते रहते हैं। जब कोई आदमी डिफ़थीरिया, निमोनिया या क्षय जैसे भयंकर रोगसे पीड़ित हो तो उसके थूकके कण इन बीजाणुओंसे भरे होते हैं। इसलिये किसी ऐसे रोगीके पास खड़े न होना चाहिये जो खाँस रहा हो। रोगीको भी हमेशा खांसनेके वक्त मुंहके सामने कोई रुमाल या काग़ज़का लिफ़ाफ़ा रख लेना चाहिये। जिन मनुष्योंके शरीरमें ऐसे जीवाणु होते हैं, उनकी, और घरकी चीज़ोंमें भी जैसे रुमाल, किताबें, मेज़, कुर्सी, वग़ैरा में इन जीवाणुओंका पाया जाना यक़ीनी है। ये जीवाणु पानी पीनेके गिलास पैन्सिल, खिलौने या और दूसरी बच्चोंकी खेलनेकी चीज़ोंपर भी पाये गये हैं। अक्सर स्टेशनोंपर मुसलमान भाइयोंके पानी पीने वाले गिलास इन जीवाणुओंके ख़ज़ाने होते हैं। सोडावाटर और शरबतवालों की दुकानोंके गिलासोंका भी यही हाल है। डिफ़थीरियाकी महामरी (Epidemics) कई बार दूधके कारण हुई हैं। मक्खियां जीवाणुओंको ले जाकर ऐसी जगह छोड़ आती हैं जहां से वे मुंह और गलेतक पहुंच जाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि पालतू जानवर (ख़ासकर बिल्लियाँ) अक्सर डिफ़थीरियासे पीड़ित होते हैं और रोग फैलाते हैं।

डिफ़थीरियाके रोकनेमें कठिनाइयां

इस रोगसे बचनेमें सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि रोगके आक्रमणसे अच्छा होनेके बाद भी ४, ५. दिन तक और कभी कभी कई महीनेतक इसके जीवाणु गलेमें मौजूद रहते हैं। इसलिये यह देखा गया है कि (Quarantine) कारन्टाइन और (Anti-toxin) प्रतिविषके प्रयोगसे कुछ विशेष फ़ायदा नहीं होता। १६६४ वि० में अमेरिकामें यह सब उपाय करने पर भी डिफ़थीरियाके कारण १७००० मृत्यु हुई। बहुत से स्वस्थ लोगोंके गलेमें, और जो रोगीके सम्पर्कमें रहे हों उनमें तो प्रायः अवश्य ही, तथा उन लोगोंके नाक और गलेमें भी, जो साधारण सर्दी या सामान्य 'गले आनेकी बीमारी से ही पीड़ित मालूम होते हैं, यह जीवाणु पाये जाते हैं। यह जीवाणु उस आगकी तरह जो कि बुझी हुई मालूम होती है परन्तु मौक़ा पाकर फिर दहक उठती है, डिफ़थीरियाके फिर शुरू होनेका कारण बन जाते हैं। किसी रोगीसे दूसरे मनुष्यमें जीवाणु फैलनेका हरदम डर रहता है। इसीसे यह रोग भयंकर रूप धारण कर सकता है। अथवा यदि उस मनुष्यमें रोग निवारण करने की शक्ति कम हो तो उसे स्वयं हार माननी पड़ती है।

यह मालूम हुआ है कि जब यह रोग किसी शहर या क़स्बेमें फैलता है तो प्रति १००० में दो तीन मनुष्य ऐसे होते हैं जिनके गलेमें सांघातिक रोगके जीवाणु होते हैं। इन मनुष्योंके शरीर जीवाणुओंको रोके रहते हैं इस कारण वह संख्यामें इतने अधिक नहीं बढ़ सकते जिसमें रोग पैदा हो जाय। परन्तु फिर भी शरीर उनका बिलकुल नाश नहीं कर पाता। उन लोगोंके अतिरिक्त जिनमें भयंकर जीवाणु हों और किसी को (Quarantine) कारनटाइन में रखना ठीक नहीं।

डिफ्थीरियाके रोगियोंके लिये कारनटाइनः—

डिफ्थीरियाको रोकनेके लिये हर एक व्यक्तिको जिसके रुधिरमें सांघातिक डिफ्थीरिया-के जीवाणु हों कारंटाइन (Quarantine) में रखना चाहिये चाहे वह मनुष्य स्वस्थ हो अथवा रोगी। शककी हालत में डाकृरके लिये केवल गले ही को देखकर यह बता देना कि उसमें डिफ्थीरियाके जीवाणु हैं या नहीं, मुमकिन नहीं है। यह बात मालूम करनेके लिये अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) द्वारा परीक्षा होना ज़रूरी है। अमेरिकाकी एक घटना यहां उल्लेखनीय है। १६६५ वि० के आश्वन मास-में रिचमन्ड वरजीनिया (Richmond Virginia) नामी शहरमें डिफ्थीरियाके ८ रोगी ऐसे थे जिनके रोगका कोई कारण नहीं मालूम होता था। लेकिन यह शीघ्र ही पता लगा कि एक को छोड़ कर बाकी सब डिफ्थीरियाके रोगी एक ही जगह से दूध लेते थे। उस गौशालामें जहां से कि यह लोग दूध लेते थे परीक्षा करने से मालूम हुआ कि दो दुहनेवालोंको छोड़कर सब स्वस्थ हैं। इन दो के गलोंमें डिफ्थीरियाके जीवाणु पाये गये। इस घटना से इस बातका पता चलता है कि डिफ्थीरिया किस प्रकार स्वस्थ मनुष्यों द्वारा भी फैल सकता है और किस प्रकार 'स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी (Health officers) मनुष्यों-को रोगसे बचनेमें सहायता दे सकते हैं।

डिफ्थीरियाका टाक्सिन या विषाणु !

डिफ्थीरियाके जीवाणुओंसे कभी कभी गला बन्द होने से दम घुटकर मृत्यु हो जाती है। परन्तु डिफ्थीरिया रोगमें मृत्यु प्रायः उसके तेज़ टाक्सिन (विष) ही के कारण होती है। यह टाक्सिन इतना विषैला और तेज़ होता है कि अगर अंगूठेके नाखूनके बराबर डिफ्थीरिया-जीवाणुओंका एक झुंड टन्सिल (Tonsil) पर हो जाय तो वह इतना विष (Toxin) पैदा कर सकता है कि मृत्यु हो जाय। यह विष (Toxin) स्नायुमंडल (Nervous system), मूत्रयंन्त्र (Kidneys) और हृत्पिंड (Heart) पर विशेषतः असर करता है।

डिफ्थीरिया के लिये प्रतिविष (Anti-toxin)

एक पिछले लेखमें हम कह आये हैं कि जब रोगोत्पादक जीवाणु शरीरमें विष (Toxin) पैदा कर देते हैं तो शरीर उस विषको नाश करने-के लिये और स्वयं उससे बचने के लिये एक प्रकारका प्रतिविष (Anti-toxin) उत्पन्न करता है। इसी सिद्धान्तपर विज्ञान वेत्ताओंने घोड़ेके रक्तसे इस रोगका प्रतिविष निकला हैं। यह प्रतिविष इस तरह निकाला जाता है। डिफ्-थीरियाके जीवाणु पहिले 'बीफ्' रस (Beef-broth) में रक्खे जाते हैं। वहां वे बढ़ (multiply) कर बहुत सा विष (Toxin) पैदा करते हैं। इसमें से थोड़ा सा विष घोड़ेके रक्तमें टीका लगाकर पहुंचा दिया जाता है। इस विषको नाश करनेके लिये घोड़ेके रक्तमें प्रतिविष बनने लगता है। अब और अधिक विष रक्तमें पहुंचाया जाता है जिससे और अधिक प्रतिविष बनता है। इस तरह पर इसके रक्तमें बड़ा प्रबल (Strong) प्रतिविष बन जाता है इसके बाद घोड़ेका ख़ून निकालकर बहुत साफ़ बरत-नोंमें जमा दिया जाता है। पीला पतला द्रव पदार्थ (Liquid Serum) जो कि जमे हुए ख़ूनके चारों ओर निकलता है प्रतिविष कहलाता है। इसकी शुद्धताकी कई बार परीक्षा कर लेने पर इसे शीशियोंमें भर देते हैं और प्रतिविषके नाम-से बाज़ारों अथवा डाक्टरोंकी दुकानपर बेचते हैं।

जब कोई मनुष्य डिफ्थीरियासे पीड़ित होता है तो इसी प्रतिविषका टीका लगाकर इसके रक्तमें यह प्रतिविष उत्पन्न कर दिया जाता है। यह प्रतिविष डिफ्थीरियाके जीवाणुओंका नाश नहीं करता बल्कि उनके विषका नाश करता है। और जबतक कि शरीर जीवाणुओं के मारने

में सफल हो, यह अणु कोषों (cells) को विषाक्त होने से रोकता है।

इस रोगमें जितनी हो जल्दी अविषाणु दिया जाय उतना ही अच्छा है। यह बात नीचे दिये हुए चित्रोंसे स्पष्ट हो जायगी। यह अंक लंदन अस्पताल (London Hospital) के अनुभवपर निर्भर हैं। चित्र (अ) में प्रति सैकड़ा मृत्यु संख्या दिखाई गई है। और इनमें अविषाणु क्रमसे, पहिले दूसरे, तीसरे, चौथे वा पांचवे रोज़ दिया गया था इससे मालूम होता है कि अविषाणु जितनी देरसे पहुंचता है उतनी ही बचनेकी संभावना घटती जाती है।

पांचवां दिन मृत्यु संख्या २०.

चौथा दिन	मृत्यु संख्या १६
तीसरादिन	मृत्यु संख्या ११
दूसरा दिन	मृत्यु संख्या ५
पहिला दिन	मृत्यु संख्या ०

चित्र (अ)

मृत्यु संख्या ४४%
जब प्रति विष नहीं दिया गया

मृत्यु संख्या ११%
जब प्रति विष दिया गया

चित्र (ब)

चित्र (ब) में यह दिखाया गया है कि डिफ़थीरियाके इलाजमें प्रतिविषके प्रयोगका क्या असर होता है। जब प्रतिविषका प्रयोग नहीं हुआ तो मृत्यु संख्या ४४ फ़ी सदी के लगभग हुई लेकिन प्रतिविषके प्रयोग होनेपर देखा गया कि मृत्यु संख्या चौथाई यानी ११ प्रति सैकड़ा हो गयी।

इस लिये यह बहुत आवश्यक है कि प्रतिविष डिफ़थीरियाकी आरम्भिक अवस्थामें देदिया जाय, क्योंकि जब 'टाक्सन' विष स्नायु मंडल, मूत्रयंत्र और हृत्पिंडके अणु कोषों (cells) को विषाक्त करके बहुत हानि पहुंचा चुकता है तो फिर उनका विशुद्ध करना मुश्किल है। प्रतिविषका प्रयोग हर अवस्थामें लाभदायक है और इसे सदा काममें लाना चाहिये। यह डिफ़थीरियासे बचनेकेलिये अच्छा उपाय है। जब किसी आदमीपर इन जीवाणुओंके आक्रमणका भय हो तो भी प्रतिविषकी एक मात्रा रोगको बढ़ने से रोकती है।

प्रतिविष चिकित्साके परिणाम

प्रतिविषसे डिफ़थीरियाके इलाजमें बराबर सफलता हुई है। कई पाश्चात्य देशोंके अंकोंसे मालूम हुआ है कि जब प्रतिविषका प्रयोग होता है तो उस अवस्थाकी अपेक्षा जबकि प्रतिविष नहीं दिया जाता, रोगकी मृत्यु संख्या चौथाई ही रह जाती है। यहां तक देखा गया है कि अगर रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें ही प्रतिविष दे दिया जाय तो प्रायः कोई भी मृत्यु नहीं होती। हमारे देशमें प्रतिविष चिकित्साकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता है और न यहां इस रोगकी स्वतंत्र मृत्यु संख्याका पता लगता है। परन्तु प्रतिविष चिकित्साका फल चित्र (अ) और वरजीनिया (Zichmoud Virginia) के सन् १६०८ के आख़िरी ४ महीनोंके अनुभवसे विदित है। उस कालमें बरजीनियामें १३६ डिफ़थीरियाके रोगी थे। शहरके स्वास्थ्य विभाग (Health Department) ने प्रतिविष बिना मूल्य बांटा था और उसका अच्छी तरह प्रयोग हुआ था। उन १३६ रोगियोंमें से केवल एकको मृत्यु हुई--इसमें भी डाक्टर तब बुलाया गया था जब बच्चा मर रहा था। यहां पर यह समझा देना उचित है कि पक्षाघात जिसको लकवा या फ़ालिज भी कहते हैं जो अकसर डिफ़थीरियाके बाद हो जाता है वह प्रतिविषके कारण नहीं होता बल्कि रोगके कारण होता है।

खेतीका प्राण और उसकी रक्षा

३—खेतीके काम और यंत्र

(लेखक—ऐल० ए-जी०)

हैरो चलानाः—यह काम इस देशके लिये बिल्कुल नया है। कृषि विभाग इसके प्रचारका प्रयत्न कर रहा है। इससे लाभ भी अधिक होता है इसलिये इसका ज्ञान बहुत आवश्यक है।

जुताई करनेसे खेतमें छोटे या बड़े डेले उखड़ आते हैं। इन डेलोंको बारीक करनेके लिये पटेला चलाते हैं परन्तु पटेलेकी रगड़ और दबावसे कुछ डेले तो टूट जाते हैं और कुछ दब जाते हैं। इन दबे हुए डेलोंको ऊपर लानेके लिए हैरो चलाया जाता है जिससे दुबारा पटेला देनेसे यह डेले टूट जांय। यदि इन दबे हुये डेलोंको शीघ्र ही बारीक न करेंगे तो यह हवा और धूपसे अपनी नमी खोकर कड़े पड़ जायेंगे और पीछे इनका तोड़ना कठिन हो जायगा। हैरो चलानेका काम चलनीसे छाननेकी भांति है। जैसे चलनीसे छाननेपर बारीक आटा नीचे निकल जाता है और भूसी या दाने चलनीमें रह जाते हैं इसी भांति हैरो चलानेसे बारीक मट्टी खेतमें रह जाती है पर डेले—खेतके धरातलपर आ जाते हैं। अब इन्हें पटेला चलाकर तोड़नेमें आसानी होती है।

जुताईके पश्चात प्रायः खेतका धरातल कहीं ऊँचा और कहीं नीचा हो जाता है। हैरो चलानेसे धरातल भी यकसार हो जाता है।

जुताईसे खेतके खर पतवार उखड़ जाते हैं। उनको एकत्रित करना खेतकी सफ़ाईकेलिये अति आवश्यक है। मज़दूर लगाकर बिनवानेमें अधिक व्यय होता है और समय भी अधिक लग जाता है। पर हैरो चलानेसे यह काम भी शीघ्र हो जाता है। खेतकी सफ़ाई इसलिये आवश्यक है कि जिससे दीमकका डर न रहे। सूखे खर पतवारके पड़े रहनेसे दीमक लग जाया करती है।

पटेला देनेसे जुते हुये खेतकी नमी अधिक उड़ा करती है। हैरो चलानेसे नमी रुकी रहती है क्योंकि पानीको ऊपर लानेवाली नालियां (Capillary tubes) टूट जाती हैं।

नीचे हैरो (Harrow) यंत्रका चित्र दिया जाता है। इसमें नं० १ लकड़ीका चौखटा होता है, नं० २ लोहेकी खूटियां हैं; नं० ३ बैलोंके जोतनेका कड़ा तथा नं० ४ एक छड़ है जिसके ज़रियेसे लकड़ीके चौखटेको चौड़ा या सकड़ा किया जा सकता है।

इसे एक जोड़ी बैलके ज़रियेसे चलाते हैं। कड़ेमें रस्सी या ज़ंजीर लगा कर जूयेमें जोड़ देते हैं। हंकवाहा चौखटेपर खड़ा हो जाता है। यदि गहरा न चलाना हो तो हँकवाहा ऊपर खड़ा नहीं
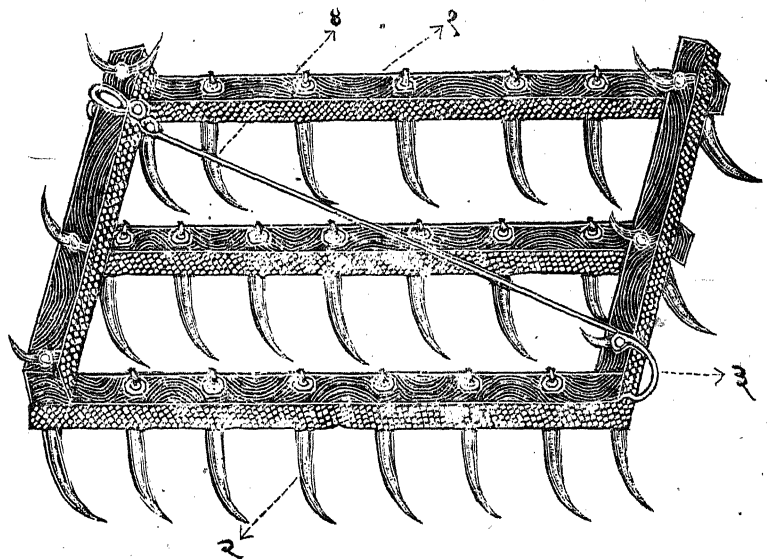
चित्र १

होता। इसके चलाते समय तीन बातोंको ध्यानमें रखना चाहियेः—

(१) सब खूटियां ज़मीनमें लगती हों।

(२) रस्सीकी लम्बाई इतनी हो कि आगेकी खूटियां न उठें।

(३) हर एक खूंटी अलग २ रास्ते पर चलती हो।

बुवाईके समय प्रायः बारिश हो जाया करती है। इससे तैयार खेतोंमें पपड़ी पड़ जाती है। इस पपड़ीको तोड़नेके लिये भी हैरो इस्तैमाल किया जा सकता है। जुताई करनेसे पहिले यदि खेतोंमें घास फूंस अधिक उगा हुआ हो तो एक विशेष प्रकारके हैरोका इस्तैमाल करना बड़ा लाभदायक होता है। इसका चित्र नीचे दिया जाता है। इससे देशी हलके समान काम लिया जा सकता है और एक दिनमें अधिक क्षेत्रफल (रक़बा) जोत कर तैयार किया जा सकता है। इस चित्रमें नं० १

इसका (Frame) या ढांचा है, नं० २ कमानी या स्प्रिंग (Spring) है। नं० ३ (Lever) लिवर है जिसके सहारेसे गहरी या उथली जुताई की जा सकती है। नं० ४ मुठिया (Handle) है। नं० ५ बैलोंके जोतनेका कड़ा है और नं० ६ एक कमानी है।

यह हैरो एक जोड़ी बैलके द्वारा काममें लाया जा सकता है। लिवरको आगे पीछे हटानेसे इससे उथली या गहरी जुताई कर सकते हैं। बुवाईके लिये शीघ्र खेत तैयार करने और ख़रीफ़की छिटकवां फस्लें बोनेके लिये यह बड़ा उपयोगी है। इस्तैमाल के समय उन्हीं बातोंका ख़्याल रखना चाहिये जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। कड़ेमें रस्सी या ज़ंजीर लगा कर जूयेमें जोड़ देते हैं। हंकवाहा पीछे २ हैंडिलके पास चला करता है।

गुड़ाई करनाः—वर्षा बन्द होनेके पश्चात प्रायः खेतोंमें खर पतवार बहुत उग आते हैं। देशी हलके इस्तैमाल करनेसे वे शीघ्र नहीं उखड़ते हैं। उनको शीघ्र उखाड़नेकेलिये गुड़ाई करना बहुत आवश्यक होता है। गुड़ाईके कामकेलिये (Cultivator) कल्टीवेटर नामका यंत्र, जिसका चित्र आगे दिया जाता है, बड़ा उपयोगी है। इस चित्रमें नं० १ इसका (Frame) ढांचा कहलाता है नं० २ आंकड़ा है ; नं० ३ एक पहिया है जो यंत्रके चलते समय ज़मीनपर घूमा करता है। नं० ४ (Shovel) खुर्पी है जिससे खेतकी खुदाई होती जाती है। नं० ५ (Handle) मुठिया है जिसे पकड़कर हंकवाहा यंत्रको चलाता है। आंकड़ेमें रस्सी या ज़ंजीर लगा
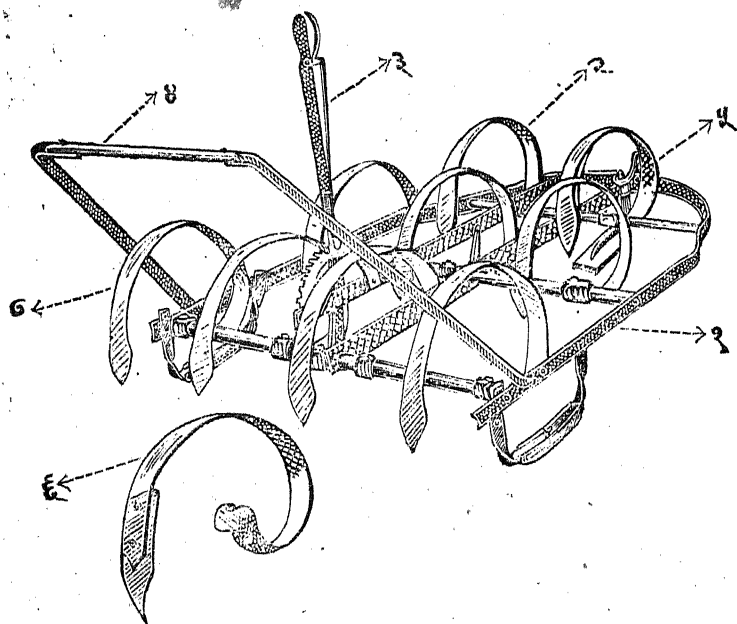
चित्र २

कर जुयेमें बांध देते हैं। एक जोड़ी बैल इसे खींच सकते हैं। एक आदमी बैलोंको हांकता है और दूसरा यंत्रको पकड़े रहता है। पहिया जितना ऊपरको उठा दिया जाताहै उतनी ही गहरी जुताई इससे होती है। काम करते समय पहिया ज़मीन पर घूमता हुआ चलना चाहिये।

वर्षाके दिनोंमें खेत जोतनेके लिये समय कम मिलता है। ऐसी दशामें इस यंत्रके द्वारा हम थोड़े समयमें खेत जोत सकते हैं। यह देशी हल-के समान गहरा जाता है और उससे तिगुना काम करता है।
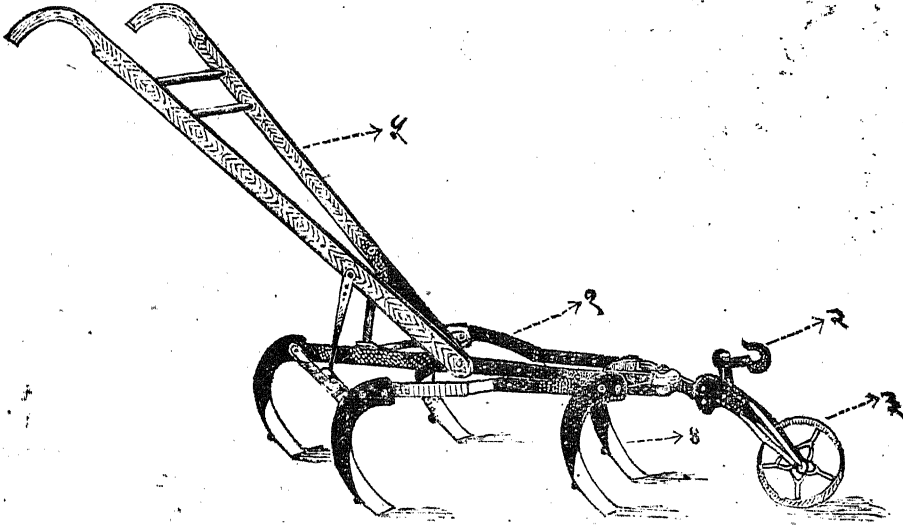
चित्र ३

उन्नतिका सिद्धान्त

[लेखक—श्री शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी]

" समाज और धर्म "

अब यदि हम इस भौतिक वर्णनको छोड़कर सामाजिक संगठनकी ओर ध्यानदेंतो हमें इस सिद्धान्तके और ज्वल्यमान प्रमाण प्राप्तहो जावेंगे। हर जातिकी तथा सर्वजातीय सभ्यताकी उन्नतिमेंभी समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होनेका प्रमाण मिलता है। आज दिन जिन २ जातियोंकी तथा उनकी सभ्यताकी जैसे २ उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है वैसेही इस परिवर्तन कीभी अधिक साक्षी मिलती चली जाती हैं। आजकलकी असभ्य जातियोंके रहन सहन, आचार विचार आदिकी भली भांति जांच करनेसे पता चलता है कि अपनी प्राथमिक और हीनावस्थामें समाधिकारी और समान व्यवहारी मनुष्योंके साधारण संगठन-का ही नाम "मानवी समाज" था! इस समाजमें पुरुषत्व और स्त्रीत्वके ही विचारसे मनुष्योंके कार्य्योंमें थोड़ी सीविभिन्नता मौजूद थी। हर आदमी और हर स्त्रीको अपने जीवन निर्वाहके सभी आवश्यक कार्य्य करने पड़ते थे। बढ़ई, शिकारी, मछुआ, शस्त्रास्त्र बनानेवाला, योधा, राज, मज़दूर इत्यादि २ सभीके कार्य एकही आदमीको करने पड़ते थे, और इसी प्रकार बहुतसे भिन्न २ कार्य एक

Evolution विकाश]

ही स्त्रीके आधीन थे। इस सामाजिक विकाशकी बहुत आदिम अवस्थामें ही शासकों और शासित लोगोंका अन्तर विद्यमान हो गया था। जिस समय मनुष्योंकी एक टोलीने जुदे २ भ्रमण न करके एक छोटीसी जमातमें परिभ्रमण करना प्रारंभ किया था उसी समयसे मुखियापनेकी प्रथाका प्रादुर्भाव हुआ। यह बात प्रायः नित्यही हमारे देखनेमें आती है कि बलवान तथा चतुर मनुष्य अन्य सब लोगों पर अपना प्रभाव जमा लेते हैं। जीवजन्तुओंमें, असभ्य मनुष्यों तथा पाठशालाके छात्रोंमें, इस कथनका सजीव प्रमाण मैजूद है। पहिले पहल तो यह प्रभुत्व प्रायः अनिश्चित और अनियमित होता है, कुछ अन्य लोगोंको भी हस्तक्षेप करनेका अधिकार रहता है। इस कारणसे उस मनुष्यके रहन सहन और कार्य प्रणालीमें कुछ भी अन्तर नहीं आता। शासक अपने शस्त्रास्त्र स्वयं ही तैयार करके अपने भोजनके लिये शिकार भी आप ही किया करते होंगे तथा अपने रहनेके झोंपड़ेकी भी अपने ही हाथोंसे मरम्मतकर लेते होंगे। अतः उनकी और उनके आधीन मंडलीकी आर्थिक अवस्थामें कुछ भीभेद नहीं रहाहोगा। परन्तु जैसे २ इस जमातकी उन्नति होती गई वैसे ही शासकों और और शासित प्रजाके पारस्परिक व्यवहारमें अधिक अंतर होता चला गया। यहां तक कि यह प्रभुत्व वंश परम्पराके लिये दृढ़ हो गया। मुखिया अथवा शासक लोग अब अपने जीवन निर्वाहके लिये बहुत कम उद्योग करने लगे (इसीलिये दूसरे लोग अब उनकी सेवा करने लगे) धीरे धीरे उन्होंने सारे राजसी चलन और व्यवहार सीख लिये।

इसी क्रमके साथ २ धार्मिक शासनकीभी नींव पड़ी और उसकी वृद्धि होना भी प्रारंभ होगया। संसारकी सभी जातियोंके प्राचीन ग्रंथोंसे पता चलता है कि पहिले राजा लोग ईश्वर तुल्य गिने जाते थे। एक राजाके जीवनमें उसकी आज्ञानुसार जो प्रथा चल जाती थी, तथा जो २ कार्य वह किया करता था, वेही सब कार्य करना उसके मरनेके पश्चात उसकी सन्तान भी अपना परम कर्तव्य समझती थी। इसी प्रकार इन आदिम शासकोंकी प्रतिष्ठा बढ़ते २ वे थोड़े ही कालमें कुलदेवताकी पदवी प्राप्तकर लेने लगे और संसारमें बड़े सम्मान और पूजाकी दृष्टिसे देखे जाने लगे। इनकुलदेवताओंकी प्रतिष्ठा बढ़ते २ अन्तमें इन्हें जगन्नियनता भगवानके बाद दूसरे दरजेके देवताओंका पद प्राप्त होने लग गया। हमारे देशमें प्रत्येक कुलका आदिम पुरुष कुल देवता कहलाता है और हर शुभ अवसर पर उसकी पूजा भी होती है। इसके पश्चात कुछ काल तक यह समकालोत्पन्न धार्मिक और नागरिक राज्यपद्धितियां साथ ही साथ विद्यमान रहीं। अतः बहुत काल तक राजा ही कुल पुरोहितका भी कार्य्य करता रहा और पुरोहित वर्ग भी राज्यके वंशज गिने जाते रहे*। इसी प्रकार बहुत काल तक धार्मिक नियम नागरिक नियमोंके साथ ही साथ पाले जाते रहे। यहां तक-कि आज दिन तक सभ्यताकी पराकाष्ठा पर पहुंची हुई जातियोंमें भी यह दोनों दमन करने वाली शक्तियां एक दूसरेसे बिल्कुल प्रथक नहीं हो पाई हैं।

इन्हीं दोनों शक्तियोंके साथ २ उत्पन्न होने वाली परन्तु इनसे शीघ्र ही प्रथक होने वाली एक तीसरी दमन करने वाली शक्तिका भी प्रादुर्भाव हुआ। इस शक्तिको व्यवहारिक उपयोग (Ceremonial Usage) कहते हैं इस शक्तिके कारण ही पारस्परिक व्यवहारमें अब राजाओंको उपाधियां तथा अन्य सम्मानपद दिये जाने लगे। अतः यह उपाधियां पहिले पहल इस ईश्वरावतार राजाके नाम बनीं। इसके पश्चात् कुल देवताओं तथा राजाओंको भी इस नामसे विभूषित किया जाने

*चीन देशके इतिहाससे इस प्रथाका पूरा २ पता चलता है, वहां पर राजा ही सब प्रजाके पुरोहितकी भांति देव मंदिर में जाकर देवताओंकी पूजा किया करता था और सारे चीनमें ईश्वरवत् मानाजाता था—Sir Alfred Lyall's 'Asiatic Studies.'

लगा ; तथा इसके पश्चात सरदारों और अन्य बड़े बड़े आदमियोंके सम्मानार्थ भी इनका प्रयोग होने लगा। यहां तक कि अन्तमें सामान्य मनुष्योंके भी पारस्परिक व्यवहारमें इनको काममें लाया जाना प्रारंभ हो गया। इसी प्रकार आज दिन सभ्य संसारमें जितने शब्द अभिनंदन और नमस्कार आदिक प्रचलित हैं, उनका श्रीगणेश पहिले पहल इसी समाजमें हुआ हुआ मालूम पड़ता है। थोड़ीसी ही खोजसे पता लग जाता है कि यह शब्द अवश्य ही पहिले क़ैदियोंने अपने विजेताओंकी कृपा प्राप्त करनेके लिये प्रयोग किये थे, तथा प्रजाने अपने राजाका (चाहे यह राजा मनुष्य हो अथवा देवता) अभिवादन करनेके लिये इनका व्यवहार किया था। इसके पश्चात नीची श्रेणीके पदाधिकारियोंके सम्मनार्थ यह शब्द व्यवहृत होने लगे और अन्तमें हमारे नित्यके व्यवहारमें जारी हो गये! दंडवत, प्रणाम, नमस्कार इत्यादि शब्द पहिले देवताओं और फिर राजाओंकी प्रतिष्ठाके लिये व्यवहारमें लाये गये! जैसे २ समय गुज़रता गया प्रायः सभी मनुष्य इस प्रतिष्ठा और सम्मानके पात्र बन गये! अतः यह सब व्यौरा देनेसे स्पष्ट ही विदित हो गया कि मानुषिक समाजकी समानतामें जैसे ही शासक और प्रजा रूपी भेदोपभेद उत्पन्न हुये वैसे ही इस विभिन्नताकी वृद्धि हो जानेके कारण मनुष्य समाजमें धार्मिक और नागरिक भावोंकी उत्पत्तिसे धर्म और राज्य (Church and State) नामक दो विभाग उत्पन्न हो गये! इसके पश्चात इन दो विभागोंके भी अन्य भेदोपभेद होने प्रारंभ होगये। बड़े, छोटे तथा समान काम और पदवीवाले मनुष्योंके पारस्परिक व्यवहारके नियमोंका यथारूप पालन होना और सरदारोंका राजदरबारमें प्रतिष्ठा आदि सैकड़ों प्रकारके सामाजिक व्यवहारके नियमोंका प्रादुर्भाव हो गया ?

कुछ समयके पश्चात राज्यानुशासनको यथाविधि सम्पादित करनेके लिये राजा, महाराज, मंत्री, न्यायाधीश, युद्ध सचिव, न्यायालय, राजकोष, कोषाध्यक्ष, इत्यादि २ सैकड़ों राज कर्म्मचारियोंके पद तथा उनके कार्य्यालय (Offices) निर्माणित हो गये। ग्रामीण पंचायतोंसे लेकर; कचहरियां, सभाएं और पार्लिमेंट तक बना दिये गये। सारांश यह है कि समयानुसार शासन-पद्धतिमें बहुत कुछ परिवर्तन और (Modification) हुये। इसके साथ ही साथ धार्मिक संगठनमें भी भेदोपभेद होनेके कारण, आचार्य्य, महन्त, पुरोहित, पुजारी, पण्डे, इत्यादि २ की सृष्टि हो गई, यहां तक कि प्रत्येक आचार्य्यके धार्मिक विचारोंकी विभिन्नताके ही कारणसे अनेक जुदे २ मतमतान्तरों तथा अनेक देवालयों की स्थापना होकर प्रत्येक नवीन मतका एक जुदा आचार्य बन बैठा! इसी क्रमके साथ २ बीसियों प्रकारकी लोक रीतियां, आचार व्यवहारकी बातें और सामाजिक परिस्थितिके अनुसार वस्त्राभूषण धारण करनेके नियमोंका संगठन हुआ! इस विभिन्नताको देखते हुये हमें आश्चर्य्यान्वित न होना चाहिये क्योंकि जहां प्रत्येक जातिके संगठन में विभिन्नता मौजूद है वहां प्रत्येक जातिकी इस संगठन प्रणालीमें भी बड़ा भारी अन्तर पड़ गया है। अतः प्रत्येक जातिकी शासन प्रणाली, धार्मिक और सामाजिक संगठन, लोकरीति, पारस्परिक व्यवहारके नियम, बोल चाल, पहराव इत्यादि सभी बातोंमें विभिन्नताका साम्राज्य व्याप्त हो रहा है!

श्रमविभाग तथा जातियोंका विकाश।

सामाजिक संगठनमें अब एक और भेद उत्पन्न हो गया। दैनिक व्यवहारके प्रत्येक कार्य करनेके लिये जुदी २ जातियां उत्पन्न हो गईं! पूर्व कथनानुसार शासकोंमें जिस प्रकार अनेकों भेदोपभेद उत्पन्न होकर आधुनिक शासनप्रणालीकी रचना हुई है, उसी प्रकार प्रजामें भी अनेकानेक भेदोपभेदोंके पश्चात जुदे २ कार्य सम्पादन करनेके लिये जुदी २ जातियोंका प्रादुर्भाव

हुआ है ? अर्थशास्त्रवेत्ता इसी जाति रचनाका (Division of Labour) औद्योगिकविभाग या श्रमविभागके नामसे पुकारते हैं। पूर्वी देशोंकी जाति रचना तथा पाश्चात्य देशोंके (Incorporated Gilds) इन कारपोरेटेड गिल्ड्सकी उत्पत्तिका यही प्रारंभिक इतिहास है ! यथार्थमें इस उन्नतिको इन जातियोंका विकाश कहना चाहिये ; क्योंकि अपनी प्रारंभिक अवस्थामें समाधिकारी और समानव्यवहारी होते हुये भी (जहां हर मनुष्य अपने जीवन निर्वाहके लिये सब कार्य अपने ही हाथों करता था) अब इन जातियोंका संगठन ऐसा वृहत और विस्तृत (Complex) हो गया है कि एक मनुष्य एक ही कार्य करके अपनी अन्य आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये अपने सजातियोंकी सहायताके आश्रित रहता है। मनुष्य समाजके इस व्यापारिक संगठनमें विभिन्नताकी पराकाष्ठा मौजूद है। क्योंकि एक ही जातिके मज़दूर पेशा लोगोंमें अपना २ काम बांटे जाने पर भी, उसी जातिके अन्य सभ्योंकी अवस्थामें कोई परिवर्तन नहीं होता और वे ज्यों के त्योंही बने रहते हैं । एक दूसरेसे बहुत दूर होनेके कारण उनमें अभी सहकारिता ((Cooperation) के बीज अंकुरित नहीं हो पाये हैं। अनुमान कीजिये कि भील लोगोंकी एक ही जाति दो प्रथक २ गांवोंमें एक दूसरेसे १०० मीलकी दूरी पर आबाद है। परन्तु एक दूसरेके पास न पहुंच सकनेके कारण प्रत्येक गांवमें धोबी नाई, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदिका काम प्रथक २ कुटुंबोंके सुपुर्द है। यहां एकही जातिकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये दो २ कुटुंबोंको काम करना पड़ता है। अगर यह जाति पास ही पास रहती होती तथा एक गांवसे दूसरे गांवमें जानेका सुभीता होता, तो एकही कुटुंब इन कामोंको सम्पादित कर लेता और अन्य लोग किसी दूसरे उपयोगी कार्यको संभाल लेते। अतः दूर होनेके कारण इन अर्धसभ्योंकी अवस्थामें कोई परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु एक जगहसे दूसरी जगह आने जानेकी सुविधाएं हो जानेसे प्रत्येक ग्राम व प्रत्येक नगर अपनी प्राकृतिक स्थितिके अनुसार अपनी कार्य्यशैली निर्धारित कर लेगा और इसप्रकारसे वह अन्य आवश्यक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये दूसरे नगरों व ग्रामोंका आश्रित हो जायगा। यदि एक नगरमें कोयलेकी खान मौजूद है तथा दूसरे नगरमें लोहेकी खानका पता चला है और अगर इन नगरोंमें आने जानेका सुभीता नहीं है, तो पहिले नगर वाले खानमेंसे उतनाही कोयला निकालेंगे जिसकी कि उन्हें आवश्यकता होगी। बाकी लोग अन्य कार्य्योंमें लग जायेंगे। इसी प्रकार दूसरे नगरवासीभी अपनी आवश्यकतानुसार लोहेका उपयोग करेंगे। परन्तु यदि इन दोनों नगरोंमें आने जानेका अच्छा सुभीता मौजूद हो तो पहिले नगरके निवासी अधिक कोयला निकाल दूसरे नगरवासियोंकी सहायता कर सकेंगे और इस तरह पर कोयला और लोहा दोनों ही वस्तुओंकी उपयोगितामें वृद्धि हो जायगी !

इस व्यापारिक (Differentiation) विभेद याप्रभेदसे प्रत्येक व्यापार और उद्यमके लिये एक २ नगर प्रसिद्ध हो जाता है। यहव्यापारिक (Subdivisions.) विभाग एक ही जातिमें नहीं वरन् जुदी २ जातियोंमेंभी मौजूद हैं। जैसे २ हमइस ओरअधिक ध्यान देते हैं वैसेही वैसे हमें पता लगता है कि प्रारंभिक अवस्थामें असभ्य अवस्थासे मनुष्य जाति अब कितनी अधिक उन्नतिशील होगई ये ! मनुष्यजातिकी इस व्यापारिक उन्नतिमें हमें अपने सिद्धान्तका एक बड़ा आश्चर्य्यजनक उदाहरण प्राप्त होता है ! ज़रा इस विभिन्नताकी विकरालता पर विचार तो कीजिये ? एक जातिसे जुदे २ कार्य करने के कारण जुदी उपजातियों का बनना, फिर इन उपजातियों की भी एक २ मंडलीका जुदा २ होजाना, इन मंडलियोंके भी प्रत्येक भागका एक एक ख़ास व्यवसाय लेकर प्रथक २ काम आरम्भ करना, तथा इन जुदे जुदे व्यवसाइयोंमेंसे भी

अलग अलग वस्तुओंके बनाने वाले मजदूरोंका पृथक होना, समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होनेवाले इस विशाल परिवर्तन काही द्योतक है।

हमारे उपरोक्त कथनसे पाठकोंको भली भांति विदित होगया होगा कि मनुष्योंके सामाजिक विकाशके वर्णनमें इस सिद्धान्तका बड़े विस्तार से विवेचन होजाता है। परन्तु इसकी सार्वभौमिकता प्रमाणित करने के लिये हम यह भी दिखलाना चाहते हैं कि मनुष्योंके कार्य्यों और विचारोंके प्रत्येक परिणाममें, चाहे वह प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष तथा वास्तविक हो या कित्रिम, यही सिद्धान्त गौण रूपसे व्याप्त है।

'भाषा'

भाषा उस साधनको कहते हैं जिसके द्वारा एक मनुष्य अपने विचारोंको दूसरे पर प्रगट कर सकता है। हमारी इस परिभाषाके अनुसार भाषाके दो मुख्य विभाग हैं। पहिले को सांकेतिक (Inarticulate Sound) और दूसरे को परिस्कृत भाषा (Articulate Sound) कहते हैं! पहिली तरह की भाषा मानुषिक भाषाकी बड़ी निकृष्ट और हीन अवस्था है क्योंकि इससे किसी संकेत या विशिष्ट ध्वनि द्वाराही एक मनुष्य अपने विचारोंको (बड़ी कठिनता से) दूसरों पर ज़ाहिर करता है! जैसे ओह! कहने से हमें तुरन्त ज्ञात होजाता है कि वक्ताको कोई आन्तरिक दुख या क्लेष है। छोटे २ जीवोंको भी इसी सांकेतिक भाषा द्वारा अपनी इच्छायें प्रगट करनेकी शक्ति प्राप्त है। हम अभी यह नहीं कह सकते हैं कि प्रारंभिक कालमें मनुष्योंकी भी यही भाषा थी। अगर कभी यह सिद्धान्त निश्चित हो जायगा तो हम अवश्य ही कह सकेंगे कि भाषाके विचारसे भी प्रारंभिक कालमें सब जीवोंमें समानता विद्यमान थी। परन्तु (Philology) भाषा विज्ञानके सिद्धान्तोंसे यह बात तो अब भी निश्चित हो गई है कि हर भाषाकी प्रारंभिक अवस्थामें उसमें केवल संज्ञा और क्रिया वाची शब्द ही मौजूद थे। थोड़े ही काल पर्य्यन्त इन्हीं धातुओंके थोड़े थोड़े हेर फेरसे कितने अधिक रूपान्तर भेद बन गये यह सब बातें व्याकरण जानने वालोंसे अविदित नहीं हैं। जैसे संज्ञाके संस्कृतमें ३ विभाग, रूढ़ि, योगिक और योगरूढ़ि हैं। एक बचन, द्विवचन तथा बहुवचन, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग तथा कर्त्ता, कर्म, सम्प्रदान, अपादान, संबोधन, अधिकरण, करण इत्यादि २ संज्ञाके ही विभाग हो गये हैं। इसी प्रकार क्रियाके भी बहुतसे भेदोपभेद मौजूद हैं। अतः स्पष्ट हो गया कि व्याकरण द्वारा धातुओंके भेद, उपभेद, भाग, विभाग, इत्यादि २ की रचना हो जानेके कारण अब हमारे साहित्याचार्य्य पंडितगण प्रत्येक वाक्यके कई कई अर्थ निकालते हैं, और प्रत्येक शब्दके स्थानान्तर तथा रूपान्तर हो जाने पर उनके जुदे जुदे अर्थ कर डालते हैं। इसके अतिरिक्त भाषाके विकाशमें एक और विभिन्नता हो गई है। इसके कारण एक ही धातु होने पर भी आज कल की प्रत्येक इण्डो आर्य्यन (Indo Aryan) भाषामें उनके रूप भिन्न भिन्न हो गये हैं। भाषा विज्ञानके सिद्धान्तोंसे हमें यह बात बहुत पहिले ही ज्ञात हो चुकी है कि सब भाषाओंके शब्दोंको जुदी जुदी श्रेणियोंमें विभक्त करके उनकी समानता तथा सभोंकी धातुओंकी एकता प्रमाणित हो सकती है। जैसे

लैटिन	ग्रीक	जर्म्मन	फ्रेंच	इंगलिश,	संस्कृत	फ़ारसी
पेटर	पेटीर	वेटर	पेइत्रे	फादर	पित्र	पिदर
मेटर	मीटीर	मटर	मेइत्रे	मदर	मात्र	मादर
फ्रेटर	फ्रटीर	ब्रडर	ब्रदर	ब्रदर	भ्रात्	ब्रादर

इसी प्रकार बहुतसी संज्ञाएँ एक ही धातुसे निकली हैं और इन्हीं संज्ञाओंमेंसे पुनः अनेक संज्ञाओंकी सृष्टि हुई है। इस (differentiation) प्रभेद की भी इतनी अधिक वृद्धि हुई है कि धातुओंसे शब्द बने, और इन्हीं शब्दोंके रूपान्तर होकर तथा इनमें अनेक प्रत्यय आदि लगाकर आज दिन हमारी भाषामें इतने अधिक शब्द

मौजूद हो गये हैं कि साधारण मनुष्योंके लिये उनकी पारस्परिक समानता तथा एक ही धातुसे विकाश होने का ज्ञान प्राप्त कर लेना दुष्कर है।

इसी प्रकार एक भाषासे ही बहु भाषाओंकी उत्पत्ति हो जाना भी इसी विभिन्नताका द्योतक है ? चाहे भाषा विज्ञानवेत्ताओंका यह अनुमान ठीक हो कि सब भाषाएँ एक ही प्रारंभिक भाषासे निकली हैं अथवा वे लोग दो या इससे भी अधिक भाषाओंको मौलिक प्रमाणित करें; परन्तु इस बातके मान लेनेमें किसीको भी आना कानी नहीं हो सकती है कि (Indo European) इण्डो यूरोपियन भाषाओंका उद्गमस्थान एक ही होने पर भी इस विभिन्नताके क्रमसे वे आजकल बिलकुल जुदी जुदी हैं। अतः जिस क्रमानुसार इस पृथ्वीकी जातियोंमें विभिन्नता हुई हैं उसी प्रकार इन जातियोंकी भाषामें भी भेदोपभेद उत्पन्न होते चले गये हैं। हमारे इस कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण भी मौजूद है क्योंकि आज दिन भी किसी देशकी एक भाषा होने पर भी उसके प्रान्तों की भाषाएँ जुदी जुदी होती हैं। तथा प्रान्तीय भाषा एक होने पर भी प्रत्येक नगरकी भाषामें थोड़ा बहुत अन्तर पड़ जाता है। जैसे हमारे प्रान्तकी सार्वजनिक भाषा हिन्दी होने पर भी प्रयाग और मथुराकी भाषामें बड़ा भारी अन्तर है। तथा बंगला प्रान्तकी भाषा बंगला होने पर भी मानभूम और हुगली ज़िलोंकी भाषाओंमें भी अन्तर मौजूद है। अतः भाषाकी क्रमिक उन्नतिमें, जुदी जुदी भाषाओंका प्रादुर्भाव होना, जुदी जुदी भाषाओंकी धातुओंकी सृष्टि होना तथा इनधातुओंसे जुदे जुदे शब्दोंकी रचना होना, यह सब बातें स्पष्ट ही बतलाती हैं कि भाषाके विकाशमें भी समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होने वाले सिद्धान्तकी सार्वभौमिकता मौजूद है।

बोल चालकी भाषाके वर्णनके पश्चात अब हम पुस्तकों और समाचारपत्रोंकी लिखी हुई भाषाका थोड़ासा वृत्तान्त बतलाना चाहते हैं। पाठकों से यह बात अविदित नहीं है कि हमारी बोलचालकी भाषामें तथा पठित समाजकी भाषामें बड़ा भारी अन्तर है। हमारे समाचार पत्रों तथा पुस्तकोंकी भाषा हमारी व्यवहारिक भाषासे अवश्य ही क्लिष्ट होती है। अतः लिखी जाने पर हर भाषामें यह एक और नया परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक ही है।

पैमाइश

[ले० श्रीयुत नन्दलालजी तथा मुरलीधरजी, एल. ए-जी.]

६–तख़्ता मुस्तहसे पैमाइश

हम पिछले अध्यायमें बतला चुके हैं कि तख़्ता मुसत्तहकी पैमाइश उन स्थानोंके लिए अधिक उपयोगी है जहां ऊंचाई, नीचाई, जंगल या आबादी इत्यादिके कारण जरीबी पैमाइशसे काम नहीं लिया जा सकता।

प्लाटके अध्यायमें यह बतलाया गया है कि जब किसी रक़बेकी त्रिभुजी पैमाइशकी जाती है तो हर एक त्रिभुजकी तीनों भुजाओंकी पैमाइश किये बिना उन भुजाओंके बीच ठीक प्लाट नहीं किये जा सकते। इसलिए जरीबी पैमाइशमें ठीक कोण नक़शेपर प्लाट करनेके लिए यह बहुत ज़रूरी होता है कि जो रक़बा एक या दो त्रिभुजोंसे घेरा जाय उन त्रिभुजोंकी तीनों भुजाओंकी पैमाइशकी जाय। परन्तु तख़्ता मुसत्तहकी पैमाइशमें उसकी ज़रूरत नहीं है, बल्कि किसी दो रेखाओंके बीचका कोण जैसा कि आगे बतलाया जायगा तीसरी भुजाको नापे बिना ठीक प्लाट हो जाता है। इसलिए ऐसे स्थानोंपर जहां त्रिभुजकी तीनों भुजाएं, मकान इत्यादिके बीचमें आ जानेसे नापी नहीं जा सकतीं, या ऊंचाई नीचाई अधिक होनेके कारण जरीबसे ठीक दूरी नापना क़रीब क़रीब नामुमकिन है, वहां तख़्ता मुसत्तहका प्रयोग किया जाता है।

[Survey पैमाइश]

इस पैमाइशमें उन यंत्रोंके अतिरिक्त जो जरीबी पैमाइशमें मौक़े पर काममें लाये जाते हैं निम्न-लिखित यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है।

(१) तख़्ता मुसत्तह तिपाई सहित

(२) शिश्त

(३) क़ुतुबनुमा

मानलो कि एक चक अ व ज द ह आबादी-का है और चारों ओर सड़कें और बाग़ीचे हैं। उसकी पैमाइश करके उन सबका नक़्शा बनाना है। इस चककी त्रिभुजी पैमाइश केवल उस समय हो सकती है जब उसके भीतर करणकी रेखा ऐसी डाली जा सकें जिनसे यह कुल रक़बा त्रिभुजोंमें घेर लिया जाय; लेकिन उसके भीतर घर है; और करण नापे नहीं जा सकते; इसलिए तख़्ता मुसत्तहका प्रयोग आवश्यक है।

१--तख़्तेपर काग़ज़ चढ़ाना--इसकी दो विधि हैं।

(अ) अगर किसी छोटे रक़बेकी पैमाइश करना हो तो नक़्शा खींचनेका काग़ज़ (ड्राइंग पेपर) तख़्तेसे क़रीब दो इंच अधिक लम्बा चौड़ा काममें लाया जाता है। उसको तख़्तेपर जमानेके लिए एक ओर स्पंज या भीगे हुए कपड़े-से कुछ गीला करके तख़्तेपर ऐसा खींचकर फैलाना चाहिये कि कहीं कोई शिकन या काग़ज़ तख़्तेसे उभरा न रहे। तब किनारोंको नीचेकी ओर मोड़कर चारों कोनोंपर बटन या पिन लगा देनी चाहिये।

अगर किसी बड़े रक़बेका नक़्शा तैयार करना हो तो पहिले क़रीब ३ इंच चौड़ा मलमलका टुकड़ा जो पहिलेसे भली भांति धोकर सुखा लिया गया हो तख़्तेके चारों किनारोंपर लेईसे इस प्रकार लगाना चाहिये कि क़रीब एक इंचके कपड़ेकी चौड़ाई तख़्तेके किनारोंपर मढ़कर नीचे चिपक जाय और दो इंच तख़्ते पर रहे। उसके पीछे तख़्तेसे क़रीब एक या दो सूत लम्बाई और चौड़ाईमें छोटा ड्राइंग पेपर उपरोक्त रीतिसे कुछ गीला करके उसके चारों किनारोंपर लेई लगाकर इस प्रकार चिपका दिया जाय कि कोई सिमटन बाक़ी न रहे। फिर एक सूखा कपड़ा लेकर कुल शीट, और विशेष कर उसके लेई लगे हुए किनारोंको रगड़ना चाहिये ताकि सूखने-में भी कोई सिमटन न आवे; काग़ज़ तख़्तेपर सूख जाने पर काममें लाने योग्य हो जायगा।

२--जब शीट तख़्तेपर नियमानुसार जमा दी गई तो आवश्यक यंत्रों सहित मौक़े पर पहुंच कर कुल कोणोंपर अर्थात् अ ब ज द ह स्थानोंपर झंडिया गाड़कर एक स्थानकी झंडी (जैसे ज स्थानकी) अलग निकालकर उस स्थानपर
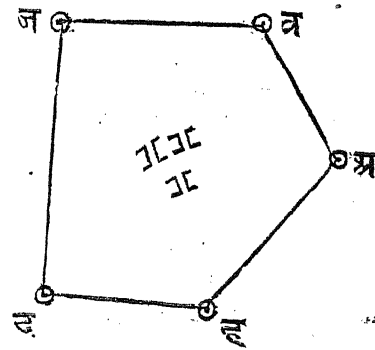
चित्र १

तख़्ता तिपाई सहित ऐसा चौरस जमाना चाहिये कि अगर तख़्तेपर ऊपरसे पेन्सिल छोड़ी जाय तो किसी ओरको न लुढ़के। जब तख़्ता बिल्कुल चौरस हो जाय तो पेचोंसे तख़्तेको कस देना चाहिये। तब झंडी ज के ठीक ऊपर शीट पर एक विन्दु लगा देना चाहिये (मान लो यह विन्दु ज शीटपर स्थापित हुआ।)

३--जब विन्दु ज शीट पर स्थापित हो गया तो उसपर एक आलपीन खड़ी करके उससे शिश्तका किनारा मिलाकर तख़्तेपर इस प्रकार रखना चाहिये कि उसकी बारीक छेद वाली झिरी अपनी ओर रहे और झिरीमें जो तार लगा हुआ है वह उस झंडीकी ओर रहे जो द स्थानपर गढ़ी

है। अब सूराख़ वाली झिरीसे देखकर शिश्तको ऐसे मौक़ेसे लाना चाहिये कि उसकी झिरी वाला तार द झंडीको बिल्कुल बीचों बीचसे काटता हुआ दिखाई पड़े। (इस स्थानपर यह आवश्यक है कि जब झंडी शिश्तसे कटी हुइ हो तो उसका किनारा आलपीनसे मिला रहे) तब शिश्तकी सीधमें एक रेखा ज से द की ओर खींची जाय और फिर उपरोक्त रीतिसे शिश्तको घुमाकर उसी तरहसे व झंडी काटकर ज से दूसरी रेखा ब की ओर शिश्तकी सीधमें खेंच देना चाहिये अब उपरोक्त चककी भुजाएं ब ज और ज द और उनके बीचका ठीक कोण शीटपर बन गया। केवल उनकी लम्बाई पैमाइश करके मालूमकी जानी बाकी है।

नोट १—ज्ञात रहे कि शिश्तका प्रयोग करनेके पहिले उसकी शुद्धताकी जांच कर लेना ज़रूरी है यह इस प्रकार की जाती है:—

(क) यह देखना चाहिये कि अगर शिश्तकी झिरियोंके बीचों बीचमें पटरी पर कोई रेखा खींची जाय तो वह उसके दोनों किनारोंके समानान्तर होगी या नहीं। अगर न हो तो शिश्त प्रयोग करने योग्य नहीं है।

(ख) एक बिलकुल सीधी झंडी कुछ दूरीपर खड़ी कराके नियमानुसार तख़्तेपर शिश्त रख कर उससे झंडी काटो और आंखके पास वाली झिरीमें नीचे ऊपर दृष्टि डालकर ख़ूब देख लो कि दूसरी झिरीका तार बिलकुल झंडीकी सीधमें रहता है या कुछ इधर उधर हटा हुआ मालूम होता है। अगर हटा हुआ मालूम होता है तो शिश्त ख़राब है और दुरुस्ती करने योग्य है।

४—शीटपर चक की दो भुजाओंकी दिशाओं और उनके बीचका कोण खींचनेपर जब शीट दिशाके ख़्यालसे मौक़ेपर ठीक रक्खा हो तो उसी समय क़ुतुबनुमाके द्वारा उत्तरी रेखा नीचेकी विधिसे बनानी चाहियेः-हम बयान कर चुके हैं क़ुतुबनुमाकी सुई हमेशा उत्तर दक्खिन को रहती है। जो सिरा उत्तरकी तरफ़ रहता है, उसपर एक निशान लगा रहता है। उत्तरकी ओर अक्षर N और दक्खिनकी ओर अक्षर S और दोनों दिशाओंके बीचों बीच शून्य बना रहता है। उत्तरवाले भागमें शून्यके दाहिने बाएँ दरजे कटे हुए होते हैं। दिशा सूचकके बक्सको शीटके ख़ाली हिस्सेमें तख़्तेपर रखकर धीरे धीरे इस तरह से घुमाना चाहिये कि उसकी दोनों तरफ़ (यानी उत्तर व दक्खिन) सुई बिन्दुपर ठहर जाय। अब यातो सुई दोनों दिशाओंके शून्योंपर रुक जाय या उनके दाहिने बाएँ हिलनेमें दोनों ओर बराबर दरजोंतक जाती हो तो बक्सके समानान्तर एक रेखा खींचकर उस रेखामें उत्तरकी ओर झंडीका चिह्न बनादेना चाहिये। यह उत्तरी रेखा होगी और हमेशा नक़शेकी ठीक दिशा बतलायगी।

नोट—क़ुतुबनुमासेजो उत्तर मालूम होता है वह ठीक उत्तर नहीं है बल्कि असली उत्तरसे पूरब या पछिमकी ओर हटा हुआ रहता है। बम्बई में १६५७ वि० में आधी डिग्री (अंश) पूरबकी तरफ़ हटा हुआ था। इसके हटनेका कुछ नियम नहीं है मगर इसका प्रभाव नक़शेपर अधिक नहीं पड़ेगा, इसलिए ऐसे नक़शोंमें जिनमें क़ुतुबनुमासे उत्तरी रेखा बनानी पड़ती है उसके उत्तरको असलीउत्तर मानते हैं; परन्तु उन ज़िलोंमें जिनमें ट्रावर्सथियोडोलाइट द्वारा हुआ है औ क़ुतुबनुमासे उत्तरीरेखा नहीं बनाई गई बल्कि उत्तरी ध्रुवसे बनाई गई है, उनकी उत्तरी रेखा इससे कुछ भिन्न होती है और यह बिलकुल ठीक होती है।

५. जब शीटपर चककी दो भुजाओंकी दिशा और उनके बीचका कोण और उत्तरी रेखा बन गई तो तख़्ता मुसत्तहके पेच ढीले करके उसको उस स्थानसे अलग कर देना चाहिये और उस स्थानपर झंडी गाड़कर उस झंडीसे किसी एक खींची हुई रेखापर नियमानुसार जरीब डालनी चाहिये। (मानलो झंडी ज की ओर ज़रीब डालते

हुए चलकर झंडी द पर पहुंचे) अब दोनों झंडियों (अर्थात् ज और द) के बीचकी जो दूरी पैमाइशसे आई, उसको पैमानेसे नापकर उस रेखापर जो शीटपर बिन्दु ज से द की ओर खींची गयी थी विन्दु लगा दिया और उस बिन्दु पर मामूलीचांदे-का चिह्न बना दिया (इस प्रकार बिन्दु द नक़शेपर निश्चित हुआ)। फिर बिंदु द की झंडी हटाकर उस स्थानपर तख़्ता मुसत्तह ऐसी होशियारीसे रखना चाहिये कि यदि बिन्दु द के नीचेसे कंकड़ी गिरावें तो सीधी झंडीके सूराख़में गिरे और तख़्तेका तल भी चौरस रहे। जब तख़्ता इस तरह पर खड़ा हो जाय तो ज और द दोनों बिन्दुओंपर, जो शीटपर बने हैं आलपीने खड़ी करके शिश्तको उनसे बिलकुल मिलाकर रखो। फिर द बिन्दुसे झंडी ज को धीरे धीरे तख़्ता घुमाकर काटो। जब बिन्दु ज की झंडी ठीक ठीक कट जाय, तो उत्तरी रेखाके समानान्तर क़ुतुब-नुमाको रखकर यह भी निश्चय करलो कि नक़शे की दिशा बिलकुल ठीक है। या नहीं जब क़ुतुबनु-माकी सुई ठीक उत्तर दक्खिनपर हो और झंडी ज भी शिश्तसे कट रही हो तो तख़्तेके सब पेंच कस-देने चाहिये और फिर इस स्थानसे उपरोक्त रीतसे शिश्त घुमाकर ह बिंदुकी झंडीको काटकर द ह रेखा खींच लेनी चाहिये। और तख़्तेको हटा देना चाहिये। तदनन्तर द पर झंडी गाड़कर जरीब डालते हुए ह की ओर चलना चाहिये।

६–ह स्थानपर पहुंचकर उपरोक्त रीतिसे द ह की दूरी पैमानेके अनुसार रेखापर बनालो। फिर उस स्थानकी झंडी अलग करके वहां भी तख़्ता पहलेकी तरह लगाओ और पहले झंडी द की वापसी लेकर अ को वहांसे काटो।

७-जब जरीब डालते हुए झंडी अ पर पहुंचो तो वहां पर भी झंडी ह की वापसी लेकर झंडी ब को काटो। चूंकि झंडी ब पहले बिन्दु ज से काटी जा चुकी है और अब फिर बिन्दु अ से काटी गई; तो जहां यह रेखाएं एक दूसरेको काटें वह स्थान झंडी ब का होगा। जो दूरी बनाये हुए बिन्दुओं ब ज के बीच ज़मीनपर हो, वही पैमानेके अनुसार शीटपर भी होनी चाहिये। अगर ऐसा न हो तो समझना चाहिये कि काम ठीक नहीं हुआ और दुबारा उसकी जांच उलटी तरफ़से करनी चाहिये।

नोट१–याद रहे कि झंडीको शिश्तसे काटकर उसके समानान्तर रेखा खींचनेमें बहुत होशि-यारीकी ज़रुरत है। नहीं तो ऐसा सम्भव है कि कोई रेखा शिश्तके किनारेसे मिलाकर खड़ी पेन्सिलसे खींची जाय और कोई पेन्सिल झुका कर खींची जाय तो उसके बीचका कोण ग़लत होजाय और उसका प्रमाण ट्रावर्सकी रेखापर पड़े और ट्रावर्स ग़लत हो जाय।

नोट२–पैमाइश करने वालेको चाहिये कि जो रेखा शिश्तसे मिलाकर खींचे वह उसके दाहिनी ओर हो। ऐसा करनेसे यह सुगमता होगी कि वह बाएँ हाथसे शिश्तको मज़बूतीसे पकड़े रहेगा और दाहिने हाथसे रेखा खींच देगा।

नोट ३—हर स्थानपर वापसी लेकर उसके संबंधी दूसरी झंडी काटनेके समय क़ुतुब-नुमा से जांच करनेका कोई और अभिप्राय नहीं है। इससे केवल यही निश्चय हो जाता है कि नक़शेकी दिशा ठीक है या नहीं, क्यों-कि जब किसी झंडीकी वापसी ठीक तौर से ली जायगी तो क़ुतुबनुमाको सुई अवश्य उत्तर दक्खिन रहेगी। उपरोक्त रीतिसे प्रत्येक छोटे बड़े रक़बेका ट्रावर्स किया जा सकता है और फिर साधारण रीतिसे 'जो पहले बतलाई जा चुकी है' हिस्सा बांटके भीतर ब्योरेका क़िश्त-वार हो सकता है। साधारणतः टुकड़ोंका भीतरी ब्योरा यानी खेत, मकान, पेड़ इत्यादि राइट एंगिलकी सहायतासे बनानेमें आसानी होती है। पर यदि किसी विशेष स्थानतक (जो दिखाई देता हो) पहुंचनेमें या उसतक दूरी नापनेमें दिक़्क़तहो तो उसको तख़्ता मुसत्तासे भी बनाके दूरी मालूम

कर सकते हैं। मसलन किसी नदीके दूसरे किनारे पर एक पेड़ है जिसका मौक़ा नक़शेपर बनाना है। नक़शेपर किसी रेखाके दो सिरोंपर दो स्थानों क ख परजो नदीके इस किनारेके क़रीब हों झंडियां गाड़कर एक झंडीके स्थानसे, उपरोक्त रीतिसे, दूसरी झंडीकी वापसी लेकर पेड़ ग को शिश्तसे काटो और रेखा खींचदो। और अब उसके पीछे दूसरी झंडीके स्थानपर तख़्ता लगाकर पहिली झंडीकी वापसी लेकर वहांसे भी पेड़को काटो और रेखा खींच दो। जहां यह दोनों रेखाएँ एक दूसरेको काटें वहीं पेड़का मौक़ा होगा।
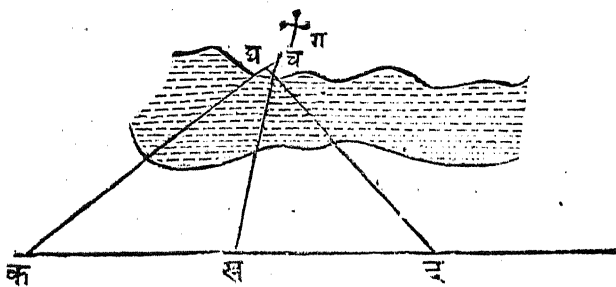
चित्र २

ज़्यादा इतमीनानके लिए इसी स्थानको तीसरे स्थाई स्थानसे भी ज़रूर काटना चाहिये। किसी स्थान द से निरीक्षणकर, एक रेखा खींचो। यदि यह रेखा ग विन्दुपर न मिले बल्कि घ विन्दु पर मिले तो पेड़की असली जगह ग घ च त्रिभुजके बीचों बीच माननी चाहिये।

तख़्ता मुसत्ताकी सहायतासे ऊंची नीची ज़मीनोंकी पैमाइश करना—जहां कहीं ज़मीन इस क़दर ऊँची नीची होती है कि जरीब डालनेसे ठीक दूरी नापना कठिन हो वहां तख़्ता मुसत्तासे विशेष लाभ यह होता है कि पैमाइश कियेजाने वाले चकके सब कोनों पर झंडियां गाड़कर बीचमें कोई केन्द्र स्थान मान लेते हैं, और उस स्थानपर उपरोक्त नियमानुसार तख़्ता मुसत्ताको रखकर उत्तरी रेखा बनानेके बाद वहींसे सब झंडियोंको शिश्त द्वारा काट कर रेखाएँ खींचदी जाती हैं। फिर उस स्थानसे एक झंडीतककी दूरी जितनी ठीक मुमकिन हो सके नापकर तख़्ता उस झंडीपर रखा जाता है, जिसका फ़ासला नप चुका है। शीटपर भी इसका स्थान बना लेते हैं। इसके बाद इस झंडीके स्थान से केन्द्र स्थानकी झंडीकी वापिसी लेकर, दूसरी झंडी शिश्तसे काटते हैं। अब दूसरी झंडीका स्थान शीटपर इस प्रकार मिल जायगाः—जहां पर यह रेखा, उस दूसरी झंडीकी ओर केन्द्र स्थानसे खींची जायगी वही स्थान इस दूसरी झंडीका होगा। लेकिन याद रहे कि हर स्थानको कमसे कम तीन रेखाओंसे काटना चाहिये। इस प्रकार एकके बाद दूसरीकी वापसी लेकर कुल झंडियां शिश्तसे काटकर, उनके ठीक मौक़े शीटपर क़ायम-कर लिये जाते हैं; और ऊँचाई नीचाईके कारण जो ग़लती जरीबसे नापनेमें आती है उसको इन दोनों झंडियोंके बीचकी रेखामें अंतरविभाग द्वारा बांट देते हैं। इस तरहसे सीमा ठीक हो जाती है और किश्तवारमें भी अधिक ग़लती नहीं होती।

तख़्ता मुसत्तापर क़ाग़ज़ बदलना यानी एक पैमाइश-किये हुए शीटके सिलसिलेमें पैमाइश करनेके लिए दूसरे शीट को चढ़ाना—पहले शीटपर आख़री क़ायम किये हुए विन्दुसे किसी दूसरे ऐसे ही बिन्दुको, जो उस हाशियेके क़रीब हो जिसके सिलसिलेमें दूसरे शीटपर पैमाइश करनी है, एक रेखा खींच देनी चाहियें। फिर शीटको तख़्तेसे अलग करके उसके हाशियेको इस रेखासे काट देना चाहिये। इसके बाद दूसरा शीट तख़्तेपर नियमानुसार जमाकर कटा हुआ हाशिया नए शीटके एक हाशियेपर चिपका कर इन दोनों बिन्दुओंपर (जिनके बीच इसमें रेखा खींची हुई है और इनके अतिरिक्त दो एक और बिन्दुपरजो पहले शीटके सिलसिलेमें पैमाइश होकर लिये हुए हाशिये पर मौजूद हों)।

आलपीन लगाकर इन सबको रेखाओंसे मिला देना चाहिये और फिर क़ुतुबनुमा द्वारा दिशा मालूम करके नये शीटके किनारेपर उत्तरी

रेखा बना देनी चाहिये और उसके पीछे इन्हीं बिंदुओं और रेखाओंकी सहायतासे दूसरे शीट-पर पैमाइश करनी चाहिये।

तख़्ता मुसत्ताके लाभ—(१) पैमाइशके साथ साथ नक़शा भी तैयार होता जाता है। (२) चूंकि मौक़ेपर तुरन्त ही नक़शा बन जाता है इसलिए अगर कोई ग़लती या भूल हो जाती है तो उसी समय उसकी दुरुस्ती हो सकती है (३) अगर होशयारीके साथ काम लिया जाय तो सीमाएं बिलकुल वैसी ही ठीक हो सकती हैं जैसी कि थियेडोलाइट या प्रिज़मेटिक कम्पाससे होती हैं (४) पहाड़ी स्थानोंमें और ऊंचो नीची ज़मीनकी पैमाइशमें यह विशेषकर काममें आता है; क्योंकि पहाड़ोंपर प्रिज़मेटिक कम्पासकी सुईका चुम्बक काम नहीं देता।

तख़्ता मुसत्ताके नुक़्स (१) जब नक़शा बड़े पैमानेपर तैय्यार करना हो तो ग़लती होना बहुत सम्भव होता है (२) चूंकि प्लाटका काम उसी वक्त मौक़े पर किया जाता है अगर उसमें ग़लती हुई तो कुल काम दुबारा करना पड़ता है।

१०–पैमाइशकी विशेष कठिनाइयां

१—अगर जरीबी रेखाओंमें कोई तालाब या झाड़ी इत्यादि बीचमें आजाय जिससे सामनेकी झंडी नज़र आती हो लेकिन उसकी सीधमें जरीब-से नाप नहीं हो सकती हो तो निम्नलिखित तरकीब करनी चाहिये। मानलो कि क स्थानसे ख स्थान

चित्र ३

को रेखा खींचना है और उसके बीचमें एक झील है मगर झंडी ख दिखलाई पड़ती है। पहले क से च तक चलो वहां पहुंचकर एक लम्ब च छ ऐसा उठाओ कि छ बिंदु झीलके किनारेसे कुछ आगे पड़े। तदनन्तर च छ पर एक दूसरा लम्ब छ ज उठाओ कि ज बिंदु झीलकी लम्बाईसे कुछ आगे पड़े; उसके बाद फिर छ ज पर तीसरा लम्ब ज-झ, च छ के बराबर उठाओ। च और झ बिंदु क ख रेखामें पड़ेंगे और उनकी दूरी छ ज के बराबर होगी। च झ की दूरीको क च रेखामें मिला के झ पर पहुंचकर आगे मामूली रीतिसे जरीब डालनर चाहिये।

२—जब एक झंडीके स्थानसे दूसरी झंडी, दूरी या किसी रुकावट, जैसे पेड़ इत्यादिके कारण, दिखलाई न पड़े तो उनके बीचो बीच सीधमें झंडी लगानो चाहिये। मानलो कि स्थान क और ख पर ऐसी झंडियां हैं कि एक स्थानसे दूसरी दिखा-लाई नहीं पड़ती और उनके बीच ज़रीब डालनेकी सुगमताके लिये कोई तीसरी झंडी लगानी है।

क और ख के बीच दो आदमी झंडियां लेकर एक दूसरेके आमने सामने एसी जगहोंपर खड़े हों कि दोनों अपने अपने सामनेकी झंडियां देख सकें। मानलो कि स्थान क के बाद झंडी वाला नम्बर १ खड़ा है और उसके बाद झंडी वाला नम्बर २ और उसके बाद ख स्थानकी झंडी है और झंडी वाला नम्बर १ झंडी ख को और झंडी वाला नम्बर २ झंडी क को देख रहा है। पहले झंडी वाला नम्बर १ झंडी ख की सीधमें झंडी वाले नम्बर २ को लावे जो उसके सामने है। जब झंडीवाला नम्बर २ और ख उसको एक सीधमें दिखलाई पड़ें तो वह झंडी वाले नम्बर २ से कहे

चित्र ४

कि वह उसको झंडी ख की सीधमें लावे जो उसके सामने है। जब झंडी वाला नम्बर २ झंडीवाले नम्बर १ और झंडी क को एक सीधमें ले आवे तो फिर यह झंडीवाले नम्बर १ से यही बात दुबारा करनेको चाहे। ऐसा करते करते दोनों झंडी वाले ऐसे स्थानपर आजायंगे कि दोनों अपने अपने सामनेकी झंडियोंको अपनी सीधमें देखेंगे; उस वक्त वह दोनों स्थान क ख रेखा पर होंगे। जहां दोनों झंडी वाले खड़े होंगे इनमेंसे किसी एक या दोनों स्थानोंपर झंडियां गाड़नेसे जरीबकी नाप सीधी होगी।

३–जब सामनेकी झंडी दिखलाई पड़ रही हो मगर बीचकी रुकावटके कारण न दिखलाई पड़े, व सीधी जरीबकी नाप हो सकती हो और न दाहिने बाएंसे—जैसे किसी नदीकी चौड़ाई मालूम करनेमें होता है, तो निम्नलिखित प्रयोग करना चाहियेः- मानलो कि एक गावंकी एक ओर एक नदी बहती है और उसकी चौड़ाई नक़शेपर दिखलाना है।
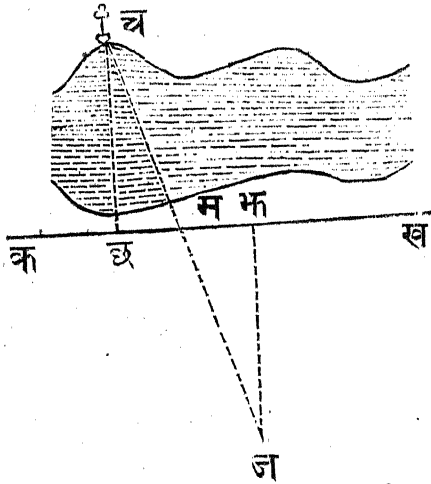
चित्र ५

उस नक़शेकी रेखा क ख पर जो दरियाके किनारे जा रही है नदीके इस पारसे च विन्दुका लम्ब च छ डालो और छ से ख की ओर कुछ दूर चलकर झ विन्दुपर दूसरा लम्ब ज झ जो रेखाको दूसरी ओर पड़े, बनाओ। छ झ अंतरको दो बराबर हिस्सोंमें बांटके म विन्दुपर झंडी खड़ी करो; अब झ ज की सीधमें चलकर ऐसा बिन्दु ज मालूम करो जहांसे म और च एक सीधमें दिखाई पड़ते हों। चूंकि झ ज = च छ के इसलिये झ ज मेंसे स छ की दूरी घटानेसे च स दरियाकी चौड़ाई मालूम होगी।

नोट—ऐसे स्थानपर जहाँ बहुत लम्बे लम्ब लेनेकी ज़रूरत होती है राइट एँगिलके स्थानपर चरखोंका प्रयोग करना चाहिये।

४—क ख रेखाकी लम्बाई मालूम करना जिसके बीचमें कोई तालाब या किसी नदी की मोड़ हो।

एक विन्दु ज बनाओ और क ज और ख ज रेखाओंको नापलो और उनको घ और ग विन्दुतक
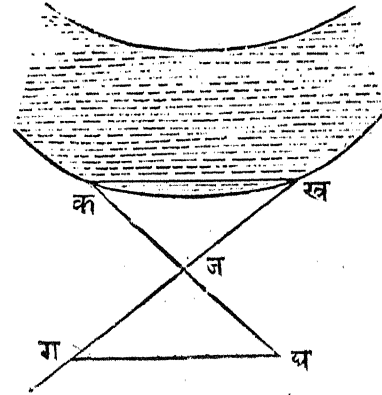
चित्र ६

बढ़ाओ कि क ज और ज घ बराबर हों और ख ज और ज ग बराबर हों। अब ग छ रेखाकी दूरी नापलो, यही क ख की दूरी होगी।

५—त्रिभुज क ख ग को दी हुई (निसबत) निष्पत्तिमें इस तरह बांटो कि एक कुआं जो त्रिभुजके एक कोने पर है हर हिस्सेमें मिला रहे।

मानलो कि दी हुई निष्पत्ति २ः ३ः ५ है और कुआं ग पर है। प फ बिन्दुपर क ख रेखाको २ः ३ः ५ की निष्पत्तिमें बांटकर ग से दोनोंको मिला दो। चूंकि २+३+५=१०

$\therefore$ क ख: १० :: क च: २; $\therefore$ क च $= \frac{\text{क ख} \times २}{१०}$

और क ख: १० :: च ज: ३; $\therefore$ च ज $= \frac{\text{क ख} \times ३}{१०}$

और क ख: १० :: ग ख: ५; $\therefore$ ग ख $= \frac{\text{क ख} \times ५}{१०}$
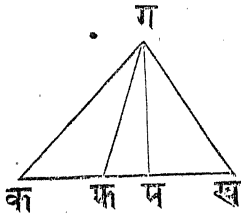
चित्र ७

इस प्रकार च,ज विन्दुओंको जानकर च ग, ज ग रेखाएँ खींचो क ग च, च ग ज, और ग ज ख त्रिभुजों-की निष्पत्ति २: ३:५: है। यही इष्ट विभाग हैं।

६—एक खेतको उसकी किसी भुजामें एक दिये हुए विन्दुसे मेड़ें खींचकर किसी निसबत में बाटना है।

मानलो त्रिभुज क ख ग के क ख भुजमें एक बिन्दु ह दिया हुआ है और त्रिभुज क ख ग को तीन
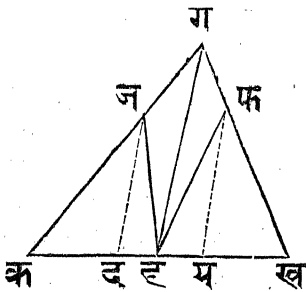
चित्र ८

बराबर भागोंमें बांटता है। क ख को बिन्दु द और य पर तीन बराबर हिस्सोंमें बांटो और ह ग को मिला दो और ह स के समानान्तर द फ और य ज खींचो। और ह फ और ह ज को मिला दो; तो जो मेड़ें इन दोनों रेखाओंपर बनाई जायंगी वह त्रिभुजको तीन बराबर हिस्सोंमें बांटैगी।

७—जरीब और राइट एंगिलके द्वारा वर्गक्षेत्र बनाना—

मानलो कि एक आयत क्षेत्र बनाना है जिस-की लम्बाई ४० कड़ी और चौड़ाई तीस कड़ी
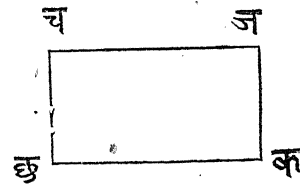
चित्र ९

होना चाहिये। पृथ्वीपर एक रेखा छ क ४० कड़ा नापकर उसके दोनों सिरोंपर झंडियां लगा दो अब छ विन्दुपर राइटएंगिल लेकर खड़े हो और छ क पर छ च लम्ब बनाओ। और इसी प्रकार क पर क ज लम्ब उठाओ। छ च और क ज दोनों तीस तीस कड़ीकी बनालो और च ज भुज अब नापनेसे ४० कड़ी आवे तो आयत क्षेत्र बन जायगा।

८—एक बड़े खेतमेंसे एक ऐसा छोटा खेत काटना जिस-का रक़बा $२\frac{१}{२}$ एकड़ या किसी दिये हुए रक़बेके बराबर हो और उस छोटे खेतकी दो मेड़ें बड़ी खेतकी दो मेंड़ोंके भाग हों—

मानलो अ ब स द य फ ज एक बड़ा खेत है। इस-मेंसे अ क म ह एक खेत काटना है जिसका रक़बा $२\frac{१}{२}$ एकड़ हो। इसलिए खेतकी मेंड़ो अ ज तथा अ ब से अ क तथा अ ह दो मेंड़े छोटे खेतके लिए काट-लीं गईं। मानलो अ ह और अ क मेंसे हर एक की लम्बाई ५ जरीब है। ह क को नापलो और त्रिभुज

अ क ह का क्षेत्रफल साधारण रीतिसे निकालो। इस प्रकार जो क्षेत्रफल निकले उसको २$\frac{१}{२}$ एकड़से घटा दो। जो क्षेत्रफल बचेगा वह त्रिभुज
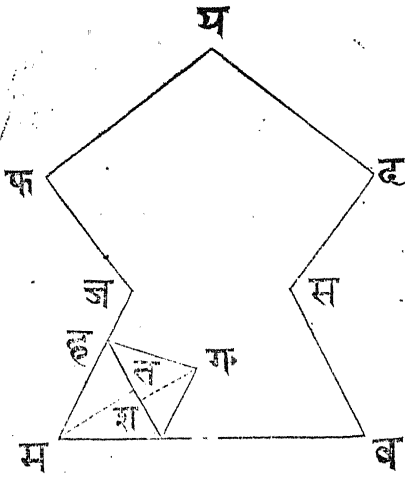
चित्र १०

म ह क का क्षेत्रफल होगा और यह दोनों त्रिभुज मिलकर छोटा खेत बनेगें।

मानलो क ह ८ जरीब है। ह क पर अ त लम्ब डाला गया जो तीन जरीब है। इसलिए त्रिभुज अ क ह का क्षेत्रफल $\frac{३००\times८००}{२}$ = १२०० वर्ग कड़ी हुआ। इसको खेतके कुल क्षेत्रफलमेंसे घटाया तो दूसरे त्रिभुज क म ह का क्षेत्रफल २·५–१·२ = १·३ एकड़ बचा। अब क म ह त्रिभुज बनानेके लिए उसके क्षेत्रफल १३००० वर्ग कड़ीको क ह की आधी लम्बाई अर्थात् ४ जरीबसे भाग दो तो ३२५ कड़ी लम्ब श म की लम्बाई होगी। इसलिए ह क रेखासे जो लम्ब उठाया जावेगा वह खेतका चैाथा कोन बनावेगा और म ह और म क मिला देने से खेतकी चारों मेड़ें बन जायंगी।

९–दरख़्तकी ऊंचाई नापनेका तरीका।

दफ़्तीका एक टुकड़ा त्रिभुजाकार काटलो जिसका एक कोण ९० अंशका हो और बाक़ी दोनोंमेंसे हर एक ४५° के हों। अब पेड़के तनेसे मिलकर खड़े हो और ज़मीनसे आंखकी ऊंचाईके बराबर एक चिन्ह पेड़ पर बना दो फिर त्रिभुज-को इस तरह पकड़कर पीछेको हटोकि ९० डिगरी-का कोण नीचेको और पेड़की तरफ़ हो। आंखको सबसे नज़दीक वाले पैंतालीस दरजें वाले कोणसे लगाओ और त्रिभुजके नीचे वाली भुजाको दरख़्तकी पोड़ी वाले चिह्न की सीधमें मिलाए हुए
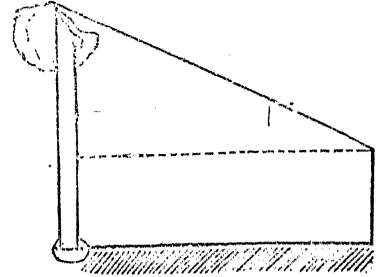
चित्र ११

पीछे हटते जाओ जब तक कि त्रिभुजका कोण पेड़की चोटीकी सीधमें हो जाय। तब अपने खड़े होनेके स्थानसे पेड़की जड़ तककी दूरी नापलो और इसमें पीड़ीपर लगे हुये चिह्नकी ऊंचाई जोड़ दो तो कुल दरख़्तकी ऊंचाई मालूम हो जायगी।

१०–किसी दो स्थाई स्थानोंसे बहुतसे बिन्दु बनाना।

(अ) मानलो कि दो स्थायी स्थान म और न एक दूसरेसे कुछ दूरीपर मौजूद हैं और यह स्थान ऐसे हैं कि इनसे वे सब बिन्दु जो यह बनाते हैं देखे जा सकते हैं। अबदोनों मेंसे किसी बिन्दु पर तख़्तेको जमाकर उसकी दिशा क़ुतुबनुमाके द्वारा ठीक करलो और जो स्थान बनाने हैं उनपर झंडियां लगा दो। फिर तख़्तेके स्थानपर, जो शीटमें है, एक आलपीन खड़ी करो और उस आलपीनसे शिस्तका एक किनारा मिलाकर अ ब स द य फ इत्यादि झंडियांको काटकर उनकी दिशाओंमें साधारण रीतिसे पेनसिलसे रेखा खींच दो। इसके

बाद तख्तेको दूसरे स्थायी स्थान न पर रखकर दिशा ठीक करके उन सब झंडियोंको वहांसे भ काटकर उसी तरहसे रेखा खींच दो। अब जहां यह रेखाएं पहले खींची हुई रेखाओंको काटें वह कटनेके बिन्दु शीटपर अ,ब,स,द,य,फ, बिन्दु बन जावेंगे।
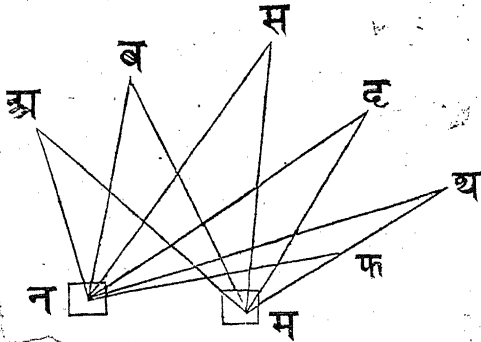
चित्र १२

(ब) यदि तख्ता मुसत्ता और शीट मौजूद न हों तो इन सब बिन्दुओंको स्थान म और न से निम्नलिखित रीतिसे बना सकते हैं। पहले म से हर एक स्थान अ,ब,स,द,य,फ, तक जरीब डालकर उनकी ठीक दूरी मालूम करलो फिर उसी तरहसे न स्थानसे जरीब डालकर उनकी दूरी नाप लो अब प्रत्येक बिन्दुको इस तरहसे बनाओ कि जो उसकी दूरी म बिन्दुसे हो उस दूरीपर म को केन्द्रसे एक धनुष खींचो; फिर उसी बिन्दुकी जो दूरी न सेहो उसकी दूरीपर न का केन्द्र मानकर धनुष खींचो, जहां यह धनुष एक दूसरेको काटें वही बिन्दु होगा जिसे हम बनाना चाहते थे। इसी रीतिसे सब बिन्दुओंके स्थान बनालो।

नोट—यादरहे कि नक़शेपर कोई स्थान बिना कमसे कमदो स्थायी स्थानोंकी सहायताके नहीं बनाया जा सकता। इसलिए चाहे जरीबी पैमाइश या तख्ता मुसत्ताको पैमाइश हो, जब कोई नया स्थान बनाना होतो उसके निकट कोई दो स्थायी स्थान नियत करने चाहिये। तब वह तीसरा स्थान उनकी सहायतासे बन सकता है अगर स्थायी स्थान अधिक दूरीपर हो तो यह उचित है कि उनकी सहायतासे बनाये हुए तीसरे स्थानके ठीक होनेका निश्चय किसी और स्थायी स्थानसे जो नक़शेपर पहलेसे बना हो कर लिया जाय।

११—तख्ता मुसत्ताके द्वारा किसी खेतके भीतर दिये हुये स्थानसे कुल खेतकी पैमाइश करना
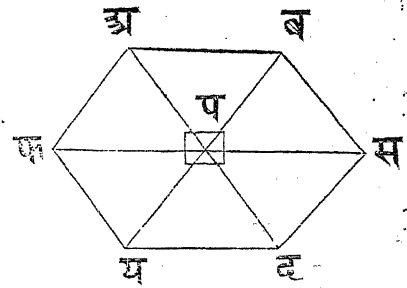
चित्र १३

मानलो कि अ,ब,स,द,य,फ, एक दिया हुआ खेत है और उसके भीतर एक बिन्दु प से कुल खेतकी पैमाइश करना चाहते हैं। इसलिए पहले काग़ज़ पर एक बिन्दु प खेतके भीतर दिये हुए स्थानको बतलानेकेलिये बनालो और उस बिन्दुपर एक आलपीन खड़ी करके उससे शिस्तकाब किनारा मिलाकर खेतके सब कोनोंपरकी झंडियोंकी शिस्तसे काटो और प बिन्दुसे उन झंडियों तककी दूरी नापकर उसको उन रेखाओंपर साट करो तो खेतके कोने नक़शेपर बन जायेंगे। अब इन कोनोंको रेखाओं द्वारा मिलादो तो खेतका नक़शा बन जायगा।

प्रकृति भण्डारको खोज

[ले० अध्यापक शालग्राम वर्मा, बी.एस-सी.]

विज्ञान सौभाग्य पिटारीके भांति है। बहुतसे लोगोंने यहां अपने २ भाग्यकी जांचकी है ; सैकड़ोंको हताश होना पड़ा है और सैकड़ोंने मनमाने इनाम पाए हैं। कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि इस विज्ञानकी लौटरी (Lottery) में लोगोंने जिस पारितोषकके लिए दांव लगाया है उससे कहीं अधिक मूल्यवान वस्तु उनके हाथ पड़गई है। कभी कभी किसी विशेष वैज्ञानिक खोजके पीछे टटोलते टटोलते इनकोशान्वेषियोंके हाथ ऐसी अनमोल, अनोखी तथा युगांतर स्थापित करनेवाली योजना पड़ जाती है कि वे स्वयम और सारा संसार आश्चर्यान्वित् होकर भौंचक रह जाते हैं। कभी कभी यह प्रकृतिके अनन्योपासक यात्री निस्वार्थ भावसे प्रकृति देवीके उपासना मन्दिरकी यात्रामें जाते हुए ऐसी अनुपमेय और परम मनोहर छटाके दर्शन पाजाते हैं कि वे जीवन भर उसी ध्यानमें मस्त रह कर उस दैवी मन्दिरके आराध्यदेवसे ऐसे प्रसाद प्राप्त करते हैं जो संसारी जीवोंकेलिए अमृतके तुल्य लाभ दायक और नवजीवन-संचारी होते हैं।

अगर गौरसे देखा जाय तो हमें पता चलेगा कि यह प्रकृतोपासक वैज्ञानिक छोटे छोटे बच्चोंके सदृश सरल स्वभावके होते हैं। जिस प्रकार छोटा बच्चा मचलमचलकर, तोतली बातें बनाकर और इठला इठलाकर चलके, अपनी मातापर मोहिनी डाल, उसका प्रेम भाजन बन, उससे अनेकों शिक्षाएं ग्रहण करता है, और अपने भावी जीवनके सहस्त्रों रहस्योंका हाल जान लेता है; उसी प्रकार यह बाल-प्रकृति वाले वैज्ञानिक प्रकृति देवीके भण्डारसे अपनी अतृप्त जिज्ञासा और असीम सहन शीलता तथा असाधारण पराक्रम द्वारा अनेकों रत्न प्राप्त कर लेते हैं। दोनो ही में जाननेकी पिपासा मौजूद है और इस जाननेकी पिपासाने ही संसारकी काया पलट कर दी है। चन्द्र खिलौना लेनेकेलिए बालहठकी भांति यह लोग भी प्रकृति देवीके सामने सदा मचलते रहते हैं; परन्तु जिस प्रकार स्नेहमयी माता प्यारसे चुमकारकर बच्चेको दूसरे दूसरे खिलोने देकर, बहलाकर, उसकी चन्द्र-खिलौना प्राप्त करनेकी हठको भुलाया चाहती है, उसी प्रकार प्रकृति देवी भी अपने वात्सल्य भावसे इन मुमुक्षुओंको अन्य छोटे छोटे प्रकृति रहस्य रूपी खिलौने देकर बहलाया करती है। परन्तु जिस प्रकार बालक थोड़ी देर खिलौनोंसे खेलकर फिर चन्द्र खिलौनेकेलिए मचल जाता है ; उसी प्रकार यह प्रकृतिसे क्रीड़ा करनेवाले, हठीले वैज्ञानिक फिर भी अपनी अड़पर जमे रहते हैं। हां बाल-हठ और इन वैज्ञानिकोंकी हठमें केवल समझका अन्तर है। वैज्ञानिक अपने वांछित खिलौने की क़दर जानता है और उसके मूल्यसे भी परिचित है, तथा बड़ी सहनशीलता और नियमशीलतासे अपनी खोजमें लगा रहता है। वह एकको छोड़ दूसरेको प्राप्त करने नहीं दौड़ता। रंग बिरंगी, चटकीली, चमकीली तितलीको छोड़कर वह एकदम बेरंग, धुंधले और मटीले पहाड़ोंकी खोजमें उनमत्त नहीं होता। और न इधर उधर क्षणिक चमकनेवाले जुगुनूसे एक दम स्थाई प्रकाशमान तारों तक दौड़ जानेकी कोशिश करता है। उसे अपने आदर्श पर पहुंचनेके लिए सैकड़ों मार्गोंका अवलम्बन करना पड़ता है पर उसकी दृष्टि अविचल भावसे सदा अपने निर्दिष्ट स्थान की ही ओर जमी रहती है। सच्चे शिकारीकी भांति वह अपने शिकार परसे निगाह हटाना जानता ही नहीं है। अपने कोशान्वेषण कार्यमें वह अपने वांछित कोश पर ही सदा दृष्टि रखता है। इसी अन्वेषणमें उसके सारे जीवनका सुख स्वप्न मौजूद है, उसके जीवनका यही आदर्श है और इसी खोजमें उसे अपने जीवनका सारा आनन्द प्राप्त है।

[General साधारण]

सच्चे वैज्ञानिकके जीवनमें एक अद्भुत बात यह भी है कि उसे अपने अणुवेषणोंकी मौलिकता-का विशेष ध्यान नहीं होता और न ही वह इस बात की परवाह करता है कि उसकी खोज द्वारा संसारको कितना लाभ होगा। उसे तो केवल खोज करनेमें आनन्द आता है, प्राकृतिक रहस्योंकी टटोल ही उसका परम उद्देश है, और इस पथपर भ्रमण करनेमें ही उसकी आत्माको संतोष प्राप्त होता है। अपनी खोज द्वारा द्रव्य कमाना तो उसे बड़ा तुच्छ और हीन कार्य मालूम होता है। जो मनुष्य प्रकृति देवीके मन्दिरमें अपना सर्वस्व अर्पण कर चुका है भला वह कभी सांसारिक स्मृद्धियोंके मोह जालमें फंस सक्ता है? उसका काम तो यहीं पर समाप्त हो जाता है कि वह प्रकृतिके भंडारसे रत्न संचय करे। इन रत्नोंका मूल्य लगाना तथा, इनके द्वारा धन उपार्जन करना तो व्यवसाइयोंका काम है। वैज्ञानिक अपनी खोजका परिणाम संसारके सामने रख देता है। अब इससे धन और ऐश्वर्यका लोभी संसार अपनी स्वार्थपूर्तिकेलिए अनेकानेक युक्तियों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धके ढंग निकाल लेता है। विज्ञानका प्रायः सभी काम इसी निस्वार्थ भावसे हुआ है। जिन वैज्ञानिकोंने अपना तन, मन, धन अर्पणकर प्रकृति सेवा की है उन्होंने किसी स्वार्थ या लोभके वशमें आकर ऐसा नहीं किया। उनके लिए संसारका एक मात्र आनन्द विज्ञान ही रहा है और इसी आनन्दकी प्राप्तिकेलिए उन्होंने तनमय होकर उद्योग किया है।

लन्दनमें माइकेल फ़ेराडे (Michael Faraday) नामी एक ग़रीब युवक रहता था। इसके सौभाग्यसे इसे सर हेम्फ़री डेवी (Sir Humphry Davy) के यहां नौकरी मिल गई। इनके साथ रोयल सुसाइटी (Royal Society) में रहकर इस युवकको भी विज्ञानका चसका लग गया। अपने मालिकके लिए बहुतसे वैज्ञानिक प्रयोगोंमें सहायता देते देते उसे बहुत कुछ वैज्ञानिक बातें मालूम होगईं और उसने बड़े उद्योगसे बहुत कुछ सीख भी लिया। समयने पलटा खाया और अपने मालिककी आंखोंके सामने ही यह युवक खुद वैज्ञानिक बन बैठा; यहांतक कि विद्युत्शास्त्रका बड़ा भारी पंडित हो गया। एक दिन जब वह एक तांबेके तारमें विद्युत्धारा प्रवेश कराके, एक चुम्बकपर क्या असर होगा, इस बातका प्रयोगकर रहा था, उसने देखा कि अगर वह चुम्बकको तारके पास लाए तथा उसे इधर उधर घुमाए, तो इस चुंम्बकद्वारा भी विद्युत् पैदा-होजाती है। उसने अपनी खोजके इस नए परि-णामको रोयल इन्स्टीटयूशन (Royal Institution) में कई लेकचरों द्वारा ज़ाहिर किया; परन्तु उस-समय सारे युरूपमें सौ वैज्ञानिक भी ऐसे न मिले सके जो फ़ेराडेकी खोजके महत्वको समझते। बहुतसे लोगोंका तो यही विचार रहा कि जो वेतन ग़रीब फ़ेराडेको मिलता था वह भी बहुत था।

परन्तु आज दिन वैज्ञानिक संसार जानता है कि फ़ेराडेने यह कितने बड़े महत्वकी खोजकी थी। अब संसारको ज्ञात है कि तांबेके तारके चारों ओर चुम्बक घुमानेसे क्या परिणाम होता है। आधुनिक वैज्ञानिक संसार भली भांति जानता है कि फ़ेराडे-ने प्रकृति देवीके अद्भुत भंडारसे कैसा मूल्यवान रत्न प्राप्त करनेकी चेष्टाकी थी। बिना जाने ही इस महापुरुषने जलप्रपात, समुद्रका ज्वार भाटा तथा कोइलेकी खानोंमें छिपी हुई शक्तियोंको किस प्रकार विद्युत शक्तिमें परिवर्तन करनेकी सुगम रीति निकाल दी है। इसी तांबेके तारके चारों ओर चुम्बकके घुमानेसे आज दिन सभ्य संसारमें नयागारा (Niagara and Zamperi Falls) और ज़ेम्पेरीके झरनों तथा पश्चिमी घाटके जल प्रपातोंसे और अनेक नदियोंकी प्रबल प्रवाह तरंगोंको नाथ कर इनकी विध्वंस कारिणी शक्तिको मनुष्योंके लिए परमोपयोगी तथा सदा सेवा करनेवाली विद्युत शक्तिमें परिवर्तन करा दिया है। उत्तरी महासागर की प्रबल तरंगों तथा कहीं कहींपर पवन देवके महा प्रलयकारी झोंकोंको भी मनुष्यकी सेवा करने-केलिए आज्ञाकारी नौकर बना दिया है, जो उसके

कल कारखानोंमें मशीन और इंजन चलाता है मकानों, कोठियों और दूकानोंमें पंखा हांकता है तथा पुस्तकालयों और देवालयोंमें रोशनी करता है। इतना ही नहीं इसी महत्व पूर्ण खोजके सहारे हम विद्युत शक्तिको वाहन बना कर ट्राम गाड़ियों और विद्युत रेलोंमें बड़े सुख और स्वच्छन्दतासे इधर उधर घूमते फिरते हैं।

इसी समय जब फ़ेराडे विद्युत द्वारा ऐसे अपूर्व परिणामोंका श्री गणेशकर चुका था उसका मास्टर सर हम्फ़री डेवी भी विद्युत शास्त्रका अध्ययन करता था। उसे इस बातकी कोई आशा न थी कि वह भी अपने असिस्टेन्ट फ़ेराडेकी भांति कोई बड़ी खोज कर सकेगा; वह तो केवल अध्ययन करना चाहता था। उस समय इंगलैंड, फ्रांस और इटलीके कुछ पढ़े।लिखे युवकोंकी निगाहमें विद्युत दिल बहलावके खिलौनेकी भांति थी। यह किसीको आशा न थी कि इस शक्ति द्वारा संसारमें किसी नए युगका प्रादुर्भाव होगा। प्रोफ़ेसर गेलवनीने (Professor Galvani) जो इटलीमें एक प्रसिद्ध डाक्टर था विद्युत शास्त्रमें लोगोंके लिए एक नया चमत्कार उत्पन्नकर दिया था। इन डाक्टर साहबकी स्त्री बीमार थी और उन्हें भूख मालूम ही न होती थी; अस्तु भोजनकी ओर उनकी रुचि दिलाने केलिए फ्रैंच तरीके पर उनके लिए मेंढककी टांग पकाई गई। जिस समय यह टांगे पकाए जानेके लिए तैय्यार थीं गैलवनीने इन्हें एक लोहेकी सलाख़में तांबेके कांटे द्वारा लटका दिया। सामने ही इसका एक शिष्य कुछ विद्युत प्रयोग कर रहा था। टांगमें स्पन्दन होने लगा। गैलवनीने यह समझा कि उसने जीवनका एक नया रहस्य ढूंढ निकाला है। परन्तु उसके शिष्यने यह स्पष्ट कर दिया कि गैलवनीने केवल दो धातुओंके सम्पर्कसे विद्युत उत्पन्न करनेका एक नया तरीका निकाला है। तांबा और लोहा मेंढककी टांगों द्वारा विद्युत कुण्डली पूरी कर देता है। इस कारण विद्युत उत्पन्न होकर स्पन्दन होने लगता है। गैलवनीने बहुत चाहा कि वह अपने इन प्रयोगों द्वारा जीवन सम्बंधी कुछ रहस्य जान सके, परन्तु उसकी यह आशा पूरी न हुई। पर उसने अपने उद्योगसे हमारे लिए उस शक्तिको जन्म दिया जिसके द्वारा आज दिन हमारे तार और टेलीफ़ोन चलते हैं और हमारे कल कारख़ानोंके चलानेके लिये एक बड़ी अद्भुत और शीघ्र गामी शक्ति प्राप्त होती है।

गैलवनी (Galvani) की इस चमत्कार-पूर्ण खोज द्वारा विद्युत् तरंग उत्पन्न कर लेनेकी रीति स्थापित हो जानेके बाद डेवी (Davy) महोदयकी बारी आई। इन्होंने विद्युत् शास्त्रका अध्ययन कर विद्युत् तरंगका एक नया गुण जान लिया। एक दिन उन्होंने दाहक सोडा और दाहक पोटाशके घोलोंमें विद्युत् संचार कराया; परिणाम इसका यह हुआ कि इनका विश्लेषण होकर संसारको सोडियम और पोटाशियम नामक दो नई धातुओंका पता चल गया! इतना ही नहीं वरन् इस खोज द्वारा इसी प्रकार अन्य धातुओंके यौगिकोंका विश्लेषण कर शुद्ध धातु प्राप्त करनेकी एक स्वतंत्र रीति निकल आई। सोडियम धातुके प्राप्त हो जानेसे बृटेनमें सोडेके व्यवसायका श्री गणेश हुआ और धीरे धीरे इस व्यवसायकी इतनी तरक्की हुई कि आज दिन (Cheshire) चेशायरकी नमककी खानें सारे संसारमें मशहूर हो गई हैं। इन खानोंमें से करोड़ों मन नमक (Sodium chloride सोडियम हरिद) निकाल कर विद्युत द्वारा उसका विश्लेषण कर सोडियम और हरिद जुदी २ निकाल ली जाती हैं। सोडियम द्वारा सोडा बनाकर सैकड़ों नये व्यवसायोंकी स्थापना हुई है और हज़ारों पुराने व्यवसायोंमें नई जान पड़ गई है। हरिद से (Bleaching Powder) धावक चूर्ण बनाकर वस्त्र-निर्णेजक अथवा वस्त्रों परसे रंग उड़ानेके काममें आता है। सोडा और धावक चूर्ण आधुनिक

समय में ऐसे उपयोगी पदार्थ हो गये हैं कि संसार-के प्रायः सभी व्यवसायोंमें इनका प्रयोग होता है।

विद्युत संबन्धी एक और खोज करने वाले अंग्रेज़का नाम (Henry Cavendish) हैनरी केवेण्डिश था। यह महापुरुष बड़े सनकी और विचित्र मनुष्य थे। आप डेवनाशायरके ड्यूक (Duke of Devonshire) के पुत्र थे, परन्तु आप-को अपनी मान मर्यादा तथा धन और वैभवकी ज़रा भी परवाह न थी। आपने वैज्ञानिक खोजके ही शौक़में अपने जीवनके सारे ऐश आरामको तिलाञ्जली देदी थी। जिस समय आपने अपने उद्योग द्वारा यह खोज निकाला कि किसी पात्रमें भरी हुई हवामें विद्युत स्फुरणकरनेसे ओषजन तथा नत्रजन गैसें प्राप्त होती हैं तो आपके आनन्दकी सीमा न रही। इङ्गलेण्डके प्रायः सभी लोग इन्हें उन्मत्त समझते थे और उनके विचारमें यह पागल अपने रुपयेको वैज्ञानिक ख़ब्त में पानीकी भांति बहाया करता था। परन्तु इन्होंने अपना सारा जीवन मनुष्य जातिके लिये नई नई शक्तियोंके ढूंढनेमें बिता दिया। इनके जीवनका यही स्वप्नथा कि वे मनुष्य मात्रके लिये निगूढ़ प्राकृतिक रहस्योंका पता लगा कर मानु-षिक जीवनमें एक नया चमत्कार उत्पन्न कर दें। इनकी खोजोंका क्या मूल्य था तथा संसारको उनसे क्या लाभ होगा, यह बात न तो उन्हें ज्ञात ही थी और न उन्होंने इसके जाननेकी चेष्टा ही की? प्रकृतोपासना ही उनका मुख्य कर्तव्य था और जीवन भर वे इसीमें लगे रहे।

परन्तु आज दिन सारा सभ्य संसार (Caven-dish) केवेण्डिशकी इस अपूर्व खोजके गौरवको जानता है। अब यह बात सभी पढ़े लिखे आद-मियोंको ज्ञात है कि जिस दिन स्टासफ़र्टकी खानोंसे नत्रेत न मिल सकेंगे उस समय केवेण्डि-शकी यही खोज हमारी अन्नदाता होगी। उस समय इसी रीति द्वारा हम वायुका विश्लेषण कर नत्रजन द्वारा खेती बारीके लिये (नत्रेत) खात बना सकेंगे। संसारके कई उद्यमशील और सभ्य देशोंमें अब भी इस रीतिका अनुसरण होता है। यूनाइटेड स्टेट्स, नारवे, जर्मनी तथा इटली-में वायुसे नत्रजन लेकर खात बनानेके कई कार-ख़ाने मौजूद हैं। (Faraday) फ़ैराडे और केवेण्डिश (Cavendish) की खोजोंकी सहायतासे आज दिन हवामें से पौधोंके लिये नत्रजनित खात तैयार की जाती है और समुद्रकी बड़ी २ लहरोंसे खेती बारीके अनेक काम लिये जा रहे हैं। समुद्रकी बड़ी २ लहरों तथा जल-प्रपातों द्वारा तांबेके तारों-की कुण्डलियोंके चारों तरफ़ चुंबक घूम २ कर विद्युत पैदा करता है; अब इस विद्युत द्वारा वायु-का विश्लेषण होकर नत्रकाम्ल, अमोनिया तथा अमाईड नामक पदार्थ बनते हैं। इन्हीं पदार्थोंसे खात बनाई जाकर हमारी खेती बारीका काम चलता है। विज्ञान भाग ८ अंक २ के ५६वें पृष्ठ पर इन रीतियोंका विस्तृत वर्णन मौजूद है।

(Henry Cavendish) हैनरी केवेण्डिशने तो हवासे भरे हुये पात्रमें विद्युत तरंग का संचार किया परन्तु इनके १०० बरस पीछे सर विलियम क्रुक्स (Sir William Crookes) ने ठीक इसका उल्टा प्रयोग कर डाला। इन्होंने एक कांचकी नली-की वायु निकाल कर उसे बन्दकर दिया और उस वायुशून्य स्थानमें होकर विद्युतकी प्रबल तरंगें भेजना प्रारंभ किया। इनके इन प्रयोगोंका परिणाम यह हुआ कि इन वायुशून्य ट्यूबोंमें रंगबिरंगी रोशनी दिखलाई पड़ने लगी। बेचारे सर विलियम क्रुक्सने बड़े परिश्रमसे तथा बहुत सा धन खर्च कर इस खोजमें हाथ डाला था; परन्तु इतना कुछ करने पर भी लोगोंकी निगाहमें वह सिर्फ़ बालकोंका मनोरंजन करने वाले रंगोंकी रोशनी उत्पन्न कर सका। परन्तु ऐसा विचार करना बड़ी भूल है। इस महापुरुषने भी प्रकृति भण्डारसे एक अमूल्य रत्न प्राप्त किया है। इन्होंने जिस ट्यूबमें यह प्रयोग किये थे उसमें प्रकृति के अनेक गुप्त रहस्य मौजूद थे। इनकी इसखोजका पहिला

आश्चर्यजनक परिणाम उस दिन मालूम हुआ जब (Professor Rontgen) प्रोफ़ेसर रोञ्जनने अपनी प्रयोग शालामें पढ़ते २ एक किताबके पन्नों-के बीचमें ताली रख दी और उस तालीके नीचे फ़ोटो उतारनेकी एक बिना इस्तैमालकी हुई प्लेट पड़ी रहने दी। यह किताब उसी मेज़पर पड़ी हुई थी जिस पर एक क्रुक्स ट्यूब भी रक्खी हुई थी। प्रोफ़ेसर महाशयने उसी प्लेटको केमरेमें लगाकर तसवीर ले ली। परन्तु जब तसवीर तैयार हुई तो मालुम हुआ कि उसपर एक तालीका भी फ़ोटो बना हुआ है। यह तो बड़े कौतूहलकी बात निकली। वायुशून्य नलिकामें से कोई अदृश्य तथा गुप्त प्रकाश किरण निकलकर किता-बको वेध कर, प्लेटपर तालीका चित्र अंकित कर गई यही (X-rays) ऐक्सकिरणों के ज्ञात होनेकी रहस्य पूर्ण परन्तु अनोखी कहानी है। प्रोफ़ेसर रोञ्जनकी एक साधारण लापरवाहीका यह जीता जागता उदाहरण है।

इसके पश्चात एक फ्रेंच वैज्ञानिकने इसी प्रकारकी अन्य अदृश किरणोंकोजो एक्स किरणों-की भांति पदार्थोंमें प्रवेश कर सकती हों, खोज निकालनेकी चेष्टाकी, और अन्तमें वह (Radium) रेडियमकी खोज करने में सफल हो गया। इन्हीं दिनों (Sir, J. J. Thompson) सर जे. जे. टाम-सन केम्ब्रजमें अपनी प्रयोगशालामें एक क्रुक्स नलिका द्वारा प्रयोग कर इस अद्भुत प्रकाशका कारण ढूंढ निकालनेकी चेष्टा कर रहे थे। उन्हों-ने विचार किया कि पदार्थकी विकिरण अवस्था (Radiant state of matter) में उसके परमाणुओं द्वारा यह अद्भुत प्रकाश उत्पन्न होता है। उन्होंने इस नलिकाके चारों तरफ़ चुम्बक घुमाकर, रेडियम किरणोंको एक तरफ़ हटा कर, वह जिस प्रकार के पदार्थका बना हुआ था उसकी नापतोल कर डाली। इसपरिणामको देखकर इनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह चले तो थे परमाणुओंकी खोजमें और पहुंचे उनके सहस्रांश भाग छोटे अणुओं-पर! टामसनको अब ज्ञात हुआ कि उन्होंने आज उस वस्तुको पाकर नापा और तोला है जिससे सारी विश्वकी सृष्टि हुई है। यह अणु विद्युत पूर्ण इलेक्ट्रन (Electron) या विद्युताणु कहलाते हैं। इस समय टामसनकी अवस्था ऐसी थी जैसे कोई मनुष्य अंधेरे कमरेमें कोयला ढूंढते हुए, एक बड़ा भारी हीरा पा जाय। यह ठीक उसी मनुष्यकी भांति थे जिसे मट्टी खोदते २ बड़ा भारी ख़ज़ाना हाथ लग जाय! इस नई खोजने सर जे जे टामसन (Sir J. J. Thompson) के अन्दर एक नई रुह फूंक दी, उनकी आंखोंके सामनेसे एक बड़ा भारी परदा सा हट गया, और उन्हें प्रकृति के एक निगूढ़ रहस्यका पता चल गया! अबतो इस विद्युताणु (Electron) द्वारा एक्स-किरण (X- rays) अथवा रेडियम (Radium) की सारी आन्तरिक अवस्थाका उन्हें ज्ञान हो गया। परन्तु यह विद्युताणु भी तो सारी विश्वका रहस्य पूर्ण तथा आश्चर्य उत्पन्न करने वाला आदि कारण है! यही विश्वकी आदि शक्ति है! अगर किसी पत्थरके मामूली टुकड़ेको तोड़कर उसके इतने छोटे २ टुकड़े कर डाले जांय कि वे विद्युताणु (Electron) के बराबर हो जांय तो उनमेंसे इतनी शक्ति पैदा होगी कि उसके द्वारा कलकत्ता और बम्बईकी सारी बिजलीकी लेम्पें जलाकर ट्राम गाड़ियां चलाई जा सकेंगी, पंखे चल सकेंगे, तथा टेलीफ़ोन और तार भी भेजे जासकेंगे! पाठक विचारिये तो, इस अणुमात्र विद्युताणुमें कितनी महती शक्ति मौजूद है। सारी विश्वके सृष्टिकर्त्ता विद्युताणुकी शक्तिका परिमाण कितना कौतूहलोत्पादक है!!

इस विद्युताणुके अनेकों गुण वैज्ञानिक संसार-को ज्ञात हो चुके हैं, परन्तु अभी तक उन्होंने इस पार्थिव जगतकी रचना करने वाली विद्युत शक्तियोंको क़ाबूमें नहीं कर पाया है। इस विद्युत शक्ति द्वारा अभी मनुष्य अपनी सेवा

कराने में असमर्थ हैं। सम्भव है कि हमारे कोषा-न्वेषी वैज्ञानिक प्रकृति देवीके सुरक्षित कोषके सुरम्य और मनोहर मध्यवर्त्ती प्रासाद तक न पहुंच सकें और इन विद्युताणुओंकी असीम शक्तिको अपने क़ाबू में न ला सकें; परन्तु इस प्रासाद-की झांकी मिल जानेसे ही आज दिन इस कामनाके पूरी होनेकी सम्भावना भी वैज्ञानिकोंके लिये स्फूर्ति दिलाने वाले महा मंत्रका काम कर रही है।

आईये, अब ज़रा औद्यौगिक जगतमें इन खोजोंके चमत्कार देखें! १६ वीं शताब्दीके अन्त होनेके क़रीब हमारे लुहारों और इनजीनियरोंको विज्ञानकी क़द्र मालूम हुई! हमारे देशमें तो इस समय भी औद्योगिक शिक्षाका कोई प्रबन्ध न होनेके कारण देशके बहुतसे पढ़े लिखोंको भी इस बातका पता नहीं है कि विज्ञान द्वारा कला कौशलमें कैसी २ चमत्कारक उन्नतियां हो सकती हैं। उन्हें स्वप्नमें भी यह ख़बर नहीं है कि वैज्ञानिक रीतियों द्वारा हमारे देशके बहुतसे मृत प्रायः उद्योग धंधोंमें नया जीवन डाला जा सकता है। १६ वीं शताब्दीके बीचमें इङ्गलैण्डका भी यही हाल था। १६०३ वि० में Forest of Dean फ़ारेस्ट आफ़डीनमें एक युवककी अकस्मातिक खोजने इङ्गलैण्डकी स्पात बनानेके रीतिमें घोर परिवर्तन कर सारे देशके फ़ौलाद बनाने वालोंमें एक नया जादू फूंक दिया! इस युवकका नाम था (Robert Mushet) राबर्ट मशट! मशेट अपने पिताके लोहे ढालनेके कारख़ानेमें काम किया करता था और जब उसे अपने कामसे छुट्टी मिलती तो रसायन शास्त्र में धातुओंको क्रियाका हाल पढ़ा करता था। एक दिन केवल उत्सुकताके आवेगमें उसने लोहे और मैंगनीज़की (Alloy) मिश्रधातु पर प्रयोग करना आरंम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनों बाद उसे ज्ञात हुआ कि बहुत ज़्यादा तपानेसे (Wrought Iron) कच्चे लोहेमें जो अवगुण पैदा हो जाते हैं वे मैंगनीज़ धातुका मिश्रणकर देनेसे दूर हो जाते हैं और यह लोहा स्पातसे भी अधिक मज़बूत हो जाता है। इसी समय (Bessemer) बिसीमरने पिघले हुये कच्चे लोहेमें हवा धोंककर उसे शुद्ध करनेकी रीति निकाली; परन्तु इस रीतिसे लोहा शुद्ध करनेमें उसे बहुत तपानेसे उसमें बहुतसे दोष आजाते थे। मशेट महाशयकी इस खोज ने इस उत्तप्त शुद्ध लोहेमें (Spiegeleissen or Ferro-manganese) स्पीग्लीसीन या फ़ैरो मेगँनीज़ मिलाकर (Steel) स्पात बनानेकी विधि बड़ी सुगम और सस्ती कर दी। आज दिन इस रीतिसे लाखों मन स्पात बड़ी सुगमतासे बड़े थोड़े ख़र्चमें तैयार हो जाता है। परन्तु राबर्ट मशेटके लिये तो अभी उसकी खोजोंका श्रीगणेश ही हुआ था। उन्होंने अब लोहे और स्पातकी हर मिश्रधातु पर प्रयोग करना आरम्भ कर दिया और २० वर्षके निरन्तर परिश्रमसे उन्होंने अंग्रेज़ी (Steel) स्पातको सारे संसारमें परमोच्च श्रेणीपर पहुंचा दिया। इन्होंने एक नये प्रकारका ऐसा स्टील तैयार किया जो दूसरे प्रकारके स्टील और लोहेकी बनी हुई चीज़ोंको ऐसी आसानीसे काटता था जैसे हमारा चाकू पैंन्सिल काटता है। पाठकोंने राजर्सके बने हुये चाकू तो ख़ूब इस्तेमाल किये होंगे। यह राजर्सशफ़ील्ड (Sheffield) का एक बहुत बड़ा लोहेका कारख़ाना है। शफ़ील्डमें सैकड़ों कुप्यशालायें (Iron Foundries) हैं। यह शहर सारी दुनियामें स्टीलके औज़ारों और स्टीलकी बनी हुई लाखों चीज़ोंके लिये मशहूर है। जिस समयका हम वर्णन कर रहे हैं उस समय भी शफ़ील्डका स्पात बड़ा उत्तम होता था।

जब राबर्ट मशेटने नये प्रकारके स्टीलका आविष्कार किया और शफ़ील्डके लोहेके कारख़ाने वालोंको इसका रहस्य बतला दिया तो वे सारे संसारके स्टीलके ठेकेदार बन बैठे। अन्य देशोंके लोहेके कारख़ाने वालोंने इस प्रकारका स्टील बनालेनेकी हज़ारों कोशिशेंकीं; परन्तु यह रहस्य न

मालूम होनेके कारण वे उस ओर सफलता न प्राप्त कर सके।

राबर्ट मशेट की इस खोजका बड़ा भारी रहस्य यह है कि वे अपने जीवन भर (Burnt Iron) तपाये हुये लोहेके विषयमें ही विचार करते रहे हैं और उनके सारे प्रयोग इसी तपाये हुए लोहेकी समस्याको हल करनेके लिये किये गये थे। जब इन्हें इस बातका पता लग गया कि बहुत ज़्यादा तपानेसे कच्चे लोहे (Wrought Iron) के बहुतसे गुण जाते रहते हैं तो इन्हें इस बातकी फ़िकर पड़ी कि अगर ऐसे तपाये हुये कच्चे लोहेको और भी अधिक तपाया जाय तो क्या परिणाम होगा। साधारणतयः इस प्रकार तपाकर कच्चे लोहेके गुण खोकर सन्तुष्ट न होना, और उसे और ज़्यादा तपाकर उसके सारे गुण उड़ा देनेकी चेष्टा करना, पागलपनेका काम मालूम होता है। परन्तु मशेटको इस बातकी तो परवाह ही नहीं थी कि अधिक तपानेसे लोहेके रहे सहे गुण भी जाते रहेंगे। वह तो अपनी धुनमें मस्त था। उसे पूरा कर लेना ही उसका मुख्य कर्त्तव्य था। अस्तु उसने अपने इस विचारके अनुसार लोहेको और भी अधिक तपाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जब उसने देखा कि उसके बनाये हुये एक खास तरहके स्टीलको तपा २ कर जब बिल्कुल निकम्मा कर डाला गया, तो उस निकम्मे स्टीलको दूसरी और भी तेज़ आग वाली भट्टी में रखते ही, उसमें एक नई शक्तिका संचार हो गया, अब तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही, और वह अपनी खोजके इस नये परिणामसे बहुत कौतूहलप्रद हुआ! उसके बनाये हुये इस नये शफ़ील्ड (Sheffield) स्टीलके बनानेका रहस्य इतना गुप्त रक्खा गयाकि किसी दूसरे राष्ट्रको उसकी विधि ज्ञात न हो पाई। और इसी कारण इङ्गलेण्ड स्टील बनानेमें सब देशोंका अगुआ बना रहा। मशेटकी खोजका परिणाम ही आज दिन इस देशकी वृहत तथा उच्च इञ्जीनियरिंग कलामें मौजूद है!

इस स्टील द्वारा माल लादने की गाड़ियाँ ऐसी मज़बूत और उत्तम बनाई गई हैं कि पहले की अपेक्षा उनमें चौगुना माल लादा जा सकता है और वे पहली गाड़ियों से चौगुनी ज़्यादा चलती हैं। इसी प्रकार इस स्टील से बने हुये इञ्जन भी बड़े मज़बूत होते हैं और पहले इञ्जनोंके मुक़ाबलेमें चौगुना ज़्यादा काम देते हैं। इस उद्योगमें अब इतनी उन्नति हुई कि स्टील बहुत सस्ता हो गया, और जहाज़ बनानेमें भी इसका उपयोग होने लगा। उस ज़मानेके अंग्रेज़ी स्टीलके जहाज़ सारे संसारके लकड़ीके जहाज़ोंसे अधिक मज़बूत और तेज़ थे। थोड़े ही दिनोंमें अमेरिका आदि देशोंकी वाणिज्य नौकाओंमें भी यह परिवर्तन हो गया और सारे संसारमें 'स्टीलयुग' का प्रादुर्भाव हुआ। इन दिनों स्टीलकी हर प्रकार की मशीनके लिये शफ़ील्ड ही सारी दुनियाकी मंडी थी और यहीं से संसारके हर देशमें स्टीलके औज़ार और मशीनें जाया करतीं थीं! यही कारण था कि अमेरिका और जर्मनी में कोयले और लोहे की बहुत बड़ी २ खानें होने पर भी स्टीलका व्यापार इङ्गलैंण्डके ही हाथ रहा।

इस महायुद्धमें इङ्गलेण्डका नौसैनाविभाग जिस प्रकार महा शक्तिशाली रहा है उसी प्रकार इसका वायुसैनाविभाग भी किसी प्रकार कमज़ोर नहीं रहा। युद्ध प्रारम्भ होने से पहले जर्मनी इस ओर बहुत कुछ उन्नत कर गया था, परन्तु इङ्गलेण्डके वैज्ञानिकों की शक्ति द्वारा ही इस ओर भी हमारे साम्राज्य की ही विजय रही। १८८४ वि० में वुहलर (Wohler) ने बड़े परिश्रम और व्ययसे विद्युतधाराके प्रयोगसे आलपीन की घुंडीके बराबर एक नई, चांदी जैसी चमकीली धातुके टुकड़े बनाये! विद्युत शास्त्र की वृद्धिके साथ ही साथ इस नई धातुका बनाना भी सुगम हो गया। इसी एल्यूमीनियम धातुने इस महायुद्ध में कैसा उपयोगी कार्या किया है, यह बात पाठकोंको

'एल्यूमीनियम' शीर्षक लेखके पढ़नेसे भली भांति ज्ञात हो जायगी !

अब हम अपने पाठकोंको इन वैज्ञानिकोंकी खोजकी बिल्कुल अनूठी छवि दिखलाना चाहते हैं। मिश्रदेशान्तर्गत सुडान (Sudan) प्रदेशमें बड़े ज़ोरका मलेरिया ज्वर फैला करता था। सुडान प्रान्तकी राजधानी ख़रतूम (Khartoum) में इस बातकी बड़ी आवश्यकता हुई कि किसी तालमें से लाकर ऐसी मछलियाँ नाइल नदीमें रक्खी जायं जो नीलो नाइलमें पैदा होने वाले मच्छुड़ोंको खा जाया करें। वैसे तो हज़ारों आदमी रोज़ संसारके किसी न किसी भागमें मछलियों का शिकार किया करते हैं; पर इनमें से ऐसे बहुत ही कम हैं जो इन जीवोंकी रहन सहन तथा इनके जीवन की बहुतसी घटनाओंसे परिचित हों। परन्तु बहुतसे वैज्ञानिकों ने घंटों नित्य दरियाओं और तालाबोंके किनारे पर बैठे २ इन जीवोंकी जीवन यात्राका दिग्दर्शन कर इनकी आदत, इनके भोज्य पदार्थ तथा इनके रहन सहन विषयक सैकड़ों बातों की जानकारी प्राप्तकी है। इन 'वैज्ञानिकों को इस प्रकार मछलियों तथा मेंढकोंकी तलाशमें हाथ पर हाथ धरे बैठा देखकर बहुतसे धनलोलुप वैश्यों तथा डालर सेवी अमेरिकनोंको बड़ा कष्ट हुआ है और उन लोगोंने उनकी इस अवस्थापर बड़ा शोच प्रगट किया है; परन्तु ख़रतूमके रहनेवालोंको यह अच्छी तरह से मालूम है कि उनकी जानें बचानेकेलिये इन वैज्ञानिकोंने कैसा भारी परिश्रम किया है। इन लोगोंकी दृष्टिमें उनका इस प्रकार बेकार बैठे रहना नहीं खटकता है; वरन् वे जानते हैं कि हमारे आस पासके जीव, जन्तुओं, तथा पशु, पक्षियोंके जीवनका रहस्य जानकर, यह लोग हमारे जीवनको अधिक सुखमय बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। सुडानके रहनेवालोंका यह विचार इसी कारण से है कि उन्होंने देख लिया है कि इन वैज्ञानिकोंने अपने निरन्तर परिश्रम द्वारा ऐसी मछली खोज निकाली जिसके नाइल नदीमें रहनेसे मच्छड़ोंकी पैदावार कम होती चली जाती है, और मलेरिया ज्वर विलोप होता जाता है।

पास्टूर नामी फ्रेंच वैज्ञानिकने पहले पहल किएवक्रिया (Fermentation) का रहस्य जान लेने की चेष्टा की। यह क्रिया बड़े पुराने ज़मानेसे व्यवहारमें आती रही है, पर इसका रहस्य जानने की बहुत कम कोशिश की गई। बहुतसे रसायनज्ञोंका विचार था कि जिस प्रकार रासायनिक क्रिया द्वारा विद्युत उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इस क्रिया द्वारा पदार्थोंमें ख़मीर उत्पन्न होने लगता है। सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा (Yeast cells) सुरामुंडकी कोषाकार बनावटको देखकर बहुत से वैज्ञानिकों ने इस क्रिया को अजीब ही व्याख्या कर डाली। परन्तु पास्टूरने जब इन सुरामुंडों को सुखाकर और खूब बारीक पीस कर छान लिया तो उसने सूक्ष्मदर्शीयंत्र द्वारा देखा कि अन्तरुत्सेक अथवा किएवक्रियाके उत्पन्न करनेवाले बड़े ही सूक्ष्म जीव हैं जिन्हें हम कीटाणु कहते हैं। इस प्रकार पास्टूर (Pasteur) ने कीटाणु जगत (Microbe World) ढूंढ़ निकाला। अब तो पास्टूर ने जीव जन्तु विषयक सैकड़ों नई २ बातोंपर खोज करना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनों बाद इन्होंने ढूंढ़ निकाला कि पौधों और जानवरों के बहुत से रोगोंके कारण यही कीटाणु होते हैं। अब तो इस नये जगतकी खोजमें सारे वैज्ञानिकोंका समय गुज़रने लगा। कुछ ही समयमें प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित हो गया कि पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति भी इन्हीं कीटाणुओंपर निर्भर है। जिस समय इन कीटाणुओंमें एक दूसरे प्रकारके कीटाणुओंके विषके कारण रोग फैल जाता है तो पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है और खाद देनेसे इसपर कोई फ़ायदा नहीं होता! इसके बाद कुछ वैज्ञानिकोंने यह भी मालूम कर लिया कि कुछ विशेष रासायनिक पदार्थोंके प्रयोग

से, तथा भापके फुहारे छोड़ने से यह उर्वरा शक्ति फिर ज्यों की त्यों हो जाती है।

हमारे देशमें भी मलेरिया ज्वरका बड़ा ज़ोर रहता है। हर साल बरसात हो चुकने पर हमारे हज़ारों देशवासी इसी ज्वरके कारण काल कवलित हो जाते हैं। हमारे देशमें भी (Sir Ronald Ross) सर रोनाल्ड रौस ने मलेरिया ज्वरका कारण ढूंढ़ निकालने के लिये बड़ा परिश्रम किया। इन्होंने मलेरियाके हज़ारों मरीज़ोंको देखा और अन्तमें पता लगा लिया कि यह ज्वर छूतसे नहीं फैलता है, बल्कि इसके कीटाणु मच्छड़ों द्वारा एक मरीज़से दूसरे मरीज़तक फैलते हैं। यह मच्छड़ पानीके गढ़ों और तालाबोंकी सतहपर पाये जाते हैं।। मोरियोंके सड़े हुये पानी और बन्द गढ़ों और हौज़ों में भी इन मच्छड़ोंकी बहुतायत होती है। यह मच्छड़ जिस समय मलेरिया से पीड़ित मरीज़को काटकर उसका खून चूसते हैं तो मलेरियाके कीटाणु इस रक्त द्वारा इनके शरीरमें पहुंच जाते हैं, और जब यह किसी स्वस्थ्य आदमीको काटते हैं तो उसके शरीरमें इन कीटाणुओंका विष प्रवेश कर जाता है और उसे मलेरिया हो जाता है। मैले पानीके ऐसे गढ़ोंपर पेटरोलियम या मट्टीका तेल डाल देने से यह मच्छड़ मर जाते हैं। परन्तु अब हमारे देशमें बच्चा बच्चा भी यह जानता है कि मलेरिया ज्वरके लिये कुनैनसे बढ़कर कोई उपयोगी औषधि नहीं है।

प्रकृति भण्डारकी खोजके इस संक्षिप्त विवरणसे पाठकोंको ज्ञात हुआ होगा कि विज्ञानके ज्ञान द्वारा हम अपने देशकी दरिद्रता दूर कर सकते हैं, बीमारियोंको रोक सकते हैं, और अपने देशवासियोंको हर प्रकार सुखी और समृद्धशाली बना सकते हैं। आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि हम भी निःस्वार्थ भावसे प्रकृति देवीके इस अनुपम भण्डारके कोषान्वेषणमें अविचल परिश्रम करें। इस वृहत प्राकृतिक कोषके खोलनेके अनेकों रीतियाँ हैं, और इस कोषमें अनुपमेय और अनन्त आभापूर्ण रत्न भरे हुये हैं। कौन सा रत्न किस समय हमारे हाथ लगेगा इसका तो हमें स्वप्न में भी पता नहीं चल सकता।

प्रकाश विज्ञान

[ले० प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

पाठकोंने यह तो भलीभांति समझ ही लिया होगा कि तरंगें किस प्रकार बनती हैं तथा इनके चलनेमें परमाणुओंकी क्या अवस्था होती है। तिर्यक तरंगोंमें परमाणु ऊपर नीचे जाकर कंपन उत्पन्न करते हैं और अनुदैर्ध्य (Longitudinal) तरंगोंमें इनका गमन दाहने बायें अथवा आगे पीछे होता है*। एक नत या उन्नत तरङ्गसे दूसरी तक—अथवा एक सघनता या विरलतासे दूसरी तक—की दूरीको तरङ्ग विस्तार कहते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह दूरी केवल उन परमाणुओं से ही नापी जाय जो अपने कम्पनकी सीमापर पहुंच चुके हैं। यदि किसी भी परमाणु प से नापना आरम्भ किया करें और उस परमाणुतक नापें जिसकी गमन सम्बन्धी दशा ठीक प के समान हो, अर्थात् उसका वेग और वृद्धि प के बराबर हो और अपने वास्तविक स्थानसे वह भी उतना ही हटा हुआ हो जितना प, तो वह नाप भी तरङ्ग विस्तार के बराबर ही होगा। जैसे प से फ तककी दूरी भी एक तरङ्ग विस्तारके बराबर हुई। दोनों परमाणु प-फ एक ही कला (Phase) में हैं। प से जो परमाणु २, ३, ४ आदि तरङ्ग विस्तारोंकी दूरी पर हैं वे भी उसी कलामें हैं। किन्तु यदि प से फ तक पहुंचनेके पहिले ही हम ब पर ठहर जावें जिसकी गमन सम्बन्धी दशा प से उलटी हो तो प ब का अन्तर अर्ध तरङ्ग विस्तार हुआ। और प और ब विषमकलामें स्थित कहे जावेंगे। जितने भी परमाणु प से अर्ध तरङ्ग विस्तार या

* विज्ञान भाग ६ संख्या २ पेज ७५ का चित्र देखिये।

उसके किसी विषम आयवर्त्य (Odd multiple) की दूरी पर हों वे सब विरुद्ध कलामें होते हैं।

परमाणु अपने वास्तविक स्थानसे अधिकसे अधिक जितनी दूर हट सकें उसे कम्पविस्तार (Amplitude) कहते हैं। और यह स्पष्ट है कि तरङ्गें जितनी ही अधिक शक्तिशाली होंगी उतना ही यह कम्प विस्तार भी अधिक होगा।

तरङ्गोंका बनना और उनका चलना दिखलाने के लिये एक चौड़ा बरतन जिसका पेंदा कांचका हो और २-२॥ इंच गहरा पानी भरा जा सके बहुत उपयुक्त होगा। इस पानीमें छोटी २ लहरें सरलतासे बनाई जा सकती है। उसके नीचे रखा हुआ बिजलीका लैम्प (Arc Lamp) उनकी
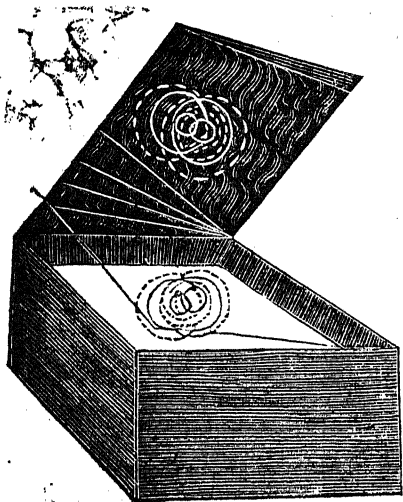
चित्र १

परछाईं बरतनके ऊपर रखे हुए तिरछे पतले काग़ज़के बने हुए परदे पर डालता है। उंगलीको पानीमें डुबाने और निकालनेसे जो वृत्ताकार लहरें बनती हैं वे उस पर्देपर स्पष्ट दिखाई देती हैं। प्रत्येक वृत्त बढ़ता जाता है और उसके मध्यमें छोटे २ नये वृत्त बन जाते हैं। इन वृत्तोंकी पारस्परिक दूरी एकसी है। इसी दूरी या विस्तारको तरङ्ग विस्तार कहते हैं।

जब उंगलीसे तरङ्गें बनाई जाती हैं तब तो वे चारों ओर एक ही वेगसे चलती हैं। इस कारण तरङ्ग क्षेत्र (Wave Front) वृत्ताकार होता है। किन्तु यदि वे एक सीधे लकड़ीके टुकड़ेसे बनाई जाती हैं तो सीधी लहरें एक दूसरीसे समानान्तर चलती हैं। इन तरङ्गोंको समतल तरङ्ग कह सकते हैं।

अब हमें आगे बढ़ कर एक अत्यन्त महत्वके प्रश्नपर विचार करना है। मान लीजिये कि एक ही बरतनमें दो केन्द्रोंसे पृथक २ तरङ्गें चल रही हैं। यथा तालाबमें दो पत्थर पास पास डाल देनेसे, अथवा उपरोक्त बर्तनमें दो उंगलियोंसे तरङ्गें उत्पन्न करनेसे, बहुतसे स्थानोंपर दोनों तरङ्गें एक ही साथ पहुंचेंगी और एकके वृत्त दूसरीके वृत्तोंको काटते हुए दिखलाई पड़ेंगे। पानीके परमाणुओंपर ऐसी दशामें दो शक्तियोंका प्रभाव पड़ेगा और उनका गमन दोनोंका सम्मिलितफल (Resultant) होगा। दो ही क्यों, चाहे कितनी तरङ्गें एकत्रित हो जांय, परमाणुओंके गमनका नियम यही रहेगा कि उनका लब्धगमन या कम्पन, जुदी २ तरंगों द्वारा उत्पन्न किये हुये वृत्तोंका समुदाय मात्र होगा। यदि दोनों तरङ्गोंका उन्नत भाग एकत्रित हो जाय तो स्पष्ट है कि वहांके परमाणु दुगनी ऊंचाई तक उठ जावेंगे। किन्तु यदि एकका नत और दूसरीका उन्नत भाग एकत्रित हों तो परमाणुपर दो विरुद्ध शक्तियां लगेंगी। एक उसे ऊपर उठानेका यत्न करेगी और दूसरी नीचे ले जानेका। फल यह होगा कि जल न ऊंचा हो सकेगा और न नीचा। ऐसा मालूम होगा कि वहांपर कोई तरङ्ग है ही नहीं। प्रायः पानीकी सतहपर एक विशेष प्रकारका आन्दोलन देख पड़ेगा मानो बड़ी कारीगरीसे उस पर कुछ खुदाईका काम किया गया है और वह पल २ में कुछ नवीन रूप धारण करता हुआ प्रगट दृश्यसंगीत सा जान पड़ेगा। जिस मनुष्यको ये सिद्धान्त ज्ञात हैं उसके लिये इससे अधिक सुन्दर दृश्य और नहीं हो सकता। प्यालेमें पारा

भर कर उसमें दो तरङ्गे उत्पन्न करनेसे जो आकृति देख पड़ती हैं वह नीचे दी गई है। इस प्रकार एक तरङ्गका दूसरी पर जो प्रभाव पड़ता है उसे व्यतिकरण (Interference) कहते हैं।
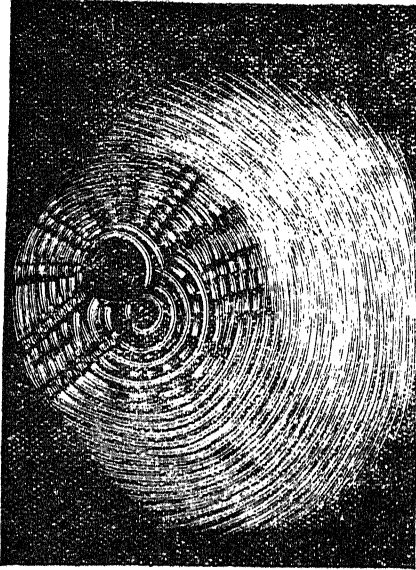
चित्र २

यदि एक ही स्थानसे एक ही तरङ्गविस्तार वाली दो तरङ्गे साथ ही साथ चलें तो एकका उन्नत भाग दूसरीके उन्नत भाग पर पड़ता है और नत भाग भी दूसरी के नत भागसे मिल जाता है। दोनों तरङ्गें मिलकर दुगने कम्प विस्तारकी एक तरंग बना देती हैं। यदि दूसरीके चलनेके समय पहिली एक तरङ्ग विस्तार चल चुकी हो तो भी यही परिणाम होता है। यदि अर्ध तरङ्ग विस्तारके किसी सम अपवर्त्य-के बराबर भी चल चुकी हो तो भी वही बात हो जाती है। किन्तु यदि पहिलीके केवल अर्ध तरङ्गविस्तार या उसके किसी विषम अपवर्त्यके बराबर चल चुकनेपर दूसरी चले तो उन्नतसे नत और नतसे उन्नत मिलकर, विरोधी शक्तियों-का परिणाम यह होता है कि पानी ज़रा भी नहीं हिलता। एक तरंगसे दूसरी तरंग मिलकर दोनों नष्ट हो जाती हैं।

प्रकाश तरंगोंको ठीक २ समझनेके लिये निम्नलिखित दो सिद्धान्तोंको समझ लेना बहुत ही आवश्यक है।

१-पहिला सिद्धान्त यह है कि तरंगें सदा अपने अग्रभागकी सम कोण दिशामें चलती हैं। ठीक इसी प्रकार एक पंक्तिमें खड़े हुए सिपाही भी चलते हैं सब जानते हैं कि पानीकी तरंगें इसी प्रकार चलती हैं।

२-दूसरा सिद्धान्त जो हाईगैन्सका सिद्धान्त (Huyghens) कहलाता है यह है कि तरंगक्षेत्रका प्रत्येक परमाणु नवीन तरंगोंका केन्द्र समझा जा सकता है। जिस प्रकार प के कम्पनसे तरंगें बनीं उसी प्रकार तरंगक्षेत्रके प्रत्येक परमाणु-के कम्पनसे भी तरंग बन जानी चाहिये। इसका प्रमाण भी सरल है। तरंगके सामने एक पर्दा जिसमें एक छोटा छिद्र छ हो रख दीजिये। तरंगें जब इस पर्देसे टकरावेंगी तब छ के सामने वाले थोड़ेसे भागको छोड़कर शेष प्रायः परावर्त्तित हो जायंगी या वहीं उनका अंत हो जायगा। वह थोड़ासा भाग छिद्रमें होकर आगे बढ़ जायगा किन्तु चारों ओर बराबर वेगसे फैल जायगा। इन तरंगोंका केन्द्र प न होगा किन्तु छ होगा। अर्थात् छ भी एक तरंग केन्द्र है। किन्तु यह तरंग केन्द्र छिद्र और पर्देके होनेसे नहीं बना है वह तो वहां
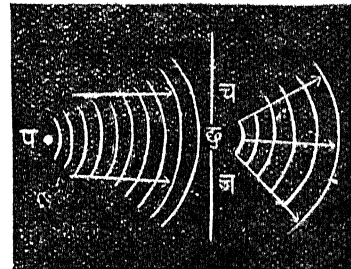
चित्र ३

पर मुख्य तरंगके पहुंचनेसे ही बनता है परन्तु पर्देके न होने पर हम इस बातको प्रत्यक्ष नहीं देख सक्ते क्योंकि जिस प्रकार छ तरंग केन्द्र है उसी प्रकार च, ज आदि अन्य विन्दु भी तरंग केन्द्र हैं और उनसे उत्पन्न तरंगें भी छ से उत्पन्न तरंगोंके साथ ही साथ आगे बढ़ती हैं। ऐसी दशामें व्यतिकरण अवश्य होता है और हम केवल सबका सम्मिलित परिणाम मात्र देख सक्त हैं। और यह परिणाम वही होता है जो पहिला सिद्धान्त कहता है। अतः हम कह सक्ते हैं कि पहिला सिद्धान्त इस दूसरे सिद्धान्त और व्यतिकरण के सिद्धान्त दोनोंपर निर्भर है। इनके द्वारा हम आसानीसे जान सक्ते हैं कि तरंगें किस प्रकार चलती हैं।

मान लीजिये कि किसी समय तरंगक्षेत्र क से चलकर प फ तक पहुंच गया, और हमें यह जानना है कि एक सैकंडके दशांशके पश्चात् वह कहां पहुंच जायगा। यदि हमें तरंगोंका वेग मालूम है तो यह जानना सरल है कि इतनी देरमें वे तरंगें कितनी दूर चल सकेंगी। मान लीजिये कि आधे इंच चल सकेंगी। एक परकार लेकर उसे इतना खोल लीजिये कि दोनों नोकोंका अन्तर आध इंच हो जावे। तब प फ में किसी
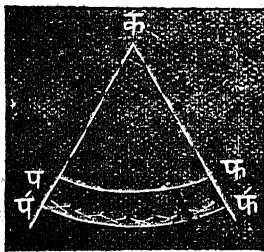
चित्र ४

विन्दु च को केन्द्र मानकर वृत्तका कुछ अंश च' खींचिये। यदि च के पासका कुछ भागही अकेला आगे बढ़ता तो वह च' तक पहुंच जाता। किन्तु छ के पासका तरंग क्षेत्र भी तो फैलेगा; अतः छ केन्द्रसे भी एक वृत्त छ' बनाना चाहिये। इसी प्रकार ज झ आदि विन्दुओंसे भी आध इंच त्रिज्या वाले वृत्त खींच लेने चाहिये। अब यदि यह समझ लिया जाय कि पृथक् पृथक् चलनेके स्थानमें इन सब बिन्दुओंकी तरंगें एक ही साथ फैलती हैं तो हमें ज्ञात होगा कि व्यतिकरणके कारण एक नया बृहत् तरंगक्षेत्र प' फ' बन गया है जो उन क्षुद्र वृत्तोंका अन्वालोपी वक्र (Envelope) है। अब भी परिणाम वैसा ही हुआ जैसा कि तब होता। यदि प्रथम सिद्धान्तके अनुसार तरंग अपने अग्र भागकी प्रथम समकोण दिशामें आध इंच बढ़ जाती तो च ज इत्यादिसे जो तरंगें इधर उधर फैलती हैं वे व्यतिकरण होनेपर एक दूसरेको नष्ट-कर डालतीं और ऐसा जान पड़ता मानो च से फैलनेवाली तरंग केवल सीधी च' तक पहुंच गई।

किन्तु इस स्थानपर यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि यदि यह बात सत्य है तो जिस प्रकार आगेकी ओर एक नया तरंगक्षेत्र प' फ' बन गया उसी प्रकार पीछेकी ओर भी एक तरंगक्षेत्र बन जाना चाहिये। क्योंकि च छ आदिसे जो वृत्त खींचे गये हैं उनका अन्वालोपी वक्र पीछेकी ओर भी अवश्य बनेगा। यह सच है कि यदि जलका एक परमाणु किसी बाहिरी शक्तिके कारण कम्पन करे तो उससे तरंगें चारों ओर फैलती हैं, दाहिनी ओर भी तथा बाईं ओर भी; किन्तु स्थिर जलमें परमाणु बाहिरी शक्तिके कारण कम्पन करें, और उस परमाणुका कम्पन जलमें चलने वाली तरंगके कारण ही हो इन दो बातोंमें अवश्य कुछ न कुछ भेद है। पहिली दशामें वह परमाणु एक वास्तविक तरंग केन्द्र है किन्तु दूसरी दशामें वह केवल गौण रूपसे केन्द्र बन जाता है।

मान लीजिये कि नीचे दिये हुए चित्रकी वक्र रेखा दाहिनी तरफ़ चलनेवाली तरंग है। यह हम जानते हैं कि वह तरंग आगे बढ़ती जावेगी किन्तु

इसकी आकृतिमें कुछ परिवर्तन न होगा। और इसके निकल जानेके बाद माध्यम (वह पदार्थ जिसमें तरंग चल रही है) पुनः निश्चल हो जायगा। किन्तु यदि किसी उपायसे जलकी यह आकृति बना दी जाय, तो तरंगें दोनों ओर चलेंगी। क्योंकि क परके परमाणुपर स्थितिस्थापक शक्ति ऊपरकी ओर लग रही है और ख पर नीचेकी

पर भी नीचे हटनेको जो शक्ति लगती है वह उसे नीचे नहीं हटा सकती। वह केवल ग' को ऊपर जानेसे रोक सकती है। यदि ग में वेग न होता, अर्थात्, यदि जल तरङ्ग-रहित व निश्चल होता तो अवश्य ही ख के नीचे हटनेके कारण ग भी नीचे हटता और तरङ्ग पीछेकी ओर भी चलती।

हाईगैन्सके इसी सिद्धान्तानुसार तरङ्गोंका

चित्र ५

चित्र ६
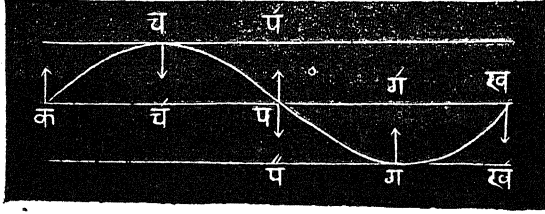
ओर। क और ख दोनों स्थिर हैं अतः उक्त बलके कारण वे दोनों गमन आरम्भकर देंगे। किन्तु यदि जलकी यह आकृति तरंगके इस स्थानपर बाईं ओर से पहुंचनेके कारण बनी है तो, परमाणु क ऊपरसे नीचेकी ओर चलेगा। जिस समय उक्त शक्ति उसे ऊपरकी ओर खींच रही है उसी समय उसमें नीचेकी ओर जानेको कुछ वेग विद्यमान है। अतः वह उस बलके प्रभावसे ऊपरकी ओर नहीं चल सकता। वह स्थिर ही रहता है। इस कारण बाईं ओरको कोई तरंग भी नहीं चल सकती। किन्तु ख इस दशामें भी वेग-शून्य, निश्चल है। तरङ्ग उस तक तो अभी पहुंची ही नहीं है। अतः वह स्थितिस्थापक शक्तिके कारण नीचेकी ओर अवश्य चलेगा। और इस कारण तरङ्ग दाहिनी ओर बढ़ सकेगी। इसी प्रकार हम यह भी देख सकते हैं कि ख का कम्पन भी पीछेकी ओर तरङ्ग नहीं भेज सकता। मान लीजिये कि वह चलकर ख' तक पहुंच गया। किन्तु इसी बीचमें ग भी तो ग' तक पहुंच जायगा और उसमें ऊपरकी ओर जानेको वेग भी पर्याप्त हो गया। अतः ख के नीचे हट जानेके कारण ग
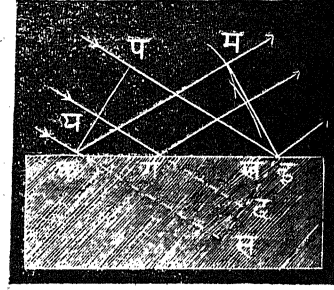
परावर्तन और वर्त्तनसर्वथा स्वाभाविक है। मान लीजिये कि अ इ वह धरातल है जिसमें होकर तरङ्ग नहीं जासकती और क ख एक तरङ्गक्षेत्र है जिसका एक भाग क धरातल अ इ तक पहुंच गया। जिस समय ख के समीपके आन्दोलनके कारण गौण तरंग म तक पहुंचेगी उस समयतक क से उत्पन्न गौण तरंग भी ख म दूरीके बराबर ही त्रिज्या वाले वृत्त पर पहुंच जायगी। इसी प्रकार ग से भी यथा समय गौण तरंग उत्पन्न होगी और वह भी क म, ख ह आदि त्रिज्याओं के वृत्त तक पहुंच चुकेंगी। इन सबका अन्वालोपी वक्र ह म होगा। अतः अ इ धरातलके कारण क ख तरंग क्षेत्र मुड़कर ह म बन गया। अर्थात् तरंगका परावर्तन हो गया। इसी चित्रसे यह भी समझा जा सकता है कि तरंगका आयतन कोण परावर्तन कोणके बराबर है।

इसी प्रकार यदि अ इ उन दो पदार्थोंके बीचका धरातल है कि जिन दोनोंमें तरङ्ग चल तो सकता हैं किन्तु एकमें अधिक वेगसे और दूसरेमें न्यून वेगसे। तब ठीक परावर्तन ही की भांति गौण

तरंगोंसे तरंगक्षेत्र बनेगा। अंतर केवल यह होगा कि गौण तरंगकी त्रिज्या दूसरे पदार्थमें उतनी न
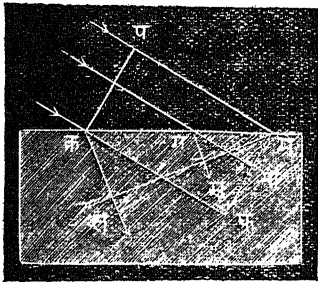
चित्र २३

होगी जितनी कि पहिलेमें। इन त्रिज्याओंकी निष्पत्ति तरंग वेगोंपर निर्भर रहेगी अर्थात् दूसरे पदार्थमेंकी त्रिज्या पहिलेकी त्रिज्यासे छोटी होगी। या $\frac{कत}{कफ} = \frac{गस}{गघ} = \frac{व_1}{व_2}$ जहां व तरंग वेग है। इस प्रकार क ख तरंगक्षेत्र दूसरे पदार्थमें जाकर च छ बन गया। अर्थात् तरंगका वर्तन हो गया। इस वर्तनका नियम भी उक्त चित्र से ज्ञात हो सकता है कि आयतन कोण और वर्तन कौण-की ज्याओंकी निष्पत्ति $व_1$ और $व_2$ की निष्पत्ति-के बराबर है।

यह भी स्पष्ट है कि इस चित्रमें एक परावर्तित तरंगक्षेत्र भी अवश्य बनेगा किन्तु चित्रमें अधिक गड़ बड़ हो जानेके भयसे वह दिखाया नहीं गया है। तरंगोंका परावर्त्तन और वर्त्तन दोनों इस सिद्धान्तके अनुसार सदा साथ ही होंगे। हां, पूर्ण परावर्तन भी एक विशेष दशामें हो सकता है जब दूसरे पदार्थमें अन्वालोपी वक्र बन ही न सके। इस दशामें तरंग वेग $व_2$ $व_1$ से बड़ा होना चाहिये और आयतन कोण भी एक नियत परि-माणसे बड़ा होना चाहिये।

विविध विषय

एल्यूमीनियम

इस धातुका पूर्ण इतिहास तथा भौतिक और रासायनिक गुण विज्ञान भाग ७ पृष्ठ ४३ पर विस्तारसे निकल चुके हैं। 'जयाजी जी प्रतापमें भी इस धातुपर एक लेख निकला है, उसका नीचे उद्धृत किया हुआ अंश पाठकोंको रोचक होगाः—

भारतमें इस धातुका प्रचार मि. चैटर्टन ने किया जो आजकल मैसूरमें व्यापार तथा वाणिज्य विभागके डायरेक्टर हैं। आप १९५४ वि० में इङ्गलैन्ड गये थे और वहां आपको यह धातु पसन्द आई। आपने सोचा कि भारतमें इसका प्रचार लाभदायक होगा, इसलिये इस धातुके बर्तन भारत में आने लगे; परन्तु उनकी फ़ैशन विभिन्न होने से इच्छानुसार कामयाबी न होसकी। उस समय यह निश्चित् हुआ कि जब तक इस धातुके बर्तन बनाने का कारख़ाना देशमें न खोला जावे जहां देशी फ़ैशनके बर्तन बनाये जावें तबतक यह काम सफलता पूर्वक नहीं चल सकता। मि० चैटर्टनने दक्षिणके एक आर्ट्स स्कूलमें इसके लिये प्रबन्ध किया और धीरे धीरे यह काम चलने लगा। इससे बर्तन बनने लगे। परन्तु नवीन धातु होने से लोग ख़रीदनेसे झिझकने लगे।

इसका रंग इसकी बनानेकी तरकीब पर कम ज़्यादा हो जाता है। यदि इसको कम हरारत के साथ ढालकर शीघ्र ठंढा कर दिया जावे तो इसका रंग श्वेत चांदीकासा हो जाता है, परन्तु अधिक देर गरम करके इसको बहुत गर्म ही ढाल दिया जाता है इससे इसका रंग सुर्मे कासा हो जाता है। इसका गुरुत्व भी और धातोंकी अपेक्षा कम होता है। हल्की होनेसे यह धातु बहुत उम्दा है। इसमें बिजलीका संचार ख़ूब हो सकता है। इसलिये तांबेके बाद इसीका दूसरा नंबर है। यह बढ़ भी ख़ूब सकती है और इससे अन्य धातुओं

के मुक़ाबलेमें अधिक मुटाईके बर्तन बन सकते हैं। इसमें से आवाज़ भी खूब गूंजकर निकलती है। यह६२८°श पर गल सकता है।

इसका रंग भी बहुत दिनोंतक नहीं बदलता है। एसिड इत्यादिके स्पर्षणसे इसके रंगमें कुछ धब्बे से आ जाते हैं और वज़न भी घटने लग जाता है। एल्यूमीनियम अन्य धातोंके साथ भी मिलाई जा सकती है। इससे हर प्रकारकी ढलाई का काम होसकता है। एल्यूमीनियमकी भांति एक धातु और भी निकाली गई है जो मोटरोंमें ज़्यादा इस्तैमाल की जाती है।

चूंकि यह धातु आजकल अधिकतर बौक्साइट से निकाली जाती है इसलिये यह ज़रूरी मालूम होता है कि पहिले यह देखना चाहिये कि बौक्साइट क्या पदार्थ है। बहुधा लोगों का ख़याल है कि बौक्साइट एक प्रकारका ऐसा पदार्थ है जो चट्टानोंमें पाया जाता है या वह क्षारके साथ जलके द्वारा इधर उधर जम जाता है। मि. हवैना ने बौक्साइट के सम्बन्ध में लिखा है कि यह फ्रांस में कसरत से पाया जाता है, और इसमें ६५ फ़ीसदीएल्यूमीनियम मिश्रित रहता है। इससमय फ्रांसमें ३० मीलके लगभग बौक्साइट की खानें हैं जिनमें से ३,००,००० टन एल्यूमीनियम निकल चुकी है।

इस धातु के सम्बन्धमें अधिक अनुसन्धान करने से यह पता चल गया है कि यह धातु बड़ी सर्वोपयोगी है और शीघ्रही इस धातुका प्रचार दुनियामें अधिकतासे होनेवाला है। अब यह प्रयत्न होरहा है कि इसके सम्बन्धमें जो दोष हैं उन्हें भी शीघ्र ही निकाले जानेका प्रबन्ध किया जाय। अमेरिकन (Institute of Metals) इन्स्टिट्यूट आफ़ मैटिल्स इस बातपर विचार कर रहा है कि इसको हर प्रकारसे उपयोगी बनाकर छोड़ा जावे और इसकी भलीभांति परीक्षाकी जारही है। केनाडामें एक कारख़ना एल्यूमीनियमका खुला है उसने प्रकाशित किया है कि इसमें जो दोष न्यूनाधिक पाये जाते हैं बहुत शीघ्र निकालकर इसको इतना शुद्ध कर दिया जावेगा कि कुछ कालमें यह धातु अपना सानी नहीं रक्खेगी साधारण धातें जो कारख़ानोंके काम में लाई। जाती हैं उनके बजाय यही काममें लाई जाया करेगी। इस प्रकार इस धातुका महत्व अधिक बढ़नेवाला है।

यूरूपके वर्तमान् युद्ध ने इसके उपयोगका महत्व इतना बढ़ा दिया है कि यांत्रिक जगत में जहां कहीं धातुके प्रयोगका विचार पैदा होता है तो पहिले एल्यूमीनियमको ही जांचा जाता है है और अन्तमें यही धातु इस्तेमालके क़ाबिल निकलती है। यदि इसमें कुछ कसर होती है तो न्यूनाधिक अन्य धातु मिलाकर उस कमी अथवा दोष को पूरा कर लिया जाता है। इससे सिद्ध है कि भविष्यमें यह धातु तांबा, पीतल, लोहा इत्यादिका स्थान ले लेगी और इसका प्रचार बढ़ जावेगा।

वर्तमान् युद्धमें जितना इस धातुका इस्तेमाल हुआ उतना और किसीका नहीं। सैनिकोंके बर्तन इसी धातुके बनाये गये थे जो करोड़ोंकी संख्यामें बने। तोपोंमें इसको लगाया जाता है। ऐसा अनुमान है कि गोलाबारूदमें भी यह न्यूनाधिक मिलाया जाता है। विमान तो इसपर ही निर्भर हैं। इसके बिना विमानोंका काम नहीं चल सकता; क्योंकि इससे हलकी व नित्यके व्यवहार में आने योग्य धातु दुनियामें और कोई नहीं पाई जाती। जहाज़ोंमें भी यह एक ख़ास चीज़ मानी गई है। सबमैरीन, टारपीडो इसके बिना काम नहीं दे सकते। कहने का सारांश यह है कि थोड़े कालमें ही एल्यूमीनियम सर्वोपयोगी धातु होजानेवाली है। ऐसा भी पता लगा है कि इससे काग़ज़ और कपड़े भी बनाये जासकते हैं। यदि यह होगया तो इससे और भी बहुतसे काम निकलेंगे और भविष्य में "एल्यूमीनियमका समय" आ जावेगा।

भारतमें भी यह धातु पाई जाती है। अनुसंधान करने पर ऐसा पता चला है कि बरमा, नैपाल तथा दक्षिणमें इसकी कई स्थानोंपर खानें हैं। यदि इसका एक कारखाना साधारण पैमाने पर खोला जावे तो आरम्भमें ही इसके प्रचार की सम्भावना प्रतीत होने लगेगी। परन्तु हमारे यहां देशमें अभी इस महत्वके व्यवसाय की ओर लोगोंका ध्यान नहीं गया और इसका फल यह होरहा है कि बाहरसे इस धातुकी मांगकी जाती है।

२----छोटे बच्चोंका पालनपोषण।

छोटे बच्चोंके लालन पालनके विषयमें हम नीचेकी बातें "जयाजी प्रताप" से उद्धृत करते हैं:—

नये पैदा हुए बच्चेको मां की छातीसे दूध पिलाना सबसे अच्छा है। जैसा अच्छा बच्चेके लिये मांका दूध होता है वैसा अच्छा न तो किसी जानवरका दूध होता है और न किसी किस्मका तैयार किया हुआ क्रित्रिम भोजन। जब मां बच्चेको दूध पिलाती हो तो उसे बिलकुल चपाती या रोटी और दाल भात ही पर बसर न करना चाहिये, बल्कि उसे चाहिये कि दूध पिये और तरकारी और मछली और बकरी और भेड़का गोश्त खाय। अगर यह उसके मज़हब और जातके ख़िलाफ़ न हो। नहीं तो उसका दूध ख़राब हो जायगा और बच्चा मज़बूत न होगा बल्कि चिड़चिड़ा और कमज़ोर हो जायगा। अगर बाज़ारका दूध ख़राब हो तो गाढ़ा किया हुआ दूध (यानी वह दूध जो डिब्बोंमें बन्द होकर आता है) इस्तेमाल किया जाना चाहिये। नौ महीनेकी उम्र हो जाने पर बच्चेसे मां का दूध छुड़ा देना चाहिये। बच्चोंको ज़्यादा अर्सेतक छातीसे दूध पिलाना अच्छा नहीं। छै महीनेसे कम उम्रके बच्चोंको चपाती या भात वग़ैरह नहीं खिलाना चाहिये, क्योंकि इससे बच्चे का हाज़मा ख़राब हो जाता है और दस्तोंकी बीमारी हो जाती है।

अगर बच्चेके लिये मां का दूध न हो या अगर मां मरजाय तो बहतर यह है कि दूध पिलानेके लिये कोई दूसरी औरत, अगर हो सके, तो रखली जाय। मगर अक्सर ऐसा नहीं हो सकता है, इसलिये औरतके दूधकी जगह जानवरका दूध दिया जाता है। गायका दूध औरतका सा नहीं होता है, मगर नीचे लिखी तरकीब से वह उसकी तरह बनाया जा सकता है:—

नये पैदा हुए बच्चेके लिये एक छटांक दूधमें दो छटांक खोलाया हुआ पानी और थोड़ी शकर मिलानी चाहिये। हमेशा यह कोशिश करनी चाहिये कि गायका उम्दा दूध मिले और गायको सामने दुहाना चाहिये। बाज़ारके दूधमें अक्सर पानी मिला होता है। दूधको इस क़दर गर्म करना चाहिये की वह क़रीब क़रीब खोलने लगे। दूधको किसी साफ़ लोटे या बर्तनमें रखना चाहिये और इस्तेमालके बाद बर्तनको खोलते हुए पानीसे ख़ूब साफ़ कर डालना चाहिये। बच्चेको दूध चमचे से दे सकते हैं या रुईका फोहा गावदुम शक्लका बनाकर काम में ला सकते हैं। रुईके फोहेको कटोरेमें डाल देते हैं और बच्चा उसीके सहारे से दूध चूसता है। फोहेको बराबर बदलते रहना चाहिये। हरे पत्तों को भी मोड़कर बच्चेको दूध देने के लिये इस्तेमाल करते हैं।

जब बच्चा तीन महीनेका हो जाय तो गायके दूधको पिलानेके वास्ते नीचे लिखे हुए तौर पर तैयार करना चाहियेः—पानी एक हिस्सा दूध दो हिस्से, और थोड़ी शकर। अक्सर छै महीनेके तन्दुरुस्त बच्चेको गाय या बकरीका ख़ालिस दूध थोड़ा २ दिया जा सकता है। भैंसका का ख़ालिस दूध इस क़दर ताक़तदार होता है कि बच्चेके मुवाफ़िक़ नहीं होता; लेकिन पानी मिला-हुआ दूध यानी ऐसा दूध जिसमें एक तिहाई पानी और दो तिहाई दूध हो इस्तेमाल किया जा सकता है।

अगर बच्चा कमज़ोर हो और दूध बिकुल हज़म

न कर सकता हो तो एलन और हेनबरी साहब-के कारख़ानेकी ख़ास तौर पर तैयार की हुई ग़िज़ा या डिब्बे का दूध वग़ैरह दूधकी जगह इस्तेमाल कियाजा सकता है। इन ख़ास ग़िज़ाओंको सिर्फ़ अमीर आदमी इस्तेमाल कर सकेंगे। मगर कोई बच्चा सिर्फ़ इन चीज़ों के इस्तेमाल से अच्छी तरह नहीं पल सकता। उसे हमेशा कुछ ताज़ा दूध भी दिया जाना चाहिये नहीं तो उसकी हड्डियां और दांत कमज़ोर हो जायंगे।

बच्चा पैदा होनेके बाद जो काम दाईको सब से पहिले करने होते हैं उनमें से एक यह है कि नाल काटे। बच्चेके पेटसे क़रीब चार इंच छोड़-कर नालको नये फ़ीते या डोरे या कच्चे धागे से बांध देना चाहिये। पुरानी और मैली डोर इस्तेमाल नहीं करनी चाहिये। नालको किसी साफ़ छुरी बग़ैरहसे काटना चाहिये। जब नाल काट दिया जाय तो उस जगहपर जहां से वह क़ाटा गया हो पिसा हुआ लकड़ीका कोयला छिड़क देना चाहिये और अगर वह न मिल सके तो थोड़ासा ताज़ा पिसा हुआ आटा इस कामके लिये काफ़ी होगा। नालके ऊपर कपड़ा या चिथड़ा जलाकर लगा देना बहुत मुफ़ीद है। एक साफ़ चिथड़ेको पानीमें डालकर पानीको खौलाना चाहिये और इसके बाद चिथड़ेको निकाल कर रेंडी या अलसीके तेलसे तरकरके नाल पर बांध देना चाहिये ताकि वह चिपट न जाय। नाल पर मैला कपड़ा बांधने या ज़ख़मी जगहपर मिट्टी या गोबर लगानेकी वजहसे अक्सर बच्चे मर गये हैं इस लिये ऐसा कभी न करना चाहिये। ऐसा करनेसे जमोगा था कज़ाज़ की बीमारी होजाती है और जिन बच्चोंको यह बीमारी होती है उनमें से बहुत ही कम बचते हैं।

नये पैदा हुए बच्चोंकी आंखें बहुत होशियारी-के साथ मुलायम कपड़ेसे साफ़की जानी चाहिये। आंखोंको थोड़े पानी से, जो किसी क़दर गर्म हो, धो डालना चाहिये और आंखोंका मैल कीचड़ अच्छी तरह साफ़ करदेना चाहिये। अगर बच्चेके पैदा होने से थोड़ेही दिनोंके अन्दर उसके पपोटे लाल हो जांय और सूज जांय या अगर पपोटे पर किसी क़िस्मका मैल वग़ैरह पाया जाय तो फ़ौरन किसी डाक्टर या हकीम वग़ैरह को दिखलाना चाहिये, नहीं तो बच्चेकी एक या दोनों आंखोंके जाते रहनेका डर है। आंखें साफ़ करदेने के बाद बच्चेको हलके गर्म पानीसे नहलाना चाहिये और कुल मैल वग़ैरहको होशियारीके साथ दूर कर देना चाहिये और बदनको मुलायम तौलिये से खूब पोंछ डालना चाहिये। बाज़ लोग नहलाने से पहिले बच्चेके बदन पर तैल मल देते हैं ताकि नहलाने में आसानी हो। बच्चेके पेट पर एक पट्टी मजबूतीके साथ उस वक़्त तक बांधे रखना चाहिये जब तक कि नाल का टुकड़ा गिर न जाय और ज़ख़म बिलकुल अच्छा न हो जाय।

बच्चोंको हमेशा बहुत साफ़ सुथरा रखना चाहिये, और जब कभी उनका कपड़ा या जिस्म किसी चीज़से मैला या ख़राब हो जाय तो उस-को इहतियातके साथ धुलाकर पोंछ डालना चाहिये और कपड़ा बदल देना चाहिये।

बच्चेको कभी नङ्गा न रहने देना चाहिये, ख़ासकर जबकि वह सोरहा हो। ऐसा कुरता जिससे सीना और पेट दोनों ढके रहें रात दिन पहनाये रखना चाहिये। जाड़ेके मौसममें ऊनी कपड़ा जो बच्चेकी उम्रके लिहाज़ से मुनासिब हो पहनाना चाहिये। अगर्चि गर्मीके मौसममें इसमें ज़्यादा हर्ज नहीं कि बच्चा नंगा फिरे मगर रातके वक़्त कोई हलका कपड़ा ज़रूर पहरा देना चाहिये।

बच्चेको ज़मीन पर नहीं सुलाना चाहिये बल्कि खटोले या चारपाईपर। ज़मीनपर सोने-से खांसी और सीनेकी दूसरी बीमारियोंके होने का बहुत डर है। बदनपर तेल लगाना और मलना भी मुफ़ीद है क्योंकि इससे मच्छड़ नहीं

काटते । मच्छरोंके काटनेसे बच्चोंको अकसर बुख़ार आजाता है और इससे वह अकसर मर जाते हैं।

हर उम्रके बच्चोंको हमेशा ठीक मुकर्ररा वक्त पर खाना दिया जाना चाहिये और हमेशा बहुतसा अच्छा पीनेका पानी घरमें मौजूद रखना चाहिये ताकि बच्चे जाकर तालाबों और गड्ढोंका पानी न पियें, क्योंकि वह पानी पीनेके लिये अच्छा नहीं होता।

बच्चेको हमेशा दोपहरके वक्त सुला देनेकी कोशिश करनी चाहिये। बच्चेको कभी अफ़ीम नहीं देनी चाहिये। जब बच्चा रोने लगे तो उसे हिला डुलाकर सुला देना चाहिये। बच्चोंके लिये अफ़ीम ज़हरका असर रखती है और अफ़ीम खिलाना बहुत बुरी बात है।

इसका ख़याल रखना चाहिये कि बच्चेको रोज़ाना ठीक तौर पर मामूली पाख़ाना हो जाया करे। अगर कब्ज़ हो तो थोड़ासा रेंड़ीका तेल या "घुट्टी" देना सबसे मुफ़ीद है, मगर पांच बरसके या इससे ज़्यादा उम्रके बच्चेके लिये बराबर वर्ज़िश (कसरत) करना और पक्के फल, जैसेकि नारंगी और केला और आम वगैरह खाना बहुत मुफ़ीद है।

वैज्ञानिकीय

अलकोहल बनानेकी नई रीति

यूरोपीय महायुद्धमें जहां गोले बारूदका बेशुमार ख़र्च था वहां जहाज़ों, हवाई जहाज़ों, टेङ्कों, मोटरों, पनडुब्बियों तथा मोटर नावोंके इंजन चलानेके लिए पेट्रोल और (अलकोहल) मद्यसारकी भी बड़ी आवश्यकता थी। आवश्यकता अविष्कारों की जन्मदाता होती है इसीलिए लावा और पीटमें से भी (Alcohol) अलकोहल बनानेकी एक सुगम रीति निकाल लीगई। उन्नीसवीं शताब्दीके बीचमें जब आलूकी फ़सल अच्छी न होती थी तो पीटसेही अलकोहल निकाला जाता था। एक सो दस सेर सुखाई हुई पीटसे (Peat) १.५८ गैलन शुद्ध अलकोहल मिल सक्ता है। आलुओंमें से भी इसकी इतनीही मात्रा मिलती है। इसके निकालनेकी रीति भी बड़ी सुगम है। गंधकाम्लके साथ पहिले पीटको दबावके अन्दर उबाला जाता है। ऐसा करनेसे कुछ शरबत बन जाता है और बाक़ीके पदार्थ घुलनशील न होने से जमा होजाते हैं। अब गंधकाम्लमें चूना मिलाकर अम्लांश दूर किया जाता है और शरबतको अलग निकाल कर उससे मद्यसार बना लिया जाता है। अघुलनशील पदार्थोंको एक जगह जमाकर आग जलानेके लिए इसके कंडे थाप लिए जाते हैं। इस रीति द्वारा अलकोहल निकालनेकी विधि पर बहुतसे प्रयोगकर सफलता प्राप्त हुई है।

जलीय घासोंका उपयोग

समुद्रके किनारेपर जो जलीय घास और काई पैदा होजाती है अब वैज्ञानिकोंने उसपर भी प्रयोग कर उससे भी काम लेना शुरू कर दिया है। एलगी (Algae) नामक समुद्री घासोंकी इस समय बहुतसी क़िस्में मालूम हो गई हैं। हम लोगोंके लिए इनकी जानकारी इसलिए आवश्यक है कि घोंघों और मछलियोंसे इनका बहुत घनिष्ट सम्बंध है। समुद्रमें रहनेवाली ऐन्द्रिक आबादीकी जीवनदाता यही घासें हैं। और यह मनुष्यके खाद्य पदार्थ भी हैं, तथा इनसे बहुतसे उद्योग धंधोंमें उपयोगी पदार्थ जैसे पुटाश, आयोडीन और जिलेटीन प्राप्त होते हैं।

बिजली की रेलें

योरूपीय महायुद्धके दिनोंमें कोयलेकी कमी होनेसे इटली वालोंको रेलें चलानेमें बड़ा कष्ट हुआ था, इसलिए उन्होंने जलप्रपातोंकी शक्ति द्वारा बिजली उत्पन्नकर रेल चलानेकी कोशिशकी अभी हालमें इटलीमें क़रीब एक हज़ार दो सौ पचास मीलतक विद्युतद्वारा रेल चलानेका प्रबंध हो रहा है।

असुर चिमगादड़

दक्षिणी अमेरिकामें ज़ेम्पायर नामका एक चिमगादड़ पाया जाता है। यह चिमगादड़ अपने और साथियोंकी भांति रात हीमें उठा करता है और मवेशियोंका खून पीकर अपना जीवन निर्वाह करता है। स्वर्गवासी कर्नल रूज़वैल्ट (Roosevelt) जब मीड् (Mede) की यात्रासे लौटे थे तो उन्होंने भी इस खूनी निशाचरका ज़िक्र किया था। अभी हालमें लेफ़टिनेन्ट मिलरने (Lieutenant Miller) बहुत प्रकारके ज़्यम्पायर चिमगादड़ोंको पकड़ कर उनके रहन सहन तथा शारीरिक अवयवोंकी बनावट और उनके भोजन करनेकी रीतियोंका बड़े परिश्रमसे अनुसंधान किया है। नए घोड़ों, बैलों, गायों, भैंसोंके पहुंचतेही इन निशाचरोंकी ईद हो जाती है। दिनके समय तो इनकी सैना दीवारोंके कोनों, छत्तों, ऊंचे ताकों और दरख़्तोंकी टहनियोंमें छिपी बैठी रहती हैं; परन्तु जैसेही रात हुई कि यह लोग बेचारे चौपायोंपर बुरी तरह से टूट पड़ते हैं, और शिवजीके गणों तथा कालीदेवीकी योगिनियोंकी तरह खप्पर भर भर कर, रक्त पान कर राक्षसी नाच आरम्भ कर देते हैं। अगर इन्हें दिनमें मारनेका उपाय किया जाय तो रातमें यह रावणके सिर और भुजाओंकी तरह बढ़ जाते हैं। सुबहके वक्त बेचारे जानवर छटपटाकर इधर उधर लोटते पोटते मिलते हैं और इनके शरीरसे खून टपक कर तमाम ज़मीन लाल हो जाती है। जिस समय इन निशाचरोंका आक्रमण होता है जानवरों और मनुष्यों दोनों ही की आफ़त आजाती है। अगर घोड़ोंके ऊपर भूल डालदी जाय तो यह उनके कानों अथवा अन्य खुले हिस्सोंपर बैठकर ऐसे ज़ोर से काटते हैं कि घोड़े उछल कूदकर तड़पने लगते हैं और ऐसा करनेमें उनकी भूल हट जाती है और इन चिमगादड़ोंको अपने आक्रमणके लिए विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है। नतीजा यह होता है कि इनके खून चूस लेने पर भी घावोंमें से रक्त बहता रहता है। आक्रमण करने से पहिले यह चिमगादड़ अपने शिकारके सिरपर चक्कर काटते रहते हैं और एकाएक चीलकी तरह झपट कर जानवरोंके कंधों और पट्ठों पर बैठकर रक्त चूसने लगते हैं। इस समय उनके दांतोंकी कट कटाहट ऐसी सुनाई देती है जैसे गली हुई लकड़ीको आरे से चीरनेकी आवाज़। यह इतने निडर होते हैं कि इन्हें मारनेके लिए जब बहुतही क़रीब पहुंच जांय तो यह उड़ जाते हैं परन्तु फ़ौरन ही दूसरे जानवरों पर बैठ जाते हैं। अगर सुबहके वक्त इन जानवरोंको नहलाकर इनके घावोंपर जीवाणुनाशक दवाएं न लगादी जावें तो घाओं पर मक्खीके बैठने से खूनमें ज़हर असर कर जाता है। इन चिमगादड़ोंसे मनुष्योंकी भी रक्षा नहीं होती और जानवरोंका खून चूस लेनेपर यह मनुष्योंपर धावा बोल देते हैं। इनके दांत बड़े नुकीले होते हैं और दांतमें तीन नोंके होती हैं। इससे त्रिशूलकी भांति इनके काटने पर एककी जगह तीन घाव होजाते हैं। इनकी जीभ बहुत फैल सक्ती है और अन्दर से इसकी बनावट नलीकी प्रकार होती है जिससे रक्तके चूसनेमें बड़ी सुगमता होती है। इनके पेटमें पाचकेन्द्रिय नहीं होती; इस कारण सम्भव है कि रक्त चूसने के साथही साथ इसका पाचन भी हो जाता हो। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि यह चिमगादड़ अपने पेटको फैलाकर इसमें रक्त भर लेते हैं और दिन भर पेड़ोंसे लटके हुए अथवा कोनेमें छिपे २ फुरसतमें पिया करते हैं।

ऊसर ज़मीनकी उपयोगिता

अमेरिकन लोग हर चीज़की उपयोगिता बढ़ाने और उसका सर्वोत्तम प्रयोग ढूंढ निकालनेके लिए मशहूर हैं। संयुक्त देशमें छप्पन लाख एकड़ ज़मीन ऊसर पड़ी हुई है, इस ज़मीन पर बीज बोकर वृक्ष उत्पन्न करना असम्भव है, इस लिए इस ज़मीनकी अच्छी तरह पैमाइश कर इस समय वह हिस्से छांट लिए गए हैं जहां पर जंगल लगानेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

हरसाल बारह हज़ारसे लेकर पन्द्रह हज़ार एकड़ ज़मीन में संयुक्त देशीय जंगलात विभागकी तरफ़से दरख़्त लगाए जाते हैं। ऐसा करनेके लिए (nurseries) में दरख़्त उगाकर इन्हे कुछ बड़े होने पर ऊजड़ स्थानोंमें लगा देते हैं। ऐसा करने में वैज्ञानिक रीतियों और नए नए अनुसंधानों से पूरी पूरी सहायता लीजाती है। बड़े बड़े दरख़्तोंमें हरसाल बहुतसे बीज नहीं मिल सक्ते क्योंकि बहुत से बीजोंको गिलहरियां खाजाती हैं। इसलिए बीजोंकी रक्षा करना और उन्हें इकट्ठा करनेके लिए एक नया महकमा है। गिलहरियां शहदकी मक्खियोंकी तरह अपने जाड़े काटनेका इंतज़ाम कर लेती हैं और दरख़्तोंके खोखलेमें बहुतसे बीज जमा करती हैं। बीज इकट्ठा करने वाले महकमेंने गिलहरियां पकड़नेके गिलहरीदान तय्यार किए हैं। यह लोग इन्हें दरख़्तोंमें लटका देते हैं और गिलहरियां बीज ला कर उनमे इकट्ठे करती जाती हैं। जब बहुतसे बीज इकट्ठा होजाते हैं तो इनकी जगह नए गिलहरी दान रख दिए जाते हैं। इस प्रकार बीज इकट्ठे कर और इनसे छोटे २ पोधे उगाकर इन पौधोंको ऊसर स्थानोंमे लगा दिया जाता है और इनकी परवरिशके लिए खाद और पानी का भी उचित प्रबंध कर दिया जाता है।

गिलहरियां ज़्यादा तर कच्चे या अधपके बीज तोड़ लैजाती हैं। इन्हें क्रित्रिम ताप द्वारा पकालिया जाता है। जंगल लगानेका दूसरा तरीक़ा इन बीजोंको बोना है। ऐसा करनेमें बहुतसी कठिनाइयोंका सामाना करना पड़ता है। पहिले तो ज़मीन ही उपजाऊ नहीं होती फिर चिड़ियों और गिलहरियोंसे रक्षा करनी मुशकिल है। अगर इनसे बचकर कुछ बीजोंमें अंकुर फूट भी आए तो इन्हें पाला मारजाता है या यह किसी मवेशीका चारा होजाते हैं इन सब असुविधाओंसे बच कर जो थोड़ेसे दरख़्त उगते हैं उनपर इतना रूपया ख़र्च होजाता है कि इस रीतिका अनुसरण करना बड़ी भूल है। फिर भी वैज्ञानिकोंने हार मानना तो सीखाही नहीं। इंजिन द्वारा चलने वाले हलोंसे ज़मीन जोतकर फिर क्रित्रिम खाद डालकर ज़मीनकी उपजाऊ शक्तिकी वृद्धिकी जाती है। इस प्रकारसे ज़मीन तय्यार कर बिजलीद्वारा इतनी गरमो पहुंचा दी जाती है।

समालोचना

गीता दर्शन—लेखक लाला कन्नोमल एम. ए. व प्रकाशक श्री आत्मानन्द पुस्तक प्रचारक मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा—मूल्य २)

लाला कन्नोमलजी की लिखी हुई कई उत्तम २ पुस्तकोंसे हिन्दी संसार भली भांति परिचित है। आप हिन्दी अंग्रेज़ी तथा संस्कृत साहित्यके अच्छे विद्वान हैं। थोड़ेही दिनोंमें आपने अपनी चतुर लेखनी द्वारा साहित्य संसारमें अच्छा नाम प्राप्त किया है। आपके ग्रंथ सभी सामयिक तथा अनूठे ढंगके हैं। बहुतसी पुरानी बातोंको आपने अपने विचार वैचित्र द्वारा ऐसा मनोरम बना दिया है कि उनमें भी हमें नवीनताका आभास होने लगा है। आपकी लेखनशैली प्रौढ़ और नवीन ढंगकी है। यही कारण है कि आपके ग्रंथोंका हिन्दी संसारमें खूब आदर है। अभी हाल ही में आपने गीता दर्शन नामक पुस्तक लिखकर अपनी इस अनूठी शैलीका एक और नया परिचय दिया है। आपने इस पुस्तकमें श्रीकृष्णचन्द्रजीका पवित्र जीवन चरित्र, गीताके बनानेका समय, अन्य गीताओंका कुछ हाल, भारतीय दर्शन शास्त्रोंके मोटे २ सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन; आचार धर्मके तत्व, आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक विचारोंसे गीताके सिद्धान्तोंकी तुलना, तथा गीतामें प्रतिपादित विषयोंपर श्रृङ्खलाबद्ध स्वतंत्र निबंध, संक्षेपमें दिये हैं। पुस्तक आदिसे अन्त तक रोचक है और हमारे अंग्रेज़ी पढ़े हुये नवयुवक मित्रोंके मनन करने योग्य है। हमें इस पुस्तकमें दो एक त्रुटियां भी मिली हैं जिन्हें, हमें आशा है, कि

लेखक महाशय अगले संस्करणमें दूर कर देंगे ! आपने दर्शन शास्त्रोंका परिचय बहुत ही संक्षिप्त दिया है। कैसा अच्छा होता अगर इन शास्त्रीय सिद्धान्तोंको आप ज़रा वृहत रूप देकर इनकी विस्तृत आलोचना कर देते। इन निबंधों द्वारा सबसे ज़्यादा फ़ायदा होता उन अंग्रेज़ी-शिक्षा-प्राप्त नवयुवकोंको; जिनके लिये आपने यह किताब विशेष रूपसे लिखी है। दूसरी बात यह है कि आपने बहुतसे शंका करने वालोंकी शंका इस विषयपर समाधान करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया है कि श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको लड़ाईके मैदानमें गीताकी कौनसी विशेष २ बातें बतलाई थीं। जावा द्वीपमें प्राप्त जिस गीता का उल्लेख आपने किया है उसमें और आजकलकी हमारी गीतामें यही भेद है कि उसमें इतने अधिक श्लोक मौजूद नहीं हैं आपने इस विषयमें कुछ नहीं लिखा है। फिर आपने अध्यात्मिक दृष्टिसे गीताकी रचना पर कोई ऐसा सारगर्भित निबंध नहीं लिखा जैसी कि आप जैसे विद्वानसे आशा की जाती थी। श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरित्रकी कई घटनाओंका जो रहस्य आपने बतलाया है उसमें भी कोई विशेष नवीनता नहीं है। इन त्रुटियोंके होते हुये भी हम यह कह सकते हैं कि पुस्तक अच्छी है और जिन नवयुवकोंके लिये लिखी गई है उनको अवश्य ही लाभदायक होगी।

प्रेममन्दिर आराकी पुस्तकें

हित शिक्षा—लेखक श्रीयुक्त बाड़ीलाल मोतीलालजी शाह-अनुवादक श्रीयुक्त भैयालालजैन-प्रकाशक-कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन-प्रेममन्दिर आरा मूल्य ।=)

इस ११६ पृष्ठकी पुस्तकमें बालकोंसे लेकर वृद्धोंके हितके लिये अनेक उपदेशप्रद बातें ऐसी सरल, रोचक तथा हृदय-ग्राही भाषामें लिखी गई हैं कि उन्हें एक बार पढ़कर हृदयपर जो प्रभाव पड़ता है, तथा हर मननशील युवकके मस्तिष्कमें जो विचार जाग्रत हो जाते हैं, उनके स्थाई हो जानेपर इनके जीवनमें एक नये प्रकाशका उदय हो जाता है। प्रत्येक धर्ममें सत्य है; तथा हर धर्मके अनुयायी अपनी धार्मिक श्रद्धाके अनुसार अपना जीवन उच्च बना सकते हैं। धर्म और नीति शिक्षाके मुख्य अंग हैं। इस पुस्तकमें प्रत्येक धर्मके ऐसे मुख्य २ सिद्धान्तोंका वर्णन है जिनसे हरधर्मका महत्व ज्ञात होता है तथा नीति और धर्मकी उच्च शिक्षा मिलती है। नवयुवकोंके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। गायकवाड़ शिक्षाविभागने इस पुस्तकको विद्यार्थियोंको पारितोषक दिये जाने तथा पुस्तकालयोंमें रखने योग्य मंज़ूर किया है।

प्रेमधर्म - लेखक श्रीयुक्त कुमार देवेन्द्रप्रसाद-जैन—इस पुस्तककी छपाई इत्यादि बड़ी उत्तम हैं। प्रेम जैसे अलौकिक विषय पर इस पुस्तकमें जो ५ निबन्ध लिखे गये हैं वे बड़े विद्वत्तापूर्ण हैं। इनके मननसे प्रेमका जो रसाभास होता है वह बड़ा ही मनोहर है। पुस्तककी भाषा बड़ी सरल और रोचक है!

प्रेमोपहार—लेखक श्रीयुक्त कन्हैयालाल जैन, स्नेह-सदन-कस्तला, पोस्ट हापुड़—लेखकने यह पुस्तक कुमार देवेन्द्रप्रसादजी जैनको प्रेमार्पणकी है। इसकी छपाई इत्यादि बहुत अच्छी है। कविता भी कहीं २ बड़ी मार्मिक तथा चित्ताकर्षक है। परन्तु इसमें शैथिल्य दोष मौजूद है! कई स्थानों पर हमें कई बार पढ़नेपर भी ठीक आशय प्राप्त न हो सका। 'जानेके, लिये 'जने' प्रयोग करना तथा 'क्योंकि नहीं तनिक पहिचानता' लिखना बहुत ही खटकता है। हम नहीं समझते कि 'चित्रके निकले' हिन्दी भाषाकी कौनसी रुढ़ि (Idiom) है। 'फेरपर रखना' भी इसी प्रकार अशुद्ध है। हर पृष्ट पर ऐसी ही त्रुटियां बतलाई जा सकती हैं। क्या ही अच्छा होता अगर लेखक महाशय कविता न लिख, गद्यमें ही अपने भाव व्यक्त करनेकी चेष्टा करते।

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित

अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १— ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीर-प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३—**मिफताह-उल-फ़नून**—अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—**ताप**—ले० प्रेमबल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—**हरारत** [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला, प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० सालिग्राम वर्मा, ... -)

७—**केला**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

८—**सुवर्णकारी**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९—**चुम्बक**—ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—ले० बसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी., विशारद, ... ।=)

११—**क्षयरोग**—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

१२—**दियासलाई और फास्फोरस**—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. -)

१३—**शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम**—ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ।)

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA", ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids, on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.
or VIJNANA CHARITABLE DISPENSARY,
626, *Katra, Allahabad.*

प्रकाशक—[illegible]० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५३ — Reg. No. A-708

भाग ६ — सिंह १९७६ । अगस्त १९१९ — संख्या ५

Vol. IX. — No. 5

प्रयागका विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) — [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ६ } सिंह, संवत् १९७६। अगस्त, सन् १९१९। { संख्या ५

मंगलाचरण

भरहु भूरि भारत-भुवि मंगल
दुरहु दूरि दुबिधा दु-भाव द्रुत,
सुभ उछाह छावहु छवि मंगल

(२)

फुरहु प्रेम, दिवि फोरि घोरघिरि,
घन अथोर आवहु द्रवि मंगल
पुरहु दृश्य सत, कोटि कोटि शत,
सतत भाव भावहु कवि मंगल

(३)

भू भ-चक्र, निहितर्क, नित्य क्रम,
अणु अणु अनुधावहु ध्रुव मंगल
जग-सुहाग-अनुराग-राग रत,
अविरत-रव, गावहु कवि मंगल

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, ५. ६. १९१९ } —श्रीधर पाठक

पैमाइश

११—चिन्ह

[ले०—श्रीयुत नन्दलाल जी, तथा मुरलीधर जी, एल. ए-जी.]

नक़शेकी तय्यारीके समय उचित स्थानोंपर हर प्रकारके भिन्न भिन्न चिन्ह बे जुते हुए (ग़ैर मज़रुआ) टुकड़ोंकेलिए अलग अलग इसलिए बना दिए जाते हैं कि वह जुते हुए टुकड़ोंसे जिनमें कोई चिन्ह नहीं होते पहचान लिये जायं और उनके चिन्ह देखनेसे यह मालूम होसके कि किस टुकड़ेमें क्या है अर्थात् मकान, क़बरिस्तान, कच्चा, पक्का कुआं, नदी, तालाब, नाला, झील, झाड़ी जंगल इत्यादि मेंसे क्या कहां पर है।

किश्तवारके नक़शोंमें जो चिन्ह साधारणतः काममें लाए जाते हैं वह निम्नलिखित हैं:—

Surveying पैमाइश]

परती क़दीम
परती जदीद
बड़ी घासका जंगल
छोटे पेड़ोंका जंगल
बड़े पेड़ोंका जंगल
सालूका जंगल
ताड़का जंगल
खजूरका जंगल
बांसका जंगल
बाग़
बग़ीचा
नशेब या निचाओ
टीला या खेड़ा या दीहा
कच्ची आबादी
पक्की आबादी
पक्का कुआं जो काम आता है
पक्का कुआं जो काम नहीं आता
कच्चा कुआं जो काम आता है
कच्चा कुआं जो काम नहीं आता
सिहद्दा
दोहद्दा
बम्बा मट्टीका
झील या दलदल
चांदा
पगडंडी
बैलगाड़ीकी लीक
सदाका रास्ता
ऊसर
रेता
पुल सहितनदी तथा रास्ता
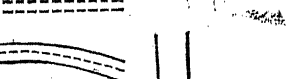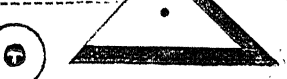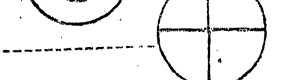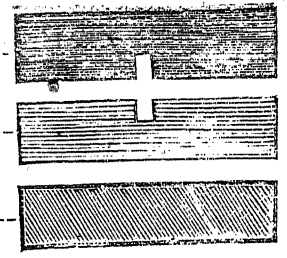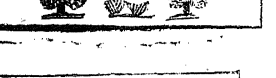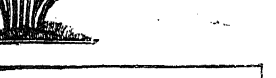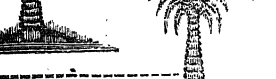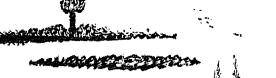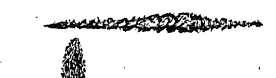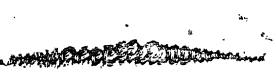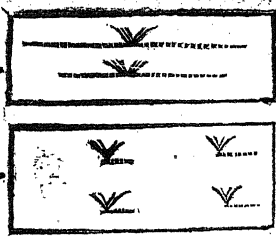
१२—शिजरेकी तरमीम (संशोधन)
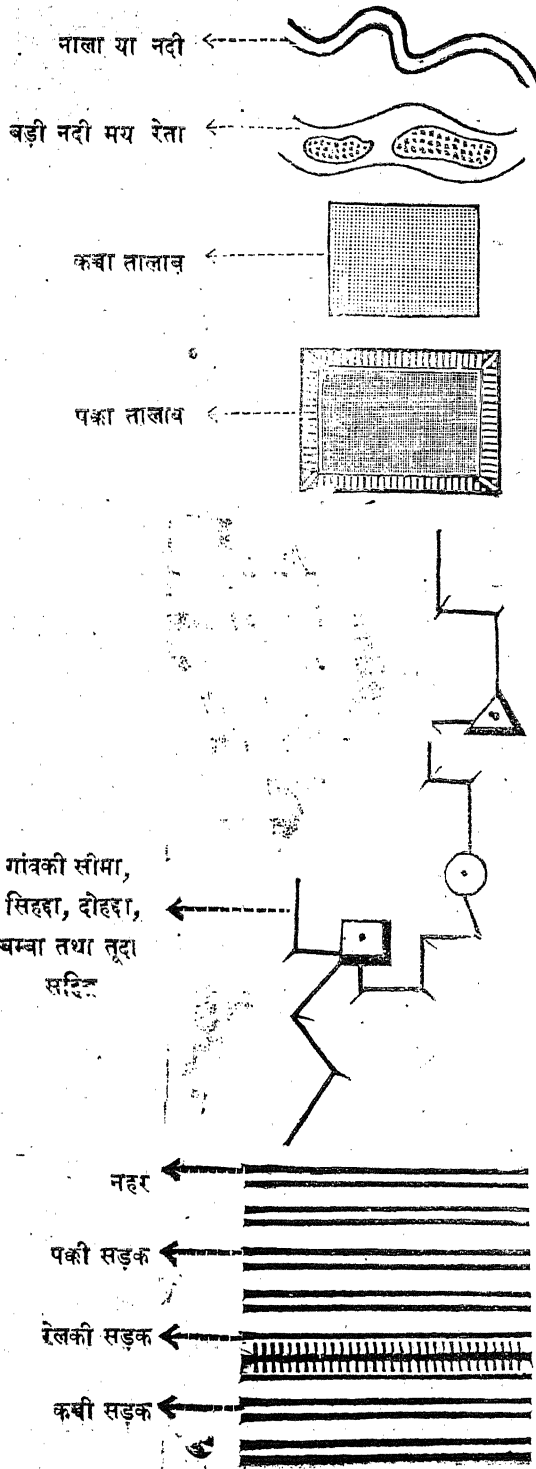
यह प्रत्येक मनुष्य जानता है कि कभी तो खेतीकी आवश्यकताके अनुसार और कभी शरीक किसान और ज़मींदारोंके बटवारोंके कारण खेतोंकी सीमामें परिवर्तन करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी प्राकृतिक कारणोंसे भी ऐसा करना पड़ता है, जैसे नदीकी बाढ़ या धार बदलनेसे खेतोंकी मेड़ें बदल जाती हैं, कहीं जंगलके स्थानमें जोते हुये खेत और कहीं जोते हुये खेतोंके स्थानमें जंगल इत्यादि हो जाया करते हैं, लेकिन यह तबदीली ऐसी नहीं होती कि कुल गांवके ही नक़शेकी अवस्था बदल जाय। बल्कि ऐसा होता है कि अगर कुछ खेतोंमें तबदीली हो जाती है तो बहुत से खेतोंमें कुछ भी नहीं होती ; परन्तु कुछ गांव ऐसे भी होते हैं कि जिनका बहुत सा अंश बदल जाता है और थोड़ा सा ज्योंका त्यों बना रह जाता है। इससे मालूम हुआ कि एक मर्तबा पैमाइश हो जानेके बाद नक़शा और मौक़ा हमेशा एकसे नहीं रह सकते, बल्कि उनमें भेद हो जाता है। इसलिए नक़शोंको मौक़ेके अनुसार रखनेके लिए उनमें परिवर्तन करने पड़ते हैं, जबकि तबदीलियां कम हों तो पहली पैमाइशके नक़शेमें आजकलके मौक़े-के अनुसार थोड़ी सी तबदीलियां करते हैं और इस कामको शिजरेकी तरमीम (सुधारना) कहते हैं। जब तबदीलियां ज़्यादा होती हैं तो पुरानी पैमाइशके नक़शेसे सरहद्दी निशान चांदा इत्यादि एक एक शीटपर स्थापित करके उसके भीतरी ब्यौरेको नए सिरेसे किश्तवार पैमाइश करके बनाते हैं।

नए सिरेसे पैमाइश करनेकी रीति जरीबी पैमाइशके अध्यायमें बतलाई जा चुकी है। इसलिए इस अध्यायमें केवल दुरुस्तीकी तरकीबें बतलाई जायंगी। संयुक्त प्रांतमें दो प्रकारके नक़शे पाये जाते हैं।

१—वह ज़िले जहां थियोडोलाइट द्वारा ट्रावर्स

होकर ब्यौरेवार पैमाइश नियमानुसार हुई है वहां नक़शे बहुत ठीक हैं। इसलिए पुरानी पैमाइशका असली नक़शा या उसका कोई साफ़ अक्स दुरुस्तीके लिए दिया जाता है। इसमें सब संशोधन बहुत ठीक करना चाहिये।

२-जिन ज़िलोंमें नियमानुसार ट्रावर्स होकर पैमाइश नहीं हुई है बल्कि पुराने ढंगसे शाहजहानी जरीबसे पैमाइश होकर नक़शे तैयार हुए हैं उनके नक़शे बहुत ठीक नहीं होते। इसलिए उनको बहुत होशियारीके साथ दुरुस्त करनेकी कोशिश करना व्यर्थ है। इनको केवल इतना तरमीम करनेकी कोशिश करनी चाहिये जितने पिछले नक़शेमें ठीक पाये जायं। नक़शा कोई भी हो उसकी तरमीमका काम सदैव उस खेतसे आरम्भ करना चाहिये जिसपर पिछले पैमाइशके समय नम्बर १ डाला गया हो। पहिले उसकी पैमाइश करके यह देखना चाहिये कि उसकी सीमाएँ मौक़ेपर अब वही हैं जो नक़शेपर हैं। अगर पिछली पैमाइश नियमानुसार होकर नक़शा बनाया गया है और अब मौक़े और नक़शेकी हद्दोंमें भेद है तो ख़्याल करना चाहिये कि खेतके कोने हटा दिए गए हैं और उसीके अनुसार नक़शेकी दुरुस्ती होनी चाहिये। लेकिन अगर पिछली पैमाइश नियमानुसार नहीं हुई थी तो पुराने नक़शोंकी हद्दोंपर ज़्यादा भरोसा न करना चाहिये, क्योंकि संभव है कि खेतके हद्द अब भी वही हों जो पुरानी पैमाइशके समय थे।

अगर कोई पुराना खेत दो या अधिक भागोंमें बँट गया हो तो मौक़ेके अनुसार नक़शेपर भी हिस्से बना देने चाहिएँ। अगर कहीं पुरानी मेड़ें न रही हों और दो या अधिक खेत आपसमें मिल गये हों तो बिगड़ी हुई मेड़ोंको नक़शेपर काट देना चाहिये और इन सब पुराने खेतोंका रक़बा जो आपसमें मिल गये हैं एकही मानना चाहिये। इसके पीछे खेत नम्बर २ या अगर खेत नं० २ नं० १ में मिल गया हो तो उसी सिलसिलेमें उसके पीछेका नम्बर जो मिला न हो दुरुस्त कर देना चाहिये। और इसी प्रकार एक एक करके नक़शेके सब खेतोंका संशोधन कर उसे बिल्कुल मौक़ेके अनुसार कर देना चाहिये। हर हालतमें यह नियम होना चाहिये कि जिस मौक़ेके खेत पुराने नक़शेसे भिन्न हो गये हों, उनमेंसे कोई ऐसा छोटे से छोटा (रक़बा) क्षेत्र चुन लिया जाय जिसकी बाहरी सीमाएँ वैसी ही मौजूद हों। अब इस कुल क्षेत्रको एक ही टुकड़ा मानकर उसके भीतरी ब्यौरोंकी नियमानुसार पैमाइश करके, नक़शेपर नई मेंड़ें प्लाट कर देनी चाहियें। इसके बाद बिगड़ी हुई मेंड़ोंको छोटी छोटी लकीरों पर तिरछे छोटे काटनेकेसे निशान बनाकर, खींच देना चाहिये।
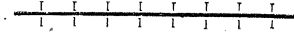
नोटः—जो रक़बा भीतरी ब्यौरेकी पैमाइशके लिए चुना गया है अगर वह बहुत बड़ा हो तो पहिले उसका ख़ाका बना लेना चाहिये और टुकड़े काटकर पैमाइश होनी चाहिये। लेकिन छोटे छोटे रक़बोंकी दुरुस्तीके लिए ख़ाका बनानेकी आवश्यकता नहीं है। मानलो कि अ ब स द एक या दो पुराने खेत हैं, जो तीन भागोंमें बट गए हैं। इसलिए अ प और प द की दूरी नापकर प विन्दु बनाओ।
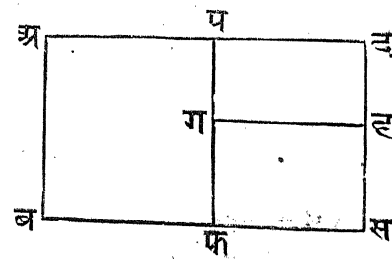
चित्र १

अगर अ द की दूरी नक़शेके अनुसार नहीं है, जैसे पृथ्वी पर तो १०० कड़ी और नक़शेपर १०५ कड़ी हो, और अ प ६० कड़ी और प द ४० कड़ी हो, तो इस ग़लतीको दूरीके अनुसार बांट दो,

अर्थात् नक़शेपर प ऐसा बनाओ कि अ प ६३ और य द ४२ हो और इसी प्रकार व स पर फ विन्दु और स द पर ह विन्दु बनाओ। तब प फ को एक रेखासे मिला दो और उसी रीतिसे ग विन्दु प फ पर बनाओ और ह से मिला दो।

नोट—नक़शेपर हमेशा वही मेंड़ें दिखानी चाहियें जो पृथ्वीपर मौजूद हों।

शिजरेकी दुरुस्तीके वह नियम जो उन नक़शोंके संशोधन-में काममें लाये जाते हैं जो बहुत शुद्ध नहीं हैं

१—अगर पहिली पैमाइश नियमानुसार नहीं हुई है और कहीं मौक़ा नक़शेसे बिलकुल विपरीत है जैसे कोई खेत नक़शेपर दो बीघा है और मौक़ेपर चार बीघा, तो ऐसी अवस्थामें नक़शेकी दुरुस्ती नामुमकिन है। बल्कि उस खेतको नापकर नक़शेके किनारेपर ख़ाटकर देना चाहिये और अगर खेतकी मेंड़ोंमें एक गट्ठेसे कमका अन्तर हो तो उसपर ध्यान नहीं देना चाहिये।

२—अगर कोई मेंड़ सीधी न हो अर्थात् टेढ़ी हो तो ऐसी अवस्थामें मेंड़के दोनों कोनोंका लम्ब लेनेके अतिरिक्त दो या अधिक बीचके स्थानोंका लम्ब लेकर टेढ़ी मेंड़ हाथसे बना देनी चाहियें, जैसे—
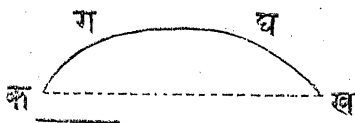
चित्र २

३—यदि सीधी रेखा क ख के दोनों ओर टेढ़ाई हो तो जहां क ख उस टेढ़ाईको काटती हो और उन घुमावोंपर जो रेखा क ख के दोनों ओर हों विन्दु बनाकर हाथसे घुमावकी मेंड़ बना दो।

४—अगर घुमाव बहुत बड़ा हो तो उसमें ऐसे बीचके विन्दु लेने चाहिएं कि जो एक दूसरेसे
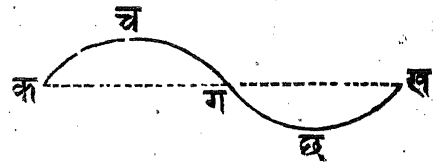
चित्र ३

अगर सीधी रेखासे मिलाये जायं तो टेढ़ाई क़रीब एक गट्ठेकर रहे और नक़शेपर यह विन्दु स्थापित करके हाथसे टेढ़ी मेंड़ बना देनी चाहिये। जैसे चित्र ४ में है।

चित्र ४

नम्बर डालना—उन ज़िलोंमें जिनमें बंदोबस्तकी तरमीम हो रही है और नए नक़शे तैय्यार होते हैं साहिबान बोर्ड मालने यह नियम बना दिये हैं कि अगर खेतोंकी तादादमें १० फ़ी सदीसे अधिक बढ़ोतरी होगी तो नये नम्बर डालने ज़रूरी होंगे, नहीं तो पुराने नम्बरको और नये नम्बरोंको लिखकर नक़शेमें बटा नम्बर बनाना चाहिये। मानलो अगर खेत नम्बर ५१२ में दो टुकड़े हो गये हैं तो उनको $\frac{५१२}{१}$, $\frac{५१२}{२}$ लिखना चाहिये। बटा नम्बर बनाये रखनेमें नियम ५३,५४, सर कुलर नं० १ मद ७ का ध्यान रखना चाहिये। अगर १० फ़ी सदीसे अधिक बढ़ोतरी हो तो नये नम्बर डाले जायंगे।
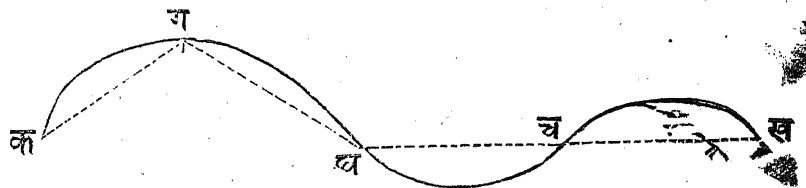
जब नक़शा दुरुस्त हो गया हो और नये नम्बर डालनेकी आवश्यकता हो तो यह विशेष कर

ध्यान रखना चाहिये कि जहां तक मुमकिन हो नये नम्बर इस प्रकार छोड़े जायं कि वह पुराने ही सिलसिलेसे पड़ें।

मानलो कि खेत नम्बर १-२-३-४-५-६-७ में कोई तबदीली नहीं हुई तो उनके पुराने नम्बर क़ायम रखने चाहिएँ। अब उसके पीछे नं. ८ से १२ के बीचकी मेड़ें टूट कर दूसरी शकलके नये आठ खेत बने हैं तो इन नये खेतोंमें इस प्रकार नम्बर डालने चाहिएँ कि नम्बर ८ उस टुकड़ेमें पड़े जिसमें ज़्यादा भाग पुराने नं. ८ का शामिल हो; और नं. ६ उस टुकड़ेमें पड़े जिसमें या तो नं. ८ का बाकी भाग हो या नं. ६ पूरा या उसका भाग हो और इसी तरहसे पुराने नम्बरोंके सिलसिलेका ध्यान रखते हुए कुल नये खेतोंमें नम्बर डालकर हालका नं. १३ पुराने नम्बर १३ में छोड़ना चाहिये। यदि कुल गांवकी पैमाइश नये सिरेसे हुई हो तो पुराने नम्बरोंकी ओर कुछ ध्यान न देकर उत्तर पश्चिमके कोनेवाले खेतसे नम्बर डालने शुरू करके सबमें इस प्रकार नम्बर डालने चाहिएँ कि आख़िरी नम्बर अग्नि कोण (दक्खिन पूरबके) कोनेवाले खेतमें पड़े, लेकिन अगर किसी सरहद्दके मौक़ेपर झगड़ा हो तो आखिरी नम्बर उस मौक़ेपर समाप्त किया जाय।

नोट—नम्बर डालनेमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कोई कुदान न पड़े अर्थात् हर एक नम्बरके पीछे दूसरा नम्बर ऐसे खेतमें डाला जाय, जिसकी कोई न कोई मेंड़ या कमसे कम कोई हिस्सा पिछले खेतसे मिला हुआ हो।

बहुत छोटे खेतोंमें नम्बर डालना—अगर कोई रक़बा बहुत छोटे छोटे खेतोंमें बँटा हो अर्थात् खेत इतने छोटे हों कि उनमें नम्बर सरलतासे नहीं लिखा जा सकता तो निम्नलिखित रीतिको काममें लाना चाहिये।

१—वायुकोण अर्थात् उत्तर पश्चिमके कोनेसे साधारण रीतिसे नम्बर डालना आरम्भ किया जाय और जब ६६ खेतोंमें नम्बर पड़ जायँ तो इन सब ६६ खेतोंको कुछ मोटी लकीरसे घेर देना चाहिये और उस घेरे हुए टुकड़ेके बीचमें एक छोटासा वृत्त उतनी ही मोटी लकीरका बनाकर उसमें एक बिन्दु बना देना चाहिये।

२—इसके पीछे जो खेत नम्बर १०० है उसमें केवल दो बिन्दु बनाने चाहियें और उसके पीछेके खेतोंपर १ से ६६ नम्बर सिलसिले वार छोड़कर उन सबको भी पहिलेकी भांति मोटी लकीरसे घेर कर उसके भीतर वृत्त बना उसके भीतर १ का अंक लिखना चाहिये।

३—इसी प्रकार कुल रक़बेके सौ सौ खेतोंको मोटी लकीरसे घेर कर उन सब घेरोंके पहिले खेतमें दो बिन्दु और उसके पीछेके खेतोंमें १ से ६६ तक नम्बर छोड़कर उन सब खेतोंके बीच एक छोटे वृत्तमें सैकड़ेका अंक लिख देना चाहिये। ऐसा करनेसे यह सुगमता होती है कि दो अंकोंसे अधिक किसी खेतमें नहीं लिखने पड़ते और छोटे वृत्तके भीतरके अंकसे सैकड़ा गिन कर खेतका पूरा नम्बर सुगमतासे पढ़ा जा सकता है। जैसे किसी घेरेके भीतरके वृत्तमें ६ का अंक है और उसके किसी खेतमें नं. ७ पड़ा है तो वह नम्बर ६०७ पढ़ना चाहिये और वही काग़ज़ोंमें भी लिखना चाहिये। मानलो कि किसी घेरेके एक खेतमें नं. २२ पड़ा है और उसके भीतरके वृत्तमें ११ अंक लिखा है तो उस खेतका नम्बर २२११ पढ़ा जायगा।

नम्बर डालनेकी यह रीति गांवके किसी भागमें भी जहां नम्बर न हो काममें लाई जा सकती है।

शिजरा सुधारनेके समय रक़बा निकालना

जहां कहीं ट्रावर्स होकर नियमानुसार पैमाइश हुई है वहाँ रक़बा निकालनेकी कंघीसे साधारण रीतिसे रक़बा निकाला जा सकता है।

१—अगर किसी खेतके दो या अधिक हिस्से हो गये हैं तो पुराने खेतका रक़बा कुल नये खेतों-

के रक़बेके बराबर होना चाहिये और कुल गांवका नया रक़बा पहिले रक़बेसे २५ फ़ीसदीसे कम या अधिक न होना चाहिये। जो खेत पिछली पैमाइशसे संशोधनके समय तक जैसाका तैसा बना रहे तो उसका रक़बा निकालनेकी ज़रूरत नहीं है।

२–जिन ज़िलोंमें पुरानी पैमाइश नियमानुसार नहीं हुई है उनमें निम्न लिखित प्रक्रिया करनी चाहियेः—

पहिले निम्नलिखित नमूनेका एक खसरा बनाकर मौक़ेपर पैमाइशके अंक इसमें लिखने चाहिएं और तब उन अंकोंसे रक़बा निकालकर काग़ज़ोंमें लिखना चाहिये।

पुराना नम्बर	हालका नम्बर	पुराना रक़बा	लम्बाई और करण	लम्बकी लम्बाई	प्रक्रिया	हालका रक़बा	कैफ़ियत
१	२	३	४	५	६	७	८

तीन भुजाओंके खेतोंका क्षेत्रफल निकालना

उसकी सबसे बड़ी भुजाको आधार मान कर उसकी लम्बाई नापो और उसपर सामनेके कोणसे लम्ब डालो। इसके पीछे लम्बकी दूरी नाप कर खसरेमें लिखकर क्षेत्रफल निकाल लो।

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{\text{आधार} \times \text{लम्ब}}{२}$$

चार भुजावाले खेतोंका क्षेत्रफल निकालना

सबसे बड़े करणकी लम्बाई नापके उसपर बाक़ीके दोनों कोनोंसे लम्ब डालो और लम्बकी लम्बाई नाप लो। फिर खसरेमें लिख लो और क्षेत्रफल निकालो।

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{\text{करण} \times \text{दोनों लम्बोंका योग}}{२}$$

चार से अधिक भुजावाले खेतोंका रक़बा निकालना

ऐसी शकलोंको गोशोंमें बांटकर उनका क्षेत्रफल निकालना चाहिये। गोशे या तो त्रिभुज या समलम्ब चतुर्भुज होंगे। सब गोशोंके क्षेत्रफलका योग कुल खेतका क्षेत्रफल होगा जैसेः–

क ख ग घ च एक पंचभुजी क्षेत्र है। इसका क्षेत्रफल निकालनेके लिए करण क घ को नापा

नम्बर गोशा	करण (गट्ठों में)	लम्ब (गट्ठों में)	प्रक्रिया	क्षेत्रफल (बी० बि० क०)
गोशा नं० १	१२	$१०\frac{१}{२}$	$\frac{१२ \times १०\frac{१}{२}}{२}$	= ० – ३ – ३
गोशा नं० २	$२०\frac{१}{२}$	$१०\frac{१}{२} + १२\frac{१}{२}$	$\frac{२०\frac{१}{२} \times २३}{२}$	= ० – ११ – १६
गोशा नं० ३	१२	$१२\frac{१}{२}$	$\frac{१२ \times १२\frac{१}{२}}{२}$	= ० – ३ – १५
गोशा नं० ४	$४४\frac{१}{२}$	१६	$\frac{४४\frac{१}{२} \times १६}{२}$	= ० – १७ – १६

कुल क्षेत्रफल = १ – १६ – १०

और सब लम्ब फ़ील्डबुकमें लिखकर खेतकी नज़री शकल बनाई-चूंकि खफ, चज, और गट लम्ब हैं, इसलिए उनकी नाप भी फ़ील्डबुकमें लिखना पड़ेगी। इस प्रकार प्रत्येक गोशा जो खेतमें बनेगा उसका अलग अलग रक़बा नम्बर डालकर इसरीतिसे निकालना चाहिये। पृ० १९९

चित्र ५

अगर किसी खेतकी सब मेंड़ें सीधी न हों बल्कि टेढ़ी हों तो जबतक घुमाव एक गट्ठेसे अधिक न हो उसको सीधी रेखा मान लेना चाहिये और चाहे जैसी शकल हो उपरोक्त रीतिसे क्षेत्रफल निकाल लेना चाहिये—

अगर घुमाव एक गट्ठेसे अधिक हो तो उसके सिरोंके बीचमें एक सीधी रेखा बिन्दुओं द्वारा खींचकर उसपर घुमावके लम्ब लेने चाहिएं और घुमाववाले भागोंको त्रिभुज मानकर क्षेत्रफल निकालकर मौक़ेके अनुसार उसको, या तो बिन्दुओंकी सीधी रेखा तथा और रेखाओंसे मिलकर जो खेत बनता है, उसके क्षेत्रफलमेंसे घटा देना चाहिये या जोड़ देना चाहिये जैसेः—
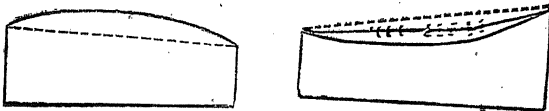
चित्र ६

नोट १—याद रहे कि प्रत्येक खेत, अगर उसमें करण नापा जाय या अगर वह चौकोर है, तो दो त्रिभुजोंमें बट जायगा और अगर उसमें चारसे अधिक भजाएं हैं तो कुछ समकोण त्रिभुजों और कुछ समलम्ब चतुर्भुजोंमें बट जायगा। इसलिए अगर मौक़ेकी पैमाइश करके खेतका क्षेत्रफल निकालना हो तो सब त्रिभुजों और समलम्ब चतुर्भुजोंका अलग अलग क्षेत्रफल निकालकर सबको जोड़नेसे कुल खेतका क्षेत्रफल निकलेगा।

नोट २—अगर खेतकी शकल बिल्कुल ही बेढंगी हो और त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुज बहुत से बनते हों तो केवल भाग देनेके कष्टको बचानेके लिए ऐसा भी कर सकते हैं कि उसको पैमानेपर प्लाट करलें और तब प्लाट किए हुए खेतका क्षेत्रफल रक़बा निकालनेकी कंघी द्वारा निकाल लें।

प्रकाश

[ले०-प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

प्रकाशका तरंग सिद्धान्त

कण सिद्धान्तके आरंभ कालमें ही, जब उसके विरुद्ध कुछ बातें ज्ञात भी न हुईं थीं, कुछ वैज्ञानिक एक दूसरे ही सिद्धान्तकी पुष्टि कर रहे थे। उनका यह प्रयत्न भी उसी व्यापक नियमका उदाहरण है कि किसी सिद्धान्तके स्थिर करनेमें वैज्ञानिक कल्पनाको अनुभवजन्य पदार्थोंका ही सहारा लेना पड़ता है। यह सब कोई जानते थे कि शब्द वायुमें तरङ्गों द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थान तक जाता है। ज्योंही यह बात मस्तिष्कमें अच्छी तरह जम गई, त्योंही उससे कल्पनाने सहायता लेना आरंभ किया। वह सोचने लगी कि यदि शब्द तरङ्गों द्वारा चल सकता है तो सम्भव है कि प्रकाश भी तरङ्गोंके ही द्वारा गमन करता हो। किन्तु कठिन प्रश्न यह था कि यह तरंगें किस पदार्थमें बनती हैं। शब्द की तरंगें तो वायुमें बन जाती हैं, किन्तु प्रकाशके लिए तो वायुकी आवश्यकता नहीं होती। वायु निस्सारक (Air pump) द्वारा वायुको कांचके बरतनमेंसे निकाल डालनेपर भी उसमें होकर प्रकाश आ सकता है। इसके अतिरिक्त सूर्य, तारागण और पृथ्वीके बीचमें किसी पौद्गलिक पदार्थका अस्तित्व सर्वथा असम्भव जान पड़ता है। किन्तु फिर भी वहांसे

प्रकाश बिना रोक टोक चला जाता है। जिसे हम लोग शून्य कहते हैं वह तो प्रकाशके चलनेके लिए बड़ा ही सरल मार्ग है। अतः यदि प्रकाश तरंगमय है तो शून्य स्थानमें भी कुछ न कुछ अवश्य होना चाहिये। कल्पनाके इस विचारसे अच्छे अच्छे वैज्ञानिक चकित और स्तम्भित हो गये। तारों और नक्षत्रोंके बीचका स्थान किसी तेजवाही ईथरसे भरा है, जिसमें लाखों करोड़ों तरंगें सदा सर्वदा चलती रहती हैं, यह मान लेना कुछ सरल कार्य न था। (Sir David Brewster) सर डेविड ब्रूस्टर के समान प्रतिभाशाली विद्वान् भी १७ वीं शताब्दी पर्यन्त इस विचारके निकट आनेसे भी डरते थे कि जिस स्थानको हम सर्वथा शून्य समझते हैं वह भी एक प्रकारके भार रहित किन्तु वस्तुतः पौद्गलिक पदार्थसे भरा है। उक्त ब्रूस्टर साहब जब फ्रांस देशसे फ़ोको (Foucault) के उस प्रयोगको देखकर लौटे जिसमें उन्होंने कण सिद्धान्तकी आशाओंके प्रतिकूल यह सिद्ध कर दिया था कि प्रकाश पानीकी अपेक्षा हवामें अधिक वेगसे चलता है तब उनसे पूछा गया कि क्यों साहिब, क्या अब भी तरंग सिद्धान्तको मान लेनेमें आपको कुछ आपत्ति है। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी सबसे बड़ी आपत्ति यह है और मेरी समझमें यह नहीं आ सका कि जगत्स्रष्टा परमेश्वरने छोटेसे तारेका प्रकाश पृथ्वीपर पहुंचानेके लिए इतना भद्दा उपाय क्यों रचा कि सारे जगत्को ईथरसे भर दिया। वैज्ञानिक खोजमें इस प्रकारकी आपत्ति खड़ी करना बड़ी भयानक बात है और ब्रूस्टर साहिबसे विज्ञानकी लड़ाई यह है कि वह परमेश्वरके मनके विषयमें इतना कहांसे जान गये कि उसके बलपर उन्होंने अनुभवजन्य ज्ञानको भी विश्वासके योग्य नहीं समझा।

किन्तु यह आपत्ति ऐसी नहीं है कि जिसने सब ही मनुष्योंको डरा दिया हो। बहुतसे वैज्ञानिकोंको, प्रकाशकेलिए क्या, गुरुत्वाकर्षणके लिए भी किसी न किसी प्रकारकी ईथरकी आवश्यकता जान पड़ती है। सर्वथा शून्य स्थानमें आकर्षण शक्ति कैसे कार्य कर सकती है, यह उनकी समझमें ही नहीं आता। इस गुरुत्वके आविष्कर्ता न्यूटनका भी यही मत था। वह अपने एक पत्रमें लिखते हैं कि "गुरुत्व पुद्गल पदार्थका एक स्वाभाविक और आवश्यक गुण है जिसके कारण एक वस्तु कुछ दूरीपर स्थित दूसरी वस्तुपर बीचमें किसी सहकारी पदार्थके अस्तित्वके बिना ही प्रभाव डाल सकती है—यह बात मुझे बड़ी असंभव जान पड़ती है। कोई भी मनुष्य जिसे इस प्रकारकी सारगर्भित बातोंपर विचार करनेकी शक्ति है कभी ऐसी गलतीमें नहीं पड़ सकता। गुरुत्व अवश्य ही किसी न किसी ऐसी वस्तुके कारण उत्पन्न हुआ होगा जिसका कार्य अवश्य ही कुछ नियमोंके अनुसार होता होगा। यह वस्तु मूर्त है या अमूर्त, पौद्गलिक है या नहीं इस बातको मैंने अपने पाठकोंके विचार करनेकेलिए छोड़ दिया है"। किन्तु आश्चर्यकी बात है कि इन्हीं न्यूटनके कारण प्रकाशका तरङ्गसिद्धान्त दबा रहा और बहुत समय तक इसके माननेवाले लोगोंको चुपचाप रहना पड़ा।

कौन जानता है कि प्रकाशके तरंगसिद्धांतके लिए जिस ईथरकी आवश्यकता है और जिसे हम समस्त संसारमें भरा हुआ मानते हैं वही ईथर गुरुत्वका कारण नहीं है? हो सकता है कि उसीकी सहायतासे सूर्य पृथ्वीको आकर्षित कर रहा है और समस्त ग्रह नक्षत्रादि निराधार आकाशमें ठहरे हुये हैं। यही क्यों अब तो हमें और भी अनेकों ऐसी बातें ज्ञात हो गई हैं जो इसी सर्व व्यापी ईथरके कारण होती हैं। परलोकवासी अध्यापक क्लार्क मैक्सवैल (Clark Maxwell) ने एक अत्यन्त अद्भुत आविष्कार किया था। वह यह था कि जिस वेगसे प्रकाश चलता है विद्युत्की तरंगें भी उसी वेगसे चलती हैं और यह वेग बिना प्रकाशका वेग जाने हुये केवल विद्युत्के प्रयोगों द्वारा नापा जा सकता है। अतः विद्युतीय और

चुम्बकीय तरंगें भी इसी ईथरमें उत्पन्न होती हैं। प्रकाश भी एक प्रकारकी विद्युच्चुम्बकीय तरंग (Electro-magnetic Wave) ही है। मानव-संसारकी भलाईके लिए इतनी विभिन्न बातोंका मूलकारण सम्भवतः यही ईथर है, ऐसा जानकर भी क्या यह आपत्ति हो सकती है कि एक छोटेसे कार्यके लिए इतना भद्दा उपाय ईश्वर कभी नहीं कर सकता। और अभी हमें इस विलक्षण वस्तुके गुणोंका ज्ञान ही कितना है? न जाने इससे और क्या क्या लाभ होते हों?

हमें इस ईथरके अस्तित्वका प्रत्यक्ष पता उसके स्पर्शसे, स्वादसे, गंधसे या अन्य किसी प्रकारके इंद्रियजन्य प्रयोगसे नहीं लग सकता। हम उसे देख नहीं सकते, यद्यपि अब हमें विश्वास हो गया है कि उसकी सहायताके बिना देखनेका कोई भी कार्य नहीं हो सकता। हम उसे तौल भी नहीं सकते और न यही कह सकते हैं कि वह भार रहित है। सम्भवतः उसके बिना भार भी असम्भव है। जिसे हम सर्वथा शून्य समझते हैं उस स्थानमें भी ईथर विद्यमान है। हवामें और कांचमें वह समभावसे उपस्थित है, अणुओंके बीचका स्थान उसीसे परिपूर्ण है। तरंग सिद्धान्तके अनुसार प्रकाशवान वस्तु समीपवर्ती ईथरको कम्पायमान कर देती है, जिससे तरंग उत्पन्न होकर निश्चित वेगसे चलती हैं। यही तरंग नेत्रमें पहुंचकर वहांके अणुओंमें भी गति उत्पन्न कर देती है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी हाईगैन्स (Huyghens) ने ईथर सम्बन्धी इस कल्पनाका खूब प्रचार किया और इसीकी सहायतासे उन्होंने प्रकाशकी बहुत सी घटनाओंकी व्याख्या भी की। १७४७ वि० के लगभग उन्होंने इसी ईथर तरंगसिद्धान्तके द्वारा परावर्त्तन और वर्तनके नियम सिद्ध किये और आइसलेएड स्पार के द्विवर्त्तनको भी इसीका परिणाम बतलाया। आइलर (Euler) जैसे बड़े बड़े गणितज्ञोंने भी इस सिद्धान्तका पक्ष ग्रहण किया और उसकी पुष्टि की। किन्तु न्यूटन इसके विरोधमें खड़े हुए और उनके कारण ही इस सिद्धान्तपर विचार करनेको भी विद्वान् राज़ी न हुए, क्योंकि उनका विश्वास था कि न्यूटन जो कहते हैं वह असत्य नहीं हो सकता। किन्तु बात इतनी ही न थी। न्यूटनका पक्ष केवल इसी कारण प्रबल नहीं हो सकता था। वास्तवमें हाईगैन्स और आइलरके पास भी उस समय अपने सिद्धान्तको प्रमाणितकर देनेकेलिए काफ़ी मसाला नहीं था। अन्यथा यह सम्भव नहीं कि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध बात किसी बड़े मनुष्यके विपक्षी होनेके कारण ही दब जाय। प्रकृति अपनी प्रयोगमयी भाषामें जो कुछ कहती है उसे न माननेका साहस कोई नहीं कर सकता। किन्तु बहुधा प्रयोगोंकी कमीके कारण उसका ठीक ठीक अर्थ समझना कठिन हो जाता है। ऐसी दशामें विपक्षी दल सत्य बातको भी दबा दे सकते हैं।

हाईगैन्सके मार्गमें ईथरकी कल्पनाने कोई बहुत बड़ी आपत्ति उपस्थित नहीं की। इससे कहीं अधिक भयानक आपत्ति यह थी कि यदि प्रकाश तरंगमय है तो किरणों और परछाईंका बनना असम्भव सा जान पड़ता है। जलकी तरंगें शब्दकी तरंगें और साधारणतया सभी तरंगें मुड़ती तो हैं पर ऐसा नहीं होता कि जल तरंगोंके मार्गमें एक पत्थर रखदेने से उसके पीछे तरंगें न जावें। वे घूमकर उस पार भी पहुंच जाती हैं। शब्द भी मुड़कर दीवारके उस पार भी सुनाई देता है। किन्तु प्रकाशमें ऐसा नहीं होता। परछाईंमें प्रकाश सर्वथा नहीं पहुंचता। अतः न्यूटनको यह बात सर्वथा असम्भव जान पड़ी कि तरंगमय प्रकाश भी परछाईं डाल सकता है। इसी कारण मुख्यतः न्यूटनने कणसिद्धान्तका सहारा लिया था और यद्यपि उन्हें प्रकाशके अध्ययन और नवीन घटनाओंके देखनेपर यह मानना पड़ा था कि अवश्य ऐसा कोई पदार्थ माध्यम स्वरूप विद्यमान है जिसमें प्रकाश कण गमन करते हैं और

जिसमें वह आन्दोलन उत्पन्न कर देते हैं, तो भी वह कणोंको छोड़ न सके।

हाईगैन्सने कणोंके अस्तित्वको सर्वथा अग्राह्य बतलाया था, किन्तु जब तक सरल गमन, और शुद्ध परछांई बिना कणोंके सिद्ध न हो जाय तबतक कोई तरंग सिद्धान्तमें विश्वास करनेको प्रस्तुत नहीं होता था। अतः इसके लिए उन्होंने बहुत ही प्रयत्न किया। अन्तमें उन्होंने तरंग सम्बंधी वह सिद्धान्त निकाला जो अबतक उनके नामसे विख्यात है और जिसका पिछले अध्यायमें वर्णन हो चुका है। किन्तु केवल इसी एक सिद्धान्तसे काम नहीं चल सकता था। इसलिए उन्होंने तरंग सिद्धान्तमें कुछ नई नई विलक्षणताएँ सम्मिलित करनेका प्रयत्न किया, किन्तु वह सफल न हो सका। परिणाम यह हुआ कि प्रायः एक शताब्दी पर्यन्त यह सिद्धान्त अविश्वसनीय होकर जीवन-शून्य पड़ा रहा।

मानव संसारके मानसिक विकाशका इतिहास देखनेसे ज्ञात होता है कि उसकी उन्नति स्थिर वेगसे नहीं हुई है। किन्तु सदा घटती बढ़ती रहती है। इमर्सन (Emerson) ने लिखा है—"समय समयपर मनुष्यकी मानसिक शक्ति अपने चारों ओर चक्र वृत्त खींच लेती है, जिसके बाहर न जाकर उस संकुचित स्थानमें ही उसे कार्य करना पड़ता है। किन्तु समय समयपर ऐसे भी प्रतिभा-शाली व्यक्ति जन्म लेते हैं जो धक्का मार कर इन वृत्तोंको तोड़ डालते हैं और अपनी कल्पनाको उसके बाहिर बड़ी दूर तक पहुंचा देते हैं।" प्रकाशका कण सिद्धान्त भी ठीक इसी प्रकार का एक वृत्त था। इस वृत्तको तोड़ डालनेवाले डाक्टर यंग (Dr. Young) ने १८३० वि० में जन्म लिया। उन्होंने प्रकाश सम्बंधी ऐसी दुर्घटनाओं-काआविष्कार किया जिनकी व्याख्या कणसिद्धान्त द्वारा न हो सकी। अतः इन्हें किसी दूसरे सिद्धान्त-की आवश्यकता जान पड़ी। इस बीचमें उन्होंने तरंग सम्बंधी सभी बातोंका अध्ययन कर लिया था और शब्द-तरंगोंका भी उन्हें बहुत अधिक ज्ञान था, यहां तक कि इस विषयके उन्होंने कुछ आविष्कार भी कर डाले थे। अतः शब्द विज्ञानके सहारे ही अब उन्होंने प्रकाश-सिद्धान्तकी खोज की। हाईगैन्सके स्थिर किये हुए सिद्धान्तोंमें उन्होंने व्यतिकरणका अत्यन्त आवश्यक सिद्धान्त और मिला दिया। अब ग्रिमाल्डी (Grimaldi) के बताये हुए प्रयोग सम्भव जान पड़ने लगे और यंगने उनमें बहुत कुछ सुधार भी करदिया। अब यह निर्विवाद सिद्ध होगया कि दो प्रकाश मिलकर एक दूसरेको नष्ट कर सकते हैं—अन्धकार उत्पन्न कर सकते हैं। यह सब बातें तरंगसिद्धान्तके अनुसार तो सम्भव ही नहीं वरन् आवश्यक थीं किन्तु कणसिद्धान्त द्वारा इनकी व्याख्या नितान्त असम्भव थी। न्यूटन-की स्पष्ट परछांईके सम्बंधमें जो बड़ी भारी आपत्ति थी वह भी मिट गई, क्योंकि अब यह भी सिद्ध होगया कि शब्द और जलकी तरँगोंकी तरह प्रकाश भी अपने सरल मार्गसे हट जाता है किन्तु तरंगोंकी बहुत अधिक छुटाईके कारण व्यतिकरण उनकी इस विकृतिको प्रायः लुप्त कर देता है। अब न्यूटनकी आपत्ति उन्हींके कण सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ी। प्रकाशमें विकृति होती है। कण सिद्धान्त इसकी कोई व्याख्या नहीं कर सकता। उसके अनु-सार विकृति होनी ही न चाहिये। इस प्रकार तरंग सिद्धान्तका पुनरुद्धार होगया। उसके विप-क्षियोंकी इसके विरुद्ध जो प्रबल आपत्ति थी अब वह बदल कर इसके पक्षमें प्रबल प्रमाण बन गई। इस सिद्धान्तकी इसी समयसे मज़बूत जड़ जमी। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि तरंग सिद्धा-न्तका हाईगैन्सके हाथों पुनर्जन्म हो जानेके बाद भी कई वर्षोंतक किरणों और परछांईकी ठीक ठीक व्याख्या न हो सकी। किन्तु डाक्टर यंग (Young) की बताई हुई व्याख्या पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि उसमें तो कोई भी नई बात नहीं है। तरंगोंकी जो साधारण बातें होती हैं वही तो उस-में भी सम्मिलित हैं। यदि मनुष्योंकी बुद्धि तेज़

होता तो वह सब बातें तो पहिलेसे ही सोची जा सकती थीं। यह सच है और यही तरंग सिद्धान्त-के पक्षको बहुत प्रबल भी कर देती है। किन्तु यह न भूल जाना चाहिये कि जो बातें हमें अब भी कठिन जान पड़ती हैं वही कुछ वर्षों बाद इतनी सरल हो जायंगी कि हमारी सन्तान हमें निरा मूर्ख बतलाने लगेगी। किन्तु इससे उन बातोंको पहिले पहल समझ जानेवाले महापुरुष के लिए हमें यह कह देनेका अधिकार नहीं है कि यह तो सीधो बात थी, इसमें उन्होंने किया ही क्या?

मौरभंजमें हाथियोंका पकड़ना

[ले०—पं० उमाकान्त]

मौरभंजके जंगलोंमें हाथी बहुत पाये जाते हैं। यह प्रायः दो पहाड़ियोंके बीचमें अर्थात् घाटियोंमें रहा करते हैं, क्योंकि ऐसे ही स्थानोंमें उन्हें पर्याप्त छाया और चारा मिल सकता है। वर्षा ऋतुमें जब जंगलोंमें ऊंची ऊंची घास तथा धानके खेत लहलहाया करते हैं, हाथी अपने निवासस्थानोंको छोड़कर बाहर जंगलों और खेतोंमें चरनेके लिए निकल आते हैं। कभी कभी तो यह घूमते हुए बारीपदा (मौरभंजकी राजधानी) तक पहुंच जाते हैं। घाटियोंको छोड़ मैदानोंमें चले आनेका विशेष कारण यह होता है कि वर्षा ऋतुमें एक प्रकारकी बड़ी मक्खी वहां पैदा हो जाती हैं, जो हाथीको बहुत बेहाल कर देती हैं। जहां यह काटती हैं, खून निकल आता है और हाथी विकल हो भाग निकलते हैं। इन मक्खियोंको पतंग कहते हैं।

गुंडे (बदमाश) हाथियोंको छोड़कर हाथी प्रायः बीस या पचीसकी टोलियोंमें रहा करते हैं। प्रत्येक टोलीमें एक मुखिया होता है, जो बहुत बलवान, बड़े डीलडौलका नर हुआ करता है। जब हाथी खा पीकर खूब मस्त हो जाता है और ख़ास उम्रका हो जाता है तो उसकी कनपटीके बहुत छोटे छोटे छेदोंमेंसे मद झरने लगता है। उस समय उसे लड़नेकी सूझती है, पर उसके शरीरमेंसे ऐसी गंध निकलने लगती है कि आस पासके जंगलोंमें विचरनेवाले कमज़ोर हाथी जंगल छोड़ कर अन्यत्र चले जाते हैं। गंध इतनी तीव्र होती है कि आध मीलसे भी अधिक फ़ासिलेसे मालूम हो जाती है। जब दो मस्त हाथी मिल जाते हैं तब तो घोर द्वंद्वयुद्ध होने लगता है। दांतोंकी वह टक्करें होती हैं कि वज्राघातका सा शब्द होता है। इसके अतिरिक्त पेड़ोंके टूटने, धरतीके खूंदे जाने, तथा हाथियोंके चिंघारनेका शब्द भी बहुत दूर तक सुनाई देता है। जिस जंगलमें हाथियोंका युद्ध होता है, वहांके प्रायः सभी प्राणी डर कर भाग जाते हैं। चीते, बघर्रे, तथा शेर तक उस समय उस बन-प्रान्तमें नहीं ठहरते। कई मीलों तक पेड़ोंकी सफ़ाई हो जाती हैं। कभी कभी जंगलके रहनेवाले आदमी बेशक दूरसे, पर्वतशिखरों या पेड़ोंपर चढ़ कर, इस अद्भुत द्वन्द्व युद्धके देखनेका आनन्द उठाते हैं। द्वन्द्वयुद्धमें एक हाथी अवश्य ही मरता है। बिना एकका प्राणान्त हुए, युद्धका अन्त नहीं होता। बड़े बड़े लम्बे दांत जिस समय गज़गज़ भर पेटमें घुस जाते हैं, तब हारे हुए हाथीका बचना असम्भव ही होता है।

उन्मत्त हाथियोंके द्वन्द्व युद्धको छोड़ हाथियोंमें वैसे भी कभी कभी लड़ाई हो जाती है। जब कभी किसी टोलीमें मुखियाके अतिरिक्त कोई नर हाथी खा पीकर हृष्ट पुष्ट हो जाता है, तो वह मुखिया होनेके लिए मुखियासे लड़नेपर उतारू होता है। यदि मुखिया हार गया तो यह नया मुखिया बन ही जाता है। परन्तु, यदि खुद हार गया तो भाग कर जंगलमें अकेला विचरने लगता है। ऐसे हाथीको गुंडा हाथी कहते हैं।

मौरभंज राज्यमें हाथियोंकी शिकार वर्जित

Biology प्राणिशास्त्र]

है, पर कभी कभी मन चले गोरे शिकार खेल ही लेते हैं। जब कभी कोई हाथी मस्त होकर अपने गिरोहको छोड़ देता है और गांवोंमें आकर आदमियोंको सताने लगता है, तब तो उसे मारना ही पड़ता है।

हाथियोंके चरनेका समय रातको होता है। सूर्योदयके बाद हाथी सोते हैं। भोल या नूना मट्टी चाटनेके लिए यह रात्रिमें बड़ी बड़ी दूर तक निकल जाते हैं। हाथीकी आंखें बड़ी छोटी होती हैं। यह ऊपरको नहीं देख सकता। ऊपरकी चीज़ोंका अन्दाज़ा यह अपनी सूंड़की नोकसे स्पर्श करके लगाया करता है। इस क्रियाको 'बुख़ार लेना' कहते हैं।

सूंड़ हाथीका बड़ा उपयोगी अंग है। आदमी जो काम अपने हाथोंसे लेता है, वही काम हाथी अपनी सूंड़से लेता है। सूंड़से ही यह पानी पीता है, सूंड़से ही पेड़ों या पौदोंको उखाड़ कर खाता है, सूंड़से ही स्नान करता है। सूंड़का सिरा इतना उपयोगी होता है कि उसकी सहायतासे हाथी दोअन्नी तक उठा सकता है।

मौरभंज रियासत हाथियोंका व्यापार करती थी। इसीलिए यहांपर समय समयपर हाथी पकड़े जाया करते थे। परन्तु कुछ समयसे यह काम बन्द है। आशा की जाती है कि वर्तमान महाराजके राज्याभिषेक हो जानेके बाद उक्त काम फिर आरम्भ किया जायगा। हाथी पकड़नेके कामको 'खेदा' कहते हैं।

जब महाराजकी आज्ञा होती है, तो खेदेके लिए तय्यारी शुरू की जाती है। कुल्हाड़ियां, बरछे, बड़ी मोटी-मोटी रस्सियां, नौकीली पैनी कीलें, फावड़े, कुदाल, बारूद, बन्दूक़ आदि सब चीज़ें, जिनकी आवश्यकता होती है और जो जंगलमें नहीं मिल सकती हैं, पहलेसे जुटा ली जाती हैं। तदनन्तर कुछ आदमी जंगलोंमें यह देखने भेजे जाते हैं कि हाथी कहां-कहां और और कितने-कितने हैं। इन आदमियोंको जासूस कहते हैं। कुछ जासूस तो हाथियोंका पीछा करनेके लिए जंगलमें ही रह जाते हैं और कुछ लौटकर सब समाचार शिकारियोंको देते हैं। समाचार पहुंचते ही सब सामान लेकर शिकारी चल पड़ते हैं और जहां हाथी होते हैं, वहांके आसपासके गांवोंमेंसे हज़ार डेढ़ हज़ार आदमी इकट्ठे कर लेते हैं।

जंगलके जिस प्रान्तमें हाथी होते हैं, उसको यह आदमी चारों तरफ़से इस प्रकार घेर लेते हैं कि हाथी बीचमें रहते हैं और कुल घेरा तीन या चार कोसका होता है। घेरेके अन्दर हाथियोंके खाने पीनेका पूरा सामान रहे, यह घेरा देनेके पहले ही देख लेते हैं। घेरा दे देनेके बाद आदमियोंको आज्ञा दी जाती है कि पेड़ काटकर चारों तरफ़ एक बाड़ सी बना दें। यह काम बड़ी जल्दी किया जाता है और पांच छः घण्टेके भीतर बाड़ खड़ी कर दी जाती है। इस प्रकार पेड़ोंके काटे जानेसे बाड़के बाहर चारों तरफ़ एक १५ या २० फुट चौड़ी सड़क सी निकल आती है। बाड़की ऊंचाई तीन या चार हाथ होती है। इस बाड़को 'जगतबेड़' कहते हैं। सब आदमी अब जगतबेड़के चारों तरफ़ फैल जाते हैं। १५ या २० क़दमपर दो दो आदमी मुक़र्रर कर दिये जाते हैं। इनमेंसे एकका अपने स्थानपर खड़े होकर पहरा देना आवश्यक होता है। यह बारी बारीसे पहरा दिया करते हैं। इनके पास प्रायः दो लकड़ीके टुकड़े, कुल्हाड़ी और बरछा रहा करता है। यह अपने पास आग भी जलती हुई रखते हैं। यदि हाथी इनकी तरफ़ आकर और बाड़को हटाकर निकल जानेका प्रयत्न करते हैं तो पहले तो यह लकड़ीके टुकड़ोंसे खट खट शब्द करते हैं, जिसे 'ठकठकी' कहते हैं। प्रायः इस शब्दसे ही हाथी लौट जाते हैं या इधर उधर चले जाते हैं। जहां जाते हैं, उनका स्वागत इसी शब्द द्वारा किया जाता है। यदि इस शब्दसे हाथी नहीं हटते तो जलती हुई आग दिखाकर उन्हें डराया जाता है

या अंगारे और जलती लकड़ी उनपर फेंक मारते हैं। यदि इससे भी नहीं मानते तो ख़ाली बन्दूक़ चला दी जाती है।

हर दो या तीन पहरेवालोंके ऊपर एक शिकारी रहता है। जहां आवश्यकता होती है, वहां पहुंचकर वह बन्दूक़ चला दिया करता है और पहरेवालोंकी सहायता किया करता है। पहरेवाले अपने पहरेके स्थानके पास ही कुटी बना लेते हैं। जिस आदमीकी पहरेपर नियुक्ति नहीं होती वह इसी कुटीमें आकर उठता बैठता है, आराम करता है और खाना पकाकर खाता है। पहरेवाले मज़दूरों तथा शिकारियोंको प्रायः दस बारह दिनमें बदल दिया करते हैं, क्योंकि जंगलमें मलेरिया ज्वरका बड़ा डर रहता है। यदि ज़्यादा दिन तक आदमी रहे तो ज्वरग्रस्त हो जाता है।
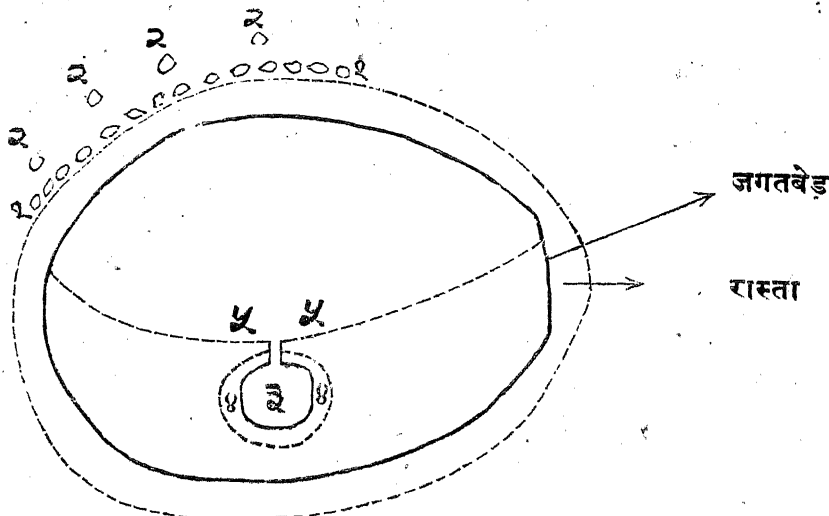
चित्र ५ १—१ पहरेवालों के डेरे २—२ शिकारियों के डेरे ३—कोट ४—४ खाई या ख़न्दक़ ५—५ पंखा

उपरोक्त रीतिसे हाथियोंका घेरा देनेके बाद शिकारी लोग जाकर यह देखते हैं कि हाथी अब किस तरफ़को जायंगे। प्रायः हाथी उसी तरफ़ जाना पसन्द करते हैं जिधर खानेकी सामग्री ख़ूब रहती है या जिधरसे उस जंगलमेंको रास्ता होता है, जहांसे कि वह आये थे। यह जान लेनेके बाद बाड़के उसी तरफ़के भागमें, बीचमें ३० या ४० हाथका मैदान छोड़कर, खाई खोदते हैं। खाई बाहरकी तरफ़ बिलकुल सीधी और भीतर (मैदान) की तरफ़ ढलवाँ होती है। नीचेका भाग इतना चौड़ा रहता है कि हाथीका पैर उसमें मुश्किलसे आ सकता है। खाईकी चौड़ाई इतनी होती है
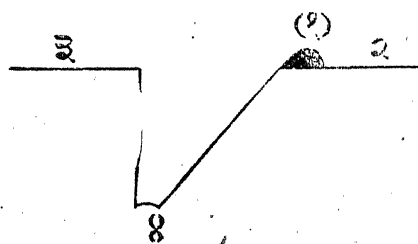
चित्र ६

गुलाम गरदा

१—गुलाम गरदा २-कोट के भीतर की ज़मीन ३-कोट के ज़बाहर कीमीन ४-ख़न्दक़ का सबसे नीचेका हिस्सा

कि हाथी कूद कर उसको फलांग न सके। यदि घेरे हुए हाथियोंमें नर और गुंडे होते हैं तो खाई ऊपरसे ६ हाथ चौड़ी और ६ हाथ गहरी होती है। यदि हथनियां ही हुईं तो केवल छः हाथ चौड़ी और छः हाथ गहरी होती है। खाईमेंसे जो मट्टी निकलती है, उसका कुछ अंश भीतरकी तरफ़ डाल देते हैं और एक गोल मुड़गेरी सी खाईके बिलकुल किनारेपर बना देते हैं। इसीको गुलाम-गरदा कहते हैं। खाईके चारों तरफ़ (बाहर) लकड़ियोंकी एक बाड़ और खड़ी कर दिया करते हैं। लकड़ियां बराबर बराबर सटाकर खड़ी गाड़ देते हैं। उनके पीछे बीचमें पड़ी हुई लकड़ियां लगा कर, तिरछी लकड़ियोंकी रोक लगा देते हैं, जिनको 'पेला' कहते हैं। गुलाम गरदे में केवल घेरेके भीतरसे आनेका एक तंग रास्ता रखते हैं, बाक़ी चारों तरफ़ खाई और खाईके उस तरफ़ लकड़ीकी बाड़ रहती है। बाड़की दूसरी तरफ़ चारों तरफ़ एक मचान सी बांधदेते हैं, जिस पर चढ़कर आदमी गुलाम गरदे के अन्दरका हाल जान सकता है। गुलाम गरदा कोटमें जगतबेड़ से लगभग १०० हाथ-की दूरीपर रहता है। गुलाम गरदे के अन्दर धान या केलेके पौदे लगाकर ऐसा बना देते हैं मानों बहुत हरा भरा जंगल है, परन्तु उसमेंके बड़े बड़े पेड़ोंको काट डालते हैं—जड़से नहीं काटते बल्कि पांच छः हाथका नीचेका हिस्सा छोड़ देते हैं। यही ठूंठ बादमें हाथियोंके बांधनेके काम आते हैं अर्थात् यही ठूंठ खूटोंका काम देते हैं।
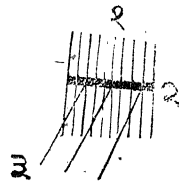
चित्र ७-खन्दकके बाहरके किनारेकी बाड़
१-खड़ी लकड़ियां
२ पड़ी हुई लकड़ियां
३-पेला

गुलाम गरदे में जानेका जो रास्ता होता है, उसके दाएँ बाएँ बहुत दूर तक पेड़ काटकर ढेर लगा देते हैं। यह बाड़ पंखा कहलाती है। कोटमेंसे गुलाम गरदेको जानेका जो रास्ता रहता है उसकी दोनों तरफ़ दो बड़े बड़े पेड़ पहलेसे ही देखकर रख लिये जाते हैं, जो पास पास और दो

① ②
③ ④

चित्र ८-रास्ते के सिरे पर पेड़ोंका स्थान
१-२,३-४ पेड़ोंकी पंक्तियां

पंक्तियोंमें होने चाहियें, जिससे कपाट उनके बीचमें रखा जा सके। यदि चार नहीं मिलते, तो दो तो अवश्य ही रखने पड़ते हैं और दो पेड़ काट कर उनके आगे गाड़ देते हैं। दर्वाज़ेका पट बड़ी बड़ी मोटी लकड़ियोंसे उसी प्रकार बनाया जाता है, जैसे बांसोंकी टट्टियां बनाते हैं। यह १० या १२ फुट ऊंचा होता है। हरएक जोड़पर एक लम्बी नौकीली कील जड़ देते हैं। इन कीलोंका रुख़ कोटकी भीतरकी तरफ़को होता है, जिससे हाथी क़ैद होनेपर पटमें टक्कर न लगा सकें और उसे तोड़कर बाहर न निकल सकें। यह पट मोटी मोटी रस्सियों द्वारा उन पेड़ोंके बीचमें लटका दिया जाता है जिनका ज़िक्र पहले कर चुके हैं। कुछ आदमी इन पेड़ोंपर चढ़ कर बैठ जाते हैं।

यदि हाथी स्वयम् चरते हुए कोटमें घुस जाते हैं, तो फ़ौरन पटकी रस्सियां काट देते हैं। पट गिर जाता है। उसके नीचेके भागमें लगी हुई नौकीली लकड़ियां धरतीमें धंस जाती हैं और पट जम जाता है। पटको इन नौकीली लकड़ियों और उन चार पेड़ोंका सहारा होता है, जिनके बीचमें वह लटकाया गया था।

पट गिरनेके बाद हाथी लौटते हैं और बड़ा 'ज़ुलम' करना शुरू करते हैं। पटके तोड़नेका प्रयत्न करते हैं और उसमें बार बार टक्कर लगाते हैं। टक्कर लगानेपर उनके मस्तक उन भालोंसे छिद जाते हैं, जो पटके जोड़ोंपर जड़े रहते हैं। प्रायः टक्कर मारनेकी तो नौबत ही नहीं आती, क्योंकि पेड़ोंपर बैठे हुए आदमी आग फेंकने

लगते हैं, जिसे देख कर हाथी पीछे लौट जाते हैं। दूसरे जब हाथी पटके पास आते हैं तो बाहरसे आदमी भाले मारते हैं और बन्दूकका शब्द कर देते हैं। इस प्रकार दिन भर और रात भर हाथी पटको तोड़ कर बाहर निकल जानेका प्रयत्न करते रहते हैं और शिकारी लोग उन्हें आग बरसा कर, भाले मारकर, बन्दूक (खाली) चलाकर, पीछे हटानेकी कोशिश किया करते हैं।

सूर्योदय होनेपर हाथियोंके सोनेका समय आ जाता है, दूसरे रात भरके परिश्रमके बाद वह स्वभावतः शिथिल हो जाते हैं। जब कभी बड़ा टस्कर (दन्तल) या गुंडा फंस जाता है तो वह निकलनेके लिए बड़ा उपद्रव करता है। एक खेदे में एक गुंडा दो दफ़े कोटमें आ फंसा। प्रत्येक बार उसपर बहुत आग बरसाई, भालोंकी मारसे उसका मस्तक और शरीर लोहू लोहान हो गया, पर वह पटको ज़रा सा तिरछा कर बड़ी फुरतीसे निकल गया। बड़ा आश्चर्य होता था कि इतने बड़े डील डौलका हाथी इतनी सकड़ी जगहमेंसे कैसे निकल गया।

जब हाथी स्वयम् चरते हुए कोटमें नहीं पहुंचते तो शिकारी लोग घेरेमें घुसकर हाथियों-को कोटकी तरफ़ भगाते हैं। मज़दूर लोग भी चारों तरफ़से दबाते हैं। प्रायः ऐसा करना तभी आरम्भ करते हैं, जब हाथी पंखोंके बीचमें पहुंच जाते हैं। हाथी पंखोंकी तरफ़ न जाकर कोटकी तरफ़ ही जाते हैं। उसके भीतर प्रवेश करनेपर जैसा ऊपर लिख चुके हैं, वैसा व्यवहार किया जाता है।

दूसरे दिन खाईके एक भागको पाटकर अन्दर जानेका रास्ता बनाते हैं और अपने घरेलू पालतू हाथी लेकर अन्दर जाते हैं। यदि पकड़े हुए हाथियोंमें सब नर हुए तो हथनियां ले जाते हैं। यदि हथनियां हुईं तो हाथी ले जाते हैं। यदि हाथियोंके पास हाथी ले जाते हैं तो वह आपसमें लड़ने लगते हैं। इसीलिए ऊपर कही हुई बातका ध्यान रखते हैं।

प्रत्येक हाथीके पीछे दो या चार पालतू हा-थियोंको ले जाते हैं और उनको उलटा चलाते हैं, यहां तक कि उनके चूतड़ जंगली हाथियोंके चूतड़ों-से मिल जाते हैं। फिर महावत हाथी परसे उतर कर मोटे रस्सोंसे जंगली हाथीके पिछले पैर लपेट कर बांध देता है और अन्तमें रस्सेको पासके किसी ठूंठसे बांध देता है। इसी प्रकार प्रत्येक नये हाथीके साथ व्यवहार किया जाता है। रस्सोंसे जंगली हाथियोंको बांधते समय महावत अपने हाथियोंके पैरोंके बीचमें रहते हैं, जिसमें यदि जंगली हाथी आक्रमण करे तो वह फ़ौरन अपने हाथीपर चढ़ जाय। जब यह देखते हैं कि नट-खट हाथी कोटमें पड़े हैं तो गन्नेके टुकड़ोंमें अफ़ीम रखकर बाहरसे फेंकते हैं। हाथी इनको बड़े चावसे खा जाते हैं और नशेमें चूर हो जाते हैं। फिर उनको बांधनेमें दिक़्क़त नहीं होती।

जब सब हाथी उपरोक्त विधिसे बंध चुकते हैं, तो किसी एक हाथीके गलेमें रस्से बांधते हैं और इन रस्सोंको दो हाथियोंके पेटसे बांध देते हैं। फिर इन पालतू हाथियोंको चलाते हैं। बिचारा जंगली हाथी घिसटता हुआ चला आता है। जब वह अड़ने लगता है तो अपने हाथीसे पीछेसे टोकर लगवाते हैं, जिससे उसे फिर आगे बढ़ना पड़ता है।

इस प्रकार हाथियोंको थानतक ले आते हैं और बांध देते हैं। वहां उसे खानेको देते हैं और घावोंपर, जो उसके बराबर पीछे या इधर उधर जानेकी कोशिश करनेसे हो जाते हैं मट्टी और नमक गरम करके लगाते हैं। इसी बीचमें पतली पतली वृक्षोंकी टहनियोंकी झाड़ू सी बना लेते हैं। इसीको हाथीकी पीठपर, दरख़्त परसे या अपने पुराने हाथियोंकी पीठ परसे फेरा करते हैं। इससे हाथीकी चमक निकल जाती है। ८ या १० दिन बाद नये हाथीपर 'चार जामा' कस देते हैं अर्थात्

एक लम्बा मोटा रस्सा उसकी पीठ और पेटपर लपेट कर उसी भांति कस देते हैं, जैसे कि सवारी-के वक्त हौदा या गद्दी कसनेमें कसते हैं। दो चार दिनमें उसे इसकी भी आदत पड़ जाती है। तदनन्तर एक पुराने हाथीको लेते हैं, एक आदमी उसपर सवार होता है और दूसरा नये हाथीपर सवार हो जाता है। फिर नये हाथीको पुरानेके साथ साथ टहलानेके लिए नदीकी तरफ़ ले जाते हैं। वहां उसे न्हिलाते हैं और आने जानेमें उसे अपनी भाषा सिखलाते हैं। उस भाषाकी शब्दावली अर्थ सहित नीचे दी जाती है।

शब्द	अर्थ
(१) मैल धत	हुशियारीसे चलो
(२) धत	खड़ा हो
(३) मैल या चै	चलो
(४) बैठ	बैठ जाओ
(५) मैल खंदक	निचान है, हुशियारीसे चल
(६) मैल ठोकर	ठोकर लगेगी हुशियार हो
(७) सलाम	सलाम करो
(८) तीरे	पानीमें करवटसे लेट जा

इस भांति हाथीको साधनेमें लगभग एक मास लग जाता है। हाथियोंके साधनेमें बहुत जल्दी नहीं करनी चाहिये, नहीं तो बहुत हाथी मर जाते हैं। धीरे धीरे साधने और उनके खाने पीनेका प्रबन्ध रखनेसे कम हाथी मरते हैं। प्रायः थानपर गांवोंके आदमी आकर नये हाथियोंको तंग किया करते हैं। इसका भी पूरा बन्दोबस्त होना चाहिये।

लकड़ीका कोट

ख़ंदक खोदकर जो कोट बनाया जाता है, उसमें किसी दिन एक, किसी दिन चार, किसी दिन और भी अधिक हाथी आते रहते हैं। जो हाथी आये उनको पकड़ लेते हैं। शेष हाथी जो घेरेमें रह जाते हैं उन्हें हांकेसे लाकर कोटमें फंसाते हैं। पर कभी कभी ऐसा होता है कि ख़ंदक खोदना ही बड़ा मुश्किल हो जाता है (जैसा कि पथरीली ज़मीन आ जानेपर होता है) या हाथी बनाये हुए कोटकी तरफ़ न जाकर किसी विशेष दिशामें ही चल पड़ते हैं और हज़ार प्रयत्न करनेपर भी कोटकी तरफ़ नहीं मुड़ते। इन दो सूरतोंमें लकड़ीका कोट तय्यार करते हैं। बड़े बड़े पेड़ काट कर एक दीवारसी बना देते हैं जो १० फुट ऊंची और ८ फुट चौड़ी होता है। इस कोटके बनानेमें लकड़ी बहुत ख़राब होती है।

चट्टानोंका जीवन इतिहास

[ले०—श्री० अम्बिकासहाय, बी. ए.]

अगर हम किसी बाग़ या खेतमें जा कर किसी हालके खोदे हुये गढ़ेको देखें तो हमें मालूम होगा कि उस गढ़ेकी दीवार कई स्तरों या तहोंकी बनी हुई है। धरातलके ऊपरका हिस्सा बड़ी पतली और बारीक मिट्टीका बना हुआ है। इसके बादवाली तहमें बहुत सी घासों और पौधोंकी सूखी हुई तथा कुछ कुछ हरी जड़ोंके गुच्छे मिले हुए हैं। इस तहके बाद तीसरी तहमें इन जड़ोंके मोटे भाग तथा दूसरी तरहकी मिट्टीका मिलान होगा। सम्भव है कि इससे भी नीची तहकी मिट्टीकी रङ्गत बदल जाय और इस तहमें बहुत सी जड़ोंके गले हुए हिस्से तथा घोंघे पाये जाँय। अगर गड्ढेको और गहरा खोद कर इस तहके भी नीचेवाले स्तरका निरीक्षण किया जाय तो उसकी मिट्टी नम होगी। अगर इस मिट्टीका कुछ हिस्सा लेकर उसकी रासायनिक जांच की जाय तो इसमें बहुत से खनिज पदार्थोंका पता चलेगा। इस मिट्टीको (Subsoil) 'आभ्यन्तर तह' कहते हैं। अब अगर यह गड्ढा और भी गहरा खोदा जाय तो कुछ दूर चलकर कंकड़ों-

१　Geology भूगर्भशास्त्र]

की तहें मिलेंगी। यह तहें इस प्रकारसे बनी होंगी कि सबसे ऊपरवाली तहोंमें कंकड़ थोड़े होंगे पर रेता बहुत होगा। इसके बादकी तहोंमें कंकड़ोंकी ज़्यादती होती जायगी और इनका आकार भी बढ़ता जायगा, यहां तक कि आख़िर-को हम ऐसी तहों तक पहुंच जायंगे जो कंकड़ों-की सिल या चट्टानोंकी बनी हुई होंगी। हमने अभी जिस गड्ढेके स्तरोंका वर्णन किया है वैसे स्तर हर जगहकी पृथ्वीमें इसी क्रमानुसार नहीं मिलते हैं। प्रत्येक प्रांतके जुदे जुदे भागोंके, जुदे जुदे स्थलोंकी, जुदी जुदी भूमिमें इन स्तरोंका सिल-सिला इनकी मोटाई तथा बनावट और मिट्टी और खनिज पदार्थोंके जुदे जुदे नमूनों पर निर्भर हैं। हमारे चित्रमें जिस गड्ढेके स्तरोंका ख़ाका बनाया गया है उसके सबसे नीचेकी चट्टानें चूने या कंकड़की बनी हुई हैं। किसी किसी जगह यही सिलें अधिक पथरीली होनेके कारण रेतीले पत्थरकी चट्टानें कहलाती हैं। कभी कभी यह सफ़ेद और मुलायम खड़िया मिट्टीकी बनी हुई होती हैं तथा कभी यह मिट्टी बड़ी भुरभुरी पीले या लालरंगकी होती है और इसकी सिलें या चट्टानें स्लेटकी भांति पतले पतले स्तरोंकी बनी होती हैं। भूगर्भ-शास्त्रमें इन सब प्रकारकी सिलोंको चट्टान या पत्थर कहते हैं।

चित्र ६

अ--पतली बारीक मट्टी, ब--घास तथा पौदोंकी सूखी जड़ोंवाली तह, स-जड़ोंके मोटे भाग वाली तह। द--अभ्यान्तर तह प--चट्टान।

मेह और ओलोंके कार्य्य

ऊपर जिन चट्टानोंका हमने वर्णन किया है उनकी बनावटका हाल जाननेके लिए यह आव-श्यक है कि हम पहले इस बातका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करलें कि पृथ्वी तलपर हर घंटे और हर मिनट कैसे कैसे बड़े परिवर्तन होते रहते हैं। खूब ज़ोरकी बारिश हो जानेके बाद अगर किसी मैदानमें खड़े होकर पानीके बहावसे बनी हुई नालियोंको ग़ौरसे देखा जाय तो हमें मालूम होगा कि दो तीन इंचकी गहराई ही में इन नालियोंकी मिट्टी जुदे जुदे प्रकारकी तहोंसे बनी हुई है। दोनों किनारों परकी मिट्टी बड़ी बारीक बालू होगी। इसके नीचेवाली तहें इससे हर तरह पर मुख़तलिफ़ होंगी; यहांतक कि इन नालियोंकी तलहटीकी मिट्टी बड़ी चिकनी और बारीक होगी। तथा कहीं कहीं पर कंकड़ीली और रोड़ेदार भी मिलेगी। अगर हम ऐसी किसी नालीमें बहते हुए पानीका एक कांचकी बोतलमें भर लें तो हम इस बातकी भली भांति जांच कर सकते हैं कि इस नालीके पानीमें क्या क्या पदार्थ मौजूद हैं। अगर इस पानीकी भरी हुई बोत-लको कुछ देरके लिए मेज़पर रख दिया जाय, जिससे यह गदला पानी ठहर कर उसकी गाद नीचे जम जाय तो हम देखेंगे कि इस पानीमें घुले हुए पदार्थोंकी मात्रा तो बहुत कम है परन्तु सैकड़ों प्रकारके छोटे छोटे कण उसमें भ्रमण कर रहे हैं। यही भ्रमण करने-वाले कण तहमें बैठकर गाद या कीचड़ बन जाते हैं और इनके ऊपरका पानी

क़रीब क़रीब साफ़ हो जाता है। अब अगर इस पानीको बड़ी होशियारीसे नितार कर अलग कर दिया जाय और इस गादको ताल (Lens) द्वारा देखा जाय तो हमें पता चलेगा कि सबसे नीचेकी तह बहुत बड़े बड़े कणोंकी बनी हुई होगी और उसके ऊपरवाली तहोंकी बनावटमें छोटे छोटे कण नज़र आएंगे। यहांतक कि सबसे ऊपरवाली तह बड़ी बारीक मिट्टीकी बनी हुई होगी। यह तहें उसी प्रकारसे बनी हुई होंगी जिस प्रकार बरसातमें किसी नदीमें बाढ़ आजानेपर उसके आस पासके गांवोंके खेतों और मैदानोंकी सतहपर नई मिट्टीकी तहें जम जाती हैं। गदली नदीमें जो रेता और मिट्टी पानीके साथ बह आती है वह उन स्थानोंसे आती है जिनपर बहती हुई वह नदी उस विशेष स्थानपर पहुंची हो। अस्तु हम कह सकते हैं कि यह मिट्टी और रेता उन स्थानोंकी भूमि, (Sub-soil) आभ्यन्तर तह तथा चट्टानोंको तोड़फोड़कर जर्जर कर नदियां बहा लाई हैं। अस्तु पृथ्वी तलपर ऐसी तोड़फोड़ और विध्वंसकारी शक्तियां मेह ओला तथा नदियां हैं।

पाठकोंको यह मालूम है कि पानी जमनेपर फैल जाता है—उसका आयतन बढ़ जाता है—यही कारण है कि अक्सर इंगलैंड जैसे ठंडे देशोंमें बरफ़ पड़नेके बाद पानीके नल फट जाते हैं। बरफ़की सर्दीसे नलोंके अन्दरका पानी भी ठंडा होकर जम जाता है और जमकर फैलनेके कारण इतना शक्तिशाली हो जाता है कि नलोंको तोड़ डालता है। सब चट्टानोंमें पानी मौजूद रहता है; या तो यह पानी उन पदार्थोंके कणोंमें मौजूद होता है जिनके द्वारा चटानें बनी हुई हैं। या इन चट्टानोंके सैकड़ों जोड़ों और दरारोंमें भरा रहता है। जब ओला या बरफ़ गिरती हैं तो छोटी छोटी सीधी पहाड़ियोंकी चट्टानोंके बहुतसे टुकड़े टूट टूटकर गिर जाते हैं और ऐसे रोड़ोंके बहुत से ढेर इन पहाड़ियोंके नीचे जमा हो जाते हैं। जो पहाड़ियाँ बिलकुल सीधी होती हैं—जिनमें ढाल बहुत कम होता है—उनकी चट्टानोंपर वायु और मेहका खूब आक्रमण होता रहता है। इनके टूटने फूटनेसे बहुत से रोड़े बड़े बड़े पत्थरोंके ढुलकनेसे जमा हो जाते हैं। पहाड़ियों और पर्वतोंपर इन शिखिरखण्डोंके ढुलकनेके कारण ही (Screes) रोड़ोंके ढेर बन जाते हैं। अगर यह रोड़े मुलायम हुए तो बड़ी जल्दी टूट फूटकर यह नदियोंके बहावके साथ मैदानोंमें बह आते हैं और रेता बनकर पृथ्वीपर फैल जाते हैं।

ऐसी खड़ी हुई चट्टानोंपर मेह पड़नेसे उनकी सतह टूटने फूटने लगती है। उसके बाद अगर ज़ोरसे अंधड़ चला तो उन्हीं पहाड़ियोंकी बड़ी बड़ी चट्टानें उखड़कर ढुलकने लगती हैं तथा इनपर उगे हुए पेड़ोंके टूटनेसे बहुत सी आस पासकी चट्टानें भी टूट जाती हैं और ढुलकती हुई नीचे आने तक छोटे छोटे पत्थरोंके रोड़ोंके रूपमें परिवर्तित हो जाती हैं। बरफ़ या पाला पड़नेपर इन चट्टानोंकी दरारोंमें मौजूद रहनेवाला पानी ठंडा होकर जम जाता है और जमनेके कारण फैलकर इन्हें तोड़ डालता है। इस प्रकार ओले और मेह दोनोंकी सहायतासे पृथ्वीका तल भाग चाहे वह मुलायम मिट्टीका बना हो अथवा कड़ी पथरीली चट्टानोंका हर घड़ी टूटता फूटता रहता है। इन रोड़ोंको पहाड़ियोंके तलसे बहाकर नदियाँ मैदानोंमें ले जाती हैं और अपने बेसिन (Basin) में जहाँ तहाँ जमा कर देती हैं।

नदियोंके काम

पृथ्वीतलपर बहनेवाली बड़ीसे बड़ी और छोटीसे छोटी नदियाँ तथा नहरें भी अपने बहावमें यही काम करती रहती हैं। बहते हुए पानीकी शक्तिसे यह पृथ्वीके जिस भागमें होकर बहती हैं अपने बहावके कारण करारे काट लेती हैं। तेज़ वेगसे बहनेवाली नदियाँ ही इस कार्यको नहीं करती हैं बल्कि धीमीसे धीमी नदियोंमें भी यही काम हुआ करता है। अन्तर केवल मात्राका है। जब नदियोंमें बाढ़ आती है तब तो यह करारे

काटनेकी शक्ति और भी बढ़ जाती है। इस अवस्थामें नदीमें केवल पानीकी मात्रा ही अधिक नहीं होती और उसका बहाव ही बहुत तेज़ नहीं होता बल्कि इस समय नदीमें चट्टानोंके छोटे छोटे रोड़ों और रेतके कणोंके मौजूद होनेसे उसकी घिस घिसकर काट करनेकी शक्ति और भी बढ़ जाती है। अगर किसी पहाड़ी नदीकी बाढ़का पाठकोंको देखनेका अवसर हुआ हो तो उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ होगा कि पानीके बहावमें पड़ कर कितने बड़े बड़े बेडौल पत्थर चुपचाप लुढ़कते चले जाते हैं। जैसे जैसे यह पत्थर आगेको बहते हैं दूसरे पत्थरोंसे टकरानेके कारण कट कटकर छोटे होते जाते हैं। यहाँतक कि दो सौ ढाई सौ मीलके बहावके बाद चूर चूर होकर इनका रेता बन जाता है और अन्तमें नदियोंके मैदानों और खेतोंमें यही रेता जमा होने लगता है। १९५५ वि० में इंगलेंडमें बड़ा भारी तूफ़ान आनेके कारण नदियोंमें असाधारण बाढ़ आ गई थी। उत्तर पश्चिमीय योर्कशायरमें स्वेल (Swale) नदीकी कंदराओं (Gorges) में पहाड़ियों परसे कई कंकड़की शिलाएं खिसक आई थीं और नदीके बीचमें पड़ी हुई थीं। बाढ़ आनेके समय यह बड़ी बड़ी चट्टानें प्रायः १०० मील बहकर किसडुन् प्रपातके जल प्रपातसे बड़े डरावने शोरके साथ नीचे गिरीं। इनमेंसे एक चट्टानको नापकर उसका भार आंकनेपर ५५५० मन निकला।

समुद्रोंके काम

समुद्रकी लहरें भी मेह ओला और नदियोंकी भांति कड़ीसे कड़ी और मुलायम तथा रेतीली चट्टानोंको तोड़ ताड़कर यही काम करती रहती हैं। जिन देशोंके किनारे बहनेवाले समुद्रकी लहरें रेतीली और मुलायम चट्टानोंसे हर घड़ी टकराती रहती हैं उनका स्थल भाग धीरे धीरे कम होता जाता है। इन स्थानोंमें जलका थलपर आधिपत्य होता जाता है और बहुत से पुराने टीलों और गांवोंके सिर्फ़ निशान ही बाक़ी रह जाते हैं। पथरीली और सख़्त चट्टानोंवाले स्थलोंमें यह परिवर्तन बहुत धीरे धीरे हो पाता है, परन्तु पूर्वीय इंगलेंडमें जहांकी पृथ्वी खरियाकी चट्टानोंसे बनी हुई हैं यह तबदीलियां बड़ी आसानीसे दिखलाई पड़ती हैं। आजकल ऐसे बहुत से बुड्ढे मौजूद हैं जिनके सामने ही होलडरनीज़के किनारेके बहुत से टीले और गांव जलमग्न हो चुके हैं। अभी दो सौ तीन सौ वर्षके भीतर ही कितने ही गांव और क़स्बे समुद्र देवकी गोदमें पहुंच चुके हैं। इसी प्रकार पच्छिमी किनारेपर भी बहुत सा थल भाग ग़ायब हो चुका है। पिछले पचास वर्षोंमें ही ब्लेक पूल (Black pool) के उत्तरमें मीलोंतक जो टीले फैले हुये थे आज उनका बहुत कम हिस्सा बाक़ी रह गया है। जिस समय बड़ी बड़ी लहरें आआकर इन टीलों और चट्टानोंसे टकरा कर हाहा शब्द करती हुई विनोद पूर्वक नृत्य दिखलाकर, फिर समुद्रको लौटती हैं तो प्रकृतिकी इन जल अप्सराओंका मधुर राग और मन मुग्धकारी हास्य विनोद तथा हृदयाकर्षक आमोद प्रमोदसे लुभाकर पाषाण हृदयवाली चट्टानें भी विचलित हो जाती हैं और इन अप्सराओंको आलिंगन करनेके आवेगमें बिना आगा पीछा सोचे हुये समुद्रमें धड़धड़ाती हुई चली जाती हैं। यहां पहुंचकर अपनी प्रेमिकाओंसे मिलनेके लिये सैकड़ों प्रकारके कष्ट सहकर यह अपना तन मन धन उनपर न्यौछावर कर अपने अस्तित्व तकको मिटा डालती हैं और अंतमें अपने इस अनुपम प्रेमका परिचय देकर सदाके लिये अपनी प्रेमिकाओंसे जल विहार करनेका आनन्द लूटती हैं।

कुछ वर्ष हुये कि इंगलेंडमें एक राजकीय कमीशन (Royal commission) की नियुक्ति इसलिये की गई थी कि वह इस बातका पता लगाये कि वहांके स्थल भागोंके जलमग्न हो जानेसे देशकी कितनी हानि हो रही है तथा इस परिवर्त-

नसे देशको कितनी हानिकी सम्भावना है। इस कमीशनने अपनी जांचकी जो रिपोर्ट छापी है उससे पता चलता है कि जो स्थलभाग समुद्रमें जलमग्न होते चले जा रहे हैं उनकी जगहपर समुद्रके भीतरसे नये नये स्थल बाहर निकलते चले आते हैं। हमारे देश वासियोंको श्रीकृष्णजीकी बसाई हुई द्वारकापुरीके डूब जानेका हाल भली भांति मालूम है। जिन समुद्रदेवकी कृपासे इस पुरीका जन्म हुआ था उन्हींकी भृकुटीके इशारेसे उसका कोई अस्तित्व न रह गया। भूगर्भ शास्त्रवेत्ता इस प्रकार मेह, ओला, नदी तथा समुद्र जलके कार्य द्वारा पृथ्वीके विध्वंस होनेको क्षय (Erosion) कहते हैं। इसी क्षयकारी क्रिया द्वारा पृथ्वीके नये थलभागोंके बनाये जानेके लिये मसाला जमा होता है।

जल द्वारा बहाकर लाये हुये पदार्थ

जिस समय समुद्रका ज्वार भाटा समुद्रकी ओर लौटने लगता है तो किनारेके जिन भागोंपर होकर उसका पानी बहता है उनपर नई मिट्टी या रेतकी तहें जम जाती हैं। हमारे देशमें जिन लोगोंको कलकत्ते जाकर हुगलीमें ज्वार भाटा देखनेका अवसर प्राप्त हुआ है वह जानते हैं कि समुद्रकी बाढ़ लौट जानेपर डायमंड हारबर (DiamondHarbour) के कर्म्मचारियोंको जहाज़ोंके लिए रास्ता साफ़ करनेके लिये कितनी दिक़त पड़ती है। प्रायः चौबीस घंटे तक लगातार काम करनेपर हज़ारों मन रेता खोद खोदकर बहा देते हैं। अगर यह रेता तीन चार दिन तक साफ़ न किया जाय और जमा होने दिया जाय तो बहुत जल्द कलकत्तेमें जहाज़ोंका आना जाना बंद हो जाय। हुगलीमें तो हमेशा ड्रेजेज़ (Dredgres) नामक यंत्रोंसे काम लिया जाता है। यह यंत्र बड़े बड़े कड़ाहोंके आकारके होते हैं जो दरियाओंकी तहमें जाकर पैठ जाते हैं और वहांसे मिट्टी, कीचड़ और रेता भर लाते हैं। इनमें बहुतसे छेद होते हैं जिनमें होकर पानी तो छनकर निकल जाता है मगर रेता और कीचड़ रह जाती है। कलकत्तेसे डायमंड हारबर तक चालीस मीलका फासला है। अस्तु, कलकत्ते आने वाले जहाज़ोंको डायमंड हारबर पहुंचते ही तार द्वारा दरियाकी गहराईकी सूचना दे दी जाती है और उन्हें एक विशेष कार्णिक (Pilot) की सहायता लेनी पड़ती है जो दरियाके मोड़ इत्यादिसे भली भांति परिचित होता है। यह रेता जो ज्वार भाटेके साथ आकर जमा हो जाता है समुद्रमें कहांसे आया? इस प्रश्नका उत्तर यही हो सकता है कि ऊपर जिन जिन रीतियों द्वारा जल पृथ्वीके भागोंको तोड़ फोड़कर बहालाया था, वह सब पिसते पिसते चूर्ण होकर समुद्र रूपी जल भंडारमें जमा हो जाते हैं और यही भविष्यमें बननेवाली पृथ्वी और चट्टानोंके बनाये जानेके मसाले होते हैं।

नदियोंकी अवस्थाएं

प्रायः बहुत सी नदियां पहाड़ोंसे निकलती हैं। इनके बहावका सारा इतिहास चार अवस्थाओंमें विभक्त किया जा सकता है। पहिली अवस्थाको हम प्राथमिक तथा हिमप्रवाह (Glacier) अवस्था कहते हैं। जो नदियां पहाड़ोंसे निकलती हैं उनका उद्गम स्थान प्रायः इन्हीं हिम नदियों या ग्लेशियर्समें होता है। बहुत ऊंचे पहाड़ोंपर सदा बरफ़ जमी रहती है। जब यह बरफ़ गलकर बह निकलती है तो इसके बड़े बड़े ढेलोंके फिसलनेसे बहुतसे पत्थर और वृक्ष इत्यादि तक घिसट आते हैं। यह बरफ़के पत्थर मीलोंतक ऊंचे नीचे स्थानोंमें बहते हुये अन्तको ऐसे स्थानोंपर पहुंच जाते हैं जहां की वायुके तापक्रमपर बरफ़ पिघल कर पानी हो जाती है। इस अवस्थामें इन नदियोंका वेग बड़ा प्रबल हो जाता है। गरमियोंके दिनोंमें हिमालयपर बरफ़ पिघलनेके कारणसे ही गंगा जमनामें बाढ़ आ जाया करती है। अगर ऐसा न हो तो गरमियोंमें बहुतसे दरिया सूख जाया करें जैसे राजपूतानेकी लूनी नदी। दूसरी अवस्थाको हम पहाड़ी अवस्था कह सकते हैं। इस अवस्थामें नदी पहाड़के किसी भागसे निकल-

कर अनेक दर्रों और ढलवां घाटियोंमेंसे करारे काटती हुई मिट्टी, कंकड़ और रेतेको बहाती हुई बड़े ऊंचेसे गिरती हैं। इसीलिए इसकी धाराका वेग बड़ा तेज़ होता है और इसकी तोड़ फाड़ करनेकी विध्वंसकारी शक्ति भी बड़ी विकट होती है। तीसरी अवस्थाका नाम है मैदानकी अवस्था। जब नदी पहाड़को छोड़ आती है तो यहांपर ढाल कम होनेसे उसकी गति मंद होती जाती है। परन्तु पानीका गुण है कि वह ऊंचे स्थानसे नीचे स्थानकी तरफ़ बहे। इसलिए यह नदी जिधरको ढाल पाती है उधर करारे काटकर बहने लगती है। जैसे जैसे इसका गर्भ स्थान (Channel) गहरा होता जाता है इसके किनारोंपरके थल भाग ऊंचे और खुश्क होते जाते हैं। इस अवस्थामें इसकी तहमें बहकर आये हुये पत्थरोंके रोड़े एक दूसरेसे टकरा टकरा कर बड़ी चिकनी और सुन्दर गोल-पिंडियोंके आकारके हो जाते हैं*। आगे चलकर जैसे जैसे यह नदी नए नए देशों और प्रांतोंमें बहती हैं उसी प्रकारकी रेत और मिट्टी उनकी तहमें जमा होती जाती है और अक्सर बाढ़ आजाने पर किनारोंपर तथा पासके खेतों और मैदानोंमें जमा हो जाती है। इस अवस्थाके बाद जब नदी समुद्रके निकट पहुंचती है तो इसकी डेल्टा अवस्था शुरू हो जाती है। इस अवस्थामें नदी प्रायः समुद्रके समतल पहुंच जाती है और अपने सैकड़ों मीलके बहावमें वर्षोंकी इकट्ठीकी हुई रेती और मिट्टीके एक दम जम जानेके कारण उसकी तह आस पासके स्थलोंसे ऊंची हो जाती है। इसलिए उसकी पानी चारों ओर छोटे छोटे नालोंमें होकर बह निकलता है और यह नाले जुदे जुदे रास्तोंसे बहते हुये समुद्रमें जा मिलते हैं। और कीचड़के बह आनेसे इसका बहुत सा हिस्सा उथला होते होते भर आया है और अब आस पासके स्थलोंकी बराबर ऊंचा हो गया है। किसी ज़मानेमें पोर्ट वेले (Port Vallais) नामका नगर इस झीलके किनारेपर था। आज दिन वही नगर वहांसे मीलों दूर है। रोन (Rhone) नदीका पानी जब जनीवा झीलमें आता है तो यह बड़ा गदला और कीचड़दार होता है, परन्तु जनीवा नगरके पास जहाँ यह झीलसे निकलकर मैदानमें बहने लगता है यह बड़ा शुद्ध और साफ़ सुथरा हो जाता है। इसका क्या कारण है? इसके बतलानेके लिए इतना ही आवश्यक होगा कि रोन नदी अपने बहावमें जितनी मिट्टी, रेता, कीचड़ और कंकड ले आती है वह सब झीलमें पैठ जाता है और नदीका पानी साफ़ सुथरा होकर बहने लगता है। इसी क्रमके अनुसार पाठकोंको यह जानने में देर न लगेगी कि इस झीलका अंत क्या होगा। हां यह सम्भव है कि कुछ ऐसे अकस्मातिक, नैसर्गिक कारण आ उपस्थित हों कि यह झील भरनेसे बच जाय।

उपरोक्त वर्णनसे पाठकोंको मालूम हो गया होगा कि चट्टानें बननेका मसाला किस प्रकार हर घड़ी जमा होता रहता है। सारी दुनियांमें यह क्रम इसी प्रकार जारी है। जलकी सहायता द्वारा ऊपर वर्णन की हुई रीतियोंसे जो चट्टानें बनती हैं उन्हें जलीय चट्टान तथा तहदार पत्थर कहते हैं।

*नर्मदा नदीमें शालग्रामकी मूर्तियां इसी प्रकार बनती हैं। सम्पादक।

एम्पमापक और वोल्टमापक

[ले०—प्रो० शालग्राम भार्गव एम.एस-सी.]

पिछले लेखोंमें जिन धारामापकोंका वर्णन किया गया है उनसे प्रायः धारासूचकोंका ही काम लिया जाता है; इस लेखमें इस बातको बतलायेंगे कि इन्हीं धारामापकोंसे एम्पमापकों

Electricity विषय शास्त्र]

और वोल्टमापकोंका काम किस प्रकार लिया जा सकता है।

स्विचबोर्डपर लगे हुए, अथवा अन्य धारामापक और वोल्टमापक, लपेट धारामापक ही होते हैं। इनको किसी नियत दिशामें रखना आवश्यक नहीं है और इनपर बाहरी चुम्बकीय क्षेत्रका असर भी नहीं होता है। यही कारण है कि यह धारामापक चुम्बक-धारामापकोंकी अपेक्षा अधिक इस्तेमालमें आते हैं। चुम्बककी नाई इनकी लपेटें भी कीली पर रखी हुई होती हैं और इनमें एक सूचक लगा हुआ होता है जो एक वृत्तखण्डपर घूमता है। वृत्तखण्डपर सूचकके स्थानको देखकर कुण्डली का विचलन मालूम कर लिया जाता है। यह नीचे दिये हुए चित्रसे भली भांति समझमें आजायगा।
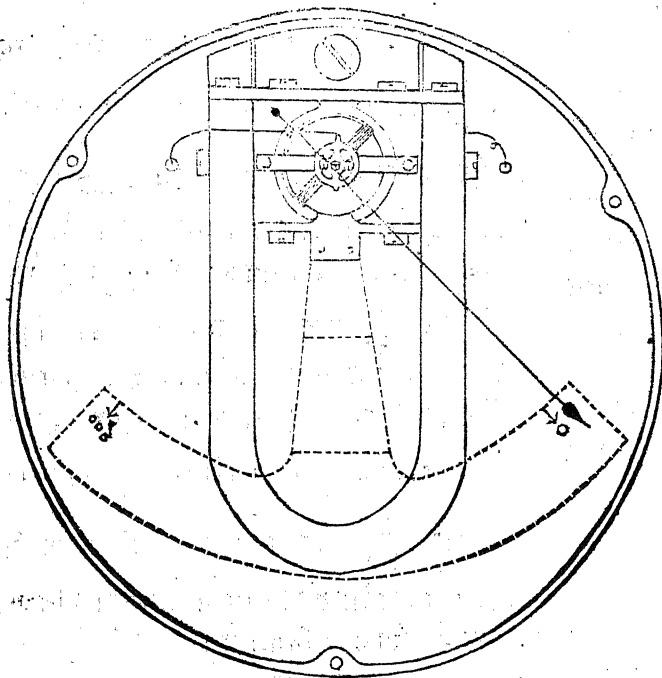
चित्र १०—एम्पमापक

मान लीजिये कि इस धारामापकके लपेटोंकी बाधा, जिसको धारामापककी बाधा कहेंगे, १० ओह्म है और इसके घेरेपर १०० चिह्न बने हुए हैं और $\frac{१}{१००}$ अथवा $(१०)^{-२}$ एम्पकी धाराके लपेटोंमें बहनेसे सूचक ० के चिह्नसे १०० के चिह्नतक हट जाता है। $\frac{१}{१००००}$ अथवा $(१०)^{-४}$ एम्पकी धारासे सूचक एक अंकसे दूसरे अंकतक हटेगा। यदि धारा इतनेसे दुर्बल होगी तो विचलन एक अंकसे कम होगा और धाराका केवल अनुमान ही किया जासकेगा। यदि धारा $\frac{१}{१००}$ एम्प से प्रबल होगी तो विचलन १०० अंकोंसे बढ़ जायगा; इससे धारामापकको हानि पहुंचनेकी सम्भावना है। इसलिए अधिकसे अधिक धारा जो इस धारामापकसे नापी जा सकती है वह $\frac{१}{१००}$ एम्पके बराबर है और कमसे कम धारा जो यह धारामापक नाप सकता है वह $\frac{१}{१००००}$ एम्प की धारा है। कमसे कम धारा नापते समय इस धारामापकके सिरोंमें $\frac{१}{१००००}\times १०$ अथवा $\frac{१}{१०००}$ वोल्टके बराबर अवस्थाभेद होगा और अधिकसे अधिक अवस्थाभेद जो इसके सिरोंमें हो सकता है वह बराबर है $\frac{१}{१००}\times १०$ अथवा $\frac{१}{१०}$ वोल्ट; *- अर्थात् यह धारामापक $(१०)^{-४}$ एम्पसे $(१०)^{-२}$ एम्पकी धारा और $(१०)^{-३}$ वोल्टसे लेकर $(१०)^{-१}$ वोल्टका अवस्था भेद नाप सकता है। अस्तु यह अवस्थाभेद नापनेका भी काम दे सकता है; इसलिए वोल्टमापक भी कहा जा सकता है। यह कमसे कम $\frac{१}{१०००}$ वोल्टका अवस्था भेद नापता है, इसलिए यह सहस्रांश वोल्टमापक कहलाता है।

* ओह्मके नियमसे अवस्था भेद=धारा × बाधा

मान लीजिये हमको इस धारामापक से १ एम्पकी धारा नापनी है। यदि इतनी प्रबल धारा इसमें बहै तो धारामापक टूट जाय। इसलिए हमको ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि धारामापकमें होकर $\frac{१}{१००}$ एम्पकी धारासे अधिक न जा सके। हमको इसके साथ एक हार लगा देना चाहिये, जिससे धारामापकमें होकर $\frac{१}{१००}$ एम्पकी धारा जाय और बाक़ी धारा हारमें होकर चली जाय। चित्र ११ में ए एम्पमापक है और क ख हारसे त तारों द्वारा जुड़ा हुआ है। क ख हारकी बाधा हम इस प्रकार निकाल सकते हैं। क त पर १ एम्पकी धारा प्रवेश करेगी, इसमें से $\frac{१}{१००}$ एम्पकी धारासे अधिक तो धारामापक में नहीं जानी चाहिये और बाक़ी हारमें होकर जानी चाहिये और 'ख' परसे १ एम्पके बराबर धारा निकलनी चाहिये।
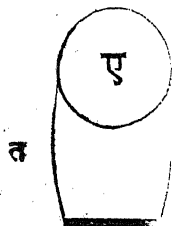
ए
त
क

चित्र ११

यदि हारकी बाधा 'ह' ओह्म मानलें तो १ एम्पकी धाराका जो भाग धारामापकमें होकर जायेगा वह $=\frac{१\times ह}{ह+१०}$; क्योंकि धारामापककी बाधा 'त' तारों सहित हम १० ओह्म मान चुके हैं। अब यह भाग $\frac{१}{१००}$ एम्पके बराबर होना चाहिये; इसलिए

$$\frac{१\times ह}{ह+१०} = \frac{१}{१००}$$

$$\therefore \quad १०० ह = ह+१०$$

$$९९ ह = १०$$

$$ह = \frac{१०}{९९}$$

$$= ·१०१ \text{ ओह्म}$$

अर्थात् हारकी बाधा ·१०१ ओह्मके बराबर होनी चाहिये। यह $\frac{१}{१०}$ ओह्मके लगभग ही है। यदि इसी धारामापकसे १० एम्प तककी धारा नापना चाहें तो ऐसा ही हिसाब लगाकर हम देखेंगे कि हारकी बाधा $\frac{१०}{९९९}$ ओह्मके बराबर होनी चाहिये और इसी प्रकार १००, १००० इत्यादि एम्पों तक नापने केलिए हारकी बाधा $\frac{१०}{९९९९}$, $\frac{१०}{९९९९९}$ इत्यादि ओह्मके बराबर निकलेगी। धाराकी प्रबलताके साथ हारकी बाधा कम होती चली जायगी। प्रबलधारा नापनेवाले धारामापकोंके साथ हार अवश्य ही लगा होना चाहिये।

इसी धारामापकसे अवस्थाभेद इस प्रकार नाप सकते हैं। मान लीजिये कि हमको १ वोल्टके बराबर अवस्थाभेद नापना है। धारामापकके सिरोंपर अधिकसे अधिक अवस्था भेद $\frac{१}{१०}$ वोल्ट होना चाहिये और बाक़ी $\frac{९}{१०}$ किसी और जगह। जब $\frac{१}{१०}$ वोल्टका अवस्थाभेद इस वोल्टमापकके सिरोंपर होता है उस समय इसमेंसे $\frac{१}{१००}$ एम्पकी धारा बहती है। अब हमको चाहिये कि ऐसा प्रबन्ध करें कि धारामापकमें से इतनी ही धारा बहते समय $\frac{९}{१०}$ वोल्टका अवस्था भेद किसी और जगह चला जाय। यह प्रबंध इस धारामापकके साथ एक ऐसी बाधाको शृङ्खलाबद्ध कर देनेमें होगा कि जिसके सिरोंपर $\frac{९}{१०}$ वोल्टका अवस्थाभेद $\frac{१}{१००}$ एम्पकी धाराके बहते समय हो। यह बाधा हम ओह्मके नियमकी सहायतासे निकाल सकते हैं। ओह्मका नियम है।

$$\frac{\text{अवस्थाभेद}}{\text{धारा}} = \text{बाधा}$$

यहां अवस्थाभेद $=\frac{९}{१०}$ वोल्ट

और धारा $=\frac{१}{१००}$ एम्प

$$\therefore \quad \text{बाधा} = \frac{\frac{९}{१०}}{\frac{१}{१००}} \text{ ओह्म}$$

$$= ९० \text{ ओह्म}$$

इससे यह फल निकला कि इस धारामापक-के साथ ९० ओह्मके बराबर बाधा शृंखलाबद्ध कर देनेसे यह अवस्थाभेदमापक १ वोल्ट तक का अवस्थाभेद नाप सकेगा। चित्र १२ में ब ९० ओह्मके बराबर बाधा है जो वोल्टमापकके साथ शृंखलाबद्ध है। एक सिरा वोल्टमापकका बाधा-के एक सिरेके साथ जुड़ा हुआ है और बाधाका दूसरा सिरा क और वोल्टमापकका दूसरा सिरा ख उन दो स्थानोंसे जोड़ दिये जाते हैं, जिनमें अवस्थाभेद नापना है। इसी प्रकार यदि इसी वोल्टमापकसे १० वोल्ट तकका अवस्थाभेद नापना हो तो ९९० ओह्मकी बाधा इसके साथ शृंखलाबद्ध करना पड़ेगी और १०० वोल्ट या १००० वोल्ट तकका अवस्थाभेद नापनेके लिए ९९९० और ९९९९० ओह्मोंकी बाधाएं जोड़ देनी चाहियें।
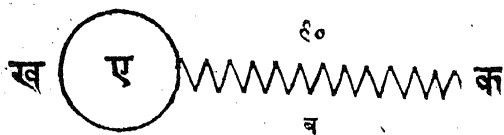
चित्र १२—ए–एम्प मापक तथा बाधा

इतना कह देनेसे पाठकोंको यह साफ़ तौरसे ज्ञात हो गया होगा कि एक ही यंत्रसे धारा और अवस्थाभेद दोनों नापनेका काम लिया जा सकता है। धारा नापनेके लिए यंत्रके साथ एक छोटी बाधाका हार बांध दिया जाता है और अवस्था-भेद नापनेके लिए बहुत बड़ी बाधा उसके साथ शृंखलाबद्ध कर दी जाती है। धारामापककी बाधा बहुत छोटी होती है, क्योंकि हार और धारा-मापककी लब्धबाधा हारकी बाधासे भी कम होती है और वोल्टमापककी बाधा बहुत बड़ी होती है, क्योंकि जब बाधायें शृंखलाबद्ध होती हैं तो जोड़की बाधा सब बाधाओंके जोड़के बराबर होती है। दूसरी बात यह है कि एम्पमापकके साथ कई हार होते हैं, जिनकी सहायतासे एक ही एम्पमापक द्वारा कई प्रबलताओंकी धाराएँ नापी जा सकती हैं। इसलिए हमको जैसी धारा नापनी होगी उसीके अनुसार हम उसके साथ हार इस्तैमाल करेंगे। इसी प्रकार वोल्टमापकके साथ कई बड़ी बड़ी बाधाएं होंगी, जिनसे एक ही वोल्टमापक द्वारा कई अवस्थाभेद नापे जासकें। हम उसके साथ उचित बाधा जोड़कर उससे अवस्थाभेद नापेंगे। यदि किसी प्रकार इन बाधाओंके परिमाणमें भेद पड़ जाय तो यह धारामापक सही धारा और अवस्था-भेद नापनेमें असमर्थ हो जायगा। इसलिए इसकी बाधाओंको होशियारीसे रखना परमावश्यक है। बहुधा इन बाधाओंको यंत्र बनानेवाले यंत्रके भीतर ही रख देते हैं, जिससे उनको हानि न पहुंच सके और यंत्रके बाहर जिस पेचके नीचे इन बाधाओंके सिरे दबाये जाते हैं उनपर बाधाओंकी प्रबलता और अवस्थाभेदोंके परिमाण लिख देते हैं।

हम इस बातको पहले भी बता चुके हैं, परन्तु इसके महत्वके कारण फिर इस लेखमें एक उदा-हरणके साथ दुबारा लिखते हैं, जिससे पाठकोंको कभी धोका न हो। वह बात यह है कि एम्पमापक सदैव उस चक्करमें, जिसमें धारा नापनी हो शृंखलाबद्ध होना चाहिये और वोल्टमापक चक्करके साथ हारबद्ध। इसका उल्टा कर देने से अर्थात् एम्पमापकको हारबद्ध और वोल्टमापक-को शृंखलाबद्ध करदेने से बड़ी भारी हानि पहुंच सकती है। जैसे एक जलते हुये बिजलीके लेम्पके साथ वोल्टमापक शृंखलाबद्ध कर देनेसे लेम्प तुरन्त गुल होजायगा और एम्पमापक हारबद्ध करनेसे केवल लेम्प ही गुल न होगा बल्कि सब फ्यूज़ें जलजला जायंगी और इससे अधिक

हानि भी पहुंचना सम्भव है। बात यह है कि एम्प-मापककी बाधा बहुत ही कम होती है, इसलिए उसको लेम्पके साथ हारबद्ध कर देनेसे चक्करकी बाधा बहुत ही कम होजाती है। इस कारण उसमें से ऐसी प्रबलधारा बहने लगती है कि सब फ्यूज़ (Fuse) उड़ जाते हैं। वोल्टमापकको लेम्पके साथ श्रृंखलाबद्ध करदेने से चक्करकी बाधा इतनी बढ़ जाती है कि लेम्पमें बहुतही कम धारा जाती है और लेम्प गुल हो जाता है किन्तु ऐसी अवस्थामें कोई चीज़ जलती नहीं। नीचे दिये हुए चित्र १३ में यह दिखलाया गया है कि एम्पमापक
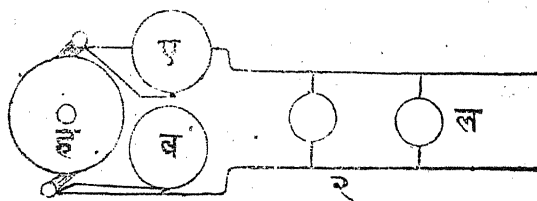
चित्र १३—ह—डैनेमो, ए—एम्प मापक, व—वोल्ट मापक और ल—लम्प है।

और वोल्टमापक किस प्रकार किसी चक्करमें जोड़े जाते हैं।

साधारण वायु

[ले०—डाक्टर बी० के० मित्र, एल० एम० एस]

प्राचीनोंने इसको भी एक तत्व माना था, परन्तु हम पहिलो परीक्षाओंसे देख चुके हैं कि एक अर्थमें वायु कोई मौलिक पदार्थ नहीं, बल्कि भिन्न भिन्न पदार्थोंकेएक विशेष मिश्रणका नाम है। जलको गरम करनेसे उसकी भाप बन जाती है। इसी तरह पारे और गंधकको भी तपानेसे वह भापके रूपमें बदल जाते हैं। अतएव वायु अनेक प्रकारके हो सकते हैं। परन्तु साधारणतः हम वायु उन पदार्थोंको कहते हैं, जोकि प्राकृतिक उत्तापसे वायवीय अवस्थामें मौजूद हैं। इसी-लिए जलकी वायवीय अवस्थाको हम वाष्प कहते हैं और गंधक तथा पारदकी वायवीय अवस्थाको खाली वायु नहीं कहते।

साधारण वायु वा हवा—यह कई प्रकारकी वायुओंका मिश्रण है, यौगिक पदार्थ नहीं है। इसके सिवाय इसमें कई और प्रकारके पदार्थ मल रूपसे सम्मिलित रहते हैं, जिनको हम इसका साधारण उपादान नहीं कह सकते। क्या आंधीकी हवामें जो धूल मिली रहती है उसको हवाका उपादान समझा जायगा? ऐसे स्थूल कणोंको छोड़कर भी विशुद्ध वायुके अन्दर कई पदार्थ मिले रहते हैं, जिनको हम कभी प्रयोगोंद्वारा प्रमाणित करनेका प्रयत्न करेंगे।

आपको याद होगा कि जिस पात्रके अन्दर बत्ती जल चुकती है, उसके अन्दरकी वायु साधारण वायुसे भिन्न होती है। आइये अब एक और घटनापर विचार करें। आपने पढ़ा होगा कि प्राचीन रीतिके वैद्य किसी किसी रोगमें रक्तमोक्षणके लिये 'अलाबु यन्त्र' लगाया करते थे। आजकल भी घरकी बड़ी बूढ़ियां पेटके दर्द-में पेटपर एक दीपक रखकर उसपर एक लोटा उलट देती हैं। गुरदेके दर्दमें डाक्टर लोग भी इसी प्रकार कांचके बर्तनोंसे 'कपिङ्ग' किया करते हैं। लोटा वा कांचका कटोरा शरीरमें सींगीकी तरह चिपट जानेसे ऐसा प्रतीत होता है कि आगने उसमेंसे कुछ भाग हवाका चूस लिया। अब इस विषयमें परिमाणात्मक रूपसे एक परीक्षा कर देखिये।

एक चीनी वा टीनकी छोटी सी थालीमें कोई दाहक पदार्थ जैसे गंधक वा फ़ासफ़ोरस रख कर उसको जला दो और उसके ऊपर एक चौड़े मुंहकी बड़ी बोतल या घण्टाकार वायुघट उलट कर उसका मुंह पानीपर टिका दो। आप देखेंगे कि फ़ासफोरस व गंधकके जल चुकनेसे पहिले ही वह बुझ जाता है और बोतल ठंडी होने-के अनन्तर उसके अन्दर उसके आयतनका प्रायः

Chemistry रसायन शास्त्र]

पांचवां भाग जल ऊपर चढ़ जाता है। अब यदि इस बोतलमें फिर गंधक, फ़ासफ़ोरस या मोमबत्ती प्रज्वलित अवस्थामें डाली जाय तो वह नहीं जलेगी और न उसमें चुहिया जी सकेगी। गंधक वा फ़ासफ़ोरसमें कर्बन न होनेसे वायु-घटके अन्दर कर्बनद्विओषिद पैदा नहीं हो सकती, जैसेकि मोमबत्ती जलानेसे होती है। अतएव दूसरी बार घड़ेके अन्दर बत्ती न जलनेका कारण कर्बनद्विओषिद नहीं बल्कि किसी पदार्थकी कमी है जोकि हवामें मौजूद है। इसका नाम महामति लेवोइज़ियरने "अम्लजन" (औक्सीजन) रखा था। गंधक, फ़ासफ़ोरस आदि जलनेके अनन्तर जो पदार्थ बनता है, उसके घोलको नीले लिटमस द्वारा देखनेसे पता लगेगा कि उसकी प्रतिक्रिया अम्लोंकी भांति है। हम आगे परीक्षा द्वारा दिखायेंगे कि यह संज्ञा ठीक नहीं, यहाँ आधुनिक रसायनके जन्मदाता भी भूल कर गये; तबभी क्या हम इससे उनका निरादर करते हैं?

हवाके अन्दर ओषजनके अतिरिक्त जो वायु प्रायः ८० प्रतिशत आयतनकी बाक़ी बचती है, और जिसमें बत्ती नहीं जल सकती या चुहिया नहीं जी सकती, उसको फ्रांसके रासायनिक अप्राणवायु कहते हैं, परन्तु यह उपादान शोरेके अन्दर मौजूद रहनेके कारण हम उसको नैट्रोजन अथवा नत्रजन कहेंगे।

इन दोनोंके अतिरिक्त हवामें थोड़ा सा (१००-००में ४ भाग) कर्बनद्विओषिद भी होता है। इसी कारण चूनेका पानी हांडोमें रख देनेसे भी उस पर मलाईका सा स्तर जम जाता है। यह खड़िया, कैलशियम कार्बनेत, है। फेंफड़ेकी हवासे (जिसमें ४% से भी अधिक कर्बनद्विओषिद रहता है) चूनेके पानीका दूधिया हो जाना भी इसी परिणामको पुष्ट करता है। चूनेसे जब हम दीवार चुनते हैं तब उसके अन्दर रेत वा सुर्खी मिला देते हैं, जिससे कि वह झिरझिरा रहे और हवाका कर्बनद्विओषिद इन छेदोंमें प्रवेश कर चूनेको सख़्त खड़ियामें परिवर्तित कर सके।

इसके सिवाय हवामें थोड़ी बहुत भाप भी होती है। आप बरफ़के पानीके ग्लासपर जो पसीना सा देखते हैं वह क्या है? वह हवाका जलीयवाष्प है, जो ठंडे पात्रपर हमारे सांसकी भापकी तरह जम जाती है। स्पष्ट है कि गरमियोंमें जलीयवाष्प हवामें बरसातसे कम होती है। यही कारण है कि बरसातके दिनोंमें नमक आप ही आप घुलने लगता है। जब हवामें जलीयवाष्प बहुत बढ़ जाती है तब ऐसा मालूम होता है कि जैसे दम घुटा जाता हो, और इसके बहुत कम होने से भी हवामें खुश्की आ जाती है।

पूर्वोक्त घटनाओंसे हम देखते हैं कि हवाका यह ओषजन भाग ही साधारण दाहक पदार्थोंको जलाने तथा प्राणियोंको जीवित रखनेमें सहायता देता है, इसीलिए किसी किसी रासायनिकने ओषजनको "प्राणवायु" भी कहा था। जैसे किसी चुहियाको पानीके अन्दर डुबो देनेसे वह मर जाती है, उसी प्रकार मोमबत्ती आदि दाहक पदार्थ नत्रजन में रखने से नहीं जल सकते। नत्रजन हवाका एक निष्क्रिय भाग है जो ओषजनसे मिलकर उसको हलका बना देता है। यदि हवामें ८० प्रतिशत नत्रजन न मिला रहता तो हमारी शारीरिक क्रियायें बड़ी शीघ्रतासे होतीं और हमारे घरके दीपक बड़ी तेज़ीसे जलते।

हवाके अन्दर कई प्रकारके वायु हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी और जलमें भी भिन्न भिन्न प्रकारके वायु पाये जाते हैं; जिनका वर्णन अन्यत्र किया जायगा। अब हम वायुके कुछ भौतिक गुण वर्णन करके इस अध्यायको समाप्त करेंगे।

हवाका कोई रंग नहीं है; पर हम उसको इसलिए भी नहीं देख सकते कि हम खुद हवाके अन्दर मौजूद हैं। पूर्वोक्त हवाओंके अतिरिक्त जो अन्य वायु पाई जाती हैं उनके अन्दर बहुत से सूक्ष्म

कण उड़ते रहते हैं, जिनको किसी अंधेरे कमरेमें छोटे छोटे छिद्रों द्वारा प्रवेश करनेवाली प्रकाशरश्मियोंके रास्तेमें देख सकते हैं इन्हें हम त्रसरेणु कहते हैं। इनमें पृथ्वीकी धूल, धुआँ, जन्तुओंकी त्वचाके कण, रुई, ऊन, सन आदिके तन्तु और अनेक प्रकारके अन्य पदार्थ सम्मिलित रहते हैं। पर इनमें सबसे अधिक हानिकारक पदार्थ अति सूक्ष्म जीवाणु हैं। हवाकी यह धूल यद्यपि हानिकारक है तथापि इससे कुछ लाभ भी हैं। इसके द्वारा सूर्य्यकी किरणें विकीर्ण (diffuse) होकर अधिक प्रकाश पैदा करती हैं।

हवा एक हलका पदार्थ है तथापि इसमें बोझ होता है। हमारे शरीरके चारों ओर बाहर अन्दर आगे पीछे ऊपर नीचे--हवा रहनेके कारण हम इसके भारको अनुभव नहीं करते। आपने कपिङ्गक्रियामें देखा होगा कि काँचके पात्रके अन्दर कितनी खाल घुस जाती है, उसका कारण यह है कि त्वचाके नीचेकी वायु शून्य कांच पात्रके अन्दर दबाव डालती है। एक और परीक्षा द्वारा भी यह बात दिखाई जा सकती है। एक गिलासमें पानी भर कर उसके मुंहके ऊपर एक छोटा कागज़ इस तरह रख दीजिये कि बीचमें ज़रा भी हवा न रहे। फिर सावधानीसे गिलास उलट देनेपर भी नीचेकी हवाके दबावसे न तो कागज़ छुटता है और न पानी ही गिरता है।

हवाके इस दबावको एक विशेष यन्त्र बैरोमीटर, भारमापकयंत्र, द्वारा नापा जाता है। इस यंत्रका वर्णन विज्ञान भाग १ संख्या ३ में १०४-१०८ पृष्ठोंपर किया जा चुका है।

हवा और अन्य वायवीय पदार्थोंका साधारण गुण यह है कि उनका कोई निश्चित आयतन नहीं होता। इसलिए बहुत थोड़ी हवाको बहुत बड़े पात्रमें तथा अधिक वायुको छोटेसे पात्रमें भरा जा सकता है।

एक पिचकारी लेकर इसके मुंहपर उँगली रखकर गट्टेको दबाइये तो उसके अन्दरकी हवा भिचकर पहलेसे थोड़ा स्थान घेर लेगी। इस अवस्थामें यदि पानीके अन्दर इसका मुह खोल दिया जाय तो दबावकी ज़्यादतीसे हवा बाहर निकलेगी और पानीमें बुलबुले बन जायंगे। परन्तु यदि गट्टा ऊपरकी ओर खींच लिया जाय तो पिचकारीके अन्दर हवाका दबाव इतना घट जाता है कि उसके अन्दर पानी आप ही खिंच जाता है।

पानीके इस प्रकार खिंच जानेको देखकर यूरोपके प्राचीन दार्शिनिकोंने इसका यह कारण बतलाया था कि नलीके अन्दर शून्य स्थान पैदा हो जानेसे जल ने उसपर अधिकार कर लिया। अतः उन्होंने यह मत स्थिर किया कि "प्रकृति किसी स्थानमें शून्य रहनेके विरुद्ध है"। परन्तु हम भारमापकयंत्रकी बनावटमें देख चुके हैं कि नलीके अन्दर पारेका चढ़ना हवाके दबावपर निर्भर है। पूर्वोक्त मतकी जगह अब हम यह कह सकते हैं कि "प्रकृतिको किसी विशेष स्थानपर असमान दबावसे द्वेष है"। दबावका सामंजस्य ही प्रकृतिका नियम है। वायवीय तथा तरल पदार्थोंके इसी गुणपर हमारी कितनी ही शारीरिक क्रियायें--श्वास प्रश्वास, रक्तसंचरणक्रिया, आदि निर्भर हैं। इसी गुणके आधार स्वरूप बहुत से यंत्र जैसे वायु निस्सारक, जलोत्तोलन, जलक्षेपक आदि बनाये गये हैं, जिनका व्यवहार प्रायः बहुत से आवश्यक कामोंमें देखनेमें आता है।

वायवीय पदार्थोंमें एक विचित्र गुण यह भी है कि भार होनेपर भी उनके कणोंमें (diffusibility) विकीर्ण शक्ति मौजूद है, जिसके कारण वह सदैव फैलना चाहते हैं। यदि एक बोतलमें आप तेल और जल मिलाकर रख दें तो वह सापेक्ष घनत्व जुदे जुदे होनेके कारण अलग अलग रहते हैं; यानी तेल पानीसे हलका होनेके कारण उतराता रहता है। पर वायुमें इससे बिलकुल विपरीत बात देखी जाती है। वह हलका भारीपन न मानकर थोड़ी सी देरमें मिलकर समान

घनत्वका मिश्रण पैदा कर लेती है। हलकी वायुकी विकीर्ण शक्ति भारीसे अधिक होती है।

वायुके इस मिश्रणगुणके कारण ही इसके उपादान पृथ्वी तलपर प्रायः सब जगह समान ही हैं। फेफड़ेसे निकली हुई दूषित और साफ़ हवाका भेद हम पहले ही बतला चुके हैं। सड़ने गलने वाली चीज़ोंमेंसे तथा चूनेके भट्ठे और शराब तथा अन्य प्रकारके कारखानोंसे कर्बनद्विओषिद आदि वायु निकलते रहते हैं, परन्तु हवामें मिलकर उनका एक समान मिश्रण बन जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि वायु कणोंकी इस विशेष शक्तिके अतिरिक्त वायु प्रवाह भी बहुत सहायता देता है, जिसका कारण हम पहले ही असमान दबावपर निर्भर होना बता चुके हैं।

रहनेके मकानोंमें विशुद्ध वायु पानेकेलिये हम वायुके इन तमाम गुणोंकी सहायता लेते हैं। वायुके प्रवाहकेलिए हम आमने सामने दरवाज़े रखते हैं, उत्तप्त वायुके निकासकेलिए ऊपरको रोशनदान, चिमनी आदि बनाते हैं, मिश्रणकेलिए पंखे चलाते हैं, इत्यादि। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि किवाड़ बन्द करके पंखे चलानेसे हवा शुद्ध नहीं होती, यद्यपि उससे पसीना सूखकर ठंडक भले ही हो जाती हो। हवाके आने जानेकेलिए अलग अलग मार्ग रहना ही अच्छा है। इसे हम एक छोटी सी परीक्षा द्वारा प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं।

एक रकाबीपर मोमबत्ती जमाकर उसको जला दो, ऊपरसे एक साधारण लम्बी चिमनी उसके ऊपर पकड़ो। आप देखेंगे कि वह और भी तेज़ीसे जल रही है, धुएँका नाम भी नहीं। कारण गरम हवा चिमनीके ऊपरसे हलकी होनेके कारण निकल जाती है और उसके स्थानमें हवा नीचेसे पहुंच कर बत्तीको जलानेमें भली भांति सहायता देती है। यदि रकाबीमें थोड़ा सा पानी डालकर चिमनीका तला उसमें ठहरा दिया जाय तो नीचेकी हवा न पहुंचनेसे बत्ती बुझ जायगी, पर यदि चिमनीके ऊपरके भागमें एक मोटे काग़ज़ वा टीनका परदा खड़ा कर दिया जाय तो एक तरफ़से गरम वायुके निकलने और दूसरी तरफ़से साफ़ हवाके आनेके कारण बत्ती जलती रहेगी।

आप पूछ सकते हैं कि कर्बनद्विओषिद जो भिन्न भिन्न रीतियोंसे पैदा होती रहती है, वह हवामें जमा होकर बढ़ती क्यों नहीं जाती? इसका कारण यह है कि यद्यपि पृथ्वीके सारे प्राणी उच्छ्वासक्रिया द्वारा कर्बनद्विओषिद हवामें छोड़ते रहते हैं, तथापि वनस्पतियोंमें एक विचित्र क्रिया यह है कि वह अपने शरीर संगठनके लिये हवामें से कर्बनद्विओषिदको अलग कर उसका कर्बन भाग लेलेती हैं और ओषजनको मुक्तकर देती हैं, इसी चक्रके चलते रहनेसे हमारा सांसारिक जीवन कायम है। यही कारण है कि खुली हवामें ओषजन और कर्बनद्विओषिदका अनुपात प्रायः समान ही रहता है।

वनस्पतियोंके विषयमें यहां यह भी कहना अनुचित न होगा कि वह जन्तुओंके मल मूत्र, आदिसे भी रासायनिक यौगिक संग्रह करके भिन्न भिन्न जैवयोगिक, जैसे, मांडशर्करा, तेल, तथा चरबी आदि पदार्थ पैदा कर लेते हैं, जिन्हें जीवजन्तु खाया करते हैं। अतएव वनस्पतियां जन्तुओंके खाद्य पदार्थ हैं। जीवधारियों और वनस्पतियोंके शरीर भी समान तत्वों (प्राचीनोंके पंच महाभूत) से बने हुए हैं।

उन्नतिका सिद्धान्त

[ले०—अध्यापक शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी.]

'अक्षर लिपि, चित्रकारी और मूर्त्तिनिर्माण'

ब हम लेखन शैली तथा अक्षरोंके रूपोंकी उत्पत्तिपर विचार करना चाहते हैं। मनुष्यके मुखसे निकली हुई सार्थक ध्वनिको सूचित करनेवाले सङ्केतोंका नाम अक्षर है। अक्षर लिपि,

Evolution विकाश]

चित्रकारी और मूर्त्तिनिर्माण (Sculpture) का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रारंभिक अवस्थामें यह तीनों ही गृह-निर्माण (Architecture) के मुख्य अङ्ग रहे हैं और प्रारंभिक शासन प्रणाली*से भी इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। हमें यह बात अक्षरविन्यास देखकर विदित हो सकती है कि ध्वन्यात्मक (Phonetic) अक्षरोंका विकाश पहिले पहल बड़े साधारण संकेतों द्वारा हुआ होगा। अपने इस कथनके प्रमाणमें हम अपने पाठकोंके समक्ष उन असभ्य जातियोंकी चित्रकलाका नमूना पेश करते हैं जो अबतक अक्षर लिखना नहीं जानती हैं और अपने घरों तथा मन्दिरोंकी दीवारोंपर चित्रों द्वारा बहुत से मनुष्यों और उनके प्रसिद्ध कार्यौंका उल्लेख किया करती हैं। आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिकाके आदिम निवासियोंके घरोंके चित्रोंको देखकर हमें कहना पड़ता है कि चित्रकला द्वारा ही अक्षर लिपिका विकाश होना संभव है। असीरियन (Assyrian) लोगोंमें भी राजादरबारके मुख्य मुख्य कार्य्यौंको दीवारोंपर अङ्कित करनेकी प्रथा प्रचलित थी और यह चित्र उसी प्रकार राजसी चिह्न माने जाते थे जैसे कि आजकल राजा महाराजाओंकी सवारीके साथ अर्दली, बाजा इत्यादि ठाठ बाटकी चीज़ें गिनी जाती हैं। इन चित्रोंके राजसी सम्बन्धका एक कारण यह भी है कि इन में प्रायः देवताओंके पूजन और बलिदानके दृश्य, नरेशोंकी दिग्विजय और शत्रुओंके परास्त होनेके चित्र, अङ्कित किये जाते थे। इसके अतिरिक्त एक कारण यह है कि उस समयके लोगों में इस कलाकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और इसके जाननेवालेका बड़ा आदर होता था। इस चित्रकारीकी प्रथासे धीरे धीरे लेखनकला (Ideographic) भाव-चित्रण रूप में परिवर्तित हो गई और इस रूपमें इसे व्यक्त करनेके लिए कितने ही सङ्केत आविष्कृत कर लिये गये। यही चित्रलिपिके विकाशका समय था। उत्तरी अमेरिकाके आदिम निवासियोंमें इसी चित्रलिपिका व्यवहार मौजूद था। इसके पश्चात् जैसे हम आजकल भी बहुत सी बातें लिखनेमें केवल सूक्ष्माक्षरोंका ही प्रयोग करते हैं ऐसे ही उस समयमें भी इन चित्रोंका सूक्ष्माकार रूप लेकर नये नये आकारके चित्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। मिश्र देशीय चित्रलिपिकी उत्पत्तिका भी यही इतिहास है। इसी प्रकार मेक्सिको निवासी (Mexican) लोगोंकी चित्रलिपिमें भी परिवर्तन होकर उनसे भाव प्रदर्शक आकारोंका आविष्कार हुआ और अन्तमें इनसे ध्वनियोंके साङ्केतिक चिह्न आविर्भूत हुये। मिश्र देशमें इस चित्रलिपिकी जगह कुछ कालके बाद साङ्केतिक लिपिका व्यवहार शुरू हो गया। इसके पश्चात् विशेष व्यक्तियोंके नाम लिखनेकेलिए ध्वन्यात्मक चिह्नोंका आविष्कार हुआ।

बहुत से विद्वानोंका मत है कि मिश्र वालोंको वर्णमाला बनानेमें सफलता प्राप्त नहीं हुई; परन्तु इस बातसे किसीको इनकार नहीं हो सकता है कि यह ध्वन्यात्मक चिह्न ही वर्णमालाके बीजारोपक थे। इन चिह्नोंके व्यवहारमें ही प्रत्येक सभ्य जातिकी जुदी जुदी वर्णमाला बनती गई और उन्होंने अपनी अपनी आवश्यकतानुसार प्रत्येक ध्वनिकेलिए नये नये चिह्न बनाना प्रारंभ कर दिया। अन्तमें लेखनकलासे मुद्रणकला का आविष्कार हुआ और प्रारंभिक अवस्थामें इसके अक्षरोंमें समानता रहते हुये भी आज दिन छापेके भी जुदे जुदे टाइप बन गये हैं।

इस प्रकार जब अक्षर-लिपिका विकाश होना प्रारंभ हुआ तो इनके प्रारंभिक रूप—चित्रों—में भी परिवर्तन-शीलता आनेसे मूर्त्तिनिर्माण और (Painting) आलेपनकला दो भिन्न भिन्न कलाओं-

* इस शासन प्रणालीको ईश्वर-शासन (Theocratic form of Govtt.) कहते हैं। इस प्रणालीके अनुसार सर्व शक्तिमान परमेश्वर ही अधीश्वर समझा जाता है और सारे क़ानून उसीकी आज्ञानुकूल माने जाते हैं।

की उत्पत्ति हो गई। आरंभिक अवस्थामें देवता, राजा, मनुष्य और जानवर इत्यादिके चित्र खींचनेमें दन्ताकार उठी हुई रेखायें खींची जाती थीं और उनपर रंग कर दिया जाता था। किसी किसी चित्रमें यह रेखायें बहुत गहरी खुदी होती थीं और चिन्हित वस्तु इतनी स्पष्टाकार बनी होती थी कि इसे हम खुदी हुई और (Intaglio and Bas Relief) कम उभरी हुई मूर्त्तियोंकी बीचकी अवस्था कह सकते हैं। अन्य चित्रोंमें इससे भी अधिक उन्नति पाई जाती है। इनके दन्ताकार उभरे हुये भागोंको काट, चित्रपर यथोचित रंगत फेरकर रंगीन उभरी मूर्त्ति बनादी है। सिडिनहम (Sydenham)में असीरियन इमारतोंकी उद्धार की हुई अवस्था देखकर हम कह सकते हैं कि उस समय भी इस कलाकी खूब उन्नति हो चली थी। यदि इन चित्रोंका रंग भद्दा है तो भी इनके अङ्कित करनेमें इनके शरीरके प्रत्येक भागको भली भांति सुडौल बनाया गया है। इसी प्रकार इन लोगोंके निर्माण किये हुये परदार शेर और बैलोंको देखकर इनकी उन्नतिका यथार्थ पता लग जाता है। यह बैल और शेर द्वारके फाटकके पास बनाये जाते थे और मकानकी शोभा बढ़ानेमें परम उपयोगी थे।

मिश्रमें मूर्त्ति-निर्माण-कला ने और भी अधिक उन्नति प्राप्त की। (British Museum) लंदनके कौतुकागारमें ऐसी बहुत सी मूर्त्तियां मौजूद हैं जिन्हें देखनेसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि इनके निर्माणमें पुरानी प्रथासे कुछ विभिन्नता आ गई थी। इन मूर्त्तियोंके केवल हाथ और पैर ही धड़में मिले हुये नहीं हैं वरन् इनका पिछला भाग सिरसे पैर तक पत्थर की शिलामें जुड़ा हुआ है, जिससे मालूम होता है कि इन मूर्त्तियोंको दीवारसे पृथक् बनानेकी शैली चल जानेपर भी अभी दीवारकी जगह पत्थरका सहारा लेना आवश्यक समझा जाता था। यूनान देशकी शिल्पकलामें भी इस परिवर्तनके चिह्न विद्यमान हैं। बड़े बड़े महलोंकी कारनिसोंपर यूनान देशके देवताओंके बलिदान, लड़ाई, खेल कूद और जुलूसोंकी बहुत सी रंगीन उभरी हुई मूर्त्तियां मौजूद हैं। गृह द्वारके ऊपरी भागपर भी देवी देवताओंके रंगबिरंगे चित्र खिंचे रहते थे और पत्थरोंकी जुदी जुदी मूर्त्तियां भी लगी रहती थीं। तात्पर्य्य यह है कि यूनानी सभ्यताके इस युगमें भी अभी आलेपन कला और मूर्त्ति-निर्माणकला पृथक् नहीं हो पाई थीं। यूरोपके अन्य देशोंकी शिल्पकलामें भी हमें इसी अवस्थाका आभास झलकता है। भारतीय शिल्पके प्राचीन केन्द्रोंमें भी मूर्त्तियां रंगीन ही पाई जाती हैं। ऐलोरा, कैलाश और ऐलीफेंटाकी गुफ़ाओंमें इसी प्रकारकी मूर्त्तियां विद्यमान हैं। इनकी चित्रकारी बहुत उत्तम होनेपर भी इनमें अभी नवीनताका प्रवेश बहुत कम हो पाया था। इस समयकी चित्रकलाके संबंध में एक विशेषता यह अवश्य है कि प्रायः सारी मूर्त्तियां धार्मिक आचार विचार और महात्माओंके कृत्योंकी ही मूर्त्तिवत स्मारक हैं। भारतवर्षकी गुफ़ाओं, स्तूपों और मन्दिरोंकी मूर्त्तियोंमें इसी धार्मिक लहरके चिह्न मौजूद हैं। मिश्र देशकी सूचियों (Pyramids) और ग्रीस देशके देवालयों, तथा समस्त यूरोपके गिरजोंमें क्राइस्ट, देवी मरियम, क्राइस्टके शिष्यगण, तथा फांसीका दृश्य इत्यादि-मूर्त्तियां देखकर यही कहना पड़ता है कि धार्मिकताकी प्रबल तरंग ही उस समय मानुषिक हृदयमें पूर्ण वेगसे प्रवेश करके समस्त कार्य्योंमें व्याप्त हो रही थी। उस समय इन चित्रोंकी बड़ी प्रतिष्ठा होती थी और सारे धर्मानुयायी सज्जन इनकी पूजा किया करते थे। इसके बादकी महात्मा क्राइस्ट, देवी मरियम आदिकी जितनी मूर्त्तियां उपलब्ध होती हैं वह सब रंगीन हैं। इससे स्पष्ट ही सिद्ध है कि मूर्त्ति-निर्माणकला और चित्र-कला दोनों ही इस समय तक एक थीं और इनमें विभिन्नताका प्रवेश नहीं हो पाया था। यूरोपीय चित्रकलाके विभिन्न हो जाने पर भी

इसका भाव राजकीय और धार्मिक ही रहा और रंगीन चित्रकारी देवालयों, प्रासादों और धार्मिक कथाओंके सुशोभित करनेमें भी उपयुक्त समझी जाती थी। आधुनिक युगमें परिवर्तन होते होते यह कलायें एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न हो गई हैं और इनका भाव भी सांसारिकताकी ओर प्रवृत्त हो गया है। इस विभिन्नताके उत्पन्न होते ही चित्र-कलाके बहुत से भेदोपभेद हो गये हैं! ऐतिहासिक, प्रादेशिक (Landscape), समुद्रीय, शिल्प विषयक (Genre), जीव जन्तु विषयक तथा स्थावर विषयक, चित्र कलायें आधुनिक युगमें ही निर्माणित हुई हैं। इसी प्रकार मूर्त्ति-निर्माण कलामें भी स्वाभाविक और काल्पनिक आदि भावोंके समावेशसे अनेकों विभिन्नताएं उत्पन्न हो गई हैं।

उपरोक्त विवेचनासे स्पष्ट होगया कि प्रारंभिक अवस्थामें देवालयों और राज प्रासादोंको सुशोभित करनेकेलिए ही लेखन कलाका प्रादुर्भाव हुआ था। अथवा प्राचीन लेखन कलाके प्राथमिक भाव राजकीय और धार्मिक दोनों ही थे। सैकड़ों बरसोंके परिवर्तनके कारण अब उनमें इतनी विभिन्नता उत्पन्न हो गई है कि उनकी प्राचीन समानता खोजनेकेलिए बड़े परिश्रम और अनुभवकी आवश्यकता है। वास्तविक दृष्टिसे सरस्वती देवीके चित्रमें और श्री मद्भगवद्गीताकी पुस्तकमें बड़ी दूरकी समानता मौजूद है, क्योंकि दोनों ही लेखन कलाके रूपान्तर हैं। इसी प्रकार डाकखाने की मुहरकी छाप, "विज्ञान" के चित्रोंके ब्लाक और अन्य चिट्ठियोंके अक्षरोंमें भी केवल इसी रूपान्तरका प्राबल्य है। गिरजेघरकी चित्राङ्कित खिड़की, बाइबिलकी पुस्तक और महात्मा क्राइस्टकी मूर्त्तिमें भी इसी रूपान्तरने समानताका नाम निशान मिटा डाला है। इसी प्रकार हमारे सिक्कोंपर राजराजेश्वरकी मूर्त्ति, बाज़ारकी दूकानोंपर सचित्र विज्ञापन, गाड़ियोंके दरवाज़ोंपर कुलध्वजा* और रेल ट्राम इत्यादिके भीतर घोषणापत्र, गुड़ियों और काग़ज़के फूल पत्तों इत्यादिसे बहुत विभिन्न नहीं हैं! क्योंकि यह सब भिन्न भिन्न चीज़ें प्राचीन समयकी उसी लेखन कलाके रूपान्तर हैं जिसके द्वारा उस समयके नरेशोंकी दिग्विजय और मान प्रतिष्ठाकी घोषणा की जाती थी। समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होनेका इससे अधिक जीवित उदाहरण शायद ही उपलब्ध हो सकेगा।

हमारे इस सिद्धान्तका उदाहरण इन कलाओंके विभिन्न होनेमें ही नहीं वरन् उनके प्रत्येक कार्य में देदीप्यमान हो रहा है। आजकलके चित्रों और मूर्त्तियोंमें प्राचीन समयकी अपेक्षा आकाश पातालका अंतर पड़ गया है। मिश्र देशके प्राचीन दीवारकी चित्रकारीमें सब वस्तुओंके चित्र इस प्रकार अङ्कित किये जाते थे कि वह दर्शकोंकी निगाहमें एक ही दूरीपर बने हुये प्रतीत होते थे। इन चित्रोंसे आज कलके चित्र बहुत ही विभिन्न हैं, क्योंकि उनमें प्रत्येक वस्तुकी दूरी जुदी जुदी रहती है। इसी प्रकार इन चित्रोंमें सब स्थानोंपर प्रकाशका एक सा ही प्रभाव पड़ता है, पर आधुनिक शैलीके अनुसार चित्रके प्रत्येक भागपर प्रकाशकी न्यूनाधिकता दिखलाना ही श्रेय समझा जाता है। यह दूसरी विभिन्नता है। इसी प्रकार उस समयकी चित्रकारीमें प्रारंभिक रंगोंका उनकी पूर्ण भड़कके साथ प्रयोग होता था, परन्तु अर्वाचीन चित्रकलामें प्रारंभिक रंगोंको बहुत ही कम काममें लाकर, बहुत ही हलके और संयुक्त रंगोंका उपयोग करते हैं। यह तीसरी भिन्नता हुई।

---

*इङ्गलैण्ड इत्यादि यूरोपीय देशोंमें प्रत्येक प्रतिष्ठित लार्डकी जुदी जुदी कुलध्वजाएं होती हैं और यह इन लोगोंकी गाड़ियों पर, नौकरोंकी चपरासपर तथा उनके प्रासादोंके दरवाज़ों और झण्डोंपर अंकित रहती हैं। प्राचीन भारतमें भी श्री राम अर्जुन, भीष्म, करण और आधुनिक समयके राजाओंकी कुल ध्वजाएं जुदी जुदी हैं।

इसके भी अतिरिक्त उस युगके सारे चित्रोंमें एक ही प्रकारकी कल्पनाका उदाहरण मिलता है, क्योंकि घोड़ेका चित्र जहां कहीं भी खिंचा हुआ मिलेगा उसके रूप, रंग, चाल ढाल इत्यादि बातोंमें तिल भरका भी अन्तर मालूम न हो सकेगा। मिश्र देशमें तो इन चित्रोंके अङ्कित करनेके नियम इतने दृढ़ हो गये थे कि उनमें किसी प्रकारका परिवर्तन उत्पन्न करना पाप समझा जाता था! इसी प्रकार असीरियाकी कम उभरी हुई मूर्त्तियों (Bas Reliefs) में भी देवी देवता, राजा, रंक, नौकर, चाकर, गन्धर्व किन्नर और जीव-जन्तुओं तकके चित्रोंमें एकसा ही पहराव, चाल ढाल, सूरत शकल देखनेमें आती है। उदाहरणार्थ यदि किसी चित्रमें खजूरके जंगलका दृश्य अङ्कित है तो सब वृक्षोंकी एक ही ऊँचाई होगी, उनकी पत्तियोंकी दूरी और यहां तक कि तादाद भी एक ही रहेगी! पानीका बहाव दिखलानेमें सब लहरें एक ही तरफ़को झुकी हुई होंगी और मछलियां भी एक ही तरहकी तथा समान दूरीपर बनी होंगी। इसी प्रकार राजाओं, देवताओं और गन्धर्वोंकी डाढ़ीके बाल सदैव एक से ही बनते थे और घोड़ों और शेरोंकी अयालमें कोई भेद नहीं रहता था। सब चित्रोंके बनानेमें बालोंमें एक ही तरहकी घूम रखी जाती थी और राजाओंकी डाढ़ीके बालोंके गुच्छे बैलोंकी पूंछके गुच्छोंसे अधिक सादृश्य रखते थे! यूरोपीय चित्रकलामें वह सब बातें ज्योंकी त्यों विद्यमान थीं। पर आज कलके चित्रोंकी बनावट, रंग, रूप और सफ़ाई देखकर तथा उनकी प्रत्येक बातमें विभिन्नता और अन्तर पाकर हमें विवश हो कहना पड़ेगा कि इन चित्रोंकी अपेक्षा पहिले चित्रों में सदृशताकी बहुत बड़ी मात्रा पाई जाती है।

इसी प्रकार यदि हम प्राचीन मिश्रकी किसी मूर्त्तिका निरीक्षण करें तो हमें पता चलेगा कि वह बिलकुल तनी हुई एक पत्थरके टुकड़े पर बैठी हुई है, हाथ घुटनोंपर रखे हुये हैं, उंगलियां सीधी और समानान्तर हैं, आंखें सामनेकी ओर देख रही हैं और दोनों भुजाएँ बिल्कुल एक सी हैं। अब इसके साथ किसी आजकलकी बनी हुई मूर्त्तिकी तुलना कीजिये तो विदित होगा कि सिरसे पैरतक इसके अंग प्रत्यंगका एक एक भाग मानों सांचेमें ढला हुआ है। पहरावा, सूरत शकल बाल, डाढ़ी, मूंछ इत्यादि सभीमें अन्तर मौजूद है। अतः समानतासे विभिन्नतामें परिवर्तन होनेका यह भी एक मूर्त्तिमान प्रमाण मौजूद है।

"काव्य, गायन और नृत्य कलाएँ"

काव्य, गान और नृत्य कलाओंका भी उद्गम स्थान एक ही है, परन्तु इसी परिवर्तनशीलताके कारण यह तीनों कलाएँ जुदी जुदी हो गई हैं। प्रारंभिक कालमें सुर, गान और नृत्य इन तीनोंकी तालें एकही समझी जाती थीं। उस समय इनमें कोई भेद उत्पन्न नहीं हो पाया था। बहुत सी असभ्य और जंगली जातियोंमें अब भी हम इन तीनों कलाओंको संयुक्त पा सकते हैं। इन लोगोंके नृत्यमें अभिन्न स्वरोंके रागोंके साथ, तालियोंका ठेका और रूखे या कर्णकटु स्वरोंका भद्दा बाजा बजाया जाता है। जिसका आशय यही हो सकता है कि इन लोगोंके गान और सुरोंके साथ ही तालबद्ध नृत्य होता है। आधुनिक सभ्य तथा प्राचीन गौरवान्वित जातियोंके इतिहाससे भी विदित होता है कि उन लोगोंमें धार्मिक अधिवेशनोंके अवसरपर इन तीनों कलाओंका एकही साथ प्रयोग होता था। (Hebrew) हीब्रू ग्रंथोंके देखनेसे पता चलता है कि जब मूसाको मिश्र वालोंपर विजय प्राप्त हुई तो उन्होंने एक विजय काव्य बनाकर उसे झांझोंकी ताल और नृत्यके साथ गवाया था। इसराईलके वंशजोंने स्वर्णके बछड़ेकी प्रतिष्ठाके अवसरपर भी इसी प्रकार नृत्य और गान किया था। बहुत से विद्वानोंके मतानुसार देवताओंकी मूर्त्ति जानवरोंके सदृश बनानेकी प्रथा इन लोगोंमें एपिस (Apis)* देवताकी मूर्त्ति देख कर ही प्रच-

*प्राचीन समयमें मिश्र देशमें एपिस नामके देवताकी मूर्त्ति

लित हुई थी और मिश्र वालोंसे ही इन लोगोंने इस अवसर पर नाचना, गाना सीखा था। भारतवर्षमें भी शिवजीका तांडव नृत्य तथा वेद गायन इसी विचारकी पुष्टि करते हैं। ईरानमें भी इसी प्रकार इस समयके ग्रंथोंसे पता चलता है कि ग्रीस देशमें नये नये प्रकारके बाजोंका प्रयोग प्रारंभ हो गया था; अतः इससे स्पष्ट ही विदित है कि संगीतमें भी अब विभिन्नता प्रारंभ हो चुकी थी। भारतवर्षमें भी काव्य, संगीत और नृत्य कलाएं जुदी जुदी हो गई, परन्तु संगीत और काव्यमें यहां आज दिन तक प्रगाढ़ ऐक्य बना रहा। इस एकताका सबसे प्रधान कारण हमारे देशकी भाषाकी सरसता और मधुरता ही है। हिन्दीमें खड़ी बोलीकी कविता प्रचलित होनेसे ही हमारी भाषामें भी काव्य और संगीतका भेद अब प्रतीत होने लग गया है। इस नये परिवर्तनका कारण मुख्यतः अंग्रेज़ी साहित्यका प्रभाव ही है। ग्रीस देशमें इस नये परिवर्तनसे काव्यकी धर्म भावुकताका भी धीरे धीरे लोप होता चला गया और आधुनिक यूरोपीय साहित्यके अंकुर निकलने प्रारंभ हो गये। यूरोपके अन्य देशोंके इतिहास द्वारा भी इन्हीं विचारोंका समर्थन होता है। माध्यमिक कालीन अंग्रेज़ी भाट अपनी वीररस पूर्ण कविता सारंगीपर गाकर सुनाया करते थे। सारांश यह है कि इन तीनों कलाओंके एक होते हुये भी समयानुसार इनमें विभिन्नता उत्पन्न होकर अलग अलग कला बन जाना, तथा प्रत्येक कलाके भी भेदोपभेद हो कर उसके अन्यान्य (differentiations) भेद प्रभेद हो जाना हमारे उपरोक्त सिद्धान्तको ही पुष्ट करता है।

इन कलाओंमें से प्रत्येक कलाके विकाशमें इसी परिवर्तनके चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। नृत्य कलाकी साधारण रीतिपर १४ वृत्तियां होती हैं, काव्यके नौ रस और आठ अलंकार होते हैं। इसी प्रकार इनके पुनः कितने ही भाग विभाग होते चले गये हैं। हम अपने सिद्धान्तके विशेष समर्थनके लिये संगीतके विकाशपर ही विचार प्रकट करेंगे। आधुनिक जंगली जातियोंके बाजोंको देखकर हम अनुमान कर सकते हैं कि प्रारंभिक युगमें यह सब बाजे समाघातक (Percussive) श्रेणीके थे। इस प्रकारके बाजोंमें डंडे, डफ़, खंजरी और ढोलक, इत्यादि आजतक काममें लाये जाते हैं। इन बाजोंको केवल ताल देने के लिए निर्माण किया गया था। अतः इस अवस्थामें इन बाजोंकी ध्वनि एक ही प्रकार की होती थी। मिश्र देश वासी तीन तारका वीणा बजाया करते थे और ग्रीक लोग चारतारोंका चैताला बजाते थे। भारतवर्षके शंख और भेरी बड़े प्राचीन बाजे हैं। इसके पश्चात् वीणाका प्रादुर्भाव हुआ। यहां इकतारे से बढ़ते बढ़ते बेला, सारंगी, सितार जैसे विषम बाजोंका निर्माण ही नहीं हुआ, वरन् समय समय पर यहां ऐसे ऐसे उत्तम संगीतज्ञ उत्पन्न होते रहे हैं कि संसारके अन्यदेशोंमें ऐसे अधिक उदाहरण मिलना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। यूरोपीय देशोंमें भी देवताओं और योधाओंकी कीर्तिस्मरणार्थ इसी प्रकारके नृत्य और गान हुआ करते थे! स्पारटन लोग भी गानके साथ नृत्य किया करते थे। यूनानियोंके सभी उत्सवोंपर गाना और नाचना परमावश्यक समझा जाता था। भारतवर्षके मेलों तमाशों और अन्य उत्सवोंपर अब भी नाच और गाना अनिवार्य्य है। प्राचीन रोमन लोगोंमें भी यह प्रथा खूब प्रचलित थी। इसके पश्चात् प्राचीन और अर्वाचीन यूरोपमें भी यह प्रथा अपना प्रभाव जमाये हुये है। ग्रीस देशके इतिहाससे पता चलता है कि वहां ही इन कलाओंका प्रथकरण प्रारंभ हुआ और इनके धार्मिक भावों-

बैलके सदृश बनाई जाती थी और बैलोंको इस देवताका अवतार माना जाता था! जिस बैलकी इस प्रकार पूजा की जाती थी उसे २५ वर्ष पश्चात् बलिदान करनेपर बड़े समारोहके साथ गाड़ दिया जाता था।

में भी धक्का लगा। भारतवर्षमें इसके पूर्व ही गान और नृत्य कलाओंकी इतनी अधिक उन्नति हुई और काव्यको तो इतना परिष्कृत किया गया कि आज तक किसी अन्य देशमें इन कलाओंको ऐसी उन्नति प्राप्त ही नहीं है। संभवतः प्रत्येक अवसरपर नवीन प्रकारके नृत्यकी प्रथा चल जानेके कारण ही बहुत सी जंगली जातियोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके रणनृत्य (War Dances) प्रचलित हो गये हैं। इसी समय काव्य और गान कला संयुक्त रहते हुये भी नृत्यकलासे बहुत कुछ पृथक् हो गईं। प्राचीन युगमें ग्रीक लोगोंमें गाकर ही कविता पढ़ी जाती थी। हमारे देशमें अबतक बिना गाये बहुत सी कविताओंका माधुर्य्य जाता रहता है। बृजभाषामें विशेष रूपसे छन्द और संगीत शास्त्रोंका संमिश्रण मौजूद है। रस, ध्वनि और अलंकार काव्यांग माननेसे ही स्पष्ट विदित हैं कि हमारे यहां काव्य और संगीतका बहुत घनिष्ठ संबंध है। ग्रीस देशमें कविता गान करनेपर अन्य लोग बाजोंकी ध्वनिके साथ कीर्तन किया करते थे और प्रायः मंडली बनाकर नाचा करते थे। परन्तु धीरे धीरे वहां भी इस प्रथाका लोप होता गया और नृत्यकला कविता और संगीतसे बिल्कुल पृथक् हो गई। कुछ समय पश्चात् कविताके भी दो विभाग हो गये। एक गीत काव्य (Lyrics) और दूसरी महाकाव्य (Epic)। महाकाव्यको साधारणतया पढ़ा जाता है और गीत काव्य गाया जाता है। इसी समयसे वास्तविक काव्यका प्रादुर्भाव हुआ। सात और आठ तारके वीणोंका प्रयोग जारी हो गया था। और एक हज़ार वर्षके पश्चात् यहांके बहुतसे देशोंमें द्विअष्टक (Double Octave) यंत्रोंका आविर्भाव हुआ। इस परिवर्तनका फल यह हुआ कि संगीत कलाकी विभिन्नताको मात्रामें वृद्धि हो गई। इसके पश्चात् इन बाजोंके सुरोंके आधारपर प्रायः पन्द्रह तरहके नये नये राग बन गये। (यूरोपमें इन रागोंके नाम Doiran, Ionian, Phrygian Æolian, Lydian इत्यादि हैं)। परन्तु अभी तक तालमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। इस समयके संगीतमें (Monotony) स्वरभेदाभाव अधिक था; क्योंकि बाजोंका आधार साधारण गान था और यह गान प्रायः वही आदमी गाता था जिसने उसे बनाया था, इसलिये वह उसके ताल स्वर इत्यादिमें अपनी योग्यताके अनुसार हेरफेर कर सकता था। अतः उस समयके संगीतमें बहुत कुछ समानता मौजूद थी। इन बाजोंके स्वर भी बहुत सीधे होते थे और अर्वाचीन चाबीदार बाजों (Keyed instruments) की अपेक्षा इनमें संयुक्त और विषम स्वरतालका अभाव था! इसके पश्चात् नये नये बाजोंके आविष्कारसे तथा उनमें नये नये ताल, स्वर और मीड़ (mede) बजानेकी सुविधा हो जानेसे संगीत कलामें अब बहुत अधिक विभिन्नता उत्पन्न हो गई है।

इस युगके यूरोपीय संगीतमें स्वरमाधुर्य ही (harmony) अधिक मौजूद था परन्तु उसमें स्वरैक्य (melody) की नितांत कमी थी। परन्तु कुछ काल पर्य्यन्त यूरोपके गिरजोंमें गानेकी एक नई शैली प्रचलित होने लगी। इसके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारके बाजोंमें एक ही राग बजानेका प्रयत्न किया जाने लगा और इस युक्तिसे स्वरों की एकता प्राप्त करनेको चेष्टा की गई! इस प्रकार के रागका नाम फ्यूग (Fugue) * है। इस समयके राग बहुत साधारण थे उनके ताल और स्वर भी इतने शीघ्र नहीं बजाये जा सकते थे। अतः उस समय फ्यूग बजानेमें बड़ी कठिनाइयां उपस्थित होती थीं और बहुत ही थोड़े मनुष्य इस रागको अच्छी तरह बजा सकते थे। परन्तु यह नया राग

*फ्यूग ऐसे संगीतको कहते हैं जिसके एक अन्तरे को एक मनुष्य गाता है और दूसरेको दूसरा। यह बहुत शीघ्रतासे नाटकोंमें गाया जाता है। एक पात्रका अंतरा समाप्त होते ही दूसरा उसके उत्तरमें झट दूसरा अंतरा गाने लगता है।

उस समय ऐसा लोकप्रिय हुआ कि इसके गाने और बजानेकी प्रथा ख़ूब प्रचलित होने लगी। इसके बाद तीन-चार जुदे जुदे बाजोंमेंसे वही सुरताल बजाकर (Concert) कन्सर्ट बजानेका नया शौक़ पैदा हुआ। पर इस समयके यूरोपीय संगीतमें जो कृत्रिमता तथा अस्वभाविकता आनी प्रारंभ होगई, उसका मुख्यकारण यही (Keyed Instruments) चाबीदार बाजे हैं। इन बाजोंमें सबसे बड़ा दोष यह होता है कि इनके स्वर निश्चित और एक विशेष रूपसे सारी सरगमपर इस प्रकार यथा स्थान सन्निविष्ट कर दिये जाते हैं जिससे इन चाबीदार बाजोंके स्वरोंकी कमी पूरी होकर बाजेके बोल बिना कर्णकटु हुये सब सुरोंमें बजाये जा सकते हैं। इन दोषोंके कारण यह बाजे मनुष्यके गलेके उतार चढ़ावके बोलोंका साथ नहीं दे सकते हैं। इसलिये इन बाजोंपर गाने वाले मनुष्योंको अपने स्वाभाविक बोलोंमें बहुतसी तोड़ मरोड़कर परिवर्तन करना पड़ता है। इन अस्वाभाविक बोलोंमें गाते गाते इन गवैयोंको स्वाभाविक स्वरोंका ज्ञान जाता रहता है। यही कारण है कि हमारे देशके अच्छे अच्छे गायन पियानो और हारमोनियमपर गाना पसन्द नहीं करते हैं और उन्हें बेसुरा और भद्दा बाजा कहनेसे भी नहीं चूकते। आधुनिक भारतीय संगीतपर जो बुरा प्रभाव हारमोनियम द्वारा पड़ रहा है उसके रोकनेका शीघ्र प्रयत्न किया जाना चाहिये। इस बाजेके दिनोंदिन बढ़ते हुये प्रचारसे भारतीय संगीतमें बहुत कृत्रिमता आती जाती है और हमारी इस परमोन्नत कलाका ह्रास प्रारम्भ हो गया है। इसलिये इस तरफ़ शीघ्र ही ध्यान देना परमकर्तव्य है।

कृषि तथा व्यवसाय

[ले०—प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार]

सार्वभौमिक विचारसे किसी देशके कृषिप्रधान या व्यवसायप्रधान होनेमें कोई विशेष भेद नहीं पड़ता है। प्रकृतिवादियोंने इसके साथमें स्वाभाविक नियमको लगा करके व्यवसायकी अपेक्षा कृषिको उत्तम प्रकट किया था। जातीय विचारसे कृषि तथा व्यवसायमें बड़ा भेद है जो इस प्रकार दिखाया जा सकता है। किसी भी कृषिप्रधान देशमें जनताकी मानसिक, आत्मिक तथा शारीरिक उन्नतिका लोप हो जाता है। भीरुता, अनुदारता, दुर्बलता, अज्ञान, परतंत्रता तथा दरिद्रता कृषिप्रधान देशोंमें ही अपना निवासस्थान बनाती हैं। परन्तु व्यवसायप्रधान देशोंके साथ यह बात नहीं है। इन देशोंमें जनताकी मानसिक शक्ति विकसित हो जाती है, वह साहस तथा निर्भयताके केन्द्र हो जाते हैं और स्वतंत्रता तथा समृद्धि भी उनमें दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यह क्यों? यह इसलिए कि कृषक तथा व्यवसायियोंके कार्योंमें विभिन्नता है, जिसका प्रभाव उनके आचार व्यवहार तथा स्वभावपर विचित्र विधिसे पड़ता है। कृषक अपने अपने खेतोंपर काम करते हैं। किसी एक ही खेतपर सब मिलकर काम नहीं कर सकते। परिमाण इसका यह होता है कि उनको मिलकर काम करनेका अवसर न मिलनेसे उनमेंसे सहकारिताकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। कृषिकार्य विचित्र है। सभ्यताके प्रारंभमें जो एक कृषक उत्पन्न करता है वही दूसरा, इसलिए लाभ भी सब कृषकोंको प्रायः एक सदृश ही होता है। समाजोन्नतिकी इस अवस्थामें जो पदार्थ वह उत्पन्न करते हैं उसका उपभोग भी स्वयं ही करते हैं। उनको अपने कृषि-पदार्थ जनताके हाथ बेचनेकी बहुत कम आवश्यकता होती है। इसी कारण बाज़ारके उतार चढ़ावका

Economics अर्थ शास्त्र]

उनपर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। कृषकोंको बहुत समयके बाद अपने प्रयत्नका फल मिलता है। फलका मिलना या न मिलना वृष्टि आदि प्राकृतिक घटनाओंपर निर्भर करता है। इसमें वह स्वतः निःशक्त है। वह जो कुछ कर सकता है वह यही है कि ईश्वरकी प्रार्थना करे और फल प्राप्तिकी प्रतीक्षा करता रहे। इसका उसके स्वभावपर बड़ा भयंकर प्रभाव पड़ता है। उसमें प्रमाद, आलस्य, भाग्य पर भरोसा करना आदि दोष सदाके-लिए आजाते हैं, जिनका प्रभाव किसी भी समाज-की उन्नतिके लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। कृषिकार्य ही ऐसा है जिसमें किसीकी मानसिक तथा शारीरिक उन्नतिकी कुछ भी संभावना नहीं है। एक कृषक जो कुछ करता है वह वही कार्य है जो उसके पिता पितामह आदि चिरकालसे करते आये थे। एक ही परिवारमें रहनेसे भिन्न भिन्न विचार तथा स्वभाववाले व्यक्तियोंसे उसका मेल जोल बहुत कम होता है। नये नये आविष्कार तथा विचारके लिये उसमें प्रवृत्ति ही नहीं होती। जन्मसे मृत्यु पर्यन्त उन्हीं व्यक्तियों के साथ उसको अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। मानसिक तथा शारीरिक उन्नति किस प्रकार की जा सकती है, यह जाननेका उसको अवसर नहीं मिलता। सारांश यह है कि कृषि व्यवसाय ही ऐसा है जिसमें किसी प्रकार-की भी उन्नतिकी संभावना करना वृथा है। दरिद्रता, अज्ञता तथा भीरुताका यदि किसी व्यवसायमें निवास है तो वह कृषि ही है। अंग्रेज़ी राज्य भारतको कृषिप्रधानदेश बनाना चाहता है। इससे भारतकी क्या दशा हो जायगी, इसका पाठकगण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। किसी देशमें कृषिका होना बुरा नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह तभीतक जबतक कि उसके व्यवसाय सुसमृद्ध दशामें हों। व्यवसाय रहित होकर एकमात्र कृषिप्रधान देश होना किसी भी देशके लिये अत्यन्त भयंकर घटना है। जातिके प्रत्येक व्यक्तिका मर जाना उत्तम है, परन्तु अपने देशको केवल कृषिप्रधान होनेसे न रोकना बुरा है। व्यवसायप्रधानहोते हुए किसी जातिका कृषिप्रधान होना अत्यन्त उत्तम बात है। इसीसे जातियां स्वावलम्बी बनती हैं। किसी जातिके व्यवसायप्रधान होते ही कृषिके बहुत से दोष नष्ट हो जाते हैं। इसका कारण व्यवसायके अपूर्व गुण ही हैं।

कारखानोंमें कार्य मिलकर करना पड़ता है। कृषिकी तरह पृथक् पृथक् काम करना उसमें कठिन है। इससे शिल्प व्यवसायियोंका जीवन सामाजिक जीवन होता है। अपनी स्वतन्त्र आय होने से उनमें निर्भयता के अंकुर निकल आते हैं। जो पदार्थ वह अपने कारखानोंमें बनाते हैं उसका वह स्वयं प्रयोग नहीं कर सकते। इससे उनको उस पदार्थके विनिमय या बिक्रीकी चिन्ता करनी पड़ती है। देश विदेशमें भ्रमण करना उनके लिए स्वाभाविक हो जाता है। इस अवस्थामें उनमें प्रमाद और आलस्यका न होना सर्वथा संभव है। यही नहीं। व्यवसायमें प्रतिस्पर्धा भी होती है। प्रत्येक व्यवसायी यह समझता है कि यदि वह अपने कार्यमें सफल हो गया तो वह अतिशय समृद्ध हो जायगा और यदि वह सफल न हो सका तो उसको दरिद्रतामें जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। इसी कारणसे प्रत्येक व्यवसायी नये नये आविष्कार तथा बड़े बड़े साहसके काम करनेपर तैयार रहता है। उसका संपूर्ण जीवन, चिन्ता तथा साहसमें ही गुज़रता है। सारांश यह है कि व्यवसाय वस्तु ही ऐसी है जिसके द्वारा जनताके प्रत्येक व्यक्तिमें साहस, अप्रमाद, उत्साह, निर्भयता तथा स्वतन्त्रताके भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

व्यवसाय तथा कृषिपर यदि एक दृष्टि डाली जाय तो पता लगेगा कि व्यवसाय संबंधी कार्योंमें कृषिकी अपेक्षा अधिक चातुर्य तथा बुद्धिमत्ताकी आवश्यकता होती है। एडम स्मिथने यहां पर भी

ग़लती की। वह कहता है कि व्यवसायकी अपेक्षा कृषिमें अधिक चतुरता तथा बुद्धिबलकी आवश्यकता होती है। उसके इस कथनका खण्डन करना बिलकुल सहज है। हर आदमी जान सकता है कि घड़ी बनानेमें अधिक बुद्धि तथा शिक्षाकी आवश्यकता है या एक खेतके जोतने तथा बीज बोनेमें। इसमें संदेह नहीं है कि व्यवसायियोंकी अपेक्षा कृषकोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, क्योंकि वह साफ़ वायुमें निवास करते हैं। परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं है कि व्यवसायी पुरुष बुद्धि तथा विचारमें कृषकोंकी अपेक्षा सहस्रों गुने अधिक बढ़े हुए होते हैं। क्योंकि उनकी जीविका तथा कार्यक्षेत्र उनकी बुद्धि तथा चतुरता का फल स्वरूप है।

व्यवसाय ही पदार्थविज्ञान तथा कलाकौशलका उद्भवस्रोत है। कृषि जन्य पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें बहुत कम विज्ञान तथा कलाकौशलकी आवश्यकता होती है। परन्तु व्यवसायिक पदार्थोंका उत्पन्न करना ही पदार्थविज्ञान तथा कलाकौशल पर निर्भर करता है। इन्हीं कारणों से व्यवसाय सम्पन्न देशोंमें जनताका पदार्थविज्ञान तथा कलाकौशलके प्रति बहुत प्रेम होता है। पदार्थविज्ञान तथा व्यवसायोंके मेलसे उस 'यंत्रशक्ति' (The power of machinery) का उद्भव हुआ है जिससे सम्पूर्ण सभ्य संसारमें एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न है। आगे चल कर संपत्तिशास्त्रमें यह विस्तृत तौरपर दिखानेका प्रयत्न किया जायगा कि 'यंत्रशक्ति' से कृषिमें बहुत काम नहीं लिया जा सकता। जो काम अभी तक लिया भी जा रहा है उससे भी अधिक फलकी कुछ आशा नहीं है। परन्तु व्यवसायोंमें यह बात नहीं हो सकती। व्यवसायोंमें यंत्रशक्तिने जिस सफलतासे काम किया है वह आशातीत कही जा सकती है। इस प्रकरणके आरम्भ करनेसे जो कुछ हमारा तात्पर्य्य है वह यही है कि व्यवसायिक जातिमें यंत्रशक्तिके प्रयोगकी अधिक संभावना है, परन्तु कृषिप्रधान जातिमें यह संभव नहीं है। इससे कृषिप्रधान तथा व्यवसायप्रधान जातियोंकी शक्तिमें बड़ा भारी अन्तर उपस्थित हो जाता है। व्यवसायी जातियां यंत्रशक्तिके सहारे बड़ी शक्तिशाली हो जाती हैं, परन्तु कृषक जातियां यंत्रशक्तिका अवलम्बन न कर सकनेके कारण निःशक्त हो जाती हैं। यही नहीं, यंत्रशक्ति जब विनिमयके साधनोंके साथ जोड़ी जाती है तब व्यवसायी देश कृषिप्रधान देशोंकी अपेक्षा शक्तिमें सैकड़ों गुणा बढ़ जाते हैं। नहरों, रेलों तथा हवाई जहाज़ोंका कलशक्तिके साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह पाठकोंपर स्पष्ट ही है। इन तीनोंकी सत्ता व्यवसायी देशोंमें अधिकतर होती है। इसका कारण यह है कि व्यवसायी पदार्थ प्रायः दूसरोंके लिये बनाये जाते हैं। उनका देश विदेशमें पहुंचाना नहरों, रेलों जहाज़ों तथा पवन पोतोंके बिना कभी भी संभव नहीं है। जो देश व्यवसायी होते हैं उनमें इनकी वृद्धिका होना स्वाभाविक ही है। परन्तु कृषिप्रधान देशोंमें जो कुछ उत्पन्न किया जाता है वह अपने लिए ही उत्पन्न किया जाता है। कृषक अनाज बोता है ; उत्पन्न होने पर वह अपने ही प्रयोगमें लाता है, उसको उसकी बिक्रीकी विशेष चिन्ता नहीं होती। व्यापारकी कमी होनेसे रेलों, नहरों तथा जहाज़ोंकी वृद्धि भी कृषिप्रधान देशोंमें सर्वथा रुक जाती है।

कृषिप्रधान देशोंमें यदि कोई मनुष्य बड़ा परिश्रम कर कुछ आविष्कार भी करे तो उसको उसके परिश्रमका कुछ भी बदला नहीं मिलता। वह उसका आविष्कार जहांका तहां पड़ा रह जाता है। परन्तु व्यवसायप्रधान देशोंकी यह दशा नहीं है। वहां आविष्कार का बड़ा मूल्य है। जो वैज्ञानिक इस प्रकारके आविष्कार निकालते हैं उनको पर्य्याप्त पारितोषक मिलता है और उनकी प्रशंसा भी बहुत अधिक हो जाती है। सारांश यह है कि व्यवसायी देशोंमें बुद्धिकी चातुर्यपर और चतुरताकी शारीरिक बल-

पर प्रधानता है और उसका बदला भी भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको यथा योग्य मिलता है, परन्तु कृषि-प्रधान देशोंमें यह सब बातें संभव नहीं हैं।

आविष्कारोंके मूल्यके बराबर ही व्यवसायी देशोंमें समयका मूल्य भी बहुत ही अधिक गिना जाता है। समयका मूल्य समझना जातियोंकी सभ्यताका एक बड़ा भारी चिन्ह है। असभ्य जातियां आलस्य और प्रमादमें ही अपना संपूर्ण समय गंवा देती हैं। एक ग्वाले वा गड़रियेको समय की क्या पर्वाह हो सकती है जबकि वह वंशी बजाने, सोने वा लेटनेको ही सबसे उत्तम काम समझता हो। इसी प्रकार एक नौकर या मज़दूर समयको कब उत्तम समझ सकता है जबकि समय ही उसके लिये भार मालूम हो रहा है और जो उस समयकी प्रतीक्षा कर रहा है जब उसको कामसे छुट्टी मिलेगी। सारांश यह है कि जातियां समयके मूल्यको समझती ही तब हैं जब वह व्यवसायप्रधान हों। व्यवसाय-प्रधान देशोंमें एक विचित्र दृश्य देखा गया है। व्यवसायियोंका कृषकोंपर इस हद तक प्रभाव पड़ा है कि वहांके कृषक भी समयका मूल्य समझने लगे हैं। अब बहुत से व्यवसायिक देशोंमें यह अवस्था आ पहुंची है कि वहां साधारणसे साधारण मज़दूर भी यह अच्छी तरह से जान गया है कि समय ही रुपया पैसा है (time is money)। कृषि प्रधान जातियां संपूर्ण संसारका कुछ भी हित या उपकार नहीं कर सकती हैं। उनमें इतनी योग्यता नहीं होती है कि वह कुछ भी नवीन बात सभ्य संसारको दे सकें। राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि कृषक जातियोंने सभ्य जगतके लिए अभी तक कुछ भी नहीं किया है। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। ऐसी जातियोंका अपना जीवन भी सुखमय नहीं होता है। परतन्त्रता, अत्याचार तथा स्वेच्छाचारिताका वह केन्द्र होती हैं। ताल्लुकेदार विचारे किसानोंका गला घोटते हैं और स्वेच्छाचारी राजा ताल्लुकेदारोंके नथुनों में नकेल डाले रहता है। किसी जातिमें इस प्रकारकी घटनाओंका होना उत्तम नहीं कहा जासकता। इसकी अपरिमित हानियां हैं। इससे जातियोंका स्वभाव दासतामय होजाता है। शासकोंकी सैकड़ों ठोकरें खाते खाते उनके लिये ठोकरें खाना भी एक स्वाभाविक बात हो जाती है। यह दासताके भाव जैसे राजनैतिक क्षेत्रमें काम करते हैं, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रोंमें भी वैसे ही काम करते हैं। ऐसी जातिमें जहां ब्राह्मण ईश्वरका रूप धारण कर लेते हैं वहां शूद्र सदाके लिए दासकी उपाधिसे सुशोभित हो जाते हैं। प्रथा तथा रीति रिवाजोंके रूपमें प्रत्येक बात कृषकजनतामें वर्जित होजाती है। परन्तु व्यवसायप्रधान देशोंमें इसके विपरीत अवस्था मिलती है।

भिन्न भिन्न व्यवसायोंमें भिन्न भिन्न कार्योंके करने से प्रत्येक व्यक्तिमें उत्साह तथा साहसके भाव जन्म लेते हैं। स्पर्धारूपी शक्तिसे कर्मण्यताका उदय होजाता है और प्रत्येक व्यक्ति नये नये कार्यों के करने की ओर प्रवृत्त हो जाता है। राजनैतिक प्रबन्धोंका प्रत्येक व्यक्तिसे सम्बन्ध होनेसे व्यवसायिक जनता राजनैतिक विचारोंमें विशेष भाग लेने लगती है। बाधित तथा अबाधित व्यापारनीतिके क्या लाभ हैं, नाविक शक्तिका जातीय समृद्धिमें क्या भाग है, जातीय आय व्ययका प्रबन्ध जनता द्वारा होना चाहिये, इत्यादि महत्वपूर्ण राजनैतिक बातोंमें व्यवसायिक देशोंका तुच्छसे तुच्छ मज़दूर भी पूरी तरहपर भाग लेने लगता है। नगरोंके अधिक होनेसे तथा नागरिक प्रबन्ध जनताके ही हाथोंमें होनेसे व्यवसायिक जनतामें प्रबन्ध करनेकी शक्ति तथा शिक्षा बहुत ही अधिक बढ़ जाती है। संपूर्ण सभ्य संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है कि सभ्यता तथा स्वतन्त्रताकी जन्मभूमि नगर ही हैं। नगरोंका समुत्थान व्यवसायोंकी

वृद्ध पर निर्भर होता है। इस अवस्थामें यह सत्य है कि व्यवसाय, स्वतन्त्रता तथा सभ्यताका अतिशय घनिष्ठ सम्बन्ध है।

नगर दो प्रकारके होते हैं। (१) उत्पादक (२) व्ययी। जो नगर कच्चेमालको आस पासके गांवों-से खरीद करके उनके नवीन नवीन पदार्थ बनाते हैं उनको उत्पादक नगर कहा जाता है। उत्पादक नगर दिनपर दिन जितने समृद्ध होते हैं उतनी ही आस पासके गांवों की कृषि उन्नत हो जाती है। शर्त यह है कि ग्रामोंमें भूमिका स्वामित्व उन गावों के कृषकोंको ही प्राप्त हो और भारतके सदृश राज्यको हरबार लगान बढ़ानेकी या लगान लेनेकी शक्ति न प्राप्त हो। उत्पादक नगरोंकी वृद्धिमें जातियां अपना सौभाग्य समझती हैं। परन्तु भारतमें ऐसे नगरोंका अब लोप हो गया है। मुसल्मानी कालमें तथा उससे प्राचीनकालमें भारतका प्रत्येक नगर उत्पादक नगर था। सैकड़ों कारीगरोंका वहां निवास था। इन कारीगरोंका ही प्रभाव था जिससे ढाका नगर मलमलकेलिए, शान्तिपुर धोतियोंके लिए, लखनऊ कसीदेके कामकेलिए, बनारस साड़ि-योंकेलिए, कानपुर तथा मुरादाबाद बर्तनोंके लिए, अमृतसर शालोंके लिए प्रसिद्ध हो गये थे, परन्तु अंग्रेज़ीराज्यमें इन नगरोंका स्वरूप बदल गया है। मुसल्मानी कालमें जहां यह नगर उत्पादक शक्ति तथा कर्मण्यताके भण्डार थे वहां अब यही नगर बड़े बड़े जमींदारों तथा ताल्लुके-दारोंकी विलासभूमि तथा बनियों व्यापारियोंके निवास स्थान हो गये हैं। पुराने ज़मानेकी तरह अब इन नगरोंमें व्यवसायियों का निवास नहीं रहा है। किसी जातिमें व्ययी नगरोंकी वृद्धि तथा उत्पादक नगरोंकी कमी उसके दुर्भाग्यके चिह्न हैं। यदि उत्पादक नगर स्वतन्त्रताके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं तो व्ययी नगर परतन्त्रताके सूचक हैं।

कृषिप्रधान देशोंमें व्ययी नगरोंकी ही प्रधा-नता होती है। भारतमें ऐसे ही नगर हैं। भारत परतन्त्र है। जर्मनी इंग्लैण्डमें उत्पादक नगर हैं। जर्मनी और इंग्लेण्ड स्वतन्त्र हैं। परतन्त्रतासे जहां उत्पादक नगर व्ययी नगरमें परिवर्तित हो जाते हैं, वहां यदि वही नगर कभी व्ययी नगरमें परिवर्तित होनेसे अपने आपको बचावें तथा उत्पादक नगरके रूपमें ही रहनेका प्रबल प्रयत्न करें तो प्रायः उनके उसी प्रबल प्रयत्नसे जातियां परतन्त्रसे स्वतन्त्र हो जाती हैं। संसारका इतिहास इसी सच्चाईको प्रकट कर रहा है। अमेरिकाने क्यों और किस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की इसका इतिहास जानने-वालोंको पता होगा कि किस प्रकार स्वतन्त्रता तथा व्यवसायका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस अपूर्व सत्यसे भारत क्या सीख सकता है? भारतको इससे यही शिक्षा मिलती है कि यदि वह व्यवसायी देश होना चाहे तो पहिले पहल उसको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बहुत से साधनोंमें, स्वदेशी व्यवसायोंके समुत्थानकेलिए प्रबल प्रयत्न करना भी एक मुख्य साधन है। अतः इस उत्तम साध-नको सदा ध्यानमें रखना चाहिये और स्वराज्य प्राप्त करनेका दिनोंदिन यत्न करना चाहिये। बिना स्वराज्यके व्यवसायोंका समुत्थान असंभव है। स्वराज्य प्राप्त करनेके अनन्तर उस स्वराज्यको स्वदेशी व्यवसाय ही स्थिर करेंगे।

इस प्रकरणके समाप्त करनेसे पूर्व यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि स्वराज्य प्राप्त करनेके अनन्तर भारतको इंगलैण्डके सदृश एक मात्र व्यवसायप्रधान होनेका यत्न न करना चाहिये। जातीय जीवनका आधार कृषि तथा व्यवसाय दोनों ही हैं। जातियोंकी उन्नति तथा उत्पादकशक्ति स्वावलम्बनमें है. केवल व्यवसायी देश होनेसे इंगलैण्डको क्या हानि पहुंची है उसका वर्णन फिर कभी किया जायगा।

विज्ञानकी परिभाषा

[ले०—डा० बी. के. मित्र, एल. एम.-एस.]

यद्यपि आजकल विज्ञान (Science) की चर्चा बहुत सुलभ हो गयी है, फिर भी मुझे शोकके साथ कहना पड़ता है कि इस देशमें बहुत से लोग सायंसके असली अर्थको नहीं समझते, बल्कि उनकी धारणा इस विषयमें बहुत ही भ्रान्त है। वह यह समझते हैं कि सायंस कुछ आधिभौतिक विद्याओंका नाम है, जिनकी उत्पत्ति पिछली दो शताब्दियोंमें पश्चिमी देशोंमें हुई है। इनको आध्यात्मिक विषयोंसे कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि यह प्राचीनोंके बतलाये हुए धर्म्मपथ तथा दर्शनादिके बिल्कुल ही विरुद्ध हैं।

यह मत जितना भ्रमात्मक है उतना ही हानिकर भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्वाचीन सायंसकी पद्धति प्राचीन विज्ञानकी शैलीसे कुछ भिन्न है, तथापि दोनोंका उद्देश्य एक ही है अर्थात् हमारे ज्ञान भण्डारको श्रृङ्खलाबद्ध कर देना है। एक उदाहरण लीजिये। आपको मालूम है कि आपके मकानमें [illegible] है, कई दालान हैं, कोठे हैं, खुली छतें हैं [illegible] । इस प्रकारकी असम्बद्ध जानकारीको [illegible] नहीं कह सकते। पर यदि आप विचार पूर्वक देखें कि सहनका होना मकानमें इसलिए ज़रुरी है कि उसमें हवा और रोशनी आ सके। बल्कि मकानके चारों तरफ़ थोड़ी सी जगह छोड़ देनेसे हवाके आने जानेमें और भी सुविधा होती है। घरके खुले दालानोंको उत्तर और दक्खिन मुखी रखनेसे यह लाभ है कि उनमें रोशनी आने पर भी धूप बहुत नहीं आती। इसीलिए पूरब और पच्छिम मुखी घरोंके सामने साइवानका देना अच्छा होता है। फिर विशेष प्रान्तोंमें पूरब पछवा आदि हवाकी मुख्य दिशाओंके अनुसार घरोंके दरवाज़े और खिड़कियां भी जहाँ तक हो सकें उन्हीं दिशाओंकी तरफ़ रखी जाती हैं, इत्यादि। ऐसे श्रृङ्खलाबद्ध ज्ञानको हम ग्रहनिर्माण विज्ञान कह सकते हैं।

यद्यपि प्राचीन और नवीन ग्रहनिर्माणविद्या में बहुत कुछ मत भेद नहीं है तथापि पाठक इस बातको देखेंगे कि शुक्र नीति आदि प्राचीन ग्रन्थ जिनमें इस विषय पर कुछ कुछ दिग्दर्शन मात्र पाया जाता है उनमें किसी विधानके लिए युक्ति नहीं दिखाई गई है। इसका कारण यह है कि उस समय छपाईका आजकल की तरह सुभीता न होनेके कारण ग्रन्थ सूत्राकार लिखे जाते थे और किसी ज्ञात विषयमें युक्ति न दिखाकर ग्रन्थकार (जो विशेषज्ञ होते थे) उन विधानोंका देना ही पर्य्याप्त समझते थे।

एक और फर्क जो कि नवीन और प्राचीन विज्ञानमें देखा जाता है वह यह है कि उस समयके मनुष्य भौतिक विषयोंके सम्बन्धमें अलहदा अलहदा खोज न करके सबके मूल सिद्धान्तोंके निर्णय करनेकी तरफ़ ज़्यादा प्रयत्न करते थे। परन्तु यद्यपि हमारे दिलोंमें सारे प्रकृतिके रहस्यको मालूम करनेके लिए एक ऐसी सोनेकी कुञ्जी के पता लगानेकी प्रबल कामना है तथापि हमें यह मालूम हो गया है कि ऐसे सर्वतोमुखी ज्ञानके, जिसको "पराज्ञान" कह सकते हैं, लाभ करनेके लिए एक एक विषयका सम्यक् ज्ञान होना अत्यावश्यक है। यही कारण है कि रसायन शास्त्रमें पंच महाभूत-वादको छोड़ कर आज हम अनेक मौलिकोंके न्यारे न्यारे गुणोंके अनुसन्धान कर रहे हैं। इसी तरह चिकित्सा शास्त्रमें तीन काल्पनिक दोष (वायु, पित्त, कफ,) इनको सारे रोगोंका कारण न मानकर उनके अलहदा अलहदा निदान मालूम करनेकी आवश्यकता हुई है। सरांश यह कि प्राचीन जड़से पत्तियोंकी तरफ़ देखते थे और अर्वाचीन पत्तियोंसे जड़की तरफ़ देखते हैं।

विद्याओंकी उत्पत्ति और उनके क्रमविकाश सम्बन्धमें भी हमारे देशवासियोंमें बड़ी भ्रान्ति

फैली हुई है। लोग यह समझते हैं कि सारी विद्याएँ या तो स्वयं ब्रह्मादि देवताओंने या त्रिकालदर्शी ऋषियोंने लोक हितके लिए हमें दान की हैं। अतएव उनके विषयमें कोई शङ्का होनी ही नहीं चाहिये और उसमें परिवर्तन करना तो महा मूर्खता है। लौकिक विद्याओंमेंसे एक उदाहरण लीजिये जैसे चिकित्सा शास्त्र। लोग समझते हैं कि यह विद्या देवताओंकी बनाई हुई है। धनवन्तरी, सुश्रुत, तथा अत्रि, चरक आदि ऋषियों द्वारा प्रकाशित हुई है, अतएव यह अभ्रान्त है और इसमें अब कोई घट बढ़ नहीं हो सकती। इसी तरह इस देशमें यूनानी चिकित्सा प्रणालीके विषयमें भी ऐसी धारणा है कि यह बुक़रात द्वारा प्रवर्तित हुई और जीलानीके इसकी पूर्त्ति करने पर भी इसका आख़िरी पेशवा शेख़ बूअली सीना है। अतएव अब यह भी आयुर्वेदकी तरह अखण्डनीय शास्त्र है, जिसमें घट बढ़ करना मानुवी शक्तिके बाहर है।

पाठक! यदि आप इन दोनों चिकित्सा प्रणालियोंके इतिहासको देखें तो आपको मालूम होगा कि इनकी उत्पत्ति चरक, सुश्रुत आदि ऋषि वा बुक़रात आदि हकीमोंसे बहुत पहिले हुई थी। हमारे सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेदमें भी औषधियोंके गुण बताये गये हैं और चरक आदि ऋषियोंके हज़ारों वर्ष बाद तक इसकी क्रमशः उन्नति होती रही है। बागभट् जो मध्य युगमें पैदा हुए थे वह भी आज चरक सुश्रुतके समकक्ष ऋषि माने जाते हैं। यहां तक कि आयुर्वेदिक तान्त्रिक युगका आख़िरी पेशवा भावमिश्र जिसको प्रायः ३०० वर्ष हुए हैं, उनके ग्रन्थको भी हम उतना ही प्रामाणिक समझकर आर्य ग्रन्थोंके समान ही आदर करते हैं। यूरोपमें तो शेख़ बूअलीसीनाके लिखे हुए ग्रन्थ हालके ज़माने तक पढ़ाये जाते थे। और आधुनिक डाक्टरी केवल उसकी एक परिवर्तित दशा है। इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि चिकित्सा विज्ञान भी अन्य विद्याओंकी तरह पहिले बिखरी हुई अवस्था में थी और इसके प्रवर्तक जैसे कि चरक व बुक़रात बड़े बड़े आविष्कर्ता थे, जिन्होंने ख़ास तौर पर इस विद्याको शृङ्खलाबद्ध किया। शृङ्खलाबद्ध ज्ञानका नाम ही विज्ञान है।

यद्यपि सब देशोंके साधारण ज्ञानको युक्तिसे शृङ्खलाबद्ध करने वाले महा पुरुषोंका हम ऋषियोंसे कुछ कम आदर नहीं करते तथापि हम उनके बचनोंको आप्त समझ कर शब्द प्रमाणकी तरह अभ्रान्त नहीं समझते। आपको यह सुनकर ताज्जुब होगा कि विज्ञानकी कसौटी किसी बड़े वैज्ञानिक वा दार्शनिकका मत नहीं है बल्कि वह जनसाधारणकी ज्ञानेन्द्रियोंपर अवलंबित है। यदि कोई वैज्ञानिक कहता है कि अमुक पदार्थका आणविकगुरुत्व इतना तो वह इसलिए नहीं कि उसने उसको एक बार ऐसा पाया था बल्कि उस तथ्य को कितने ही आदमियोंने भिन्न भिन्न रीति से मालूम किया है इसी प्रकार जिस वैज्ञानिक मत को हम प्रमाणिक मानते हैं वह केवल उन भिन्न भिन्न मतोंका एक सही 'औसत' है। यह बात देखी गई है कि कई बार बड़े बड़े वैज्ञानिक अपने मतका पोषण करने में अधिक आग्रह के कारण 'रज्जु को सर्प' की तरह भूल से देखने लगते हैं। यदि जनसाधारण की दृष्टि ऐसी भ्रान्ति का संशोधन न करती रहती तो आधुनिक सायंस भी प्राचीन विज्ञानोंकी तरह आप्त बचनसे जकड़ी जाकर मृत्युकी दशाको पहुंच जाती। अतएव यह बात ध्यान देने के योग्य है कि सायंसके तथ्य केवल हमारी ज्ञानेन्द्रियों की साक्षी पर निर्भर हैं और वह बहुत से पर्यवेक्षणों के औसत हैं।

वृक्षोंका वृत्तान्त

[ले० अध्या० शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी.]

हमारे देशमें जिन लोगोंको निरा मूर्ख, निरक्षर भट्टाचार्य्य कहा जाता है वह भी यह जानते हैं कि "जलमें थलमें खड्ग खंभमें" जीवन मौजूद है। ऊंचे ऊंचे ताल वृक्षोंसे लेकर नन्हीं नन्हीं घास और दूबमें भी जीवन-शक्तिका संचार है, परन्तु साधारण मनुष्य पौधोंको निस्तब्ध तथा जड़ अवस्थामें देखकर यथार्थ रूपसे यह बतलानेमें असमर्थ हैं कि उनमें जीवनके चिह्न किस प्रकार व्याप्त हैं।

अगर हम किसी बगीचेमें जाकर सूरजमुखीके फूलको चुपचाप सीधा खड़ा हुआ देखें तो साधारण तौरपर हम यह नहीं कह सकते कि वह क्या काम कर रहा है। हमारे विचारमें उसका सौन्दर्य्य देख यह कल्पना आनी कठिन हो जाती है कि ऐसी मनोहर और चित्ताकर्षक वस्तु किस प्रकार कोई कार्य करनेके लिए तय्यार हो सकती है। हम तो कवियोंकी भांति किसी सुरचित और अपूर्व छविपूर्ण चित्र अथवा मूर्तिको जिस दृष्टिसे देखनेको तय्यार हैं उसी दृष्टिसे इस फूलकी ओर भी देखते हैं। परन्तु इस थोड़े से समयमें भी यह पौधा केवल अपना जीवन ही नहीं व्यतीत कर रहा है वरन् कुछ ऐसे अद्भुत कार्य्य कर रहा है जिनका मर्म जानकर हम यह बिना कहे नहीं रह सकते कि इनकी भी चेतनाशक्ति अपूर्व और अच्छी तरहसे विकसित है। इस पौधेकी हरी हरी पत्तियां सूर्य्यके प्रकाशमें बहुत ही साधारण सामग्रीसे इस कुल पौधेके लिए भोजन तय्यार करती हैं और ऐसी होशियारीसे यह काम करती हैं कि साधारण जीव जन्तुओंके लिए ऐसा करना असम्भव है। यह रूपकी खान—सूर्य्यमुखीका फूल—भी भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले ऐसे ही उत्तम फूलोंकी रचना करनेमें लगा हुआ है। इतना ही नहीं पौधोंका तो सारा जीवन निष्काम कर्म्म करने में व्यतीत होता है। सब जीवधारी किसी न किसी रूपमें अपनी भोजन सामग्री प्राप्त करनेके लिए इन्हीं पौधोंके आश्रित हैं।

पौधे सजीव हैं इसलिए अन्य जीवधारियोंकी भाँति इन्हें भी जल-वायु तथा भोजनकी आवश्यकता होती है। हम इन्हें सांस लेते हुए तथा खाते पीते नहीं देख सकते परन्तु इससे यह मतलब कभी नहीं हो सकता कि यह सांस लेते अथवा खाते पीते ही नहीं हैं। बात तो यह है कि हम ठीक तरहपर इनके जीवनकी इन घटनाओंको नहीं देखते हैं। पौधोंकी जीवन घटनाएं समझनेके लिए यह बहुत आवश्यक है कि हम यह रहस्य जाननेके लिए बिलकुल नए ही तरीके इस्तेमाल करें। अगर हम पौधोंकी जीवन घटनाओंको देखनेमें, तथा उनकी ठीक ठीक जांच करनेमें समर्थ हो जायं तो इसमें कोई शक नहीं है कि वह भी हमें ऐसी रोचक जीवनी सुनाएं जो किसी भी जीवधारीके जीवन वृत्तान्तसे किसी अंशमें कम न हो। अभी जिस सूरजमुखीके फूलका हमने वर्णन किया है वह मालीके चातुर्य और देख रेखका सजीव उदाहरण है। उसको आवश्यक जल वायु और प्रकाश मिलता है या नहीं, तथा जिस जगहपर वह उग रहा है वहांकी मिट्टी उसके लिए उपयुक्त है या नहीं, यह देखना मालीका काम है। परन्तु जंगलमें जो लाखों और करोड़ों पौधे उगे हुए हैं उनकी देख रेख तथा रक्षा कौन करता है? उन्हें तो अपना जीवन व्यतीत करनेके लिए अपना ही भरोसा है। वह अपने ही उद्योग और परिश्रमसे बहुत सी आपत्तियोंका सामना करते हुए जीवन संग्राममें विजय पाते हैं। इनकी विजय बड़ी विचित्र घटनाओंसे परिपूर्ण है। बहुत से पौधोंको सूर्य्यकी कड़ी धूप तथा पानीकी नितान्त कमी झेलकर अपनी जीवन यात्रा करनी पड़ती है। बहुत से पौधे सघन जंगलों में बड़े बड़े दरख्तोंकी सायामें

रहनेसे पर्याप्त प्रकाश पानेसे बंचित रहते हैं। बहुत से जलमें उगनेके कारण जीवनाधार वायु तक के लिए तरसते हैं। मामूली पौधेके जीवनके लिए जितनी आवश्यक बातें हैं वह सब तो इन्हें करनी ही पड़ती हैं। इन मुसीबतोंका सामना करना इनके हिस्सेमें ब्याजकी भांति आ पड़ता है। मनुष्योंकी भांति इन्हें भी जीवन निर्वाहके लिए बड़ा कठिन संग्राम करना पड़ता है। यही कारण है कि अकसर उनका रूप रंग बिलकुल निराला हो जाता है। यहां तक कि हमें उनके साधारणसे साधारण अंग प्रत्यंग पहचाननेमें भी मुश्किल पड़ती है। उदाहरणके लिए नागफनी-को लीजिए। यह ऊसर तथा बंजर स्थानोंमें उगती है। उसमें न तो कहीं डालियां ही दिखलाई पड़ती हैं और न पत्तियां। सारा पौधा हरे पदार्थका छोटा ढेर सा मालूम होता है, जिसमें सैकड़ों सुई जैसे तेज़ कांटे लगे होते हैं। आगे चलकर जब आप ध्यान पूर्वक इस पौधेका जीवन वृत्तांत जाननेकी चेष्टा करेंगे तो आपको मालूम होगा कि इसका हरा मोटा गूदे दार हिस्सा वास्तवमें इसकी डालियां हैं। और सुइयोंके आकारके कांटे इसकी पत्तियां हैं, जिन्होंने ऐसा विचित्र रूप धारण कर लिया है। अपने इस बेढंगे रंग रूपके कारण ही यह पौधा ऐसे गरम स्थानोंमें जीवित रह सकता है, जहां दूसरे पौधे एक या दो दिन में ही मुरझा कर सूख जाते हैं। पौधोंकी यह शक्ति जिसके द्वारा वह अपने आसपासकी अवस्थाके अनुसार अपने रंग रूपमें परिवर्तन कर सकते हैं उनकी सजीविता का परमोत्कृष्ट प्रमाण है। जिस प्रकार हमारे अंगका प्रत्येक भाग किसी न किसी जीवन सम्बन्धी कार्य के लिए बना है उसी प्रकार पौधोंके शरीरका भी हर एक भाग किसी न किसी कार्य्यके लिए है। यह अंग प्रत्यंग ऐसी चतुराईसे बने हुए हैं कि पौधेकी हर प्रकारकी आवश्यकताको पूर्ण करते हैं तथा उसे जीवन-यात्रा पूर्ण करनेमें हर प्रकार सहायता देते हैं।

वैज्ञानिकीय

१—समुद्रकी गहराई

पृथ्वीमण्डलके खुश्क हिस्सेका रक़बा (क्षेत्र-फल) पाँच करोड़ सत्तर लाख वर्ग मील और पानीसे ढके हुए हिस्सेका १४ करोड़ वर्ग मील है। या यों समझिये कि पृथ्वीतलका २९ प्रतिशत खुश्क है और शेष ७१ प्रतिशत पानीसे ढका हुआ है। समुद्रोंको प्रायः लोग अगाध समझते हैं। कुछ-का तो यह ख़याल है कि समुद्रका तो पेंदा है ही नहीं। पर वास्तवमें यह बात मिथ्या है। समुद्र-की गहराई बहुत जगहपर नापी जा चुकी है। अधिकांश खुश्कीके पासके उथले भागोंकी गहराई नापी गई हैं। यह कहना तो बहुत कठिन है कि ६००० फ़ुटसे कम गहराई कितनी बार नापी जा चुकी है, पर इससे अधिक गहराईकी नापके बारे-में नीचेकी सारिणी दे सकते हैं:—

६००० – १२००० फ़ुट	... ६००० बार
१२००० – १८००० ,,	... ३२५० ,,
१८००० – २४००० ,,	... ३०० ,,
२४००० – ३०००० ,,	... १७ ,,
३०००० फ़ुटसे अधिक	... ५ ,,

यह सारिणी ब्रिटिश नेवीकी रिपोर्टोंके आधार-पर बनाई गई है। इसके अतिरिक्त अन्य जहाज़ों-ने भी जगह जगह थाह ली होगी, पर उनका ब्यौरेवार उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। सारिणी-से ज्ञात होगा कि जितनी गहराई अधिक बढ़ती जाती है, उतनी ही नापोंकी संख्या घटती जाती है। ऐसा होना भी चाहिये, क्योंकि एक तो अत्यन्त गहरे स्थान कम हैं, दूसरे ज़्यादा गहराई-का नापना और उसके नापनेका इन्तज़ाम रखना दोनों काम कठिन हैं।

२—समुद्रका कितना हिस्सा कितना गहरा है?

समस्त समुद्रके क्षेत्रफलको यदि गहराईके ख़यालसे बाँटें तो यह सारिणी तय्यार हो जायगी।

गहराई	क्षेत्रफल वर्गमीलोंमें	समुद्रका कितना प्रतिशत है
० फुट – ६००० फुट	२२,०००,०००	१६
६००० – १२००० ,,	२७,०००,०००	१९
१२००० – १८००० ,,	८१,०००,०००	५८
१८००० – २४००० ,,	९,८००,०००	७
२४००० – ३०००० ,,	१९५,०००	१ से कम
३०००० फुटसे अधिक	५,०००	

अतएव स्पष्ट है कि अधिकांश (५८%) की गहराई १२००० और १८००० फुटके बीचमें है। केवल (८%) बारहवाँ भाग समुद्रका ऐसा है जिसकी गहराई २४००० फुटसे अधिक है।

३—सबसे ज़्यादा गहराई जो नापी गई है

अबतक जितनी नाप की गई है, उससे पता चला है कि सबसे ज़्यादा गहरी जगह 'स्वायर डीप' है जो मिण्डानेओके पास है। इसकी गहराई ३२०८९ फुट है; अर्थात् मौण्ट एवेरेस्टको उठाकर यदि इस 'डीप' में रख दिया जाय तो उसका शिखर समुद्रतलसे ३०८७ फुट नीचे होगा।

यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि इससे ज़्यादा गहराई मिलना कठिन है, तथापि, यह देखते हुए कि ३०००० फुट से अधिक गहरे स्थल कितने कम हैं, हमें सम्भव जान पड़ता है कि ३६००० फुटसे अधिक गहरे स्थल नहीं मिलेंगे।

मौण्ट एवेरेस्टके शिखरसे स्वायर डीपकी तलैटी तकका अन्तर साढ़े ग्यारह मीलसे अधिक है।

४—औसत गहराई और ऊँचाई

समुद्रकी औसत गहराई १२४८० फुट है और पृथ्वीकी औसत ऊँचाई २२५० फुट। यदि ज़मीनके ऊँचे हिस्से काटकर समुद्रमें भर दें तो समुद्रकी औसत गहराई केवल १०००० फुट रह जायगी।

५—कितने वर्षोंमें धरती घुलकर समुद्रमें पहुँच जायगी

कुल पृथ्वी मण्डलका घन फल अनुमानतः २५९,८५०,०००,००० घन मील है। समुद्रमें भरा हुआ जल ३२४,०००,००० घनमील है और समुद्र तलके ऊपर उठा हुआ पृथ्वीका ठोस भाग प्रायः २३०,०००,०० घनमील है। अन्दाज़ा लगाया गया है कि प्रतिवर्ष ३·७ घनमील आयतनका पृथ्वीका अंश घुलकर या बहकर, विविध नदियों द्वारा समुद्रमें पहुंच जाता है।

इस हिसाबसे समुद्र तलसे ऊपर उठा हुआ पृथ्वीका भाग ६,३४०,००० वर्षोंमें समुद्रमें पहुंच जायगा।

यदि किसी समय सब ठोस पदार्थ समुद्रकी तलैटीमें जा बैठे तो समस्त पृथ्वी मण्डलको एकसां गहराईका, २ मील गहरा समुद्र चारों तरफ़से ढक लेगा।

६—पृथ्वीकी आयु

पृथ्वीकी जब सृष्टि हुई थी, समुद्रोंका पानी मीठा था, पर प्रतिवर्षकी वर्षासे बहुत से घुलनशील पदार्थ समुद्रमें पहुंचने लगे। यदि समुद्रमें जितना नमक मौजूद है, उसका हिसाब लगाकर देखा जाय, तो पता चलता है कि इसे समुद्रमें पहुंचनेमें कमसे कम ९०,०००,००० और अधिकसे अधिक १००,०००,००० वर्ष लगे होंगे।

अतएव प्रो० जौली (Jolly) का ख़याल है कि पृथ्वीकी आयु इतनी ही समझनी चाहिये।

७—सेलीनियम द्वारा साफ़ किया हुआ कांच

कांच सफ़ेद रेत, सोडा और चूनेको भट्टेमें गलाकर तय्यार किया जाता है। रेतमें या चूनेमें लोहेका अंश रहता है, जिससे कांच बिलकुल सफ़ेद नहीं बनता, प्रायः हरीझांई लिये हुए रहता है। यदि इस हरी झांईको हटाना मंजूर हो तो प्रायः सेलीनियम, मेंगनीज़ या निकिल ओषिद काममें लाया करते हैं।

कांच बनानेवालोंका कहना है कि जो कांच सेलीनियम देकर साफ़ किया जाता है उसमें ज़्यादा चमक रहती है। परन्तु उसे यदि तेज़

धूपमें बहुत देरतक रखें तो उसमें कुछ भूरापन आ जाता है।

सेलीनियम कांचको लालझांई दे देता है, यह लालझांई, लोहेकी हरीझांईको दबा देती है और कांच साफ़ सफ़ेद दिखाई पड़ता है।

सेलीनियम ओषिदमें जल्दी परिणत होजाता है। इसीलिए इसका प्रयोग तभी होता है जब कोई धनद (ओषजन देनेवाला) पदार्थ नहो। प्रायः संखियाका प्रयोग सेलीनियमके साथ इसलिए किया जाता है कि वह सीलीनियमका ओषिद न बनने दे।

८—कितना सेलीनियम कितने लोहेके रंगको दबा देता है।

२०८ ग्राम (लगभग २ रत्ती) सेलीनियम एक सहस्रग्राम (लगभग सवासेर) लोहेके रंगको दबा देता है।

२५० सहस्रग्राम कांचके लिए १ ग्राम सेली-नियम या .२ ग्राम सोडियम सेलीनियेतका प्रयोग करना चाहिये।

९—कुछ आवश्यक प्रश्न और उनके उत्तर

हमारे एक मित्रने अप्रैलकी संख्यामें प्रका-शित 'फलोंकी रक्षा' शीर्षक लेखके विषयमें कुछ प्रश्न किए हैं। हम उन प्रश्नों और शंकाओंका उत्तर नीचे देते हैं:—

(१) क्या शक्कर स्वादके लिए ही मिलाई जाती है और किसी उद्देशसे नहीं?

अवश्य ही इस बातमें बहुत संदेह है क्योंकि शक्कर स्वयम् बहुत अच्छी रक्षक है। शक्करकी चाशनी डालनेसे फलोंकी रक्षा भी होती है और स्वाद भी बना रहता है। दूध इत्यादि पदार्थोंमें शक्कर मिलनेसे उनकी रक्षा होती है।

(२) क्या छेद बन्द करनेके बाद डब्बोंको बीस पच्चीस मिनटतक खौलते हुए पानीमें रखना उचित है? अवश्य ही लेखकके यह वाक्य संदिग्ध हैं संभव है छेद बंद करनेके पहिलेही डब्बोंको गरम पानी में रखा जाता हो, छेद बंद हो जानेके बाद तो भाप डब्बेको अवश्य तोड़ देगी।

(३) क्या खौलते पानीमें सब कीटाणु मर जाते हैं? नहीं' १००° श पर सब कीटाणु नहीं मरते।

(४) Jams or Jellies के आकारकी बोतलें कैसी होती हैं?

इस आकारकी कोई विशेष बोतलें नहीं हैं? लेखक महाशयके वाक्य संदिग्ध हैं। हां, मुरब्बों और आचारोंके रखनेके लिए विशेष प्रकारकी बोतलें होती हैं। इस जगहपर उन्हीं बोतलोंसे मतलब है।

—शालग्राम वर्मा

१० जहाज़ोंकी मरम्मतकी नई रीति

बीनोआयरीमें (Buenos Aires) जहाज़ोंकी मरम्मत करनेका अभी हाल में एक नया तरीक़ा निकाला गया है। एक लकड़ीके बने हुये जहाजकी मरम्मत करनेमें जिसके तल भागके लकड़ीके तख़्ते बिलकुल सड़ गये थे बचेखुचे जानदार तख़्तोंके बीचमें कंकरीटकी तख़्तियां लगा दी गईं और स्क्रू लगाकर इन्हें आपसमें जोड़ दिया गया। लकड़ी ज़्यादा गल जानेसे जहां मोटे तख़्ते लगाने-की ज़रूरत थी वहां कंकरीटकी मोटी तह जमा दी गई। ऐसा करनेसे सिर्फ़ जहाज़के वज़नमें ज़्याद-ती हो गई। इसलिए बैलेस्ट निकाल डाला गया और जहाज़ बिना बैलेस्टके ही इतना भारी हो गया कि पहिलेकी भांति आसानीसे समुद्रपर चल सकता था। जिस समय इस प्रकार मरम्मत किये हुये जहाज़ोंकी परीक्षा की गई तो मालूम हुआ कि इस रीतिसे मरम्मत करना बहुत ही उपयोगी सरल और सस्ता है।

—शालग्राम वर्मा

११—द्रव नील बनाना

द्रव नील बनानेके लिए नीलके पौधे काटकर ऐसे पीपोंमें भर दिये जाते हैं जिनकी दीवारोंमें ऐसे सूराख़ होते हैं जो बाहरसे बड़े और भीतर पहुंचने तक बहुत छोटे रह जाते हैं। इन पीपोंमें पानी भर-कर कुछ दिनों तक रखा रहने देते हैं। इसके बाद चूना मिलाकर एक हफ़्ता और इन्तज़ार करते

हैं। अब नीलकी टहनियां और छोटी छोटी डालियां निकाल ली जाती हैं और हर रोज़ इन पीपोंके अन्दर मौजूद रहने वाली चीज़ोंको खूब मिलाया और फेंटा जाता है। पीपेके सूराखोंको पानी भरनेके पूर्व डाट लगाकर बंद कर देते हैं। चूना और नीलके टुकड़ोंको फेंटनेके बाद छोड़ देते हैं और दूसरे दिन इस क्रियाके करनेके पूर्व पीपेकी कुछ डाटें निकाल दी जाती हैं जिससे रातभरमें जितना पानी नितर आता है वह बाहर निकल जाता है इसी क्रियाको बार बार दोहरानेसे प्रायः सब पानी बाहर निकल जाता है और द्रव नील पीपोंके तल भागमें रह जाता है।

—शालग्राम वर्मा

१२– क्या केला खाद्य पदार्थ है ?

अभी हालमें रासायनिक जांच करनेपर पता चला है कि केलोंमें प्रोटीन तथा जलका भाग कम होनेसे मनुष्योंके पोषणकेलिए निरे केले खाना ही काफ़ी नहीं है। अगर केसीन, ख़मीर या गाजरका रस इसमें मिला दिया जाये तो केलेमें जिन जिन चीज़ोंकी कमी है वह न सिर्फ़ पूरी ही नहीं की जा सकती हैं बल्कि उनकी मात्रामें वृद्धि भी हो जाती है। कुछ वैज्ञानिकोंका विचार है कि प्रोटीनकी कमी दूसरी तरह पर भी पूरी की जा सकती है। परन्तु कई वैज्ञानिकोंने प्रयोगों द्वारा यह निश्चय किया है कि केसीनसे प्रोटीनकी कमी पूरी करनेमें सुगमता होगी।

—शालग्राम वर्मा

१३—कड़वी दवा पीनेकी तरकीब

बहुतसे लोग कड़वी दवाइयोंके पीनेसे बड़े घबड़ाते हैं और जान छिपाते हैं। अमेरिकामें अभी हालमें एक ऐसी तरकीब निकाली गई है जिससे कड़वी दवा पीनेमें कड़वापन ज़रा भी नहीं मालूम होता। दवा पीनेके गिलासको तारके क्लिपमें अटका देते हैं और फिर उसके दूसरे सिरेको कांचके बड़े गिलासमें लगा देते हैं। अन्दर वाले गिलासमें दवा होती है और बड़े गिलासमें पानी भर देते हैं। गिलासको उठाकर पीनेसे पानीके साथ साथ दवा बिना ज़बानसे छुए हुए हलक़में उतर जाती है और मुंह कड़वा नहीं होता।

- शालग्राम वर्मा

विज्ञान परिषद्का अधिवेषन

विज्ञान परिषद्का अधिवेषन ताः ३० अगस्त १६ को म्योर कालेजके फ़िज़िकेल सायंस थियेटरमें हुआ। प्रोफ़ेसर सतीशचन्द्र देव, एम. ए. ने 'गंधकका तेज़ाब किस तरह बनाया जाता है, इस विषयपर व्याख्यान दिया। व्याख्यानके उपरान्त व्याख्यानदाताको परिषद्की ओरसे प्रो० मोहम्मद अलीनामीने धन्यवाद दिया। फिर निम्नलिखित सज्जन परिषद्के सभ्य चुने गयेः—

(१) श्री महाराज प्रतापचन्द्र भंजदेव, मयूरभंज नरेश
(२) श्री राजा सूर्यपालसिंह, आवागढ़
(३) रौतराव श्री रामचन्द्र भंजदेव, मयूर भंज
(४) श्री राव कृष्णपाल सिंह जी, आवागढ़
(५) श्री छुटोराय प्रतापचन्द्र भंज देव मयूरभंज
(६) श्री कुंवर बलबीर सिंह जी, इन्जिनियर
(७) श्री प्रोफ़ेसर इश्वरी प्रसाद, एम. ए.

प्राप्ति स्वीकार

नवम्बर १६१८—सितम्बर १६१६

श्रीयुत सी. सी. देसाई (१६१८-१६) ... १२)
श्रीयुत डी. बी. देवधर, इन्दौर (१६१८-१६) १२)
श्रीयुत निहालकरण सेठी, एम. एस-सी., प्रोफ़ेसर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी (१६१८-१६) ... ... १२)
श्रीयुत रामजीदास भार्गव ऊँचैकी मंडी प्रयाग (१६१८-१६) ... ... १२)
श्रीयुत प्रोफ़ेसर बी. एस. तम्मा, एम. एस-सी., मेरठ कालेज, मेरठ (१६१८-१६) ... १२)

श्रीयुत गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी. एस-सी., हिस्लोप कालेज, नागपुर (१९१८-१९) ... ... १२)

श्रीमान राजा अबू जाफ़र साहिब, सी. आई., ई. ३१. १०. १९१८ तक ... १२)

पं० बालादत्त जोषी, बी. ए. मैनेजर धामपुर एस्टेट, धामपुर (बिजनौर) (१९१८-१९) ... ... १२)

लाला सीताराम, बी. ए., एम. ए यू. रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर, प्रयाग (१९१८ १९) १२)

डा० अविनाशचन्द्र बनर्जी, प्रयाग (१९१८-१९) ३६)

श्रीमान के. सी. मेहता (१८-१९) ... २४)

रायबहादुर श्री ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, एम. ए., एल-एल. बी. काशी (१९१७-१९१८) १२)

श्रीयुत गोपालनारायणसेनसिंह, बी. ए. ट्रेनिङ्ग कालेज, काशी (१९१८-१९) ... ६)

माननीय पं० गोकरणनाथ मिश्र, एम. ए., एल-एल. बी., लखनऊ (१९१८-१९) ... १२)

श्रीयुत राधाचरण, काशी (१९१८-१९) ... १२)

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ, एम. ए. मेम्बर स्टेट कौंसिल, जयपुर (१९१७-१८) १२)

श्री० मौलवी हमीद उद्दीन साहब हैदराबाद, दखन (१९१८-१९) ... ... १२)

श्री० डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए. डी. लिट प्रिंसिपेल संस्कृत कालेज, काशी (१९२०) ... ३६)

श्री० शारदाप्रसाद, सतना (१९१९) ... २४)

श्री० चार्ल्स नोर्ड लिङ्गर, कलकत्ता (१९१९) २४)

श्रीयुत प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. कायस्थपाठशाला प्रयाग (१९१९) ५)

श्रीमान् राव कृष्णपालसिंह जी, साहिब आवागढ (१९२० तक) ... १२)

डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस., लखनऊ १९ तक ... २४)

प्रोफ़ेसर लालजी श्रीवास्तव, एम. एस-सी., गवर्मेन्ट कालेज, अजमेर ... ५)

प्रोफ़ेसर हीरालाल खन्ना, एम. एस-सी, डी. ए. वी. कालेज, कानपुर १९१९ तक २४)

श्री० भटेले पृथ्वीनाथजी, रईस बेरारी (इटावा) १९१९ तक .. २१)

श्रीयुत पं० बालादत्त जोषी, बी. ए. मैनेजर धामपुर स्टेट १९१९ तक .. १२)

पं० इकबाल नारायण गुरटू, एम. ए. काशी १९१९ तक ... ... २४)

श्रीयुत श्रीप्रकाशजी, एम. ए, बार-एट-ला काशी १९१९ तक ... ... २४)

माननीय ब्रजकिशोर प्रसाद, लहरिया सराय दर्भंगा १९१९ तक ... ... १२)

प्रोफ़ेसर हरीरामचन्द्र दिवेकर, एम. ए. १९१९ तक ... ... ११)

मा० राजा सर रामपाल सिंह के. सी. आई. ई. ३१. १०. १९ तक ... ... २४)

श्री० देवकीनन्दन बी. ए. ए. आर. सी. एस. ३१. १९.१९ तक ... १२)

बा० सालगराम भार्गव एम. एस-सी. ३१. १०. १९ तक ... .. १२)

श्री० चन्दीप्रसाद एम. ए. ३१. १०. १९ तक १२)

श्री० महेशप्रसाद भार्गव एम. एस—सी ३१. १०. १९ तक ... ... १२)

योग ५६७)

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित

अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—
ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० महावीर-प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-मिफताह-उल-फ़नून-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—ताप-ले० प्रेमबल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—हरारत [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला, प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य-ले० सालिग्राम वर्मा, ... ‒)

७—केला-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ‒)

८—सुवर्णकारी-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९—चुम्बक-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा-ले० बसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी, विशारद, ... ।=)

११—क्षयरोग-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... ‒)

१२—दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. ‒)

१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम-ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ।)

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५४ Reg. No. A-708

भाग ६ कन्या १९७६। सितम्बर १९१९ संख्या ६

Vol. IX. No. 6

सूचना

जिन अनुग्राहक ग्राहकोंका वार्षिक मूल्य इस मासमें पूरा हो गया है, वे कृपया आगामी वर्ष के लिए रुपया मनीआर्डरद्वारा एक सप्ताहमें भेज दें, अन्यथा अगला अंक उनकी सेवामें वी० पी० से भेजा जायगा।

यदि कदाचित् किसी सज्जनको भविष्यमें ग्राहक रहना स्वीकार न हो, तो एक सप्ताहमें सूचना दें, जिससे परिषत्को व्यर्थ वी० पी० भेजकर आर्थिक हानि न उठानी पड़े।

विज्ञान परिषद्का छटा वार्षिकोत्सव रविवार २३ नवम्बर १९१९ को ८ बजे प्रातःकाल माननीय राजा सर रामपालसिंह के. सी. आई. ई. के सभापतित्वमें म्योरकालेजके फिज़िकल सायंस थियेटरमें मनाया जावेगा।

बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालयके प्रो. रामदास गौड़ एम. ए. "वैज्ञानिक युगान्तर" पर व्याख्यान देंगे। आशा है सभ्य परिसभ्य इष्ट-मित्रों सहित पधारनेकी कृपा करेंगे।

निवेदक-

मन्त्री, विज्ञान परिषद्

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५४ Reg. No. A-708

भाग ९ कन्या १९७६। सितम्बर १९१९ संख्या ६

Vol. IX. No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक–गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय–सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख काग़ज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिये।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएँ।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, तथा सम्पादन सम्बन्धी पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ९ } कन्या, संवत् १९७६। सितम्बर, सन् १९१९। { संख्या ६

कोयला, उसके रूपान्तर और उत्पत्ति ❀

सभापति महोदय तथा उपस्थित सज्जनो

एक बड़ी पुरानी कहावत है कि 'कोयलोंकी दल्लालीमें काले हाथ।' कोयला बेचना तो दरकिनार, कोयलेकी दल्लालीमें ही लोगोंके हाथ काले हो जाते हैं। ऐसी और भी कई कहावतें हैं जिनसे मालूम होता है कि जन साधारण कोयलेको किस घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। "कोयला होय न ऊजरो, नौमन साबुन धोय" वाली कहावत भी इस कथनका समर्थन करती है। जहां किसी काली चीज़को देखा कि फ़ौरन कह बैठते हैं "कोयले सी काली"। इसलिए साहिबान आपको मालूम हुआ होगा कि मामूली तौरपर कोयलेकी तरफ़से लोगोंका क्या ख़याल है।

सच पूछिये तो जितनी बेइन्साफ़ी सृष्टिके आदिसे कोयलेके साथ हुई है उतनी किसीके साथ नहीं हुई। इसी शिकायतकी अपील लेकर मैं आपके सामने हाज़िर हुआ हूं। संसारमें अनेक कवि हुए हैं, पर जहांतक मेरा ख़याल है किसीने भी कोयलेकी तारीफ़ न लिखी। शायद माशूक़ोंके तिलों या खूबरूयोंकी आंखोंके काजलका ख़याल करते हुए उन्हें बेचारे कोयलेकी याद भी आई हो, पर कभी किसीने उसकी उपमा न दी। पर ज़रा ग़ौर करके देखिये कि काजल क्या चीज़ है। वह भी तो कोयला ही है। यही कोयला कुल कामनियोंके मद भरे नयनोंकी शोभा हज़ारगुनी बढ़ा देता है। इसी कोयलेका टीका, जब बच्चोंके माथोंपर लगा दिया जाता है, तो उन्हें बुरी नज़रसे बचाता है। मिठाई खाकर जब बच्चे घरसे बाहर निकलते हैं तो उनकी माताएँ उन्हें थोड़ी सी राख या कोयलेका टुकड़ा खिला देती हैं, जिसके बारेमें उनका ख़याल है कि बच्चोंको भूत प्रेतसे बचाये रखता है। बच्चोंके हाथ दूध या मिठाई जब कहीं भेजते

❀ यह व्याख्यान प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. ने २० सितम्बरके विज्ञान परिषद् के अधिवेशनमें दिया था—मनोहरलाल।

Chemistry रसायन शास्त्र]

हैं या बाज़ारसे मंगवाते हैं तो उसमें भी कोयले-का टुकड़ा डाल देते हैं। डाक्टर साहिबान भी पेटकी अफरनमें कोयलेके बिस्कुट—हंटले पामरके लज़ीज़ बिस्कुट नहीं—खिलाते हैं। पानीको साफ़ करने और गुड़से साफ़ शफ़ाफ़ चीनी तय्यार करने में भी हमें इसीका आसरा लेना पड़ता है।

आजकलकी सभ्यता की बुन्याद तो हम कह सकते हैं कि कोयलेपर ही खड़ी है। लाखों करोड़ों इंजिन जो हमारे जहाजों, रेलगाड़ियों, मशीनों और कारख़ानोंको रातदिन चलाते रहते हैं, उनकी ताक़त कोयलेसे ही हासिल होती है। बड़े बड़े भट्टे जिनमें लोहा, जस्ता, कांच, सीसा, ताम्बा, टीन आदि पदार्थ बनते हैं, उनमें भी कोयला ही काम आता है।

संसारमें जितनी जानदार चीज़ें हैं, उन सबमें कोयला पाया जाता है। इन्सानका जिस्म, जानवरोंके जिस्म, परिन्दोंके जिस्म, कीड़े मकोड़ोंके जिस्म, दरख़्तोंके तने, टहनियां और फूल और फल, जहां देखिये तहां कोयलेका अंश अवश्य मिलेगा। इसका प्रमाण यह है कि किसी भी चीज़को, जो पशुओं या वनस्पतियोंसे सम्बन्ध रखती हो, लेकर आप तपाएँ, वह झुलसकर कोयलेमें तबदील हो जायगी।

अगर किसी आदमीका वज़न दो मन हो तो उसमें लगभग सोलह सेर कोयलेका अंश होगा। इस तरहपर संसारके सब आदमियोंके जिस्मोंमें सात अरब, बीस करोड़ (७२००००००००) मन कोयला मौजूद है। दरख़्तों, पौधों और जानवरोंके जिस्मोंमें जो कोयला मौजूद है, उसका अन्दाज़ा लगाना तो बहुत ही मुश्किल है।

दुनिया भरकी खानोंमें शायद १४ पद्म मन कोयला मौजूद है। इसके अतिरिक्त बहुत से खनिजों, चट्टानोंमें और पत्थरोंमें कोयलेका अंश मौजूद है। १०० मन संगमरमरमें लगभग १२ मन कोयला रहता है। यही दशा चूनेके पत्थर या कंकड़ की है। अब ज़रा सोचिये कि संसारकी कितनी बड़ी बड़ी पर्वत राशियां संगमरमर या चूनेके कंकड़से बनी हुई हैं और उनमें कितना अंश कोयलेका होगा।

कोयला सिर्फ़ पृथ्वीमण्डलपर ही नहीं पाया जाता, बल्कि समस्त देशमें व्याप्त है। प्रत्येक टूटनेवाला तारा (उल्का या meteor), प्रत्येक ग्रह (planet), प्रत्येक तारा, आस्मानी ख़ाक (आकाशी धूल) का प्रत्येक कण, प्रत्येक नीहारिका (nebula), प्रत्येक (comet) पुच्छलतारा इन सबमें कोयला मौजूद है। हमारे सूरजकी रोशनी भी कोयलेकी वजहसे ही पैदा होती है। यदि आप किसी गैसके बरनरको जलावें, तो उसकी लौसे रोशनी पैदा होगी। यदि उसके नीचेके सूराखों को आप धीरे धीरे खोल दें तो आप देखेंगे कि लौ की रोशनी कम होती जाती है और अख़ीरमें लौ ज्योतिहीन हो जाती है। इसको वजह यही है कि पहले लौमें कोयलेके छोटे छोटे कण थे, हवाके पहुंचनेसे यह जल गये। अब रोशनी आपतक पहुंचानेवाला ही न रहा, रोशनी फिर कैसे आये। अगर किसी झाड़नको उक्त लौके पास झाड़ दें तो खड़ियाके टुकड़े लौमें पहुंचकर फिर रोशनी पैदा कर देंगे।

सूर्यलोकमें भी यही होता है। सूरजकी सतहपर कोयला भाप बनकर उड़ जाता है, पर वहांके वायुमण्डलमें (atmosphere) में पहुंचकर उसके बादल बन जाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे कि पृथ्वीपर पानीके बादल बन जाते हैं। यह बादल गरम होकर सूरजकी रोशनी हमतक पहुंचाते हैं। इनमेंसे हरेक बादलका क्षेत्रफल लाखों वर्ग मील होता है और उनका वज़न करोड़ों अरबों मन।

कोयलेकी जातियां

कोयला कई क़िस्मका होता है, जैसे (१) बेरवेदार कोयला (२) ग्रेफ़ाइट और (३) हीरा। अब हम इनपर क्रमानुसार विचार करेंगे।

१—बेरवेदार कोयला

इसमें काजल, गैस कोयला, लकड़ीका कोयला, पत्थरका कोयला, हड्डीका कोयला आदि शामिल हैं।

काजल-जिन पदार्थोंमें कर्बन या कोयलेका अंश बहुत ज़्यादा है, उनको परिमित (थोड़ी सी) हवामें जलाकर बनाया जाता है। आपने पुराने ढँगकी मट्टीके तेलकी डिबिया जलते देखी होगी। जिन आलोंमें यह जलाकर रख दी जाती हैं, उनमें बहुत सा काजल जमा हो जाता है। आंखोंमें आंजनेका काजल भी इसी प्रकार एक दिया जलाकर उसपर दूसरा दिया औंधाकर बनाते हैं। जो धुआं पैदा होता है उसे कमरोंमें ले जाते हैं, जिनमें कम्बल लटके रहते हैं। कम्बलोंपर काजल जमा हो जाता है। इस काजलको उतार कर (Chlorine) हरिन गैसमें तपाते हैं, जिससे उसमेंके कर्बोज्ज (Hydrocarbons) निकल जाते हैं।

यह काजल काले रोग़न, वार्निश, छापेकी स्याही आदिके बनानेमें काम आता है।

गैस कोयला—जब पत्थरके कोयलेको दम-घोट तपा दिया जाता है तो उसमेंसे अमोनिया आदि अनेक द्रव तथा जलानेकी गैस निकलती है। पीछेसे गैसके बक-यंत्रों (retorts) में कोयला जमा हुआ रह जाता है। यही गैस कोयला होता है, जो बिजलीका सुवाहक होता है। बिजलीकी रोशनीकी बत्तियाँ इसकी ही बनती हैं।

लकड़ी, शकर या हड्डीका कोयला—कोई भी पदार्थ जिसमें कर्बनका अंश हो, यदि हवासे अलहदा बन्द जगह या बर्तनोंमें तपाया जाय, उससे कोयला बन जाता है। हिन्दुस्तानमें ज़मीनमें गड्ढे खोदकर उसमें लकड़ियां भर देते हैं, ऊपर से गड्ढे का मुंह बन्द कर देते हैं। ख़ाली दो सूराख उसमें छोड़ते हैं। जलाने पर लकड़ियों में, जो तरह तरह की गैस या द्रव रहते हैं वह उड़ जाते हैं। यूरोपमें लकड़ियां बन्द बर्तनोंमें तपाई जाती हैं और जलानेकी गैस, एसीटोन, मिथिल अल्कहल आदि पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

कोयलेके गुण

यह तो शायद सभी जानते हैं कि कोयला बग़ैर धुआंके जलता है और गरमी भी ज़्यादा देता है। कोयलेका चूर्ण, विशेषतः उसका जो खून या हड्डीको तपाकर बनाया जाता है, बड़ा अच्छा कृमिनाशक (disinfectant) और रंग उड़ानेवाला (decolourizing) पदार्थ होता है। इन गुणोंका क्या कारण है? अगर किसी काले कोयलेके टुकड़ेको आप किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखें, तो आपको वह छोटी सी गन्दी चीज़ एक निरा तिलिस्म दिखलाई देगा। आपको उसमें लाखों कमरे, दालान, बराण्डे, सुरंगें नज़र आयंगी। यह सुरंगें क्या हैं, जीते जागते अजगर हैं, जो तरह तरह की गैसोंको खींचा करते हैं। एक घन इंच (cubic inch) का कोयलेका टुकड़ा अमोनिया के १७० घन इंच इस प्रकार सोख सकता है। मामूली तौरपर कोयलेमें हवा भरी रहती है। बस जब कोयलेका चूर्ण किसी गन्दी जगहपर फैला दिया जाता है तो यही हवा उस जगहकी गंदी हवाओंका नाश कर देती है। जहाज़ोंपर, जिन लकड़ीके पीपोंमें पानी भरकर रखते हैं, उनके अन्दरके हिस्सेको भुलसाकर काला कर देते हैं। यह कोयला पानीको सफ़रमें साफ़ रखता है।

यदि आपको कहीं पर लकड़ीके लट्ठे ज़मीनमें गाड़ने हों तो आप उनके निचले हिस्सोंको भुलसाकर काला कर दें और तब गाड़दें। ऐसा करनेसे डीमक लगनेका ख़तरा कम हो जायगा और लकड़ी जल्द गलेगी भी नहीं।

कोयलेकी सुरंगें, बहुत सी चीज़ोंको घोलोंमेंसे (Solution) निकाल कर जज़्बकर लेती हैं। थोड़ा रंग पानीमें घोल लीजिये। उसमें थोड़ा सा हड्डीका कोयला मिलाकर छानिये। आप देखेंगे कि साफ़ पानी छनकर निकलता है। शर्बत, शकर बग़ैरा साफ़ करनेमें यही हड्डीका कोयला काम आता है।

पत्थरका कोयला

आजसे लाखों वर्ष पहिलेकी बात है। समुद्रोंमें वर्तमान कालकी अपेक्षा बहुत ज़्यादा पानी था। ज़मीनका तक़रीबन कुल हिस्सा पानीमें डूबा हुआ था। हवामें कर्बन द्विओषिद (carbon dioxide) ही भरा हुआ था। ज़मीनकी अन्दरूनी गर्मी समुद्रोंके पानीको गरम रखती थी। हर जगहसे बे इन्तहा भाप उठती थी। जो गरमी सूरजसे ज़मीनतक पहुंचती थी, वह कर्बन द्विओषिदके ग़िलाफ़से बाहर न निकलती थी और हवा और ज़मीनको गरम रखती थी। यह सब बातें वनस्पतिकी उत्पत्ति और वृद्धिके लिए बहुत सहायक थीं। दरख़्तोंका खाद्य (ग़िज़ा) प्रचुर परिमाणमें मौजूद था। आबहवा (जलवायु) माफ़िक थी। फिर क्या था नबातात इतनी बढ़ी जिसका ख़यालके अहातेमें आना मुश्किल है। आजकल जो क्लबमोसेस (club mosses) दो चार इञ्च बड़ी नज़र आती हैं, उस ज़मानेमें ५० फुट ऊंची और तीन या ज़्यादा फुट मोटी होती थीं। फर्न्स भी उस ज़मानेमें दिल खोलकर बढ़ते थे। उनके तनोंकी मोटाई (व्यास) छः फुट और लम्बाई ७०० फुटसे ज़्यादा होती थी। इतने घने जंगल उस ज़मानेमें उग रहे थे कि आजकल वैसे शायद ही कहीं हों।

दरख़्त यकेबाद दीगरे उगते थे, बढ़ते थे, सड़ जाते थे और गिर जाते थे। इस प्रकार हज़ारों फ़ुट मोटी तहें गिरे हुए दरख़्तों, टहनियों और पत्तियोंकी जम गईं। समयके हेर फेरसे यह तहें समुद्रोंकी तलैटीमें जा पहुंचीं और वहां रेत, मट्टी वग़ैराके नीचे दब गईं। लाखों बरसोंके बाद वही तहें, दबाव, ज़मीन की भीतर की गरमी और नमीकी वजहसे पत्थरके कोयलेके रूपमें बदल गईं। फिर कुछ समयके हेर फेरसे यह तहें समुद्रकी तलैटीसे निकलकर ऊपर आ गईं और इनके ऊपर फ़िर हरे भरे जङ्गल खड़े हो गये। इन जङ्गलोंकी भी वही दशा हुई जो पहले जङ्गलोंकी हुई थी और कोयलेकी एक तह और जम गई। इस भांति कोयलेकी तहें कुछ कुछ फ़ासिले पर, एकके ऊपर दूसरी, बनती चली गईं।

यहांपर यह सवाल पैदा हो सकता है कि जितनी बातें ऊपर बयान की गई हैं, वह केवल कल्पित हैं या उनके लिए कोई प्रमाण भी हैं।

(१) पहला सबूत तो यह है कि कोयलेकी खानोंमें दरख़्तोंके तने, फर्न्स, क्लब मोसेसके दाने (Spores) और पत्तियां कभी कभी ज्योंकी त्यों, मिलती हैं। यही ज़बान-ए-हालसे अपनी गुज़िश्ता तवारीख़ बयान करती हैं।

(२) दूसरा सबूत समझनेके लिए इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि दरख़्तोंसे कोयला बनता कैसे है। हम पहले ही देख चुके हैं कि लकड़ीको तपानेसे कोयला तथा अन्य द्रव और गैस बनती हैं। लेकिन प्रकृतिमें लकड़ी कहीं बहुत ज़्यादा तो तपाई नहीं जाती, फिर कोयला कैसे बन जाता है। बात यह है कि तपानेसे रासायनिक क्रियाओं (Chemical reactions) का वेग बढ़ जाता है। जो रासायनिक परिवर्तन मामूली तापक्रम पर (Temperature) बहुत आहिस्ता होता है वही गर्मी बढ़ा देनेसे बहुत तेज़ीसे होने लगता है। तख़मीना लगाया गया है कि १० डिग्री गर्मी बढ़ा देनेसे तबदीली दुगनी तेज़ीसे होने लगती है। इसीसे जो तबदीली लकड़ीमें मामूली तापक्रमपर लाखों वर्षोंमें होती है वह तपानेसे घंटोंमें हो जाती है। वास्तवमें कोयलेके बननेमें प्रायः वही घटनाएँ हुई हैं, जो लकड़ीको तपाकर कोयला बनानेमें होती हैं। अगर ऐसा है तो हमें नेचरमें कहीं थोड़ी तबदील हुई, कहीं ज़्यादा तबदील हुई, और कहीं पर बिलकुल पूरी तौर पर तबदील हुई लकड़ीके नमूने मिलने चाहियें। नेचरमें कोयला हज़ारों तरहका मिलता है। इनका संगठन (Composition) भी भिन्न भिन्न होता है। जितनी पुरानी तहका कोयला होगा, उसमें उतना ही

ज़्यादा कर्बनका अंश होगा और उज्जन (Hydrogen) और ओषजनका कम। पृथ्वीकी तहें अपने निर्माण कालके अनुसार कई विभागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक तहका नाम उसके निर्माण कालके अनुसार रखा जाता है। नीचेकी सारणीमें कोयलेकी जाति, उसके बननेका समय और उसका विश्लेषण (Analysis) दिया जाता है। सूखी हुई बीच-वुडके क्या क्या अवयव हैं, यह भी तुलनार्थ दिखलाया गया है।

पदार्थ	निर्माण काल	कर्बन प्रति शत	उज्जन %	ओषजन तथा नत्रजन %	राख %
सूखी बीचवुड (dried beech wood)	(Recent) आधुनिक	४९·८९	६·०७	४४·०४	......
जंगली पीट (Forest peat)		५१·४७	५·९६	३२·६८	९·६७
दलदली पीट (Moor peat)		५३·५१	६·३२	२७·८४	१२·२४
लिगनैट या शिलाजीत (Lignite)	(Tertiary) त्रेतायुगीय	५७·२८	६·०३	३६·१६	·५९
ब्रौन कोल (Brown coal)		६१·२	५·१७	२१·२८	१२·३५
लिअस कोल (Lias coal)	(Mesozoic) मध्ययुगीय	७८·०८	३·३९	७·३२	१०·६९
सेप्रोपेलिक कोल (Sapropelic coal)	(Upper carboniferous) कर्बनीय (कोयला)	८०·०७	५·५३	१०·२०	२·७०
भट्टीका कोयला (Humic or Bituminous)		८३·४७	६·६८	९·५९	·२००
पत्थरका कोयला (Anthracite)		९१·४४	३·३६	२·६९	१·५२
ग्रेफ़ाइट (Graphite)	......	१००	......	......	......
हीरा	......	१००	......	......	......

इस सारणीसे स्पष्ट है कि जितना ज़माना गुज़रता गया, उतना ही अधिक परिवर्तन कोयलेमें होता गया, क्योंकि लकड़ीमेंका पानी, कर्बोज्ज (Hydrocarbons) वग़ैरा पदार्थ निकलते गये और कर्बन ही बचता गया, यहां तक कि सबसे पुरानी तहोंमें कोयला सिर्फ़ ग्रेफ़ाइटके ही रूपमें

पाया जाता है, जो शुद्ध कोयला या कर्बन है। उधर हालकी तहोंमें पाये जानेवाले कोयलेके रूपान्तरोंपर विचार कीजिये। पीटमें जड़ोंके रेशे वग़ैरा बहुत होते हैं और इतना पानी होता है कि जलानेके काममें लाना मुश्किल होता है। कुछ दिन हुए एक सज्जनने पीटको काममें लानेकी एक तरकीब निकाली है। वह इसे तोड़कर ईंटें बनाते हैं, जो भट्ठोंमें या चूल्होंमें आसानीसे जलाई जा सकती हैं। इसी प्रकार यदि लिगनैट-की सतहको आप ग़ौरसे जांचें तो आपको उसमें उसी प्रकारकी धारियां नज़र आयंगी जैसी लकड़ी-के तख़्तोंमें आती हैं।

ऊपरके कथनसे आपको विदित हो गया होगा कि पत्थरका कोयला पुराने ज़मानेके घने जङ्गलोंके ज़मीनमें दब जानेसे बना है। वास्तवमें कोयलेकी खानोंको हमें सूर्यकी शक्तिका भण्डार समझना चाहिये। सूर्यमेंसे शक्ति उत्पन्न होकर चारों तरफ़ प्रकाश और तापके रूपमें फैलती है। यह करोड़ों वर्षोंसे बराबर निकल रही है और देशमें (Space) फैल रही है। इसी शक्तिके सहारे हम ज़िन्दा हैं, वरना दो चार दिनमें ही पृथ्वीमण्डल जीवन-शून्य हो जाता। इसी शक्तिके सहारे दरख़्तोंकी पत्तियां वायुके कर्बनद्विओषिदको तोड़कर, कर्बन ग्रहण कर लेती हैं और ओषजन हमारे लाभके लिए फिर पैदा कर देती हैं। सारांश यह कि इसी शक्तिके सहारे वनस्पतियां उगती हैं, फलती और फूलती हैं। आजसे लाखों करोड़ों वर्ष पहले भी यह शक्ति सूर्यसे पृथ्वी तक आ रही थी। उसी शक्तिसे उस समयके जंगल खड़े थे। वही जङ्गल अब हमको कोयलेके रूपमें मिलते हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रकृतिने उस ज़मानेकी सूर्य-की शक्तिको काले कोयलेके रूपमें बदल कर खान रूपी बक्सोंमें बन्द करके रख छोड़ा था। वही आज हम काममें ला रहे हैं।

कोयलेमें कितनी शक्ति बन्द है? इसका हिसाब भी बहुत मनोरञ्जक है। मुट्ठी भर कोयलेके जलने-से इतनी ताक़त पैदा होती है कि ५० लाख सेरके वज़नको एक फुट उठा सकती है या यों समझिये कि ६२ मनके बोझको ज़मीनसे म्योर कालेजकी टावरके ऊपर तक पहुंचा सकती है। इससे आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि नेचरने कितनी महान् शक्ति हमारे लिए इकट्ठी कर रखी है।

कोयलेकी शक्ति सूर्यके ताप और प्रकाशसे पैदा हुई, वही शक्ति फिर ताप और प्रकाशमें बदल कर आजकल हमारे इंजनोंको चलाती है और गैस या बिजलीके रूपमें हमारे मकानों या शहरोंको रोशन करती है। साहिबान आज जो रोशनी इस कमरेमें हो रही है वह आजसे कई करोड़ वर्ष पहलेकी सूर्यकी रोशनी है। इस बात-को ख़याल कीजिये और नेचरके गूढ़ रहस्योंकी प्रशंसा कीजिये।

इसी कोयलेसे हमको गैस, कोक, अमोनिया, डामर प्राप्त होते हैं। डामर पहले एक गन्दी चीज़ ख़याल की जाती थी, पर आजकल जितने भड़कीले, चटकीले रंग आपको नज़र आते हैं, जितनी खुश-बूदार चीज़ें, रुई वग़ैरा आपके काम आती हैं, वह सब इसी डामरसे प्राप्त होती हैं। इसी डामरसे बड़े बड़े बिस्फोटक (Explosives) बनते हैं जिन-की सहायतासे बड़े बड़े क़िले एक मिनटमें तहस नहस हो सकते हैं। इसी डामरकी बदौलत आप-के लैमजूसका मीठापन है, इसीकी बदौलत सर्जरी चल रही है—सारांश यह कि इसी गंदी बदबूदार चीज़से हमारी सभ्यताकी उज्ज्वलता क़ायम है।

ग्रेफ़ाइट

यह वही पदार्थ है जिसकी पेंसिल बनती है। इसकी बहुत सी खानें हिन्दुस्तानमें भी हैं। अज-मेरके पासकी एक खानके ग्रेफ़ाइटका नमूना मेरे पास है। यह पदार्थ बड़ी ही मुश्किलसे गलता है। बिजलीके भट्टेमें भी, जिसमें अन्य पदार्थ मोम-की तरह पिघल जाते हैं, यह नहीं पिघलता। इसीलिए इसकी वह घरिया बनाई जाती हैं, जो

बिजलीके भट्टेमें काम आती हैं। मशीनोंके ओंघने या लोहेके पालिश करनेमें भी यह काम आता है।

सच पूछिये तो यह पदार्थ हीरेसे ज़्यादा मूल्यवान है। क्योंकि इसकी बनी हुई पेंसिलोंसे संसारको हीरेसे हज़ार गुने मूल्यवान विचार प्राप्त हुए हैं।

कृत्रिम ग्रेफ़ाइट प्राकृतिक ग्रेफ़ाइटसे भी अच्छा होता है। इसे एचीसन कम्पनी बनाती है। रेत और पत्थरके कोयलेका मिश्रण बिजलीके भट्टेमें तपाया जाता है। पहले कर्बनशिलाकणिद (carbon silicide) बनता है, पर शिलाकण ओषिद उड़ जाता है और कर्बन ग्रेफ़ाइटके रूपमें बच रहता है।

कृत्रिम ग्रेफ़ाइट बनानेकी एक और रीति है, जिसमें दबे हुए कोयले या पत्थरके चूर्णमें होकर विद्युत्धारा भेजी जाती है।

हीरा

हीरा वास्तवमें मणि, माणिकोंका सिरताज है। उसकी सी चमक दमक, उसकी सी आभा प्रभा, किसी अन्य मणि माणिकमें नहीं पाई जाती। परन्तु आधुनिक विज्ञानने यह सिद्ध कर दिया है कि हीरा केवल काले कोयलेका गोरा भाई है। उसमें यदि कुछ अन्तर है तो केवल रंगमें, वर्तनीय संख्या (refractive index) में और घनत्वमें, परन्तु रासायनिक दृष्टिसे, ज्ञानियोंकी दृष्टिसे —सांसारिक जीवोंके विचारसे नहीं—वह निरा कोयला है। कोई २०० वर्ष हुए लोगोंको यह विश्वास नहीं होता था कि हीरा जैसी चमत्कारिक वस्तु किसी प्रकार भी काले कोयलेसे सम्बद्ध होगी। परन्तु १७५१ में एक अद्भुत घटना हुई। आस्ट्रियामें फ्रांसिस प्रथम राज्य करते थे। एक दिन उनके पास किसी कीमियागरका गुमनाम खत आया, जिसमें यह बतलाया था कि छोटे छोटे हीरोंको तपाकर बड़ा हीरा किस भांति बनाया जाता है। राजाने नौ हज़ार रुपयेके छोटे छोटे हीरे लेकर एक घरियामें रखकर २४ घंटे तपाये। इस बीचमें उन्हें यह आशा लगी रही कि उक्त समयके अन्त होनेपर एक बड़ा दमदमाता हुआ हीरा मिल जायगा, परन्तु दूसरे दिन उन्हें घरियामें कुछ न मिला।

इसके बाद १७७१ में पेरिसमें मेकर नामी रसशास्त्रीने हीरा जलाकर सिद्ध कर दिया कि हीरा वास्तवमें कोयलेका ही रूपान्तर है।

यह सिद्ध हो जाने पर, कई रसज्ञोंने इस बातका प्रयत्न किया कि कोयलेसे हीरा तय्यार करें। पहले लोगोंने इस बातका प्रयत्न किया कि कोयलेको गलायें, पर उन्हें इस बातमें सफलता न हुई। जन साधारणका यह विश्वास हो चला कि कोयला पिघल नहीं सकता। पर वास्तवमें बात यह है कि कोयलेका द्रवण बिन्दु (melting point) उसके उबाल बिन्दु (boiling point) से ऊंचा है। यही कारण है कि पिघलनेके पहले ही वह उड़ जाता है। मामूली तौरपर उबालबिन्दु, द्रवणबिंदुसे ऊंचा होता है, जिससे चीज़ पहले गलती है और बादमें उबल कर वाष्पमें परिणत हो जाती है। पर हम जानते हैं कि दबाव बढ़ा देनेसे उबालबिंदु बढ़ाया जा सकता है। एक वायुमण्डलके दबावपर पानी १००° श पर उबलता है, परन्तु यदि दबाव १८६ वायुमण्डलके बराबर कर दिया जाय तो पानी ३७०° श पर उबलने लगता है। इसी भांति यदि कर्बन दबाव-डालकर तपाया जाय तो वह पहले गलेगा और बादमें उबल कर भाप बन जायगा। सर विलियम क्रुक्सका कहना है कि १७ वायुमण्डलके दबाव पर कर्बन ४१३०° श पर पिघल सकता है। इस तापक्रमपर यदि कोयलेको गला लें और फिर उसे ठंडा होने दें तो शायद हीरेके रवे बन जायं। पर इतना ऊंचा तापक्रम पैदा करना और उसपर प्रयोग करना, दोनों बातें मुश्किल हैं। तथापि कृत्रिम रीतिसे हीरे बन चुके हैं। हेने और होगर्थ (Hannay and Hogarth) ने पहले पहल इस कार्यमें सफलता प्राप्त की। मयसुअन (Moison)

को इनसे भी अधिक सफलता हुई, पर हीरे बहुत छोटे छोटे बने। इनमेंसे बड़ोंका व्यास एक मिलीमीटरसे अधिक न था। पिघले हुए लोहेमें कर्बन उसी प्रकार घुल जाता है, जिस प्रकार पानीमें शकर घुल जाती है। शर्बतके ठंडे होनेपर मिश्रीके रवे जम जाते हैं, उसी प्रकार लोहेके ठंडे होनेपर कोयला या कर्बन ग्रेफ़ाइटके रूपमें जम जाता है। परन्तु यदि किसी प्रकार दबाव बढ़ा दिया जाय तो ग्रेफ़ाइट न बनकर कर्बन भी रवोंके रूपमें जमेगा, जो हीरे होंगे।

मयसुअनने यह दबाव इस प्रकार पैदा कियाः– उसने एक लोहेका पोला बेलन लिया, जिसका एक सिरा बन्द था। इसमें उसने कोयला भरा और उसका मुंह एक पेचसे बन्द कर दिया और बेलन (Cylinder) को खौलते हुए लोहेमें डुबो दिया। ऐसी अवस्थामें बेलनमें कर्बन प्रवेश कर गया और बेलनका लोहा कर्बनसे संपृक्त हो गया। तदनन्तर उन्होंने सबके सब लोहेको पानीमें डाल दिया। पहले उन्हें बहुत डर लगा, क्योंकि प्रायः ऐसा करनेसे बड़े ज़ोरका धड़ाका हुआ करता है। यह हम जानते हैं कि पिघला हुआ लोहा ठंडा होनेपर फैल जाता है, अतएव पिघला हुआ लोहा जब पानीमें डाला गया, तो ऊपरका हिस्सा ठोस हो गया, पर अन्दरका हिस्सा पिघला हुआ ही रहा। जब उसके ठंडे होनेकी बारी आई, तो उसे फैलनेको जगह कम मिली, क्योंकि वह चारों तरफ़से तो ठोस लोहेसे जकड़ा हुआ था। अतएव उसके अन्दर बहुत भारी दबाव पैदा हो गया। बिलकुल ठंडा हो जानेपर लोहा तेज़ाबमें गलाया गया और बहुत छोटे छोटे हीरे अलग हो गये।

इन प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो गया कि कोयलेसे हीरा बन सकता है। बड़े हीरेंके बनानेमें जो रोक है वह केवल यही है कि हम यह प्रयोग बड़े पयमानेपर कर सकें और बहुत ज़्यादा दबाव पैदा कर सकें।

विचार करनेसे मालूम होता है कि शायद नेचरमें भी हीरे इसी तरीक़ेसे बने होंगे। पृथ्वी तलसे ६०० मील नीचे, पृथ्वीके केन्द्रके चारों तरफ़ एक समुद्र है जिसमें लोहा आदि धातु पिघली हुई अवस्थामें भरी हुई हैं। इस धधकते हुए समुद्रके ऊपर ६०० मील मोटी चट्टानोंकी तहकी वजहसे इतना ज़्यादा दबाव पड़ रहा है कि उसका ख़यालमें भी आना मुश्किल है। इस लोहेके समुद्रमें जिसका तापक्रम भी बहुत ऊंचा है–संभव है कि ६०००° श के लगभग हो और जिस पर दबाव भी बहुत ज़्यादा पड़ रहा है–लाखों करोड़ों मन कर्बन घुला हुआ है। ज़मीनमें जो हमेशा तबदीलियां होती रहती हैं, जिनकी वजहसे ऊपरके हिस्से नीचे चले जाते हैं और नीचेके ऊपर उठ आते हैं, उनके कारण कभी कभी यह कर्बनसे संपृक्त लोहा ज़मीनकी सतह तक या उसके बहुत नज़दीक तक आ जाता है। वहां आकर एक दम ठंडा हो जाता है, फिर वही कैफ़ियत होती है जो मयसुअनके प्रयोगमें हुई थी, और ठंडा होनेपर बड़े बड़े हीरे बन जाते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि किसी ज्वाला मुखीके प्रभाव या क्रियासे भी लोहा ऊपर तक आ पहुंचता है।

फिर यह सवाल पैदा होता है कि यह सिद्धान्त केवल कल्पित है या इसके कुछ सबूत भी हैं।

(१) पहला सबूत तो मयसुअनका विख्यात प्रयोग है।

(२) दूसरा सबूत यह है कि प्रायः ऐसे हीरे भी मिला करते हैं जो बिलकुल गोल हुआ करते हैं। उनकी शकल वैसी ही होती है जैसी किसी द्रवकी उस समय होती है जब वह दूसरे द्रवमें डाल दिया जाता है, जिससे वह मिलता नहीं। इससे ज़ाहिर है कि पहले कर्बन लोहेमें घुला हुआ था, पर बादमें लोहेके ठंडे होने पर उससे न मिलनेके कारण ऐसे रूपमें बदल गया।

(३) तीसरा सबूत यह है कि कभी कभी हीरे खानमेंसे खोद कर निकाले जानेके बाद एक दम फट जाते हैं और उनके बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं। इससे ज़ाहिर होता है कि वह बड़े दबावके नीचे बने थे। दबावके हटनेपर वह बिथर गये।

(४) चैाथा सबूत यह है कि प्रायः हीरे खानोंमें सीधी नालियोंमें पाये जाते हैं। यह नालियां ज़मीनके भीतरसे सीधी सतह तक आती हैं। इनमें एक प्रकारकी नीली मट्टी भरी रहती है, जिसकी मददसे यह अलहदा दिखलाई पड़ती हैं। हीरे इसी नीली मट्टीमें दबे हुए पाये जाते हैं। यह नालियां (pipes) 'पैप्स' कहलाती हैं। यह वास्तवमें पुराने ज्वालामुखियोंके गले हैं।

हीरेके गुण

हीरेका नाम वज्र भी है। वास्तवमें यह प्रायः सबसे अधिक कठोर पदार्थ है। परन्तु यह चटखना भी बहुल होता है। पत्थर पर यदि आप हीरा ऊंचेसे डाल दें तो वह अवश्य चटख जायगा। अगेर कहीं उसपर हथौड़ेकी चोट लग जाय तब तो उसके हज़ारों टुकड़े हो जाते हैं।

हीरा निरा रवेदार कोयला होता है। मुग़ल बादशाहोंके ज़मानेमें, ईश्वरका फ़ज़्ल है, कि यह बात मालूम न थी। वरना कोई मन चला बादशाह अपना हम्माम हीरोंको जला कर गरम कराता या कमसे कम हीरोंकी आगपर अपना खाना बनवाता। एक मन हीरे जलानेमें लगभग ४५ लाख रुपये ख़र्च होते।

हीरा कोयला है। इसीलिए उसके जलनेसे कर्बनद्विओषिद बन जाता है। किसी मन चले सेठ या साहूकारको कहीं यह न सूझ जाय कि हीरेको जलाकर बनाई हुई कर्बनद्विओषिदसे सोडा वाटर बनाकर पिये।

पुराने किस्सोंमें पढ़ा करते हैं कि एक सुन्दरी थी जिसके मुंहसे हीरे झड़ा करते थे। पर हम यह कहनेके लिए तय्यार हैं कि आपकी फूंकमें (प्रश्वासमें) हीरे निकलते हैं, क्योंकि कर्बनद्विओषिद बराबर आपके फेफड़ोंमेंसे निकलती ही रहती है।

संसारमें सबसे बड़ा हीरा जो अब तक पाया गया है वह कलीनेन हीरा है। इसका वज़न ३२५४ कैरट या १० छटांकके क़रीब था। २७ फरवरी १६०५ के दिन Premier Diamond Mine* के मैनेजर शामके ४ या ५ बजे खानके मुआइनेके लिए गये थे। वहां उन्हें एक ऊंचे स्थान पर कोई चमकती हुई चीज़ नज़र आई, जिसे देख वह जल्दीसे चढ़ गये और खोदने लगे। जल्दीमें उनका चाकू भी टूट गया, पर प्राप्त हुआ यह अमूल्य रत्न।

सज्जनो, आपने कोयलेके रूपान्तरोंको देखा, उनके गुणोंपर विचार किया और यह जान लिया कि काला कोयला और गोरा हीरा दोनों ईश्वरके सिरजे हुए हैं। दोनों इस संसारमें अपना अपना काम पूरा करते हैं। रासायनिक दृष्टि से दोनों एक ही हैं। असलियत दोनोंकी एक ही है। अगर एकमें चमक ज़्यादा है, तो दूसरेकी उपयोगिता अधिक है। इसलिए हमें आधुनिक विज्ञानका शुक्र गुज़ार होना चाहिये, जिसने हमारी आंखें खोलदी हैं और बतला दिया है कि असलियत क्या है।

कोहनूर औ' कोयला उभय अभेद बताया
मिट्टी ही मणि, लाल, नील, पुखराज, सिखाया
नीच ऊंच लघु महा एकसा कर दिखलाया
ज्ञानीको समदर्शीपनका पाठ पढ़ाया
जिसने रजकण औ' सूर्य का एक मूल दर्सा दिया
जय जय विज्ञान-पयोदकी ज्ञानामृत बरसा दिया।

(—रामदास गौड़)

---

* प्रीमियर डाइमण्ड माइन अफरीकामें एक हीरोंकी खान है।

*खेतीका प्राण और उसकी रक्षा

३—खेतीके काम और यंत्र

(लेखक—'एल. ए-जी.')

पूर्व लिखित कार्य खेतको बुवाईके योग्य बनानेके लिए किये जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि जुताईके पश्चात् ही पटेला दिया जाय या गुड़ाईके पश्चात् ही हैरो (Harrow) चलाया जाय। जिस कामके करनेकी जब आवश्यकता समझी जाय तभी वह समयानुसार करना चाहिये।

बोनेके पूर्वके कामोंको समयानुसार निम्नलिखित विभागोंमें विभाजित कर सकते हैं:—

(१) गरमीकी जुताइयां

(२) बरसातकी जुताइयां

(३) रबीकी जुताइयां

(१) गरमीकी जुताइयां

यह जुताइयां रबीके कटनेके पश्चात् और वर्षाके आरम्भ होने तक की जाती हैं। प्रायः मई और जून (वैशाख-ज्येष्ठ) के महीनोंमें जुताइयां की जाती है। इनके करनेसे निम्न लिखित लाभ होते हैं:—

(क) रबीकी फ़स्लोंकी जड़ें उखड़ जाती हैं।

(ख) कीड़े और उनके अंडे ऊपर आ जाते हैं। उन्हें चिड़िया खा जाती हैं।

(ग) सूरजकी किरणों और हवाको ज़मीनके अन्दर जानेका मौक़ा मिलता है, जिससे मिट्टीके कणोंमें भौतिक और रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं और पौदोंके लिए अधिक खुराक तैयार हो जाती है।

(घ) आनेवाली वर्षाका पानी ऐसी ज़मीन अधिक सोख लेती है। यदि जोती न जाय तो पानी बह जाता है और जब फ़स्ल बोई जाती है तो अधिक सिंचाई करनी पड़ती है।

यह जुताइयां गहरा जोतनेवाले हलोंसे करनी चाहियें। इस कामके लिए अँग्रेज़ी मिट्टी पलटनेवाले हल बड़े उपयुक्त हैं, क्योंकि देशी हल उनके बराबर गहरे नहीं जाते। इसके अतिरिक्त ज़मीन भी कड़ी होती है, जिसे कि देशी हल जोत नहीं सकते। इस कामको करनेके लिए उत्तम यह होगा कि यदि नहर पास हो तो सिंचाई करके जुताई की जाय या जब हलकी बारिश हो तो इसे काट दिया जाय। गरमियोंमें खेत केवल जोतकर छोड़ दिये जाते हैं। धूप, हवा, पानी इस खुली हुई ज़मीनपर अपना काम किया करते हैं।

(२) बरसातकी जुताइयां

वर्षा होनेके साथ ही खर पतवारोंके बीज जो खेतमें पड़े रहते हैं नमी पाकर उग आते हैं और खेत हरा भरा दिखाई देता है। यह पौदे आनेवाली फ़स्लकी ख़ुराकको कम करना आरम्भ करते हैं। इसलिए इनका नष्ट करना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त पानी पड़नेसे खेतकी मिट्टी फिर सख़्त हो जाती है और अधिक पानी नहीं सोख सकती। इसलिए बर्सातके दिनोंमें फिर जोतना आरम्भ करना चाहिये। इन दिनोंकी जुताई भी मिट्टी पलटनेवाले हलोंसे करनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे सब खरपतवार उखड़ कर दब जायँगे और सड़कर हरी खादका काम देंगे। ज़मीन भी नरम हो जायगी और आगे होनेवाली वर्षाके पानीको खूब सोखेगी। यह जुताई जब कभी मौक़ा मिले कर देनी चाहिये। कमसे कम दो बार तो अवश्य जोतना चाहिये। कै बार जुताई करनी चाहिये यह आकाशके खुलने पर निर्भर है। जितनी बार जुताई की जायगी उतने कम खर पतवार खेतमें उगेंगे।

यदि हलसे जुताई करनेका समय न मिले तो कलटीवेटर (चित्र २ पृष्ठ १५६) या स्प्रिंगटूथ हैरो (चित्र ६ पृष्ठ १५५) ही चला देना चाहिये।

* विज्ञान भाग ८ के पृष्ठ २६३ और विज्ञान भाग ६ के पृष्ठ १४४ से सम्मिलित।

Agriculture कृषि]

नोटः—गरमी और बर्सातकी जुताइयोंमें पटेला कभी न चलाना चाहिये, क्योंकि इन दिनोंकी जुताइयोंका मुख्य उद्देश्य ज़मीनको धूप, हवा और पानीके प्रभावके लिए खोलना ही है।

(३) रबीकी जुताइयां

वर्षाके समाप्त हो जानेके पश्चात् यह जुताइयां की जाती हैं। इनका अभिप्राय बोये जानेवाली फ़स्लके लिए नरम बारीक ज़मीन तैयार करना, खरपतवार (weeds) का दूर करना और ज़मीनमें अधिकसे अधिक नमीका क़ायम रखना है।

ज़मीनके नरम और बारीक हो जानेसे पौदोंकी जड़ें सरलतासे खुराक ले सकेंगी और इधर उधर फैल सकेंगी। खर पतवारके दूर हो जानेसे पौदोंकी खुराक कम न होगी। खेतमें अधिक नमी रहनेसे सिंचाई कम करनी पड़ेगी, क्योंकि रबीकी फ़स्लें खेतकी नमी पाकर या सिंचाईकी नमी पाकर बढ़ती हैं। उन्हें वर्षाका जल नहीं मिलता, क्योंकि इन दिनोंमें वर्षा नहीं होती। यदि होती भी है तो बहुत थोड़ी, जोकि इस फ़स्लके लिए काफ़ी नहीं होती।

उपरोक्त उद्देश्योंको ध्यानमें रखते हुये रबीकी जुताई आरम्भ करनी चाहिये। प्रायः देशी हलोंका प्रयोग करते हैं। मिट्टी पलटनेवाले हलोंका इस्तेमाल नहीं करते, क्योंकि उनसे जुताई अधिक गहरी होती है और नमी धूप और हवाके असरसे अधिक उड़ जाती है। पटेलेसे यदि उसे दाबना भी चाहें तो अच्छी तरहसे दब नहीं पाती। देशी हलसे एकदम गहरी जुताई नहीं होती। कई बार इस हलके चलानेसे गहरी जुताई हो पाती है। इससे यह लाभ होता है कि हर जुताईके बाद जो डले पड़ जाते हैं वे पटेलेकी रगड़से बारीक होते चले जाते हैं। मिट्टी भी दब जाती है और खुली हुई नहीं रहती, जिससे कि नमी नहीं उड़ने पाती। इसके अतिरिक्त खर पतवार भी इसके चलानेसे नहीं दबते। वह उखड़ जाते हैं। दबानेकी इसलिए आवश्यकता नहीं होती कि उन्हें सड़कर खाद बननेका समय तो मिलता नहीं वरन् वह खेतमें दबे रह कर दीमकका भोजन बन जाते हैं, जिससे कि आनेवाली फ़स्लमें दीमक लग जाती है। इसलिए उन्हें उखाड़ कर दूर कर देना ही उचित होता है। उपरोक्त लाभोंको ध्यानमें रखते हुये इस समयकी जुताइयोंके लिए देशी हल, पटेला, हैरो और कलटीवेटर ही लाभकारी हैं। मिट्टी पलटनेवाले हलोंको तो इस समय गोदाममें ही रख देना चाहिये।

वर्षाके बाद खेतोंका धरातल एकसा नहीं होता। गरमी और बर्सातकी जुताइयोंके डले खेतोंमें पड़े रहते हैं। ऐसे ऊंचे नीचे खेतोंमें हल एकसी जुताई नहीं करता। इसलिए जुताई करनेसे पहिले खेतमें पटेला चला देना चाहिये, जिससे कि नरम डले टूट जायँ और पटेलेकी रगड़से ऊंची जगहकी मिट्टी नीची जगहमें आकर गड्ढोंको भरकर खेतको पहिलेकी अपेक्षा अधिक एकसा कर दे। जुताईके पूर्व पटेला चला देनेसे दूसरा लाभ यह होता है कि खेतोंकी नमी अधिक नहीं उड़ने पाती, क्योंकि इसके चला देनेसे ऊपरकी मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और नीचेकी मिट्टीको सूखने नहीं देती (देखो विज्ञान भाग ८ संख्या ६ पृष्ठ २७०, कौलम दूसरा)। यदि ऐसा न किया जायगा तो खेत सूख जायगा, क्योंकि सब खेत एक दिनमें तो जुत ही न सकेंगे। सूख जाने से जोतनेपर डले पड़ जाते हैं और फिर उन्हें तोड़ना कठिन हो जाता है। इसलिए पहिले पटेला चला देना चाहिये; फिर जुताई आरम्भ करनी चाहिये।

हर एक जुताईके पश्चात् पटेला चलाना चाहिये। ऐसा करनेसे डले टूट जाते हैं और मिट्टी खुली नहीं रहती, जिससे कि नमी नहीं उड़ने पाती और डले भी कड़े नहीं पड़ते। यदि जुताई शामको पूरी हो तो पटेला सवेरे देना चाहिये। ऐसा करनेसे रातको जो ओस पड़ेगी वह खेतमें अन्दर तक जज़्ब हो जायगी।

खेतकी सफ़ाईकी ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। जो खर पतवार जुताईसे उखड़ गये हों उन्हें हैरो चलाकर इकट्ठा कर लेना चाहिये और फिर उन्हें खेतके बाहिर फिकवा देना चाहिये। यदि वह खेतमें पड़े रहेंगे तो दीमक बढ़ानेके काम आयंगे। यदि हैरो पास न हो तो आदमियों द्वारा बिनवा देना चाहिये।

हैरोका इस्तेमाल इस समय बड़ा लाभकारी होता है। इससे जुते हुये खेतके डले ऊपर आ जाते हैं और पटेले द्वारा उन्हें तोड़नेमें आसानी रहती है।

जब खेतकी मिट्टी बारीक और नरम हो जाय, खर पतवार बिलकुल दूर हो जायं और खेतमें काफ़ी नमी ऊपर तक रहे तब पटेला देकर खेतोंको रबीकी बुवाईके लिए छोड़ देना चाहिये।

कभी कभी पटेला देनेके बाद बहुत कम गहरा जोतनेवाला हैरो चलाकर खेतको बुवाईके लिए छोड़ देते हैं। ऐसा तभी किया जाता है जबकि बुवाई देरमें होती है।

हीरा

[ले०—श्री० जवाहरलाल गुप्त, बी. ए.]

संसारमें जितने रत्न मिलते हैं, उनमें हीरा सर्वोत्तम समझा जाता है। प्रकाश पड़नेपर जैसा वह चमकता है और जैसे उसमें तरह तरहके मनोहर रङ्ग दिखाई पड़ते हैं वैसे किसी अन्य रत्नमें नहीं दिखाई पड़ते। इस चमक दमकका कारण उसकी प्रकाशके वर्तन और परावर्तन करनेकी अपूर्व शक्ति है, जिसको रत्नके काटने और पालिश करनेकी विविध विधियोंसे और भी सहायता मिल जाती है। हीरेका नाम वज्र भी है। वास्तवमें हीरेसे अधिक कठोर पदार्थ संसारमें शायद ही कोई हो। इतना कठोर होते हुए भी हीरा आसानीसे टूट जाता है, क्योंकि यह चटखना होता है। कभी कभी तो मुट्ठीमें रखनेसे गरमी पाकर ही हीरा चटख जाता है। जौहरी लोग नये ग्राहकोंको धोखा देनेको प्रायः यह परामर्श दे देते हैं कि मुट्ठीमें भींचकर ले जाना, जिसमें कोई गिरहकट जेब काटकर रत्नको ले न सके या जेबसे गिर पड़नेका भय न रहे। प्रायः परिणाम यह होता है कि बेचारेको रत्नके दाम देने पड़ते हैं। कभी कभी पैकेटोंमें रखे हुए अपने आप भी हीरे चटख जाते हैं। ऊंचेसे डालनेसे भी हीरा चटख जाता है। जो कहीं हथौड़ेकी चोट उसपर पड़ जाय तब तो उसके हज़ारों टुकड़े हो जाते हैं।

यूरोप में कुछ समय (लगभग ६० वर्ष) हुआ जौहरियोंका ख़याल था कि हीरेकी परख यह है कि उसे निहाईपर रखकर हथौड़ेकी चोट लगाओ। यदि हीरा असली होगा तो या तो हथौड़ा टूट जायगा या हीरा निहाईमें धंस जायगा। इस ग़लत ख़यालसे न जाने कितने हीरोंका सर्वनाश हुआ और न जाने कितने सच्चे रत्न नक़ली समझे जाकर फेंक दिये गये।

हीरेपर तेज़ाबोंका कुछ प्रभाव नहीं होता। गरम करनेसे उसपर एक हलकी अपारदर्शी तह जम जाती है, परन्तु ज़्यादा गरम करनेसे वह जल जाता है और कर्बनद्विओषिद् बन जाता है। न्यूटन ताप तथा प्रकाशके कणसिद्धान्तके माननेवाले थे। इसीसे सम्भवतः हीरेकी चमक दमक देखकर उन्होंने अनुमान कर लिया कि हीरा जलनेवाला पदार्थ है, परन्तु पहला प्रयोग जिससे उक्त बात सिद्ध हुई १६६४ में, फ़्लोरेंसकी विज्ञान परिषद्में (Academy of Florence) हुआ। बड़े तेज़ आतिशी शीशों द्वारा सूर्यकी किरणें एक हीरेपर डाली गईं। पहले हीरा चटखा, फिर उसमेंसे चिंगारियां निकलीं और वह ग़ायब हो गया। आस्ट्रियाके राजा फ्रांसिस प्रथमने भी हीरों और लालोंको न्यारियोंकी भट्टीमें रखकर २४ घंटे तक इस आशासे तपाया कि एक बड़ा हीरा बन

जायगा, पर प्रयोगके अन्तमें उसे हीरा एक भी न मिला। लाल अवश्य ज्योंके त्यों मिले। सं० १७५१ में फ्रांसमें कुछ रसज्ञोंने भी हीरा जलाया, पर लेब्लेंकने इस कथनकी सच्चाईमें सन्देह प्रकट करते हुए कहा कि मैं स्वयम् कईबार हीरोंको घरियामें रखकर तपाया है। लेब्लेङ्कके कथनका समर्थन मैलर्ड (Maillard) नामी जौहरीने एक प्रयोग भरी सभामें दिखलाकर किया। पर बादमें लोगोंको मालूम हुआ कि उक्त प्रयोगमें हीरे कोयलेकी तहके नीचे दबे हुए थे और उनतक हवा नहीं पहुंच सकती थी। बिना हवा पहुंचे हीरोंका जलना असम्भव था। जब लेवोयसियरने ओषजनमें हीरा जला कर दिखला दिया तब लोगों को हीरेके जल सकनेमें विश्वास होने लगा।

हीरे कै तरहके पाये जाते हैं?

प्रकृतिमें हीरे तीन तरहके पाये जाते हैं:—

(१) जिनके रवे पूर्ण होते हैं। इन्हीं का प्रयोग जवाहिरातमें होता है।

(२) जिनके रवे अपूर्ण होते हैं–यह रवोंसे अधिक कठोर होते हैं। इन्हें बोर्ट (bort) कहते हैं। जो हीरे छोटे टुकड़े काटे या पालिश नहीं किये जा सकते, उन्हें भी बोर्ट कहते हैं।

(३) कार्बोनेडो—यह काले या भूरे होते हैं। इनकी निश्चित आकृति नहीं होती अर्थात् रवेदार नहीं होते। इसीसे इनमें फटन (cleavage) नहीं होती।

हीरेके रवोंका आकार

हीरोंके रवे प्राकृतावस्थामें अठ पहलू या बारह-पहलू होते हैं। प्रत्येक पहलू प्रायः या तो नतोदर (बीचमें नीचा या दबा हुआ) होता है या उन्नतोदर (उभरा हुआ)। प्रायः रगड़ खाकर* या अन्य भूगर्भ सम्बन्धी कारणोंसे यह गोल गेंदके आकारके भी पाये जाते हैं। भारतीय हीरे प्रायः अठपहलू और ब्राज़िल देशीय (Brazilian) बारह पहलू होते हैं। जितने रवेदार पदार्थ होते हैं वह प्रायः तहोंके एकके ऊपर एक जमनेसे बनते हैं। कहीं तो यह तहें स्पष्ट दिखाई देती हैं, कहीं पर नहीं। परन्तु यदि रवेको हम काटना चाहें, तो वह अपने पहलुओंके समानान्तर सहज ही फट जाता है। इसीसे कहा जाता है कि उसमें फटन होती है। अतएव फटन रवेदार पदार्थोंका एक विशेष गुण है। हीरे भी अठपहल और बारहपहलके पहलुओं या तलोंके समानान्तर दिशाओंमें सहज ही फट या कट सकते हैं।

हीरेका रङ्ग

सर्वोत्तम हीरे तो स्वच्छ श्वेत रङ्गके होते हैं, क्योंकि जैसे इन्द्रधनुषके से रङ्ग उसमें दिखाई पड़ते हैं, वैसे रङ्गीन हीरोंमें नहीं नज़र आते। इसीको रङ्गकी ज्वाला (fire) कहते हैं।

अधिकांश हीरे सफ़ेद, पीले या भूरे होते हैं। हरे इनसे कम पाये जाते हैं। गहरे लाल रंगके हीरे और भी कम होते हैं। नीले रङ्गके तो सिवाय भारतके कहीं अन्यत्र नहीं पाये जाते। काले, दूधिया और अपारदर्शी मोतिया रङ्गके हीरे भी कभी कभी पाये जाते हैं।

हीरेकी उत्पत्ति

यूरोपमें एक कथा फैली हुई है कि बृहस्पतिदेवने एक बार सब मनुष्योंको यह आज्ञा दी कि मुझको भूल जाओ। एक मनुष्यने, जिसका नाम डायमण्ड-ओफ़-क्रीट था, उनकी आज्ञा का पालन करनेसे इन्कार किया। तिसपर क्रुद्ध होकर बृहस्पतिदेवने श्राप दिया कि पत्थर हो जा। उसीसे हीरोंकी उत्पत्ति हुई। यह तो हुई दन्तकथा, वैज्ञानिक दृष्टिसे हीरोंकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इसका वृत्तान्त पाठक विज्ञानके इसी अंकके पृष्ठ २४१ पर पायंगे।

*पहननेके कपड़ेोंकी रगड़से अंगूठी, हार आदिमें जड़े हुए हीरे घिस जाते हैं और उनकी पालिश खराब होजाती है। कहां कठोर हीरा और कहां मुलायम रेशम, तदपि निरन्तर घर्षणसे रेशम हीरेको घिस ही देता है!

दाग़ी हीरे

दोष रहित हीरोंका संसारमें अभाव है। प्रायः सभी हीरे दूषित होते हैं। उनमें दाग़ या धब्बे रहते हैं। इन दाग़ोंको निकाल देनेके लिए और रत्नमें समुचित चमक दमक पैदा करनेके लिए ही हीरोंको काटते और पालिश करते हैं। पर यह काम बड़ी हुशियारीका है। संसारमें एम्सटर्डम ही ऐसा नगर है जहां यह काम बड़े पैमानेपर होता है। बड़े बड़े हीरोंकी कटाई और पालिश वहीं होती है। छोटे मोटे कामके लिए तो हर जगह हक्काक (lapidaries) होते हैं।

हिन्दुस्तानका हीरा

सं० १७५६ वि० तक भारतकी हीरेकी खानें ही संसारमें सबसे बड़ी खानें थीं। १७२१ वि० में टेवरनियर नामी एक फ्रांसीसी सय्याह भारतवर्षमें आया था। उसने लिखा है कि गोलकण्डामें साठ हज़ार आदमी काम करते थे। इसी खानसे कोहेनूर, होप, ओरलोफ, पिट आदि जगत् प्रसिद्ध हीरे निकले थे। आजकल हीरेकी खानें तीन प्रदेशोंमें स्थित हैं। पहला प्रदेश है मद्रास प्रान्त, जिसमें कदापा, बेलरी, करनूल, किशना, गोदावरी और गोलकण्डा शामिल हैं। दूसरा प्रदेश पहलेसे उत्तरकी तरफ़ महानदी और गोदावरीके बीचमें है। इसके अन्तर्गत हैं सम्बलपुर, चन्दा आदि। तीसरा प्रदेश है मध्य भारत, जिसमें पन्ना रियासत भी शामिल है।

संसारके हीरोंके निकासका हिन्दुस्तानका निकास एक सूक्ष्मांश है।

सम्भलपुरमें रेतको धोकर हीरे निकालनेका काम थारा और टोरा जातिके लोग करते हैं। सुनते हैं कि उन्हें जागीरमें १६ गांव लगे हुए हैं। यहांपर जो हीरे पाये जाते हैं, वह चार तरहके माने जाते हैं, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। *

बुंदेलखंडमें सर्वोत्तम हीरे 'मोती गुल' कहलाते हैं। दूसरे दर्जेके, जो हरी झांई लिए हुए होते हैं 'मानिक' कहलाते हैं। तीसरे और चौथे दर्जेके जो पीली और भूरी झांई लिए हुए होते हैं 'पन्ना' और 'बनस्पति' कहलाते हैं।

जौहरी हीरोंको तीन तरहका मानते हैं:— 'हीरा बरङ्ग नौसादर', 'हीरा मक़दूनी', 'अलमास हदीदी †

भारतीय हीरे ब्राज़िल या अफ्रीकाके हीरोंसे अधिक भारी होते हैं और उनमें चमक भी ज़्यादा होती है।

हीरोंको पक्का हीरा और बिल्लौरको कच्चा हीरा कहते हैं।

ब्राज़िलकी हीरेकी खान

ब्राज़िलमें सोना नदियोंकी रेत धोकर निकाला करते थे। सोनेके साथ उन्हें कुछ रवे भी मिला करते थे। पहले तो वहांके आदमी इन्हें निरे चमकते हुए पत्थर समझते थे और उनसे ताश खेलनेमें कौंटर्सका काम लिया करते थे। एक बार एक पादरी साहब भारतकी सैर करते हुए वहां पहुंचे। वह भारतमें हीरे देख गये थे। उनको यह खयाल हुआ कि यह रवे सम्भवतः हीरे हैं। अतएव वह कुछ रवे लेकर लिसबन आये और जौहरियोंसे परख करवाई। जब यूरोपमें यह मालूम हुआ कि ब्राज़िलमें भी हीरे मिलने लगे हैं तो वहांके जौहरियोंमें बड़ी खलबली मच गई। उन्होंने सोचा कि कदाचित् ब्राज़िलसे बहुत सस्ते हीरे यूरोपके बाज़ारोंमें आगये तो उनके पहलेके रखे हुए हीरोंको कोई न पूछेगा और उन्हें या तो सस्ते बेचने पड़ेंगे या नुकसान उठाना पड़ेगा। अतएव उन लोगोंने मिलकर यह मशहूर कर दिया कि ब्राज़िलमें हीरे पाये जानेकी ख़बर बिलकुल ग़लत है। भारतके ख़राब हीरे जो रद्दी समझ कर बहुत सस्ते बेच दिये जाते हैं वही

* Emanuels Diamonds and Precious Stones, pp. 55.

† Powell's Punjab Products, pp 49, Vol. I.

ब्राज़िलवाले ले जाते हैं और ब्राज़िलसे यूरोप भेज देते हैं। परन्तु पुर्तगाली जौहरी इनसे होशियार निकले। वह ब्राज़िलसे हीरे गोआ नगरको भेजते थे, जहांपर वह भारतीय हीरोंके नामसे बेच दिये जाते थे। इस प्रकार ब्राज़िलके हीरे हिन्दुस्तानमें होकर यूरोप पहुंचने लगे। ब्राज़िलीय हीरोंके बाज़ारमें आनेसे हीरोंका मूल्य आधा होगया।

ब्राज़िलमें हीरे कैसे निकाले जाते हैं?

जब अप्रेलसे लेकर अक्तूबर तक गर्मी पड़ती है और नदियोंका पानी सूख कर कम हो जाता है तो नहरें खोद कर नदियोंको उनमें मोड़ देते हैं, जिससे उनको तलैटी सूखी रह जाय। तदनन्तर दस या बारह फ़ुट तक मट्टी खोदते हैं और न्यारियोंके झोपड़ोंके पास जमा कर देते हैं। गर्मीभर यही काम जारी रहता है। वर्षाऋतुके आरम्भ होते ही धोनेका काम शुरू होता है। प्रत्येक न्यारियेके घरमें एक द्रोणी होती है, जिसे केनो (Canoes) कहते हैं। हरेकमें लगभग डेढ़ मन मट्टी आ जाती है। मट्टी भरकर पानीकी एक धारा केनोमें भेजी जाती है। मट्टीको बराबर हिलाते जाते हैं। पानीकी धार हलकी मट्टीको बहाकर ले जाती है। यह क्रिया तब तक जारी रहती है जबतक कि द्रोणीमेंसे साफ़ पानी बहकर नहीं निकलने लगता। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि सब मट्टी बहकर चली गई और केवल पत्थर, हीरे आदि द्रोणीके तलेमें आ बैठे। तब पानीकी धारा बन्द करदी जाती है और पत्थरोंकी एक एक करके परीक्षा की जाती है। जब कोई हीरा हाथ पड़ जाता है तो न्यारिया ताली बजाता है। फौरन ओवरसियर जो वहां बराबर टहलता रहता है आकर हीरा ले लेता है और उस पानी भरे बर्तनमें डाल देता है जो झोपड़ोंके बीचमें लटका रहता है। शामको दिनभरमें जितने हीरे निकलते हैं तोले जाते हैं और उनका वज़न दर्ज कर लिया जाता है। पहले जब दास-प्रथा प्रचलित थी अठारह कैरटके वज़नके हीरेके खोज निकालने पर दासको मुक्ति दे दी जाती थी। दासको फूलोंका मुकुट पहनाया जाता था और जलूसके साथ उसे खानके मालिकके पास ले जाते थे। मालिक उसे कुछ इनाम देता था और मुक्त कर देता था।

ओवरसियरोंकी कड़ी देख भाल होते हुए भी बहुत चोरी हुआ करती थीं। दास हीरोंको अपने बालोंमें, मुंहमें, कानोंमें या अंगुलियोंके बीचमें दबा लिया करते थे। कभी कभी वह हीरोंको इधर उधर इस आशामें फेंक दिया करते थे कि रातमें ढूंढ़ लेंगे।

किम्बरलीकी हीरोंकी खान

यह वर्तमान समयमें संसारमें सबसे बड़ी खान है। इसका सविस्तार वर्णन पाठकोंके भेंट फिर कभी किया जायगा।

रीठा

[ले०—पं० रामानन्द त्रिपाठी, एम. ए.]

दो प्रकारके रीठेके पेड़ हिन्दुस्तानमें पाये जाते हैं—एकको सेपिण्डस म्यूकोरोस्सी (Sapindus mukorossi) और दूसरेको सेपिण्डस लौरी फोलियस (Sapindus laurifolius) कहते हैं। पहले प्रकारके पेड़ बङ्गालसे लेकर चिनाबकी घाटीतक पाये जाते हैं। ज्यादः तर यह बोये या लगाये जाते हैं, पर कहीं कहीं अपने आप भी पैदा होते हैं। दूसरे प्रकारका पेड़ बङ्गाल, मध्यप्रदेश, राजपूताना, बम्बई, दखिन और लङ्कामें पाया जाता है। पहली जातिके रीठेके फल जनवरीमें और दूसरीके फल मार्चमें तोड़ने लायक़ हो जाते हैं।

रीठेको हम प्राकृतिक साबुन कह सकते हैं। सच पूछिये तो यह साबुनसे कई तरहसे अच्छा है। रंगरेज़ोंका ख़याल है कि रीठेसे कपड़ा धोकर, कई विशेष रंगोंसे रंगा जाय तो रंग

उसपर खूब चढ़ते हैं। काश्मीरमें दुशाले बनानेवाले यूरोपीय साबुनको कभी भूल कर भी काममें नहीं लाते। अच्छे अच्छे धोबी भी बढ़िया रेशमी कपड़ोंको धोनेमें रीठेका ही प्रयोग करते हैं। सुनार लोग हवामें रखे रहनेसे जो चांदीके बर्तन या ज़ेवर मैले या दाग़ी पड़ जाते हैं, उनको रीठेसे ही साफ़ करते हैं।

दवाओंमें रीठेका प्रयोग

वैद्य तथा हकीम दोनों ही रीठेका दवाओंमें प्रयोग करते हैं। फोड़े फुन्सियोंपर तो यह ऊपरसे मरहमोंमें लगाया जाता है। खानेसे सरके दर्दको अच्छा करता है और कफ़को ढीला करके निकाल देता है। हरित रोग (chlorosis) में तथा अपस्मारमें भी इसका प्रयोग होता है।

शहदकी मक्खियों और मछलियोंका बैरी

स्टोरीने १८८० में उदयपुरमें यह जांच की कि रीठेके पेड़के फूलोंका शहद मक्खियोंके लिए बड़ा विषैला होता है। इसी प्रकार यदि पीसकर रीठा पानीमें डाल दिया जाय तो उसमें रहनेवाली मछलियां मर जाती हैं।

रीठेका अद्भुत प्रयोग

इलायची तोड़े जानेके बाद धूपमें सुखाई जाती हैं। यही हरी इलायची होती हैं। परन्तु बरसातमें, जब धूप नहीं निकलती, तो आगपर इलायचियोंको सुखाते हैं। प्रायः ऐसा करनेमें उनका रंग भद्दा हो जाता है। रंगके ठीक करनेके लिए इलायचियोंको या तो रीठेसे धोते हैं या गंधकको जलाकर उसकी धुआंका प्रयोग करते हैं। सुना जाता है कि रीठेका प्रयोग करनेसे न केवल रंग ही सुधर जाता है, किन्तु स्वाद भी अच्छा हो जाता है।

बाल साफ़ करनेमें रीठेका प्रयोग

सर धोनेकेलिए रीठेसे बढ़कर कोई और पदार्थ नहीं है। प्रायः स्त्रियां सर धोनेमें रीठेका प्रयोग किया करती हैं। साबुनकी अपेक्षा रीठेका प्रयोग श्रेयस्कर है।

प्रकाश विज्ञान

[ले०—प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

(गताङ्क से सम्मिलित)

किन्तु व्यतिकरण और विकृति ही ऐसी घटनाएँ नहीं हैं, जिनमें तरंग सिद्धान्तने कण सिद्धान्तपर विजय प्राप्त की। रंगोंको ही लीजिये। न्यूटनके श्वेत प्रकाश सम्बंधी आविष्कारसे यह स्पष्ट हो गया था कि प्रकाशमें अवश्य ऐसा कोई गुण होना चाहिये जिसकी न्यूनाधिकतासे सप्तरंजनके रंगोंकी सृष्टि होती है। कण सिद्धान्तके उपासकोंने कभी साफ़ तौरपर इस गुणकी व्याख्या नहीं की, क्योंकि इस विषयमें जो कुछ कल्पना की जाती थी उसीमें कुछ न कुछ आपत्ति खड़ी हो जाती थी। किन्तु तरंग सिद्धान्तमें एक अंश ऐसा है, जो न्यूनाधिक प्रत्येक तरंगमें होना अनिवार्य है—तरंगान्तर अथवा अनुकालिक समय। यह मान लेनेसे कि भिन्न भिन्नतरंगान्तरवाली तरंगोंसे ही भिन्न भिन्न रंगोंकी सृष्टि होती है, सब आपत्तियोंका निराकरण हो जाता है। इसकेलिए हमारे पास शब्द-शास्त्रकी साक्षी मौजूद है, क्योंकि भिन्न भिन्न सुरोंका ज्ञान भी कानोंको तरंगान्तर या अनुकालिक समयके भेद द्वारा होता है। इसमें एक विशेषता यह भी है कि इस तरंगान्तरको छोड़कर तरंग सिद्धान्तमें ऐसी कोई बात ही नहीं, जिसपर रंगोंका अस्तित्व निर्भर माना जा सके।

साबुनके बुलबुलों, गैस या द्रव पदार्थोंकी पतली झिल्लियों या दो कांचके टुकड़ोंके बीचमें बहुत पतली वायुकी तहके कारण जो रंग देख पड़ते हैं उनका वर्णन ऊपर हो चुका है। इनकी व्याख्या करनेके लिए न्यूटनने "दौरों" की कल्पना की थी। किन्तु फिर भी वह केवल उन रंगोंकी व्याख्या कर सके जो प्रकाशके लम्ब रूप पड़नेसे बनते हैं। टेढ़ी प्रकाश किरणोंसे उत्पन्न

हुए रंगोंकी व्याख्या उनसे न हो सकी। आगे चलकर ज्ञात होगा कि तरंग सिद्धान्त व्यतिकरणसे इन सब बातोंको बहुत अच्छी तरह बिना किसी नवीन कल्पनाके समझा देता है।

यह भी ऊपर देखा जा चुका है कि जल, कांच आदि पारदर्शक पदार्थोंमें प्रकाशका वेग प्रयोगों-द्वारा नाप लिया गया है और परिणाम तरंग-सिद्धान्तके सर्वथा अनुकूल निकला है। कण सिद्धान्तने बिल्कुल उलटी बात बतलाई थी। उसके अनुसार तो इन पदार्थोंमें प्रकाश वायुकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे चलता है।

किन्तु ध्रुवीभवनकी घटनाके विषयमें आप क्या कहेंगे? पिछले अध्यायोंमें लिखा जा चुका है कि टूरमलीनके रवेमें होकर निकलनेपर प्रकाशमें कुछ अद्भुत गुण आ जाता है। अगर इस रवेसे दूसरा रवा समानान्तर रख दिया जाय तो प्रकाश उसमेंसे भी पहिले रवेकी भांति निकल जायगा। किन्तु यदि इस दूसरे रवेको एक समकोणपर घुमा दिया जाय तो वह प्रकाश उसमेंसे नहीं निकल सकता। कण सिद्धान्तके अनुसार यह किसी प्रकार सम्भव हो ही नहीं सकता। किन्तु तरंग सिद्धान्तको इसमें कुछ आपत्ति नहां है। उसे तो इस घटनासे अधिक बल मिला है और इसकी सहायतासे ईथर तरंगोंके विषयमें बहुत सी नवीन बातें ज्ञात हुई हैं। प्रकाशको तरंगमय कहते ही प्रश्न उपस्थित होता है कि तरंगें तिर्यक् तरंगें हैं अथवा अनुदैर्घ्य (Longitudinal) इस प्रश्नका उत्तर बिना ध्रुवीभवनकी घटनाके मिलना कठिन था। किन्तु इस घटनाने इस प्रश्नको सरल बना दिया है। इस स्थानपर यद्यपि इसकी पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती, किन्तु एक उदाहरणसे घटनाको समझानेका प्रयत्न किया जायगा। मान लीजिये कि आपके पास बहुत से जानवर हैं, जिनमें कुछ ऐसे हैं जो सारसकी भांति लम्बे तो हैं, किन्तु चौड़े कुछ भी नहीं और कुछ ऐसे जो कछुएकी भांति चौड़े तो बहुत हैं किन्तु जिनमें लम्बाईका नाम भी नहीं। कुछ ऐसे भी हैं जिनकी लम्बाई और चौड़ाई दोनों हैं। इन सब जानवरोंको आप एक ऐसे पिंजरेमें बंद कर दीजिये, जिसमें खड़ी लोहेकी छड़ें लगी हों। क्या आप समझते हैं कि सारस और उसके समान दूसरे जानवर उसमें बंद रह जायंगे? अन्य जानवर तो अवश्य बंद रहेंगे, किन्तु सारस आदि बिना रोक टोक निकल जायंगे। इनके रोकनेको कुछ और छड़ें लगानी पड़ेंगी। किन्तु इन्हें खड़ी लगानेसे कोई लाभ नहीं। हां, यदि आड़ी लगादें तब अवश्य इन जानवरोंको भी बन्द रख सकेंगे। यदि पहिली छड़ें आड़ी होतीं तो सारस आदि वहीं रह जाते और कछुए आदि निकल जाते। इनके लिए दूसरी छड़ें खड़ी लगानी पड़तीं। ठीक यही बात प्रकाशके लिए भी है। टूरमलीनके रवेको छड़दार पिंजरा समझ लीजिये और प्रकाशकी तिर्यक् तरंगोंको कछुए आदि जन्तु। पहिले टूरमलीनमें से एकही प्रकारकी तरंगें, जिनमें कम्पन एक ही प्रकारका है, ऊपर नीचे या दाहिने बाएँ निकल सकती हैं। दूसरा टूरमलीन पहिलेके समान ही रखा होनेसे यह तरंगें उसमेंसे भी निकल जायंगी, किन्तु उसे एक समकोणके बराबर घुमा देनेसे रुक जायंगी। दोनों कल्पनाओंमें केवल परिमाणका अन्तर है। लोहेकी छड़ें और इसके बीचवाले रास्ते टूरमलीन और उसमेंसे तरंगोंके निकास के रास्तोंसे असंख्य गुने बड़े हैं। प्रकाश तरंगें इन जन्तुओंसे असंख्य गुनी छोटी हैं। किन्तु बातें दोनों हैं एक ही सी।*

तरंगसिद्धान्त द्वारा ध्रुवीभवनकी यही सरल व्याख्या है। जब हम इस विषयको विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे तब ज्ञात होगा कि ध्रुवीभवन

*परन्तु यदि उक्त पिंजरेमें केंचुए भी बन्द हों, तो वह आड़ी और खड़ी छड़ोंके होते हुए भी निकल जायंगे। अतः सिद्ध हुआ कि प्रकाश तरङ्गें तिर्यक् हैं, अनुदैर्घ्य नहीं।—सं०

सम्बंधी छोटीसे छोटी बातें भी जो अब तक आविष्कृत हुई हैं, इस सिद्धान्तद्वारा बहुत सरलतासे समझी जा सकती हैं। यही क्यों इसने तो ऐसी ऐसी अनेक बातें पहिलेसे बतला दी हैं कि जिन्हें खोजनेमें वैज्ञानिकोंको वर्षों परिश्रम करना पड़ा। परन्तु इस सिद्धान्तकी भविष्यद्वाणी सदा सत्य ही निकली। तरंग सिद्धान्तके पक्षमें यही बात तो बड़ी प्रबल है कि नवीन घटनाओंका आविष्कार इसके लिए कुछ आपत्ति नहीं खड़ी करता, किन्तु वह इस सिद्धान्तको ठीक ठीक समझनेमें सहायक बन जाता है।

अबतक केवल तरंग सम्बंधिनी मूल कल्पनाओंपर ही विचार किया है और प्रकाशकी मुख्य मुख्य बातोंकी उन्हींके द्वारा व्याख्या भी कुछ कुछ की गई है। किन्तु आश्चर्यकी बात है कि छोटीसे छोटी घटनाको विस्तारपूर्वक देखनेपर भी इससे अधिक किसी नई कल्पनाकी आवश्यकता नहीं होती। यह बात भली प्रकार तो उस वक्त समझमें आयगी जब ऐसी समस्त घटनाओं और उनकी व्याख्याओंका सविस्तार अध्ययन कर लिया जायगा। किन्तु जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे भी यह समझ लेना कुछ कठिन कार्य नहीं है कि प्रकाशका यह तरंगसिद्धान्त अवश्य ही बहुत सरल है और इसी सरलताके कारण यह विश्वास स्वयं दृढ़ हो जाता है कि यह सिद्धान्त अवश्य सत्य है। अतः अब इस सिद्धान्तमें जो मुख्य कल्पनाएँ की गई हैं उनपर कुछ अधिक सूक्ष्मतासे विचार कर लेना उचित होगा।

ईथर नामी माध्यमकी कल्पनापर तो ऊपर विचार किया ही जा चुका है। यह भी बतलाया जा चुका है कि इसके अस्तित्वका इन्द्रियों द्वारा पता लगाना असंभव है। इसलिए उसके सम्बन्धमें कुछ माननेके लिए उसके गुणोंकी परीक्षा करनी चाहिये। सबसे प्रथम तरंगोंके बननेके लिए यह आवश्यक है कि उस पदार्थमें जिसमें होकर तरंगें यात्रा करें जड़त्व और स्थितिस्थापकता, यह दो गुण मौजूद हों। अर्थात् एक तो यह आवश्यक है कि उसके किसी भी अंशमें गमन उत्पन्न करनेके लिए शक्ति लगाई जाय और केवल लगाई ही न जाय वरन् वह कुछ निश्चित समयतक लगी रहे। दूसरे यह कि उसकी स्थितिमें किसी प्रकारका परिवर्तन होनेपर उसमें ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाय जो उसे पूर्व स्थितिमें ले जानेका प्रयत्न करे। पिछले अध्यायमें हम देख चुके हैं कि तरंगोंके चलनेके लिए ऐसी स्थितिस्थापकता आवश्यक है। पानीमें यह गुण होता है। शब्द तरंगोंके लिए भी—वायुमें सघनता और विरलताके चलनेके लिए भी—दबाव या आयतनके परिवर्त्तनको रोकनेवाला स्थितस्थापकत्व होता है। अतः ईथरमें भी इन गुणोंके अस्तित्व की कल्पना स्वाभाविक है। किन्तु ईथरका स्थिति स्थापकत्व किस प्रकारका होता है यह अभी नहीं कहा जा सकता।

यह गुण ईथरमें मानते ही एक आपत्ति खड़ी हो जाती है। सब तरल और ठोस पदार्थोंका स्थितिस्थापकत्वका परिमाण बहुत ठीक ठीक नापा जा चुका है। और हमें यह भी ज्ञात है कि जिस पदार्थमें यह गुण जितना ही अधिक होगा, उतने ही अधिक वेगसे तरंगें उसमें चल सकेंगी। किन्तु बढ़ियासे बढ़िया फ़ौलादमें भी तरंगोंका जो वेग है प्रकाशके वेगके सामने कुछ भी नहीं है। तब क्या ईथरमें फ़ौलादसे अपरिमित गुना अधिक स्थितिस्थापकत्व है? किन्तु ऐसा मान लेनेमें प्रत्यक्ष बाधाएं हैं। पृथ्वी, ग्रह नक्षत्रादि क्या इसी ईथरमें होकर सतत भ्रमण नहीं करते रहते? क्या उन्हें इस ईथरके द्वारा कुछ रुकावट होती है? यदि ईथर फ़ौलादकी भांति ठोस और स्थितिस्थापक पदार्थ होता तो यह सम्भव नहीं कि उसमें इतने बड़े बड़े भीमकाय नक्षत्र बिना रुकावट चल सकते। इसी आपत्तिके डरसे फ्रेनेलको इस विषयमें अपने विचारोंको प्रगट करनेका साहस उस समयतक नहीं हुआ जबतक

कि डाक्टर यंगने ऐसे ही विचार प्रकाशित न कर दिये।

किन्तु यह स्मरण रखा जाय कि तरंगोंके वेगको निश्चित करनेवाला स्थितिस्थापकत्व ही नहीं है, उसमें पदार्थके घनत्वका भी कुछ भाग है और यह घनत्व उससे उलटा काम करता है, अर्थात् जितना अधिक घनत्व होगा उतने ही धीरे धीरे तरंग चलेंगी। ठीक ठीक नापनेसे ज्ञात हुआ है कि तरंगोंका वेग स्थितिस्थापकत्व और गुरुत्वकी निष्पत्तिपर अवलम्बित है। $व = \sqrt{\frac{स}{घ}}$ अर्थात् व वेग स स्थितिस्थापकत्व और घ घनत्वकी निष्पत्तिके वर्गमूलके बराबर है। प्रकाशके इतने अधिक वेगके लिए आवश्यक यह है कि यह उपरोक्त निष्पत्ति बहुत बड़ी हो। ज़रूरी नहीं कि स्थितिस्थापकत्व बहुत अधिक हो। यह सम्भव है कि स और घ दोनों बहुत ही छोटे हों, किन्तु उनकी निष्पत्ति बहुत बड़ी हो। लार्ड केलविनने गणितद्वारा हिसाब लगाया है कि ईथरका आपेक्षिक घनत्व ५×१०^{-१८} है अर्थात् यदि २×१०^{१७} घड़े ईथरके भर लिये जायं तो उनका भार एक घड़े पानीके बराबर होगा। इस हिसाबसे प्रकाशका वेग ३×१०^{८} मीटर प्रति सेकंड होनेके लिए स्थिति स्थापकत्वका परिमाण ४५०० होना चाहिये। यह बहुत ही कम है। फ़ौलादके स्थितिस्थापकत्वका परिमाण प्रायः ७.७×१०^{११} है। ईथरमें तो यह गुण प्रायः उतना ही हुआ जितना कि पानीमें थोड़ा गोंद मिलानेसे उस घोलमें होता है। ऐसे घोलमें ठोस पदार्थ बिना कठिनाई और बिना रुकावट इधर उधर चल सकते हैं।

ईथरमें तरंगें उत्पन्न होनेका तरीक़ा प्रायः वही है जिससे कि घंटी आदि कम्पायमान वस्तुएँ वायुमें शब्द तरंगें उत्पन्न करती हैं। किन्तु किसी किसी अवस्थामें उससे सर्वथा भिन्न भी है। घंटी जब तरंगें उत्पन्न करती है तब उसका हर एक परमाणु पृथक् पृथक् कार्य नहीं करता और यह समझा जा सकता है कि घंटीमें परमाणु हैं ही नहीं। तरंगोत्पादनके लिए उसे हम अणुविहीन (continuous) समझ सकते हैं। अतः यह परमाणु कैसे हैं, उनका संगठन क्या है, इत्यादि प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होते। किन्तु जब हम देखते हैं कि सप्तरंजनमें अणुके रासायनिक संगठनके अनुसार ही रेखाएँ देख पड़ती हैं तब असंदिग्ध परिणाम निकलता है कि प्रकाश तरंगें अणुओं से भी छोटे छोटे भागोंके कम्पन द्वारा बनती हैं। और इसीलिए हम इन रेखाओंसे अणुओंके संगठनके सम्बन्धमें कुछ जान सकनेकी आशा भी कर सकते हैं।

वर्तनकी व्याख्यासे, और अब तो प्रयोगोंसे भी, यह सिद्ध है कि शून्य स्थानकी अपेक्षा प्रकाश कांच आदि वर्तक पदार्थोंमें न्यून वेगसे चलता है। प्रश्न यह है कि जब प्रकाश कांचमें या पानीमें चलता है तब यह तरंगें किस पदार्थमें बनती हैं। शब्द जब पानीमें या किसी धातुमें चलता है तब अवश्य ही उसकी तरंगें पानी या धातुमें बनती हैं और इस कारण ऐसा जान पड़ता है कि प्रकाश भी पानी या कांचके अणुओंकी बनी हुई तरंगों द्वारा चलता है। किन्तु कांचका आपेक्षिक गुरुत्व और उसका स्थितिस्थापकत्व बहुत ठीक ठीक नाप लिया गया है और उनसे तरंगोंका जो वेग निकलता है वह वायुमें शब्दका जो वेग होता है उससे अधिक अवश्य होता है किन्तु बहुत नहीं। प्रकाशका कांचमें जो वेग होता है उससे इसकी तुलना भी नहीं की जा सकती। शब्दकी अपेक्षा प्रकाश वायुमें प्रायः १० लाख गुना अधिक वेगसे चलता है और कांचकी वर्तनीय संख्या १·५ के हिसाबसे कांचमें प्रकाशका वेग प्रायः ६ लाख गुना होना चाहिये। अतएव कांचके अणुओंमें प्रकाश तरंगें नहीं चल सकतीं।

दूसरा पदार्थ जिसमें यह तरंगें चल सकती

हैं वह कांचके परमाणुओंका मध्यवर्ती ईथर हो सकता है। सहसा यह समझ लेना कि कांच जैसे ठोस पदार्थमें भी ईथर घुसा होगा कठिन है। किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि ईथरको यद्यपि हमने पौद्गलिक पदार्थ माना है, किन्तु वह साधारण पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न है। उसके विषयमें यह कहना भी कठिन है कि वह एक पदार्थ है, क्योंकि इंद्रियों द्वारा उसके अस्तित्वका कुछ भी पता नहीं चलता। केवल कल्पना और बुद्धिके सहारे ही हमें विश्वास हो चला है कि ऐसा कोई पदार्थ अवश्य है। यह हम जानते हैं कि चुम्बक कांचमें होकर भी लोहेको खींच सकता है। हम इस चुम्बकीय शक्तिको भी देख या छू नहीं सकते। तब हमें यह माननेमें आपत्ति क्यों होनी चाहिये कि ईथर सब पदार्थोंमें है और वहां भी उसमें तरंगें उत्पन्न हो सकती हैं।

यदि कांचमें भी तरंगें ईथरमें ही चलती हैं तब प्रकाशका वेग घट क्यों गया, किन्तु यह समझना कुछ कठिन नहीं कि कांचमेंका ईथर सर्वथा स्वतंत्र ईथर नहीं है। कांचके अणु उसमें ऐसे फैले हुए हैं कि बहुत सम्भव है इसके कारण इन तरंगोंके लिए उसके घनत्व या स्थितिस्थापकत्वमें अंतर हो जाय और प्रकाशका वेग घट जाय। किन्तु वास्तवमें यह कमी क्योंकर होती है यह हम अभी नहीं कह सकते।

प्रकाश वर्तनकी हाईगन्सने जो व्याख्या की है और जो सभी तरंगोंके वर्तनके लिए ठीक है उससे और त्रिभुज द्वारा निर्मित सप्तरंजनके देखनेसे यह परिणाम अवश्य निकलता है कि कांचमें सभी रंगोंके प्रकाशका वेग एक नहीं होता। वेग लालसे बैजनी रंगकी ओर बढ़ता जाता है। ऊंचे और नीचे सुरोंके शब्द एक ही वेगसे चलते हैं। कहा जाता है कि यह बात तरंग सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ती है। क्योंकि शब्द भी तो तरंगमय है। जो बात शब्दमें नहीं होती वह सर्वथा नई बात प्रकाश तरंगोंमें क्योंकर हो गई। किन्तु ऐसा कहते समय लोग यह भूल जाते हैं कि प्रकाशकी तरंग उस ईथरमें से चलती हैं, जिसमें करोड़ों अणु और परमाणु बिखरे पड़े हैं। शब्दकी भांति वह एक शुद्ध माध्यममें नहीं चलतीं। अतः दोनोंमें इतना अधिक सादृश्य ढूंढना उचित नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त जब कभी प्रकाश अणु परमाणु शून्य शुद्ध ईथरमें चलता है तब भिन्न भिन्न रंगोंके प्रकाशके वेगमें कोई अन्तर नहीं होता। इन बातोंसे तो केवल यह परिणाम निकल सकता है कि कांच आदिके अणु ईथरमें जो विभिन्नता उत्पन्न करके प्रकाशका वेग घटाते हैं उसका परिमाण तरंगान्तरपर निर्भर है। बड़ी तरंगोंका वेग अधिक घट जाता है किन्तु छोटीपर इतना प्रभाव नहीं पड़ता।

अब इस स्थानपर यह उचित है कि इस सिद्धान्तपर और अधिक न लिखकर जितनी बातें अभी हमें ज्ञात हो गई हैं उन्हींकी विलक्षणता पर कुछ विचार कर लिया जाय, जिससे इस सम्बंधमें हमारे विचार अधिक स्पष्ट हो जायं।

१—पहिले तो हमने यह बात सीखी है कि पृथ्वी ग्रह और तारोंके बीचका देश सर्वथा शून्य नहीं है और न उसमें प्रकाशके कोई कण दूतोंकी भांति भिन्न भिन्न पृथवियोंसे हमारे पास समाचार लाते रहते हैं। किन्तु वह स्थान एक सर्वव्यापी अनादि अनंत पदार्थसे भरा है जिसमें सभी वस्तुओंके परमाणु—हमारे शरीर भी—सदा सर्वदा डूबे रहते हैं और तिसपर भी हमें उसके अस्तित्वका पता नहीं लगता।

२—यह ईथर और जो कुछ करता हो किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम लोग आपसमें एक दूसरेको, अपने चारों ओरकी वस्तुओंको और दूरवर्ती तारोंको इसी पदार्थकी सहायतासे देख सकते हैं।

३—तीसरे यह कि हमारे पास यह चाक्षुसी संवाद इस ईथर समुद्रकी किसी न किसी प्रकारकी क्षुद्र तरंगों द्वारा आते हैं। यह तरंगें इतने

अधिक वेगसे चलती हैं कि इस पृथ्वीपर तो यह कह देनेमें भी कोई आपत्ति नहीं कि इन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेमें कुछ भी समय नहीं लगता। यह तरंगें शब्दकी तरंगोंकी अपेक्षा बहुत ही छोटी होती हैं। शब्दकी अदृष्ट तरंगें भिन्न भिन्न लम्बाईकी होती हैं। हारमोनियमके बीचके सुरसे जो तरंग बनती है उसकी लम्बाई प्रायः चार फ़ुट होती है। ऊंचेसे ऊंचा सुर जो मनुष्य गा सकता है उसकी तरंगकी लम्बाई चार पांच इंच होती है। तीक्ष्ण सीटीके द्वारा हवामें प्रायः आध इंच लम्बी तरंगें बन सकती हैं, किन्तु प्रकाश तरंगें इनसे बहुत छोटी होती हैं। प्रकाशकी सबसे लम्बी तरंगें, जो लालरंगके प्रकाशकी होती हैं, इतनी छोटी होती हैं कि एक इंचकी लम्बाईमें प्रायः ३६००० अमा सकती हैं। दूसरे रंगोंकी तरंगें तो इनसे भी छोटी होती हैं। इनकी छोटाईका यथार्थ परिमाण समझ लेना ज़रा कठिन है। किन्तु ज़रा किसी छोटीसे छोटी वस्तुका विचार करिये। सुईकी नोक। अच्छा यदि सुईकी नोक एक इंचके शतांशके बराबर है तो भी वह लाल प्रकाशकी ३६० तरंगोंके बराबर चौड़ी है। मनुष्यका बाल। शायद यह भी इंचके हज़ारवें टुकड़ेके बराबर मोटा होता है। तब तो वह लाल प्रकाशकी एक तरंगसे ३६ गुना अधिक चौड़ा हुआ और बैंजनी प्रकाशकी तरंग तो इसके ६० वें भागसे भी छोटी हुई।

प्रकाश तरंगोंकी इतनी अधिक छोटाई और उनके इतने अधिक वेगसे कुछ बड़े महत्वके परिणाम निकलते हैं। पहिले तो यह कि इन तरंगोंमें जो कम्पन होता है वह इतना शीघ्र होता है कि यह प्रयोग द्वारा नाप लेना कि एक सेकंडमें कितनी बार हुआ सर्वथा असम्भव है। क्या कोई ४६×१०^{१२} बारकी आवृत्तिको नाप सकता है? क्या किसीके ध्यानमें भी यह आसानीसे आ सकता है कि किसी कम्पन करने वाली वस्तुका सामयिक समय एक सेकंडके एक करोड़ भागका भी पांच या चार करोड़वां भाग हो? यह केवल गणित द्वारा जाना जा सकता है। दूसरे यह कि यह प्रमाणित कर देना भी बहुत ही कठिन बात है कि यह वास्तवमें तरंगें ही हैं। तीसरे यह कि बड़ी बड़ी तरंगोंके समान यह बीचमें पड़नेवाली वस्तुओंके किनारेसे घूमकर उनके पीछे नहीं पहुंच सकतीं और इस कारण सरल रेखाओंमें किरण रूपसे गमन करती हैं। यदि प्रकाश तरंगें शब्दकी तरंगोंके बराबर होतीं तो हमारी भी दशा प्रायः अन्ध पुरुषकी सी ही होती। हमें शायद उस समय केवल इतना पता चल सकता कि प्रकाश है या अंधकार, अथवा प्रकाश लाल है या हरा। इसके अतिरिक्त हमें और कुछ न दिखलाई देता। वस्तुओंकी कुछ आकृति होती है, इस बातका तो हम स्वप्न भी न देखते। शब्द तरंगोंकी बात जाने दीजिये। यदि प्रकाश कम्पनका सामयिक समय इतना भी बढ़ा होता कि एक कम्पनमें सैकंडका १० करोड़वां भाग लग जाता तो भी हमारी यही दशा हो जाती।

४—हमें यह भी ज्ञात हो गया है कि यद्यपि प्रकाशका सामयिक समय इतना कल्पनातीत छोटा है तो भी इसकी घट बढ़का हमारे नेत्रोंको ज्ञान हो जाता है। लाल, हरे, पीले आदि प्रकाशोंका कम्पन प्रायः समान शीघ्रतासे ही होता है। उनमें जो अत्यन्त थोड़ा अन्तर होता है उसी के द्वारा हम जान लेते हैं कि अमुक लाल प्रकाश है और अमुक हरा। यदि ऐसा न होता और हमारे नेत्रोंमें यह शक्ति न होती तो प्रकृतिका दृश्य हमें केवल फोटोकी तसवीरके समान काला और सफेद, प्रकाशमय और छायामय ही दीख पड़ता। उस समय गुलाबके सुन्दर रंग और मिट्टीके ढेलेमें कोई अन्तर न होता, प्रातः कालीन अरुण छटामें और तितलियोंके अनोखे रूपमें भी कोई सौन्दर्य न देख पड़ता।

५—क्षुद्र तरंगोंके लिए ईथरके माध्यम होनेसे यह बहुत बड़ी सुविधा है कि हमारे

चारों ओर सहस्रों लाखों पदार्थोंसे भिन्न भिन्न तरंगें सब तरफ़ फैलती हैं तो भी बिना एक दूसरेको बाधा पहुंचाये सब कोई अपने इच्छित मार्गसे चली जाती हैं। जब हम किसी दृश्यको देखते हैं तो यह समझा जा सकता है कि वहांका प्रत्येक विन्दु एक प्रकाश केन्द्र है जो चारों ओर अपना प्रकाश फैलाता है। चाहे कितना हो छोटा क्यों न हो किन्तु प्रत्येक विन्दुसे प्रत्येक सेकंडमें १८६००० मील लम्बी प्रकाश रेखा नेत्रमें घुसती है अर्थात् यदि नेत्र न रोकता तो जो प्रकाश फैलकर १८६००० मील लम्बा स्थान रोकता और जिसमें १८६००० मीलके प्रत्येक इंचमें प्रायः ५०००० तरंगें होतीं वही एक सेकंडमें नेत्रमें प्रवेश कर जाता है। और यदि बहुतसे मनुष्य, एक ही साथ उस दृश्यको देखें तो इतनी ही तरंगें प्रत्येक सेकंडमें प्रत्येक मनुष्यके नेत्रोंमें घुसेंगी। यह सब तरंगें नेत्रोंमें पहुंचनेके पहिले मार्गमें आपसमें एक दूसरेके मार्गको करोड़ों बार, करोड़ों प्रकारसे काटती हैं, मनुष्यको देखनेमें कोई कष्ट नहीं होता। तिसपर भी उनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। जिसको इस विषयका ज्ञान नहीं है उसे यह सब बातें किसी पागल मनुष्यके स्वप्नके समान या शेख चिल्लीकी कथाके समान असत्य जान पड़ती हैं। किन्तु यह विश्वास रखना चाहिये कि उपरोक्त बातोंमें एक भी ऐसी नहीं है जो वैज्ञानिक खोज और परिश्रमका परिणाम न हो और जिसके विषयमें इतने अधिक और यथेष्ट प्रमाण न हों कि किसीको उनमें सन्देह करनेका स्थान ही नहीं रहता।

यहींपर यह भी भली भांति समझ लेना चाहिये कि अभी तक इस एक प्रश्नपर कोई मत निश्चित नहीं किया गया है कि ईथरका कम्पन किस प्रकार होता है। इसके जाननेका भी प्रयत्न हो रहा है। किन्तु इससे भी अधिक स्मरण रखनेकी बात यह है कि इस प्रश्नके न जाननेसे प्रकाश सिद्धान्तका कोई काम अटक भी नहीं रहा है। इसके बिना भी प्रकाश सम्बन्धी सभी घटनाओंका रहस्य ज्ञात हो गया है।

सारांश यह कि जिस तरंग सिद्धान्तको हाईगन्सने प्रारम्भ किया और जिसकी यंग और फ्रेनेल आदि विद्वानोंने पुष्टि की, और जिसमें तरंगोंकी सामान्य और साधारण बातोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, वह उन सब घटनाओंकी संतोषजनक व्याख्या कर देता है जिनका न्यूटनने अध्ययन किया था और जिनको उन्होंने अपने कण सिद्धान्तमें अनेक क्लिष्टताएँ और नवीनताएँ सम्मिलित करके समझाया था। यह घटनाएँ हैं, परावर्तन, वर्त्तन, किरणें और परछांई, और कुछ अंश तक विकिरण। पतली झिल्लियोंके रंगोंके एक अंशकी न्यूटनने व्याख्या की थी किन्तु ऐसा करनेमें उन्हें अपने अणुओंमें तरङ्गोंके प्रायः सभी गुण सम्मिलित कर देने पड़े थे। यदि वह कणोंका ध्यान छोड़ देते तो शायद वह भी सब घटनाओंका रहस्य समझ सकते। किन्तु तरङ्ग सिद्धान्तमें बिना कुछ बढ़ाये या सम्मिलित किये ही, यह सब और ऐसी ही अन्य घटनाएँ स्वाभाविक जान पड़ती हैं। इनकी व्याख्याके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना होता। विकृति तो इस सिद्धान्तके विपक्षियोंके द्वारा भी उसके आविष्कारके पहले ही उसका अनिवार्य परिणाम रूप बतलादी गई थी और इस सिद्धान्तके माननेमें यही उनकी बड़ी भारी आपत्ति भी थी। ध्रुवीभवन और द्विवर्त्तन कणसिद्धान्तके अनुसार सर्वथा असम्भव हैं, किन्तु तरङ्गसिद्धान्तको इन्हींसे बहुत अधिक सहायता मिली है और इन्हींके द्वारा इन तरङ्गोंके विषयमें बहुत कुछ आवश्यक बातें ज्ञात हुई हैं। वर्त्तक पदार्थोंमें प्रकाशके वेगके विषयमें पुराने सिद्धान्तका मत सर्वथा असत्य ठहर चुका है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त इतना सरल है कि न तो इसमें छोटे और बड़े कणोंका विचार करना होता है, न वर्त्तक पदार्थों द्वारा आकर्षण

और अपसरणकी कल्पना करनी होती है, न कणोंको वर्त्तन और परावर्त्तनके 'दौरों' के रोगकी आवश्यकता होती है। न यही समझना पड़ता है कि कण आगे भी बढ़ते हैं और अपनी अक्षकी चारों ओर पृथ्वीकी नाईं भी भ्रमण करते हैं और अन्तमें फिर यह कि कण एक ऐसे पदार्थमें भ्रमण करते हैं जो सब आकाशमें भरा है और जिसमें वह तरङ्गें उत्पन्न कर सकते हैं। तरङ्गसिद्धान्त इतना चक्कर न खाकर केवल एक ईथरकी कल्पना करता है।

तिसपर भी यह न समझ लेना चाहिये कि यह सिद्धान्त सर्वांग परिपूर्ण सिद्धान्त बन गया? सम्भव है कि अभी इसमें इतनी कमी हो कि जब और और बातें ज्ञात हो जायँ तो यह बहुत ही भद्दा जान पड़े। किन्तु तो भी ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका मूल्य कभी न घटेगा।

[समाप्त]

शब्द क्या है ?

[ले०—अध्या० शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी.]

जब हम कुछ कहते हैं या किसी दूसरे मनुष्यको बोलते हुए देखते हैं तो जिस क्रिया द्वारा हमारे कानोंमें वह कहे हुए शब्द पहुंच कर हमें बोलनेवालेकी कही हुई बातका बोध कराते हैं, उसे ध्वनि क्रिया तथा सुनना कहते हैं। केवल बोल कर ही नहीं वरन् ताली बजाकर, मेज़पर हाथ मारकर, घंटी या सीटी बजाकर, किसी चीज़को गिराकर अथवा किन्हीं दो ठोस वस्तुओंको एक दूसरेसे टकरानेसे भी शब्द होता है। अस्तु कोई भी बाहरी घटना जिसका प्रभाव हमारे कानोंपर पड़ता है तथा वह इन्द्रिय-ज्ञान जो हमें कानों द्वारा प्राप्त होता है, दोनों ही को 'शब्द' कहते हैं। यह शब्द दो प्रकारका होता है। एक तो वह जो हमारे कानोंको अप्रिय मालूम हो। जैसे दो पत्थरोंको टकरानेसे पैदा हुआ शब्द या किसी भीड़में आदमियोंके बात करनेका शब्द। ऐसे शब्दको हम 'शोर' (noise) कहते हैं। दूसरे वह जो कानोंको प्रिय मालूम हों। यदि हम एक बाजा बजाना प्रारंभ कर दें या कोई गीत गायें, तो यह शब्द ताल-बद्ध होनेके कारण हमारे कानोंको प्रिय मालूम होंगे। इसी प्रकार यदि हम अपने मुंहसे स र ग व इत्यादि शब्द बोलें तो यह बहुत सरल होनेके कारण 'सुस्वर' (musical sound) कहलाते हैं। पहिले प्रकारके शब्दमें अस्थिरता तथा अनियमिकता मौजूद है, परन्तु दूसरी प्रकारके शब्दमें नियम, स्थिरता तथा एकसा बहाव मौजूद है। पर वास्तवमें हमें इस प्रकारका भेद निश्चित कर देना बहुत कठिन मालूम होता है; क्योंकि शोरमें भी, कहीं कम और कहीं अधिक, स्थिरता तथा नियमबद्धताका आभास मौजूद होता है। इस भेदका ठीक ठीक अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है।

प्रयोग १. (क) एक टीनके डिब्बेमें दो तीन कंकड़ डालकर उसे हिलाओ। जो शब्द उत्पन्न होगा उसे 'शोर' कहेंगे। (ख) हारमोनियम बाजेपर स र ग म इत्यादिक सुरोंमेंसे कोई सुर बजाओ; या एक सुरजेली (tuningfork) लेकर, उसे अनुनादी बक्सपर (resonance box) रखकर सारंगी बजानेका गज़ धीरेसे उसपर फेर दो। यह शब्द 'मधुर तथा सुस्वर' होंगे। (ग) घड़ियालपर चोट लगाओ। पहिले पहल तो इसकी आवाज़ भी अप्रिय होगी, पर थोड़ी ही देरमें यह मधुर स्वर पूर्ण मालूम होने लगेगी। इसी प्रकार यदि बोतल या सुराहीको नलके नीचे रखकर पानी भरें तो पहले कटु शब्द उत्पन्न होगा पर जैसे जैसे वह भरती जायगी, शब्द मधुर और प्रिय होता जायगा।

अस्तु, शोर और सुस्वर एक दूसरेमें लीन हो जाते हैं। उन कोटियोंको सीमा द्वारा अलग अलग बतला देना असम्भव है।

Sound शब्द शास्त्र] .

शब्द पैदा होनेके जितने उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं, उनसे मालूम होता है कि किसी वस्तु-का दोलन अथवा कंपन ही शब्दकी उत्पत्तिका कारण होता है। कभी कभी इस कंपनको हम आंखोंसे भी देख सकते हैं। असलमें नेत्रों द्वारा इस कंपनका ज्ञान होना कठिन है, परन्तु निगाह जमाकर देखनेसे शब्दायमान वस्तुके किनारे स्पष्ट नहीं दिखाई देते, जिससे हम यह परिणाम निकाल लेते हैं कि वह कंपायमान है। जैसे लट्टू या भौंरा फिराते समय जब वह बड़ी तेज़ीसे घूमकर भन्न भन्न शब्द करता है तो हमें उस घूमते हुए लट्टूके चारों ओर एक धुंधला सा चक्कर दिखलाई पड़ने लगता है। लट्टू साफ़ नहीं दीखता, जैसे जैसे घूमनेकी गति धीमी होती जाती है, शब्द भी धीमा पड़ता जाता है और यह धुंधलापन भी ग़ायब हो जाता है।

प्रयोग २--एक कांसेका पेंदीदार गिलास लो। एक सरकंडा छीलकर, उसके भीतरकी मज्जा (pith) निकाललो और इसके एक बहुत छोटे टुकड़े-को बारीक धागेमें पिरोकर गिलासके किनारेके पास लटका दो। चित्र १ में ग गिलास है और प पिथकी गोली लटकी हुई है। अब किसी लोहेकी डंडी या सारंगीके गज़से गिलासके उस सिरे-को छूदो, जिस तरफ़ प नहीं है। गिलासमें शब्द होते ही प गोली बार बार दूरको हटने लगेगी, मानों कोई बड़ी तेज़ीसे उसे बार बार धक्के दे रहा हो। बाइसकिलकी घंटी बजाकर उसके पास उँगली ले जानेसे भी उँगलीको हलके हलके धक्कोंका बोध होता है। खंजरी या तबला बजाकर उसके पास हाथ ले जानेसे भी यही बात मालूम होती है।
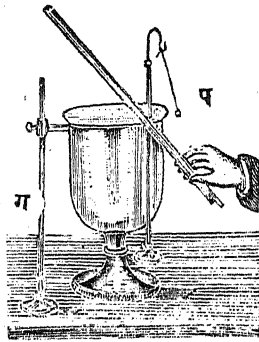
चित्र १

प्रयोग ३--अब एक पतली मोज़ा बुननेकी सलाई लेकर उसे दुहरे स्क्रूमें कसकर किसी मेज़ या पटलीके सिरेमें लगा दो। अब इस सलाईका त सिरा कुछ खींचकर छोड़ दो। सलाईमें बड़ी तेज़ीसे दोलन होगा और शब्द होनेके साथ ही साथ यह कंपन दिखलाई भी पड़ेगा। छड़ बड़ी तेज़ीसे इधर उधर डोलेगी और हमें त', त''के बीच एक प्रकारका धुंधलापन सा दीख पड़ेगा।

चित्र २

अस्तु, कंपन उत्पन्न होना ही हम शब्दका कारण कह सकते हैं, परन्तु शब्द-के इन्द्रिय जन्य ज्ञानके लिए हमारे कानमें क्या घटना होती है, इसका पूरा पता लगाये बिना हमारा उपरोक्त कथन अधूरा ही कहा जायगा।
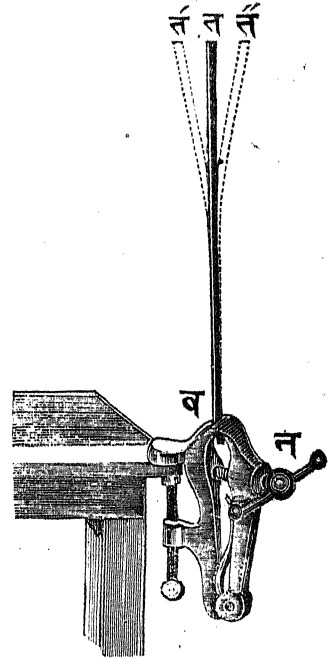
प्रयोग ४--एक खंजरी या डफलीको सीधा खड़ा करके पिथकी गोली झिल्लीको छूती हुई लटका दो और इसे किसी मेज़के एक सिरेपर रख दो। अब यदि मेज़के दूसरे सिरे पर घंटी बजाओ तो पिथकी गोली नाचने लगेगी। इस प्रयोगके सफल होनेके लिए यह आवश्यक है कि घंटीको सिरे पर ही न रखकर डफलीके पास अथवा दूर ले जायँ। इससे गोलीकी भी गति मंद तथा तेज़ दिखलाई पड़ सकेगी।

इस प्रयोगसे हमें ज्ञात हो गया कि शब्द उसी स्थानपर सुनाई देगा जहांपर किसी तनी हुई झिल्लीमें दोलन या कंपन उत्पन्न होगा। अब

यदि डफली तथा पिथकी गोलीको वायु निस्सारक यंत्र द्वारा ख़ाली किये हुए घटके भीतर रख दें तो इसके बाहर बहुत ज़ोरसे शब्द करनेपर भी गोली न नाचेगी। इससे मालूम होता है कि झिल्लियोंका कंपन उनकी चारों तरफ़की हवाके किसी विशेष गुणपर अवलंबित है।

प्रयोग ५—एक अलारमदार घड़ीमें पांच मिनट बाद बजनेका अलारम लगाकर उसे वायु निस्सारक यंत्रकी थालीपर रुईकी मोटी गद्दीपर रख कर जमा दो और ऊपरसे घट ढांक दो। अब
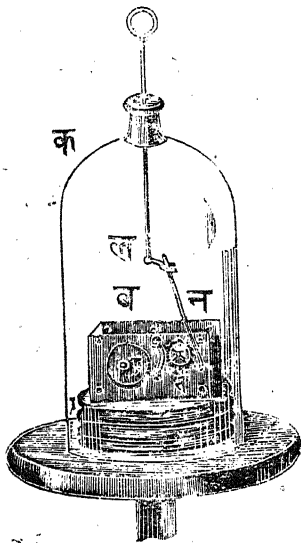
चित्र ३

जल्दी जल्दी वायु निकालना प्रारंभ कर दो। पांच मिनट बाद अलारमकी मागरी तो घंटीपर गिरती हुई दिखलाई पड़ेगी; पर शब्द कुछ भी न सुनाई पड़ेगा। अब जल्दीसे घटके अन्दर थोड़ी हवा जाने दो, अलारम सुनाई पड़ने लगेगा।

इस प्रयोगमें पम्पकी थालीपर रुईकी गद्दी रखनेका यह कारण है कि अन्यथा अलारम बजनेसे थालीमें कंपन उत्पन्न हो जायगा और थाली हवामें होनेके कारण शब्द बराबर सुनाई देगा। थालीमें कंपन क्यों हुआ, इसका कारण आगे चलकर बतलाया जायगा। इस प्रयोगसे यह सिद्ध हो गया कि शब्दायमान वस्तुके साथ ही साथ हवाका माध्यम होना भी शब्द सुनाई देनेके लिए आवश्यक है। हम एक दूसरे प्रयोग द्वारा यह भी बतलायँगे कि हवाकी जगह अगर कोई और भी वायव्य पदार्थ माध्यम हो तो भी शब्द सुनाई पड़ेगा, परन्तु इस हालतमें इन गैसोंके गुरुत्वपर ही शब्दकी तेज़ी या धीमापन निर्भर होगा।

प्रयोग६—मोटे दलके कांचकी एक कुप्पी प लो और उसमें दो छेदोंदार रबड़की डाट लगा दो। डाट लगानेके पहिले कुप्पीमें थोड़ा सा पानी भर दो। डाटके एक सूराख़में होकर काचकी ठोस नली न लगाओ और इसके सिरे म पर रबड़की नली द्वारा एक छोटी सी घंटी घ लटका दो। अब इस फ़्लास्कको तिपाईपर रखकर इसके नीचे बर्नर जला दो और पानीको खूब खौलने दो। थोड़ी देरमें क़रीब क़रीब सब पानीकी भाप बन जायगी। इसी समय दूसरे सूराख़में भी कांचकी डाट लगाकर बर्नरको हटा लो। अब इस कुप्पीमें हवाकी जगह जल वाष्प मौजूद है और यह हवासे हलकी भी है। कुप्पीकी गरदन पकड़कर हिलानेसे घंटी बजेगी, परन्तु शब्द बहुत धीमा सुनाई पड़ेगा।

बारदूसरी इसी फ़्लास्कमें एक छेदवाली रबड़की डाट लगा दो और इसमें एक बहुत ही पतले छेदवाली (जैसी तापमापक यंत्रके बनानेमें काम आती है) नली लगादो। इस नलीके एक सिरेसे पहिलेकी भांति घंटी लटका दो और दूसरे सिरेमें रबड़की नली पिरोकर चुटकी द्वारा उसे बंद कर दो। डाट लगानेके पहिले कुप्पीमें थोड़ा सोडा डालकर कुछ पानी भरो और इसपर तेज़ गंधकाम्लमें पानी मिलाकर उँडेल दो। ऐसा करनेसे सोडेमें बड़े ज़ोरका उफान आयगा और बहुत से बुदबुदे बन जायंगे। इसी समय सावधानीके साथ डाट लगा दो। सोडेपर

गंधकाम्ल डालनेसे कर्बनद्विओषिद् गैस बन गयी और हवाको निकालकर यही सारी कुप्पीमें भर गयी। अब अगर कुप्पीको हिलाकर घंटी बजाई जाय तो तेज़ शब्द सुनाई पड़ने लगेगा। इसका कारण यह है कि कर्बनद्विओषिद्का गुरुत्व हवासे ज़्यादा है।

इन प्रयोगोंसे भली भांति ज्ञात हो गया कि गुरुत्वके अनुपातमें, वायवीय पदार्थोंमें होकर शब्द सुनाई पड़ता है। जो गैस हवासे हलकी है उसमें शब्द धीमा तथा जो हवासे भारी है उसमें शब्द ज़ोरका सुनाई पड़ता है। उज्जन सब गैसोंमें हलकी है, अस्तु उज्जनमें होकर शब्द निहायत ही धीमा सुन पड़ता है।

इन्हीं प्रयोगोंसे यह भी सिद्ध हुआ कि ठोसोंमें होकर भी शब्द सुनाई पड़ता है। घंटीका शब्द, फ्लास्कके भीतरवाली गैसमें होकर उसकी दीवारों द्वारा हवामें आकर सुनाई पड़ने लगा। ताकयेके नीचे रखी हुई घड़ीकी टिक टिक तकियेपर कान रखनेसे सुनाई पड़ने लगती है इसी प्रकार मेज़के एक कोनेपर घड़ी रखकर दूसरे कोनेसे कान लगानेपर भी घड़ीकी आवाज़ सुनाई पड़ती है। दो मट्टीके कुल्हड़ोंकी * पेंदीमें छेद करके उनके मुंहपर कागज़ लेपटकर इसमें होकर एक लंबा डोरा पिरो दिया जाता है। अब अगर दो लड़के इन कुल्हड़ोंको लेकर दूर दूर खड़े होकर आपसमें बात चीत करते हैं तो शब्द सुनाई पड़ता है। पाठकोंमेंसे बहुतोंने यह खिलौना अवश्य बनाया होगा। इसी प्रकार यदि दो मीलकी दूरीपर कोई रेलगाड़ी जा रही हो तो उसके जानेका कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ेगा; परन्तु यदि हम रेलकी पटरीपर कान लगाएँ तो रेलके चलनेका शब्द साफ़ सुनाई पड़ेगा। जब हम पानीमें, ग़ोता लगा जाते हैं तो पानीके अन्दर होनेवाला शब्द साफ़ सुनाई पड़ता है; परन्तु किनारे परकी आवाज़ बहुत धीमी सुनाई पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि वायव्य, द्रव तथा ठोस तीनों प्रकारके पदार्थोंमें होकर शब्द सुनाई देता है; पर एक माध्यमसे निकलकर दूसरे माध्यममें जानेसे उसमें परिवर्तन हो जाता है और वह उतने ही ज़ोरसे सुनाई नहीं पड़ता।

हमारी पृथ्वी भी शब्दवाहक है। रातके सन्नाटेमें दूर सड़कपर जानेवाले घोड़ेको टापोंकी आवाज़, ज़मीनके पास कान ले जानेसे साफ़ सुनाई पड़ती है।

उपरोक्त प्रयोगों द्वारा हमें मालूम हो गया कि शब्दके उत्पन्न होने तथा सुनाई देनेमें शब्दायमान वस्तु, हवाका माध्यम तथा एक तनी हुई झिल्लीकी आवश्यकता है। हमारे कानमें शब्द किस प्रकार सुनाई देता है, इसका हम इस स्थानपर विस्तार पूर्वक वर्णन न करके सिर्फ़ इतना ही लिख देना उचित समझते हैं कि हमारे कानोंमें भी एक पतली तनी हुई झिल्ली मौजूद है।* शब्द वायुमें होकर कानतक किस प्रकार पहुंचता है, हम इस समय इसीपर विचार करेंगे। हम अभी कह आये हैं कि वायुकी किसी विशेष अवस्थामें उत्पन्न किया हुआ शब्द चौथे प्रयोगमें डफली तक पहुंचकर उत्कंपन पैदा कर देता है। शब्द उत्पन्न होते समय शब्दायमान वस्तुमें भी उत्कंपन मौजूद है, हम यह भी बतला चुके हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि हवाके माध्यम द्वारा शब्दायमान वस्तुमें उत्पन्न होनेवाला उत्कंपन हवामें भी कंप पैदा कर देता है और यही कंपन कानकी झिल्लीसे टकराकर उसमें उत्कंपन पैदा कर देते हैं। बस इसी कारण हमें शब्द सुनाई पड़ने लगता है।

[असमाप्त]

* कुल्हड़ोंके स्थानपर सुल्फा पीने की चिलमें लेनेमें अधिक सुभीता होगा।—सं०

* देखो विज्ञान भाग ४ पृष्ठ १५७।

जच्चे और बच्चेका स्वास्थ्य

[ले०—श्रीमती डा० केलब, एम. डी.]

जिस कालमें कि मांके पेटमें बच्चा हो या जबकि वह बच्चेको दूध पिलाती हो, उस कालमें उसका नीरोग रहना बच्चे और देशके-लिए आवश्यक है। बच्चेका जन्मकाल ही उसके जीवनका आरम्भ नहीं समझना चाहिये, क्योंकि पैदा होनेके कई महीने पहिलेसे उसके शरीरमें जीवनका संचार हो जाता है। इसीसे इन महीनोंमें और विशेषतः पैदा होनेसे कुछ पहिलेसे उसके स्वास्थ्यका ख़याल रखना आवश्यक है। जीवनका आरम्भ ही बड़े महत्वका समय होता है। पैदा होनेसे नौमास पहिलेसे लेकर पैदा होनेके एक साल पीछे तकके समयमें ही मनुष्यके स्वास्थ्यकी नींव रखी जाती है। स्त्रियोंका गर्भ धारण करना एक प्राकृतिक घटना है। इसे किसी प्रकारकी आपत्ति और रोग नहीं समझना चाहिये। गर्भकालमें स्त्रियोंको अपनी स्वास्थ्य-रक्षाका बहुत ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि बच्चेका स्वास्थ्य भी उन्हींके स्वास्थ्यपर निर्भर है। दूसरे बच्चोंका लालन पालन उन्हींको करना पड़ेगा। यदि बच्चा नीरोग हुआ तो इसमें बड़ी सुगमता होगी, नहीं तो बड़ी बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ेंगी।

स्त्रियोंका कर्तव्य

स्त्रियोंको घरमें बड़े विचारसे रहना चाहिये। घरका काम भी जितना हो सके करना चाहिये, सदा प्रसन्न रहना चाहिये और क्रोध और शोकसे बचना उचित है। भारी बोझ उठाना, बहुत ज़्यादा झुकना, बहुत ऊंची सीढ़ियोंपर चढ़ना या ऐसे काम करना, जिनसे शरीर अधिक थक जाय, हानिकारक है।

आराम करना या विश्राम लेना

गर्भकालमें स्त्रियोंको थोड़ी बहुत देर विश्राम करना चाहिये। आठवें और नवें महीनोंमें तो ज़्यादा आराम लेना चाहिये, क्योंकि इन्हीं दो महीनोंमें भ्रूणका परिपोषण होता है और उसका बोझ पौने दो सेरसे बढ़कर पौने चार सेर तक हो जाता है। प्रतिमास उन दिनोंमें, जब साधारण दशामें उन्हें रजःस्राव होता (दूर बैठतीं या रजस्वला होतीं), बहुत आराम करना चाहिये और विधान पूर्वक रहना चाहिये। कभी कोई तेज़ चूरण या अजीर्ण नाशक गोलियां न खानी चाहिएँ, जबतक कि किसी वैद्यकी सलाह न ले ली जाय। क्योंकि कभी कभी ऐसी औषधियोंका प्रयोग करनेसे गर्भ गिर जाता है या बच्चा समयसे पहिले पैदा हो जाता है। सातवें महीनेसे बच्चेके पैदा होने तक औरतोंको अपनी छातियां बच्चेके दूध पीनेके लिए सख़्त करनी चाहिएँ और उनको हर रोज़ स्प्रिट और पानीके साथ या गरम पानी और दमपुख़्त (बंद बरतनमें गरमकी हुई) चायके साथ धोना चाहिये। अगर छातियां छोटी हों तो उनको हर रोज़ ज़ैतूनके तेलके साथ चुपड़ कर आहिस्तासे खींचकर बड़ा करना चाहिये।

स्वच्छता और स्वास्थ्य

बदन और पहिननेके कपड़े बहुत साफ़ रखने चाहिएँ। खाना हलका जल्दी हज़म होनेवाला और शुद्धतासे बनाया हुआ खाना चाहिये, और सदा समयपर खाना चाहिये। स्वच्छ और खुली हुई हवामें रहना चाहिये। यदि हो सके तो प्रातः काल किसी देव मन्दिरके दर्शन या नदीके स्नानके लिए चले जाना चाहिये, जिसमें हलकी व्यायाम भी हो जाय और शुद्ध हवाका सेवन भी हो जाय। सब काम नियत समयपर होना चाहिये। हर रोज़ चार गिलास पानी, जिसको पहिलेसे उबालकर ठंडा कर लिया हो, कई दफ़ा करके पी लेना चाहिये। ताज़ा फल मुरब्बोंका प्रयोग किया जा सकता है। [illegible]सार चटनी, गरममसाला इत्यादिसे परहेम करना चाहिये। माताके लिए

मकानकी खिड़कियां रात दिन खुली रहनी चाहिएँ। विशेषतः रातको सोनेके कमरेके दरवाज़े हवा आने जानेके लिए खुले रहने चाहिएँ। रातको अधिक जागना हानिकारक होता है। साढ़े नौ या दस बजेतक सो जाना अच्छा है। बिस्तर गरम और हलका होना चाहिये। सर और चेहरा ढांप कर कभी न सोना चाहिये। प्रसूता या गर्भवती-के लिए ताज़ा हवाकी बड़ी आवश्यकता होती है। गर्भवतीको तो दूनो ओषजन चाहिये।

जो स्त्री विधानपूर्वक और आचार विचारसे रहती है वह अपने बच्चेको नौ महीने तक दूध पिलाकर पाल सकती है। बारबार छाती चूसनेसे दूध बढ़ता है और अधिक होता है। कोई स्त्री यह नहीं कह सकती कि उसके पास दूध नहीं है, जब तक कि वह बच्चेको पूरे तीन महीने तक दूध पिलानेकी कोशिश न कर चुकी हो। यदि बच्चेको दूध नियमानुसार न पिलाया जाय तो दूध धीरे धीरे कम हो जाता है, यहां तक कि दूध उतरना ही बंद हो जाता है। जब जब बच्चेको दूध पिलाया जाय दोनों छातियोंसे बराबर पिलाना चाहिये, जिससे छातियोंमें दूध बचने और फोड़े पैदा हो जानेका डर न रहे।

बच्चा पैदा होनेके बाद मांको कुछ समयतक आराम करना चाहिये। जब तक बच्चा तीन महीने-का न हो जाय ज़्यादा काम करना और थक जाना ठीक नहीं है। अधिक काम करनेसे शरीर निर्बल हो जाता है, दूध दूषित होजाता है और कम उतरने लगता है, जिससे बच्चेको तरह तरहके कष्ट भोगने पड़ते हैं। मांसे जितना होसके दूध पिये और खाना सदा ठीक समयपर खाय। दाल, चावल, सूजी दमपुख़्त तरकारी, फल और जवका पानी ज़च्चा-को देना चाहिये। मांसाहारी स्त्रियां शोरवा भी कर सकती हैं। दिनमें एकबार थोड़ा सा गोश्त भी ले लिए जासकता है। प्रतिदिन ठीक समयपर व्या-[illegible]ना और शुद्ध हवाका सेवन करना परमावश्यक है।

बच्चेके कपड़े

जहां तक होसके बच्चेको गरम रखना चाहिये, मगर बच्चोंको कपड़ोंसे लाद न देना चाहिये। बच्चेको सबसे नीचे फुलालैनका कोई कपड़ा पहनाना अच्छा होता है। पांवमें गरम मोज़े और एक पौन गज़ लम्बा फुलालैनका कमरबंद जो पांच या छः इंच चौड़ा हो कमरके गिर्द लपेट देना चाहिये, जिसमें बच्चेके पेटको सर्दी न लगे। कमरबंद नीचेसे तंग और ऊपरसे ढीला होना चाहिये, जिससे छातीपर दबाव न पड़े और बच्चे-को सांस लेनेमें तकलीफ़ न हो या खानेके हज़म होनेमें कोई बाधा न हो। पेटके सामने कमरबंद-को फ़ीते या सेफ़्टीपिनसे बांध देना चाहिये। गर्मियोंके मोसममें भी बच्चोंको मोटा कपड़ा पहि-नाये रखना चाहिये।

बच्चेका खाना

बच्चेका प्राकृतिक खाना मांका दूध है, जो बहुत ही सस्ता आसानीसे मिल सकता है और किसी तरहका नुक़सान नहीं करता। अगर मांका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है, वह आचार विचारसे रहती है और बच्चेको नियत समयपर दूध पिलाती है, तो कोई कारण नहीं कि मांका दूध बच्चेके परिपोषण और परिपालनके लिए पर्याप्त न हो।

पैदा होते ही जितना जल्दी संभव हो बच्चेको छातीका दूध दे देना चाहिये और नीचे दी हुई बातोंका ध्यान रखना चाहियेः—

(१) आरम्भमें बच्चेको दो दो घंटेके बाद दूध पिलाना चाहिये, परन्तु रातको केवल दो बार ही अर्थात् चौबीस घंटेमें कुल दसबार दूध दिया जाय। पहिले दो महीने इसी नियमका पालन करना चाहिये। उसके पश्चात् तीन महीनेसे लेकर नौ महीनेतक बच्चेको दिनको तीन तीन घंटेमें दूध पिलाना चाहिये और रातको सिर्फ़ एकबार। दूध देनेके लिए वक़्का अंदाज़ा न कर लिया जाय, बल्कि होसके तो घड़ी देखकर दूध पिलाना चाहिये।

(२) दूध बहुत धीरे धीरे पिलाना चाहिये। पन्द्रह या बीस मिनटतक बच्चा दूध पीता रहे तो ठीक होगा। लगातार दूध नहीं देना चाहिये। जब बच्चा रोने लगे उस समय दूध देकर चुप नहीं करना चाहिये, क्योंकि सम्भव है कि पहलेका दूध पिया हुआ हज़म न हुआ हो और यही रोनेका कारण हो।

(३) हर दफ़े दूध पिलानेसे पहिले छातीको धोकर खुश्क कर लेना चाहिये। हरबार दूध पिला चुकनेके पीछे छोटा सा साफ़ सुथरा मलमलका टुकड़ा लेकर या रूमालको हाथकी अंगूठेके पासकी उंगलीके साथ लपेटकर बच्चेका मुँह साफ़ कर देना चाहिये, जिससे बच्चेके मुँह पर छाले न पड़ें।

(४) जब बच्चा नौ मासका हो जाय तो प्याले और चमचेका प्रयोग शुरू करना चाहिये। यह न समझना चाहिये कि बहुत दिनोंतक दूध पिलाते रहनेसे दुबारा गर्भाधान न होगा। बहुत दिनोंतक दूध पिलाते रहनेसे मां कमज़ोर हो जाती है और बच्चेकी हड्डियोंमें बीमारी पैदा हो जाती है।

बोतलसे दूध पिलाना

बोतलसे जो दूध पिलाया जाय तो गायका दूध उबाल लेना चाहिये और उसमें आगे दिये हुए नियमोंके अनुसार पहिलेसे उबालकर ठंडा किया हुआ पानी मिलाना चाहिये। किश्तीकी शकलकी बोतल पसन्द करनी चाहिये या मामूली दवा डालनेकी शीशी लेकर उसके मुँहपर रबरका चूचक (nipple निपिल) लगा लेना चाहिये। परन्तु वह बोतल कभी न काममें लानी चाहिये, जिसके साथ लम्बी रबड़की नली लगी रहती है। एक तो यह नली साफ़ नहीं की जा सकती। दूसरे इसमें मिट्टीके कण और जीवाणु (बीमारीके बहुत छोटे छोटे जीव) इत्यादि जमा हो जाते हैं और कभी कभी बच्चेकी मौतका कारण हो जाते हैं। बोतलसे एक बार दूध पिला चुकनेके बाद जो दूध बाक़ी बच रहे उसे फेंक देना चाहिये। चूचकको उलट कर भी साफ़ कर देना चाहिये। तदनन्तर साफ़ किये हुये चूचक और बोतलको साफ़ ठंडे पानीमें डाल रखना चाहिये। यह अच्छा हो, अगर दो बोतलें रखी जायँ, जो बारी बारीसे काममें लाई जायँ।

बोतलका दूध बच्चेको कभी बहुत गरम और कभी बहुत ठंडा नहीं देना चाहिये, बल्कि हमेशा धारोष्ण (हालके निकले हुये दूधके समान गरम) देना चाहिये। दूध और पानीको बच्चेकी उम्रके अनुसार मिलाना चाहिये, बोतलमें मिला हुआ दूध और पानी भर कर एक गरम पानीके बर्तनमें रख दो, यहांतक कि दूध धारोष्ण हो जाय। जो बच्चे नौ महीनेसे पहिले पैदा हो जाते हैं या जो जन्मसे ही बहुत दुर्बल होते हैं उनको नीरोग बच्चोंकी बराबर दूध नहीं देना चाहिये। उनको कम दूध देना चाहिये, परन्तु थोड़े थोड़े बिलम्बसे अर्थात् जल्दी जल्दी।

दूध

अच्छी और तंदुरुस्त गायके दूधको उबालकर चीनी, या कांच या क़लईके बर्तनमें डाल लेना चाहिये। बरतनको दूध डालनेके पहिले गरम पानीसे अच्छी तरह साफ़ कर लेना चाहिये। लोटेमें दूध डालकर मलमलके एक साफ़ और सफ़ेद कपड़ेसे ढककर ठंडी जगहमें रख देना चाहिये। दूधको किसी तरहकी बदबूके पास रखना अच्छा नहीं, क्योंकि दूध ख़राब हो जायगा और बच्चेको देनेके लायक़ न रहेगा।

रात्रि व्यतीत हो जानेके बाद, बासी दूध कभी काममें न लाना चाहिये। बल्कि हरदफ़ा ताज़ा और अच्छा दूध बच्चेको देना चाहिये।

बोतलका दूध बच्चेकी उमरके अनुसार तैयार करना चाहिये, जैसा कि नीचेकी सारणीसे ज्ञात होगा।

बच्चेकी उमर	दूधका अंदाज़ा	पानीका अन्दाज़ा
एक सप्ताहका बच्चा	एक बड़ा चमचा दूधका	तीन चमचे गरम पानीके
दो सप्ताहका बच्चा	डेढ़ चमचा दूधका	,,
तीन सप्ताहका बच्चा	दो चमचे दूधके	,,
एक मासका बच्चा	तीन चमचे दूधके	,,
दो से चार मासतक का बच्चा	चार चमचे दूधके	चार चमचे गरम पानीके
चारसे छः मासतक का बच्चा	पांचसे आठ चमचे तक दूधके	तीन या चार चमचे गरम पानीके
छः से नौ मासतक का बच्चा	नौ या आठ चमचे दूधके	तीन चमचे गरम पानीके

बोतलका दूध भी उसी तरह और उन्हीं वक्तों पर देना चाहिये, जैसे कि मांका दूध पिलाया जाता है। नौ मासके बच्चेको हर तीसरे घंटेके बाद दूधकी बोतल देनी चाहिये। इस तरह दिनभर में छः बोतलें हो जायंगी और रातको कुछ न देना चाहिये। जो बच्चा बोतलसे दूध पीता हो उसे कभी कभी नारंगीका रस देना बहुत अच्छा है। यदि कोई बच्चा मांका दूध पीकर मोटा न होता हो तो उसको मिली जुली ख़ुराक देनेकी कोशिश करनी चाहिये। यानी कभी गायका दूध पिलाया जाय और कभी मांका।

साधारण नियम

बच्चेको किसी तरहका गरिष्ट (देरमेंपचनेवाला) खाना नहीं देना चाहिये। जबतक कि खानेके लिए उसके दांत न निकल आयँ, दो वर्षतक तो अधिकांश दूध ही पिलाना चाहिये। बच्चोंका आमाशय कोमल और पाचन शक्ति दुर्बल होती है। यह बड़े आदमियोंकी सी ख़ुराकको हज़म नहीं कर सकते। यदि उनको वैसी ही देरमें पचनेवाली चीज़ें दी जायँगी तो नुक़सान होगा और सदाके लिए उनकी पाचनशक्ति ख़राब हो जायगी।

अच्छा, ताक़त देनेवाला थोड़ा खाना निकम्मे ज़्यादा खानेसे अच्छा होगा, क्योंकि खानेकी मात्राका आरोग्य और पाचन शक्तिपर प्रभाव नहीं होता, बल्कि उसी खानेका प्रभाव पड़ता है जो पचकर शरीरमें रम जाता है।

वह छोटे बच्चे जिनको गायके दूधसे पाला जाय अच्छे और नीरोग नहीं होते, न वह मोटे ही होते हैं। इसलिए जिन बच्चोंको बोतलका दूध दिया जाता है बोतल देने से पहिले या कुछ पीछे एक आध चमचा ज़ैतून या मछली (काडलिवर आइल) के तेल का प्रतिदिन देना चाहिये।

बच्चोंको चलने फिरनेकी शक्ति आनेके समयके पहिले कभी हिम्मत न दिलानी चाहिये। कारण कि छोटी उमरमें उनकी टांगें कमज़ोर और सहजमें ही टेढ़ी हो जाती हैं।

जब बच्चा पहिली दफ़ा बैठता है तो उसकी गरदन और पीठको बाज़ूका सहारा देना चाहिये। कारण कि उसके नन्हेंसे सरको तकलीफ़की हालतमें देखना एक दुःखदाई दृश्य है और यह अकसर रीढ़की हड्डीको हानि पहुंचानेका कारण भी होता है।

आराम करना या सोना

बच्चोंको बहुत समयतक सोना भी परमावश्यक है। उसको अपने बिछौनेपर सोने और आराम करनेकी पहिलेसे ही आदत डालनी चाहिये। एक बड़ी सी टोकरी या छोटी सी चारपाई इस कामके लिए अच्छी होगी। बच्चेके पैदा होनेके छः दिन पीछे तक तो टोकरीमें ही सुलाना चाहिये।

इससे मां और बच्चे, दोनोंको आराम मिलता है; विशेषतः बच्चेको इसमें बहुत आराम मिलता है। कारण वह टोकरीमें पड़े रहनेसे बिछौने और कपड़ोंके भारी बोझसे बचा रहता है।

बच्चेका सर और मुंह कभी नहीं ढांपना चाहिये, विशेषतः जब कि बच्चा कमरेके भीतर हो या सोता हो। बच्चेकी चारपाईपर बिछानेके कपड़े ऐसे हलके होने चाहियें, जो सहजमें हो धोये जा सकें और बदले जा सकें।

जाड़ेमें कपड़ोंके भीतर एक गरम पानी-की बोतल रखनेसे गरम रखा जा सकता है, किन्तु बोतलको बच्चेके बदनसे कभी न छुलाना चाहिये।

बच्चोंको कभी ज़बरदस्ती न सुलाना चाहिये; क्योंकि यह आदत भी अच्छी नहीं। बच्चा हमेशा अपनी ख़ुशीसे सोये और अपनी ख़ुशीसे उठे। सुलानेके पहिले यह बातकी हमेशा जांच रखनी चाहिये कि बच्चेके पांव गरम हैं और उसके (नेपकिन) कपड़े बदलनेकी तो आवश्यकता नहीं है।

न्हिलाना

बच्चेको हमेशा सवेरे नियत समयपर न्हिला देना चाहिये। न्हिलानेसे एक घंटा पहिले बच्चे-को खाना भी न देना चाहिये। नहानेके पीछे खाना देना अच्छा है। फिर कपड़े पहिनाकर बिछौनेपर लिटा देना चाहिये और धीरेसे ढांप-कर सोनेकी आज्ञा देनी चाहिये।

न्हिलानेका पानी यदि थोड़ा गरम हो तो बहुत अच्छा है। हाथ डालकर देख लेना चाहिये कि पानी ठीक गरम है या नहीं। यदि ज़्यादा गरम हो तो कुछ ठंडा पानी मिलाकर फिर दूसरे हाथसे देख लेना चाहिये। ज़्यादा गरम न हो तो अच्छा होगा। बच्चेको जल्दीसे कपड़े उतारकर, न्हिलाकर फिर जल्दीसे कपड़े पहना देने चाहियें। ऐसा न हो कि सर्दी लग जाय। सफ़ेद फुलालैनका एक रूमाल मांको अपनी गोदमें रख लेना चाहिये। कारण कि बच्चेके लिए यह एक अच्छी चीज़ है।

बच्चेको अच्छी तरह साबुनसे मलकर न्हिलाना चाहिये और साबुन उसके सरपर अच्छी तरहसे मलनी चाहिये, जिसमें उसपर कुछ जम न जाय। किन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि कहीं साबुन बच्चेकी आंखोंमें न पड़ जाय।*

बदनको भी ख़ूब मलकर पानीसे साफ़ कर दो और सब साबुनको धो डालो। नाकको अच्छी तरह पोंछ दो और उस पानीको भी जो उसके कान इत्यादिमें चला गया हो सुखा दो। अन्तिम बात बहुत ज़रूरी है। यदि इसमें भूल की जायगी तो कानमें फोड़ा हो जायगा और हमेशा के लिए बच्चा बहरा हो जायगा। यदि आंखें लाल हो जायँ और उनमें कीचड़ सा पैदा हो जाय तो तुरन्त डाक्टरके पास ले जाना चाहिये। यदि इस बातमें सुस्ती होगी तो बच्चेके अंधे होनेका डर है।

स्वास्थ्य

बच्चेके अच्छी तरह पनपनेके लिए यह आव-श्यक है कि वह पूरी नींद ले सके, उसको पेचि-श न हो, दूध पीनेके पीछे उलटी न करे, कई बार न रोवे और न नेपकिनके नीचेकी जगह लाल हो, और पांव सदा गरम रहें।

बच्चेको क़ब्ज़ न होना चाहिये और न दो बारसे अधिक दस्त होना चाहिये। पाख़ाना चमकीला, पीले रंगका और ख़ासा गाढ़ा होना चाहिये।

सफ़ाई

नेपकिन (पोतड़ा या रूमाल) अच्छी तरह साबुनके साथ धोना चाहिये और कई बार अलग अलग साफ़ पानीमेंसे धोनेके पीछे सुखा लेना चाहिये। कभी मैला नेपकिन सुखाकर काम-में न लाओ। कारण कि इससे बच्चेके खुजली और दर्द शुरू होजाता है। गंदे नेपकिनको जहां तक जल्दी संभव हो धो लिया करो, नहीं तो यह बच्चेको बीमार कर देगा।

बच्चा जब बैठनेके लायक़ हो जाय तो जितना जल्दी संभव हो उसे यह सिखलानेकी कोशिश करो कि वह हाजतके मिटानेकी आवश्य-कता किसी प्रकारका शब्द करके बतला दिया करे। जब वह आवाज़ दे, फौरन उसकी ओर

* बेसन बच्चेके सर और बदन पर मलना ज़्यादा अच्छा है। इससे बदन साफ़ भी हो जाता है और किसी तर-हका नुक़सान भी नहीं पहुचता। सं० १—पोतड़ा या अंगोछा

ध्यान दो और बच्चेको बर्तन पर* हुशियारीसे बैठाओ। अपने हाथ फैलाकर इसे पकड़े रखो-और पीठको भी सहारा दिये रहो।

यदि बच्चेको पहिलेसे ही ऐसी शिक्षा दी जायगी तो वह बिछौनेको गंदा, मैला, और गीला न करेगा। कमरेसे तुरन्त गीले और गंदे कपड़े और बर्तन आदि दूर कर देने चाहियें और कमरेको भी गंदा नहीं रहने देना चाहिये। बच्चेको और उसके कपड़ोंको और जितनी उसके बर्तनेकी चीज़ें हैं उनको, खूब साफ़ रखना चाहिये।

शुद्धवायु—बच्चेके आरोग्यके लिए ताज़ा वायु अत्यन्त आवश्यक है। बच्चोंको और बूढ़ोंको इसकी बहुत आवश्यकता होती है। बच्चेके कमरेमें उजाला, धूप और शुद्ध वायुके पहुंचनेका अच्छी तरह बंदोबस्त रखना चाहिये। किन्तु यह ध्यान रहे कि आमने सामनेकी खिड़कियां न खुली हों। ऐसा न हो कि हवाके आने जानेका तांता लगा रहे। बच्चा जब दो सप्ताहका हो जाय तो उसको रोज़ ताज़ा वायुके सेवन करानेके लिए बाहर निकालना चाहिये।

बच्चेको तोलनेसे बड़ी अच्छी तरहसे मालूम हो सकता है कि उसकी वृद्धि कैसी हो रही है।

एक नीरोग बच्चेका वज़न पैदा होनेके समय ३॥ सेर से लेकर ४ सेर तक होना चाहिये। जब तीन मासका हो तो ६ सेरसे ६॥ सेर तक, जब छः मासका हो तो ७॥ सेर से ८ सेर तक, जब नौमासका हो तो ८॥ सेरसे ९ सेर तक और जब एक बर्षका हो तो पूरे १० सेर तक होना चाहिये।

* हिन्दुस्तानमें बर्तनमें तो पाख़ाना नहीं फिराते; ज़मीनपर ही फिरा लेते हैं। इससे अच्छा यह है कि एक काग़ज़ बिछा दिया जाय या बाहर चौकमें खुड्डी रखी जाय। यह बच्चे की उम्रपर निर्भर है। पैख़ाना फिर चुकनेपर बच्चेको सौचा दिया जाय, काग़ज़ उठाकर फेंक दिया जाय और उस जगहपर गोबरसे लीप दिया जाय।

जौका आटा

कभी कभी दूध में जौका आटा पानीकी जगह मिलाकर बच्चेको दिया जाता है। सदैव (पेटेन्ट विलायतके डब्बेमें आये हुए) बारली या जौ ख़रीदकर उसका दिनमें दो दफ़ा पानी डिब्बेपर लिखी हुई तरकीबसे तैयार कर लेना चाहिये। दूध और जौके आटेको अलग अलग बरतनोंमें रखना चाहिये और एक दफ़ेमें एक समय काममें लानेके अंदाज़से अधिक न मिलाना चाहिये। बच्चेको कभी कोई अर्क़ या दवा अपने मनसे बिना डाक्टरकी सलाहके न दो, किन्तु बीमारीकी हालतमें तुरन्त डाक्टर बुलाकर उसकी सलाह ले लो।

समुद्रके अन्दर शब्द

[ले०—श्री० कुन्दनलाल, बी. ए.]

भौतिक शास्त्रके बहुत से अनुयायियोंको मालूम होगा कि वायुकी अपेक्षा पानीमें शब्द अधिक वेगसे चलता है। पानी हवाकी अपेक्षा शब्दका उत्तम वाहक है। यदि हम बिजलीकी चमक और उसके पश्चात् उसकी कड़क होनेमें समयका अन्तर ठीक ठीक नाप सकें तो प्रकाश और शब्दका वेग मालूम होनेके कारण यह जान लेना सहज होगा कि हम तूफ़ान उठनेके केन्द्रस्थानसे कितनी दूरीपर हैं। या यों समझिये कि अगर हम रातके समय किसी मैदानमें खड़े हों और वहांसे कुछ दूरपर तोप चलाई जाय तो हम पहले प्रकाशको देखेंगे और उसके बाद उसका धड़ाका सुनेंगे। अगर हम घड़ी द्वारा प्रकाश देखने अथवा शब्द या धड़ाका सुननेके समयोंका अन्तर ठीक ठीक नाप लें तो हमारे लिए उस स्थानकी दूरी जान लेना बिल्कुल सहज होगा, जहांपर तोप चलाई गई थी। शब्द प्रति सेकण्ड ११०० फुट हवा

Sound शब्द शास्त्र]

में और ४४०० फुट पानीमें चलता है। यह बातें बहुत दिनोंसे मालूम थीं, पर इस जानकारीको आधुनिक समयने हमारे लिए उपयोगी बना दिया है। शब्द पानीमें अधिक वेगसे चलता है, इस बातको जानकर वैज्ञानिकोंने ऐसे कई नये नये यंत्र बना डाले हैं जिनकी सहायतासे समुद्रके अन्दर भी सिगनल भेजे जासकते हैं, या यह कहिये कि इन यंत्रोंकी सहायतासे जहाज़ों और पनडुब्बियोंको भी 'कान' प्राप्त हो गये हैं, जिनसे यह दूर समुद्रमें रहते हुये भी किनारेपर कही हुई अनेक आवश्यक बातें सुन सकते हैं।

जब कोई पनडुब्बी नाव समुद्रके भीतर चुपके चुपके अपनी घातमें लगी हुई होती है तो आस-पासके जहाज़ोंको उसका पेरिस्कोप देखे बिना उसकी उपस्थितिका कोई ज्ञान नहीं हो सकता है। यही कारण है कि गत महायुद्धमें जर्मन पनडुब्बियोंने हज़ारों जहाज़ोंको डुबो दिया। अगर कहीं इन जहाज़ोंको सुननेकी शक्ति प्राप्त हो जाती तो यह पानीके भीतर पनडुब्बी नावके चलनेका शब्द सुन लेते और सचेत होकर अपने बचावकी फ़िकर करते। परन्तु ऐसा कोई साधन पास न होनेके कारण उनके लिए पनडुब्बियोंके छिपे छिपे आक्रमणों से बचना कठिन था। हाल में ही अमेरिकाके प्रोफ़ेसर फ़िसेंएडनने पानीके भीतर जहाज़ोंके दोनों बाजुओंपर दो सूक्ष्मवेदी (Sensitive) झिल्लियां लगा दी हैं और इनका संबंध बिजलीके तारों द्वारा एक ऐसे यंत्रसे जोड़ दिया है जो पानीके भीतर उत्पन्न होनेवाले शब्दोंको तेज़ करके उस स्थान तथा उसकी दूरीको भी निर्दिष्ट कर देता है, जहांसे वह शब्द आरहा था। पानीमें डूबी हुई पनडुब्बीको देख लेना अथवा उसके चलनेकी आहट पालेना मुश्किल है; परन्तु इस यंत्र द्वारा पनडुब्बियोंके चलनेमें पंखोंके घूमने से जो शब्द होता है वह अच्छी तरह और काफ़ी दूरसे सुनाई पड़ सकता है। साधारण दोलन यंत्र (oscillator) द्वारा यह शब्द २ मीलकी दूरीपर सुना जा सकता है। अगर यही यंत्र ख़ूब सूक्ष्मवेदी बनाया जाय तो ३२ मीलकी दूरीपर होनेवाला शब्द इस तरहपर सुनाई पड़ता है मानों हमारे पास ही हो रहा है। बिजलीकी शक्ति बढ़ाने और सूक्ष्मवेदी यंत्रोंका प्रयोग करनेसे बहुत दूर दूर के शब्द प्रायः ज्योंके त्यों सुनाई दे सकते हैं।

यह बात वैसे तो बड़ी कौतूहलोत्पादक मालूम पड़ती है, पर वास्तवमें बहुत सरल है। पनडुब्बियोंके पंखोंके चलनेका शब्द समुद्रके भीतर चारों ओर फैल जाता है और जिस जहाज़पर यह यंत्र लगा होता है उसके दोनों बाजुओंवाली झिल्लियोंमें कम्पन उत्पन्न कर देता है। परन्तु जिस तरफ़के कम्प तेज़ होते हैं, उसी तरफ़से शब्द आता है। इसलिए हमें सिर्फ़ यही नहीं मालूम होता है कि पनडुब्बी नाव क़रीब है, वरन् यह भी पता लग जाता है कि वह हमारे जहाज़के किस तरफ़ है। दूसरे यंत्रों द्वारा इस की दूरीका पता चल जाता है; इस प्रकार सहजमें ही जहाज़को डूबनेसे बचाया जासकता है।

बाधा नापना

[ले०—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

'एम्प मापक और वोल्टमापक' शीर्षक लेख पढ़नेसे पाठकोंको यह विदित हो गया होगा कि बाधाका नापना भी उतना ही आवश्यक है जितना धारा और अवस्थाभेदका नापना। यह भी मालूम हो गया होगा कि जिन बाधाओंसे काम पड़ता है वह भी धाराकी तरह तीन दर्जोंकी होती हैं–बहुत छोटी, साधारण और बहुत बड़ी। इन तीन दर्जोंकी बाधाओंको नापनेके लिए भी तीन अलग अलग विधि हैं।

(१) बहुत छोटी बाधा तो वोल्ट और एम्पमापकोंकी सहायतासे नापी जा सकती है।

Electricity विद्युत शास्त्र]

अज्ञात छोटी बाधाके साथमें एक एम्पमापक जोड़कर, जिससे बाधामें होकर बहती हुई धारा मालूम हो जाय, धारा बहानी चाहिये। किसी नियत धाराके बहते समय वोल्टमापकसे उस बाधाके सिरोंपर अवस्था भेद नाप लेना चाहिये। अवस्थाभेदको धारासे भाग देनेसे बाधा निकल आयगी। प्रयोग करनेकी विधि नीचेके चित्रसे मालूम हो जायगी।
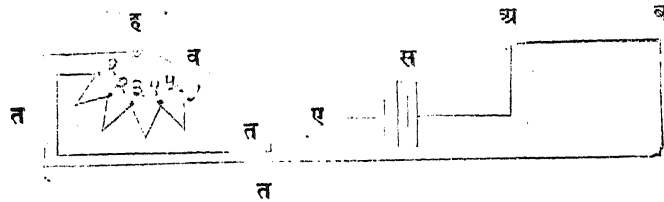
चित्र ४

चित्र४ में स बाटरी है, ततांबेके तारके टुकड़े हैं जिनसे यंत्र चक्रमें जोड़े गये हैं। अब अज्ञात बाधा है और ए एम्पमापक है। व एक तार है जिसके ५ भाग कर लिये गये हैं और प्रत्येक भागपर एक बटन लगा हुआ है। इन बटनोंपर एक हत्था 'ह' घूमता है। बाटरीका सिरा इस हत्थेसे जोड़ दिया जाता है। जब यह हत्था ५ पर होता है तो कुल बाधा चक्रमें आ जाती है, किन्तु जब यह ४ पर घुमाकर लाया जाता है तो एक हिस्सेकी बाधा चक्रमेंसे निकल जाती है। इसी प्रकार जब हत्था ३ पर लाया जाता है तो २हिस्सोंकी बाधा चक्रसे निकल जाती है।इसीप्रकार जब हत्था २ पर लाया जाता है तो ३ हिस्सोंकी बाधा चक्रसे निकलजाती है। हत्थेको १ की ओर घुमानेसे बाधा कम होती जाती है और धारा बढ़ती जाती है, किन्तु ५ की ओर घुमानेसे बाधा बढ़ जाती है और धारा कम हो जाती है। बटन ५ से यदि हत्था उतर जायगा तो धारा बन्द हो जायगी, ५ के बाद भी एक बटन और लगा देते हैं, जिससे धारा बंद करते समय हत्था बटनोंपरसे उतर न जाय और रोकके लिए इस बटनके पास एक खूंटी लगा देते हैं। अतएव घुमाते घुमाते हत्था अंतिम बटनपर खूंटीके सहारे ठहर जाता है। ऐसी बाधाएँ प्रत्येक स्विच-बोर्डपर लगी हुई मिलेंगी। इनसे धारा बड़ी सुगमतासे कम या ज़्यादा हो सकती है। पहले एक नियत धारा बहाकर लिखली जाती है और उसी समय वोल्टमापकसे अब के सिरोंपर अवस्थाभेद मालूम कर लिया जाता है। फिर धारा बदल दी जाती है और अवस्था भेद पढ़ लिया जाता है। इस प्रकार बाधाका परिमाण कई बार नाप लेते हैं। हरबार प्रायः वही परिमाण निकलता है। तब भी उचित यह है कि इन भिन्न भिन्न नापोंको जोड़कर उनका औसत निकाल लें। औसत ही सही बाधा मानी जाती है।

यदि हमारे पास वोल्ट और एम्पमापक न हों किन्तु एक ऐसा धारा मापक हो कि जिसकी बाधा अज्ञात बाधाकी अपेक्षा बहुत बड़ी हो और एक दूसरी ऐसी ज्ञात बाधा हो जो अज्ञात बाधाकी १० गुनीसे अधिक न हो तो बाधा इस प्रकार मालूम की जा सकती है— चित्र ५ में बा बाटरी, त तांबेके तारके टुकड़े हैं। ब
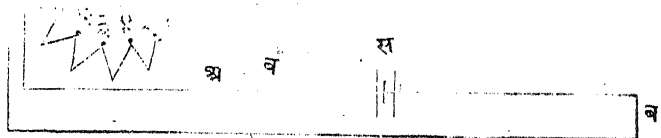
चित्र ५

ज्ञात बाधा और अ ब अज्ञात बाधा है। जब बदलनेवाली बाधाका हत्था ५ पर लाया जायगा धारा बहने लगेगी और 'ब' और 'अब' दोनों बाधाओंमें एकही धारा बहेगी। मानलो धारा ध एम्पकी है और ज्ञात और अज्ञात बाधाएँ ब और $ब_1$ ओह्मकी हैं तो ध एम्पकी धारा बहते समय ब बाधाके सिरोंमें अवस्था भेद = बध वोल्ट

और अब के सिरोंमें अवस्था भेद = $ब_1$ ध वोल्ट।

धारा मापकको पहले अज्ञात बाधाके साथ हारमें जोड़कर विचलन देख लो और फिर धारामापकको ज्ञात बाधाके साथ हारमें जोड़कर विचलन देखलो और मानलो कि पहला विचलन दूसरे विचलनका ५ गुना है, तो बध = ५ $ब_1$ ध

इसलिए ब = ५ $ब_1$

$$\therefore\ ब_1 = \frac{ब}{५}$$

अर्थात् अज्ञात बाधा ज्ञात बाधाके पांचवें हिस्सेके बराबर है।

(२) यदि बाधा बहुत बड़ी हो तो उसको एक धारामापकके साथ शृंखलाबद्ध करके उसमें एक बाटरी द्वारा धारा भेजते हैं और विचलन देख लिया जाता है। फिर एक बड़ी ज्ञात बाधा उसी प्रकार उसी धारामापकके साथ शृंखलाबद्ध करके धारा बहायी जाती है और यह विचलन भी देख लिया जाता है। जो विचलनोंमें सम्बन्ध हो उसका उलटा सम्बन्ध बाधाओंमें होता है। परन्तु यदि हमारे पास बाधाका बक्स हो जिसको चक्रमें सम्मिलित कर देनेसे बाधा कम या ज़्यादा की जा सकती है तो चक्रमें बाधा इतनी डालेंगे कि धारामापकका विचलन उतना ही हो जितना अज्ञातबाधाके साथ हुआ था। ऐसी अवस्थामें अज्ञातबाधा ज्ञातबाधाके बराबर ही होगी।

यह बाधाके बक्स इस प्रकार बनाये जाते हैं। एक फ़ुट लम्बा, आध फ़ुट चौड़ा, आध इंच मोटा एबोनाइटका तख़ा लेकर चित्रमें दी हुई शक्लके एक इंच लम्बे आध इंच चौड़े और आध इंच मोटे पीतलके टुकड़े पेचों द्वारा उसपर कस दिये जाते हैं। इन टुकड़ोंको चौकोर ही समझना चाहिये। इनके सिरोंके बीचका हिस्सा गोल कर दिया जाता है, जिसमें एक ढलामीदार छड़ जिसको चाबी कहते हैं दो टुकड़ोंके बीचमें फंसकर बैठ जाता है। एबोनाइटके तख़्तेके नीचेकी ओर इन दोनों टुकड़ोंके बीचमें एक लकड़ीकी रील लटका दी जाती है। इस रीलके लटकानेके लिए एक पीतलका मोटा तार जो रीलके भीतर जा सके लिया जाता है और उसके दोनों सिरोंपर चूड़ियां काट ली जाती हैं। एक सिरा इस तारका एबोनाइटके तख़्तेमें कस दिया जाता है और रील पहनाकर दूसरे सिरेपर एक ढिबरी कस दी जाती है। इस रीलपर एक मैंगनीनका तार रेशमसे ढका हुआ जिसकी बाधा मालूम होती है दोहरा करके लपेट दिया जाता है। यह नीचे दिये हुए चित्रसे*भली भांति समझमें आ जायगा। इस तारका एक सिरा तख़्तेके ऊपर जड़े हुए एक टुकड़ेसे और दूसरा सिरा दूसरेसे जोड़ दिया जाता है। यह एक ज्ञात बाधा हो गई। इस प्रकार जब कई बाधाएँ जड़ दी जाती हैं तो एबोनाइटका तख़ा एक बक्स पर जड़ दिया जाता है। तारसे लिपटी हुई रीलें (बाधाएँ) बक्स के अन्दर रहती हैं। एक बक्सके अन्दर १६ बाधाएँ १, २, २, ५, १०, २०, २०, ५०, १००, २००, २००, ५००, १०००, २०००, २०००, ५००० ओह्मोंकी लगादी जाती हैं (देखिये चित्र)। १ और ५००० ओह्मोंकी बाधाओंके पास एक एक पेच लगा हुआ होता है। दो पीतलके टुकड़े इसी बक्समें ऐसे होते हैं जिनके बीचमें कोई तार नहीं लगा होता है। इन टुकड़ोंके बीचमें से जब चाबी निकाल ली जाती है तो धाराका बहना बन्द हो जाता है अर्थात् यह चक्रमें धाराका बहाव बन्द करनेके काममें आती है। जैसे और चाबियोंके स्थानोंके सामने तारोंकी बाधाओंकी संख्या १, २ इत्यादि लिखी रहती है, इस चाबीके स्थानके सामने अंग्रेज़ीमें Inf. (अनन्त) लिखा रहता है, जिसका मतलब है कि यहां बाधा असीम है और इस बाधाके चक्रमें सम्मिलित हो जानेसे धारा बन्द हो जायगी। मान लीजिये

*शोक है कि ब्लाक समय पर बनकर न आसके। अगले अङ्कमें यह चित्र दे दिये जायँगे।

आपने चित्र ६ के अनुसार बाटरी और धारामापक इस बाधाके बक्सके साथ जोड़े। जोड़ते समय 'अनन्त' चाबी अवश्य निकली रहनी चाहिये नहीं तो बड़ी भारी धारा बहने लगेगी। इसका कारण अभी मालूम हो जायगा। अब ५००० वाली चाबी निकालकर अनन्तवाली चाबी रख दो। मान लीजिये क बाटरीके धनात्मक सिरेसे जुड़ा हुआ है। धारा

चित्र ६
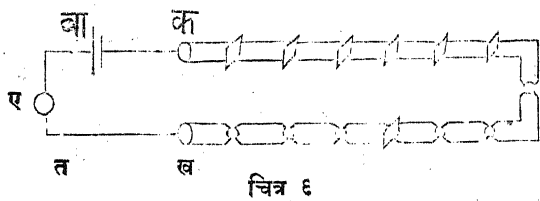
क से बक्समें प्रवेश करेगी और सब चाबियोंके लगे रहनेके कारण एक पीतलके टुकड़ेसे दूसरेमें चाबीकी राह घुसती हुई उस पीतलके टुकड़े तक आ जायगी जो ५००० ओह्मके बाधावाले तारके एक सिरेसे जुड़ा हुआ है। यहांसे दूसरे टुकड़ेमें पहुंचनेके लिए तारके सिवाय कोई और रास्ता नहीं है। इस तारमें होकर दूसरे टुकड़ेमें पहुंच जायगी। वहांसे त तारमें और ए एम्पमापकमें होती हुई बाटरीको लौट जायगी। अब यदि ५००० वाली चाबी भी लगादी जाय तो क से लेकर ख तक धारा पीतलके टुकड़ोंमें ही होती हुई चली जायगी और इन सब टुकड़ोंकी बाधा $\frac{१}{१०००}$ ओह्मसे अधिक नहीं होती है। इससे बड़ी भारी धारा बहने लगेगी। इसी कारण हमने ऊपर कहा है कि ऐसी भूल कभी नहीं करनी चाहिये कि बाटरी बिना एक बड़ी बाधावाली चाबी निकाले जोड़ दी जाय। सब चाबियां निकाल लेने पर इस बक्सकी बाधा ११,००० ओह्म होगी और जब सब चाबियां लगी होंगी तो इसकी बाधा $\frac{१}{१०००}$ ओह्मके लगभग होगी।

दूसरी बात जिसका ध्यान इस बक्सके इस्तेमाल करते समय रखना चाहिये वह यह है कि इसके तारोंमेंसे प्रबल धारा न बहायी जाय। नहीं तो तार गरम होकर उनके ऊपर लिपटा हुआ रेशम जल जाता है। कुछ पाठकोंके दिलमें शायद ऐसा संदेह उत्पन्न होगा कि पीतलके टुकड़े तो बाधाओंके साथ हारबद्ध हैं। इसलिए सब चाबियां लगी होनेपर भी कुछ न कुछ धारा बाधाओंमेंसे अवश्य ही जायगी। हमने यह कैसे कह दिया कि धारा पीतलके टुकड़ोंमेंसे होकर ही जायगी। यह सत्य है कि यह टुकड़े हारबद्ध हैं और बाधाओंमेंसे धारा जायगी, परन्तु यह धारा अत्यन्त दुर्बल होगी। इसीलिए इसका कोई ख़याल नहीं किया जाता।

(३) जो बाधाएँ न बहुत बड़ी होती हैं और न बहुत छोटी वह ह्वीट स्टोनके जालवाली विधिसे निकाली जाती हैं। यह रीति बहुत ही उपयोगी है और सब रीतियोंकी अपेक्षा अधिक काममें आती है और जैसा बाधाओंका जोड़ इस विधिमें होता है वैसा बहुत कामोंमें आता है। इसीलिए हम इस विधिको विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

मान लीजिये दो बाधाएँ क, ख ओह्मोंकी बाटरीके साथ श्रृङ्खलाबद्ध हैं। (चित्र ७) क का एक सिरा अ बाटरीके एक सिरेसे त तार द्वारा जुड़ा है और दूसरा सिरा ख के एक सिरेसे आ स्थानपर जुड़ा है। ख का दूसरा सिरा त तार द्वारा बाटरीके दूसरे सिरेसे जुड़ा हुआ है। ऐसी अवस्थामें जो धारा त तारमें होकर बहती है वही क और ख बाधाओंमें होकर भी जाती है। अब यदि हम दो
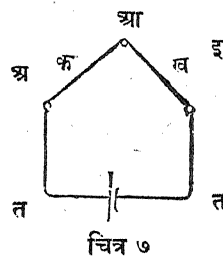
चित्र ७
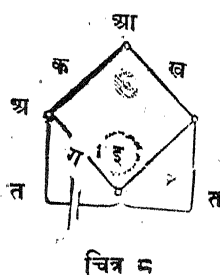
बाधाएँ ग और घ जिनका एक एक सिरा ई पर जुड़ा है (अर्थात् श्रृङ्खलाबद्ध हैं) क और ख के साथ हारबद्ध करदें (चित्र ८) तो जो धारा त तारमें होकर अ पर पहुंचती है उसका एक हिस्सा

चित्र ८

क और ख में होकर जायगा और दूसरा ग और घ में होकर और यह दोनों हिस्से इ पर मिलकर त तार द्वारा बाटरीके दूसरे सिरेको चले जायंगे। जो धारा ध, अ पर पहुंचती है मान लीजिये उसका एक हिस्सा $ध_1$, क और ख में होकर जाता है और दूसरा हिस्सा $ध_2$, ग और घ में होकर तो

क के सिरों पर अवस्था भेद = क $ध_1$ वोल्ट
और ख " " = ख $ध_1$ "
ग " " = ग $ध_2$ "
घ " " = घ $ध_2$ "

अब अ और इ में जो अवस्था भेद है } = क $ध_1$ + ख $ध_1$
= ग $ध_2$ + घ $ध_2$

यदि बाधाएँ ऐसी हों कि क $ध_1$ = ग $ध_2$ तो ख $ध_1$ बराबर होगा घ $ध_2$ अर्थात्

$$\frac{क}{ग} = \frac{ध_2}{ध_1}$$

और इसी प्रकार $$\frac{ख}{घ} = \frac{ध_2}{ध_1}$$

इसलिए $$\frac{क}{ग} = \frac{ख}{घ} \qquad (१)$$

या $$\frac{क}{ख} = \frac{ग}{घ} \qquad (२)$$

ऐसी सूरतमें ३ बाधाएँ मालूम हों तो चौथी बाधा मालूम हो सकती है। (१) समीकरणके लिए शर्त यह है कि जो अवस्थाभेद क के सिरों पर है वही अवस्था भेद ग के सिरोंपर भी होना चाहिये। अ तो दोनों बाधाओंके लिए एकही है। इसलिए इस शर्तको पूरा करनेके लिए आ और ई की अवस्था भी एकही होनी चाहिये अर्थात् इन दोनों स्थानोंमें कोई अवस्थाभेद नहीं चाहिये। इस बातकी जाँचके लिए आ और ई के बीचमें एक धारामापक लगा दिया जाता है। उस समय यह जाल चित्र ९ के अनुसार होता है। जब धारामापकमें विचलन बिलकुल नहो तो आ और ई की अवस्था एकही समझनी चाहिये और बाधाओंमें (१) और (२) समीकरणोंवाला सम्बन्ध होगा।
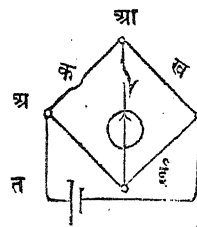
चित्र ९

अब देखिये इस जालकी सहायतासे बाधा किस प्रकार नापी जाती है। मान लीजिये हमको एक बिजलीके लम्पकी बाधा निकालनी है। हम दो बाधाएँ जिनको चित्र १० में क और ख से सूचित
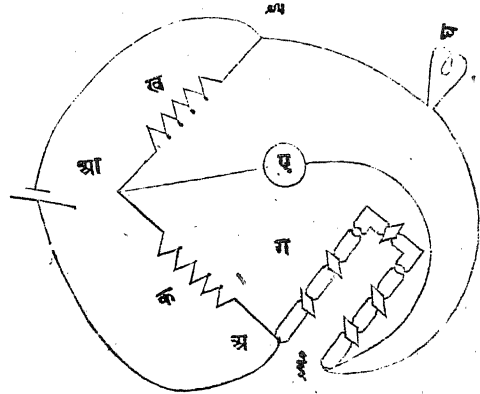
चित्र १०

किया है १०, १०, ओह्मोंके बराबर लेंगे, इनका एक एक सिरा जोड़ देंगे, यह जोड़ हमारा आ स्थान हुआ, क बाधाका दूसरा सिरा एक बाधा बक्सके सिरेसे जोड़ देंगे। यह स्थान हमारा अ हुआ और बाधा बक्स ग बाधाके स्थानमें हुआ। बाधा बक्सका दूसरा सिरा लम्पके एक सिरेसे जोड़ देंगे। यह स्थान ई हुआ और लम्पका दूसरा सिरा दूसरी १० ओह्मों वाली बाधाके सिरेसे जोड़ देंगे यह स्थान इ हुआ। लम्प घ बाधाके स्थानमें हुआ जहां १०, १०, ओ० की बाधाएँ जुड़ी हैं धरामापक का एक सिरा जोड़ देंगे और इसका दूसरा सिरा-

स्थान ई पर जोड़ देंगे, जहां लम्पका सिरा बाधा बक्ससे जोड़ा है। जहां १० ओ० की बाधाका सिरा, बाधा बक्सके एक सिरेसे जुड़ा है वहां बाटरीका एक सिरा जोड़ देंगे और जहां लम्पका एक सिरा दूसरी १० ओ० की बाधासे जुड़ा है वहां बाटरीका दूसरा सिरा जोड़ देंगे। जो तार बाटरीके सिरे को इ स्थानसे जोड़ता है उसमें एक स्विच भी डाल देंगे। इससे यह लाभ होगा कि धारा बराबर न बहती रहेगी। धारा उसी समय बहेगी जब हम स्विचको बन्द करेंगे। जैसे ही स्विचको खोल देंगे धाराका बहाव भी बंद हो जायगा। यदि ऐसा प्रबंध न करें और आ और ई की अवस्था एक नहो (जैसा प्रयोगके आरंभमें होगा) तो बहुतही प्रबल धारा धारामापकमें होकर बह सकती है और धारामापककी हानि पहुंच सकती है। वास्तवमें धारामापकके साथ एक बहुत बड़ी बाधा शृंखलाबद्ध कर देनी चाहिये, जिससे उसमें कभी प्रबल धारा बहे हो नहीं और हानि न पहुंचे और जैसे जैसे धारामापकमें धाराकी प्रबलता कम होती जाय इस बाधाको कम करते चला जाना चाहिये।

अब बाधा बक्समेंसे एक बहुत बड़ी बाधा वाली चाबी निकालकर बाटरीका स्विच बंद करना चाहिये और धारामापकके विचलनकी दिशा देख लेनी चाहिये। जब कभी बक्सकी बाधा लम्पकी बाधासे अधिक होगी धारामापकका विचलन इसी दिशामें होगा। इससे हमको यह पता लग जायगा कि बक्समें बाधा कम करनी चाहिये या ज़्यादा। जब बक्सकी बाधा कम हो जायगी तो धारामापकका विचलन दूसरी दिशामें होने लगेगा। विचलनकी दिशा देख देखकर हम बाधा बक्समें बाधा चाबी, निकालकर या रखकर, घटाते बढ़ाते रहेंगे जबतक कि धारामापकमें विचलन बिलकुल न होगा। जब यह अवस्था आजायगी तो बाधा बक्सकी बाधा लम्पकी बाधाके बराबर होगी। क्योंकि (१) समीकरणके अनुसार

$$\frac{घ}{ग} = \frac{ख}{क}$$

घ लम्पकी और ग बक्सकी बाधाएं हैं और ख, क १०, १०, ओह्मों के बराबर हैं इसलिए

$$घ = ग. \frac{ख.}{क.}$$
$$= ग.$$

बाधा बक्समें ऐसा कोई प्रबंध नहीं है कि एक ओह्मसे कमकी बाधा चक्करमें सम्मिलित कर सकें। इसलिए ऊपरवाले प्रयोगसे लम्पकी बाधा ठीक ठीक मालूम न हो सकेगी। हम इतना पता चला लेंगे कि बाधा ३१ से अधिक और ३२ से कम है। मान लीजिये कि बाधा ३१·४७ ओह्म है तो हम इस प्रकार ठीक ठीक निकाल सकेंगे। हम ख को १० ओह्मके बराबर ही रखेंगे किन्तु क को १० ओह्मके बदले १०० ओह्मके बराबर करदेंगे तो हम देखेंगे कि अब बक्समें ३१५ ओह्मके बराबर बाधा होनेसे धारामापकका विचलन एक दिशामें होता है और ३१४ ओह्मके बराबर बाधा होनेसे विचलन दूसरी ओर होता है, जिससे हमको यह पता चला कि बाधा ३१·४ और ३१·५ ओह्मोंके बीचमें है, क्योंकि

$$घ = ग. \frac{ख}{क} = ग. \frac{१०}{१००}$$

अब यदि हम क को १०० ओह्मके बदले १००० ओह्मोंके बराबर करदें तो हम देखेंगे कि बाधा बक्ससे ३१४७ ओह्मोंके बराबर बाधा निकालनेसे धारामापकमें विचलन बिलकुल नहीं होता है इसलिए

$$घ = ग. \frac{१०}{१०००}$$
$$= \frac{३१४७}{१००}$$
$$= ३१·४७ \text{ ओ॰}$$

हिन्दी-साहित्यकी सरसरी सैर

[ले०—श्रीअब्दुल्लाह]

१—हमारा रोना

जिस तरह बच्चा अपना जीवन रोकर आरम्भ करता है हम भी रोकर ही साहित्य-जगतमें आज क़दम रखते हैं। रोयें क्यों न? साहित्य-की चर्चा करने उठे पर जिधर निगाह डालते हैं उदासी घेरे हुए है। किसीको शिकायत होगी कि हमारी-फुलवारी मुरझा रही है और हमें हसरत है कि कोनेके कोने साफ़ उजाड़ मैदान पड़े हुए हैं। मालीने इधर कोई पौधा ही नहीं लगाया, सूखे क्या। नंगी नहाय क्या और निचोड़े क्या! कहीं कहीं तो ज़मीन ही तैय्यार नहीं; टूटी ही नहीं; नमी नामको नहीं; बीज पड़े ही नहीं; मालीने उधर निगाह ही नहीं डाली। शौक़ीनोंने आराइशके लिए दो चार घमले ला रखे वह भी मुरझा रहे हैं। मंगनीकी आंखों कहीं बरसात कटी है। हिन्दी-साहित्यके उद्यानकी ऐसी उजड़ी दशा देख अपने नसीबोंको रोना ही पड़ता है। हम यों बिलख रहे थे कि इतनेमें एक ओरसे आवाज़ आई "घबराओ मत अब्दुल्लाह, तेरे

२—आंसू पोंछनेके सामान

भी मौजूद हैं। अब तक नहीं तो अब सही। देख तो, हिन्दी संसारकी प्राचीमें मौलिकता रूपी सूर्य्यकी किरणें फूट रही हैं। प्रकाशमें तेरे उद्यान-का जीवन स्रोत बहता चला आ रहा है। श्यामल डहडही लताओंपर सुनहली किरणोंकी गंगा जमुनी इस बाग़की शोभा बढ़ा रही है। अब रसिक माली चेत गये हैं। अपने कामसे पहिलेकी तरह ग़ाफ़िल नहीं हैं। रसिक बाटिकाके * इस कवित्तकी दशा दूर नहीं है—

मूरख मतंग ढिग आवन न देत क्यों ही
पापी पसु पामरको करत किनारे हैं।
थूरि मद कंटकको दूरिकरि यातें भूरि
ईरषा कुलनि खनि बाहर निसारे हैं।
सूकर कुचाली नीच निन्दक बिदारक जे
बाटिका बिरोधी तिन्हें दंड दै विदारे हैं।
धारे बनमाली-अनुरागवट-प्रेमसाली
माली यहि बाग़के सुकवि रखवारे हैं।

३—उपन्यासका अंगन्यास

अंग्रेज़ोंमें जिसे नावल कहते हैं, हिन्दी और बंगलामें उपन्यास और मराठीमें कादम्बरी। इस अर्थमें उपन्यासके पूरे लक्षण चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथादि ऐय्यारी और तिलिस्मकी कहानियोंमें नहीं मिलते। पर इन्हें उपन्यास न कहें तो कहें क्या? यह सच है कि इनमें उद्देश्य और उपदेशकी ऊंचाई नहीं मिलती। अनेक बातें स्वभाव विरुद्ध हैं, कहानियां भी मानव जीवनके स्वाभाविक तथ्योंकी अनेकस्थलोंमें उपेक्षा करती हैं। यह सब सही, यह उपन्यास साधारण सद्गुण शून्य सही, पर यह क्या थोड़ी बात है कि जो इन्हें पढ़ना आरम्भ करता है समाप्त किये विना रह नहीं सकता। अनेक हिंदी-प्रेमी गौरवसे यह कह सकते हैं कि हमने चन्द्रकान्ता पढ़नेके लिए ही पहले पहल हिन्दी पढ़ी। भाषाकी सरलता और कहानी-की रोचकता थोड़ी बात नहीं है।

स्व० देवकीनन्दन खत्रीकी देखा देखी उपन्यासकी रचना ऐसी तेज़ीसे होने लगी कि बाज़ार उपन्यासोंसे भर गया। बहुतेरे खुले बन्दों बँगला-का अनुवाद करने लगे पर अधिकांश ने कभी छाया ग्रहण की और कभी "अखिल प्रबन्ध पर" हाथ फेरा और नावेलिस्ट बन बैठे। गोस्वामी किशोरीलाल जी ने जो उपन्यासोंमें हाथ लगाया तो अपने मस्तिष्क-मशीनसे एक दम पचासों निकाल कर फेंक दिये। काशीमें तो उपन्यासके कार्य्यालय या कारख़ाने ही खुल गये। कलकत्तेने तो लंडनके भी कान काटे और उसके रहस्योंका

*कानपुरके रसिक समाजकी पत्रिका जिसे स्व० पूर्ण जी कभी निकालते थे।

भांडार खोल दिया। जो हो, और न सही तो उपन्यासोंने तो हिन्दीका इतना उपकार अवश्य किया कि कहानी और मनोरंजकताके बहाने हिन्दी पढ़नेकी रुचि उत्पन्न कर दी।

हिन्दीके उपन्यास प्रायः सभी रोचक हैं पर आदर्शकी दृष्टिसे श्रीनिवासदासका परीक्षा गुरु, पं० बालकृष्ण भट्ट का सौ अजान और एक सुजान तथा इधर हालके उपन्यासोंमें बा० ब्रजनन्दन सहायका सौन्दर्य्योपासक बहुत ऊंचे दरजेके ग्रंथ हैं। पहिले दो तो सब तरह निर्दोष हैं पर तीसरेमें एक जगह ज़रासी अश्लीलता है सो भी सफ़ेद चादरमें एक काला धब्बा है, बस। परीक्षा गुरुकी भाषामें दिल्लीकी सादगी है पर "मास्टर शम्भूदयालने कहा" इस प्रकारके वाक्यको कथितांशके पीछे लानेसे अंग्रेज़ीकी बू आती है। भट्टजीका "सुजान" बड़ा चतुर है, आदर्श पात्र है। प्रयागकी प्रान्तीयताकी पुटके साथ ही महावरोंकी वह खूबी है कि यह पुस्तक तीनोंमें ऊंचा दरजा रखती है। पर कल्पनाके विस्तारमें और विचारके प्रसारमें सौन्दर्य्योपासक बाज़ी ले गया है।

४—नाटकका परदाफ़ाश

नाटक यदि लिखे तो बा० हरिश्चन्द्रने। यह सच है कि भारतेन्दुके एकदम मौलिक नाटक थोड़े हैं, पर यही बात सत्यता पूर्वक शेक्सपियर के लिए भी कही जा सकती है। भारतेन्दुके नाटकोंमें जो अनुवाद हैं वह मौलिकसे भी कहीं ज़्यादा मज़ेदार हैं। अगर कहें कि हरिश्चन्द्रने अनुवाद नहीं किये, बल्कि मज़मून छीन लिये, तो अनुचित न होगा। उनके बाद लाला सीतारामने बहुतेरे नाटक रचे। हमको उनका मृच्छकटिक बहुत पसन्द आया। स्व० रायदेवीप्रसाद पूर्णके चन्द्रकला भानुकुमार नाटकका एक एक अक्षर मौलिक है, कविके हृदयकी उपज है और यद्यपि नाटक एक रातमें समाप्त होने लायक़ नहीं है तो भी उसमें नवों रस कूट कूट कर भरे हैं, काव्यका अपूर्व आनन्द है। कथा भाग अत्यन्त सादा है पर जहां कहीं अस्वाभाविकताकी झलक है वहां समाधान अत्यन्त समुचित है। तबसे यों तो कई नाटक बने पर कोई बढ़िया देखनेमें नहीं आया। प्रहसनों में पं० बद्रीनाथ भट्टने "चुंगीकी उम्मेदवारी" बहुत अच्छी की। अब आजकल राजनैतिक नाटक लिखनेके दिन हैं, पर देखते हैं कि प्रेसके क़ानूनके दबावसे इस विषयमें कोई लिख नहीं रहा है। महात्मा गान्धीजीका सत्याग्रह कई नाटकोंका विषय हो सकता है। लो० तिलक और देवी बसन्तो आदि भी नाटकके अच्छे पात्र हो सकते हैं। सामाजिक नाटक भी कुछ नहीं के बराबर हैं। अछूतोंके उद्धारपर नाटक चाहिएँ। महाभारत और रामायणकी कथाओंको दुहराते दुहराते अरोचक कर डालनेकी अपेक्षा नये नाटक रचवाना ही देश हितैषियोंका कर्तव्य है।

त्रिवंकुरके गणपति शास्त्रीकी कृपासे संस्कृत के प्राचीन कवि भासके कई नाटक प्रकाशित हुए। अपनी सादगीके लिए यह अनूठे हैं। इनमेंसे एक 'स्वप्न वासवदत्तम्‌का' हिन्दी अनुवाद भी छपा पर भास बिचारेके भाग अच्छे न थे कि अनुवादक ठिकानेका न मिला। अभी सुननेमें आया है कि एक काव्यरसिक मित्रने इस कामको उठाया है। ईश्वर उन्हें आप्त काम करे।

५—काव्यका नव्य

कविताकी शैलीके लिए भारतेन्दु तक प्राचीन प्रणालीकी एक सीमा समझनी चाहिये। उनके बाद ही ढंग बदलने लगे। खड़ी बोलीमें यद्यपि पहलेसे कविता होती आई है, तथापि कम कम। इसमें अगुआ होनेकी पगिया पाठकजीके ही सिर बँधती है। अनुवाद होते हुए भी पाठकजी की कविता मौलिकताके कान काटती है। शब्दयोजनाके और माधुर्य्यके तो पाठकजी उस्ताद हैं। ब्रजभाषाके भी काव्य "सकल काव्यन सों रूरे" हैं। पर कुछ हो पाठकजीने जो अंश अपने मनकी उमंगसे और अपने हृदयके सच्चे भावोंसे लिखा

है, वह अवश्य सबसे बढ़ गया है। काश्मीर सुखमा पढ़कर रसिक लोग हमारा समर्थन करेंगे। गँवारी भाषाके पुटके साथ "देहरादूनवा" भी मज़ेदार है। बा० मैथलीशरण गुप्तने भारत भारती में कितनी ही देश भक्ति छांटी पर उनका "किसान" फिर भी अच्छी काट कर गया! इधर पं० श्रीधर पाठकके पद लालित्यका मज़ा तो नहीं है पर कहीं कहीं "झुकि झपटि झूमि इतस्ततः" रंग दिखा ही जाता है। इस विभागमें, जिसे एक प्रकारकी अमृतध्वनि कह सकते हैं, कवि शंकर जी सिद्ध हस्त हैं। जिस टवर्गको स्वभावतः कर्णकटु माननेकी परंपरा है उसे ही पं० विष्णु दिगम्बरके बांस-तरङ्गकी तरह ऐसी योजनाके साथ शंकरजी लाते हैं कि टवर्गका बेसुरापन उत्तम और मधुर गानमें परिणत हो जाता है। अनुराग रत्न और गर्भरंडारहस्य पढ़कर आप सच्ची दाद दिये बिना नहीं रह सकते। खेद है, रहस्य अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायका प्रियप्रवास यद्यपि क्लिष्ट और प्रायः अस्वाभाविक हो गया है पर जगह जगह अनूठी उपमाएं और लगती हुई उत्प्रेक्षाएं आनन्द देही जाती हैं।

ढंग भी वह है कि मराठे और गुजराती हिन्दी रसिकोंमें इसका आदर हुए बिना नहीं रह सकता। उपाध्यायजीको शब्दोंपर अपूर्व अधिकार है। ठेठ भाषाकी कविता तथा गद्यके तो आप आचार्यसे हो गये हैं। उपाध्यायजीकी "ठेठ हिन्दी," स्व० सुधाकरकी "राम कहानी", इन दोनोंमें होड़ है। गृहस्थी तथा कारबारके उपकरणोंकी शब्दावलीका बड़ा संग्रह रामकहानीमें मिलता है, यद्यपि इसकी भाषा महावरेके दोषोंसे दूषित है। ठेठ हिन्दी में जहां यह दोष नहीं हैं वहां शब्द संग्रह भी नहीं है। ठेठ शब्दोंका प्रयोग बाहुल्य लेखककी योग्यताका परिचायक है। मिश्रित हिन्दी अर्थात् उर्दूके लेखकोंमें आगरेका नज़ीर और लखनऊके पं० रतननाथ इस योग्यतामें रत्न थे और बेनज़ीर थे। शुद्ध हिन्दीमें अभी ऐसे लेखक इधर १०० बरसोंके भीतर तो नहीं हुए जिनके लिए माघकी तरह "नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते" कहा जा सके। गहमरके जासूस जी को महावरोंकी टकसाल कह लीजिये पर शब्दका धन-प्राचुर्य्य नहीं है।

हम यहां गद्यकी भी चर्चा कर गये। बहुत से लोग काव्य से पद्य ही समझते हैं। गद्य को यह पदवी देते सकुचाते हैं। कई वर्ष हुए हमारे एक कवि-मित्रने बड़े कौतूहलसे हमसे पूछा कि सम्मेलनके कोर्समें गद्यके साथ अलंकारके प्रश्न कैसे? क्या गद्यमें भी अलंकार "आते" हैं? इस प्रश्नसे स्पष्ट है कि आपकी रायमें गद्य निगोड़ा नंगा बूचा ही रहता है। उसे अच्छी पोशाक पहनाना और ज़ेवरोंसे आरास्ता करना गुनाह है।

सरूरके फ़िसाना अजायबसे कहीं बढ़े चढ़े गद्यका मज़ा लेना चाहें तो पं० गोविन्दनारायण मिश्रका "कवि और चित्रकार" पढ़िये। खेद है कि अभी अप्रकाशित है। हिन्दीमें इस नमूनेका गद्य काव्य अभी देखनेमें ही नहीं आया है। संस्कृतकी कादम्बरी, वासवदत्ता और दशकुमार चरितके लच्छेदार वाक्य भी इसके सामने मात हैं। देखें किस प्रकाशकको इसके छापनेका यश मिलता है।

हिन्दीके रोज़मर्राके (?) साथ साथ काव्यके रसास्वादन रूपी दूध और मिस्रीका मज़ा लेना हो तो पं० पद्मसिंह शर्म्माकी "बिहारीकी सतसई" पढ़िये। बिहारी जैसे महाकविका तुलनात्मक अध्ययन पुराने नये सभी भाषाओंके कवियों और शायरोंके साथ ऐसी ख़ूबीसे हुआ है कि एक बिहारीके बहाने आप अनेक महाकवियोंका आनन्द पा जाते हैं। साथ ही यदि आपमें स्वाभाविक काव्य रसिकता न हो तो पढ़कर आप अवश्य ही काव्यरसिक बन जायं। शैली अनूठी है, मनोहारिणी है। हिन्दीके लिए यह वस्तुतः एक अनमोल पुस्तक है। काशीके ज्ञानमंडलने इसे प्रकाशित करके बड़ा पुण्य कमाया है।

कविता कामिनी आज पं० सत्यनारायण

कविरत्नकी मृत्युपर रो रही है। इस उठते हुए कविमें प्रतिभा थी, जिसकी किरणें साहित्याकाशमें फैलने न पायीं, कविता थी जो अपने पूर्ण विकाश की बाट जोह रही थी, परन्तु "इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे, हा हन्तहन्त नलिनीं गज उज्जहार", हिन्दीके दुर्दैवको यह आशा असह्य थी। मालतीमाधव अभी छपा नहीं, पर अनुवाद अच्छा है। काव्यानन्द है। देखें इसे कौन प्रकाशित करता है।

ला० भगवानदीनने भी लड़कोंके पढ़ने लायक बिहारी सतसईकी टीका कर रखी है। पदमावत पूर्वार्द्ध तैय्यार है। रामचन्द्रिकामें भी हाथ लगा हुआ है। इन पुस्तकोंके लिए ऐसे ही मर्म्मज्ञ और रसिक सम्पादककी आवश्यकता थी जो स्वयं उत्तम कोटिका कवि हो। "वीरप्रताप" आदि कई कविताके ग्रन्थ जो वीररसके रसिकोंकी जुबानपर हैं, और "अलंकार मंजूषा" जो अलंकारपर एक अनुपम और नये ढंगका ग्रंथ है, हमारे इस कथनके प्रमाण हैं। हमारा अनुमान है कि इन ग्रन्थोंके छापनेका श्रेय हिन्दी पुस्तक एजेन्सीको मिलेगा।

६—व्याकरण और शब्द शास्त्र

काशी नागरी प्रचारिणी सभाने मुद्दतसे इन दोनों कामोंका बीड़ा उठा रखा है। शब्द सागरको गति केंचुएकी सी हो रही है। व्याकरणका खरहा अभीतक सो रहा था। सुनते हैं कि जागकर छापेख़ानेतक पहुँच गया है। भगवान करे दौड़में जीत जाय, पर अब भी खटका है। कोश जिस ख़मदमसे निकल रहा है, हम कह सकते हैं कि उसके मैदान मुक़ाबिल अभी कोई नहीं, पर व्याकरणकी रचनाका हाल नहीं मालूम। हिन्दी भाषा पुरानी प्राकृत है, जिसका आदिरूप चंदके समयके प्राकृतमें मिलता है। जिस जातिका रहन सहन, रीत भांत, कई हज़ार बरससे एकही देशमें प्रायः अक्षुण्ण रीतिसे जारी हो उसकी भाषाकी उत्पत्ति बीचके समयसे मान बैठनेवाली बुद्धिकी बलिहारी! पर आज तकके हिन्दीके वैयाकरण न जाने क्यों ऐसा ही माननेको अपना गौरव समझते हैं। इसीलिए प्राकृत बेचारीको कोई पूछता ही नहीं। हिन्दीका व्याकरण सच पूछिये तो प्राकृतका व्याकरण है और जो वैयाकरण प्राकृतका पंडित नहीं और हिन्दीका वैयाकरण होनेका दावा करे, वह बिच्छूका मंत्र नहीं जानता और सांपके बिलमें हाथ डालनेका दुःसाहस करता है। हमारी रायमें हिन्दीका व्याकरण लिखनेकी ऊँची योग्यता रखनेवाला कोई विशेषज्ञ है तो श्री पं० गोविन्दनारायण मिश्र हैं। मित्रोंके आग्रहसे आपने आरंभ भी किया तो कई अनिवार्य्य कारणोंसे अभी पूरा न कर सके। देखिये हिन्दीके भाग कब खुलते हैं, वह दिन कब देखनेमें आता है। जबतक यह व्याकरण नहीं निकलते तबतक तो जो बाज़ारमें हैं उन्हींकी तूती बोलती है। हालमें हिन्दी कौमुदीका प्रकाश हुआ है, जिससे हृदय कुछ शीतल होता है, परन्तु यह भी दूजका चाँद ही है। शब्दशास्त्र और भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे मिश्रजीकी "प्राकृत विचार" नामकी लेखमाला, जो कभी हितवार्त्तामें निकल चुकी है, अपूर्व होगी पर आश्चर्य्य है कि किसी प्रकाशककी निगाह उधर फिरी ही नहीं। ऐसे उपयोगी लेख पुस्तकाकार निकलने अत्यावश्यक हैं। हिन्दीमें ऐसी चीज़ोंका सम्प्रति नितान्त अभाव है।

वैज्ञानिक परिभाषा जो मुद्दत हुई नागरी प्रचारिणी सभाने प्रकाशित की थी अब बहुत पुरानी हो गयी। यदि प्रत्येक विषयके और शब्द जोड़े जायँ तो विश्वास है कि पुस्तक दूनी हो जायगी। साथ ही विषयोंके कोष अलग अलग रखनेसे इतनी पुनरुक्ति होती है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। यदि एकही शब्दके भिन्न भिन्न विषयोंके अर्थसूचक संकेत रखकर पूरा कोष एकमें ही कर दिया जाय और उसमें परिवर्तन और परिवर्धन यथोचित कर दिये जायं तो बड़ी भारी कमी पूरी हो जाय। वनस्पति शास्त्र, जन्तु विज्ञान,

शरीर विज्ञान, मानव विज्ञान, शिल्प, कला आदिसे अभी कोश शून्य है। शिल्पादि कारख़ाने-के विषयके शब्द गढ़े न जायँ, प्रत्युत कारख़ानोंके खलासियों और कुलियोंसे सीखकर संग्रह किये जायं। पर काशी नागरी प्रचारिणी सभासे आशा नहीं कि इस कामको शीघ्र अपने हाथमें ले। परिभाषापर बहुत प्रश्न हुआ करते हैं। ग्रन्थकारोंको चाहिये कि जैसे शब्द उन्हें उपयुक्त जँचें लिख चलें, उनका संशोधन भाषाकी स्वाभाविक गतिमें आप ही होता जायगा। सभी जगह यही हाल है। ग्रन्थकार शब्द रचते चलते हैं और साहित्यिक उनका संशोधन भी करते ही चलते हैं।

७—इतिहास

इतिहासके ग्रन्थोंकी बहुत कमी है। भारतवर्षके इतिहास अब तक जितने हिन्दीमें प्रकाशित हुए हैं स्कूलोंमें पढ़ाने भरके कामके हैं। पं० हरिमङ्गल मिश्रका प्राचीन भारत ज्ञान-मंडल (काशी) छाप रहा है। यह एक बड़े अभावकी पूर्ति करेगा। परन्तु मिश्रजीके अतिरिक्त पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राय बहादुरने एक बृहत् इतिहास भारतका ही लिख रखा है, पर न जाने किस प्रकाशकको इस बृहत ग्रन्थके प्रकाशनका श्रेय मिलेगा। अभी तो ओझाजी चुपचाप उसकी रक्षा कर रहे हैं। संभव है कि लेनेकी कोशिश भी किसीकी ओरसे न होती हो। हि. पु. ए. ने अभी तक ऐतिहासिक लेखमाला हमारे मित्र गोयनकाजी की लिखी निकाली है। इस तरहके खोजके लेखोंकी बड़ी आवश्यकता है। सरकारी पुरातत्व विभागके पं० हीरानन्द शास्त्री, साहनी प्रभृति विद्वान, राय हीरालाल बहादुर, पं० हरिरामचन्द्र दिवेकर, पं० जनार्दन भट्ट आदि अनेक सज्जन हैं जो विंसेंट स्मिथके प्राचीन भारतकी अपेक्षा कहीं अच्छे ग्रंथ लिख डालते, पर न जाने क्यों इन विद्वानोंका ध्यान इस बड़ी आवश्यकताकी ओर नहीं जाता।

विदेशोंके इतिहास ग्रंथ कई जिल्दोंमें और बहुत बड़े बड़े हों, इसकी सम्प्रति आवश्यकता नहीं है। संसारके अन्य देशोंके इतिहासका अनुशीलन हमको स्थूल रूपसे ही करना चाहिये। हमारी रायमें विदेशी इतिहासमें राजनैतिक ह्रास वा विकाशका दिग्दर्शन मात्र हमारा इष्ट होना चाहिये। किसी विदेशके अरोचक और उद्देश्य रहित विस्तारको अपने दिमाग़में ठूंसना अपने अमूल्य समयको असंख्य पृष्ठोंके पढ़नेमें लगाना जैसे हमारी दृष्टिमें अपश्रम है उसी तरह ऐसे ऊँटके बोझोंको प्रकाशित करना अपव्यय भी है। हमारे सामने कामका ढेर लगा हुआ है, उसे साफ़ करना पहला काम है। जब उससे अवकाश मिले तब पुस्तकालयोंकी शोभा बढ़ानेकी भी चिन्ता की जाय। मनुष्यका जीवन थोड़ा है। पुस्तकोंकी संख्या उसे पागल बनानेके लिए बढ़ती ही जाती है। तत्वकी बातें कम और काग़ज़का ख़र्च ज़यादा, यह सिलसिला पाश्चात्य सभ्यतासे चल निकला है। भारतीय सभ्यता इसके प्रतिकूल है। हमको ऐसे साहित्यकी रचना करनी चाहिये, जिसमें तत्व अधिक हो। अतः स्थायित्व हो। पाश्चात्य रीत्यनुसार बरसाती कुकुर मुत्तेकी तरह नित्य सैकड़ों पुस्तकें निकालना और दस पांच बरसमें उन्हें रद्दी ठहरा कर औरोंके लिए स्थान देना व्यापारकी दृष्टिसे कितना ही अच्छा हो, पर विद्वज्जनोंके अपश्रममें कोई कसर ही नहीं।

इतिहासके लिए दस हज़ारका दान

इतिहासकी रंगभूमिके बहुत पुराने पात्र जोधपुरके मु० देवीप्रसाद मुंसिफ़ हैं। आपने हालमें ही एक बड़ा पुण्य कार्य किया है, जिसके लिए हिन्दी आपकी चिर ऋणी रहेगी। मुंसिफ़ साहबने काशी नागरी प्रचारिणी सभाको दस हज़ार रुपये केवल इसी कामके लिए दिये हैं कि इतिहास ग्रन्थोंकी एक माला निकाली जाय। इस दानकी पूरी लिखा पढ़ी होगई है। मुंसिफ़ साहब स्वयं इतिहासके ज़बर्दस्त खोजी और अप्रतिम विद्वान हैं। राजपूताना सम्बन्धी भार-

तीय इतिहासके प्रमाण हैं। आपकी कई पुस्तकें अभी अप्रकाशित पड़ी हैं। देखें कब और किसके द्वारा प्रकाशित होती हैं।

८—जीवनी

जीवनी छापनेमें हिन्दीके प्रकाशक अपव्यय और अपश्रम दोनों कर रहे हैं। किसी किसी महापुरुषकी कई कई जीवनियां छप रही हैं और बहुतसे महापुरुष अपने नसीबोंको रो रहे हैं कि उनकी यादगार कुछ भी नहीं है। और देशोंमें, जहांके लोग भारतमें आकर मूर्त्ति पूजाके विरुद्ध खड़े होकर गरमागरम व्याख्यान दिया करते हैं, अपने यहांके साधारणसे साधारण वीर एवं प्रसिद्ध पुरुषोंकी मूर्त्तियां बना बनाकर उनकी स्मृति स्थिर रखते हैं। यहां तक कि कलकत्ते बम्बई आदि बड़े नगरोंमें बिजातीय अफ़सरों और हाकिमोंकी बेगिनती मूर्त्तियां खड़ी हैं और फिर भी मूर्त्तियां बनवानेवाले सन्तुष्ट नहीं हैं। मारवाड़ियोंमें कहावत है कि यादगार दो तरह की हो सकती है "गीतड़ा कि भींतड़ा" गीतसे वा भीतसे, सो अनेक भारतीय वीरोंकी जीवनियां भी नहीं छपो, मूर्त्तियों या मन्दिरोंकी तो बात ही क्या है।

९—राजनैतिक साहित्य के

निर्माणका श्रेय अभ्युदय और प्रताप में बटा हुआ है। स्वराज्यकी पुस्तकें तो मानों इनका इजारा ही हैं। प्रतापमें प्रत्येक अंकमें स्वदेशभक्ति और प्रेमसे तरबतर जो कविता निकला करती हैं वह भी इस विभागका प्रधान अंग समझा जाना चाहिये। नवों रसोंमें वीररस और इनके अतिरिक्त जो रस रसिकोंने और जोड़े हैं उनमें भक्तिरस उन कविताओंके प्रधान रस हैं। प्रताप इनके संग्रह भी निकाला करता है। विद्यार्थी जीके प्रतापसे और कई मित्रोंकी मिश्रित सहायतासे यह बड़ा भारी काम हो रहा है। अब इसका ट्रस्ट बनाकर इसके संचालक बड़े स्वार्थत्याग और बुद्धिमत्ताका काम कर रहे हैं। भगवान इन्हें आप्त काम करे।

अभ्युदय और काशीका ज्ञानमंडल दोनों ही इस समय परसाल "रिफ़ार्म स्कीम" में बेतरह व्यस्त थे। अभ्युदय तो उसे मथ रहा था कि अपने पाठकोंको नवनीत भेंट करे। ज्ञानमंडल दूधका दूध पानीका पानी कर रहा था। अब विलायतमें उसके प्राणको क़ानूनका चोला पहनानेमें राजपुरुष कतर ब्योंत कर रहे हैं। देखिये रूप कैसा खुलता है। राजनैतिक साहित्यपर बड़े विस्तारके साथ समीक्षात्मक ग्रंथ चाहिएँ। समीक्षासे अभिप्राय यह है कि भारतकी प्राचीन और अर्वाचीन स्थिति और राजनैतिक पद्धतियोंकी तुलना संसारकी रीतियोंसे की जाय।

१०—विज्ञान

वैज्ञानिक साहित्यपर हिन्दी हितैषियोंका ध्यान बहुत दिनोंसे है, पर काम कम होता है, और हो कैसे? अंग्रेज़ीदेवीके उपासक बाबू लोग जब अपने मां बाप, भाई बन्धुसे बात चीत लिखा पढ़ीमें भी अंग्रेज़ी ही बूकते हैं और हिन्दीसे लजाते हैं, तो विज्ञान जैसे गहन विषयको हिन्दीमें पढ़ना उनके लिए लोहेके चने चबाना है। स्त्रियों और बालकोंकी तो बात ही क्या है। पाँच बरससे अब "विज्ञान" निकल रहा है, जिसका उद्देश्य यह है कि कठिन विषयोंको सुबोध और रोचक कर दे। प्रयागकी विज्ञान परिषद्वाले बड़े स्वार्थत्यागसे, बड़ी हानि उठाकर यह काम कर रहे हैं। हिन्दी हितैषियोंको "विज्ञान" का आदर करना चाहिये। सोचिये कि हिन्दीवाले "विज्ञान" का आदर न करेंगे तो क्या जर्मनी और फ्रांसवाले उसे अपनायेंगे? विज्ञानकी बिक्री तो आजकलके प्रबुद्ध भारतमें लाखोंकी संख्यामें होनी चाहिये थी। फिर भी इतनी महँगीमें ऐसा सस्ता पत्र और कैसे आबोताबसे निकलनेवाला पत्र, जिसके जोड़का भारतमें कोई दूसरा पत्र ही नहीं। परिषत्, नागरी प्रचारणी सभा, स्वं० लक्ष्मीचन्द, ज्ञानमंडल आदि कई संस्थाएं और सज्जनोंने वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणका बीड़ा उठाया, पर अबतक कुछ छोटी छोटी

पुस्तकोंको छोड अधिक महत्वका काम न हुआ। शिल्पीय विज्ञानपर देशकी सम्पत्तिका बढ़ना वा घटना निर्भर है। शिल्पीय विज्ञानपर बड़े बड़े ग्रन्थ निकलने चाहिये थे कि हिन्दी पढ़नेवाले कारबारी भी लाभ उठाते। और कारबारी ही इस महत्वके कामसे लाभ उठाते, अतः रुपयेवाले होते हुए धन भी लगाते। पर उन्हें भारतके दुर्भाग्यवश सूझ ही नहीं है।

विज्ञानसे व्यापारी लोग लाभ उठाना चाहें तो जर्मनीकी तरह वैज्ञानिकोंको प्रयोगशाला आदिका सुभीता कर दें और उनको रोटीकी चिन्तासे निश्चन्त करके आविष्कारोंमें लगा दें। आविष्कार हो जानेपर उन्हें यथेष्ट धन देकर तथा अपने कारबारमें हिस्सेदार बनाकर उस आविष्कारको मोल लें। इसमें उनको लाभ कितना होगा यह तो पूछना ही नहीं है, क्योंकि आविष्कारके गुप्त रहस्योंके सोलह आना मालिक वही होंगे। इसी रीतिपर पाश्चात्य कुबेरोंने शिल्पकी कुंजी अपने हाथोंमें करली है।

११—कला

कलामें भारत जितना आगे था उतना ही अब पीछे है। घर घर विदेशी चित्र विराज रहे हैं, कमरोंके आराइशका सामान अंग्रेज़ी है। पोशाक तो अपनी याद ही नहीं रही। सिरसे पैरतक अंग्रेज़ीका ऐसा स्वांग बना हुआ है कि यदि अपने वज़ादार पुरखे कुछ देरके लिए स्वर्गसे उतर आयँ तो उन्हें विश्वास न हो कि यह नाटकके प्रहसनका दृश्य नहीं है, वास्तविक जीवन है। नगड़ दादा अपनी सन्ततिको किसी प्रकार पहचान ले सम्भव नहीं। गाने बजानेके सामान भी बदल गए। हारमोनियमके चीखनेसे सितार दब गया। उसके गलाफाड़ बेसुरेपनके सामने सितारकी नाज़ुक और मीठी आवाज़ कौन सुन सकता है। नक़्क़ार ख़ानेमें तूतीकी आवाज़! हरे हरे! वीणा तो कोशके वा सरस्वतीजीकी स्तुतिके बाहर कहीं देखने सुननेमें नहीं आता। दहने बाएँके फेरमें मृदंग बिचारा दंग है। गाने बजानेसे जो अध्यात्मिक आनन्द मिलता था अब सपना हो गया है। मनुष्यके स्वरकी जगह ग्रामोफ़ोनकी रेंकसे हमारे यहांका यह हुनर न घरका रहा न घाटका। लिपि और सुलेखोंकी जगह टैप और टैप रैटर, चित्रकी जगह फोटो, बाजोंकी जगह हारमोनियम मनुष्यके गलेकी जगह ग्रामोफ़ोन, नाचकी जगह कठपुतली,—कहांतक कहें, कला कौशलका ऐसा सत्यानाश हुआ है कि नक़लके सामने असलकी कोई हक़ीक़त नहीं रही। भारतीय मनुष्यने अपनी जातीयताके वस्तुत्वको नक़लके पीछे ऐसा नष्ट कर दिया कि अब उसे असलकी पहचान न रही और मनुष्योंके साधारण स्वरोंको न पहचानकर लड्डूके फ़ोटोपर ही सन्तुष्ट और तृप्त होरहा है। हा हन्त! कौआ चला हंसकी चाल, अपनी भी भूल गया।

लिपि और आलेख्य विशारद पं० गौरीशंकर भट्ट जो आजकल इन्द्रप्रस्थके गुरुकुलमें सुलेखके प्रोफ़ेसर हैं, नागरी अक्षरोंके अनेक सुन्दर रूपोंके निर्माता हैं। जैसे अंग्रेज़ीके विज्ञापनादि बड़े विचित्र और सुन्दर टैपोंसे सजाये जा सकते हैं, भट्टजीकी रीतिसे नागरीमें उससे भी कहीं अधिक सौन्दर्य्य आसकता है। नागरीमें तुग़रा और मोनोग्रामादि अक्षर और शब्द चित्र अपूर्व और अनुपम बनाये हैं। जो देखना चाहें दोनों भाग चित्र लिपि प्रवेशिका उनसे मंगवाकर देखें और एक मुखसे लाख लाख प्रशंसा करें? सूक्तियोंके संग्रह विविध रूप रंगके भीतपर टाटकाने लायक़ बनाये हैं, जिन पर निगाह पड़ती रहे तो मनुष्यका चरित्रसुधार सहज ही होता रहे।

भारतीय चित्रकला संसारमें अपने ढंगकी अनूठी है। उसका सिक्का ही अलग है। अंग प्रत्यंगके सौन्दर्य्यका आदर्श ही अलग है। इस कलाके उस्ताद अब थोड़े ही रह गये हैं। श्रीबाबू ईश्वरीप्रसादजी जो कलकत्ताके सरकारी कलाविद्यालयमें प्रोफ़ेसर हैं, ऐसे एक उस्ताद हैं, जिनके यह यह कला पुश्तैनी है और जिनकी प्रसिद्धि, युरोप, अमे-

रिका, जापान आदि सभी सभ्य देशोंमें है। आपने परदानशीनका एक अनुपम चित्र खींचा था, पर्देमें रखकर भी जगतको पर्दानशीनका दृश्य दिखा दिया। आपकी ईश्वरीय शक्ति देखनेसे काम रखती है। सच तो यह है कि चित्रकारकी प्रशंसा शब्दोंमें हो ही नहीं सकती। आप केवल चित्रकार ही नहीं हैं। गन्धर्व विद्यामें भी अपना सानी नहीं रखते। आपके पुत्र बाबू रामेश्वरप्रसादजीके चित्रोंका आनन्द सरस्वतीके पाठकोंको मिलता ही रहता है। यदि देशमें जातीय कलाका वास्तविक सम्मान होता तो ऐसे जगत्प्रसिद्ध चित्रकार सरकारी विद्यालयके वेतन भोगी प्रोफ़ेसर न रह जाते।

गान्धर्व विद्यापर ग्रन्थ तो कभी देखनेमें नहीं आते। रीति ग्रंथोंकी ओर हमारा इंगित नहीं है। अनेक गान्धर्व-विद्या-कुशल शास्त्रके सिद्धान्तोंसे अनभिज्ञ होते हैं। सैावर भी गणितका एक अंग समझा जाना चाहिये बल्कि शब्दविज्ञान भी भौतिक शास्त्रका एक अंग है। स्वरों ग्रामों और तालोंके प्रस्तारसे कितने रूप हो सकते हैं, राग रागिनी किन किन प्रस्तारोंके कौन कौनसे रूप हैं, यह विद्याके प्रश्न हैं, सिद्धान्तके सवाल हैं। इनपर अच्छे ग्रंथोंका नितान्त अभाव है। कलकत्तेमें मु० भृगुनाथजी गाज़ीपुरीने एक बार ऐसा ग्रंथ लिखनेका विचार हमसे प्रकट किया था परन्तु अब तक छपा न देखा।

१२—हास्य कौतुक

जैसे कला मनुष्यके मनको रंगीन और आत्माको आनन्दमें शराबोर कर देती है, हास्य और कौतुक मनकी थकावटको मिटाते हैं और रूहको ताज़गी देते हैं। हास्यपर हमारे यहाँ साहित्य है भी और बनता भी जाता है। लखनऊके शिवनाथजी तो अकर्मण्यसे हो रहे हैं। मौजी चौबे कभी कभी चहक जाते हैं। गोलमालानन्द हँसी हँसी बहँड़ेर भी कर डालते हैं, मज़ाकमें भी गोलमालसे बाज़ नहीं आते। बा० गंगाप्रसाद श्रीवास्तवकी लम्बी दाढ़ी अब ज़मींदोज़ हो रही है। यह वास्तवमें जी भरकर दिल्लगी करते हैं, पर इनका मज़ाक अब कुछ भोंडेपनसे मुक्त होनेकी राह पर आ रहा है। लतीफ़ मज़ाक एक मित्रका ख़ास हिस्सा है, फिर कभी उनकी चर्चा की जायगी। प्रतिभा-सम्पादक पं० ज्वालादत्त शर्म्मा ढोलके भीतर पोलका मुद्दतसे ढोल पीट रहे हैं, नीलाम जारी है। नामानन्द आदि कई शिक्षाप्रद-हास्य अपूर्व हैं। दिल्लगी और शिक्षा दोनोंकी बहार है। सच कहते हैं, आमके आम और गुठलियोंके दाम इसे ही कहते हैं।

१३—हिन्दीमें संस्कृतका अवतार

पाठको! अब हँसी रोकिये, कलेजा थाम बैठ जाइये। क्यों? संसारमें सुख दुःख रोना हँसना दोनों ही काम हैं। ज़रा देखिये तो संस्कृतके रत्नागारसे हिन्दीमें क्या क्या लाये हैं। संस्कृत काव्योंके ऐसे अनुवाद अँगुलियोंपर भी गिननेको पूरे नहीं हैं, जिन्हें हम कह सकें कि अपने मूलसे बढ़ गये हैं, या बराबर ही हैं। काव्यमें तो यह बात होनी दूर है, अन्य विषयोंका भी यही हाल है। अनुवाद या उल्था लोगोंने शब्दके लिए शब्द रख देनेकोही समझा है। भावके लिए भाव और अर्थ के लिए अर्थ व्यक्त करना मानों सर्वथा अनावश्यक है। तो भी, आंसू पोंछनेको बहुतसे ग्रंथोंके अनुवाद हैं और फिर भी विदेशी भाषाओंमें जो अनुवाद हुए हैं उनसे लाख दरजे अच्छे हैं। आब्दुल्लाहके जन्मके लगभगकी बात है कि अंग्रेज़ी जातीय गीतका (National Anthem) संस्कृत अनुवाद शौरीन्द्र-मोहन ठाकुरने करके बा० हरिश्चन्द्रको भेजा था। भारतेन्दुने स्वयं दूसरा अनुवाद करके दोनोंकी जांचके लिए मोक्षमूलरको भेजा। प्रो० मोक्षमूलरसे न रहा गया। उन्होंने भी तबअ-आज़माई की और तीनोंको विचारार्थ स्वामि राम मिश्रको सौंपा। मिश्रजीने मोक्षमूलरकी १०८ भूलें दिखाकर अशुद्धियोंकी माला पूरी कर दी और शेष दोनोंको बराबर योग्यताका अनुवाद बताया। सारांश यह

कि हम कितने ही गये गुज़रे हों संस्कृतके भावको जितनी ख़ूबीसे हम समझ सकेंगे, अदाकर सकेंगे, विदेशी ख़ाक नहीं कर सकता। वह जो कुछ कर सके वही उसके लिए प्रशंसाकी बात है।

पाठक यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि हमारे मित्र पं० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य्य विद्यावाचस्पत्यादि [न मालूम कितनी उपाधियां इनके पीछे लगी हुई हैं कौन जाने] ऋषिकुलमें मुख्याध्यापक थे। विद्यार्थियोंके जीवन सुधारमें सहायक थे, अब बरेलीमें रोगियोंको जीवन दान देते हैं। इस पुण्य कार्य्यके साथ ही साथ एक बड़ा भारी काम आपने किया है। आपने संस्कृतके विश्वनाथ महापात्र रचित साहित्यदर्पणका मनोहर अनुवाद हिन्दीमें किया है। संस्कृतके उद्भट विद्वान् होते हुए भी आप हिन्दीके जैसे योग्य और रसिक लेखक हैं, छिपा नहीं है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह ग्रंथ अपूर्व और बड़ा उपयोगी होगा, पवांयांके राजाने इसे छपानेका संकल्प किया था, परन्तु अभी जहां तक मालूम है, अप्रकाशित है। क्या कोई प्रकाशक इस बड़े ग्रन्थको छापनेका साहस करेगा ? हिन्दीमें अभी ऐसा एक भी ग्रन्थ नहीं है। आयुर्वेद सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। उनको उल्था सहित प्रकाशित करना हिन्दी प्रेमियोंका कर्तव्य है। इलाजुलगुरबा और अमृत सागरका ही बृहद्रूप दीखना बदनामीकी बात है।

१४—अर्थ शास्त्र और व्यवसाय

अर्थ शास्त्रपर गिनी गिनायी तीनचार पुस्तकें हैं। द्विवेदीजीका सम्पत्तिशास्त्र और प्रो० बालकृष्णका अर्थशास्त्र विशेष अध्ययनके लिए अपर्याप्त हैं। पं० गिरिधर शर्म्माका अर्थशास्त्र हमारे देखनेमें नहीं आया। 'भारी भ्रम' भी आधेसे अधिक शुद्ध अर्थ शास्त्रका विषय है, पर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और राजनैतिक सम्बन्ध सम्यक रीतिसे समझनेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ शास्त्रपर आरम्भिक अनुशीलनकी आवश्यकता है। हमें आशा है कि पटना कालेजके अर्थशास्त्रके आचार्य्य श्री पण्डित राधाकृष्ण झा, एम. ए. जो अर्थशास्त्र लिख रहे हैं वह न केवल इन त्रुटियोंको दूर करेगा, बल्कि भारतीय जातीय अर्थशास्त्रका पूरा प्रतिपादन करेगा। आप अर्थशास्त्रके विशेषज्ञ हैं, आपकी पुस्तक अवश्य ही मान्य होगी। प्रकाशक लोग पण्डितजीसे छपानेकी बातें तय करलें। व्यवसायपर कुछ थोड़े ही ग्रन्थ निकले हैं। प्रत्येक व्यवसायपर दस दस बीस बीस ग्रंथ न हों तो कमसे कम एक एक तो अवश्य हो। यहां तो एकमें भी टोटा है। व्यवसायके तो विद्यालय चाहिएं। सुनते हैं कि बंगालमें क़ासिमबाज़ारके महाराजा सर मनीन्द्रचन्द्र बहादुरने एक व्यवसाय महाविद्यालय खोला है, जो बड़ी सफलतासे चल रहा है। इसी तरह हिन्दी भक्त धनुकुबेर भी कमर बांधें तो बड़ा काम हो जाय। कलकत्ते के विशुद्धानन्द विद्यालयमें ऐसा प्रबन्ध अवश्य चाहिये।

बहीखाता और अंग्रेज़ी बुककीपिंगका तुलनात्मक अनुशीलन करते हुए पहुंचे, दाम हुंडी, चेक, बैंक नोट, ट्रांस्फर रिसीट, अन्तर्राष्ट्रीय साहूकारी, मुसद्दीपन और अन्तर्राष्ट्रीय लेन देनपर एक अच्छे और बृहत् ग्रन्थकी आवश्यकता है, जिसमें परिशिष्ट रूपसे क़ानून मीयाद और स्टाम्पका उतना आवश्यक अंग दिया हो जितनेकी आवश्यकता कारबारीको नित्य पड़ा करती है। ऐसे ही एक ग्रंथकी तैय्यारीके लिए स्व० सेठ दामोदरदास राठी ने ५००) पुरस्कारकी विज्ञप्ति की थी, पर जहां तक मालूम है उस पुरस्कारका अधिकारी कोई भी न निकला। सबसे बड़ा पुरस्कार तो ऐसी पुस्तककी हाथों हाथ बिक्री है, क्या विद्वज्जन इस ओर ध्यान देंगे ?

१५—ग्रंथ माला

हिन्दीमें ग्रन्थमालाओंका सिलसिला बहुत अच्छा चल पड़ा है। ग्रन्थमाला निकालनेवाले अपने कामको कारबारी रहस्य न रखकर यदि

परस्पर सहायता और सहकारितासे काम लें तो देशके धनका अपव्यय और लेखकोंका अपश्रम न हो। अब्राहम लिंकनकी जीवनी प्रायः बराबर आकारकी कई जगह निकलनेकी अपेक्षा भिन्न भिन्न महापुरुषोंकी जीवनी जिनको अभी स्थान नहीं मिला है प्रकाशित करना अधिक उपयुक्त था। ग्रन्थमालाओंमें गिनाने योग्य सम्प्रति हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर सीरीज़ बम्बई, मनोरंजन पुस्तक-माला, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वैज्ञानिक ग्रंथमाला विज्ञान परिषद् प्रयाग, और ज्ञानमंडल ग्रन्थ माला काशी, उल्लेख योग्य हैं। इनमें छपाई सफ़ाई आदिकी दृष्टिसे हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बढ़ा हुआ है। उसकी मालाके मनके भी ज़्यादा पिरोये जा चुके हैं। कारण यह जान पड़ता है कि उसका मालिक कोई सभा सोसायटी नहीं है। पंचायती काम अभी हमारे देशका बदनाम ही सा है। मनोरंजन पुस्तक मालामें कई वैज्ञानिक ग्रंथ भी निकल चुके हैं। ज्ञानमंडल और परिषद्के उद्देश्य भी समान हैं। इन सभोंको पुस्तक लिखवानेके सम्बन्धमें परस्पर सलाह भी कर लेनी चाहिये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन सस्ती पुस्तकामला निकाल रहा है। गुजरातीमें स्वा० अखंडानन्दने ऐसी माला फेरी कि अब सबके मनका उसी ओर खिचना स्वाभाविक है। यह लक्षण शुभ है। भगवान सम्मेलनको सफल करे। इंडियन प्रेस भी अच्छी मालाएं मुद्दतसे निकाल रहा है। सुना है कि हमारे मित्र बा० जगन्मोहन शर्म्मा ने श्रीकाशिराजके सरस्वती-भांडारसे गोस्वामी तुलसीदासजीके अनेक अप्रकाशित ग्रन्थ खोज डाले हैं। अब वह भी मालाकार निकालेंगे और गोस्वामीजीकी कविता-के रसास्वादनका और भी सुयोग मिलेगा। चित्र भी वह अपूर्व छपेंगे जिनके खिचवानेमें काशिराजने लाखों रुपये लगाये हैं। यह बहुत ही बढ़िया काम हो रहा है। इसके लिए वर्म्मा जी को बधाई है।

गौरव ग्रन्थ माला, गृहलक्ष्मी ग्रंथमाला, ओंकार पुस्तकमाला, गोयलीयजीकी पुस्तकमाला, गंगा पुस्तकमाला, पचौली पुस्तकमाला, कहांतक कहें बाज़ारमें अब मालाओंकी बहार है। अब हमारे पुस्तकालय भी मालाओंसे सुसज्जित होंगे, यह थोड़ी खुशीकी बात नहीं है। कोई दिन था कि माला क्या, उसके एक फूलतकको कोई पूछता न था। बहुतेरे वे खिले ही मुरझा जाते थे, आज वह दिन भी देखनेमें आया कि सुगन्ध-से दिमाग़ मुअत्तर हो रहा है, उनके सौरभ से हिन्दी साहित्यका उद्यान आमोदित हो रहा है।

१६—छोटी छोटी कहानियां

उर्दूके ज़माने के मशहूर क़िस्सागो (मुंशी... ...बी. ए.) "प्रेमचन्द" जी ने अब हिन्दीकी तरफ़ तवज्जुह मबज़ूल फ़रमायी है। छोटे चमकते हुए वाक्योंमें जिनमें स्वभावकी सामग्री कूट कूट कर भरी हुई है, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ जिनमेंसे टपक पड़ते हैं, आप छोटी छोटी कहानियां लिखते हैं और हिन्दीके भंडारको इन रत्नोंसे भर रहे हैं। मौलिक और स्वाभाविक कहानियोंके कहनेमें हिन्दीमें आप एक हैं। गजपुरीजीने रवीन्द्र बाबूसे आपकी तुलना की सो बेजा नहीं थी। यद्यपि बँगलाके सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक शरत बाबू ने आलोचनात्मक दृष्टिसे यह लिखा है कि यद्यपि हम रविबाबूके समान इनको नहीं समझते तथापि बँगलामें इनकी बराबरीका और कोई दिखाई भी नहीं पड़ता। इतना भी क्या हिन्दीके लिए कम गौरवकी बात है। हमारी रायमें प्रेमचन्द्जी स्वभाव चित्रणमें टालसटायसे कम मज़ा नहीं रखते। मानव जीवनके प्रेमका यह चन्द्र दिन दूनी रात चौगुनी कलाका होकर उगा करे और भगवान करे उपमान चन्द्रकी नाईं उसकी कलामें कभी क्षीणता न आय। अब साहित्यालोचन-में ही सारा समय बिताकर आपका मज़ा किर किरा करना मंजूर नहीं। इसलिए अबदुल्लाह आपसे रुखसत होता है, लीजिये "फिर मिलेंगे अगर खुदा लाया", ज़िन्दा सुहबत बाक़ी।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

भाग—९

मेष—कन्या १९७६

April—September 1919.

प्रकाशक

विज्ञान—परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

साधारण (General)

साहित्य (Literature)

स्वास्थ्य रक्षा (Hygiene)

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णारामद्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५५ | Reg. No. A- 708

भाग १० | तुला १९७६ । अक्तूबर १९१९ | संख्या १

Vol. X. | No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य [illegible]

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिये।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएँ।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, तथा सम्पादन सम्बन्धी पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग १० } तुला, संवत् १९७६। अक्तूबर, सन् १९१९। { संख्या १

मंगलाचरण

जग - मंगल - मग - अनुचिन्तनकारी नर जय जय
मग - कंटक - घन - अघ - कृन्तनकारी नर जय जय
हरि-सेवन - सत - जीवन - व्रतधारी नर जय जय
जग - श्री-मय, जगती - त्रय-मनहारी नर जय जय
जय सुभ-गति, जय सुभग मति, सतत सुकृत सन्मान जय
जय अवितथ अभिरुचि, विसद सुखद ज्ञान विज्ञान जय

श्रीपद्म कोट
८-१०-१९१९ } —श्रीधर पाठक।

उल्कापात

[ले०—श्रीयुत विष्णुदत्त, बी. ए.,]

उल्काओं अर्थात् टूटनेवाले तारोंके विषयमें परिचय करानेके लिए किसी भूमिकाकी आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक स्त्री पुरुषने एक वा अधिक बार अवश्य इस दृश्यको देखा होगा। अनन्त कालसे प्रत्येक जाति वा देशके लोग अपने अपने ज्ञानके अनुसार इस आश्चर्यजनक घटना-के सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्त स्थिर करते आये हैं और अब भी करते हैं। यूनानमें इस प्रकार भूमि-पर गिरे हुए धातुखण्डोंको पूजा जाता था। प्राचीन भारतमें इनको आगामी आधिदैविक दुर्घटनाओं तथा आपत्तियोंका द्योतक समझा जाता था। अब भी हिन्दुओंमें एतद्विषयक ऐसे ही विचार प्रचलित हैं। परन्तु विज्ञानने अन्य विषयोंके सदृश इस घटनाके क्रमबद्ध विवरण तथा मूल कारणकी खोजमें आश्चर्यप्रद

[Astronomy ज्योतिष]

और मनोरञ्जक अनुसंधानका सूत्रपात कर दिया है।

आकाशसे गिरता हुआ उल्का पतंगेकी नाईं छोटा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें वह सदा ऐसा छोटा और हलका नहीं होता। गिरते समय उल्का टूटकर चकना चूर हो जाते हैं। तथापि उनके कुछ टुकड़े कभी कभी बहुत भारी पाषाण शिलाओंके रूपमें गिरते हैं। सुना है बहुत समय व्यतीत नहीं हुआ कि मैनपुरी (भारत) ज़िलेमें कितने ही मन भारी धातुमय ऐसा खंड गिरा था। न जाने अब वह कहां गया और क्या हुआ। परन्तु जितने ऐसे उल्का खंड विद्वानोंके ज्ञानमें अब तक हमारी पृथिवीपर पड़े हैं, उनमें सबसे पुराना और बहुत भारी वह है जो एलसेस प्रांतमें १५४९ वि० की शरद ऋतुमें गिरा था और जो वहांके इन्सीशेम स्थानमें सुरक्षित है। यह उस समय तोलमें ३ मन १० सेर था और गिरते ही भूमिमें प्रायः २ गज़ धँस गया था। अभी सं० १९२३ वि० में नार्वेमें कोई ८ मन भारी एक उल्का-खंड गिरा था। इंग्लेंडमें सं० १८५२ वि० से १९५९ वि० तक १८ भारी उल्काखंड गिरे जो केंसिंगटन अद्भुतालयमें रखे हुए हैं।

पृथिवीपर गिरे हुए उल्का किन किन पदार्थोंसे बने होते हैं और उनकी ऊपरकी तह कैसी होती है इन बातोंका अन्वेषण चित्ताकर्षक ही नहीं है वरन् कई प्रकारके सिद्धान्तोंका आधार होनेसे सृष्टि-ज्ञानकी वृद्धिमें बड़ा सहायक होता है। उल्काओंमें अधिकतया कच्चे लोहे और पत्थरका अंश पाया जाता है। किसीमें लोहेका अंश ज़्यादा होता है और किसीमें पत्थरका। इनके अतिरिक्त अन्य खनिजोंका मिश्रण भी होता है, जिनमेंसे कई ऐसे हैं जो पृथिवीपर नहीं मिलते। उल्काओंमेंका कच्चा लोहा हमारे कच्चे लोहेसे बिलकुल नहीं मिलता। इसमें प्रतिशत ९० से ९५ भाग लोहेके और शेष निकिलके होते हैं। निकिलका अंश उल्काखंडको कुछ श्वेत वर्ण कर देता है और वायुमेंसे गिरते समय मोरचा लगनेसे बचाता है। उल्काखंडोंमें १२ से अधिक ऐसे खनिज मिले हैं, जिनको वैज्ञानिक कोई नाम नहीं दे सके। उल्काओंके पत्थरमें ज्वालामुखी पहाड़ोंसे निकलनेवाले पदार्थोंका अंश अधिक होता है। कर्बनका भाग भी अच्छे परिमाणमें पाया जाता है। कर्बन प्रायः ग्रेफ़ाइटके रूपमें रहता है, परन्तु कभी कभी रवेदार, हीरेके, रूपमें भी मिलता है।

कुछ खनिज पृथ्वीपरके भी ऐसे हैं जो अब उल्काओंमें नहीं मिले हैं—जैसे स्फटिक (quar उल्काओंमें उन्हीं मौलिकोंका अंश पाया है जो पृथ्वीपर पाये जाते हैं। उनमें भी लोह निकिल, एलूमि नियम, गंधक आदिका अंश ज़्यादातर और जस्ता, सुरमा, नत्रजन, मेंगेनीज़, कोबाल्ट (cobalt) आदिका कभी कभी मिलता है। सोना, प्लाटीनम, आदि भी भूले भटके मिल जाते हैं। लोहा प्रायः निकिल और फास-फोरसके साथ रहता है। यह अनुसंधान हमें बताता है कि अन्य तारागण प्रायः उन्हीं पदार्थोंसे बने हैं, जिनसे हमारी पृथिवी बनी है। जन्तु-शरीरका कोई भाग अबतक इन उल्का खण्डोंमें नहीं मिला। इसलिए अन्य लोकोंमें कैसे जन्तु रहते हैं, इस विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता।

यह सब तो उल्काखण्डोंके भीतरके भागके विषयमें हुआ। इसके ऊपर एक इंचके सौवें भागकी मोटाईका एक परत होता है, जिससे प्रतीत होता है कि वायुमण्डलमेंसे आते समय श्वेत उत्तप्त भाग उड़ता जाता है और पृथिवीपर पहुंचने तक इतना पतला रह जाता है। यह परत काले कांचका सा होता है, जिसमें हवाके बुदबुदे (बाल) बहुत होते हैं। कभी कभी इस परतके नीचे एक और मोटा परत पाया जाता है, जो प्रायः लोहे और अन्य, पर पूरे न गले हुए, पदार्थोंका मिश्रणमात्र होता है। तथापि ऊपरी परत और अन्तरीय भाग बिलकुल न्यारे रहते हैं, सिवाय उन स्थानोंके जहां छिद्रोंमेंसे ऊपरका पिघला हुआ

भाग अन्दर घुस जाता है। इस परतके बाह्य रूपमें ध्यानको आकर्षित करनेवाली विशेष बात यह होती है कि उसके ऊपर अंगुलियोंके छापके सदृश चिन्ह सब जगह बने होते हैं। इनका कारण यह प्रतीत होता है कि ऊपरके पिघले हुए भाग-मेंसे वायुके संपर्कसे या जुदे जुदे अवयवोंपर उष्णताके जुदे जुदे प्रभावके कारण कुछ अंश अलहदा होते रहते हैं। जहांका हिस्सा गरमी पाकर जल जाता है वहींपर गड्ढे या निचान पड़ जाते हैं। जो हो, इसका कारण अभी पूर्णरूपसे निश्चय नहीं हुआ।

बहुत से उल्काखण्ड टुकड़े टुकड़े होकर पृथिवीपर गिरते हैं। बत्सुरा (Butsura) में गिरे हुए बहुत से ऐसे टुकड़े जोड़े जानेपर एक ही उल्काके भाग सिद्ध हुए। अधिकांश टुकड़ोंपर चारों तरफ़ उपरोक्त प्रकारकी रोग़नी तह चढ़ी हुई थी, जिससे जान पड़ता था कि उल्काके वायु-मण्डलमें प्रवेश करनेके बाद ही विस्फोटन हुआ और उसके खंड हो गये। पर कुछ खंड ऐसे भी थे जिनपर केवल एक ओर ही परत बनी थी, जिससे ज्ञात होता है कि वह टुकड़े बादमें होनेवाले धड़ाकेसे बने होंगे और इस दूसरे धड़ाकेके होनेके समय तापक्रम कम रहा होगा। भूमितल-पर पहुंचने तक उल्का गरम रहते हैं, परन्तु इतने गरम नहीं कि उनसे कोई पदार्थ जल जाय और न इतने नरम कि गिरते समय उनमें निशान पड़ जायं। ऐसा भी हुआ है कि जलती हुई अवस्थामें उल्का पृथिवीपर गिरे हैं। एक बार उल्कापातसे आग भी लग गई थी *।

आकाशमें गणनातीत तारागण हैं। कभी कभी उनके भीतरके किसी भीषण परिवर्तन, गरमीकी अधिकता वा न्यूनता, वायुमण्डलके प्रभाव, आकाश गमनकी शीघ्रता, मार्गके अकस्मात उपद्रवों वा अन्य अज्ञात कारणोंसे उनमेंसे किसी एक वा अधिकके एक वा अनेक शिथिल भाग उनसे पृथक् हो जाते हैं और आकाशमें यात्रा आरम्भ करते हैं। किस तरफ यात्रा करते हैं, यह उनके निकटस्थ अन्य तारों, ग्रहों आदिकी स्थितिपर निर्भर रहता है। यात्रामें इन भागोंके और छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं, परन्तु बहुत से बिलकुल चकनाचूर होकर अणुओंके रूपमें देशमें उड़ते रहते हैं। बहुत थोड़े भाग ही अन्य तारों या ग्रहोंपर जा गिरते हैं। अतएव स्पष्ट है कि उनमेंसे बहुत ही थोड़े हमारी पृथिवीके वायु मण्डलमें प्रवेश करते हैं। इनमें बहुतेरे तो वायुमण्डलके ऊपरी भागोंमें जलकर समाप्त हो जाते हैं या फटकर चूर चूर हो जाते हैं। शेषमेंसे भी न जाने कितने समुद्र तथा स्थलके अज्ञात भागोंमें गिरते हैं। बहुत थोड़े हैं जो बसे हुए देशोंमें आकर वैज्ञानिकोंके अन्वेषणके विषय बनते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि सारे उल्का प्रकाश युक्त हों और गिरते समय दिखाई पड़ें। दृश्यमान तारोंके अतिरिक्त असंख्य अदृष्ट छोटे तारे सूर्यमण्डलकी सीमाके भीतर खाली जगहोंमें भ्रमण करते रहते हैं। उनके कुछ भाग और कभी कभी जो छोटे हैं वह सारेके सारे भी किसी ग्रहके पास होकर निकलते समय आकर्षित होकर उसके ऊपर जा गिरते हैं। खगोल विद्या विशारद पण्डितोंने निश्चय किया है कि यह असंख्य अदृष्ट तारे नियमानुकूल विशेष मार्गोंमें भ्रमण करते हैं और जबतक हमारे वायुमंडलमें प्रविष्ट नहीं होते तबतक हमें उनके अस्तित्वका भी ज्ञान नहीं होता। वायुमंडलमें प्रवेश करनेके पीछे यह लौट नहीं सकते। बादमें वह या तो वायुमंडल-के ऊपरी हिस्सोंमें चूर चूर हो जाते हैं या कभी कभी यदि काफ़ी बड़े हुए तो धरातलतक पहुंच जाते हैं।

प्रायः उल्कापातके साथ साथ प्रकाश युक्त अग्निपिंड गिरता दिखाई देता है। परन्तु अधिकांश अग्निपिंड न्यारे ही दृष्टिगोचर

* देखो विज्ञान भाग ४ पृष्ठ १४५०

होते हैं और विशेष चमक दमक और वेगसे गिरते प्रतीत होते हैं। यही मामूली टूटनेवाले तारे होते हैं। इन अग्निपिण्डोंके मार्गमें इनके पीछेसे चिंगारियां सी निकलती दिखाई पड़ती हैं और प्रायः उनका मार्ग प्रकाशमय दीखता है। कभी कभी तो यह प्रकाश ४५ मिनटतक दिखाई पड़ता रहा है। कुछ अग्निपिंड तो अतिशय वेगसे और कुछ न्यून वेगसे चलते हैं। १८६० वि० सं० की शरद ऋतुमें अमेरिकाके विख्यात नियागरा जल प्रपातके ऊपर एक विचित्र अग्निपिंड बहुत समयतक ठहरा सा दिखाई दिया था। इसका प्रकाश बड़ा विचित्र और विस्तृत था। जब यह उल्का दिनमें गिरते हैं तो एक प्रकाश-युक्त बादल सा दिखाई पड़ता है। परन्तु उल्काओं-के संगठनमें भेद होनेसे उनका प्रकाश भी न्यारा न्यारा होता है। अतः प्रकाशका विस्तार उल्काके परिमाणका सूचक नहीं कहा जा सकता। जब बहुत से उल्का वा अग्निपिंड एक बार गिरते हैं तो झड़ीसी लग जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह सब आकाशके किसी विशेष स्थानसे आ रहे हैं। इसी स्थानको प्रयाण-विन्दु कहते हैं। यदि कई रातोंतक झड़ी लगी रहे तो (radiant) प्रयाण-विन्दु शनैः शनैः तारोंके मध्यमें भ्रमण करता प्रतीत होता है। यह परिवर्त्तन पृथिवीके भ्रमणकी दिशा बदलनेसे उत्पन्न होता है, क्योंकि प्रयाण-विन्दुकी स्थिति, पृथिवी और उल्काओंकी गमन दिशापर निर्भर है। परन्तु कभी कभी इस नियमका अपवाद भी देखनेमें आता है। उदाहरण-के लिए ओरयोनिड्स (Orionids) नामक उल्का झड़ी है, जो १० से २४ अक्तूबर तक दीखती है और जिसकी कोई उपरोक्त नियमानुसार व्याख्या नहीं की जा सकती।

ऊपर कहा जा चुका है कि उल्काका प्रकाश वायुकी रगड़ या घर्षण (friction) और रोधक-शक्ति (resistance) पर निर्भर है। वायुमंडलमें प्रविष्ट होनेपर उल्काका पतनवेग बंदूककी गोलीके वेगसे सौगुना अधिक होता है। बंदूककी गोलीका वेग उसको फारनहैट तापमापक यंत्रकी १० अंश गरमी पहुंचाने-में पर्याप्त होता है। रोधक-शक्ति-जन्य उष्णता गतिमान पदार्थके वेगके वर्गके बराबर होती है। अतः उल्कामें वायुमण्डलकी रोधक शक्तिसे बन्दूककी गोलीकी अपेक्षा दस शहस्र गुणी उष्णता उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अतिशय उष्णता उल्काओंको प्रकाशित करने और उनका जलाकर छिन्न भिन्न करनेके लिए पर्याप्तसे अधिक है। अतः प्रकाशके परिमाणकी अपेक्षा उल्कापिण्डों वा उनसे टूटे हुए प्रकाशमय टुकड़ोंका घनफल बहुत थोड़ा होता है और उनमेंसे अधिकांश चूर चूर होकर वायुमंडलके उदरमें ही उड़ते रहते हैं। उनको पृथ्वी तक पहुं-चनेका अवसर ही नहीं मिलता। तथापि जैसा कि कहा जा चुका है, पृथ्वीपर गिरे हुए उल्का-पिंड मनों भारी पाये गये हैं। परन्तु ऐसे उल्का बहुत कम गिरते हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि अपने पितृ-पिंडसे टूटते समय वह कितने भारी होंगे।

दस पांच सालमें कभी उल्कापात देखनेसे ही जिन लोगोंके हृदय आश्चर्यान्वित और भयभीत हो जाते हैं उनके लिए यह जानना कितना विस्मयोत्पादक होगा कि मनुष्य तो विनोदार्थ कभी कभी ही अग्नि-क्रीडा करते हैं, परन्तु देवलोककी यह अग्नि-क्रीडा कभी बन्द ही नहीं होती। हिसाब लगाकर अनुमान किया गया है कि प्रति दिन २ करोड़-के लगभग उल्काओंका पतन होता है, जिनमेंसे अधिकांश सूर्य चन्द्रमाके प्रकाश वा आकाशके मेघाच्छादित होनेके कारण दृष्टिगोचर नहीं होते। यह अनुमान पृथिवीके किसी एक स्थानसे अंधेरी रात्रिमें मेघशून्य आकाशके निरीक्षणपर निर्भर है। यदि किसी अच्छे दूरवीक्षण यंत्रकी सहायता लेकर उपरोक्त २ करोड़में वह छोटे

उल्का भी सम्मिलित किये जायं जो खाली आंखसे देखे नहीं जा सकते तो उपरोक्त २ करोड़ को २० से गुणा करना चाहिये। उत्तम दूरवीक्षण यंत्रोंसे काम करनेवाले ज्योतिषी इस अग्निवर्षाके दृश्य-का कैसा आनंद लूटते होंगे!

प्रकाशके विचारसे उल्काओंके तीन भेद कहे जा सकते हैं। अग्निपिण्ड, जो घन फलमें छोटे और प्रकाशमें अधिक होते हैं, दूसरे वह जो कुछ बड़े होते हैं और थोड़े वेगसे गिरते है। तीसरे सामान्य जो अधिक बड़े होते हैं और शनैः शनैः गिरते हैं। पहिले प्रकारके तारे भूमि तलसे ८० वा १०० मीलकी ऊंचाईसे, दूसरी श्रेणीके ७५ मीलसे और सामान्य ६० मीलसे दिखाई दे जाते हैं। प्रायः उल्काओंका प्रकाश क्षणिक होता है और ४० वा ५० मीलकी* ऊंचाईसे दीखना बन्द हो जाता है, परन्तु बहुत से अग्निपिण्ड हमारे शिरोंसे १० और कभी ५ मीलकी ऊंचाईतक भी दीखते रहते हैं। प्रकाशमय अवस्थामें उल्का कितनी दूरी तय करते हैं इसका अनुमान उनके गिरने-के कोणसे किया जाता है, शायद वह ५० से १०० मील तक ही पार करते हों।

पहले उल्कापात नियमरहित अकस्मात होनेवाली दैवी घटना समझी जाती थी। परन्तु अब ज्योतिर्विद् पण्डितोंने पता लगाया है कि यह भी विस्तृत प्राकृतिक नियमोंके अनुसार होती है। सायंकालकी अपेक्षा प्रातःकालमें दुगने उल्कापात होते हैं, विशेषतः २ और ३ बजेके बीचमें। इसी प्रकार वर्षके उत्तरार्द्धमें पूर्वार्द्धसे दुगने होते हैं। यह वायुमंडलमें २६ मील प्रति सेकंडके वेगसे चलते हैं। परन्तु पृथिवी १८ मील प्रति सेकंड ही चलती है। इसलिए यदि उल्का हमारी पृथिवीकी ओर आता हो तो उसकी गति ४४ मील प्रति सेकंड होती है और यदि वह पीछेसे पृथिवीकी ओर आता हो तो पतनवेग ८ या १० मीलसे अधिक प्रति सेकंड नहीं रहता। परन्तु यह वेग वायुमंडलकी रोधक शक्तिसे कम हो जाता है। कभी उल्कापतनके समय घोर शब्द सुनाई देता है, जो उसी नियमके अनुसार उत्पन्न होता है और मेघकी गरजके समान होता है। उल्कापतनसे वायुमंडलमें क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। वायु उल्काके भारसे दब जाती है और उसकी उष्णता बढ़ जाती है, जिससे उड़नेवाले पिंडके पीछे दूरतक बहुत स्थान रिक्त हो जाता है। इस रिक्त स्था-नको पूरित करनेके निमित्त सामनेसे बड़े वेगके साथ वायु दौड़ता है, जिससे गरजके सदृश शब्द होता है। वायुकी रोधक शक्तिसे उत्पन्न होनेवाली उष्णता २६ मील प्रति सेकंडके वेगसे चलनेवाले उल्कापिण्डमें उतने ही आयतनके जलते हुए कोयलेसे सैागुनी अधिक होती है। यह कठोरसे कठोर धातुको गला सकती है। अतः उल्कापिण्ड इसमें जलने लगता है। उसमें जितना जलका अंश होता है, और किसी किसीमें वह अधिक होता है, वह धुआं और भाप बनकर वायु-मण्डलमें मिल जाता है। फिर गर्मी अग्निपिण्-डको जलाना आरंभ करती है, जोकि वायुके वेगसे उड़ता जाता है। कुछ देरबाद वेग कम होनेपर उष्णता घट जाती है और अन्तिम जला हुआ ऊपरी स्तर ठंडा होकर वह परत बन जाती है जिससे ढका हुआ पिण्ड पृथ्वीपर गिरता है।

कभी कभी उल्का पृथिवीपर तोपके गोलों की नाईं ऐसे वेगसे गिरते हैं कि वह पृथिवीमें घुस जाते हैं। संवत १९४२ वि० में ऐसा ही एक उल्कापात मेग्ज़िकोमें हुआ था, जिसका विवरण विलायतके वैज्ञानिक पत्र नेचरमें प्रकाशित हुआ था। संवाददाता ६ बजे सायंकाल अपने घोड़ों-को चारा खिलानेके लिए बाहर गया। अचानक उसने अपने ऊपर एक विचित्र प्रकाश फैलता हुआ और चिनगारियां उड़ती हुई देखीं। इतनेमें

* उल्काका दीखना प्रायः उस समय बन्द हो जाता है, जब उसका वेग २ मील प्रति सेकंड से कम हो जाता है।—सं०

आश्चर्य्य युक्त और लोग आये और घोड़ोंको शांत-करनेमें जो बिदक गये थे सहायता देने लगे। वह एक दूसरेसे कारण पूछने लगे, इतनेमें प्रकाश सहसा लुप्त होगया। दीपक लेकर कारण जाननेके लिए उन लोगोंने इधर उधर जो देखा तो पृथिवीमें एक छिद्र दिखाई पड़ा जिसमें दहकता हुआ एक गोलाकार पिण्ड था। उस समय उन्होंने भयसे उसे नहीं छेड़ा। रातभर आकाशमें यही अग्निकांड होता रहा। परन्तु सौभाग्यसे और कोई गोला न गिरा। अगले दिन उसे उठाकर देखनेसे ज्ञात हुआ कि वह लोहेका था।

ऊपर कहा जाचुका है कि कभी कभी एक साथ बहु संख्यक उल्का एक ही स्थानपर गिरते हैं। ऐसी एक उल्कावर्षा इंगलेंडमें सं० १८२३ वि० में हुई थी, जिसका वर्णन ज्योतिषी सररोवर्ट-ने निम्नलिखित बड़े रोचक शब्दोंमें किया है। "नवम्बर मासकी १३, १४ तारीखके बीचकी रात-को मैं सररोसके बड़े दूर वीक्षण यंत्रसे आकाश निरीक्षण कर रहा था। मुझे बताया गया था कि आज रातको उल्का वर्षाकी संभावना है, परन्तु मुझे इतनी शीघ्र आरम्भ होनेकी आशा न थी। सेवकने अचानक आकर कहा कि आकाशमें प्रकाश हो रहा है। १० का समय था। मैंने ऊपर देखा। एक उल्का ऊपरसे गिरा। इसके पश्चात् दूसरा और फिर तीसरा गिरा। मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य उल्का वर्षाकी बात सत्य होनेवाली है। दो तीन घंटेतक मैं ऐसा दृश्य देखता रहा जिसकी याद मुझे कभी न भूलेगी। टूटनेवाले तारोंकी संख्या बढ़ने लगी, यहांतक कि कई कई एकही बार गिरने लगे। कभी ऊपरसे कभी दाएँसे और कभी बाएंसे गिरते रहे। रात बहुत व्यतीत होगई थी और लियो नामक तारा समूह गगन क्षितिजपर उतर आया था। इस अग्नि वर्षाका भेद खुला। इस घटनाके सब चिन्ह उक्त तारा समूहसे निकलते प्रतीत होते थे। कभी कभी कोई उल्का सीधा हमारे शिरपर आता प्रतीत होता था। तुरन्त ही इसका मार्ग छोटा होजाता था, वह ठहरे हुए तारे जैसा प्रतीत होता था और उसका प्रकाश बढ़ता जाता था। फिर वह झट लुप्त हो जाता था। कभी कभी उल्का लुप्त होनेपर भी उसका पुच्छ रूप प्रकाश कई मिनटतक दीखता रहता था, परन्तु अधिक उल्काओंकी पूंछ मंद थी। यह कहना असम्भव है कि कितने सहस्र तारे इस वर्षामें टूटे। इनमेंसे प्रत्येककी चमक सामान्य रात्रिमें प्रशंसा पा सकती थी।"

निमोनिया और उसके जीवाणु

[ले०—श्री० मुकटबिहारी लाल दर, बी. एस-सी.]

गत वर्षसे, जब इंफ्लूएंज़ाका प्रकोप हुआ था, जनसाधारण निमोनियासे अच्छी तरह परिचित हो गये हैं, क्योंकि अधिकांश मौतें अन्तमें निमोनिया होकर हुईं। यह रोग गांवोंकी अपेक्षा शहरोंमें अधिक होता है, जिसका कारण शायद यह है कि शहरमें ज़्यादा घनी बस्ती होने-के कारण रोग-जीवाणु एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्य-के पास आसानीसे पहुंच सकते हैं और गांवकी अपेक्षा शहरमें स्वच्छ हवाकी कमी होती है।

रोगके लक्षण

यह रोग शीतके कारण ज्वर आनेके बाद होता है और साथ ही खांसी, छाती वा बग़लोंमें दर्द होता है और सांस जल्दी जल्दी आती है। थूक लोहेके मोरचेके रंगका सा निकलता है और यह रंग (air sacs) छोटे वायुकोष्ठकके रक्तके कारण होता है। रोग बहुत जल्दी बढ़ता है और भयंकर रूप धारण कर लेता है। संकटका समय तीसरे दिनसे आठवें दिन तक आता है। कभी कभी फेफड़ेके इतने हिस्सेमें वायुकोष्ठक (air sacs) बंद हो जाते हैं कि रोगीके, सांस न ले सकनेके कारण, प्राण तक निकल जाते हैं। परंतु आम तौरसे मृत्यु आक्रान्त फेफड़ोंके रक्त द्वारा पहुंचे हुए जीवाणु-

Bacteriology कीटाणुशास्त्र]

विष (toxin) से, जो हृत्पिंडको विषाक्त कर देता है, होती है। निमोनिया विशेषतः पांच वर्षसे छोटे बच्चों बूढ़े पुरुषों और जो किसी कारण निर्बल वा रोगी हों उनको होता है। शराब पीनेवालोंको निमोनिया हो जानेकी विशेष सम्भावना रहती है और सब डाक्टर यह बात अच्छी तरहसे जानते हैं कि मदिरा पीनेवालोंकी इस रोगमें बुरी हालत होती है।

निमोनियाके जीवाणु

निमोनिया कई प्रकारके जीवाणुओंके कारण हो सकता है; परन्तु बहुत करके यह एक छोटे विन्दाकार (pnuemococcus) के कारण होता है। यह जीवाणु केवल फेफड़ेमें ही नहीं होता परन्तु नाक, मुंह, गले और वायुनालियों (air-passages) में भी होता है। बच्चोंको जो मध्यकर्ण (middle ear) का प्रदाह हो जाता है वह प्रायः इन्हीं जीवाणुओंके कारण होता है और कभी कभी यह मस्तिष्क-आवरणका प्रदाह (meningitis) भी पैदा कर देते हैं। निमोनियाके जीवाणु कई पशुओंपर भी आक्रमण करते हैं और मनुष्योंको उन पशुओंसे रोग होना संभव है।
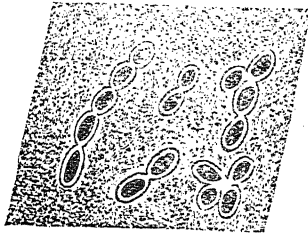
चित्र १-निमोनियाके जीवाणु (pnuemococcus)

जीवाणु किस तरह शरीरमें प्रवेश करते हैं।

निमोनिया रोगीका थूक और नाकका श्लेष्मास्राव जीवाणुओंसे भरा होता है। डिफथीरियाके जीवाणुओंकी तरह (जैसा पिछले लेखमें बताया जा चुका है) प्रायः यह भी फैलते हैं। निमोनियाके जीवाणु थूक आदिके सूखनेपर मरते नहीं और कभी कभी धूलके साथ सांस द्वारा अवश्य अंदर पहुंच जाते हैं। परन्तु यह प्रायः मुंह में ही होकर शरीरमें घुसते हैं।

स्वस्थ मनुष्योंके गलेमें निमोनियाके जीवाणु

बहुतों-और संभवतः अधिकांश लोगोंके-मुंहमें निमोनियाके जीवाणु होते हैं। यह जीवाणु वास्तवमें निमोनिया जीवाणु होते हैं और, जैसा कि पशुओंपर परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है, वह रोग भी पैदा कर सकते हैं, परन्तु तिसपर भी निमोनियाके रोगीके फेफड़ोंके ताज़े जीवाणुओंकी अपेक्षा रोग पैदा करनेमें इतने दक्ष नहीं होते। निमोनिया जब फैलता है तो ऐसा मालूम होता है कि जीवाणुओंकी कोई विशेष भयंकर (virulent) जाति छोड़ दी गई है। यह देखा गया है कि खेमोंमें जहां आदमी एक दूसरेके संपर्क (contact) में रहते हैं एक अत्यन्त सांघातिक प्रकारका निमोनिया होता है। ऐसे अवसरपर निमोनियाके जीवाणु शायद एक निमोनिया रोगीसे दूसरेके पास पहुंचते हैं और फेफड़ोंमें वृद्धि करते रहते हैं, यहां तक कि वह इस प्रकारके घरके लिए अपनेको उपयुक्त कर लेते हैं।

निमोनिया रोगीके जीवाणुओंसे सदा बचना ही ठीक है, क्योंकि संभव है कि जो पुरुष निमोनिया जीवाणुका एक निर्बल जातिको रोकनेमें समर्थ हो किसी अधिक बलवान जातिका सहजमें ही शिकार बन जाय। इसीलिए यह उचित है कि बच्चोंको हमेशा गालपर ही चूमना चाहिये, मुंह पर कभी नहीं। निमोनिया रोगीके मुंहका थूक और नाकका श्लेष्मास्राव सावधानीसे कृमिविहीन करा देना चाहिये और जला देना चाहिये।

स्वस्थ रहनेसे निमोनियाका बचाव

निमोनिया-जीवाणु सब रोगोत्पादक जीवाणुओंकी अपेक्षा अधिक फैला हुआ है। इसलिए बचनेकी बहुत कुछ कोशिश करते रहने पर भी उनसे बचना मुमकिन नहीं हो सकता। सौभाग्यवश यह शीत प्रधान देशोंका रोग है और हमारे देशमें संक्रामक रूप धारण नहीं करता। जब निमोनिया फैल रहा हो स्वस्थ रहनेका

विशेष प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें जो निमोनिया-जीवाणु फेफड़ोंमें पहुंचे उनको शरीर नाश करनेमें सफल हो। चूंकि यह रोग प्रायः सरदीमें ही होता है इसलिए मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिए सील और नमीसे बचनेके अतिरिक्त इतने काफ़ी गरम कपड़े पहिनने चाहिएँ कि सर्दीसे पूरी रक्षा रहे। शराबसे बिल्कुल बचना चाहिये, क्योंकि शराब पीनेवालोंको निमोनिया होनेकी अधिक संभावना है।

शराब पीनेसे जिस मनुष्यकी जीवाणुओंके आक्रमण रोकनेकी शक्ति कम हो जाती है, उसका रोगसे बचना बहुत मुश्किल होता है। हर एक व्यक्तिको अच्छा खाना खाना चाहिये, काफ़ी सोना और कसरत करना चाहिये और जितना समय हो सके स्वच्छ हवाके सेवनमें बिताना चाहिये।

स्वच्छ हवाकी आवश्यकता

इसमें कोई शक नहीं कि शरीरकी निमोनिया जीवाणुओंको रोकनेकी शक्ति स्वच्छ हवाकी कमीसे निर्बल हो जाती है। बहुतोंका यह मत है कि फ़रवरी और मार्चके महीनोंमें यह रोग शीत-प्रधान देशोंमें इस कारण होता है कि जाड़े भर वहांके लोग अंदर (बहुधा ऐसे मकानोंमें जो काफ़ी हवा दार नहीं हैं) रहनेसे निर्बल हो जाते हैं। उन देशोंके स्वास्थ्य विभागके डाक्टर इस नियमपर अधिक ज़ोर देते हैं कि स्वच्छ हवा स्वस्थ रहनेके लिए आवश्यक है। और निमोनियाके इलाजमें बहुत से बड़े बड़े डाक्टर रोगियोंको बहुत जाड़ेमें भी बाहर ले जाते हैं, जैसा कि क्षय रोगियोंके साथ करते हैं। जो मनुष्य अपनी निमोनिया-जीवाणुओंको रोकनेकी शक्तिको बनाये रखना चाहता है, उसको स्वच्छ हवाका सेवन बड़ी श्रद्धासे करना चाहिये।

खाद और खाद डालना *

(लेखक—'पथिक')

राख

राख (लकड़ीकी) में पोटाश और चूना अधिक होता है। पुराने पेड़की राखमें चूना अधिक होगा। नये पौदेकी शाखाओंमें पोटाश अधिक होगा। राखमें कभी कभी ५० प्रतिशत तक पोटाश होता है। ५ फ़ी सदी होना तो साधारण बात है। यह आलूके वास्ते विशेष लाभ दायक होती है और तम्बाकू, टमाटर, मिरच, बेंगनके लिए भी लाभ कारी है। इसे १०, १५ गाड़ी फ़ी एकड़ डालना चाहिये।

जब कि पौदोंकी पत्तियों या नई डालियोंमें कीड़ा लग जाता है तो राख पानीमें घोलकर उनपर डाल दिया करते हैं।

खटिक गंधेत (calcium sulphate)

इससे पौदोंको चूना मिलता है। भूमिके अन्य खनिज पदार्थोंके साथ रासायनिक परिवर्तन होनेसे पानीमें घुलनेवाली पोटाश अलग हो जाती है और पौदोंके काम आती है। चिकनी मिट्टीमें इसे डालनेसे उसकी चिकनाहट कम हो जाती है और उसमें सरलतासे हल इत्यादि चला सकते हैं। खेतमें यदि तेज़ाबका सा गुण आ जाय तो इसके डालनेसे वह भी दूर हो जाता है।

यह दस मन फ़ी एकड़के हिसाबसे डाला जाता है। जिन खेतोंमें कंकड़ अधिक होते हैं उनमें इसे नहीं डालते, क्योंकि चूनेकी मात्रा अधिक हो जाती है, जो फ़स्लके लिए हानिकारक होती है। दालवाली फ़स्लोंको इससे अधिक लाभ होता है।

एमोनियम गंधेत (Ammonium Sulphate)

यह पांस खास कर उन कारखानोंसे मिलती

---

* विज्ञान भाग ८ पृष्ठ २७१ से सम्मिलित।

है, जहां पर कि पत्थरके कोयलोंसे (coal gas) कोलगैस बनाई जाती है। जो एमोनियम सलफ़ेट बाज़ारसे मिलता है उसमें ६० प्रतिशत एमोनियम यौगिक होते हैं। यह गेहूँ और जौकी क़िस्मकी फ़स्लोंकेलिए अति उत्तम होता है। इसमें नत्रजन होता है। यह पानीमें घुल जाता है, परन्तु पानीके साथ बह नहीं जाता। भूमिमें जो जीवांश (organic matter) होता है उसमें अमोनियम यौगिकों (ammonium salts) को रोक रखनेका गुण होता है। ज़मीनमें नत्रीकरण (nitrification) होनेके बाद यह पौदोंके काम आता है। इसलिए फ़स्लके बोनेसे पहले इसे खेतमें डालना चाहिये। १ मनसे ३ मनतक फ़ी एकड़ इसे डालते हैं। प्रायः इसका दाम १०) या १५) मन होता है।

नाइट्रोलियम (Nitroleum)

इसमें १८ से ३० प्रतिशत तक चूना और २५ फ़ी सदी केलसियम सिनैमाइड होता है। इसका रंग काला होता है। इसमें एक खास क़िस्मकी बू होती है। यह २ से ४ मन तक फ़ी एकड़ डाला जाता है। डालनेके समय इसे दुगनी मिट्टीमें मिलाकर कुल खेतमें बराबर फैलाते हैं। इसे बुवाईसे पहले खेतमें देते हैं। पहिले इसका दाम ८) या ९) फ़ी मन था। इससे खेतमें कीड़े नहीं बढ़ने पाते।

पोटाशियम गंधेत (Potassium Sulphate)

इसे पोटाशियम नत्रेतकी तरह ही खेतमें डालते हैं। इसका गुण भी वैसा ही होता है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें नत्रजन नहीं होता। यह शोरेकी तरह पानीमें घुल नहीं जाता। बलुई ज़मीनमें इसे डालनेसे अधिक लाभ होता है। यह प्रायः ५) या ७) मन आता है।

अंतर्राष्ट्रीय संधियोंकी विधि

[ले०—श्री० पुत्तनलाल विद्यार्थी, विशारद]

अंतर्राष्ट्रीय संधियोंका कोई रूप निश्चित नहीं है। वह कई प्रकारसे लिखी जाती हैं। उनके मुख्य चार विभाग हैं:— (१) ट्रीटी (treaty) (२) कन्वेनशन (convention) (३) एग्रीमेंट (agreement) (४) डेक्लेरेशन (declaration)। सब प्रकारकी संधियोंका पालन करना न्यायसंगत समझा जाता है। पालन न करना निरी बेईमानी है। परन्तु कोई राष्ट्र यदि किसी बलीकी युद्ध छेड़ देनेकी धमकी या उसकी सेनाके भयसे संधिका पालन न कर सके तो दूसरी बात है। ऐसी दशामें उसपर प्रतिज्ञा भंग करनेका दोषारोपण नहीं हो सकता। चारों प्रकारकी संधियोंमें दो मुख्य भेद हैं। (१) उनमें उपचारकी मात्रा उत्तरोत्तर एक दूसरेसे कम होती है। (२) सब ट्रीटी और कुछ कन्वेनशन राष्ट्रके स्वामी (sovereign) के नामसे किये जाते हैं। शेष कन्वेनशन और साधारणतया सब एग्रीमेंट और डेक्लेरेशन "गवर्मेंटों" के नाम से होते हैं।

"डेक्लेरेशन" को छोड़कर प्रायः सभी प्रकारकी संधियोंके तैयार करनेके लिए प्रत्येक राष्ट्र सर्वाधिकार प्राप्त मुख़तार व्यवहारी (negotiator plenipotentiary) नियत करता है। इस व्यवहारीके पास राष्ट्रके स्वामी (चाहे स्वामी राजा हो या जनतंत्रका प्रधान) की ओरसे मुख़तारनामा (credentials) होना चाहिये।

मुख़तार नामे भी दो प्रकारके होते हैं-साधारण (आम) और विशेष। साधारण वह होते हैं जो मामूली आम मुख़तारनामोंकी भाँति व्यवहारीको सब प्रकारकी संधि करनेका अधिकार देते हैं। ऐसे मुख़तारनामे बहुधा उन राजदूतों (ambassadors) के पास होते हैं जो परराष्ट्रमें प्रतिनिधिस्वरूप रहते हैं। वह इन मुख़तारनामोंके अधि-

कारपर अपने राष्ट्रकी ओरसे संधि कर सकते हैं। विशेष मुख़तारनामे विशेष अवसरोंके लिए होते हैं। शेष बातोंमें दोनों प्रकारके मुख़तारनामे एक से होते हैं। मुख़तारनामे किस प्रकार लिखे जाते हैं, यह नीचे दी हुई बातोंसे स्पष्ट हो जायगा। पहले उस राष्ट्रके स्वामीका उपाधियों सहित नाम दिया जाता है, जिसकी तरफ़से मुख़तारनामा लिखा जाता है। तदनन्तर जिनके सामने यह मुख़तारनामा रखा जायगा उनका समूह तथा व्यक्तिरूपसे अभिवादन किया जाता है। इसके आगे यह मज़मून लिखा जाता है—

"चूंकि जिन विषयोंकी पर्यालोचना हमारे और ... ... (यहांपर परराष्ट्रका नाम लिखा जाता है) के मध्य हो रही है या भविष्यमें होगी, उनपर उत्तम रीतिसे निश्चिय करनेके लिए हमने उचित समझा कि एक उपयुक्त पुरुषको पूर्णाधिकार देकर अपने पक्षके कार्य संपादनार्थ नियत करें, इसलिए प्रकट हो कि हमने ... ... (यहां सर्वाधिकारप्राप्त मुख़तारका नाम और उसकी उपाधि लिखी जाती है) को इनकी बुद्धि, राजभक्ति, श्रम और विवेकपर विशेष भरोसा करके निस्सन्देह अपना कमिश्नर, व्यवहारी तथा सर्वाधिकार-प्राप्त मुख़तार इस मुख़तारनामेके द्वारा नियुक्त किया। हमने इनको सब प्रकारकी पूरी शक्ति और अधिकार दिये हैं कि हमारी ओरसे सब प्रकारकी संधियाँ ... ... (परराष्ट्र का नाम) के इसी प्रकारके पूर्णाधिकार-प्राप्त मंत्री अथवा मंत्रियोंसे करलें और हमारी ओरसे उसपर हस्ताक्षर भी करें। ऐसी संधिकी वैसीही सामर्थ्य और क्षमता होगी जैसी कि हमारी उपस्थितिसे होती।"

"हम राज्य प्रतिज्ञा करते हैं कि हमारा उपर्यक्त कमिश्नर, व्यवहारी और सर्वाधिकार-प्राप्त मुख़तार जो कुछ निश्चित और स्वीकृत आदि करेगा उसे आवश्यकता होनेपर हमारे द्वारा प्रमाणित किये जानेके अनंतर हम स्वीकार करेंगे और अपनी शक्तिभर उस समग्र संधिके या एकांशके विरुद्ध किसी व्यक्तिको आचरण नहीं करने देंगे।"

"इस (प्रतिज्ञा) की साक्षी स्वरूप हमने इस (मुख़तारनामे) पर अपने .... (देशका नाम) की महाछाप लगवाई है और अपने राज-हस्ताक्षर किये हैं।"

"अपने राजभवन.........में... मासके ..... दिन अपने प्रभु (ईसा मसीह) के...........वें वर्षमें और अपने सिंहासनारूढ होनेके.......... वें वर्षमें यह मुख़तारनामा दिया।"

ऊपर दिया हुआ रूप साधारण (आम) मुख़तारनामेका है। यदि किसी विशेष अवसरके लिए विशेष मुख़तारनामा लिखा जाता है तो ऊपरके मस्विदेमें पूर्णाधिकारकी जगह यह लिख दिया जाता है कि अमुक अमुक कार्योंके लिए अधिकार दिया जाता है।

किसी विषयकी पर्यालोचना आरंभ करनेके पहिले सब प्रतिनिधि अपने अपने मुख़तारनामे (credentials) एक दूसरेको दिखलाते हैं। प्रत्येक संधिमें प्रस्तावना और मुख़तारोंके नामोंके अनंतर लिखा जाता है—

"जिन्होंने एक दूसरेको अपने अपने पूर्णाधिकार प्राप्तिके मुख़तारनामे दिखला दिये हैं और जो मुख़तारनामे उचित और प्रचलित रूपमें हैं, निम्नलिखित धाराएं स्वीकार कीं............"

जिन दो राष्ट्रोंमें संधि होती है उन दोनोंकी ही भाषाओंमें संधि लिखी जाती है। काग़ज़के दक्षिण भागमें एक भाषा और वाम भागमें दूसरी भाषा रहती है। कभी कभी संधिमें यह भी लिखा रहता है कि झगड़ा होनेपर कौनसी प्रति मान्य समझी जायगी। ५ सितंबर सन् १९०५ को रूस और जापानमें) युद्धके अंतपर) जो संधि हुई थी वह अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषाओंमें थी, पर उसमें लिखा था कि दोनों प्रतियां बिलकुल समान होनेपर भी किसी विषयमें झगड़ा होनेपर

उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगी। कल्पना कीजिये कि ग्रेटब्रिटेन किसी राष्ट्रको कुछ धन देनेकी संधि करे। धन देना विशेष रीतिसे पार्लियामेन्टके अधिकारमें है। तो संधिमें कुछ इस प्रकारकी शर्त होनी चाहिये—

"ग्रेटब्रिटेनके महाराज अपनी पार्लियामेंटसे यह सिफ़ारिश करेंगे कि वह निश्चित धन प्रदान करना स्वीकृत करे।"

ऐसी अवस्थामें यदि पार्लियामेंट धन देना स्वीकृत न करे तो प्रतिज्ञा भंगका दोष ग्रेटब्रिटेन-पर नहीं लग सकता।

सब "ट्रीटी" और "कन्वेनशनों" में एक धारा "प्रमाण" प्राप्त करनेके संबंधमें रहनी चाहिये, जिससे इस विषयमें कोई संदेह न रहे; यद्यपि "ऐग्रीमेंट" तक बिना ऐसी धाराके राष्ट्रों द्वारा प्रमाणित किये जानेके उदाहरण मिलते हैं। "प्रमाण" विषयकी धारा बहुधा अंतिम धारा होती है और उसमें समय दिया होता है, जिसके भीतर प्रमाण-पत्र प्राप्त हो जाना चाहिये। कभी कभी निश्चित समयके स्थानपर "यथा संभव शीघ्र ही" लिखा होता है। ऐसा भी हुआ है कि निश्चित समय बीत गया, तो एक अलग "ऐग्रीमेंट" समय बढ़ानेके लिये किया गया। कभी कभी समयके बाद प्रमाणपत्र आनेपर दोनों राष्ट्रोंने योंही चुप रह कर भी टाल दिया है।

प्रमाणपत्र (ratification) के ले दे लेनेपर एक राष्ट्रका प्रतिनिधि और दूसरे राष्ट्रका सचिव एक और पत्र प्रोटोकोल (protocol) पर हस्ताक्षर करते हैं, जिसमें यह लिखा होता है कि संधि प्रमाणपत्रके विनिमय द्वारा दृढ़ हो गई।

दो से अधिक राष्ट्रोंमें जो संधि होती है वह प्रायः फ्रेंच भाषामें होती है। उनपर राष्ट्रोंके प्रतिनिधि अपने अपने राष्ट्रोंके नामके प्रथम अक्षर-क्रमके अनुसार पहले पीछे हस्ताक्षर करते हैं, पर इस नियमके कई अपवाद भी हैं। सन् १८७८ की बर्लिनकी संधिमें पहले ग्रेटब्रिटेन फिर टरकीके हस्ताक्षर इत्यादि एक अपवाद है। १८१५ की वीनाकी संधि फ्रेंच भाषामें हुई थी और उसपर (फ्रेंच भाषामें) राष्ट्रोंके नामोंके प्रथम अक्षर-क्रमके अनुसार ही जरमन, स्पेन आदि राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर हुए थे।

बहुत से राष्ट्रोंमें संधि निश्चित करनेके लिए प्रायः एक कान्फ्रेंस या कांग्रेस की जाती है। यह कान्फ्रेंस या कांग्रेस किसी संधि करनेवाले राष्ट्र या बिलकुल तटस्थ राष्ट्र की राजधानीमें होती है। १८१५ में कांग्रेस एक संधि करनेवाले राष्ट्र (आस्ट्रिया) की राजधानी (वीना) में हुई थी। १८७८ की कान्फ्रेंस तटस्थ राष्ट्र जरमनीकी राजधानी बरलिनमें हुई थी।

कान्फ्रेंसका भवन प्रायः परराष्ट्र दफ़तर (Foreign office) हुआ करता है। इससे जिन क़ागज पत्रोंके देखनेकी आवश्यकता पड़ती है उन्हें जल्दीसे मंगवा लेनेमें बड़ी सुविधा रहती है। जब कांग्रेस बहुत बड़ी होती है, जैसा कि अभी (१९१८-१९ में) पेरिसके पास वरसाई (Versailles) में हुआ, तो विवश होकर अन्य स्थानमें करनी ही पड़ती है।

रिवाज ऐसा है कि जिस राष्ट्रकी राजधानीमें संधिकी बातचीत होती है उसी राष्ट्रका परराष्ट्र सचिव या अन्य प्रधान नीतिज्ञ सभापति होता है।

सन् १८७८ की बर्लिनकी कांफ्रेंसमें जरमनीका प्रधान आमात्य विख्यात विस्मार्क (Bismarck) और १९१९ की वरसाईकी कान्फ्रेंसमें फ्रांसके प्रधान-सचिव क्लिमेन्सो (Clemenceau) सभापति थे।

सभापति होनेकी बात पहले गुपचुप ठीक हो जाती है, फिर भी कान्फ्रेंसमें कोई मुख़तार उठकर पूर्व निश्चित नीतिज्ञके सभापति होनेका प्रस्ताव करता है। प्रस्ताव स्वीकृत हो ही जाता है। सभापति अपना आसन ग्रहण करनेपर सब सभा सदों (राष्ट्रोंके मुख़तारों) को धन्यवाद देता

है और प्रस्ताव करता है कि अमुक पुरुष कांफ्रेंस की कार्रवाईका संपादक नियत हो। यह पुरुष सभापतिके देशके ही किसी राजनैतिक विभागका कोई उच्च कर्म्मचारी होता है। क्रीमियन युद्धकी समाप्तिपर १८५६ में पेरिसमें जो कान्फ्रेंस हुई थी उसके प्रथम अधिवेशनमें आस्ट्रियन मुख़तारने उठकर फ़्रांसके प्रधान मुख़तार काउंट वैल्यूस्की (Count Walewski) के सभापति होनेका प्रस्ताव किया, उन्होंने अपनी छोटी सी वक्तृतामें कहा कि यह प्रस्ताव पूर्व प्रथाके अनुसार ही है और इसके अतिरिक्त जिस राष्ट्रके स्वामीके हम लोग अतिथि हैं उसकी ओर आदर सूचक भी है। काउंट वैल्यूस्कीने अपना आसन ग्रहण करने तथा प्रचलित रीतिसे धन्यवाद देनेके उपरान्त मोशियो बेनीडेटी (M. Benedetti) को जो फ़्रांसके परराष्ट्र विभागके राजनैतिक क्षेत्रके मुख्य कर्म्मचारी थे, कान्फ्रेंसकी कार्रवाईका संपादक नियत किये जानेका प्रस्ताव किया। यह सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

कान्फ्रेंसकी कार्रवाई प्रायः पूर्ण ब्रिटिश कामन्ससभा (Committee of the whole British House of Commons) की कमेटीके अनुसार होती है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सदस्य एक प्रस्तावपर एक ही दफ़ा बोले। लोग कई कई बार उठकर अपने भावोंको प्रकट करते हैं और उनके व्याख्यानोंकी सीमा उपस्थित सदस्योंकी श्रवण रुचि ही होती है।

संधियां तीन प्रकारकी कही जा सकती हैं—

१. व्यापारिक संधि, २. राजनैतिक संधि और ३. फुटकर संधि।

व्यापारिक और फुटकर संधियां प्रायः कुछ विशेष कालके लिए होती हैं और राजनैतिक संधियां सदाके लिए समझी जाती हैं।

व्यापारिक संधियोंमें एक शर्त यह होती है कि निश्चित काल (जैसे दस या न्यूनाधिक वर्षों) के उपरांत यदि कोई फ़रीक़ चाहे तो एक वर्ष या छः मास (जो समय नियत हो) का नोटिस (सूचना) देकर संधिका अंत कर सकता है। २३ जुलाई सन् १८६२ की व्यापारिक संधि जो कि ग्रैटब्रिटेन और बेलजियममें हुई थी, उसका अंत करनेका नोटिस देनेको ग्रेट ब्रिटेनके परराष्ट्र-सचिव लार्ड सालिसबरी ने अपने बेलजियम स्थित राजदूतको २८ जुलाई १८९७ को लिखा। संधिमें १ वर्षके नोटिसकी शर्त थी, अतः लार्ड सालिसबरीने लिखा था कि जिस तिथिको नोटिस दिया जायगा उसके ठीक एक वर्ष बाद संधि प्रभावहीन हो जायगी, ऐसा ही हुआ भी। जिस राष्ट्रको संधिके अंत होनेका नोटिस मिलता है, उसे इस बातकी घोषणा सरकारी गज़टमें या जिस समाचार पत्रमें सरकारी सूचनाएँ साधारणतया प्रकाशित कराई जाती हैं उसमें, करा देनी चाहिये। उपर्युक्त उदाहरणमें बेलजियम गवर्मैंटने १ अगस्त १८९७ को ग्रेटब्रिटेनसे नोटिस प्राप्तिको प्रकाशित किया था।

राजनैतिक संधिको प्रभावहीन या परिवर्तित करनेके लिए दूसरी संधि करनी चाहिये।

संधि करनेवाले राष्ट्रोंमें युद्ध आरंभ होनेसे सब प्रकारकी संधियां प्रभाव हीन हो जाती हैं। वही संधियां शेष रह जाती हैं जो केवल युद्ध संचालनके संबंधमें होती हैं, जैसे युद्धके कैदियोंसे बर्ताव करनेकी संधि। युद्धारम्भसे यदि ऐसी संधियां भी नष्ट हो जायं तो फिर उनका फल ही कब हो?

भूत कालमें अनेक संधियां पशुबलने छिन्न-भिन्न कर डाली हैं, पर आशा है कि जनसाधारणकी नित्यवर्द्धमान् जागृतिसे भविष्यमें संधियोंका नैतिकबल उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहेगा।*

* यह लेख ओक्स और मोवट द्वारा संपादित "उन्नीसवीं शताब्दीमें यूरोपकी महान संधियां" (The great European treaties of the Nineteenth Century edited by Sir Augustus Oakes, C. B., and R. B. Mowat, M. A.) नामक पुस्तकके आधार पर लिखा गया है।

इंफ़्लुएंज़ा, कूकर खांसी और जुकामके जीवाणु

[लेखक—श्रीयुत मुकट . बिहारीलाल दर, बी.एस-सी.,]

एक साल पहिले, हमारे देशमें (influenza) इंफ़्लुएँज़ाका नाम बहुत कम सुनाई पड़ता था, परन्तु पारसाल इस संक्रामक रोगने इस देशमें ऐसा उपद्रव मचाया कि अब सब लोग इसके नामसे डरने लगे हैं। यद्यपि यह शीत प्रधान देशोंका पुराना रोग है और यूरोप और इंगलिस्तानमें यह रोग पहिले कई बार फैल चुका है, पर ऐसा अत्यन्त भयंकर रूप इसने कभी पहले धारण नहीं किया था। पिछले साल केवल भारतमें ही लगभग पचास या साठ लाख मनुष्य इसकी भेंट हुए।

इंफ़्लुएंज़ा (influenza) के जीवाणु

इंफ्लुएंज़ाके जीवाणु बहुत छोटे शलाकाकार (bacillus) होते हैं। यह मुंह, गले, स्वरयंत्र और
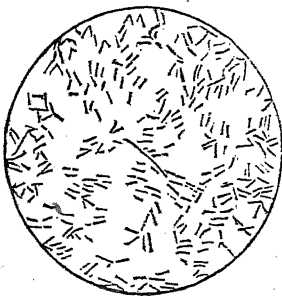
चित्र २—इंफ़्लुएँज़ाके जीवाणु

वायुनालीमें हो जाते हैं और कभी कभी निमोनियाका कारण भी होते हैं।

इंफ्लुएंज़ाके जीवाणु उन लोगोंकी वायुप्रणालीमें (air passages), जिनको यह रोग एक बार हो चुकता है, बहुत दिनों तक—कभी कभी एक सालसे भी अधिक—रहते हैं। यह बहुधा क्षय अथवा वायु-नालीप्रदाह पीड़ित रोगियोंकी वायु-नालियोंमें पाये जाते हैं। थूक अथवा नाकके श्लेष्मामें यह जीवाणु रहते हैं और शरीरमें नाक और मुंह द्वारा घुसते हैं। इंफ़्लुएँज़ाका बैसिलस सुखानेपर आसानीसे नष्ट हो जाता है और शरीरके बाहर कहीं वृद्धि नहीं कर सकता।

Bacteriology कीटाणु शास्त्र]

इंफ़्लुएंज़ा एक विषम रोग है

इंफ्लुएंज़ाका जीवाणु एक तीक्ष्ण विष (toxin) पैदा करता है, जिसका कि कुल शरीरपर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह शरीरको इतना विषाक्त तो नहीं बनाता जितना कि डिफ़्थीरिया का विष (toxin), पर इतनी दुर्बलता और अनमनापन पैदा कर देता है कि महीनों तक नहीं जाता। दूसरी ख़राब बात इस रोगमें यह है कि दूसरी आपत्तियां —जैसे निमोनिया, क्षय, चक्षु तथा कर्ण संबंधी रोग, खांसी और सरदी—इसका प्रायः अनुसरण करती हैं और यह शरीरके किसी न किसी भागको—जैसे मूत्र यंत्र, स्नायु मंडल अथवा पाकस्थली—निर्बल अवस्थामें छोड़ जाता है।

इंफ़्लुएंज़ासे रक्षा

इंफ़्लुएंज़ाके जीवाणु बाहर वैसे ही फैले हुए हैं जैसे डिफ़्थीरिया और निमोनियाके जीवाणु। इंफ़्लुएंज़ाके रोगियोंके (quarantine) करंटीनमें रखनेकी कोई चेष्टा नहीं की जाती और न रोगियोंका थूक ही जीवाणु-शून्य (disinfect) किया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि इंफ़्लुएंज़ाके जीवाणु हर जगह फैल जाते हैं। यह रोग अत्यन्त संक्रामक (infectious) होता है और अन्य रोगोंकी अपेक्षा इसकी पूर्वावस्था या वृद्धिकाल (incubation period) बहुत ही थोड़ी है अर्थात् छः से लगाकर अड़तालीस घंटे तक। यह रोग इंफ़्लुएंज़ा रोगियोंके जीवाणु भरे हुए नाकके श्लेष्मा और थूकके बुद बुदों द्वारा वायु—विशेषकर बंद जगहोंकी—दूषित होनेसे उत्पन्न होता है। इसलिए जिन दिनों इंफ़्लुएंज़ा फैल रहा हो, खुली जगह रहना, स्वच्छ वायुका सेवन करना और अन्य स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका पालन करना

हर एक के लिए परमावश्यक है। भारतीय सरकारने हाल में ही इसका एक प्रतिषेधक रस (prophylactic vaccine) तैय्यार कराया है, परन्तु जब तक उसकी सफलता अथवा असफलता (efficacy or nonefficacy) यथेष्ट रूपसे विदित न हो जाय टीका लगानेके लिए कोई राय नहीं दी जा सकती।

कूकर खांसी (whooping cough)

कूकर खांसी निश्चय एक जीवाणु-जन्य रोग है। यद्यपि उसके जीवाणुका कुछ हाल अभी तक मालूम नहीं हुआ है। परन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि जीवाणु नाक और मुंहके श्लेष्मामें होते हैं। इसकी पूर्वावस्था या वृद्धिकाल चारसे चौदह दिन तक है, लेकिन कभी कभी तीन हफ्ते तक लग जाते हैं। इस रोगके होनेपर ऊंची सांस लेनेसे 'हूप' के समान शब्द होता है। परन्तु यह संभव है कि रोग होनेके बहुत दिनों बाद तक पता न चले। यह बच्चोंको प्रायः अधिक होता है और प्रारम्भसे ही संक्रामक होता है। इसलिए जिसको यह खांसी हो उसको स्कूलमें न रहने देना चाहिये। अगर खांसीके दौरे बंद हो गये हों तो बच्चोंको रोग शुरू होनेके छः हफ्ते बाद स्कूलमें आनेकी इजाज़त दे देनी चाहिये।

कूकर खांसी बच्चोंके लिए बड़ा भयानक रोग होता है

यह रोग प्रायः बहुत भयानक नहीं समझा जाता और इसीलिए बहुधा रोगी सावधानीसे करंटीनोंमें (quarantine) नहीं रखे जाते, जिसका परिणाम यह होता है कि रोग फैल कर बहुतोंकी मृत्युका कारण होता है। अक्सर लोग अपने बच्चोंको हूप खांसीसे बचानेका कोई प्रयत्न नहीं करते अथवा उनको जान बूझ कर रोगियोंके पास जाने देते हैं। यह विशेषतः छोटी उम्रके बालकोंके लिए बहुत ही बुरा है, क्योंकि बच्चा जितना ही बड़ा होता है उतनी ही अच्छा तौर पर वह उसका सामना कर सकता है और वयःप्राप्त पुरुष या तो बिलकुल बच जाते या थोड़ा कष्ट उठाकर रह जाते हैं।

ज़ुकाम (cold)

यद्यपि ज़ुकामके रोगका विस्तृत विवरण अभी तक मालूम नहीं हो सका है, परन्तु यह निश्चय है कि यह रोग जीवाणुओं द्वारा होता है, जो एक मनुष्य से दूसरेके पास पहुंचते हैं। और अन्य किसी रीतिसे हम इसके महामारीके रूपमें प्रकट होनेका कारण नहीं बता सकते। यहां पर बेन्जमिन फ्रेन्कलिन (Benjamin Franklin) का कथन इस विचारके समर्थनमें उल्लेखनीय है। वह कहता है कि "इस विचारके समर्थनके लिए मैं यह देखकर संतुष्ट हूँ कि बहुधा मनुष्योंको ज़ुकाम एक दूसरे से हो जाता है, जब कि वह बंद गाड़ियों तथा कमरोंमें या पास पास बैठे हों और बात चीत करते हों और उनको एक दूसरेकी सांसकी हवामें श्वास लेनी पड़ती है।"

जीवाणु जिनके कारण ज़ुकाम होता है

ज़ुकाममें-और वास्तवमें हर समय-श्वास पथ (air passages) में बहुत से बैक्टीरिया रहते
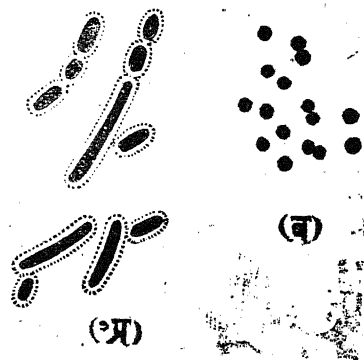
चित्र ३

जीवाणु जो ज़ुकामके सामान्य (common) कारण हैं।

(अ) न्यूमोबैसिलस, (pnuemobacillus)

(ब) माइक्रोकोकस कटारेलिस (micrococcus catarrhalis.)

हैं। परन्तु यह कहना कि कौनसे इस रोगका कारण होते हैं बहुत कठिन है। हां, यह निश्चय है कि निमोनिया और इंफ़्लुएंज़ाके जीवाणु बहुधा ज़ुकाम उत्पन्न करते हैं। डिफ़्थीरियाके जीवाणु भी ज़ुकाम उत्पन्न कर सकते हैं। यह भी ख़याल किया जाता है कि एक विशेष प्रकारका बैसिलस (pnuemobacillus) जो कभी कभी निमोनिया पैदा करता है ज़ुकाम उत्पन्न करनेका ज़्यादातर वही कारण होता है। एक छोटा कोकस (micrococcus catarrhalis) भी जो बहुधा सर्दीके बुख़ारमें पाया जाता है, कभी कभी इस रोगका कारण होता है। इस प्रकार बहुत से जीवाणु ऐसे हैं जो नाक और गलेकी श्लैष्मिक झिल्लीमें पहुंच कर उनको प्रदाह युक्त बना सकते हैं और जब ऐसा होता है तब ही हम कहते हैं कि हमको ज़ुकाम हो गया है।

सरदी और खांसी

सरदी एक तरहके पुराने (chronic) ज़ुकामको कहते हैं और खांसी (वायु नाली प्रदाह), स्वर नाली वा श्वास नालियों (bronchial tubes) के श्लैष्मिक झिल्लीमें सरदी हो जाने को कहते हैं। छोटा विंदवाकार (micrococcus catarrhalis) जो कि कभी कभी मामूली ज़ुकाममें भी उपस्थित रहता है बहुधा सरदीमें भी पाया जाता है। और प्रायः खांसी वायुनाली-प्रदाह (bronchitis) का सामान्य कारण हमारे पुराने मित्र इंफ़्लुएँज़ा और निमोनियाके जीवाणु होते हैं। पुरानी सरदी (chronic catarrh) को अच्छा करना ज़रा मुश्किल होता है, इसलिए बच्चोंको इस रोगसे बचाये रखना चाहिये।

ज़ुकाम उत्पादक जीवाणुओंसे बचाव

जो मनुष्य ज़ुकाम पैदा करनेवाले जीवाणुओंसे बचनेका प्रयत्न करता है उसको चाहिये कि वह किसी ऐसे पुरुषसे जिसे ज़ुकाम हुआ हो पेंसिल, किताब वा अन्य ऐसी चीज़ न ले। उसको ऐसे मनुष्यके गंदे रूमाल (इस्तेमाल किये हुए) को भी न लेना चाहिये और न ऐसे मनुष्यके पास खड़े होना चाहिये जो उसके मुंहके सामने खांसता हो। उसे चाहिये कि वह अपने हाथ, नाक और मुँहसे अलग रखे और कभी कभी अपने हाथों को साबुनसे धो लिया करे। यह कहना अनावश्यक है कि गीले पैर रखना, शरीरको सर्दीसे न बचाना, वा शराब पीना अथवा कोई ऐसा काम करना जिससे स्वास्थ्य बिगड़े, अपनेको ज़ुकामका आसानीसे शिकार बनाना है। जिसको ज़ुकाम हो गया हो उसको अपना रूमाल अक्सर बदलना चाहिये; दूसरोंके खांसनेपर ज़रा हट जाना चाहिये और अपने हाथोंको कभी कभी रोगनाशक पदार्थसे धो लेना (disinfect) चाहिये और अन्य उपायोंसे भी जीवाणुओंको फैलनेसे रोकना चाहिये।

बिजलीके लेम्प

[ले०—श्री० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी.]

बिजलीके लेम्पकी रोशनी बहुत ही सुहावनी और सुन्दर दिखाई पड़ती है। उनको देख मन प्रफुल्लित हो उठता है और मनमें यह जाननेकी इच्छा उत्पन्न होती है कि उनमें रोशनी कैसे पैदा होती है।

बिजलीके लेम्प दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारके लेम्प तो इस सिद्धान्तपर बनाये जाते हैं कि जब कभी विद्युत्‌की धारा किसी वाहक (conductor) में बहती है तो वह गरम हो जाता है, अतएव उचित आकारका वाहक लेनेसे वह इतना गरम कर दिया जा सकता है कि रोशनी देने लगे। इन लेम्पोंको तन्तुलेम्प (filament lamp) कहते हैं। दूसरे प्रकारके लेम्पोंमें पहले दो सुवाहकोंकी छड़ें या टुकड़े लेकर एक दूसरे से मिलाकर रखे जाते हैं और उनमें विद्युत्‌की धारा बहाई जाती है। तदनन्तर शनैः शनैः छड़ोंका अन्तर बढ़ाते जाते

हैं। ऐसा करनेसे रोशनी पैदा हो जाती है। इन लेम्पोंमें वाहकोंका (conductor) कुछ हिस्सा वाष्प (vapour) बनकर उड़ जाता है । अगर वाहकोंमें फासला कम हो, तो विद्युत्को धारा बराबर बहती रहेगी। इन लेम्पोंको चापलेम्प (arc lamps) कहते हैं।

तन्तुलेम्प (filament lamp)

किसी भी पदार्थके तारमें धारा क्यों न बहाई जाय, तार धाराके बहनेमें बाधा या रुकावट डालेगा। इसीको तारकी बाधा कहते हैं। जितना तार अधिक लम्बा होगा और जितना ज़्यादा पतला होगा, उतनी ही ज़्यादा उसकी बाधा होगी । अतएव उतनी ही ज़्यादा गरमी उसमें विद्युत् धाराके बहनेसे पैदा होगी । अतएव लेम्पोंमें तार ऐसे वाहकोंके लिये जाते हैं, जिनकी विशिष्ट बाधा बहुत ज़्यादा हो और जो बहुत ऊंचे तापक्रमपर पिघलते हों।

वाहक होना इसलिए आवश्यक है कि चक्र पूरा रहे और विद्युत् धारा बहती रहे, विशिष्ट-बाधा ज़्यादा होनी इसलिए ज़रूरी है कि यदि समान व्यास और लम्बाईवाले दो धातुओंके तार लिये जायं, तो जिस धातुकी विशिष्ट बाधा अधिक होगी उसीके तारकी बाधा भी अधिक पायी जायगी । अतएव ज़्यादा गरमी पैदा करनेके लिए विशिष्ट बाधाका ज़्यादा होना और तारका बहुत पतला होना ज़रूरी है। यदि धातु ऊँचे तापक्रमपर नहीं पिघलती, थोड़ी ही गरमी पैदा होनेसे तार गल जायगा और लेम्पसे तेज़ रोशनी नहीं मिल सकेगी ।

उपरोक्त पतला तार कांचके एक कुम्कुमे या बल्बमें बन्द रहता है, जिसमेंसे सब हवा निकाल ली जाती है । हवाके निकाल लेनेके दो मुख्य कारण हैं। एक तो यह कि हवाके न रहनेसे तार जलनेसे बच जाता है, क्योंकि हवा या ओषजनके बिना कोई चीज़ नहीं जल सकती। परन्तु,यदि यही एक कारण होता तो बल्बमें नत्रजन भरनेसे भी काम चल जाता, क्योंकि नत्रजनमें भी कोई पदार्थ नहीं जलता। वस्तुतः एक दूसरा कारण हवा निकालनेका यह भी है कि हवा या किसी और गैसके बल्बके भीतर रहनेसे प्रकाश मन्द पड़ जाता है। हवा या गैस गरमीको तारसे बल्ब तक बहुत ही जल्दी पहुंचा देती है। इसी कारण तार उतना गरम नहीं हो पाता जितना गैसोंकी अनुपस्थितिमें होता और प्रकाश मन्द पड़ जाता है। महाशय ब्लेंकरूड (Blenkroode) ने ४ बिजलीके लेम्प लिये। उनमेंसे एकमें कर्बनद्विओषिद् दूसरेमें कोलगैस (Coal gas) तीसरेमें उज्जन भरी और चौथेमें शून्य था। इन चारों लेम्पोंको एक ही चक्रमें लगाकर देखा तो सबसे अधिक रोशनी उस लेम्पकी थी जिसमें शून्य था। शेष तीन लेम्पोंमें प्रकाशकी तीव्रता इस क्रमसे घटती गईः-उज्जन, कोलगैस, कर्बनद्विओषिद ।

उन्होंने इन चारों लेम्पोंके बल्बपर फ़ोस्फ़ोरसका एक एक टुकड़ा रखकर देखा तो मालूम हुआ कि फोस्फोरस उस लेम्पके बल्बपर पहले जला कि जिसमें कर्बनद्विओषिद् था । उसके पश्चात् कोलगैसवालेपर, फिर उज्जन वालेपर और सबसे पीछे शून्यवाले लेम्पपर जला। इससे यह सिद्ध होता है कि बल्बको हवासे खाली कर लेनेसे तारकी गरमी बल्बतक धीरे धीरे पहुंचती है और प्रकाश अधिक होता है।

कर्बन-तन्तु लेम्प (Carbon filament lamp)

कोयलेके तारके लेम्प उन्नीसवीं सदीमें बहुत प्रचलित हो गया। इसका मुख्य कारण इसका सस्ता होना था। इन लेम्पोंके बनानेमें सबसे पहले तारकी आवश्यकता होती है, जो नीचे लिखी विधिसे बनाया जाता हैः—

पहले मामूली रूईको (जिसमें कर्बन, उज्जन और ओषजन रहता है) यशद हरिदके घोलमें हल करके बहुत गाढ़ा घोल (solution) बना लिया जाता है और दो मुंहवाली कुप्पियोंमें भर लिया जाता है । प्रत्येक कुप्पीके एक मुंहमें

तो नली लगाकर ऐसे यंत्रसे सम्बन्ध कर देते हैं, जिससे कुप्पीके अन्दर हवा फूंकी जा सके अर्थात् कुप्पीमें हवाका दबाव बढ़ाया जासके। दूसरे मुंहमें कांचके जेट-गाव-दुमनली, जिसका एक सिरा बहुत पतला और बारीक छेदवाला होता है-लगा देते हैं। हवा फूंकनेसे गाढ़ा द्रव बारीक छिद्रोंमेंसे बारीक डोरेके रूपमें निकलता है। यह डोरा मद्यसार (अल्कहलमें) डाल दिया जाता है और उसमें ३ या ४ दिन तक रहता है। इस समयमें डोरा (thread) बहुत कड़ा और मज़बूत हो जाता है। तदनन्तर इसको निकालकर और धोकर साफ़ कर लेते हैं और बड़े बड़े बेलनोंपर लपेटकर सुखा लेते हैं। जब सूख जाता है तो उसमेंसे उचित लंबाईके टुकड़ोंको काट लेते हैं। अन्तमें टुकड़ोंको कोयलेके सांचोंपर लपेट लेते हैं। सांचोंके आकार अनेक प्रकारके होते हैं। जिस तरहका लेम्पका तन्तु चाहिये, उसी प्रकारके सांचेको लेते हैं।

एक क्रिया तो यहांपर समाप्त हुई। अब दूसरी क्रिया आरम्भ होती है। इन रुई (cellulose) के धागोंको सांचों समेत ग्रेफ़ाइट (graphite) की घरियाओं (crucibles) में रखकर कोयलेकी बुकनीमें दबा देते हैं और ऊपरसे ढकने इस प्रकार बन्द करते हैं कि ज़रा भी सांस नहीं रहती। तदनन्तर घरियाको खूब तपाते हैं। ५५०° श पर काष्ठोज (रुई) मेंसे सब ओषजन और उज्जन निकल जाती है। तापक्रम फिर १५००° श तक बढ़ाते हैं। अन्तमें शुद्ध कोयलेका एक सख़्त तार रह जाता है।

जब लेम्पका तार (filament) इस प्रकार तैयार हो चुका, तो उसमें प्लाटीनमके तार जोड़ देते हैं। प्लाटीनम इसलिए पसन्द किया जाता है कि वह गरम होनेपर उतना ही बढ़ता है जितना कांच। प्लाटीनमके टुकड़े बल्बमें, उसे गरम करके मुलायम करनेके बाद, गुबो देते हैं। अतएव लेम्प जलनेपर जब बल्ब गरम होता है तो कांच और प्लाटीनमके बराबर फैलनेसे, न तो कांच चटख़ता है और न प्लाटीनम और कांचके बीच सांस निकल आती है, जैसा कि उनके असमान विस्तारसे होता। प्लाटीनम गलता भी बहुत ऊंचे तापक्रम पर है।

अब तीसरी क्रिया की जाती है, जिसको फ्लेशिङ्ग प्रोसेस (flashing process) कहते हैं। इस क्रियाका यह अभिप्राय है कि तार जहां कहीं पतला मोटा हो वहां एकसा हो जाय अर्थात् तारका उसकी सारी लंबाईमें एक समान व्यास हो जाय। तारको किसी कर्बोज्ज गैस (hydrocarbon) या वाष्पमें, जैसे बैंज़ीन (benzene) या कोलगैस (coalgas) में रखते हैं और फिर तारमें विद्युत्की इस परिमाणकी धारा बहाते हैं कि तार खूब गरम होकर रोशनी देने लगता है। इस गरमीके कारण गैस (hydrocarbon) के उज्जन और कर्बन अलग अलग होजाते हैं और जहां कहीं तार पतला होता है वहां गरमी अधिक होने* के कारण कोयला वहां पर इकट्ठा हो जाता है। अतएव तार सर्वत्र समान मोटाईका हो जाता है। पर मोटाई बढ़नेसे ध्यान रहे बाधा कम हो जाती है और तार कम रोशनी देने लगता है।

इस क्रियाके पश्चात् प्लाटीनमके तार जो तन्तु (filament) में लगा लिये थे, उनको कांचके बल्बमें, बल्ब तपाकर गुबो देते हैं, जैसा कि चित्रमें दिखलाया गया है।

इसके बाद बल्बमेंसे हवा निकाल ली जाती है। बल्बमें जहां प्लाटीनमका तार लगा होता है ठीक उसके सामने एक कांचकी नली बना ली जाती है और इस नलीको वायु वहिष्कारक यंत्र (pump) से लगाकर उसमेंसे सब हवा निकाल लेते हैं। जब बहुत कुछ हवा निकल चुकती है तो तन्तुको विद्युत्की धारा बहाकर गरम कर लेते हैं, जिस-

* पतले भागकी बाधा अधिक होगी, इसीसे उसमें अधिक गरमी पैदा होगी।

में उसकी गरमी पाकर जो हवा बल्बकी भीतरी सतहपर चिपक जाती है अलग हो जाती है और निकल जाती है। पम्पसे हवा निकालनेकी क्रिया उस समय तक जारी रहती है जबतक कि सब की सब हवा न निकल जाय और तन्तु (filament) में धाराका परिमाण बढ़ा दिया जाता है, यहां तक कि लेम्प उससे अधिक रोशनी देने लगता है कि जितनी रोशनी देनेके लिए वह बनाया गया है। जब सब हवा निकल जाती है तो विद्युत्की धारा बन्द करदी जाती है और उस बल्बमें जो नली लगी रहती है उसके पास गरम करके सूराख बन्द कर देते हैं और नलीको खींच लेते हैं। अब लेम्पकी परीक्षा की जाती है। पहले यह देखते हैं कि उसमेंसे हवा निकल गई या नहीं। इसके लिए लेम्पको इण्डकशन-

चित्र ४—त, त पीतलकी टिकिया;
क, क, पीतलकी नलीकी दीवारें;
र, र, ताम्बेके तार जो प्लाटीनमके तारसे जुड़े हैं।
व व,—प्लाटीनम के तारके सिरे
न, न—लम्पके तन्तुके छोर
प, प—बल्बकी दीवारें।
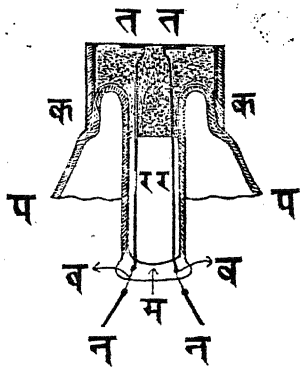
कौयल (induction coil) से या किसी संघर्षण-यंत्र (frictional machine) से जोड़ दिया जाता है। अगर उसमें कुछ हवा बाक़ी है तो उसमें रोशनी होगी। अगर उसमें हवा बिलकुल नहीं या वह हवासे भरा हो तो उसमें रोशनी न होगी। इससे जिन लेम्पोंका शून्य (vacuum) खराब हो वह छांट कर अलहदा कर लिये जाते हैं। इसके
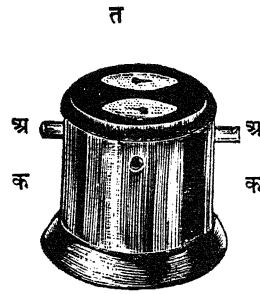
चित्र ५ चित्र ६

चित्र ५—क, क पीतलकी नली जिसमें वस्त्र जमा है।
अ, अ, आलपीन हैं जो गुहा (socket) में बैठते हैं।

चित्र ६—गुहाका निचला हिस्सा। ड, ड, डंडे हैं जिन पर त, त, पीतलकी टिकिया आ बैठती हैं। यह नीचे के चित्रमें दिखलाई हुई नलीके नीचे लगा रहता है।
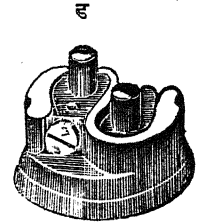
बाद जो प्लाटीनमके तार बाहर निकले रहते हैं, उनको तांबेके तारोंसे जोड़ देते हैं और उनको एक पीतलकी नलीमें जो कि कांचकी कुप्पीसे गच (Plaster of Paris) या किसी और जोड़नेवाले मसालेसे जुड़ी हुई हो रखते हैं। इस नली-के सिरेपर दो पीतलकी टिकियां (plates) होती हैं, जोकि तांबेके तारोंसे मिली होती हैं, जैसा कि चित्रमें दिखाया गया है। इस नलीके बाहर दो आलपीनसे लगे रहते हैं जिनसे कि लैम्प सौकेट (socket) अर्थात् गुहा-में लगा दिया जा सकता है। संगीन गुहा (bayonet socket) का चित्र ६, ७ में देख पड़ता है। इसमें दो ऊंचे डंडे होते हैं, जिनपर कि पीतलकी टिकिया (contact plates) जा बैठती हैं। उन दोनोंके बीच
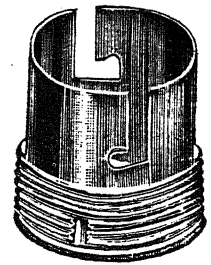
चित्र ७—गुहाका ऊपरी हिस्सा।

एक चीनीका (porcelain) टेढ़ा सा टुकड़ा लगा रहता है। इस टुकड़ेकी आवश्यकता यह है कि इन दोनों डंडोंके बीचमें कोई (spark) चिंगारी न पैदा हो जाय। इन डंडोंके नीचे कमानियां (springs) लगी रहती हैं और लेम्पके दोनों आलपीन गुहा (socket) में जो सूराख है जैसा कि चित्र ७ में दिखाया है लगा दिये जाते हैं। इससे लेम्प अपनी जगह पर रहता है।

धातु – तन्तु लेम्प.

कर्बन तन्तु लेम्पोंमें बिजलीका खर्च बहुत अधिक होता है। इस वास्ते बहुत लोगोंने धातुके तन्तुके लेम्प बनानेका प्रयत्न किया। सबसे पहले ओस्मियम धातु (osmium) के तन्तुओंका प्रयोग हुआ। ओस्मियम लेम्पका आविष्कार डा० वेलसबेक (Dr. Welsbach) ने १९५६ वि० में किया। ओस्मियम धातु लगभग २५००° श पर पिघलता है और इसमें बिजलीका खर्च भी कोयलेकी लेम्पकी अपेक्षा आधेसे भी कम होता है। परन्तु यह लेम्प बहुत जल्दी टूट जाता है और ओस्मियम धातु मिलती भी कम है। इन दोनों कारणोंसे इस लेम्पकी क़ीमत ज़्यादा बैठी और इसी कारण इसका प्रचार कम हुआ।

इसके बाद वैज्ञानिकों ने ऐसे धातुकी खोज आरम्भ की, जिसका द्रवणविन्दु (पिघलनेका तापक्रम ऊंचा हो, जो आसानीसे मिल सके और जिसका तार जल्दी टूट भी न जाय।

प्रयोगों द्वारा मालूम हुआ कि ऊपर दिये हुए सब गुण टंटलम धातुमें विद्यमान हैं। उसका द्रवणविन्दु २३००° श है और यह मिलती भी बहुत है। टंटलैट, लौह-टंटलैट और मंगनो टंटलैट (tantalite, ferro-tantalite, and manganotantalite) खनिजोंसे यह धातु निकाली जाती है। धातुको पीटकर बहुत पतला तार खींच लेते हैं। इस धातुकी विशिष्ट बाधा बहुत कम होती है। इसीसे इसका तार बहुत लम्बा और पतला लेना पड़ता है। इसीलिए लेम्पके अन्दर एक कांचका डंडा रहता है जिसमें हुक लगे रहते हैं। इन्हींमें तन्तु लिपटा रहता है। टंटलम लेम्पमें बिजलीका खर्च ओस्मियम लेम्पसे ज़्यादा होता है, परन्तु कर्बन लेम्पसे आधा।
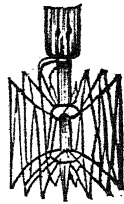
चित्र ८
टंटलम लेम्प

वृक्षोंकी कुछ चर्चा

[ले०–श्र० शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी.]

अगर किसी आदमीसे यह पूछा जाय कि वह मुर्दा और ज़िन्दा चीज़ोंको किस तरह पहचानेगा तो उसका सीधा सादा उत्तर यह होगा कि अगर कोई चीज़ सांस लेती है, हिलती डोलती है, खाती पीती है तथा बढ़ती है तो वह ज़िन्दा है, वरना मुर्दा। अगर पौधोंकी निस्बत भी यही प्रश्न पूंछा जाय तो उसका उत्तर देनेमें ज़रा कठिनाई होगी, क्योंकि बढ़नेके सिवाय पौधोंमें और कोई उपरोक्त क्रिया साफ़ साफ़ दिखलाई पड़नी मुशकिल है। परन्तु जो हमने जानवरोंके सजीव होनेके चिन्ह बतलाये हैं वही पौधोंमें भी मौजूद हैं। भेद यही है कि इन्हें ग़ौरसे देखनेकी आवश्यकता है।

साधारण रीतिपर हम लोग सूखे हुए नाजके दानों और फूलों और बेलोंके बीजोंको जीवित नहीं समझते हैं। मटर, गेहूं, जौ, बाजरा आदि के दाने गुल दुपहरिया, गुलमेंहदी, धतूरा, नीबू, नारंगी, तरोई, जामन आदिके सूखे हुए बीज महीनों और बरसों रखे जासकते हैं। परन्तु अगर इन्हें मिट्टीमें रखकर उपयुक्त जल वायु प्रकाश और गरमी पहुंचाई जाय तो थोड़े ही दिनोंमें इनमेंसे पौधे उग आयंगे। अब प्रश्न यह है कि इन बीजोंमें उगनेकी शक्ति कहांसे आगई। केवल

Botany वनस्पति श]

जल, वायु, प्रकाश और गरमीसे बीजोंमें यह शक्ति उत्पन्न होजाना नामुमकिन है। यह शक्ति जो हर जीवित वस्तुमें पाई जाती है बीजोंमें उस समय भी मौजूद थी जब यह मिट्टीमें बोये नहीं गये थे। उस समय यह शक्ति सुषुप्ति अवस्थामें थी। जब तक इसके जागृत होनेके लिए उपयुक्त और आवश्यक सामग्री मौजूद नहीं हो जाती उसका विकसित होना कठिन है।*

यह तो सभी जानते हैं कि सोता हुआ मनुष्य नतो खाता पीता है और न चलता फिरता है परन्तु पड़ा पड़ा सांस लेता रहता है। बीजके अंकुरित होकर अपनी सजीविताका परिचय देनेसे पहिले वह भी ठीक इसी अवस्थामें था। अब हम कुछ नये उगते हुए पौधोंको देखकर यह मालूम करना चाहते हैं कि उनमें सजीव होनेके उपरोक्त चारों चिन्ह मौजूद हैं या नहीं। पहिले उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया पर विचार करेंगे।

जब हम लोग सांस लेते हैं हवा हमारे फेफड़ोंमें जाती है। उसका एक भाग तो काम आ जाता है और शेष भाग फिर बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार पौधोंमें भी यह क्रिया होती है। पौधे भी हवाका एक भाग अपनी सांसके साथ खींच लेते हैं और बाक़ी हवामें छोड़ देते हैं। थोड़ेसे मटरके दाने लेकर इन्हें घंटे दो घंटे तक पानीमें भिगोकर एक या दो दिनके लिए भीगे हुए बुरादेमें रख दो और ज्योंही उनमें अंकुर फूटने शुरू हों उन्हें एक गीले ब्लाटिंग पेपरपर रखकर चौड़े मुंहकी कांचकी शीशीमें रख दो। इस बोतलके मुंहमें ऐसी डाट लगाओ, जो उसमें बिलकुल ठीक बैठ जाय और उसके और बोतलके बीचमें सांस न रहे। अब इस डाटमें एक छेद करके एक कांचकी नली दोहरी मोड़कर लगादो और उसके दूसरे सिरेको एक पानीके कटोरेमें रखदो, जिसमें दाहक पोटाश घुला हुआ हो। जैसे जैसे इस नलीमें पानी रोज़ाना चढ़ता जाय नलीपर निशान लगाते जाओ। इससे यह मालूम होजायगा कि पौधोंने श्वास लेनेमें कितनी हवा ख़र्चकी। इन नन्हे पौधोंको सांस लेनेके लिए जो कुछ हवा मिल सकती है वह सिर्फ़ इस बोतल और नलीमेंसे खर्च होगी। क्योंकि नलीके दूसरे सिरेके पानीमें डूबे होनेके कारण बाहरसे हवा नहीं आसकती। हवाका जितना अंश यह पौधे सांस लेनेमें खींच लेंगे उतनी जगह खाली हो जायगी और उसकी जगह पानी भर जायगा। इस प्रयोगसे मालूम होता है कि हर पौधेके बढ़नेके लिए हवाका एक अंश लेना परमावश्यक है। इस श्वास प्रश्वास क्रियाके विषयमें एक और आवश्यक बात जान लेनी चाहिये। अगर हम एक परख नलीमें थोड़ा सा चूनेका साफ़ नितारा हुआ पानी लेकर उसमें फूंक मारना शुरू करें तो हम देखेंगे कि थोड़ी ही देरमें वह पानी दूधिया रंगका हो जायगा। अगर दूसरी नलीमें थोड़ा सा और पानी लेकर उसमें भी साधारण हवा साइकिलके पंप द्वारा पहुंचा दी जाय तो हम देखेंगे कि इस बार पानी दूधिया न होगा। इस प्रयोगसे मालूम होता है कि हमारे फेफड़ोंमेंसे निकली हुई हवा साधारण वायुसे बहुत भिन्न है। अगर हम एक परखनलीमें खरिया मिट्टी रखकर और उसके मुंहमें काग लगाकर, कागमें होकर एक टेढ़ी नली पिरोदें और उसका दूसरा सिरा एक दूसरी परख नलीमें, जिसमें चूनेका पानी भराहो, रखकर खरिया मिट्टीको गरम करना शुरू करें तो हम देखेंगे कि यह पानी भी दूधिया हो जायगा। इसका कारण यह है कि चूनेके पानीमें कर्बनद्विओषिद मिलनेसे चूनेका कर्बनेत यानी खरिया मिट्टी बन जाती है और इसी कारण पानी दूधिया रंगका हो जाता है।

अस्तु प्रत्येक जीवधारी प्रश्वास क्रिया द्वारा कार्बोनिक एसिड गैस हवामें छोड़ देता है।

*बहुत पुराने बीज, जिनकी यह शक्ति नष्ट हो जाती है, बोनेसे नहीं उगते। कौन बीज कितने दिन जीवित रहता है, यह विज्ञान भाग ७ पृष्ठ २१८ पर दिया है।-सं०

अब हम एक प्रयोग द्वारा यह भी दिखलाने की कोशिश करेंगे कि पौधे भी इसी गैसको हवामें छोड़ते रहते हैं। पहिले की तरह एक चौड़े मुहकी कांचकी शीशीमें गीले ब्लाटिङ्ग पेपरपर कुछ अंकुर फूटे हुए मटरके दाने रखकर उसमें खूब कड़ी डाट लगाकर दो एक दिन तक रखे रहने दो। इसके बाद इस शीशीको जल्दीसे खोलकर इसमें थोड़ा सा चूनेका पानी डालकर, डाट लगाकर हिलाओ। थोड़ी ही देरमें सारा पानी दूधिया हो जायगा। इससे ज्ञात हुआ कि पौधों-ने भी प्रश्वास क्रिया द्वारा वही कार्बोनिक एसिड गैस छोड़ी थी।

उपरोक्त प्रयोगोंसे हमें विदित होता है कि पौधे भी सांस लेते हैं और सांस लेनेमें हवाका एक भाग खर्च करते हैं और छोड़नेमें कार्बोनिक एसिड गैस निकाल देते हैं। पौधे सांस लेनेमें हवाका कौनसा भाग खर्च करते हैं तथा इनकी सजीविताके और किस चिन्हको हम प्रयोगों द्वारा किस प्रकार दिखला सकते हैं, यह हाल अगले लेखमें दिया जायगा।

पौधे उगकर किस प्रकार बड़े होते हैं, यह तो सबने देखा है, इसलिए इसके विषयमें प्रयोग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पौधे किस प्रकार खाते पीते और चलते फिरते हैं, इन बातों-के जाननेके लिए यह आवश्यक है कि हम पहिले पौधोंके भिन्न भिन्न अवयवोंका हाल जानलें। अस्तु अगले लेखमें हम इसी विषयका चर्चा करेंगे।

वैज्ञानिकीय

१—कितने ऊंचे मनुष्यका कितना बोझ होना चाहिये ?

बहुत मोटे बेडौल शरीरके या बहुत ही सूखे साखे दुबले पतले मनुष्योंको छोड़ कर अच्छे गठीले बदनके मनुष्यका वज़न उनकी लम्बाईके हिसाबसे यह होना चाहियेः—

स्त्री

ऊंचाई		वज़न
५ फुट	लगभग १ मन	११½ सेर
५ फुट १ इंच	” १ मन	१४ सेर
५ फुट २ इंच	” १ मन	१६ सेर
५ फुट ३ इंच	” १ मन	१९½ सेर
५ फुट ४ इंच	” १ मन	२३ सेर
५ फुट ५ इंच	” १ मन	२६½ सेर
५ फुट ६ इंच	” १ मन	२९½ सेर
५ फुट ७ इंच	” १ मन	३३ सेर
५ फुट ८ इंच	” १ मन	३६ सेर
५ फुट ९ इंच	” १ मन	३८ सेर

पुरुष

ऊंचाई	वज़न
५ फुट २ इंच	लगभग १ मन २३ सेर
५ फुट ३ इंच	” १ मन २६½ सेर
५ फुट ४ इंच	” १ मन २९½ सेर
५ फुट ५ इंच	” १ मन ३१ सेर
५ फुट ६ इंच	” १ मन ३२½ सेर
५ फुट ७ इंच	” १ मन ३४ सेर
५ फुट ८ इंच	” १ मन ३७½ सेर
५ फुट ९ इंच	” २ मम ½ सेर
५ फुट १० इंच	” २ मन ४½ सेर
५ फुट ११ इंच	” २ मन ७ सेर
६ फुट —	” २ मन ९ सेर

(२) रेत और आंधी

देहलीके पास, पाटौदी रियासतमें रेतके बड़े बड़े टीले देखनेमें आते हैं। प्रायः जब आंधी चलने लगती है तो यह टीले अजब तमाशे

दिखाते हैं। आंधीके वेगसे एक टीला धीरे धीरे ऊपरसे ग़ायब होने लगता है और थोड़ी दूरीपर रेत जमा होकर एक नया टीला बन जाता है। टीलोंका इस प्रकार एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचना बड़ा मनोहर दृश्य होता है, परन्तु यह भयानक भी बहुत होता है, क्योंकि जो मनुष्य या जानवर नये बनते हुए टीलोंके नीचे आगये, वह मानों जीतेजी क़ब्रमें गड़ गये।
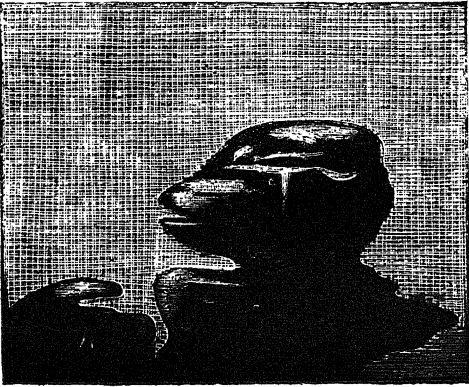
चित्र ६-रेत और आंधी के वेगसे घिसकर चट्टान ने बंदरका सा मुंह बना लिया है।

गांवोंमें लोग प्रायः गांवके बाहर मैदानमें शौचके लिए जाया करते हैं। कभी कभी ऐसी घटना भी होती है कि पानी भरा लोटा ज़मीनपर रखा और आंधीके साथ रेत आई और लोटा ग़ायब। उस समय लोटेको ढूंढ़ निकालने और पानी लानेमें बड़ी तकलीफ़ होती है। जो रेत हवा उड़ाकर लेजाती है, वह वही काम करती है जो कारीगरकी रेती करती है। कभी कभी मैदानोंमें खड़ी हुई चट्टानें इस रेतीसे घिसी जाकर अद्भुत रूप धारण कर लेती हैं। यौर्क शायरमें एक चट्टान है जिसकी आकृति बिलकुल बन्दरके मुँहकी सी हो गई है। इसी प्रकार चट्टानें घिस कर ऐसी हो जाती हैं मानों उनमें बड़े स्पष्ट स्तर प्रस्तुत हैं।

पाटौदीमें रेतके टीले १० या १५ फ़ुटसे ऊंचे नहीं होते। इङ्गलैंडमें समुद्र तटपर टीले ४० या ५० फ़ुट तक ऊंचे पाये जाते हैं, परन्तु फ्रांसमें गैसकनीकी खाड़ीके किनारे एक टीला लगभग ३०० फ़ुट ऊंचा विद्यमान है। अफ़्रीकाकी
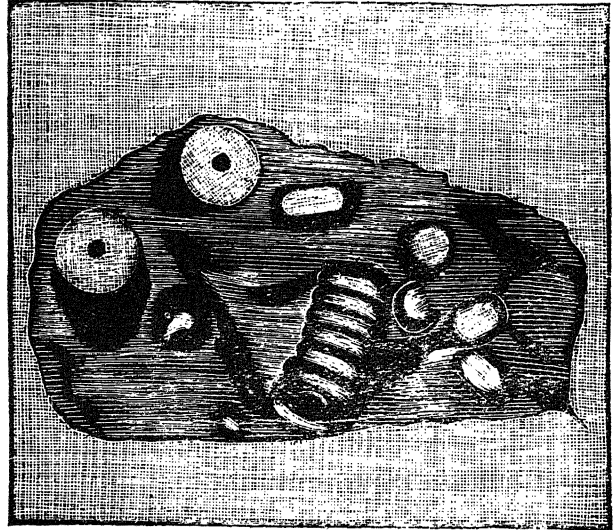
चित्र १०-आंधी और रेतके अत्याचारसे तंग आ, चट्टानने अपना भेद प्रकट कर दिया। उसके मुलायम अवयव तो घिस गये और कठोर अवयव बच रहे, जिनको देखकर उसके संगठनका रहस्य खुल गया। अब उसके कुछ अवयव स्पष्ट दीख पड़ते हैं।

बोजेडर राशि (Cape Bojador) और केप वरडी द्वीप (Cape Verde Island) के टीले ३६० से लेकर ६०० फ़ुट तक ऊंचे हैं।

हवाके साथ उड़ती हुई धूल इन्हीं टीलोंके बननेमें शान्त होकर नहीं ठहर जाती, किन्तु कभी कभी लहलहाते हरे भरे खेतों, धन धान्य समन्वित ग्रामों और नगरोंको भी क़ब्रमें सुला देती है।

१८२६ में नोरफोक (Norfolk) समुद्र तटस्थ एकिल्स (Eccles) का गिरजा घंटा-गुम्बद (जहां घंटा लटका रहता है) तक रेतमें दब गया।

कार्नवाल-समुद्र-तटपर कौन्सटैण्टैनका गिरजाघर ७०० वर्ष तक रेतमें दबा पड़ा रहा। इसे १८६१ वि० में खोद कर निकाला।

अबर्डीनशैरमें फौरवी (Forve) नामक पेरिश* रेतमें दब गया। यूरोपके पश्चिमी समुद्र तटपर पीरिनोज़से बालटिक तक (Pyrenees to Baltic) वायुप्रेरित रेत ३ से लेकर २४ फुटतककी चालसे प्रतिवर्ष आगे बढ़ रहा है और मकानों तथा खेतोंको दबा रहा है।

सहारा आदि बड़े बड़े रेतीले मरुस्थलोंमें न जाने कितने बड़े बड़े नगर भूतकालमें रेतमें दब चुके हैं। इन नगरोंको खोदकर निकाल लेनेसे न जाने हमारे ऐतिहासिक ज्ञानमें कितनी वृद्धि होगी।

(३) प्राकृतिक नांद या अद्भुत सीपी।

सीपीके जातिके कुछ जीव होते हैं, जिन्हें ट्राइडेकना अर्थात् त्रिडएक (tridacna) कहते हैं। इनका आकार कभी कभी बहुत बढ़ जाता है। मोलक्का द्वीप समूहमें एक प्रकारका त्रिडंक पाया जात है जो चट्टानों या पत्थरोंपर जमा रहता है। इसमें दस सेरसे भी अधिक मांस निकलता है और इसका वज़न, सीपी सहित, छः मनसे भी अधिक बैठता है। वहांके निवासी मांसको तो खा जाते हैं और ऊपरकी सीपीको काट काटकर सूअरों आदिको खिला देते हैं। कभी कभी इन सीपियोंका मांस तो वह लोग निकाल लेते हैं, परन्तु उन्हें चट्टानोंपर ही जमा रहने देते हैं और अपने बच्चोंको न्हिलानेके लिए उनसे टबका काम लेते हैं। यह टब बिलकुल साफ़, चमकती हुई होती हैं। यहींसे इस सीपीके पुट यूरोप आदि देशोंको भेज दिये जाते हैं, जहां कि वह

चित्र ११-प्राकृतिक नांद अथवा असुर सीपी। यूरोपीय गिरजा घरोंकी गंगाजली (holy water pot)

गिरजोंमें पानी रखनेके काम आते हैं। इसीसे यूरोपमें इन्हें 'होली वाटर पोट' कहते हैं।

४-मज़दूरोंकी दुःखगाथा

भारतवर्षकी सामाजिक अवस्थामें एक अपूर्व परिवर्तन हो रहा है। विशेषतः श्रमजीवी लोगोंकी दशा ऐसी डांवाडोल हो रही है कि बड़े भोषण परिणाम उत्पन्न होनेका भय है। अक्तबर मासके माडर्न रिव्यूमें प्रो० राधाकमल मुकर्जी मेकल कारखानोंमें काम करनेवाले मज़दूरोंकी बुरी

* जितना प्रदेश एक पादरीके अधिकारमें होता है वह पेरिश कहलाता है।

दशा और उनके साथ अन्यायपूर्ण बर्तावका हृदय विदारक शब्दोंमें वर्णन करके आगामी बोस्टनमें होनेवाली अन्तर्जातीय श्रमजीवीसभा तथा भारत सरकारके विचारार्थ कुछ प्रस्ताव किये हैं। आशा है भारतसे उस सभामें जानेवाले प्रतिनिधि इन प्रस्तावोंपर यथोचित ध्यान देंगे। हमारे देशके विचारशील धनी लोगोंका भी कर्त्तव्य है कि इन प्रस्तावोंको सोचकर यथा संभव अपने आश्रित सेवकोंकी रहन सहन प्रणाली और आचारको उन्नत करनेमें हाथ न सिकोड़ें। प्रस्ताव यह हैं:—

(१-२) कल कारखानोंमें एक सप्ताहमें ५४ घंटे और अन्य कामोंमें ४२ घंटेसे अधिक काम न होना चाहिये।

(३-४) स्त्रियोंसे कारखानोंमें ४८ घंटेसे अधिक और अन्यकामोंमें ३६ घंटेसे अधिक प्रति सप्ताह काम न कराया जाय।

(५) प्रति दिन कामके समयके बीचमें एक घंटे का अवकाश दिया जाय।

(६) १८ वर्षसे कम अवस्थावाले बालकोंको नौकर न रखनेका नियम होना चाहिये।

भारतीय कारखानोंके क़ानूनमें यह नियम और बढ़ा देने चाहियें।

(१) मज़दूरोंके मकान विस्तृत होनेका नियम।

(२) श्रमजीवियोंके रहनेके मकानोंमें ३ पुरुषों और ४ स्त्रियोंसे अधिक न रहनेका नियम।

(३) पाख़ानोंकी दशाके सुधारका नियम।

४—बालकोंकी असामयिक मृत्यु

अक्तूबरके माडर्नरिव्यूमें श्री० सँत निहालसिंहकी धर्म-पत्नीने भारतमें बालकोंकी मृत्यु और स्वास्थ्य रक्षा विषयक, यहांके राजा और प्रजा दोनोंके ध्यान देने योग्य, एक लेख लिखा है। सरकारी विवरणोंसे उद्धृत् की हुई गणनानुसार, जिसके पक्षपात रहित होनेमें श्रीमतीको संदेह है, प्रतिवर्ष ५० लाख बालकोंकी मृत्युके हृदय विदारक अंकोंपर खेद प्रकट करते हुए आपने एतद्विषयक यहांके शासकोंकी कर्त्तव्य विमुखतापर साश्चर्य शोक प्रकट किया है। इस अनिष्ट परिणामके सामान्य कारण वही हैं जिनके बारेमें यहांके सुधारकोंकी वेदीसे जितना अधिक कहा जाता है उतना ही कम किया जाता है। हां मूल कारण दारिद्र वास्तवमें ऐसा है जिसके लिए सरकार उपालंभ भाजन है। जाने दीजिये प्राचीन भारतके सुखमय जीवनको; अभी यवन कालमें—जो विदेशी, अन्यायी धर्मांध, सब कुछ थे—अबसे सौवां भाग पृथ्वीका जोते जानेपर भी खाद्य पदार्थ और चारा अबसे २० गुना मिलता था। परन्तु अब जबकि खानेको अन्न और ओढ़नेको कफन तकका रोना है, हमारे शासकोंका भारतकी धनवृद्धिसे अपने आपको तथा अपने चाटूकारोंको प्रसन्न करनेवाले राग गाकर सभ्य शासक समाजमें शिर ऊंचा करना बड़े ही साहसका कार्य है। जो हो बाल स्वास्थ्य विषयक न्यारा विभाग खोलना, स्त्री चिकित्सकोंका शिक्षण, उत्तम जल वायुका प्रबन्ध आदि ऐसी बातें हैं जिनपर लेखिकाकी सम्मतिमें, जिससे हम भी सहमत हैं, क्रियात्मक चेष्टा करना हमारे भाग्य विधाताओंका मुख्य कर्त्तव्य है।

— विष्णुदत्त बी. ए.,

बाधानापना

[ले०—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.,]

धारण बाधा बक्सकी बाधा, सब चाबियां निकाललेनेपर, ११११० ओह्मोंके बराबर होती है। पिछले लेखमें ह्वीटस्टोनके जालकी सहायतासे एक बिजलीके लेम्पकी बाधा निकालनेकी विधि बतलायी थी। अब यदि ऐसी बाधा हो जो बाधा बक्सकी कुल बाधासे बड़ी हो, मान लीजिये कि बाधा १४००० ओह्मोंकी है, तो क, ख को बराबर रखनेसे काम न चलेगा। हमको क १० ओह्मोंके बराबर रखकर ख १००

ओह्मोंके बराबर करना पड़ेगा और ऐसी अवस्थामें बाधाबक्समें १४०० ओह्मोंके बराबर बाधा रखने-

चित्र १२—बाधा बक्स। स, सा, उसके दो छोर हैं :

से धारामापकमें विचलन न होगा, क्योंकि

$$घ = ग \frac{ख}{क}$$

जब $\frac{ख}{क} = \frac{१००}{१०} =$ १० और घ = १४००० ओ० तो ग = १४०० ओह्म। यदि ख को १००० ओह्मके बराबर करदें और क को १० ओह्मोंके बराबर ही रखें तो ग १४० ओह्मोंके बराबर होनेसे धारामापकमें विचलन न होगा।

चित्र १३—बाधा बक्समें बाधा किस प्रकार जड़ी हैं।

४ बाधाएँ, १ धारामापक और १ बाटरी-इन चीज़ोंके उचित रीतिसे जोड़नेसे ह्वीटस्टोनका जाल बनता है। इसलिए इनमेंसे हरेक जालकी भुजा कहलाती है। चार-क, ख, ग, घ, बाधाओंमें-से घ, तो अज्ञात बाधा भुजा है ही; क, ख, निष्पत्ति भुजाएँ और ग नापबाधा भुजा या नाप भुजा कहलाती हैं और आगे इनको इन्हीं नामोंसे सूचित करेंगे। ऊपर वर्णन की हुई विधिमें हमने साधारण बाधाबक्स तुलना बाधाकी जगह इस्तेमाल किया और दो निष्पत्ति बाधाएँ इसके संग जोड़ीं, परन्तु ऐसे बाधाबक्स भी मिलते हैं कि जिनमें निष्पत्ति और नापबाधाएँ जुड़ी जुड़ाई होती हैं। केवल अज्ञात बाधा, धारामापक और बाटरी जोड़नी पड़ती हैं। इस बाधाबक्स का चित्र और वर्णन नीचे दिया जाता है। क के स्थानमें १०००, १००, १० ओह्मोंकी बाधाएँ पीतलके

चित्र १४

टुकड़ोंके साथ उसी प्रकार जुड़ी हैं जैसे कि किसी बाधाबक्समें जुड़ी होती हैं। ख के स्थान-में भी उतने ही परिमाणोंकी तीन बाधाएँ १०, १००, १००० ओह्मोंकी पीतलके टुकड़ोंके साथ जुड़ी हैं। १०, १० ओह्मोंकी बाधाओंको जोड़ता हुआ एक पीतलका बड़ा टुकड़ा होता है और इसके बीचमें एक पेच लगा होता है, जिसके नीचे धारामापकके एक सिरेसे जुड़ा हुआ, तार दबाया जा सकता है। जहां क और ख भुजाएँ समाप्त होती हैं अर्थात १०००, १०००, ओह्मोंसे जुड़े हुए अंतिम पीतलके टुकड़ोंपर भी पेच लगे होते हैं। ख का अंतिम सिरा खुला रहता है, किन्तु क का अंतिम सिरा नापभुजाकी १६ बाधाओंसे जुड़ा रहता है और इन १६ बाधाओं-का आख़री सिरा खुला रहता है। इससे और ख के सिरेसे अज्ञात बाधाके दो सिरे जोड़ दिये

जाते हैं। निष्पत्ति भुजाओं क और ख का जोड़ एक तार द्वारा व बटनसे जुड़ा रहता है और क और तुलना भुजाका जोड़ भी पहले बटनके पास ही दूसरे बटनसे जुड़ा रहता है। इन बटनोंके ऊपर प्लाटिनमकी छोटी छोटी कीलें लगी रहती हैं। दो पत्तियोंका एक एक सिरा एबोनाइटके तख़्तेमें जड़ा रहता है और इनमें पेच भी लगे रहते हैं, जिनके नीचे तार दबाये जा सकते हैं और दूसरे सिरोंके ऊपर एबोनाइटके बटन लगे रहते हैं और इन्हीं सिरोंके नीचेकी ओर प्लाटिनमकी छोटी छोटी कीलें लगी रहती हैं। जब एबोनाइटके बटनोंपर उंगलियां रखकर पत्तियां दबायी जाती हैं तो नीचे लगे हुए पीतलके बटनोंपर ठहरती हैं। एक सिरा धारामापकका नापभुजा और अज्ञात बाधा भुजाके जोड़पर जोड़ दिया जाता है, किन्तु दूसरा सिरा निष्पत्ति-भुजाओंके जोड़पर न लगा कर उस पत्तीसे जोड़ा जाता है जो निष्पत्ति भुजाओंके जोड़के साथ जुड़े हुए बटनके ऊपर होती है। जब पत्ती दबायी जाती है धारामापक अपने स्थानसे जुड़ जाता है। इसी प्रकार बाटरीका एक सिरा अज्ञात बाधा और ख के जोड़पर जोड़ दिया जाता है और दूसरा सिरा दूसरी पत्तीसे जोड़ दिया जाता है। पत्ती दबानेसे बाटरी अपने स्थानपर जुड़ जाती है। पत्तीका बड़ा लाभ यह है कि इसके बिना दबाये बाटरीका चक्र खुला रहता है और धाराका प्रवाह नहीं होता।

अज्ञात बाधा, धारामापक और बाटरीको इस बक्सके साथ जोड़कर निष्पत्ति भुजाओंमें बराबरकी बाधाओंवाली चाबियां निकालकर अज्ञात बाधाका अनुमान कर लिया जाता है। उसके बाद निष्पत्तिको बदलकर नाप भुजामें बाधा घटा बढ़ाकर अज्ञात बाधाका ठीक ठीक परिमाण मालूम कर लिया जाता है। ऐसा बक्स डाक तथा तार घरोंमें जिन तारों द्वारा तार जाता है उनकी बाधा निकालनेके काममें आता है, इसलिए डाकघर बाधा बक्स कहलाता है। कभी कभी धारामापक और बाटरी भी अपने अपने स्थानमें जोड़कर एक बड़े बक्सके अन्दर बाधा-बक्स, धारामापक और बाटरी सहित रख दिये जाते हैं। ऐसा उन लोगोंके सुभीतेकेलिए किया जाता है जिनको अनेक स्थानोंपर जाकर बाधाएं नापनेका काम पड़ता है। ख को १००० ओ० के बराबर और क को १० ओ० के बराबर रखनेसे बाधाबक्सकी सहायतासे १११००० ओह्मों तककी बाधा निकाली जा सकती है। ख को १० ओ० और क को १००० ओ० के बराबर रखनेसे इस बाधा बक्ससे $\frac{१}{१००}$ ओ०की बाधा निकाली जा सकती है। परन्तु बाधा बक्स को १ ओ० से कम परिमाणकी बाधा निकालनेके काममें नहीं लाते। १ ओ० से कम बाधा तो वोल्ट और एम्प मापककी सहायतासे ही निकालनी चाहिये।

ह्वीटस्टोनके जालमें बाटरी धारामापकके स्थानमें और धारामापक बाटरीके स्थानमें बिना किसी हानिके जोड़े जा सकते हैं। जो चित्र डाकघर बाधा बक्सका दिया गया है उसमें इनके स्थान बदल ही दिये गये हैं।

डाक घर बाधा बक्ससे सरल और सस्ता यंत्र मीटर–जाल है, जो ह्वीटस्टोनके जालका दूसरा रूप है। इसका चित्र नीचे दिया जाता है। एक लकड़ीका तख़्ता ११० शतांश मीटर लम्बा और ६ इञ्च चौड़ा लेकर उसमें एक मीटर गज़ बीचमें जड़ दिया जाता है। इस मीटर गज़के एक ओर लम्बाईमें लकड़ीके तख़्तेमें एक तांबेकी पत्ती लगा दी जाती है। फिर इस बीचवाली पत्तीके दोनों ओर दो दो इञ्चकी जगह छोड़कर दो और तांबेकी पत्तियां लगा दी जाती हैं और दो समकोणोंपर मोड़कर मीटर गज़की दूसरी ओर इनके सिरे लाये जाते हैं। इन दोनों सिरोंके बीचमें एक मीटर लम्बा न बहुत बारीक न बहुत मोटा जर्मन सिलवर या प्लाटिनायडका तार टांकेसे जोड़

दिया जाता है। पत्तियोंके खाली सिरोंपर पेच लगे होते हैं, जिनके नीचे तार दबा दिये जा सकते हैं। लम्बाईमें मीटर गज़के एक ओर तो एक मीटर लम्बा तार होता है और दूसरी ओर
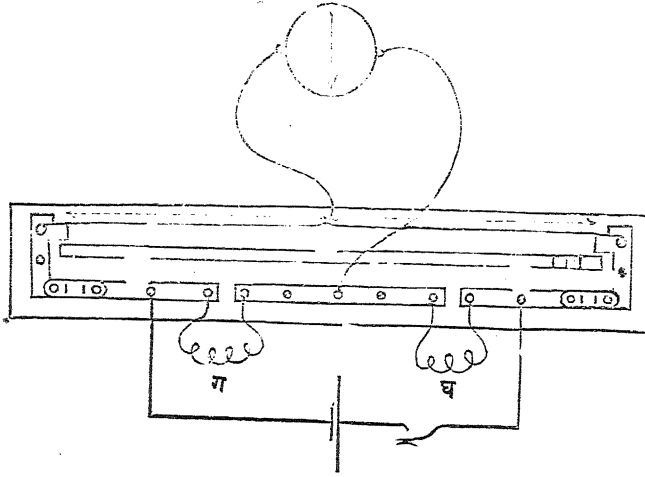
चित्र १५

तांबेकी पत्तियां होती हैं, जिनके बीचमें दो जगह ख़ाली होती हैं। एक ख़ाली जगहमें तारों द्वारा अज्ञात बाधा जोड़ दी जाती है और दूसरी ख़ाली जगहमें एक ज्ञात बाधा जोड़ दी जाती है। इस ज्ञात बाधाको नाप-बाधा समझना चाहिये। जिस बीचवाली पत्तीसे एक सिरा ज्ञात बाधा और एक सिरा अज्ञातबाधाका जुड़ा है उसके बीचमें एक पेच लगा होता है, जिसके नीचे धारामापकके एक सिरेसे जुड़ा हुआ तार दबा दिया जाता है। धारामापकके दूसरे सिरेसे जुड़ा हुआ तार एक ऐसी पत्तीसे जोड़ा जाता है, जिसका एक सिरा मीटरगज़ पर दौड़ता है और दूसरा दबानेसे तार छू लेता है। इस पत्तीका जो भाग तारसे छूता है वह नौकीला बनाया जाता है। इस पत्तीको दौड़ती हुई स्विच कहना चाहिये। तारके एक सिरेसे जुड़ी हुई पत्तीपर जिसका दूसरा सिरा ज्ञात बाधाके दूसरे सिरेसे जुड़ा हुआ है एक पेच लगा रहता है। इसके नीचे बाटरीके एक सिरेसे जुड़ा हुआ तार दबा दिया जाता है। बाटरीका दूसरा सिरा तारके दूसरे सिरेसे जुड़ी हुई पत्ती-पर लगे हुए पेचसे तार द्वारा जोड़ दिया जाता है। बहुधा बाटरीके साथ एक स्विच भी जोड़ दी जाती है। इस प्रकार ज्ञात और अज्ञात बाधाएं, बाटरी और धारामापक जोड़कर, बाटरीके साथ जुड़ी हुई स्विचको दबाकर दौड़ती हुई स्विचको तारपर दौड़ाते हैं जबतक कि वह एक ऐसे स्थानपर पहुंच जाती है जब धारामापकमें विचलन नहीं होता है। ऐसी दशामें ज्ञात और अज्ञात बाधाओंमें वही सम्बन्ध होना चाहिये जो तारके दोनों भागोंकी बाधाओंमें है। परन्तु तारके दोनों भागोंकी बाधाओंमें वही सम्बन्ध है जो उन भागोंकी लम्बाइयोंमें है। इसलिए ज्ञात और अज्ञात बाधाओंमें भी वही सम्बन्ध हुआ जो तारके भागोंकी लम्बाइयोंमें है। तारके भागोंकी बाधा जाननेकी भी आवश्यकता नहीं है। इस फलको समीकरण रूपमें इस भांति लिख सकते हैं—

$$\frac{\text{अज्ञातबाधा}}{\text{ज्ञातबाधा}} = \frac{\text{अज्ञातबाधाके सामनेवाले तारके भागकी लम्बाई}}{\text{ज्ञातबाधाके सामनेवाले तारके भागकी लम्बाई}}$$

चूंकि तार १०० शतांश मीटर लम्बा है, इसलिए एक भाग की लम्बाईको १०० में से घटा देनेसे दूसरे भागकी लम्बाई मिल जाती है। अज्ञात-बाधाके सामनेवाले तारके भागकी लम्बाईको यदि ल शतांशमीटर मानलें तो दूसरे भागकी लम्बाई = १००-ल श० म०; इसलिए

$$\text{अज्ञातबाधा घ} = \text{ज्ञातबाधा ग} \times \frac{\text{ल}}{\text{१००}-\text{ल}}$$

पदार्थोंकी बाधाके सम्बन्ध में हम इतना और कह देना उचित समझते हैं कि जैसे पदार्थोंका आयतन गर्मी पाकर बढ़ जाता है उनकी बाधा भी

गरमी पाकर बढ़ जाती है। कर्बन और कोई कोई ओषिद् (oxides) इस नियमके विरुद्ध भी चलते हैं। उनकी बाधा गरमी पाकर कम हो जाती है। टंग्स्टन धातुके तारके बिजलीके जलते हुए लेम्पकी बाधा ठंडे लम्पकी बाधाकी ८ गुणी तक हो जाती है। जलते हुए कर्बन लेम्पकी बाधा आधी रह जाती है। आयतनकी अधिकताकी तरह बाधामें अधिकता भी नियमपूर्वक होती है। जैसे आयतनकी अधिकतासे तापक्रम नापा जाता है उसी प्रकार बाधाकी अधिकतासे भी तापक्रमका पता लगाया जा सकता है। जिस तापमापककी सहायतासे बाधामें अधिकता नापकर तापक्रम निकाला जाता है वह प्लाटिनम तापमापक है। प्लाटिनमका तार एक अबरकके चैापहलू डंडेपर बाधाओंके तारकी तरह लपेटकर चीनीकी नलीके भीतर रख दिया जाता है। नलीके सिरेपर एक लकड़ीका मत्था लगा होता है, जिसमें लगे हुए दो पेचोंके साथ तारके दोनों सिरे जोड़ दिये जाते हैं। जितना तार डंडेपर लिपटा रहता है उसको तापमापककी घुंडी कहना चाहिये। इस घुंडीको पहले बरफ़में फिर भापमें रखकर इसकी बाधा निकाली जाती है। बाधाकी अधिकताको बरफ़ और भापके तापक्रमोंके भेदसे भाग देनेसे जितनी अधिकता एक अंश तापक्रम बढ़ानेसे होती है मालूम हो जाती है। इसी अधिकताकी सहायतासे किसी भी वस्तुका तापक्रम निकाला जा सकता है।

प्लाटिनम तापमापकका विस्तृत वर्णन किसी लेखमें अलग दिया जायगा।

शहदकी मक्खी

[ले०—शङ्करराव जोशी, कृषि प्रयोग शाला इन्दौर]

शहदकी मक्खी बड़ा परोपकारी प्राणी है। इससे मनुष्योंका बहुत कुछ उपकार होता है। तथापि इसके आश्चर्यमय जीवनरहस्यको बहुत ही कम लोग जानते हैं। इसीलिए हम अपने पाठकोंको मधुमक्षिकाकी जीवनकथा सुनाते हैं।

यह छह पांववाला कीड़ा है। इसीलिए इसे 'षट्पद' भी कहते हैं। फूलोंका मधु पान करने और शहद (मधु) बनानेके कारण इसे मधुमक्षिका या शहदकी मक्खी भी कहते हैं।

माता अण्डे देती है। अण्डे सफ़ेद पर कुछ नीली झांई लिये हुए नाज़ुक और कुछ टेढ़े होते हैं। अण्डोंमेंसे बहुत ही छोटा सफ़ेद कीड़ा (इल्ली) निकलता है। इसके पांव नहीं होते। पूर्ण बाढ़ हो जानेपर कीड़ा (प्यूपा) कोसेमें बदल जाता है। इस अवस्थामें इल्ली ज़िन्दा तो अवश्य रहती है, पर हिलती डोलती नहीं; अचेत पड़ी रहती है। इसी अवस्थामें वह मक्षिकाके रूपमें बदल जाती है और कोसेको छेद कर बाहर निकल आती है। मक्षिका अपना भोजन आप तलाश कर लेती है। वह शत्रुओंसे भी अपना बचाव कर सकती है। परन्तु प्रथम तीन अवस्थाओंमें, अर्थात् अण्डे, इल्ली और कोसेकी अवस्थामें वह असहाय रहती है। अतः इस समय छत्तेकी अन्य मक्षिकाएं उनका पालन पोषण करती हैं और शत्रुसे उनकी रक्षा करती हैं।

छत्तेमें कई छेद होते हैं। इन्हें कोष्ठक कहते हैं। माता (रानीमक्खी) इन्हीं कोष्ठकोंमें अण्डे रखती है। हरेक कोष्ठककी तलीमें एक ही अण्डा खड़ा रखा जाता है। नवजात इल्ली* कोष्ठकमें पड़ी

---

* पहले तीन या चार दिन तक तो अण्डा कोठकके पेंदेमें चिपका रहता है। तदनन्तर इल्ली बाहर निकल आती है

रहती है। परिचारिका (nurse) मक्षिका उसका पालन पोषण करती हैं। वही उसे भोजन खिलाती हैं। अण्डेसे निकलनेके बाद तीन दिन तक नव-जात कीड़ेको नत्रजन युक्तपौष्टिक किन्तु हलका भोजन दिया जाता है। परिचारिकाके शरीरकी

चित्र १६—छत्तेमें मक्षिकाका विकास क्रम (development)

१. अण्डा तहखानेकी तलैटीमें खड़ा है।

२. अण्डेमेंसे निकलनेपर नवजात इल्ली (कीड़ा) तहखानेकी तलैटीमें पड़ी है।

३. कुछ बड़ी हुई इल्ली।

४. पूर्ण बाढ़को पहुंची हुई इल्ली अब प्यूपा होती है।

५. तहखानेमें 'प्यूपा' (कोसा)

ग्रंथियोंसे मक्षिका-पय नामक एक प्रकारका पदार्थ निकलता है। यही प्रथम तीन दिवस तक दिया जाता है। तदनन्तर [बी-ब्रेड] मक्खी-रोटी खिलाई जाती है। यह पराग, शहद और पानीके मिश्रणसे बनाई जाती है। परिचारिका ही इसे बनाती है। इल्लियोंको थोड़ा थोड़ा भोजन दिया जाता है और इसीलिए परिचारिकाको हमेशा उन्हींके पास रहना पड़ता है। पूर्ण बाढ़ हो जाने-पर इल्लीको भोजनकी ज़रूरत नहीं रहती, अतः कोष्ठक (ख़ाने) बन्द कर दिये जाते हैं, जिसमें कीड़े अपनी कोसेकी अवस्था सानन्द बिता सकें। तहख़ानेका द्वार बन्द कर देनेपर इल्ली भीतरसे द्वारपर रेशमका जाल बनाती है औरतब द्वारकी ओर मुँह कर कोसेमें परिवर्तित हो जाती है। कुछ समय बाद इल्ली मक्षिकाके रूपमें बदल जाती है और रेशमके जालको तोड़कर कोष्ठकसे बाहर निकल आती है। हरेक छत्तेमें एक ही बार बहुत सी मक्खियां निकलती हैं। गरमी पहुंचाये बिना अण्डोंमेंसे इल्लियां नहीं निकल पातीं, भीतर ही मर जाती हैं। मक्षि-काएँ उतने ही अण्डोंको गरमी पहुं-चाती हैं, जितने कि वह पाल सकती हैं। एक ही छत्तेमें कभी ज़्यादा और कभी कम अण्डे सेये जाते हैं। जब पराग बहुत मिल सकता है, ज़्यादा अण्डे गरमाये जाते हैं, वरना कम।

मक्षिका उपनिवेश

मक्षिकाएं झुण्ड बनाकर रहती हैं। अकेला रहना उन्हें पसन्द नहीं। वह छत्ते बनाकर रहती हैं। छत्तेके ख़ानोंमें ही कीड़े पाले जाते हैं। शहद, पराग आदि भी छत्तेमें ही रखा जाता है।

हरेक छत्तेमें रानी, परिचारिका या मज़दूर और नर पाये जाते हैं। सब मौसममें नरका होना ज़रूरी नहीं। रानी, मज़दूर और नरका विकाश-

और उस खाद्य पर निर्वाह करने लगती है, जो पहले से उसके लिए इकट्ठा रहता है। जब उसका मुंह कोष्ठकके मुंह तक पहुंचने लगता है, तो परिचारिकाएं उसे खिलाने लगती हैं। —सं०

कम समान होता है; किन्तु आकार और अवयवोंकी रचनामें ज़रूर फ़र्क होता है। इन्हें भिन्न

चित्र १७—भारतीय मक्खीका छत्ता

भिन्न प्रकारका कार्य सम्पादन करना पड़ता है और यही कारण है कि उनके आकार और अवयवोंकी बाढ़में अन्तर होता है।

रानी

हरेक छत्तेमें रानीका होना ज़रूरी है। यही छत्तेकी हरेक मक्खीकी माता होती है। अण्डे देना ही इसका मुख्य काम है। साधारण मज़दूर मक्खीकी तरह इसे भी छत्तेपर ही रहना पड़ता है। अण्डे रखने पर रानीके लिए दूसरा कोई काम नहीं रह जाता। अण्डे इल्ली आदिके पालन पोषणका भार मज़दूरों पर रहता है। रानी हर रोज़ बहुत से अंडे देती है। वह तीन वर्ष तक जीती रहती है। ज़रूरत आपड़नेपर नई रानी तैयार की जाती है। छत्तेमें रानीका अधिक महत्व है। यही सबकी माता होती है। इसलिए शुरूसे ही इसका भरण पोषण विशेष सावधानीसे किया जाता है। जिस इल्लीको रानी बनाना अभीष्ट होता है उसका पालन निराले खानोंमें किया जाता है, जो अधिक लम्बे चौड़े होते हैं। इन्हें हम 'राज्ञी प्रासाद' कह सकते हैं। यह खाने छत्तेके नीचेके भागमें बनाये जाते हैं। बड़े तहखाने बनानेका उद्देश यह है कि इल्लीकी वृद्धिमें किसी
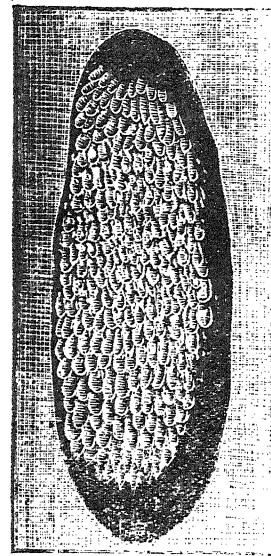
चित्र १८—छोटी मक्खीका छत्ता

प्रकारकी बाधा न पहुंचने पाये। रानीसे इन खानोंमें अंडे रखाये जाते हैं। अण्डा रखनेके तीन दिन बाद उसमेंसे इल्ली निकल आती है। इसे मक्षिकापय ही खिलाया जाता है। रानीका पद ग्रहण करनेवाली इल्लीका यही एक मात्र भोजन है। पांच छह दिनमें कीड़ेकी पूर्ण बाढ़ हो जाती है और तब तहखाना बन्द कर दिया जाता है। कीड़ा तब कोसेमें परिवर्तित हो सात दिन बाद मक्षिकाके रूपमें तहखानेसे बाहर निकल आता है। रानी मक्षिकाके बाहर निकल आनेपर "राज्ञी-प्रासाद" तोड़ दिया जाता है।

कोसेसे बाहर निकल आनेके पांच रोज़ बाद रानी छत्ता छोड़कर इधर उधर उड़ती रहती है। नर और रानीका संयोग छत्तेमें कभी नहीं होता। रानीके शरीरसे एक विशेष प्रकारकी गन्ध छूटती है। नर इसी गन्धसे आकर्षित होता है। दोनोंका संयोग होते ही नर तो मर जाता है और रानी

अण्डे देनेके लिए छत्तेकी ओर चल पड़ती है। इसके बाद वह छत्ता छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती। यदि पहले रोज़ नर और रानीका संयोग न हुआ तो संयोग होने तक वह इधर उधर उड़ती रहती है। यदि तीन सप्ताह तक नरसे संयोग न हुआ तो फिर उसे अपना सारा जीवन क्वारी रहकर ही बिताना पड़ता है।

नर और रानीका संयोग होना ज़रूरी है। रानीके शरीरके उस भागमें जहांसे अंडे निकलते हैं, एक थैली होती है। संयोग होनेपर यह थैली नरके वीर्यसे भर जाती है। ज्योंही अंडा इस थैलीके पास होकर गुज़रता है थोड़ा सा वीर्य उसमें लग जाता है। रानी अपनी इच्छानुसार इस थैलीको खोल सकती और बन्द कर सकती है। बूढ़ी रानी अकसर नरको ही जन्म देती है।

मज़दूर मक्खी

मज़दूर मक्खी, रानी और नरसे छोटी होती है। मज़दूर मक्खी रानी और नरसे ज़्यादा चपल और महनती होती है। छत्तेमें मज़दूरोंकी संख्या ही अधिक होती है।

मज़दूर मक्खियां साधारण ख़ानोंमें पाली जाती हैं। अंडोंसे निकलनेपर पहले तीन दिन तक तो इन्हें मक्षिकापय दिया जाता है और तब 'रोटी' दी जाती है। मक्षिकापय कम मिलनेके कारण इनकी पूर्ण बाढ़ नहीं हो पाती, क्योंकि रोटी कम पौष्टिक होती है। छह दिनके बाद ख़ाने बंद-कर दिये जाते हैं और ११वें दिन इल्ली मक्खीका रूप धारण कर ख़ानेसे बाहर निकल आती है।

छत्तेमें सब काम मज़दूरोंको ही करना पड़ता है। छत्ता बनाना, पराग मधु आदि जुटाना, इल्लियोंका पालन आदि काम इन्हें ही करने पड़ते हैं। नवजात मज़दूर मक्खियां छत्तेमें रहकर परिचारिकाका काम करती हैं और प्रौढ़ मक्षिकाएँ पराग आदि जुटानेमें लगी रहती हैं। दो तीन सप्ताहकी उम्रवाली मक्खियोंका पय नवजात मक्षिकाओंके पयसे कम ताक़तवर होता है और यही कारण है कि नवजात मक्षिकाओंको सबसे पहिले दाईका काम दिया जाता है। ज़रूरत आ पड़नेपर भोजन जुटानेवाली मक्खियां छत्तेमें भी काम करने लग जाती हैं। मज़दूर तीन महीने तक ज़िन्दा रहते हैं, पर अधिक काम आपड़नेपर पांच छः सप्ताहसे ज़्यादा नहीं जी सकते।

नर

नर मज़दूरसे बड़ा होता है। नरके ख़ाने कुछ बड़े होते हैं; परन्तु इनका पालन मज़दूरोंकी तरह ही किया जाता है। नरके ख़ाने छत्तेके नीचेके भागमें बनाये जाते हैं। अण्डेसे निकलनेपर पहले तीन दिन तक कीड़ेको मक्षिका-पय दिया जाता है। तदनन्तर चार दिन तक "बी ब्रेड" और मक्षिकापयका मिश्रण दिया जाता है। इससे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि नरको मज़दूरसे अधिक पौष्टिक भोजन मिलता है और इसीसे उसके अवयवोंकी पूर्ण बाढ़ होती है। तहख़ानेका द्वार बन्द करनेके बाद १३ वें दिन नर बाहर निकल आता है

नरका मुख्य काम रानीका गर्भाधान करना है। इसलिए ज़रूरतके समय ही नर तैयार किये जाते हैं। नर छत्तेमें कुछ भी काम नहीं करते। उलटे मज़दूरों द्वारा कष्टसे इकट्ठा किया हुआ मधु खाते हैं। नर अपने लिए पराग आदि इकट्ठा नहीं कर सकता। इसलिए पराग मधु आदिकी कमीके मौसममें वह मार डाला जाता है। नर दो माससे अधिक नहीं जी सकता।

अन्य विशेषताएं

रानी और नर मज़दूर मक्खीसे बड़े होते हैं। इल्लीकी अवस्थामें भी नर और मादा (रानी और मज़दूर) पहचाने जा सकते हैं। रानी और मज़दूर मक्खियोंकी आँखें सिरपर मिलती नहीं; पर नरकी आँखें सिरपर लगभग मिल जाती हैं। मज़दूरको शहद, पराग आदि इकट्ठा करना पड़ता है। अतः इस कामके लिए उपयोगमें आनेवाले अवयवोंमें अन्तर होता है। मज़दूर-

को फूलोंका रस चूसनेके लिए जीभका उपयोग करना पड़ता है और इसीलिए उसकी जीभ रानी और नरकी जीभकी अपेक्षा ज़्यादा लम्बी होती है। मज़दूर अपने पिछले पाँवोंपर पराग इकट्ठा करके छत्तेमें ले जाते हैं। उनके शरीरके उस भाग को, जहां कि पराग इकट्ठा किया जाता है, पराग करंड (pollen basket) कहते हैं। रानी और नरमें इसका अभाव होता है। मज़दूरके शरीरके नीचेके भागसे मोम निकलता है, जोकि छत्ता बनानेके काममें आता है। मज़दूरका डंक तीक्ष्ण और विषैला होता है। रानीका डंक मज़दूरके डंकसे भिन्न आकारका होता है और वह इसकी सहायतासे अण्डे रखती है। नरमें डंकका अभाव होता है।
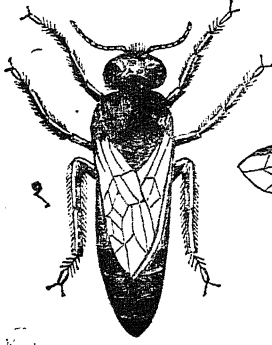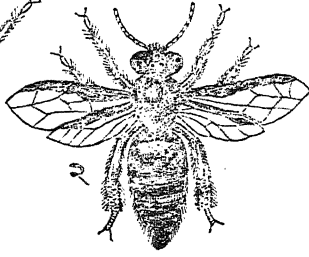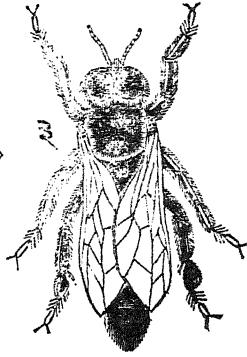
भारतीय मक्खी

चित्र १९—रानी चित्र २०—मज़दूर चित्र २१—नर

छत्तेके निवासियोंका परस्पर सम्बन्ध

प्रत्येक छत्तेमें रानी और काफ़ी तादादमें मज़दूरोंका होना बहुत ज़रूरी है। रानी अकेली छत्तेको अस्तित्वमें नहीं रख सकती और न नया उपनिवेश स्थापित कर सकती है। कारण वह न तो छत्ता ही बना सकती है और न भोजन ही बटोर सकती है। बच्चोंका पालन पोषण करना भी वह नहीं जानती। मज़दूर अपनी ज़िन्दगी भर उपनिवेश क़ायम रख सकते हैं।

रानीके वृद्ध हो जाने, एकाएकी मर जाने या वीर्यकी थैली ख़ाली हो जानेपर रानी और मज़दूर पैदा नहीं हो सकते और तब धीरे धीरे उपनिवेश शक्तिहीन होता जाता है। मज़दूरोंको यह बात बहुत जल्दी मालूम हो जाती है और वह रानी तैयार करनेकी कोशिश करते हैं। रानी तैयार करनेके पहले कुछ नर तैयार कर लिये जाते हैं ताकि नई रानीके कोसेसे बाहर निकलते ही संयोग हो जाय। नई रानी के कोसेके बाहर निकल आनेपर वृद्ध रानी मार डाली जाती है। रानीके एकाएकी मर जानेपर उसके दिये हुये अण्डोंमेंसे नई रानी तैयार की जाती है।

छत्तेकी रानीके मर जानेपर यदि नई रानी मिलना असंभव हो जाय तब एक मज़दूर मक्खी रानीका स्थान ग्रहण कर अंडे देने लगती है, किंतु मज़दूर मक्खीके शरीरमें नरका वीर्य रखनेकी थैली नहीं होती। और, जैसाकि हम ऊपर लिख चुके हैं, मज़दूर मक्खीके दिये हुये अण्डोंसे नर ही पैदा होते हैं। अतः उपनिवेश नष्ट हो जाता है।

यदि दूसरी रानी मिल गई तो उपनिवेश कई वर्षों तक बना रहता है। ४०-५० वर्षसे भी अधिक पुराने उपनिवेश पाये जाते हैं।

उपनिवेश निवासियोंकी पहचान

हरेक छत्तेकी मक्खियोंके शरीरसे जुदी जुदी गन्ध निकलती है। यदि एक छत्तेकी मक्खी किसी दूसरे छत्तेमें घुसनेकी कोशिश करती है तो मार डाली जाती है। कुछ घंटों तक छत्तेसे बाहर रहनेसे मक्खीके शरीरकी गंध उड़ जाती है। ऐसी मक्खी, यदि उपनिवेशमें घुसना चाहे तो

नव आगन्तुककी तरह मारकर भगा दी जाती है या मार डाली जाती है।

शहद

मक्खियां फूलोंसे रस चूसकर अपने पेटकी एक थैलीमें इकट्ठा करती हैं और छत्तेमें लौट आनेपर उसे उगलकर खानोंमें भर देती हैं। मक्खीके पेटमें एक प्रकारकी रासायनिक क्रियासे फूलोंका रस शहद बन जाता है। मक्खियां शहद अपने खानेके लिए बटोरती हैं। जबतक छत्तेमें जगह होती है और जब तक रस मिल

यूरोपीय इटलीकी मक्खी
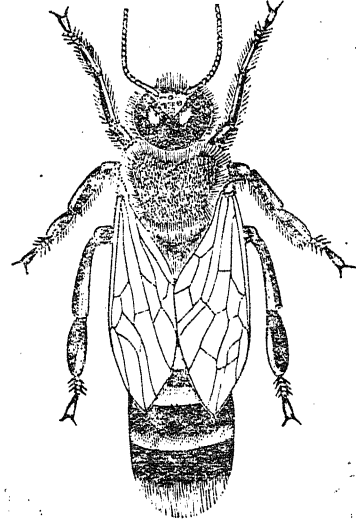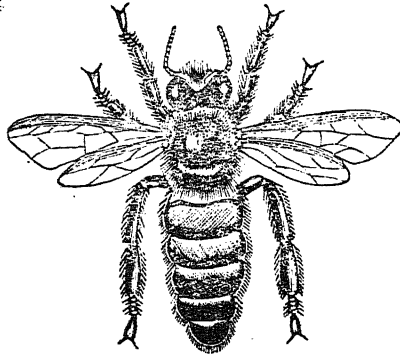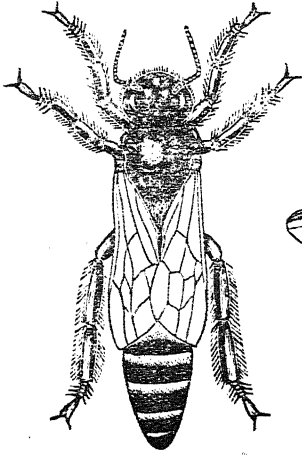
चित्र २२–रानी

चित्र २३–मज़दूर

चित्र २४–नर

सकता है वह मधु इकट्ठा करती रहती हैं। छत्तेमें जितनी ही ज़्यादा मज़दूर मक्खियां होंगी, उतना ही ज़्यादा शहद इकट्ठा किया जायगा और उसी परिमाणमें छत्ता भी बड़ा होगा।

मधुमक्खीका खाद्य

पराग और फूलोंका रस ही इनका मुख्य भोजन है। परन्तु सब प्रकारके फूलोंसे सब जातिकी मक्खियां मधु नहीं चूस सकतीं। कारण कुछ फूल बड़े और कुछ छोटे होते हैं। कुछ फूलोंमें मधु ऐसे स्थानपर रहता है कि जिनसे लम्बी जीभवाली मक्खियां ही रस चूस सकती हैं। कुछ फूल ऐसे भी पाये जाते हैं कि जिनसे सब प्रकारकी मक्खियां मधु ग्रहण कर सकती हैं। अतः निरीक्षणसे ही विशेष जातिकी मक्खियोंका खाद्य जाना जा सकता है, अन्यथा नहीं।

मक्खियां दो दो तीन तीन मीलकी दूरी तकके फूलोंसे रस इकट्ठा करती हैं। अन्दाज़ लगाया गया है कि $\frac{१}{२२}$ औंस मधुके लिए मक्खीको २१३० फूलोंके पास जाना पड़ता है। एक एकड़ रजके के खेतसे एक वर्षमें ३० सेर शहद मिल सकता है। रस किसी फूलमें कम और किसीमें ज़्यादा मिलता है। हर मौसममें फूलोंमें रस नहीं रहता। अतः ज़रा सोचिये कि एक सेर शहद इकट्ठा करनेकेलिए कितनी मक्खियोंकी ज़रूरत होती होगी।

नवीन उपनिवेशकी स्थापना

पराग और मधुकी अधिकताके ऋतुमें बहुत से मज़दूर तैयार किये जाते हैं और धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ती जाती है। ज़रूरतसे ज़्यादा मज़दूर हो जानेपर नया उपनिवेश बसाना आवश्यक हो जाता है।

पहले बहुत से नर तयार किये जाते हैं और तब रानी तैयार की जाती है। भावी रानीकी इल्लीकी पूर्ण बाढ़ हो जानेपर राज्ञो-प्रासादका द्वार बन्द कर दिया जाता है। और तब एकाएक दोपहरमें छत्तेमेंसे आधे मज़दूर और नर, रानी सहित उड़ जाते हैं और योग्य स्थानपर नया छत्ता बनाया जाता है। पहले छत्तेमें नई रानी, भूतपूर्व रानीका स्थान ग्रहण कर लेती है। यदि और भी नया उपनिवेश बसाना होता है तो पहले उड़े हुये झुण्डके एक सप्ताह बाद दूसरी नवजात रानी अपने दल बल सहित उड़ जाती है। इस रानीका गर्भाधान नया उपनिवेश बसानेपर ही होता है। जबतक पहले छत्तेमें मक्खियोंकी संख्या कम नहीं हो जाती कई नये उपनिवेश बसाये जाते हैं।

स्थानान्तर

मौसम बदलनेपर या पराग और मधुकी कमी होनेपर मक्खियां एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चली जाती हैं। भारतवर्षमें ऐसा अधिक होता है।

भारतमें पाई जानेवाली मक्खियां

भारतमें चार जातिकी मक्खियाँ पाई जाती हैं। (१) चट्टानी मक्खी (rockbee), (२) भीतरय मक्खी (Indian bee) (३) छोटी मक्खी (little bee) और (४) यूरोपीय मक्खी।

१. चट्टानी मक्खी (राक बी)—इस जातिकी मक्खियां चट्टानों, वृक्षकी डालियों और कभी कभी मकानकी दीवारोंपर छत्ते बनाती हैं। यह जाति अपना छत्ता हमेशा खुले स्थानपर बनाती हैं। इसका छत्ता बहुत बड़ा होता है। एक छत्तेमें ७० पौंड तक शहद मिलता है। इसका डंक बहुत ही विषैला होता है। यह हाथी तकको मार डालती हैं। गुस्सा आनेपर यह मीलोंतक पीछा नहीं छोड़तीं। आदमी इनसे अपना पिंड नहीं छुड़ा
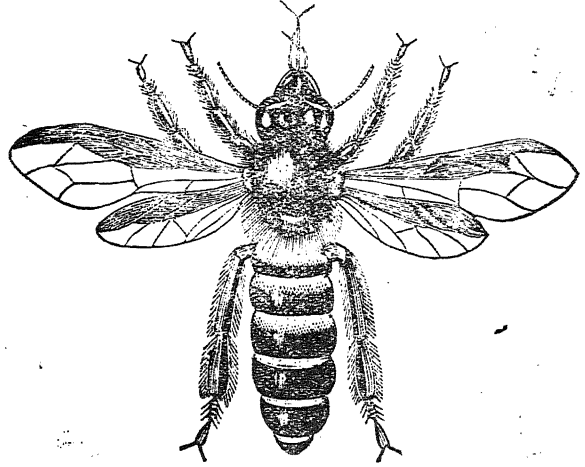
चित्र २५—राकबी (चट्टानी मक्खी) का मज़दूर

सकता। पानीमें कूद पड़नेपर यह पानीपर उड़ती रहती हैं और बाहर सर निकालते ही डंक मारती हैं। जंगली जातियाँ रातको शहद इकट्ठा करती हैं। छत्ता गलाकर मोम बना लिया जाता है।

२. भारतीय मक्षिका (Indian bee)—यह मक्खियां अपना छत्ता वृक्षोंके कोटर, चट्टानोंकी दरारों और कभी कभी दीवारोंपर बनाती हैं। खाली सन्दूकों, बन्द मकान और खिड़कियोंके भीतरकी ओर भी इस जातिकी मक्खियोंके छत्ते पाये जाते हैं। यह हमेशा बहुत से छत्ते पास पास समानान्तरपर बनाती हैं। परिस्थितिके अनुरूप कभी कभी इनके रंग और आकारमें अन्तर पाया जाता है। पहाड़ोंपर पाई जानेवाली भारतीय मक्षिका मैदानोंमें पाई जानेवाली मक्षिकासे बड़ी और अधिक काली होती हैं। इस जातिकी मक्खियां कम शहद इकट्ठा करती हैं।

मैदानोंमें पाई जानेवाली इस जातिकी मक्खीका स्वभाव क्रोधी होता है। स्थानान्तर करने और नवीन उपनिवेश बनानेकी वह आदी होती है। यह बाहरी शत्रुसे अपनी रक्षा नहीं कर सकती।

३. छोटी मक्खी—इस जातिकी मक्खीके मज़दूर बहुत छोटे होते हैं। छत्ता भी छोटा ही होता है। यह जाति अपने छत्ते झाड़ियों और वृक्षोंकी शाखाओंपर बनाती है। कभी कभी इसके छत्ते, मकानोंके नेव (eave) दरवाज़ोंके भीतरकी ओर और घरोंके उजालदानोंमें भी पाये जाते हैं। यह बहुत कम डंक मारती है। डंककाटनेपर तकलीफ़ भी कम होती है। यह बहुत ही कम शहद जमा करती है।

४. यूरोपीय मक्षिका—इस जातिकी मक्खी पश्चिमी एशिया और अफ्रिकामें अधिक पाई जाती है। परिस्थितिके अनुरूप इसके रंग और आकारमें फ़र्क़ होता है। यह जाति कई छत्ते समानान्तर पर बनाती है। छत्ते अकसर छिपे स्थानोंमें ही बनाती है। यह बहुत ही ज़्यादा शहद इकट्ठा करती है। छत्तेमें मक्खियोंकी संख्या बढ़ जाने पर भी यह जाति नवीन उपनिवेश नहीं बसाती। इसे "इटेलियन बी" (इटलीकी मक्खी) भी कहते हैं। यह बहुत परिश्रम करती हैं। इनका स्वभाव बहुत शान्त होता है। डंक मारना यह तो जानती ही नहीं, पर शत्रुसे यह अपना बचाव कर सकती हैं। इस जातिकी रानी बहुत अण्डे देती है। इसलिए उपनिवेशके शक्तिहीन हो जानेपर भी वह पुनः अति शीघ्र शक्तिशाली हो जाता है। इन्हीं गुणोंके कारण पाश्चात्य देशोंमें इस जातिकी मक्खियां कृत्रिम छत्तोंमें पाली जाती हैं।

तार रहित प्रेषकयंत्र औरताररहित समाचार भेजनेकी विधि

[ले०—प्रो० निहाल करण सेठी, एम. एस-सी.]

पिछले अध्यायोंमें जो कुछ लिखा गया था उसके द्वारा विद्युत्कणों और विद्युत्तरंगोंके सम्बन्धमें पाठकोंको साधारणतया सभी आवश्यक बातोंका ज्ञान हो चुका है। अब उन्हें यह समझनेमें विशेष कठिनाई न होगी कि बिना तारकी सहायताके समाचार भेजनेके कैसे कैसे यंत्र होते हैं और उनका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है।

मुख्यतः इस कामके लिए दो यंत्रोंकी आवश्यकता होती है। एक तो समाचार भेजनेवाला और दूसरा उसे ग्रहण करनेवाला। पहिलेको प्रेषक (transmitter) और दूसरेको ग्राहक (receiver) कहते हैं।

प्रारम्भमें ही यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि समाचार शीघ्रतासे पहुंचानेकी जितनी भी विधि प्रचलित हैं उन सबमें कुछ विशेष संकेतोंका प्रयोग किया जाता है। वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरके लिए और अधिक प्रयोगमें आनेवाले कुछ शब्दोंके तथा वाक्योंके लिए संकेत निश्चित कर लिये जाते हैं। इन्हीं संकेतोंको देखकर या सुनकर समाचार समझ लिया जाता है। सेनामें तथा बालचर (boyscouts) समूहमें झंडीको ऊपर नीचे या दाहिने बाएँ हिलाकर समाचार भेजा जाता है। सूर्यके प्रकाशको दर्पण द्वारा परावर्तित कराके अथवा लालटैनके प्रकाशसे भी ग्राहकके पास प्रकाशको अधिक या थोड़ी देरतक पहुंचा कर संकेत निश्चित कर लिये जाते हैं। मतलब यह है कि किसी न किसी प्रकारके संकेतोंका अवश्य प्रयोग करना

पड़ता है। सेना विभागमें ऐसे संकेत गुप्त रखे जाते हैं, किंतु साधारणतया आजकल प्रायः संसारभरमें तार समाचार भेजनेके लिए जो संकेतावली काममें लाई जाती है उसे अंतर्जातीय मौर्स संकेतावली (international Morse code) कहते हैं। इसमें वर्णमालाके प्रत्येक अक्षर और प्रत्येक संख्याके लिए छोटे और बड़े चिन्हों अथवा अल्पकालिक और दीर्घकालिक शब्दों (sounds) का एक एक विशेष प्रकारका समूह नियत है। इन छोटे और बड़े संकेतोंके पारिभाषिक नाम बिन्दु (dot) और रेखा (dash) हैं। यथा अंग्रेज़ी भाषाका अक्षर A एक बिन्दु और तदुपरान्त एक रेखाद्वारा सूचित किया जाता है, यथा .— और अक्षर C —.—. द्वारा। सम्पूर्ण मौर्स संकेतावली नीचे दी जाती है:--

अंतर्जातीय मौर्स संकेतावली

A	.—	N	—.	1	.————
B	—...	O	———	2	..———
C	—.—.	P	.——.	3	...——
D	—..	Q	——.—	4	....—
E	.	R	.—.	5	.....
F	..—.	S	...	6	—....
G	——.	T	—	7	——...
H	....	U	..—	8	———..
I	..	V	...—	9	————.
J	.———	W	.——	0	—————
K	—.—	X	—..—		
L	.—..	Y	—.——		
M	——	Z	——..		

इनके अतिरिक्त दूसरे देशोंकी भाषाओंमें जिन और अक्षरोंकी आवश्यकता होती है, उनके लिए भी संकेत निश्चित हैं। चीन आदि देशोंकी वर्णमाला रहित भाषाओंकेलिए उनके शब्दों और वाक्योंको संख्याबद्ध कर लिया गया है और यह संख्याएँ ही संकेत द्वारा भेजी जाती हैं। यथा ५ का ..... संकेत करनेसे एक विशेष शब्द समझा जाता है और इसी प्रकार ५३६, २४३२ इत्यादि जुदे जुदे शब्दोंके संकेत हैं। यह संकेत या तो काग़ज़के फ़ीतेपर स्वयं छप जाते हैं या इनसे अल्पकालिक और दीर्घ कालिक शब्द उत्पन्न किया जाता है।

साधारण तार द्वारा समाचार भेजनेकेलिए सबसे सरल रीति यह है। जिस स्थानसे समाचार भेजा जायगा वहांपर एक बैटरी (विद्युत्घटमाला) के दोनों सिरोंसे दो तार एक कुंजी द्वारा जोड़े जाते हैं। इस कुंजी (key) से लाभ यह है कि अंगुलीके तनिकसे दबावके द्वारा ही जब चाहो तारोंमें विद्युत् प्रवाहित करदो, जितनी देर चाहो उस प्रवाहको जारी रखो और जब चाहो तभी उसे रोक दो। अस्तु, यह दोनों तार इतने लम्बे होते हैं कि उस स्थानतक पहुंच जायं जहां कि समाचार पहुंचाना है। इस स्थानपर यह तार लोहेकी छड़पर लिपटी हुई एक तारकी बेठनसे जुड़े रहते हैं। जब जब कुंजी द्वारा विद्युत् प्रवाहित की जाती है तब तब यह छड़ चुम्बक बन जाती है और एक लोहेके टुकड़ेको अपनी ओर खींच लेती है। इसका परिणाम यह होता है कि एक क़लम दबकर काग़ज़के एक फ़ीतेसे छू जाती है। यह फ़ीता घड़ीके सदृश एक यंत्र द्वारा चलता रहता है। यदि कुंजी अधिक देरतक दबी रही तो इस फ़ीतेपर एक लम्बी रेखा बन जाती है और यदि थोड़ी ही देरतक दबी रही तो बिन्दुके सदृश एक छोटी सी रेखा बनती है। अतः स्पष्ट है कि भेजनेवाली कुंजीको दबाकर इच्छानुसार संकेत उस काग़ज़के फ़ीतेपर लिख सकते हैं। इन्हीं संकेतोंसे समाचार समझ लिया जाता है। यहां यह स्पष्ट है कि जो शक्ति बैटरी द्वारा उत्पन्न हुई वह तारों द्वारा दूसरे स्थानतक पहुँचाई गई। तारोंने शक्तिके लिए मार्गका काम किया। किन्तु जब बिना तारोंकी सहायताके समाचार भेजे जाते हैं तब विद्युत् शक्तिके लिए यह मार्ग नहीं होता। इस दशामें विद्युत्तरंगोंका प्रयोग किया जाता है। कुंजीकी सहायतासे जब, चाहें छोटी या

बड़ी तरंग श्रेणी उत्पन्न की जा सकती है। छोटी श्रेणीसे मौर्स-संकेतके विन्दु और बड़ीसे रेखा-का बोध होता है। जैसे कोई तुरही बजाता हो और कभी थोड़ी देर कभी अधिक देर तक शब्द करे; अथवा माने प्रकाश स्तम्भ (lighthouse) के सामनेसे एक ऐसा पर्दा बराबर चल रहा हो जिसमें छोटे बड़े अनेक छिद्र हों, जब छोटा छिद्र सामने आयगा तब देखने वालोंको प्रकाशकी केवल एक चमक मात्र दिखलाई देगी। किन्तु जब बड़ा छिद्र सामने आयगा तब प्रकाश कुछ देरतक दिखलाई देता रहेगा। यही मानों विन्दु और रेखा हुई। तुरहीका शब्द और स्तंभका प्रकाश किसी मार्ग विशेषसे गमन नहीं करता। कुछ दूर चलकर उनकी शक्ति इतनी कम हो जाती है कि कोई उनका उपयोग नहीं कर सकता। किन्तु इस सीमाके अन्दर कोई भी व्यक्ति इन संकेतोंको ग्रहण कर सकता है। ठीक यही दशा तार रहित समाचारकी भी है। सीमा विशेषके अन्दर कोई भी व्यक्ति जिसके पास आवश्यक यंत्र हों उस समाचारको ग्रहण कर सकता है। अतः यों समझना चाहिये कि ताररहित प्रेषक एक प्रकारका प्रकाशस्तम्भ है। अंतर केवल यह है कि प्रकाश स्तम्भसे जो तरंगें चलती हैं उनका नेत्रोंको पता चल जाता है किन्तु ताररहित प्रेषककी विद्युच्चुम्बकीय तरंगोंका पता लगानेके लिए विशेष प्रकारके यंत्रोंकी आवश्यकता होती है।

अब हम प्रेषक-यंत्रोंका कुछ अधिक विस्तार-से वर्णन करेंगे। प्रत्येक ताररहित प्रेषकके मुख्य तीन भाग होते हैं।

१—वह यंत्र जिसके द्वारा बहुत बड़ा वैद्युतिक दबाव (very high electromotive force) अर्थात् अवस्था भेद उत्पन्न किया जाता है।

२—वह यंत्र जिसके द्वारा इस बड़े वैद्युतिक-दबावका प्रयोग शक्तिशाली विद्युत्स्पन्दन करानेमें किया जाता है

३—वह भाग जिसे ऐन्टेना (antenna), हवाई तार (aerial wire) या विसर्जक (rbadiator) कहते हैं। इसके द्वारा उपरोक्त विद्युत्स्पन्दन-की शक्ति ईथर समुद्रमें विद्युच्चुम्बकीय तरंगोंके रूपमें परिवर्तित होती है।

सबसे प्रथम इस अंतिम भाग—ऐन्टेना—का वर्णन करना उचित होगा। प्रत्येक ताररहित-तारघर पर आप देखेंगे कि एक या एकसे अधिक लोहे या लकड़ीके खंभे लगे होते हैं, जिनकी ऊंचाई प्रायः १५०–२०० फट से कम नहीं होती। इन्हें सीधा खड़ा रखनेके लिए अनेक तारों द्वारा खींच कर बाँधना पड़ता है। खंभेके ऊपर के सिरे-पर चीनी मिट्टी या एबोनाइट (ebonite) जैसा कोई विद्युद्रोधक पदार्थ लगा होता है और उसपर गुथे हुए तांबेके तारका एक सिरा बंधा रहता है। यह तार खंभेके सहारे सहारे नीचे आकर तारकी एक बेठनसे जुड़ा रहता है और इस बेठनका दूसरा सिरा बहुधा पृथ्वीके अंदर गड़े हुए एक बहुत लंबे चौड़े धातुके पत्रसे जुड़ा रहता है। इस प्रायः २०० फुट लम्बे हवाई तारको ही ऐन्टेना कहते हैं। (चित्र २६)

किन्तु इस साधारण ऐन्टेनाका प्रयोग सर्वदा नहीं किया जाता। कभी कभी दो खंभोंके ऊपर एक बड़ा डंडा लगा दिया जाता है और उस परसे ५,६ तार लटकाये जाते हैं। यह सब नीचे एक ही स्थानपर जुड़े रहते हैं। इसे पंखा-ऐन्टेना (fan antenna) कहते हैं (चित्र २७)। अथवा एक ही खंभेके सहारे ५,६ तारोंको लेजाकर ऊपर छातेकी तरह फैला देते हैं। इसे छाता-ऐन्टेना (umbrella antena) कहते हैं (चित्र २८)।

जहाज़ोंपर मस्तूलोंसे ही खंभोंका काम लिया जाता है। उन्हींपर बहुत से तार आड़े बांध दिये जाते हैं। इन तारोंके बीचसे तार नीचे लाकर प्रेषक यंत्रसे जोड़ दिये जाते हैं। इसे टी-ऐन्टेना (T-antenna) कह सकते हैं।

मारकोनी कंपनी अब बहुधा एक विशेष

प्रकारके ऐन्टेनाका प्रयोग करती है। इसका गुण यह है कि इसके द्वारा एक विशेष दिशामें अधिक शक्तिशाली तरंगें चलती हैं। इससे समाचार भेजनेमें बड़ी सुविधा होती है। चित्र २६ में दोहरी रेखाएँ खंभे सूचित करती हैं और इकहरी रेखाएँ ऐन्टेना तार। चित्रमें स्पष्ट है कि खड़े

विविध प्रकारके ऐंटेना या हवाई तार
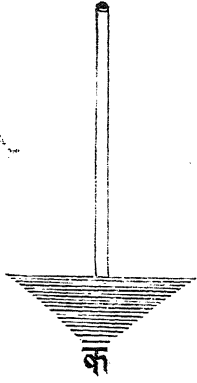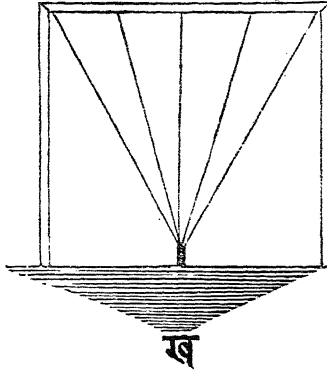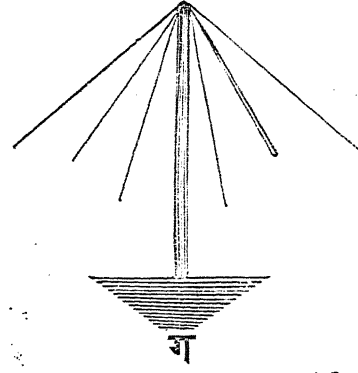
चित्र २६ चित्र २७ चित्र २८

तारोंके अतिरिक्त बहुत लम्बे लम्बे दो पड़े तार भी इस ऐन्टेनामें लगे हैं। जिधर तरंगें अधिक शक्तिशाली होती हैं वह दिशा भी चित्रमें बाणों द्वारा दिखलाई गई है।

किसी भी प्रकारका हो ऐन्टेनामें मुख्य बात यही है कि एक या एकसे अधिक तार इस प्रकार
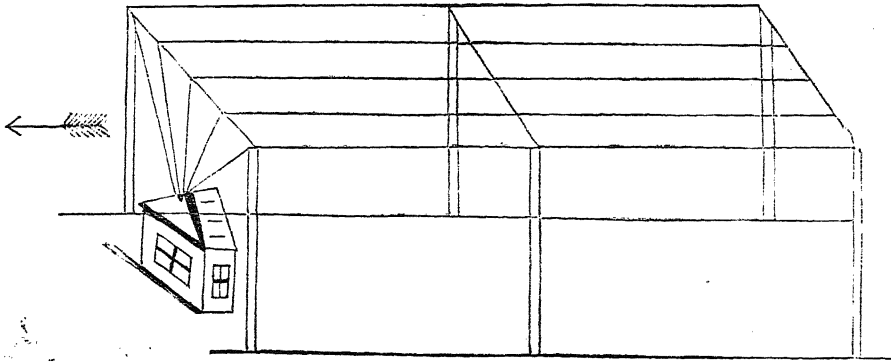
चित्र २६—मारकोनी कंपनीका दिशा विशेषमें शक्तिशाली तरंगें भेजनेवाला ऐन्टेना।

लगे हों कि उनके नीचेके सिरे तो पृथ्वीमें गड़े हुए एक धातु पत्रसे जुड़े हों और ऊपरके सिरे १५०-२०० फुट ऊंचेपर किसी खंभेसे बंधे हों। यदि इन तारोंमें किसी प्रकार उच्च आवृत्ति (high frequency) वाला विद्युत्स्पन्दन कराया जाय अर्थात् इस तारमेंके विद्युत्कणोंको यदि किसी रीतिसे दोलककी भांति ऊपर नीचे एक सैकंडमें कई बार चलाया जाय तो अवश्य ही उनमेंसे लम्बी विद्युच्चुम्बकीय तरंगें निकलेंगी और प्रकाशके वेगसे ईथर समुद्रमें फैल जायंगी।

इस स्पन्दनको उत्पन्न करनेकी अनेक विधि हैं। उनमेंसे एकका नाम चिनगारीकी विधि (spark method) है और उसीका सबसे पहिले वर्णन किया जायगा।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, एन्टेना (क) तारकी एक बेठन (ख) से जुड़ा रहता है जो लड़कीपर लपेटी हुई होती है (चित्र ३०)।

इस लकड़ी पर या इसके समीप ही दूसरी लकड़ी पर एक और बेठन (ग) होती है जिसका एक सिरा विद्युत्संग्राहक; लीडनघटके घ भीतरके पत्रसे और दूसरा सिरा चिनगारीवाली एक गोली च से जुड़ा रहता है। दूसरी गोली लीडनघटके बाहिरवाले पत्रसे जुड़ी होती है। यह दोनों गोलियां उपपादन बेठन (induction coil) नामी विद्युद् यंत्रसे भी जुड़ी होती है। इस यंत्रसे बहुत बड़े वैद्युतिकदबाववाली बिजलीका प्रवाह होता है।

यह पहिले (विज्ञान भाग ६-पृष्ठ २४८) बतलाया जा चुका है कि यदि एक लीडनघट या विद्युत्संग्राहकको पहिले विद्युन्मय किया जाय और तब बहुत थोड़े प्रतिरोधवाले अर्थात् मोटे और छोटे तारद्वारा भीतर और बाहिरके टीनोंको जोड़ दिया जाय तो बिजलीका प्रवाह एक ही दिशामें न होकर कई प्रवाहोंका समुदाय होता है जो एक-के पश्चात् एक इधरसे उधर और उधरसे उधर जाते हैं।

जब ग बेठनमें बिजली इधरसे उधर और उधरसे इधर प्रवाहित होती है तब समीपवर्त्ती बेठन ख में भी विद्युत्प्रवाह उपपादित हो जाता है। यह भी पहले लिखा जा चुका है कि फैरेडेका एक अत्यन्त विलक्षण आविष्कार यह था कि तारकी बेठनके समीप चुम्बकीय क्षेत्रमें परिवर्त्तन होनेसे बेठनमें विद्युत्प्रवाह उपपादित होता है। अर्थात् यदि किसी तारमें अन्योन्यान्तर गामी (alternating) प्रवाह हो रहा हो तो समीपवर्त्ती दूसरे तारमें भी उसी प्रकारका प्रवाह उत्पन्न हो जायगा। अतः स्पष्ट है कि लीडनघटसे जुड़ी हुई बेठनमें जो स्पन्दन होता है वह बेठन ख और ऐन्टेना क में भी अवश्य स्पन्दन
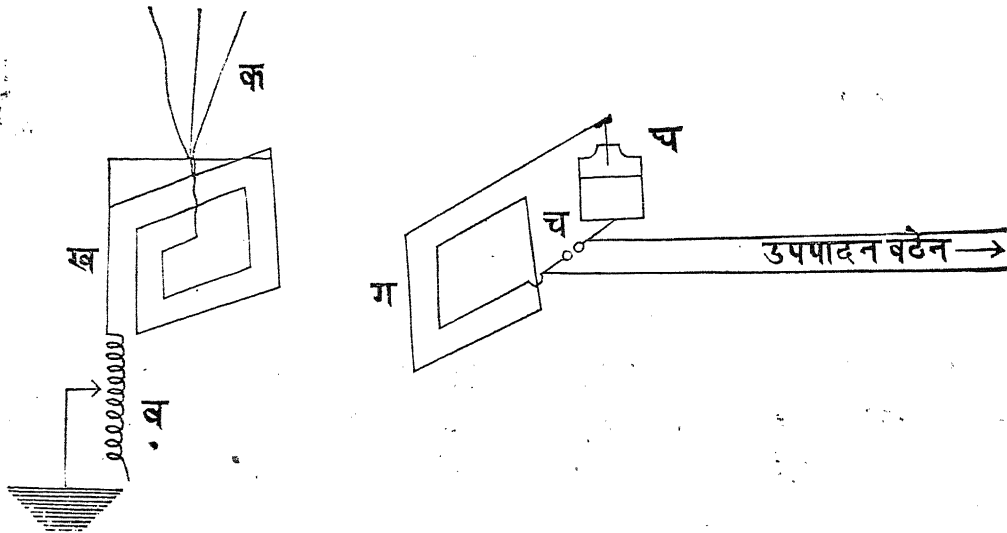
चित्र ३०

उत्पन्न कर देगा। इस प्रकार ऐन्टेनाको एक बहुत बड़ा हर्ट्ज़ीय स्पन्दक (विज्ञान भाग ७ पृष्ठ १५-१६) समझना चाहिये।

ऐन्टेनामेंका यह उच्च आवृत्तिवाला अन्योन्यान्तर गामी प्रवाह आधुनिक मतानुसार केवल विद्युत्कणोंका स्पन्दनमात्र है। और यह भी पहिले दिखलाया जा चुका है कि जब इन कणोंका स्पन्दन होता है तब इनसे सम्बन्ध रखनेवाली विद्युच्चुम्बकीय रेखाओंमें मोड़ पड़ जाते हैं और इन्हींको तरंगें कहते हैं।

इस ऐन्टेनाको तुरहीकी उपमा दी जा सकती है। जिस प्रकार तुरहीमें वायुका स्पन्दन होता है और उससे बाहिरकी वायुमें शब्द तरंगें चलती हैं ठीक उसी प्रकार ऐन्टेनामें विद्युत्कणोंका स्पन्दन होता है और उससे ईथरमें विद्युच्चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होकर चारों ओर फैल जाती हैं।

अब हमें यह बतलाना है कि इस उपरोक्त लीडनघट घ को विद्युन्मय करनेके लिए बहुत बड़ा विद्युद्वाहक बल कैसे उत्पन्न किया जाता है। सबसे साधारण रीतिमें जिसका उपयोग जहाज़ोंपर बहुत किया जाता है एक बड़ी उपपादन बेठन काममें लाई जाती है। लोहेके पतले तारके छोटे छोटे टुकड़े काट कर उन्हें इस प्रकार बांध देते हैं कि एक मोटी छड़ बन जाय। इसपर सूत लिपटे हुए मोटे तारकी बेठन लपेट दी जाती है। इसपर एबोनाइटकी एक नली चढ़ा दी जाती है और तब उसके ऊपर बहुत पतला रेशम लिपटा हुआ तांबेका तार प्रायः ८, १० मील लम्बा लपेट दिया जाता है। मोटे तारवाली पहिली बेठनके सिरे बैटरी या डाइनेमोसे जोड़ दिये जाते हैं, किन्तु बीचमें एक ऐसा यंत्र लगा दिया जाता है कि जिससे विद्युत्प्रवाह रुक रुक कर चलता है। अर्थात् पहिले ख़ूब बलवान प्रवाह होता है, फिर सहसा रुक जाता है और तब फिर चलने लगता है। यह रुकावट एक सैकंडमें ३ बार होती है। इसका परिणाम फैरेडेके उपरोक्त सिद्धान्तके अनुसार यह होता है कि पतले किन्तु लम्बे तारवाली दूसरी बेठनमें भी विद्युत्प्रवाह उपपादित हो जाता है और इसका विद्युद्वाहक बल कई सहस्र वोल्ट होता है। इसके द्वारा इस बेठनके दोनों सिरोंके बीच कई इंच लम्बी चिनगारी पैदा हो जाती है। किन्तु जब यह सिरे लीडनघटसे जोड़ दिये जाते हैं तब बिजली उस घटमें एकत्रित होती रहती है और जब बल पर्याप्त हो जाता है तब बड़ी कड़कके साथ छोटी किन्तु मोटी और बहुत चमकदार चिनगारी निकलती है और घट विसर्जित हो जाता है। इसी समय चित्र ३० के बेठन ग में विद्युत्स्पन्दन होता है।

ठीक तरहकी चिनगारी निकलनेके लिए यह आवश्यक है कि च गोलियोंके बीचका अन्तर न बहुत कम और न ज़्यादा हो। प्रायः $\frac{१}{२}$ या $\frac{३}{८}$ इंचका अंतर ठीक होता है। प्रत्येक सैकंडमें कितनी चिनगारियां निकलेंगी यह बात अवरोधक (interruption) या प्रवाहमें रुकावट उत्पन्न करनेवाले यंत्रके प्रकारपर निर्भर है, किन्तु साधारणतया एक सैकंड में १००-२०० चिनगारियोंसे कम नहीं निकलतीं।

(असमाप्त)

आकाश गङ्गा

आकाशमें दृश्यमान आश्चर्यजनक वस्तुओंमें सबसे बढ़कर नहीं तो प्रथम श्रेणीमें आकाशगङ्गा अवश्य है। कौन जाति और देश है जिसके विचारशील बुद्धिमानोंने आकाशकी ओर देखा हो और अपनी समझके अनुसार इसका एक न एक नाम न रखा हो। हिन्दुओंने अपनी सबसे प्यारी नदीके नामसे इसे याद किया तो यवन जातियोंने जिस मार्गमें घास घसीटी गई हो उसकी सादृश्यसे इसे "कहकशां" बताया। उधर श्वेतवर्ण-प्रिय पाश्चात्य

जातियोंने दूध जैसा धूसर मार्ग समझकर "मिल्की वे" नाम दिया। कहीं देवताओंकी सड़क समझी गई तो कहीं मृत जीवोंकी स्वर्गा-रोहण सीढ़ी। पुरातन लोगोंने इसे सन्तोंकी आत्माओंतक पहुंचनेकी पगडंडी समझा। और न जाने किस किसने तीतरके शब्दकी नाईं इससे क्या क्या समझा, परन्तु इस रागका सुर किसीने न पाया। अस्तु यह तो सब रही उपमान और अनुमान शक्तिके सनातन चमत्कार, देखें स्वच्छ दूरदर्शक शीशेसे बालकी खाल निकालनेमें विख्यात वर्तमान युगकी प्रमाणाधार और विश्वासस्तम्भ विज्ञानदेवीके विद्याकलाओंकी पर्वत श्रेणीमें उच्चतम शिखरस्थ विशाल मन्दिरसे इसका कैसा रूप दिखाई पड़ता है।

आकाश गङ्गाको देखनेके लिए सबसे उपयुक्त समय शरत्काल और हेमन्त ऋतुकी संध्याएँ हैं। इस समय यह आकाशमें ऊंची उठी हुई होती है और नीचस्थ नभके क्षोभसे प्रभावित नहीं होती। इसका आकार एक अनियमित विस्तृत अर्धवृत्तका सा होता है। वास्तवमें यह एक भद्दा वृत्त बनाती है, क्योंकि यह रेखा दक्षिणी अर्ध खगोलमें भी फैली हुई है। इसकी चौड़ाई ३० अंश तक फैली होती है। इसकी चमक अन्यान्य स्थानोंपर एकसी नहीं है। इसके क्षेत्रफलमें उत्तरीय अर्ध खगोलका लगभग $\frac{१}{२}$ और दक्षिणी अर्द्ध खगोलका $\frac{१}{३}$ भाग सम्मिलित है। इसकी वृत्त रेखा काशोपी और प्रजापति तारा समूहोंमें से होकर मिथुनके पैरोंऔर वृषके सींगोंके बीचमें और फिर मोनोसरोस और औरायन तारा समूहोंमें जाती है। आगे चलकर इसके नीचे लुब्धक, और मार्गमें अर्गो तारा समूह हैं।

अर्गोके आगे ही यह दक्षिणी अर्ध-खगोलमें प्रविष्ट होती है। सैंटार नक्षत्रपर पहुंचकर, बीचमें द्वीप आजानेसे नदीकी धाराकी भांति, इसकी दो शाखा हो जाती हैं, जिनके बीचमें एक तमावृत स्थान है। परन्तु यह स्थान बड़ा लम्बा है और आकाश गङ्गाके एक तिहाई मार्ग अर्थात् वृत्तके १२० अंश तक चला गया है। यह शाखाएँ उत्तरीय अर्द्ध खगोलमें राज हंस नक्षत्रके निकट फिर मिल जाती हैं। अधिक प्रकाश युक्त शाखा नोरमा (Norma), आरा (Ara), वृश्चिक और धन तारा समूहोंमें से होकर ऐटिनावसमेंसे जाती है और पुनः उत्तरीअर्द्धख गोलमें प्रवेश करती है। आगे इक्विला (Aquila) और सैगिटा और वलपिक्यूलामें से होकर फिर उस शाखासे मिल जाती है, जिससे सैंटारमें पृथक् हुई थी। राज हंस तारा समूहसे फिर दोनों शाखाएँ एक होकर लेसरटा और सेफ़यसके उत्तरसे होकर फिर काशोपीतक पहुंच जाती हैं, जहांसे आरम्भ हुई थीं।

इस मार्गमें आकाश गङ्गासे नक्षत्रों और नीहारिकाओंकी तरफ़को छोटी छोटी शाखाएँ फूटी हुई हैं। नोरमामें इससे कई रेखाएँ और धब्बोंकी श्रेणी फूटी है, जो वृश्चिकको पूंछको ढकती हुई और ओफियूकसकी टांगपर फैलती हुई आगे बढ़ जाती है। ऐसा मालूम पड़ता है मानों उत्तरीय अर्द्ध खगोलमें राजहंस समूहसे निकली हुई ऐसीही शाखासे मिलनेके लिए ही यह आगे बढ़नेका प्रयत्न कर रही है। राजहंसके पाससे फूटी हुई शाखा भी बहुत प्रकाशमान है और राजहंस और एक्विलामें होती हुई आकाशके एक अंधेरे, कम तारोंवाले भागमें, पहुंचकर अन्त हो जाती है। प्रजापतिसे एक प्रकाशमान शाखा परस्यूस तक जाती है, जहांसे आगे केवल धुंधली रेखाएं कृत्तिका और अश्लेषा नक्षत्रों तक जाती हैं और फीलरके नामसे प्रसिद्ध हैं। ऐसे ही और बहुत से फीलर हैं जो हमारे अन्वेषणमें सहायक हैं, क्योंकि उनसे उस प्रभावका पता चलता है जो आकाश गंगा समस्त नक्षत्र मण्डलपर डालती है।

और भी बहुत सी बातें हैं,जिनसे सिद्ध होता है

कि आकाश गंगाकी आकाशमें एक प्रभावोत्पादक स्थिति है। उदाहरणके लिए आकाशमें नक्षत्रों नीहारिकाओं और तारा समूहोंका स्थान इसीसे निश्चित होता है। आकाशके जिस भागमें होकर आकाश गङ्गा जाती है, उसमें विशेष विशेष प्रकारके ही तारासमूह आदि पाये जाते हैं। अन्य प्रकारके तो, प्रतीत होता है, इससे दूर ही रहते हैं। गैसीय नीहारिकाएँ आकाश गङ्गाके मार्गमें वा उसके निकट ही पाई जाती हैं, परन्तु "श्वेत" नीहारिकाएँ कुछ हटकर। गोलाकार झुंड (तारोंके) बड़ी संख्यामें इसके भीतर पाये जाते हैं। वस्तुतः तारा झुण्डोंकी क़तार इसके बीचमें बहुत दूरतक इसके विस्तारके बहुत हिस्सेमें फैली हुई है। १५० ज्ञात तारा झुण्डोंमेंसे ४० इसके भीतर ही आगये हैं। आकाश गङ्गाके अन्तर्गत ही इतने तारोंके झुण्ड क्यों पाये जाते हैं, यह प्रश्न बड़े महत्वका है, क्योंकि इससे तारा झुण्डों और श्वेत नीहारिकाओंका, जो आकाश गङ्गासे दूर ही रहती हैं, वास्तविक सम्बन्ध समझमें आता है। कभी कभी नये तारे आकाश गङ्गामें चमकने लगते हैं, जिससे अनुमान होता है कि अन्धकारमय तारोंको प्रकाश प्रदान करनेकी शक्ति इसीमें है। लाल तारे, गैसीय तारे, नश्वर अस्थायी तारे—यह सब आकाश गङ्गाकी विशेषताएँ हैं।

आकाश गङ्गाविषयक नूतन और प्राचीन सिद्धान्त

आकाश गङ्गाके संबंधमें अनेक समयोंमें नये नये सिद्धान्त प्रचलित रहे हैं। एनेक्सेगोरसका विचार था कि यह हमारी पृथिवीकी छाया है। अरस्तूका मत था कि पृथिवीसे निकलनेवाली वाष्पसे यह बनती है। परन्तु पृथिवीसे इसके बहुत दूर होने और पृथिवीसे इसके अस्तित्वके कोई सम्बन्ध न होनेके विषयमें बड़ा और युक्त सिद्धांत आरम्भमें ही बन गया था। पायथागोरस और डिमोक्रेटस दोनोंकी धारणा थी कि इसकी चमक असंख्य दूरवर्ती तारोंके संगठनसे उत्पन्न होती है और १६६७ वि० में गैलिलियोके दूरदर्शक यंत्रने इस सिद्धांतको ठीक प्रमाणित कर दिया।

हम देख चुके हैं कि आकाश गंगा तारोंका एक सीधा सादा मार्ग नहीं है। जब चन्द्र विद्यमान हो तो ध्यानपूर्वक निर्मल आकाशमें देखनेसे खाली आंखको भी इसके विस्तारमें अनियमितता प्रतीत होती है। सामान्यतः इसका आकार एक वृक्षके सदृश है, जिसमें शाखा प्रतिशाखा फूटी हुई हैं, परन्तु विशेष ध्यानसे देखनेपर कहीं तमके विस्तृत धब्बों और कहीं तारोंकी लम्बी रेखाओंसे इस आकारमें विक्षेप पड़ जाता है।

आकाश गंगामें विचित्र दरारें।

आकाश गङ्गामें भी रचनाकी वह सब विलक्षणताएँ दीख पड़ती हैं, जो तारा गुच्छकों और नीहारिकाओंमें होती हैं, जैसे तारोंकी लैनें, तमयुक्त दरारें और तमयुक्त छेद (गुहा)। तारागणोंकी रेखाएं जो किसी भौतिक सम्बन्धके कारण जुड़ी प्रतीत होती हैं, कभी लम्बी कभी सीधी और कभी गोलाई लिये हुए प्रतीत होती हैं। धन नक्षत्रके निकट चिमटेके आकारका एक तारा समूह है, जिसमें सिरेपर एक हुक सा लगा प्रतीत होता है। आकाश गङ्गाकी दरारें भी तारा गुच्छकोंकी दरारोंकी नाईं विचित्र आकारकी होती हैं। कहींपर दरारें समानान्तर होती हैं, कहीं एक केन्द्रसे चारों ओर फैलती हुई दिखाई पड़ती हैं, कहीं उनके दोनों किनारोंपर तारे जड़े हुए होते हैं, कहीं बिलकुल तमोमय होती हैं और कहीं धीमे प्रकाशमय, जैसे तारोंकी बुकनी उनपर मलदी गई हो। कहीं कहीं चमकते हुए भागमें ऐसा छिद्र दिखाई देता है, जैसा तालोंमें कुंजी लगानेका होता है। इनमें सबसे बड़ा छिद्र दक्षिणी क्रौस नामक तारा-समूहके पास है और (कोयलेका बोरा) कोलसेक के नामसे प्रसिद्ध है। संतारसे आगे जहां आकाश गङ्गाकी दोनों दक्षिणी शाखाएं मिली हैं, वह चौड़ी हो जाती है; और बहुत से चमकीले तारोंसे जड़ी हुई प्रतात होती है, और

यही आकाश गङ्गाका सबसे अधिक प्रकाश युक्त भाग है। इस तारा-समूहके ठीक बीचमें दक्षिणीय क्रौसके चार तारोंके पास ही एक नासपातीके आकारका छिद्र है। इसीको कोल-सेक अर्थात् कोयलोंका बोरा कहते हैं। कई बार प्रयत्न किया गया है कि इसकी व्याख्या इसे दृष्टि-विभ्रम (optical illusion) मानकर की जाय, परन्तु उसकी स्पष्ट आकृति, वृहत् आकार, उसका पूर्णतम और उसके किनारोंकी चमक देखकर उसे दृष्टि-विभ्रम मानना निरा भ्रम है। आकाशमें यह अकेला नहीं है, इसके सदृश और भी कई हैं, जिनमेंसे एकका वर्णन बर्नार्ड महाशयने किया है, जो धन राशिमें है।

इसके आगे चलकर एक और अवकाश अरगोमें है, जहां आकाशगङ्गा पंखेके सदृश चौड़ी हो गई है। सबसे अधिक चौड़े स्थानपर एक बड़ी चौड़ी दरार है, जिसकी दोनों ओर आकाशगङ्गाकी आकृति पंजेकी सी है, जिससे जान पड़ता है कि उसके टुकड़े किसी महान शक्तिने कर दिये हैं और दोनों तरफ़के भाग फिर मिलनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इन तमोमय रिक्त स्थानों–दरारों और छिद्रों–को देखकर जान पड़ता है कि अकाशगङ्गाके अन्दर कोई महान विनाशक शक्ति काम कर रही है, जिसका परिणाम शायद यह हो कि यह प्रकाश पूर्ण पथ छिन्न भिन्न हो जाय। नीहारिकात्मक शाखाएँ, जो आकाशगङ्गासे निकलकर तारों और तारा-गुच्छकोंकी तरफ़ जाती दिखाई पड़ती हैं, वहुत अद्भुत और मनोहारी हैं। उनका रहस्य खुल जानेपर हमारा खगोल विषयक ज्ञान और भी विस्तृत हो जायगा।

आकाशगङ्गाके विषयमें एक और महत्वकी बात है। वह यह है कि प्रकाशयुक्त तारे इसके बीचकी ओर अधिक संख्यामें मौजूद हैं। सर वि० हर्शलके अनुसार आकाशगङ्गाके ध्रुवोंकी अपेक्षा, मध्य रेखाके आसपास तारोंकी संख्या तीस गुनीसे अधिक है।

बीचमें अधिक तारोंके होनेका कारण

उपरोक्त बात दश उत्तरीय अधिक चमकीले तारोंकी स्थितिसे पुष्ट होती है। इनमें तीन अर्थात् ब्रह्म-हृदय, (Capella) श्रवण (Altair) और उत्तरा फाल्गुणी (Deneb) आकाशगङ्गाकी मध्य रेखापर ही स्थित हैं; चार अर्थात अभिजित (Vega) लघुश्वान (Procyon or lesser Dog-Star) बीटिलगिक्स (Betelgeux) और रोहिणी (Aldebaran) आकाशगङ्गाके किनारेपर स्थित हैं। केवल दो मघा (Regulus) और स्वाति (Arcturus) कुछ अन्तरपर हैं।

क्या नक्षत्र मण्डलकी रचना किसी कल्पना विशेषके अनुसार हुई है?

ऊपर दिये हुए नियमसे जान पड़ता है कि नक्षत्रमण्डलकी रचना कल्पना-विशेषके अनुसार हुई है, जिसमें आकाशगङ्गाका स्थान बड़े महत्वका है। इसी विशिष्टताका एक प्रमाण नीहारिकाओंकी व्यूह रचना है, क्योंकि उनकी कथा तारोंसे बिलकुल विपरीत है। नीहारिकाएँ आकाशके दो प्रांतोंमें हा विशेषतः मिलती हैं। आकाशका एक बड़ा प्रांत, जिसके मध्यमें आकाशगंगा है, नीहारिकाओंसे खाली है। आकाशगंगाकी दोनों ओर वहुत दूरीपर नीहारिकाओंके प्रांत दो वितानोंकी तरह स्थित हैं।

[असमाप्त]

समालोचना

सरल चिकित्सा अथवा अनुभूत योग माला— ले० राजवैद्य किशोरीदत्त शास्त्री, कानपुर। पृष्ठ संख्या ९६। आकार डबल क्रौन १६ पेजी। मूल्य ॥) । लेखकसे प्राप्य।

इस पुस्तकमें मामूली तौरपर होनेवाले सभी रोगोंकी चिकित्सा दी हुई है। प्रत्येक रोगके लिए कई दवाइयोंके नुसखे दिये हैं। नुसखेके नीचे, विधि, मात्रा, समय, अनुपान और जिस रोगीको

General साधारण]

देना चाहिये उसके लक्षण, दिये हैं। पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ जाती यदि प्रत्येक रोगके विषयमें थोड़ा बहुत ज्ञान करानेका प्रयत्न किया जाता। रोगियों और उनकी परिचर्या करनेवालों-के लिए भी कुछ आवश्यक बातें देना आवश्यक था।

किस रोगके लिए कौनसे नुसख़े दिये हैं, इसका पता भी विषय सूचीसे ही चलता है। ग्रन्थकारने पुस्तकमें यह बतलानेका भी कष्ट नहीं किया। कदाचित् विषय सूची फट जाय तो पुस्तकको आद्योपान्त पढ़े बिना किसी नुसख़ेका मिलना भी कठिन है।

परिशिष्टमें परिभाषा देनेका बहाना केवल पाठकोंको भुलावेमें डालनेको किया है। परिभाषा देनेकी प्रतिज्ञा अवश्य कर दी है। ज्ञातव्य विषयमें क्षारको एसिड लिखा है। यदि अंग्रेज़ी शब्द ठीक नहीं मालूम था तो उसको कोष्टकमें देनेकी कौन आवश्यकता थी। शोधनकी विधि अच्छी दी है।

ऊपर लिखी हुई कुछ त्रुटियां रहने पर भी पुस्तक बहुत उपयोगी है और उससे प्रत्येक गृहस्थको लाभ उठाना चाहिये। लेखक महोदयको चाहिये कि ऐसी ही चार पांच पुस्तकें वैद्यकपर प्रकाशित करें, जिसमें सर्वसाधारण आयुर्वेदसे अधिक लाभ उठा सकें। परन्तु मूल्य कम रखें। १०० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।) या ।–) से अधिक न होना चाहिये।

गृह वस्तु चिकित्सा—ले० राजवैद्य, किशोरीदत्त शास्त्री, कानपुर। पृष्ठ संख्या १०२। मूल्य ॥)।

इस पुस्तकमें वैद्यजीने यह दिखलाया है कि मामूली रोज़मर्राके बर्तनेकी चीज़ोंसे भी कितने रोग शान्त किये जासकते हैं, पर उपेक्षा है जाननेवालेकी। इस पुस्तकको पढ़कर ज़रूरतके वक्त मामूली चीज़ोंसे ही मारकेका काम निकाल सकते हैं। पुस्तक लेखकके परिश्रम और विद्वत्ताका फलस्वरूप है, जिसका आस्वादनकर प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमीको लाभ उठाना उचित है।

शान्तदायी विचार—रचयिता और प्रकाशक–शिवकुमार शास्त्री, सम्पादक 'ज्ञानशक्ति' गोरखपुर। डबल क्रौन सोलह पेजी। मूल्य ॥), लेखकसे प्राप्य।

पुस्तकमें निस्सन्देह ऐसे विचार प्रकट किये गये हैं कि अशान्त और मायाजालमें फँसे हुए, चक्कर खाते हुए हृदयको शान्ति प्रदान कर सकते हैं। पुस्तक बड़ी मधुर और सुललित भाषामें लिखी गई है। पुस्तकके लिखनेका ढँग ऐसा है मानों गुरू अपने शिष्योंको उपदेश दे रहा हो। यह ढँग कुछ बुरा नहीं है, परन्तु पाठकोंको अधिक आदरसे सम्बोधन करना चाहिये। दूसरे तर्ककी दृष्टिसे पुस्तकमें अनेक स्थानोंपर युक्तियां और विषय प्रतिपादन शैली दोषयुक्त है। पृष्ठ ३६ पर ईश्वर, प्रेम और पदार्थोंकी पारस्परिक युयुत्सा की लेखकने अद्भुत खिचड़ी पकाई है। ऐसी उपमा देनेसे क्या लाभ। इसी प्रकार पृष्ठ ४० पर पृथ्वीके गोल होने और प्रेम करनेवाले पर प्रेमकी वृष्टि होती है, इन दोनों बातोंमें क्या सम्बन्ध है, यह लेखक महोदय ही जानें। इसी प्रकार 'अमर होनेके उपाय' जो बतलाये गये हैं, वह भी लचर जान पड़ते हैं। मरना प्राकृतिक घटना है, प्रत्येक प्राणीका मरना आवश्यक है, अन्यथा प्रकृतिके समस्त नियम झूठे ठहरें। सृष्टिके आदिसे आजतक तो कोई इस नश्वर देहसे अमर हुआ नहीं, अब शायद शास्त्रीजी कोई नई तरकीब निकालें तो वस्तुतः संसारका बड़ा उपकार होगा।

पहले ही पृष्ठ पर आपका कथन है कि आश्चर्य यह है कि ईश्वरके माननेवाले बहुत हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रथम तो ईश्वरके माननेवाले इस संसारमें बहुत कम इने गिने हैं। दूसरे जो बहुत से आदमी ईश्वरको माननेवाले दिखाई देते हैं, उसका कारण यह है कि दुर्बल आत्मावाले मनुष्योंकी संख्या अपरमित है? दुर्बल आत्मा ही आवश्यकता होनेपर सहारा ढूंढ़ती है। उसी सहारेका नाम ईश्वर रख छोड़ा है। वास्तविक विश्वास बहुत कम

प्राणियोंका है। यदि संसारमें ईश्वरके मानने-वाले इतने ज़्यादा होते जितने शास्त्रीजीके कथनानुसार हैं, तो संसारकी आज दशा ही कुछ और होती।

हमारे एक वेदान्ती मित्र कहा करते थे कि जिसने तर्क करना सीख लिया उसकी बुद्धि १०० जन्ममें शुद्ध होती है। अतएव अपने मित्रका कथन याद करके हमें कहना पड़ता है कि पुस्तकके मनन करनेसे जो शान्ति मिल सकती है उसका संचय करो, तर्क वितर्कका पीछा छोड़ो।

सुनीति धर्म शिक्षा—लेखक हरसुखराय छाव छरिया। मूल्य ॥)। हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्तासे प्राप्य।

पुस्तक बालकोंको आचार, विचार और शिष्टाचार सिखलाने तथा उन्हें आर्य धर्मका आरम्भिक ज्ञान करानेके लिए अत्यन्त उपयोगी है।

जीवन मीमांसा—अनुवादक डा० नन्दकिशोर बी-ए., एम. बी. तथा गणपतराय सकसेना, बी.ए.,। अनुवाद कर्ता से नबावगंज कानपुरसे प्राप्य। पृष्ठ संख्या ८०। मूल्य ।)

यह पुस्तक श्रीमती एनी बीसेन्टकी 'रिडिल ओफ़लैफ़का' अनुवाद है। मूल पुस्तकके लिए तो इतना कहना भर काफ़ी है कि श्रीमती एनीबीसेंट की लिखी हुई है। अनुवाद अच्छा हुआ है। थियोसाफ़ी या अध्यात्म विद्याके प्रेमियोंको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। धर्मके प्यासेको तो यह अमृत पानका सा फल देगी। धर्म शिक्षासे वञ्चित नवयुवकोंको इसके पढ़नेसे धर्मका मर्म समझमें आ जायगा।

कृषिज्ञान—श्री शशिभूषण सामन्त प्रणीत, नं० ६ मुरारी पोखर रोड, कलकत्तासे प्राप्य। मूल्य ॥)।

खेतकी गुड़ाई, जुताई खादडालना, सिंचाई आदि कृषि सम्बन्धी सभी बातें इसमें दी हैं। लगभग ५० तरकारियोंकी खेती करनेके विषयमें जानने योग्य समस्त बातें दी हुई हैं। जो लोग ख़ाली तरकारियां ही अपने खेतों में पैदा करते हैं, उनके लिए यह पुस्तक अधिक उपयोगी है।

कृषि विद्या भाग ६—ले० पं० गंगाशंकर पचौली भरतपुर। मूल्य ≈)। लेखकसे प्राप्य।

इस पुस्तकमें संकरीकरण, पैवन्द लगाना और क़लम चढ़ाना अच्छी तरह बतलाया गया है। इस विषयकी हिन्दीमें यही एक पुस्तक है। बाग़ोंके मालियोंके बड़े कामकी है। वनस्पति शास्त्र पढ़नेवाले भी इसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं।

शिक्षापयोधि—ले० विद्यार्थी गुरु प्रसाद। विद्या प्रचारक पुस्तकालय, सरसौड़ी, शिवपुर, बनारससे प्राप्य। मूल्य ।)। पृष्ठ संख्या १०६।

यह छोटी सी पुस्तक बालकोंके लिए बहुत उपयोगी है। अच्छी अच्छी कामकी बातें और आचार विचार तथा शिष्टाचारके नियम इसमें बतलाये गये हैं।

प्रेक्टिकेल फोटोग्रेफ़ी—ले० हरि गुलाम ठाकुर मैनेजर दी फाइन आर्ट फोटो ग्राफ़िक स्टूडियो गोरखपुर। लेखकसे प्राप्य। मूल्य २)

यह पुस्तक क्रियात्मक दृष्टिसे लिखी गई है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। फोटोग्राफीके विषयमें जानने योग्य सभी बातोंका इसमें समावेश है।

कविता कौमदी—ले० पं० रामनरेश त्रिपाठी, अध्यक्ष साहित्य भवन प्रयाग। क्रौन अठपेजी, पृष्ठ संख्या ४६२। मूल्य २) साहित्य भवन, प्रयाग से प्रप्य।

किसी भाषाके कवियोंके सब ग्रन्थोंका अवलोकन और अध्ययन करना किसी विरले ही मनुष्यका काम है। यह काम केवल वही लोग कर सकते हैं, जो अपना जीवन उसके अर्पण कर देते हैं। ऐसे ही कुछ पुण्यशील पुरुषोंमें हमारे मित्र पं० रामनरेश त्रिपाठी हैं। आप स्वयम् ही कवि नहीं हैं, किन्तु बहुत दिनोंसे पुराने कवियोंके ग्रन्थोंका अध्ययन करते आये हैं। उसीका परिणाम रूप प्रस्तुत ग्रन्थ है, जिसमें ८९ कवियोंकी सूक्ष्म जीवनी और उनकी कविताओंके नमूने दिये हैं। अन्तमें अनेक कवियोंकी कविताओंका संग्रह 'कविता कुञ्ज' शीर्षकमें दिया है। यह तो हम

नहीं कह सकते कि कवियोंके सर्वोत्तम पद्योंका समावेश इस ग्रन्थमें है, क्योंकि इसके लिए यह आवश्यक है कि समालोचक स्वयम् उनके ग्रन्थोंका पण्डित हो, परन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि जो कविताएं बहुत विख्यात हैं, वह सब इसमें आ गई हैं।

जो लोग साहित्यके प्रेमी हैं, पर अधिक समय नहीं लगा सकते, उनके लिए यह संग्रह बड़ा उपयोगी होगा। अंग्रेज़ी पढ़नेवाले और काम काजी मनुष्य इसको पढ़ कर हिन्दी कविताका अपूर्व रस आस्वादन कर सकते हैं।

यद्यपि इस ग्रन्थमें शृङ्गार रस विषयक कविताओंकी प्रधानता है, जिससे थोड़ी उम्रवाले विद्यार्थियोंके पढ़नेके उपयुक्त नहीं कहा जा सकता, तथापि इसमें अन्य रसात्मक कविताओंकी कमी नहीं है।

कुछ वर्ष पहले हिन्दी कवियोंके संग्रह काशीसे निकले थे, परन्तु अब वह अप्राप्य हैं। प्रयागसे हालमें धर्म सम्बन्धी कविताओंका अच्छा संग्रह (संतबानी संग्रह) निकला है, पर यदि सर्वांगपूर्ण कोई संग्रह है, तो समालोच्य ग्रन्थ ही है।

हमें पूर्ण आशा है कि इससे साहित्य प्रेमी उचित लाभ उठायेंगे और उसका उचित आदर करेंगे।

उपवास चिकित्सा—ले० श्री० रामचन्द्र वर्मा। प्रकाशक श्री० नाथूराम प्रेमी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीराबाग़ गिरगांव, बम्बई। मूल्य ॥।) क्रौन अठपेजी, पृष्ठ संख्या १३६। प्रकाशक से प्राप्य।

यह पुस्तक डाक्टर मादनकी अपवास नामक गुजराती पुस्तक और डाक्टर मैकफ़ेडनकी एक अंग्रेज़ी पुस्तककी सहायतासे लिखी गई है। पुस्तककी भाषा अच्छी है। विषय भी रोचक और उपयोगी है। इस विषयकी यह हिन्दीमें एक ही पुस्तक है। प्रकाशकने इस पुस्तकको लिखवाकर प्रकाशित कराया, इसके लिए वह धन्यवादके पात्र हैं। परन्तु इतना हम कह देना चाहते हैं कि जब तक किसी विषयसे विशेष जान कारी और परिचय न हो तब तक उसपर क़लम उठाना अनुचित प्रतीत होता है। इस बातके प्रमाणमें इस पुस्तकमें दिये हुए अनेक असत्य कथन और अत्युक्तियां हैं। लेखकको उचित था कि जिन विषयोंका समावेश इस पुस्तकमें है उनपर और अधिक अध्ययन कर लेते। लेखकने ओषधियोंके उपयोग और कीटाणुशास्त्रका मज़ाक उड़ाया है और इस प्रकार हज़ारों परिश्रमी और परोपकारी सज्जनोंका जन्म भरकी मेहनतपर पानी फेर दिया है। मानाकि अबतक ओषधियोंके गुण दोष और प्रभावका जो कुछ ज्ञान मनुष्यको था वह केवल अनुभवजन्य था। परन्तु जितना भी मनुष्यका ज्ञान है उस सबका मूलाधार अनुभव ही है। फिर अनुभव-जन्य ज्ञानका इतना तिरस्कार क्यों? आजकल तो ऐसे साधन वर्तमान हैं, जिनसे ओषधियोंके प्रभावका ठीक ठीक पता चल जाता है। अब ओषधियोंका अध्ययन सच्ची वैज्ञानिक विधिसे होने लगा है और आशा है कि पाश्चात्य और भारतीय आयुर्वेदकी नींव भविष्यमें विज्ञानकी साक्षीसे और सुदृढ हो जायगी। मसेहरी लगानेवालोंका भी मज़ाक लेखकने उड़ाया है और मच्छड़ोंके दूर करनेका सबसे सहज उपाय बताया है "बढ़िया, ठँडी और तेज़ हवा," परन्तु लेखकने यह न बतलाया कि बढ़ियासे क्या तात्पर्य्य है? यदि हवा ठंडी हो तो कितनी ठंडी हो और तेज़ हो तो कितनी तेज़। दूसरे ठंडी और तेज़ हवा न चलती हो तब क्या उपाय किया जाय। यह भी लेखक महाशय ने बतलानेकी कृपा न की।

शरीर विज्ञान—ले० राज्य रत्न श्री आत्मारामजी अमृतसरी, एजूकेशनल इन्स्पेक्टर बड़ौदा। प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स। पृष्ठ संख्या ३८+२४। मूल्य।≈)।

इस पुस्तकमें यजुर्वेद के पच्चीसवें अध्यायके

एक मंत्रकी व्याख्या की है। व्याख्याके साथ साथ और भी इधर उधरकी उपयोगी बातें दी हैं। भाषा अच्छी है, परन्तु पंजाबी हिंदी है, जैसा कि नीचेके दो एक वाक्योंसे स्पष्ट हो जायगा। "हमने एक भवनकी सैर करनी है। भवनको ताला लग रहा है"। लेखकने इस बात के सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वेद शल्यकर्मके प्रेरक हैं। ईश्वर जाने प्रेरक शब्दपर लेखक महोदय इतने क्यों मुग्ध हैं। प्रेरकसे उनका क्या अभिप्राय है, यह भी स्पष्ट नहीं। उपरोक्त मंत्रमें केवल शरीरके वाह्य तथा आन्तरिक कुछ अवयवोंका वर्णन है। वह अवश्य ऐसे हैं कि उनका ज्ञान और उनका धर्म बर्बरोंको भी मालूम होगा। छोटी आंत, बड़ी आंत, मूत्राशय आदि अंगोंका होना वह सब जातियां जानती हैं, जो जानवरोंको मार मार खाया करती हैं या जो जानवरोंको मरते देखती हैं। अतएव इन अंगोंका वेदमें उल्लेख होने से वेदका महत्व नहीं बढ़ता। न यही सिद्ध होता है कि "विद्यार्थी जब जब इन मंत्रोंके अर्थोंको साक्षात करते होंगे तब तब यह मानवी मृत शरीर को चीर फाड़कर देखते होंगे"। यदि कहीं वेदमें ऐसा आदेश होता कि "जाओ मृत शरीरको चीरो और अपना ज्ञान बढ़ाओ" तो दूसरी बात थी। इस पुस्तक की भूमिकामें तो लेखक महोदय ने कमाल ही कर दिया है। आपने बिचारे रसायन शास्त्रकी मिट्टी किरकिरी की है। आज कल वह ज़माना नहीं कि हर कोई हर एक विषयमें टांग अड़ाने लगे। आजकल तो एक विषय क्या उसकी एक शाखा विशेषका भी आजन्म अध्ययन करनेपर पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना कठिन ही नहीं, असम्भव है। यदि लेखक महोदयको रसायन शास्त्रसे इतना प्रेम है तो सब काम छोड़ उसी के अनुशीलनमें क्यों नहीं लग जाते और संसारमें जो अज्ञानरूपी अन्धकार छाया हुआ है उसके दूर करने की चेष्टा क्यों नहीं करते। आपने जो पृष्ठ ७ पर युक्तियां दी हैं उनका उत्तर रसायन शास्त्रका आरम्भ करनेवाला भी दे सकता है। अतएव उनपर विचार करना व्यर्थ विस्तार करना है। लेखक महोदयसे हमारी प्रार्थना है कि ऐसी युक्तियोंसे भविष्यमें काम न लें।

वास्तवमें डाक्टर देसाई सराहने योग्य हैं, जिन्होंने इस भूमिकाके प्रकाशनके लिए परामर्शस्वरूप उत्तेजना दी।

छायादर्शन—ले० श्रीयुत काली प्रसाद विद्यासागर, सी. आई. ई. अनुवाद कर्ता श्री पं० शिवसहाय चतुर्वेदी-प्रकाशक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी अध्यक्ष हिन्दी ग्रन्थरत्नाकार्य्यालय बम्बई। क्रौन अठपेजी, पृष्ठ संख्या २०० प्रकाशक से प्राप्य। मूल्य १॥=)

इस पुस्तकका विषय रोचक है। भाषा अच्छी है और शैली भी विश्वासोत्पादक है। विषय विचारणीय है। जो लोग कि आत्मा अस्तित्वमें विश्वास नहीं करते उनको इस पुस्तक का अवश्य मनन करना चाहिये। इससे यातो उन्हें आत्मामें विश्वास ही आने लगेगा, नहीं तो कमसे कम रोचक घटनाओंके पढ़नेका आनन्द मिल जायगा। पुस्तककी छपाई सफ़ाई आदि सभी बातें सराहनीय हैं।

स्वार्थ—संपादक प्रोफ़ेसर जीवनशंकर याज्ञिक एम. ए., एल-एल. बी.। प्रकाशक ज्ञानमंडल काशी। वार्षिक मूल्य ४)।

इस मासिक पत्रका प्रथमाङ्क धनतेरसको प्रकाशित हुआ है। इसमें छः लेख हैं। लेख सभी रोचक और शुद्ध भाषामें लिखे गये हैं और सभी उच्च कोटिके हैं। हमें आशा है कि भविष्यमें भी ऐसे ही उपयोगी, रोचक और मननयोग्य विषयोंपर लेख निकला करेंगे और यह पत्र सदा मातृभाषा हिन्दीकी सेवा करता रहेगा।

इह पत्रमें अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति तथा इतिहास विषयक लेख रहा करेंगे।

प्रकाशक—पं॰ सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५६ | | Reg. No. A-708
भाग १० | वृश्चिक १९७६ । नवम्बर १९१९ | संख्या २
Vol. X | | No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग १० } वृश्चिक, संवत् १९७६। नवम्बर, सन् १९१९। { संख्या २

मंगलाचरण

जय भुवि मंगल, जय नभ मंगल जय भुवि नभग सुभग जग मंगल
जय जल मंगल, जय थल मंगल जय जल-पटल, अटल नग मंगल
जय तृण मंगल, जय तरु मंगल जय मरु मरुत सरित सर मंगल
जय धन मंगल, जय जन मंगल उपवन, भवन, विपिन-वर मंगल
जय अणु मंगल, जय कण मंगल जय अनगणित, कनक, मणि मंगल
जय नर मंगल, जय त्रिय मंगल जय प्रिय प्रणय प्रणत प्राणि मंगल
जय कलि मंगल, जय मल मंगल कलिमल-जनित, प्रकृति-थिति मंगल
जय कृति मंगल, जय धृति मंगल जय कृति-विकृति-विहित इति मंगल

श्री पद्मकोट, }
२९-८-७६ }

—श्रीधर पाठक

जल-पटल=बादल ; नग=पहाड़ ; प्राणि=प्राणीजन ; कृति=सृष्टि ; धृति=स्थिति ; इति=प्रलय।

तार रहित प्रेषकयंत्र और तार रहित समाचार भेजनेकी विधि

[ले —प्रो० निहालकरण सेठी, एम-एस. सी.,]

(गताङ्कसे आगे)

समाचार भेजनेके लिए उपपादन बेठनकी प्रथम बेठनके साथ एक कुंजी अवश्य जोड़नी पड़ती है। प्रेषक जब जब उस कुंजीको दबाता है तब तब चिनगारियां निकलती हैं। एक बार जल्दीसे दबाकर छोड़ देनेसे ही प्रायः ५-६ बार लीडनघटका विसर्जन होता है और प्रायः $\frac{१}{१०}$ सैकंडतक चिनगारियां निकलती हैं। फल यह होता है कि प्रत्येक चिनगारीके साथ ऐन्टेनामें भी स्पन्दन होता है और प्रायः ५-६ तरंग समूह वहांसे चल पड़ते हैं। प्रत्येक तरंग समूहमें १० से २० तक तरंगें बहुधा होती हैं। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि यह तरंग समूह हीयमान होते हैं। यह मार्स-संकेतका विन्दु हुआ। (चित्र ३१-क)

किन्तु यदि प्रेषक कुंजीको कुछ देरतक, प्रायः विन्दुसे तीन गुने समयतक, दबाये रहे तो तरंग समूहोंकी संख्या उतनी ही अधिक हो जायगी। यह रेखाका संकेत हुआ। (चित्र ३१-ख)

यह स्पष्ट है कि प्रेषक यंत्रका सब सामान जहाज़की एक कोठरीमें एक छोटी सी मेज़पर रखा जा सकता है। ऐन्टेनाका नीचेका सिरा इसी कोठरीमें पहुंचा दिया जाता है। डाईनेमो तो अंजनकी कोठरीमें लगा ही रहता है। बड़े बड़े जहाज़ोंमें उपपादन बेठनमें जो विद्युत् धारा भेजी जाती है वह अन्योन्यान्तर गामिनी होती है और उसकी आवृत्ति प्रायः ३००-४०० होती है। अर्थात् प्रत्येक सैकंडमें धारा प्रायः ६०० से ८०० बार तक दिशा परिवर्तन करती है। इस दशामें अवरोधककी कोई आवश्यकता नहीं होती। इसके विशेष लाभ आगे चल कर ज्ञात होंगे।

यहां यह कह देना भी अनुचित न होगा कि ऊपर प्रेषक यंत्रमें दो बेठनोंका प्रयोग बतलाया गया है। एक तो ऐन्टेनासे जुड़ी रहती है और दूसरी लीडनघटसे* किन्तु इन दो बेठनोंका काम
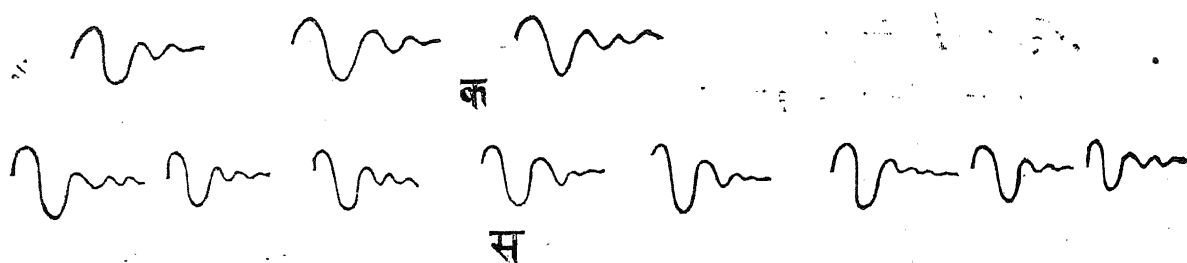
चित्र ३१—क, विन्दुका संकेत। ख, रेखाका संकेत।

एक ही बेठनसे भी चल सकता है। यदि ग को हटा दिया जाय और लीडनघटकी बेठन ख के तारसे एक स्थानपर और चिनगारीवाली गोलीको उसके पास ही दूसरे स्थानपर जोड़ दिया जाय तब ख के ही कुछ भागमेंसे लीडनघटका विसर्जन हो जायगा और बाकीके भागमें ठीक पहिलेकी भांति अब भी उपपादन हो जायगा। [चित्र ३२ देखिये]

किन्तु ऊपर समाचार भेजनेकी जो विधि बतलाई गई है और इस कार्यके लिए यंत्रोंका जो

* देखिये चित्र ३०, पृष्ठ ४० पर

वर्णन किया गया है उससे यह पता नहीं चलता कि व्यवहारमें लाने पर उसमें क्या क्या कठिनाइयां उपस्थित होंगी। अब संक्षेपमें कुछ कठिनाइयोंका उल्लेख किया जायगा और उन्हें दूर करनेके उपाय भी बतलाये जायंगे।
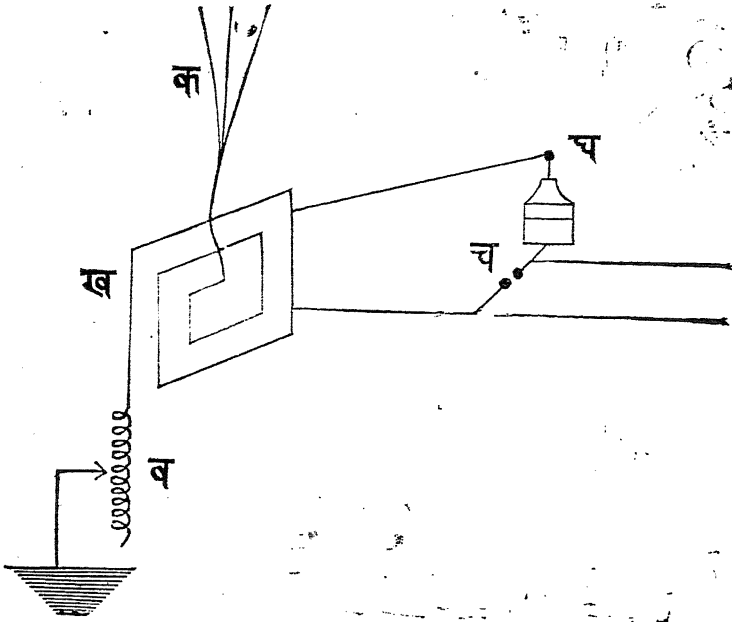
चित्र ३२—क, ऐण्टेना। ख, तारकी वेठन। घ, विद्युत्-संग्राहक। च, चिनगारी पैदा करनेकी गोलियां।

सबसे प्रथम कठिनाई तो यह है कि जिस नियमके अनुसार लीडनघटमेंका विद्युत्स्पन्दन ऐन्टेना और उससे जुड़ी हुई वेठनमें भी स्पन्दन उपपादित कर देता है उसी नियमसे ऐन्टेना और तत्सम्बंधी वेठनमेंका स्पन्दन पुनः लीडनघट-वाले चक्रमें विद्युत्स्पन्दन उपपादित करता है। इसका परिणाम यह होता है कि लीडनघट और ऐन्टेना दोनोंमें दो प्रकारके दो पृथक् पृथक् आवृत्ति-वाले स्पन्दन होते हैं और इस कारण ऐन्टेनामें से दो पृथक् पृथक् तरंगान्तरवाली तरंगें निकलती हैं। अर्थात् जितनी तरंगें ऐन्टेना भेजता है उन सबकी लम्बाई बराबर न होकर उनमेंसे कुछ लम्बी और कुछ ज़रा छोटी होती हैं। यह बात ज़रा जटिल अवश्य है किन्तु नीचे लिखी हुई उपमाके द्वारा उसे समझनेमें कोई विशेष कठिनाई न होगी।

कमरेमें आमने सामनेकी दीवारोंकी दो खूंटियों-से एक रस्सी बांध कर उससे बराबर लंबाईवाली दो और रस्सियां इस प्रकार लटका दो कि उनमें प्रायः एक गज़का अन्तर रहे। तब इन दोनों रस्सियोंसे एक एक भारी बोझा लटका दो ताकि यह दोनों समान लम्बाईके और इस कारण समान अनुकालिक समय (period) के दोलक (pendulum) बन जायं। इनमेंसे एक बोझेको अब यदि थोड़ा सा ऊपरवाली रस्सीसे तिर्यक् (transverse) दिशामें खींचकर छोड़ दो तो वह दोलक की भांति स्पन्दन करेगा। किन्तु इस स्पन्दनके कारण ऊपरवाली रस्सीको भी हल्के हल्के धक्के लगेंगे और थोड़ी देरमें दूसरा दोलक भी स्पन्दन करने लगेगा। अब ज़रा ध्यानसे देखिये कि क्या होता है। धीरे धीरे दूसरा दोलक खूब ज़ोरसे स्पन्दन करने लगता है और साथ ही पहिला धीमा होता जाता है और अंतमें तो सर्वथा स्थिर हो जाता है। किन्तु इस तमाशेका यहीं अंत नहीं हो जाता। अब दूसरा दोलक रस्सीमें धक्के लगा लगा कर पुनः पहिलेको संचालित करता है और थोड़ी देरमें स्वयं स्थिर होकर पहिलेको अपनी सब शक्ति दे देता है। इसी प्रकार पहिला दूसरेको और दूसरा पहिले दोलकको क्रमसे संचालित करता रहता है। (चित्र ३३ देखिये)

यह स्पष्ट है कि जब एक दोलक दूसरेको चलाता है तब अवश्य ही उसकी गतिमें कुछ कमी होती है। यदि बहुत सावधानीसे इन दोलकोंके

अनुकालिक समय (periodic time) नापे जांय तो ज्ञात होगा कि संचालकका समय कुछ अधिक
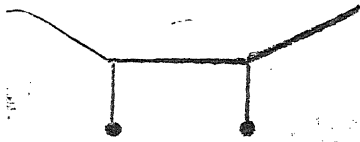
चित्र ३३

और संचालितका कुछ कम होता है। अर्थात् संचालक कुछ धीरे चलता है और संचालित कुछ तेज़। किन्तु ऊपर लिखा जा चुका है कि वही दोलक कभी संचालक बन जाता है और कभी संचालित। अतएव स्पष्ट है कि प्रत्येक दोलकके स्पन्दनका समय कभी घट जाता है और कभी बढ़ जाता है। या यों कहिये कि प्रत्येक दोलक पृथक् पृथक् आवृत्तिवाले दो स्पन्दन करता है और उन आवृत्तियोंमें उसकी स्वाभाविक आवृत्तिसे एक कम और एक अधिक होती है।

ठीक यही दशा हमारे ऐन्टेना और लीडनघट चक्र (circuit) की है। दोनों एक दूसरेमें स्पन्दन उत्पन्न करते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि दोनोंमें ही पृथक् पृथक् आवृत्तिवाले दो दो स्पन्दन होते हैं। एक आवृत्ति स्वाभाविकसे कम और दूसरी उससे अधिक होती है। अतः ऐन्टेनासे तरंगें भी दो प्रकारकी निकलती हैं। एक कुछ लम्बी और दूसरी कुछ छोटी।

आगे चलकर ज्ञात होगा कि ग्राहक यंत्र (receiver) साधारणतः एक ही लम्बाईकी तरंगोंको ग्रहण कर सकता है। अतः स्पष्ट है कि प्रेषककी प्रायः आधी शक्ति ऐसी तरंगोंके उत्पन्न करनेमें खर्च हो जाती है कि जिनसे समाचार भेजनेमें कोई सहायता नहीं मिलती।

किन्तु अध्यापक वीन (Wein) ने १९०६ में एक आविष्कार ऐसा किया है कि जिसकी सहायतासे अब ऐन्टेना एक ही लम्बाईकी तरंगें उत्पन्न कर सकता है। चिनगारी निकलनेके लिए जिन गोलियोंका (चित्र ३२ और ३० च) उपयोग किया जाता था उनके स्थानमें अध्यापक वीनने चपटे धातुके पत्र (metal discs) लगा दिये। इनके कारण चिनगारी अधिक देर तक नहीं ठहरती अर्थात् लीडन घटवाला चक्र चिनगारी निकलनेके पश्चात् पूर्ण नहीं रहता। अब उसमें विद्युत्प्रवाह नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक उन धातु पत्रोंके बीचमें चिनगारी न हो तब तक विद्युत्कणोंके जानेको कोई रास्ता ही नहीं रहता। अतः ऐन्टेना और उससे जुड़ी हुई बेठनमेंका स्पन्दन अब लीडनघटपर कोई असर नहीं डाल सकता और इसी लिए ऐन्टेनामें एक ही आवृत्तिवाला स्पन्दन होता है। यदि धातु पत्रोंके एक जोड़ेके स्थानमें दस बारह जोड़े लगा दिये जायं तब तो और भी अधिक अच्छा परिणाम होता है।

इस युक्तिका प्रयोग करनेसे स्पन्दनोंपर क्या असर होता है यह चित्र३४ और ३५से स्पष्ट हो जायगा। ऊपरकी पंक्तिमें लीडनघट वाले चक्रका स्पन्दन दिखलाया गया है और नीचेकी पंक्तिमें ऐन्टेनाका बाईं ओरके चित्रमें कम्प विस्तारकी घट बढ़ इस बातका प्रमाण है कि दो पृथक् पृथक् आवृत्तियोंवाले स्पन्दन हो रहे हैं। जैसे जब कभी दो सुर एक साथ बजाये जाते हैं और उन सुरोंकी आवृत्तिमें कुछ अंतर होता है तब कानको ऐसा ज्ञात होता है कि शब्द कभी ज़ोरसे और कभी धीमेसे होता है; मानों शब्द कांप रहा। हो ऐसे कांपनेको बीट्स थाप या प्रहार (beats) कहते हैं। उपरोक्त घटना भी ठीक इसी प्रकारकी है।

ग्राहक यंत्रके ठीक ठीक कार्य करनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऐन्टेनासे एक ही लम्बाईकी तरंगें विसर्जित हों। जब दो बेठनवाले प्रेषकका और चिनगारीके लिए दो गोलियोंका प्रयोग किया जाता है तब तो ऐसा हो ही नहीं सकता। जब एक बेठनवाला प्रेषक काममें

लाया जाता है तब कुछ अंशमें ऐसा हो जाता है, किन्तु सर्वथा एक ही लम्बाईकी तरंगें तो तभी

चित्र ३४—अ० वीनकी युक्तिके बिना

निकल सकती हैं जबकि अ० वीनकी युक्तिका अनुसरण किया जाता है।

इस साधारण चिनगारीवाले प्रेषक यंत्रके प्रयोगमें एक और कठिनाई है। एक तो इसमें लीडनघटके विसर्जनोंका अंतर सर्वथा स्थिर नहीं होता अर्थात् एक विसर्जन हो जानेपर दूसरा विसर्जन होनेमें कभी अधिक कभी थोड़ा समय लग जाता है। ऐसा नहीं है कि सदा एक नियत समयके अन्तरसे ही विसर्जन होते हों। इसका परिणाम यह होता है कि तरंग समूहोंकी जो श्रेणियां ऐन्टेनासे चलती हैं उनमें तरंग समूहोंका पारस्परिक अन्तर नियत नहीं होता। कहीं दो तरंग समूह प्रायः एक दूसरेसे मिले हुए ही होते हैं और कहीं कहीं उनमें बहुत सा अंतर होता है। दूसरे कुंजीको एक बार दबानेसे विसर्जन बहुत थोड़ी बार होता है और इसलिए तरंग श्रेणीमें तरंग समूहों की संख्या कम होती है। जब तक समाचार १००–५० मीलकी दूरीतक ही भेजे जाते थे तब तक तो यह कठिनाई अधिक हानिकर न मालूम हुई, किन्तु जब अधिक दूरी तक समाचार भेजनेका प्रयत्न किया गया तब पता लगा कि इन साधारण पत्रोंसे काम न चलेगा।
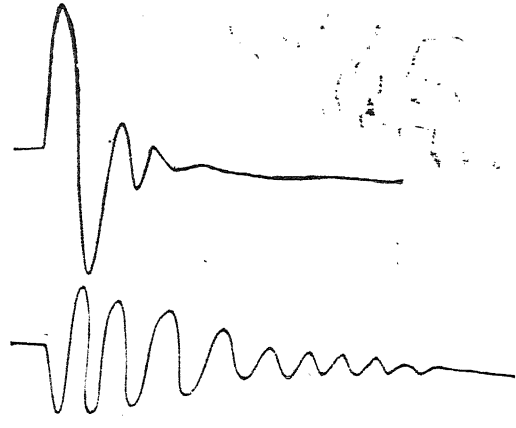
चित्र ३५—अ० वीनकी युक्तिके प्रयोग करनेपर

प्रायः १९०९ में महाशय मारकोनी (Mr. Marconi) ने चिनगारीवाली गोलियोंके स्थानमें एक नवीन युक्तिका प्रयोग किया। चित्र ३६ में क ख धातुके दो पहिये हैं और दोनों पहियोंके बीचमें एक और पहिया ग लगा है। तीनों पहिये मोटरद्वारा वेगसे घूमते रहते हैं। बीचवाले पहियेमें बहुत से धातुके बटन व दोनों ओर समान अन्तर पर लगे हैं।
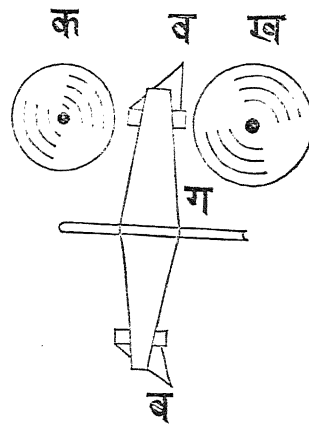
चित्र ३६—क, ख, ग पहिये हैं। ब, ब, बटन हैं।

क और ख विद्युत्संग्राहकके एक पत्रसे जुड़े हैं और ग दूसरे पत्रसे। जब जब बटन क-ख के समीप आते हैं तब तब चिनगारियां निकलती हैं और ज्योंही चिनगारी निकली कि बटन आगे बढ़ जाता है और क-ख और ग का अंतर इतना अधिक हो जाता है कि और चिनगारी नहीं निकल सकती। अतः अध्या० वीनकी युक्तिके समान ही इस विसर्जकमें भी एक ही आवृत्तिवाला स्पन्दन होता है। इसके अतिरिक्त एक विसर्जन और उसके बाद वाले दूसरे विसर्जनके बीचका अन्तर ग पहियेपरके बटनोंपर निर्भर है। यदि यह पहिया स्थिर वेगसे घूमे तो स्पष्ट है कि विसर्जनोंके बीचका अन्तर भी स्थिर होगा। और यदि वेग अधिक हुआ अथवा बटनोंकी संख्या अधिक हुई तो अवश्य ही प्रत्येक सैकंडमें बहुत से विसर्जन भी होंगे। अर्थात् मारकोनीके इस विसर्जकसे जो तरंगें निकलती हैं वह ऐसी होती हैं कि प्रायः एक तरंग समूहका अग्रभाग दूसरेके पृष्ठ भागसे लगा ही रहता है और जितना अंतर इन दोनोंमें होता है उतना ही उस श्रेणीके प्रत्येक तरंग समूह और उसके संलग्न दूसरे तरंग समूहमें भी होता है। इस प्रकार यह दूसरी कठिनाई भी दूर कर दी गई।

इस स्थानपर मारकोनीके एक दूसरे विसर्जकका भी उल्लेख कर देना उचित जान पड़ता है। इसमें और ऊपर वर्णित विसर्जकमें भेद केवल यह है कि बीचके पहिये ग पर इसमें बटन नहीं लगाये जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इसके द्वारा जो तरंगें उत्पन्न होती हैं वह हीयमान तरङ्ग समूहोंकी श्रेणी न होकर ऐसी होती हैं कि जिनमें कम्प विस्तार घटता ही नहीं (वि० भाग ७ पृ० १५)

इस पिछली प्रकारकी तरङ्गसे तार रहित सांकेतिक समाचार भेजनेमें कुछ अधिक लाभ नहीं। हां तार रहित टेलीफोनके लिए यह अवश्य उपयोगी हैं। किन्तु अधिक हीयमान तरङ्ग समूह भी बड़ी कठिनाइयां उपस्थित करते हैं। वास्तवमें वही तरङ्गें सबसे अधिक उपयोगी हैं जो हीयमान तो हों किन्तु जिनका कम्पविस्तार धीरे धीरे घटे। मारकोनीका पहिला विसर्जक ठीक इसी प्रकारकी तरङ्गें उत्पन्न करता है।

इस सम्बन्धमें एक बात भूल न जानी चाहिये कि सुदूर स्थानपर ताररहित समाचार भेजनेके लिए ईथरमें तरङ्गोंके रूपमें प्रायः १५०-२०० घोड़ोंकी सामर्थ्य प्रविष्ट करानी पड़ती है और मारकोनीके उपरोक्त यंत्रोंके द्वारा डाइनेमोकी जो शक्ति इस कार्यमें व्यय होती है उसमें से २५ प्रति शतके लगभग ही तरङ्गोंका रूप धारण करती है। अतः प्रायः ६००-८०० घोड़ोंसे कम सामार्थ्यवाली डाइनेमोसे काम नहीं चल सकता है। और यह भी तब जब कि बड़े बड़े विद्युत्संग्राहकोंका प्रयोग किया जाता है। आजकल एक बड़े कमरेमें प्रायः चार चार या पांच पांच इंचकी दूरीपर बहुत सी बड़ी बड़ी लोहेकी चद्दरें लटका दी जाती हैं, जिससे हवाका एक बहुत बड़ा विद्यत्संग्राहक बन जाता है। इसमें टूटने फूटनेका भी डर नहीं रहता। यहां तक कि पासकी चद्दरोंमें कभी कभी जो चिनगारी निकल जाती है और जिससे कांचके संग्राहक नष्ट हो जाते हैं वह भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं।

दूसरे यंत्रोंका उल्लेख करनेके पहिले एक और आवश्यक बातपर विचार करना है। ऊपर विद्युत्स्पन्दनको दोलकके स्पन्दनकी उपमा दी गई है और यह भी बतलाया जा चुका है कि जिस प्रकार दोलकका अनुकालिक समय उसकी लम्बाईपर निर्भर है उसी प्रकार किसी चक्र (circuit) में होनेवाले विद्युत्स्पन्दनका अनुकालिक समय भी उस चक्रमेंके संग्राहककी बड़ाई छोटाईपर तथा बीचके तारकी लम्बाई और मोटाई अथवा उसकी बाधा (resistance) पर निर्भर है। (वि०भा०६-पृ० २५०)। अतः यह समझना कुछ कठिन नहीं कि प्रेषक यंत्रमें जिन दो

चक्रोंमें स्पन्दन होता है उन चक्रोंकी विशेषताओं-पर ही उन स्पन्दनोंका समय निर्भर है।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनों चक्रोंके स्पन्दनका समय बराबर होना चाहिये या नहीं? उत्तरके लिए पुनः दोलकोंपर विचार करिये। यदि एक रस्सीसे दो दोलक चित्र ३३ की भांति लटकाकर एक दोलकको चलाया जाय तो क्या सब दशाओंमें दूसरा दोलक उतने ही ज़ोरसे चलने लगेगा? नहीं यह आवश्यक है कि दोनों दोलकोंकी लम्बाई बराबर हो। यदि ऐसा न हुआ तो दूसरा दोलक थोड़ा बहुत हिलेगा अवश्य किन्तु तुरन्त ही ठहर जायगा। फिर थोड़ा सा हिलेगा और फिर ठहर जायगा। इसी प्रकार यदि ऐन्टेनामें शक्तिशाली स्पन्दन कराना है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऐन्टेनावाले चक्रके स्वाभाविक स्पन्दनका समय लीडनघट वाले चक्रके समयके ठीक बराबर हो। शब्द विज्ञानसे भी यह ज्ञात है कि अनुनाद (resonance) तब होता है जब कि स्वरैक्य (unision) हो। अतः इस उपमाके सम्बन्धसे प्रेषक यंत्रके चक्रोंके स्पन्दन-समयकी ऐक्यताको भी स्वरैक्य कह सकते हैं।

ऐन्टेना एक प्रकारका बिजलीका दोलक है। इसमें एक विशेष आवृत्तिका ही स्पन्दन हो सकता है। कम्पविस्तारके बड़े या छोटे होनेसे कोई मतलब नहीं। इसी प्रकार लीडनघट और उससे जुड़ी हुई बेठन आदिमें भी एक विशेष आवृत्तिका स्पन्दन हो सकता है। अतः यदि यह अभीष्ट है कि ऐन्टेनामें शक्तिशाली स्पन्दन हो तो इन दोनोंमें स्वरैक्य होना चाहिये। इनकी आवृत्तियां बराबर होनी चाहियें। यदि न हों तो कोई उपाय ऐसा होना चाहिये कि जिससे यह स्वरैक्य किया जा सके। चित्र ३०,-३२ में जो बेठन (व) हैं उन्हीं कोघटा बढ़ा कर यह स्वरैक्य किया जाता है।

दूसरा प्रश्न यह है कि ऐन्टेनामें होनेवाले स्पन्दनकी आवृत्ति कितनी होनी चाहिये? यह पहिले समझाया जा चुका है कि तरंगान्तर और आवृत्तिको गुणा करनेसे जो परिणाम होता है वह तरंग वेगके बराबर होता है (वि० भाग ६, पृ० ७८)। विद्युच्चुम्बकीय तरंगोंका वेग प्रकाशके वेगके बराबर ही, प्रायः १ अरबफुट प्रति सैकंड, होता है। और साधारणतया एक जहाज़से दूसरेपर या किनारेपर समाचार भेजनेकेलिए या तो १००० फुट या २००० फुट लम्बी तरंगोंका प्रयोग होता है। अतः यदि १००० फुट लम्बी तरंगें उत्पन्न करनी हों तो स्पष्ट है कि ऐन्टेनाके विद्युत्स्पन्दनकी आवृत्ति १० लाख होनी चाहिये। अथवा विद्युत्कणोंको एक बार स्पन्दन करनेमें एक सैकंडका १० लाखवां भाग लगेगा। यदि २००० फुट लम्बी तरंगोंकी आवश्यकता हो तो आवृत्ति ५ लाख होगा। किन्तु जब समाचार बहुत दूर भेजना होता है तब और भी लम्बी तरंगें काममें लाई जाती हैं। भिन्न भिन्न कार्योंकेलिए और भिन्न भिन्न स्थानोंके लिए भिन्न भिन्न लम्बाई नियत है और यह लम्बाई ६००० फुटसे लेकर २०००० फुट तक होती है। इन सबसे लम्बी तरंगोंकेलिए भी ऐन्टेनाके स्पन्दन की आवृत्ति ५० हज़ार होनी चाहिये। संक्षेपमें यह कि तार रहित समाचारके लिए जिस विद्युत्स्पन्दनकी आवश्यकता है उसकी आवृत्ति कमसे कम ५० हज़ार होनी चाहिये, किन्तु साधारणतया यह आवृत्ति प्रायः १० लाख होती है।

अब उन दो दूसरी रीतियोंका संक्षेपमें कुछ वर्णन किया जायगा कि जिनसेभी बिजलीकी ऐसी तरंगें उत्पन्न की जा सकती हैं जिनका कम्पविस्तार घटता नहीं। इनमेंसे एक मि० डडैल (Duddell) की आविष्कृत रीति है जिसका हालैंडके इंजीनियर पुलसेन (V. Poulsen) ने बहुत संस्कार किया है।

यह बहुतोंको ज्ञात होगा कि बिजलीके लम्प दो प्रकारके होते हैं। एक तो वह जिनमें वायु रहित कांचके एक गोलेमें एक तार लगा रहता है। जब इस तारमें उचित शक्ति का विद्युत्प्रवाह

किया जाता है तब यह तार गरम होकर प्रकाश विसर्जन करने लगता है। इसे प्रदीप्त लम्प या तन्तु-लेम्प (incandescent lamp) कहते हैं। साधारणतः ऐसे ही लम्पोंका प्रयोग घरोंमें होता है। किन्तु एक और प्रकारका लम्प होता है जिसे चाप लम्प (arc lamp) कहते हैं। इसका प्रकाश बहुत अधिक होता है और बड़े बड़े स्थानोंमें जैसे बाज़ारोंमें, कारखानोंमें इसका प्रयोग होता है। इस प्रकारके लम्पमें दो कर्बन (carbon) की छड़ें ऐसी रखी जाती हैं कि उनके सिरोंमें बहुत थोड़ा सा अन्तर रहे। इन छड़ोंको डाइनेमोसे जोड़ देते हैं और पलभरकेलिए उनके सिरोंको एक दूसरेसे मिला देते हैं। ऐसा करते ही भारा विद्युत्प्रवाह होता है और कर्बनके सिरे गरम होकर चमकने लगते हैं। इस दशामें पुनः उनके सिरोंको पृथक् कर देते हैं किन्तु तब भी प्रवाह बन्द नहीं होता। क्योंकि ताप की अधिकताके कारण कर्बन वायवीय रूप धारण कर लेता है और इसी कर्बन-वायुमेंसे विजलीका प्रवाह होता रहता है, जिसके कारण वह प्रदीप्त हो जाता है।
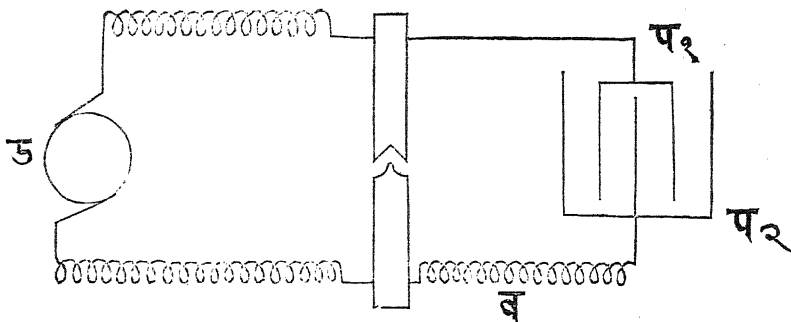
चित्र ३७—प१, प२ -विद्युत संग्राहकके पत्र। व, बेठन। ड, डाइनेमो।

अब यदि इस आर्कलेम्पकी एक छड़को एक बहुत बड़े विद्युत् संग्राहकके एक पत्र प१ से जोड़ दिया जाय और दूसरेको एक बेठन (व) द्वारा दूसरे पत्र प२ से (चित्र ३७) तब मि० डडेल (Mr. Duddell) के आविष्कारानुसार इस बेठन (व) में विद्युत्स्पन्दन होता है। डाइनेमोका प्रवाह अन्योन्यान्तरगामी न होना चाहिये, क्योंकि एक ही होने वाला प्रवाह इस कार्यके लिए अभीष्ट है।

यह स्पन्दन किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, यह समझानेके लिए साधारण सीटी (whistle) या बंद मुंह वाली आर्गन पाइप (closed organ pipe) का उदाहरण दिया जा सकता है। अधिक विस्तारसे लिखनेका यहां स्थान नहीं है। इतना ही कह देना बस होगा कि जिस प्रकार सीटीमें हवा एक ही दिशामें फूंकी जाती है किन्तु उसमेंकी हवाका स्पन्दन होता है और उससे शब्द-तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं ठीक उसी प्रकार डाइनेमोका प्रवाह एक दिशागामी होने पर भी बेठन (व) में स्पन्दन हो जाता है।

उपरोक्त साधारण आर्कलम्पसे होने वाले विद्युत्स्पन्दनकी आवृत्ति तार-रहित समाचार भेजनेमें काम आने लायक नहीं होती। क्योंकि प्रायः यह ३०००० से कम होती है और इसी कारण इस लम्पमेंसे एक प्रकार का शब्द सुनाई देता है। कान प्रायः ३०००० की आवृत्तिवाले स्पन्दनको सुन सकता है, किन्तु इससे अधिक आवृत्ति होनेसे कान उसे नहीं सुन सकता। इस शब्दके ही कारण ऐसे आर्कलम्प को 'सुरीला चाप' (musical arc) भी कहते हैं।

किन्तु पुलसेन (Poulsen) ने आविष्कार किया कि यदि दोनों छड़ें कर्बन की न होकर डाइनेमोके धन-ध्रुव (positive pole) से जुड़ी हुई छड़ तांबेकी और दूसरी कर्बनकी हो और यह छड़ एक बरतनमें

[आगे पृष्ठ ८१ पर देखिये]

भारत गीत ६२

[भारत के छात्र समाज का स्वरूप निर्देशन और छात्रों के प्रति प्रेम सन्देश]

अहो छात्र वर वृन्द, नव्य भारत-सुत प्यारे
मातृ-गर्व सर्वस्व, मोद-प्रद गोद-दुलारे
अहो भव्य भारत-भविष्य-निशि के उजियारे
शुभ-आशा-विश्वास-व्योम के रवि, विधु, तारे
गृह-जीवन-नव-ज्योति, प्रेम के प्रकृत स्रोत तुम
विनय-शील-उद्योत, जगत के सुकृत-स्रोत तुम
मातृ-भूमि के प्राण, मातृ-सुख-संप्रदान तुम
मातृ सत्व-संत्राण-कुशल-भुज-बल-निधान तुम
आर्य-वंश-अक्षय-वट के अभिनव प्रवाल तुम
आर्य-सन्त-जीवन-पट के सुठि तन्तु-जाल तुम
आर्य-वर्ण-आश्रम-उपवन के फल रसाल तुम
आर्य-कीर्ति-तन्त्री-गुण के स्वर, शब्द, ताल तुम
निज सुजन्म-सन्तति-सरोज-वन के मृणाल तुम
मानव-कुल-मानस-ह्रद के मञ्जुल मराल तुम
जग-सुकृत्य-रत भारत के सौभाग्य-भाल तुम
प्रिय स्वदेश-अन्तर-आत्मा के अन्तराल तुम
सुरुचि,सुवृत्ति,सुतेज,सु-प्रेरित-मति-विशालतुम
सुघर सपूत सुमाता के लाड़िले लाल तुम
भारत-लाज जहाज सुदृढ-सुठि कर्णधार तुम
भारति-कंठ-विहार-विशद-मन्दार-हार तुम
निज-अभिरुचि-निजभाषा-भूषा - भेष - विधाता
निज सत्ता, निज पौरुष, निज स्वत्वों के त्राता
निज-परता-भ्रम-रहितकरोनिज-हित-विचार तुम
हित-परता-क्रम-सहित करो पर-हित-प्रचार तुम
सत-सेवा-व्रत धार जगत के हरो क्लेश तुमु
देश देश में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम
इस विधि हो निस्संग करो सेवा प्रसंग तुम
फिर फिर पर-हित हेतु भरो उर में उमंग तुम
सब विधि यों युव-वृन्द, बनो नर प्रवर वन्द्य तुम
त्यों हरिपद-अरविन्द-भ्रमर-भुविसमभिनन्द्यतुम

श्रीपद्म कोट } —श्रीधर पाठक
१४-११-१६१६ } १४

*गत नवम्बर की २० और २४ को ओक्स फर्ड कोम्ब्रिज् हौस्टेल और लौ-हौस्टेल के छात्र कविसमाजों में लेखक ने सभापति के स्थान से पढ़ा। ले०

भाषातत्व के कतिपय स्थूल नियम

[ले०—नरेन्द्रदेव, एम. ए., एल-एल. बी.]

प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति और विकास का इतिहास रहस्य पूर्ण है। वैयाकरण तथा अलंकार शास्त्रज्ञों के मतानुसार प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। वह प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रकृति' से करते हैं। 'प्रकृति' का अर्थ बीज अथवा मूल तत्व है। 'प्रकृति' उसे कहते हैं जो दूसरे पदार्थ का प्रारंभक हो। आचार्यों के मत में संस्कृत ही प्रकृति है। यही मत डाक्टर भंडारकरका भी है। इसके विरुद्ध पिशेल ऐसे प्राकृत के धुरंधर विद्वानों का मत भी विचारणीय है। पिशेल महोदय केवल संस्कृत को प्राकृतकी जननी नहीं मानते। संस्कृत व्याकरण तथा कोश का प्रभाव सभी को स्वीकृत है। इस लेखकका यह विषय नहीं है कि इसकी विवेचना करे कि इन दो मतों में कौनसा मत हम को ग्राह्य है। केवल इतना दिखलाना यहां पर पर्याप्त होगा कि इस विषय में विद्वानों में मत भेद है। 'संस्कृत' शब्द का अर्थ "संस्कार संपन्न" है। वृक्ष की लकड़ी अपने स्वाभाविक रूप में है, परन्तु जब उसको काट छांट कर कोई विशेष आकार दिया जाता है तब कहा जाता है कि लकड़ीमें एक विशेष प्रकारका संस्कार हुआ है। संस्कृतको देववाणी कहते हैं। काव्यादर्श में कहा है कि—

संस्कृत नामदैवी वाग न्वाख्याता महर्षिभिः।
—परिच्छेद १, श्लो० ३३

"दैवी" का अर्थ टीकाकार 'दैवत संस्कार संपन्ना देवैरुच्चार्यमाणा वा' करते हैं। अर्थात् संस्कृत वह भाषा है जो दैवत संस्कार संपन्न है अथवा जो देवताओं की भाषा है। पहिले अर्थ के अनुसार संस्कृत एक विशेष संपन्न भाषा है। इसके विपरीत प्राकृत वह भाषा है जिसे साधारण जन जो व्याकरण शास्त्र में व्युत्पन्न नहीं हैं बोलते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि शिष्टों की भाषा संस्कृत थी और सर्व साधारण

की भाषा प्राकृत थी। शिष्ट का लक्षण महाभारत में निम्न प्रकारसे है :—

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः
न च वागंगचपल इति शिष्टस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् जिसमें किसी प्रकारकी चपलता न हो उसे शिष्ट कहते हैं। प्राकृत व्याकरणके नियमों पर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि बहुतसे शब्दों के रूप केवल असावधानता के कारण परिवर्तित हो गये हैं। मनुष्य स्वभावसे ही आलसी है। वह केवल व्यवसायके लिए व्यवसाय नहीं करना चाहता। जब तक कार्य सुगमता पूर्वक चला जाता है तब तक वह विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहता। यही कारण है कि बोलनेमें असावधानता होना स्वाभाविक है। भाषाके विकासमें यह भी एक कारण है। संस्कृत भाषामें भी इसके उदाहरण मिलते हैं, परन्तु प्राकृतमें यह नियम व्यापक रूपसे पाया जाता है। यदि यह विचार यथार्थ है तो इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृतका व्यवहार करनेवाले शुद्ध प्राकृतका व्यवहार करनेवालों की अपेक्षा अपनेको शिष्ट समझते होंगे। और यदि संस्कृत ही प्राकृतकी जननी है तो यह विचार और भी अधिक सत्य प्रमाणित होगा।

बहुत से शब्दोंमें वर्ण व्यत्यय होनेसे रूप बदल जाता है यथा लखनऊ के लिए नखलऊ, लार के लिये राल बाराणसी के लिये बनारस, तिलक के लिए टिकली इत्यादि। यह प्रयोग केवल असावधानताके कारण होते हैं। शिष्ट लोग ऐसी असावधानताको दोष समझते हैं और उनकी सदा चेष्टा रहती है कि दुष्ट शब्दोंका प्रयोग न करें। श्रुति है—"एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति" अर्थात् सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् प्रयुक्त एक शब्द समस्त इच्छाओं को पूरा करता है। पढ़े लिखे लोग जब कभी किसी को 'नखलऊ' कहते सुनते हैं तो उसका उपहास करते हैं। परन्तु जब एक बिगड़े शब्द का व्यवहार अधिक हो जाता है और लोग उसके मूल स्वरूपको भूल जाते हैं तब वह विकृत शब्द शिष्टोंकी भाषामें कभी कभी स्थान पा जाता है। शहर के लोग 'राल' शब्दका ही प्रयोग करते हैं, यथा—तुम्हारी राल क्यों टपकती है, यद्यपि ग्रामीण लोग 'लार' शब्द का प्रयोग करते हैं जो संस्कृत के 'लाला' शब्द से बना है। प्राकृत में ही ऐसी असावधानता नहीं पाई जाती है, परन्तु संस्कृतमें भी वर्ण व्यत्ययके उदाहरण मिलते हैं, यह दूसरी बात है कि उनकी संख्या कम हो। उदाहरण के लिए 'सिंह' संस्कृत का एक शब्द है। परन्तु यह 'हिंस्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ हिंसा करना है। अतः यह शब्द वर्णव्यत्ययके नियमके अनुसार बना है। 'कश्यप' एक मुनि हो गये हैं। यह शब्द 'पश्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ देखना है। पहिले इसका रूप 'पश्यक' रहा होगा। 'पश्' धातु मंत्रों में व्यवहृत होते देखा गया है। अन्यथा 'कश्यप' शब्द का यथार्थ निर्वचन नहीं हो सकता। 'दृश्' धातु के वर्तमान काल का रूप 'पश्यति' होता है, परन्तु यह वैदिक पश् धातुसे बना है। जब 'पश्' धातु का प्रयोग लुप्त हो गया तब भी 'पश्यति' का व्यवहार पूर्व रूप से वैसा ही रहा, परन्तु यह समझा जाने लगा कि 'दृश्' धातुमें तिङन्त प्रत्यय लगानेसे यह रूप सिद्ध हुआ है। पतंजलि ने वर्ण व्यत्यय के उदाहरण अपने महाभाष्य में दिये हैं—"वर्ण व्यत्यये। कृते स्तर्कः। कसेः सिकताः। हिंसेः सिंहः। १। १। २।" प्राकृत भाषासे भी कई अन्य उदाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं। जैसे णिडाल = सं० ललाट्, कीचड़ = प्रा० चिक्खल्ल, हलु = सं० लघु ; नहान सं० स्नान, इत्यादि।

बहुत से प्राकृत शब्दोंपर विचार करनेसे पाया जायगा कि 'र' के स्थानमें 'ल' का आदेश हो गया है। यथा—सं० हरिद्रा = प्रा० हलदी, दरिद्री = दलिद्री, पर्यंक = पलंक = पलंग। कहींएक

ही अर्थमें दो शब्दोंका प्रयोग होता है, जिनमें केवल इतना ही अन्तर है कि एक में 'र' के स्थान में 'ल' का प्रयोग हुआ है। यथा-फरना, फलना; तरे, तले; चाउर, चावल इत्यादि। आपने बहुत से गंवारों को "बैरिस्टर" के स्थान में 'बलहटर' कहते सुना होगा। इनको कोई यह सिखलाने नहीं जाता कि वह 'र' के स्थान में 'ल' का प्रयोग करें। उनके लिए यह स्वाभाविक है। अतः प्राकृत भाषामें जहां कहीं हम 'र' के स्थानमें 'ल' के आदेश का विधान पाते हैं तो हम को यह न समझ लेना चाहिये कि यह शब्दशास्त्रके पंडितों की आज्ञा है। नहीं इस आदेशका कोई आन्तरिक कारण है जो भाषा विकासमें सहायक होता है। पहिले भाषा है तब व्याकरण। भाषा की शब्दावली पर विचार कर वैयाकरण उन नियमोंको खोज निकालते हैं, जिनके आश्रयसे शब्दोंकी रचना हुई है। प्राकृत को छोड़ दीजिये। संस्कृतमें भी यह नियम बहुधा देखा जाता है। यथाः—रोहित, लोहित; रोम, लोम; शुक्र, शुक्ल; मिश्र, मिश्ल (वेद); रभ्, लभ; इत्यादि। अब हम को इस पर विचार करना है कि इस आदेशका क्या कारण है। बच्चोंकी भाषापर यदि आपने सूक्ष्मतया विचार किया होगा तो आपको पता होगा कि बच्चे भी 'र' के स्थान में 'ल' का प्रयोग करते हैं। उनसे 'र' का उच्चारण नहीं हो सकता। अब यदि हम शब्दोत्पत्तिपर ध्यान दें तो इस आदेशका कारण स्पष्ट हो जायगा। कण्ठ और वक्षस्थलके मध्य देशमें शरीरवर्ती वायुके आघातसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। 'र' के उच्चारण में जिह्वाग्रके मध्यभागसे दन्तमूलके ऊपरके भागको स्पर्श करना पड़ता है और 'ल' के उच्चारण में जिह्वाग्र के मध्यभागसे दन्त मूलको ही छूते हैं। अतः 'ल' के उच्चारणमें उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ता है जितना कि 'र' के उच्चारण में करना पड़ता है। बच्चों के उच्चारण स्थानोंका पूर्ण रूपसे विकास नहीं होता है, इसी कारण उनको शुद्ध उच्चारणमें कठिनता प्रतीत होती है।

मनुष्य उतना ही प्रयत्न करना चाहता है जितनेसे उसका कार्य चल सके और उसे लोग समझ सकें। शब्दोत्पत्तिमें कष्ट साध्य और सूक्ष्म प्रक्रियाएं होती हैं। यही कारण है कि लोग 'र' के स्थानमें कहीं कहीं 'ल' का प्रयोग करते हैं। उच्चारण स्थानोंपर प्रदेश विशेषके जलवायुका भी प्रभाव पड़ता है। यह प्रायः देखा गया है कि एक प्रान्त के लोग 'ल' का बहुधा प्रयोग करते हैं (मागधीमें)। अलमोड़ाके लोग 'स' के स्थान में 'श' का अधिक प्रयोग करते हैं। उनके लिए दन्त्य स का उच्चारण करना कष्ट साध्य है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में शब्दोत्पत्ति पर सूक्ष्म विचार किया गया है। उसी के अनुसार हम प्रत्येक ध्वनि की उत्पत्ति बतावेंगे।

अ—'अ' के उच्चारण में दोनों ओठ और जबड़े न तो बहुत संश्लिष्ट रहते हैं और न एक दूसरे से अत्यन्त फैले हुए।

इ—'इ' के उच्चारणमें जिह्वाका मध्यभाग तालुमें फैंकना पड़ता है।

उ—'उ' में ओठों को गोल करके शब्द करना पड़ता है।

ए—'ए' के उच्चारणमें ओठोंको कुछ ही पास लाना पड़ता है और जबड़े विशेष रूपसे मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिह्वा मध्यके अन्त भागोंसे ऊपर के जबड़े के मूलप्रान्त प्रदेशको छूना होता है।

ओ—'ओ' के उच्चारण में जबड़े बहुत नहीं फैलते और ओठ संश्लिष्ट हो जाते हैं।

ऐ,औ—'ऐ' 'औ' का आदि अकार का अर्धकालसम है। 'ऐ' का शेष भाग इकार है, 'औ' का शेष भाग उकार है।

ऋ, लृ—इन वर्णोंके उच्चारणमें दोनों जबड़े बहुत पास आ जाते हैं और जिह्वाका अग्र

भाग दन्त पंक्तिके उच्च प्रदेशमें फेंकना पड़ता है।

कवर्ग—कवर्ग के उच्चारणमें जिह्वाके मूलसे जबड़ोंके मूल भाग का स्पर्श किया जाता है।

चवर्ग, श—जिह्वा मध्यसे तालु छूना पड़ता है।

टवर्ग, ष—जिह्वाग्रका आवेष्ठन करके उससे मूर्द्धा को छूते हैं।

तवर्ग, स—जिह्वाग्र से दन्तमूल छूते हैं।

पवर्ग—पवर्ग के उच्चारण में दोनों ओठ परस्पर मिलते हैं।

य—जिह्वाके मध्यके अन्त भागसे तालुको छूते हैं।

र—जिह्वाग्र के मध्य भागसे दन्तमूलके ऊपरके भागको स्पर्श करते हैं।

ल—जिह्वाग्रके मध्य भागसे दन्तमूलको छूते हैं।

व—अधरोष्ठके प्रान्त भागोंसे ऊपरके दांतोंके अग्र भागको छूते हैं।

संयुक्तवर्णके उच्चारणमें एक स्थानसे स्थानान्तरमें जाना पड़ता है। यह साधारण जनोंके लिए कष्ट साध्य है। उदाहरणके लिए सं० चक्रका प्रा० चक्क, चाक रूप ले लीजिये। 'चक्र' के उच्चारणमें, जैसा पाठकोंको अब मालूम होगा, पहिले जिह्वाग्र के मध्य भागसे दन्तमूलके ऊपरी भाग को स्पर्श करना पड़ता है, फिर दोनों ओठोंका परस्पर संश्लेष विश्लेष करना पड़ता है। इस प्रयत्नकी मात्रा कम करनेसे चक्क रूप होता है। यहां जिन वर्णोंका संयोग होता है वह एक ही रूपके हो जाते हैं। संयोगके उच्चारणमें जो भार स्थान एक दूसरे पर डालते हैं वह भार वैसा ही रहता है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। धीरे धीरे 'चक्क' का 'चाक' हो जाता है। यहां उच्चारणकाल सम करनेके लिए पूर्वके स्वरको दीर्घ कर दिया है। एक और उदाहरण लीजिये। कहीं कहीं 'न' के स्थान में 'ल' का प्रयोग पाया जाता है। यथा :—

पन्हव = पल्हव; मिनैंडर = मिलिंद, जनम = जलम; नील = लील।

बाज़े लोग हनुमानजीके स्थानमें हलमानजी कहते हैं। इसका कारण यही है कि 'न' और 'ल' के उच्चारणमें थोड़ा ही अन्तर है। इसी लिए 'न' के स्थानमें 'ल' और 'ल' के स्थानमें कहीं कहीं 'न' (यथा ललाट = णिडाल) पाया जाता है। जापानी 'न' को 'ल' उच्चारण करते हैं। अब प्राकृतके निम्नलिखित नियमों पर विचार कीजिये।

यस्यजः (प्राकृत लक्षण, व्यंजनविधान; सूत्र १५)

अर्थात् 'य' के स्थान में 'ज' का आदेश होता है। यथा :—यौवन = जुव्वणं = जोवन; सूर्य्य = सूरज; यात्रा = जत्ता = हि० जात्रा इत्यादि।

'य' के उच्चारणमें जिह्वामध्यके अन्त भागसे तालुको छूते हैं और 'ज' के उच्चारणमें जिह्वामध्यसे तालु छूना पड़ता है। दोनोंके उच्चारणमें बहुत सूक्ष्म अन्तर है। यही कारण है कि 'य' के स्थान में 'ज' का आदेश होता है। अब हम प्राकृत व्याकरणके एक दूसरे नियमपर विचार करते हैं। यवयोरिदुतौ (प्राकृत लक्षण—व्यंजन विधान, सूत्र ३१) 'य' के स्थान में 'इ' और 'व' के स्थान में 'उ' आदेश होता है। यह आदेश भी उपरोक्त कारण से होता है। इसी प्रकार अन्य कई नियम भी समझाये जा सकते हैं।

दो ध्वनि एक प्रकारकी एक साथ करनेमें बड़ी सावधानताकी आवश्यकता होती है। इसी कारण उसमें विभेद कर देते हैं। उदाहरण के लिये 'मुकुट' शब्दको ले लीजिये। भाषा में लोग 'मुकट' या 'मकुट' कहते हैं। 'मु' और 'कु' ध्वनि समान हैं, क्योंकि दोनों में 'उ' स्वर का योग है। शुद्ध उच्चारणमें विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता पड़ती है, जो कष्ट साध्य है। 'मकुट' अथवा 'मुकट' कहने में ही सुगमता होती है। इसके कुछ अन्य उदाहरण यहां दिये जाते हैं। यथा :—सं० नुपूर = प्रा० नेउर; पुरुष = प्रा० पुरिस; गुरु = प्रा० गरु। संस्कृतमें भी इसके उदाहरण मिलेंगे। 'श्रु' धातु के वर्तमानकाल के उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप 'श्रृणुमः' होता है। यहां 'श्रु' के स्थान में 'श्रृ' का प्रयोग होता है। यह केवल असमान ध्वनि करनेके लिए है।

कहीं कहीं दो व्यंजनोंके बीच जिनका उच्चारण कठिन है एक स्वर का सन्निवेश कर देते हैं। संयोग स्येष्ट स्वरागमो मध्ये (प्राकृत लक्षण, व्यंजनविधान ३०) इसे स्वरभक्ति कहते हैं। यथाः—भ्रम=भरम; रत्न=रतन; वर्ष=बरिस; पद्म=पदुम; अग्नि=अगनी इत्यादि। मंत्रोंमें भी स्वरभक्तिके उदाहरण मिलते हैं। जहां कहीं व्यंजन का संयोग 'र' से होता है वहां छन्द रचनासे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि दोनोंके बीचमें एक मात्राकालसे भी कममें उच्चारण होनेवाले स्वर का उच्चारण करना आवश्यक है। यथा:—इन्द्र=इन्दर।

इसी प्रकार भिन्न भिन्न स्थानके व्यंजनोंके बीच एक व्यंजन कहीं कहीं सन्निविष्ट कर देते हैं।

यथाः—वानर=बान्दर; ताम्र=तम्ब; आम्र=अम्ब। 'न' और 'द' का उच्चारण स्थान एक ही है, 'म' और 'ब' भी एक ही वर्ग के होने के कारण एक ही स्थान से उच्चारित होते हैं। इस नवीन अक्षर के आगम का कारण यह है कि इससे स्थान परिवर्तन में सहायता मिलती है

जिस प्रकार असमान ध्वनि का नियम है उसी प्रकार एक से दो अक्षर एक साथ प्रयुक्त नहीं होते। यथा—शष्पपिंजरः=शष्पिंजरः इसे अङ्गरेज़ी में 'haplology' कहते हैं। वेदमें इसके उदाहरण मिलते हैं। यथाः—शीर्ष+संक्ति=शीर्षक्ति।

उच्चारणकी सुगमताके लिए यह देखा गया है कि जब कोई शब्द एक संयुक्त वर्णसे आरम्भ होता है तब उसके पूर्व एक स्वर की वृद्धि हो जाती है। शब्दके मध्य अथवा अवसानमें जब संयुक्त वर्ण प्रयुक्त होता है तब उच्चारण में उतनी कठिनाई नहीं होती, कारण यह है कि पूर्ववर्ती स्वर सहायक होता है, परन्तु बिना पूर्ववर्ती स्वरकी सहायताके एक संयुक्त वर्णका उच्चारण करना दुष्कर होता है। इसी कारण व्यवहारमें हम देखते हैं कि लोग एक स्वर का सहारा लेते हैं। यथाः—स्नान=अस्नान, स्त्री=(पाली) इत्थी=इस्त्री (भाषा); स्कूल=इस्कूल; स्टेशन=इस्टेशन। भाषातत्वका एक व्यापक नियम जो भाषा विकासमें विशेष रूपसे सहायक होता है 'मिथ्या सादृश्य" (false analogy) है। भाषा को सुगम बनानेका यह सहज उपाय है। 'श्रु' धातु के वर्तमान काल तथा अन्य लकारों में 'नु' का आगम होता है। कुछ कालके अनन्तर लोग भूल गये कि 'नु' का आगम केवल कतिपय लकारों में ही होता है और भविष्यकाल में भी 'नु' का आगम करने लगे। यही कारण है कि पाली तथा प्राकृत में 'श्रु' के स्थान में धातु का रूप 'सुण' हो जाता है। आधुनिक भाषाओंमें भी इसी रूप में यह धातु पाया जाता है। इस प्रकार 'क्री' धातु का 'किण', 'ज्ञा' का 'जाण', 'बुध' का 'बुज्झ' हो जाता है। संस्कृत में 'कृ' धातु से परे 'उ' प्रत्यय होता है। यथाः—करोति, कुर्वन्ति इत्यादि। यह धातु तकादिगण का है। परन्तु प्राकृति में भवादि अथवा चुरादिगणके नियमों का अनुसरण करते हुए 'करइ' या 'करेइ' होता है। Dicken's के अधम पात्र 'I knowed,' 'You was' ऐसे अशुद्ध वाक्यों का प्रयोग करते हैं। किसी विशेष शब्द के साथ किसी विशेष प्रत्यय का प्रयोग देख कर अन्य शब्दों में भी वही प्रत्यय प्रयुक्त करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। मनुष्य व्याकरणके नियमोंको यथासाध्य व्यापक बनाना चाहता है। सादृश्य नियम का प्रभाव संस्कृत में भी पाया जाता है। इस संबंध में (Bhandarkar Commemoration Volume) में पंडित विनायक सखाराम घाटे का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेखमें घाटे महोदयने इस नियमके कई उदाहरण दिये हैं। इनमें से दो एक हम यहां उद्धृत करते हैं।

तृतीयाके एक वचनके अर्थ में शब्द के अन्त में 'आ' प्रत्यय का आगम होता है। परन्तु अकारान्त शब्दों के तृतीया एक बचन में हम 'आ' के स्थान में 'न' पाते हैं और 'अ' 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। वेद में भी बहुधा

ऐसा ही देखा गया है, यद्यपि 'यज्ञा' 'महिला' इत्यादि रूप भी मिलते हैं। इसका कारण यह है कि सर्व नाम शब्दों के समान अकारान्त शब्दों के तृतीया एक बचनका रूप होता है। 'तेन' के समान 'बालकेन' रूप होता है। षष्ठी बहुवचन के अर्थ में 'आम्' प्रत्ययका प्रयोग होता है परन्तु अकारान्त शब्दों में 'आनाम्' पाया जाता है। नकारान्त शब्दों के समान आकारान्त शब्द भी षष्ठी बहुबचन में आनाम, का प्रयोग करने लगे। यथाः—आत्मनाम्, बालानाम् (बाला)। इसका कारण यह है कि 'आत्मा' और 'बाला' के रूपों में सदृशता है। 'आम' प्रत्यय का यदि आगम होता तो 'बालाम्' रूप सिद्ध होता, जो द्वितीया एक बचन का भी रूप है। इससे विभेद करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। 'बालाः' और 'देवाः' भी समान रूपके हैं। इस कारण अकारान्त शब्दों में भी 'आनाम' का प्रयोग हुआ। आकारान्त शब्द पुल्लिंग तृतीया एक बचनका रूप सर्वनाम शब्दोंके सदृश है। यथाः—'विधया' 'तया' के ढंग पर है। वेदमें 'अश्वा' रूप पाया जाता है, परन्तु धीरे धीरे 'अश्वया' का प्रयोग होने लगा।

जितने नियमों का उल्लेख ऊपर हुआ है उनसे स्पष्ट है कि मनुष्य यथा संभव विशेष प्रयत्न से पराङ् मुख होता है। उसकी सदा यही चेष्टा रहती है कि सुगमता पूर्वक अपना कार्य निकाल लें। भाषाके नियमोंको व्यापक बनाना और भाषा को सरल करना मनुष्य का सहज स्वभाव है। भाषा विकाश में यही नियम सहायक होते हैं। प्राकृतमें ही केवल इन नियमों का कार्य दृष्टि गोचर होता है, ऐसा नहीं है। संस्कृतके विकास-का भी क्रम एक ही समान है। संस्कृत में भी इन नियमों का व्यापार प्रत्यक्ष है। यही अवस्था अन्य भाषाओं की भी है। भाषा तत्व के कतिपय स्थूल नियमों का ही इस लेख में विचार किया गया है। नियम जितना ही चित्ताकर्षक है उतना ही गंभीर है। यदि यह लेख 'विज्ञान' के पाठकों को रोचक प्रतीत हुआ तो भाषा तत्व पर फिर कभी लिखने का साहस करूँगा।

सभापति का संभाषण *

उपस्थित सभ्यगण।

लगभग दो वर्ष हुए कि परिषद् के मंत्री महोदय ने पत्र द्वारा मुझे यह सूचना दी कि आप महानुभावों ने मुझे परिषद् का सभापति निर्वाचित किया है और उक्त महाशय ने सानुरोध मेरी स्वीकृति चाही। उस समय आपके सभापति निर्वाचन के इस प्रस्ताव पर मुझे असीम आश्चर्य्य हुआ। कारण कि अपनी योग्यता, अपने वैज्ञानिक-ज्ञान, तत् सम्बन्धी अपनी कार्य्य-कुशलताका विचार करके मैं जानता था कि मुझमें सभापति होने की किंचित् मात्र भी योग्यता नहीं है। यहां तक मैंने सोचा कि आप महानुभावों ने इसमें बड़ी भारी भूल की, क्योंकि न तो मैं किसी वैज्ञानिक-शाखा ही का ज्ञान रखता हूं और न प्रयाग निवासी हूं कि यथोचित समयपर सभाके साधारण अधिवेशनों में सम्मिलित होकर आप सज्जनोंके कार्यमें भाग ले सकूंगा अथवा कार्य में कुछ सहायता दे सकूंगा। पर यह विचारते हुए कि इस मानव-संसार में प्राणी मात्र का यही मुख्य उद्देश तथा मूल कर्त्तव्य होना चाहिये कि येन केन प्रकारेण निज-देश की सेवा यथा शक्ति करता रहे, मैं मंत्री महोदय के आदेश को अस्वीकार न कर सका। मैंने यह समझ लिया कि आप महानुभाव मुझे उस पद के अयोग्य जानने पर भी प्रतिष्ठा देना चाहते हैं और प्रतिष्ठा एक ऐसी वस्तु है कि जिसके पाने के लिए कौन ऐसा

---

* विज्ञान परिषद् प्रयाग का छठा अधिवेशन शनिवार, २२ नवम्बर १९१९ को म्योर कालिज के फिज़ीकल-सायंस थियेटर में प्रातःकाल ७॥ बजे हुआ था। उस दिन परिषद के सभापति राजा सर रामपालसिंह, के. सी. आई.ई.ने यह व्याख्यान दिया था।

मनुष्य है, चाहे वह उसके योग्य हो या न हो, कि जिसका चित्त चलायमान और मन लालायित न होता हो! मुझे इस बात का अत्यन्त सोच है कि बहुत ऐसे कारण उपस्थित होते रहे कि मैं आपके एक भी अधिवेशन में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त न कर सका।

गत वर्ष वार्षिक अधिवेशन में मैंने भरसक चेष्टा की और बहुतेरा चाहा कि आपकी सेवामें उपस्थित होकर आपके कार्यमें भाग लूं और आप के महत्वपूर्ण कार्य में सहकारिता रूपी यथोचित सहायता देसकूं और वैज्ञानिक लेक्चरों से स्वतः लाभ उठाऊं। परन्तु इस इच्छा को भी पूरा न कर सका। मैं अत्यन्त विनीत-भाव तथा नम्रता-पूर्वक आप महानुभावों से क्षमा का प्रार्थी हूं और इस वार्षिक-उत्सव में जो कुछ पद आप ने मुझे प्रदान किया है उसके लिए हृदय से अनुग्रहीत हूं।

यह कहा जाता है कि विद्या बल है पर मैं समझता हूं कि विद्या रूपी बलका विज्ञान ही प्राण है। इस प्राकृतिक संसार के सभी पदार्थ अनन्त दैवी शक्तियों से परिपूर्ण है। वह शक्तियां साधारण मनुष्यों को इस स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं देती। वह वैज्ञानिक दृष्टि है जो ऊसर भूमि की मिट्टी में काच तथा सब पदार्थों में वैद्युतिक शक्ति देखती है। और जो उन्हें परदेके बाहर निकाल कर संसार के लिए प्रगट कर देती है। इसी नेत्रके खुलनेसे आज यूरोप अमेरिका जापान व्यापार व्यवहार और शासन में अग्रसर हो रहे हैं। इसी नेत्रके बंद रहने के कारण हमारा भारत वर्ष दीन हीन और परावलम्बी हो रहा है। हमारे देश के इस वैज्ञानिक चक्षु के खोलने की जो चेष्टा करता है वही इसका प्रधान उद्धार कर्ता है। यह निर्विवाद है कि किसी देशकी उन्नति उस समय तक पूर्णरूपसे नहीं हो सकती जब तक कि विज्ञान उन्नतिके शिखर पर न पहुंचाया जाय, एवम् उसके सिद्धांतोंसे वह देश पूर्णतया अभिज्ञ न होजाय। हम सब उसी देश के निवासी हैं, जिसने विज्ञान के सिद्धांतों की बुनियाद उस समय डाली थी जिस समय अन्य देश अविद्यारूपी घोर अन्धकारमें ग्रसित थे। हम उन्हीं पूर्वजों, उन्हीं वैज्ञानिक-पवित्रात्माओं ऋषियों और मुनियोंकी संतान हैं जिन्होंने विज्ञान के सिद्धांतो को सब से प्रथम खोज निकाला था। जिनको और देशों ने लेकर तथा उनका सहारा पाकर विज्ञान की वह उन्नति कर दिखाई, जिससे हम लोग अनभिज्ञ हो नहीं वरन् जिसके चमत्कार को देख कर आज अचम्भित हो रहे हैं। खेद है! शोक है! कि हमारे देश का ध्यान इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक धारा से पलटा खाकर और दूसरी धारोंमें चला गया और हमारी वैज्ञानिक विद्याकी स्थिति ज्यों की त्यों रह गई। आज उसके अभाव से देश नाना प्रकारकी हानि उठा रहा है। वास्तव में वैज्ञानिक ज्ञान शून्य होनेहीसे भारतको आज भारत न कहकर आरत कहैं तो अनुचित न होगा।

धन्य है अंग्रेज़ी-शिक्षा को कि उसके द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने की सरलता तथा सुलभता हमको मिली है और हमारे देश में इस समय कुछ महानुभाव ऐसे हैं कि जिनके वैज्ञानिक ज्ञान पर देश मान तथा गौरव कर सकता है, परंतु उनकी संख्या बहुत ही न्यून है। वह बेचारे पिछली रात्रि के से तारे इतने बड़े देश का उत्थान वैसी तीव्रताके साथ नहीं कर सकते जैसी कि इस समय आवश्यकता है।

इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि विज्ञान की शाखाओंसे और हमारी रहन-सहन तथा जीवन से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक सर्व्व-साधारण को विज्ञान के सिद्धांतोंसे परिचय न कराया जायगा, जब तक उसका कुछ न कुछ बोध न्यूनाधिक-अंश में हमारी स्त्रियों को हमारे सर्व्व-साधारण मनुष्यों को न होगा, जब तक भारत-जनताके अंधकारमय अंतःकरणमें विज्ञान-रूपी दीपककी निर्मल ज्योति न जगमगायगी, क्या देश का कल्याण हो सकता है? कदापि नहीं। अंग्रेज़ी-भाषा द्वारा कितने मनुष्यों को आप

विज्ञान की शिक्षा दे सकते हैं? विदेशी भाषा द्वारा विज्ञानके गूढ़ सिद्धांतोंसे कितने मनुष्य परिचित हो सकते हैं? मेरे विचारमें बहुत थोड़े। उन विद्वानों को छोड़कर जिनकी संख्या बहुत थोड़ी है और जो आधुनिक भारत-वर्ष के विज्ञान-विद्या के रत्न कहे जासकते हैं, क्या और महानुभावों ने जिनको वैज्ञानिक-शिक्षा प्राप्त हो रही है जो लाभ ऐसी शिक्षा से उठाना चाहिये था उठाया है या उठा रहे हैं?

मेरे विचार में कारण उसका केवल इतनाही प्रतीत होता है कि हमारे देशी-भाषाओं के साहित्य में विज्ञान का अभाव है। मेरे कहने का तात्पर्य्य यह न समझा जाय कि विदेशी भाषा में जो विज्ञान की शिक्षा होती है उसका मैं विरोधी हूं। नहीं नहीं जब तक विदेशी भाषाद्वारा वैज्ञानिक-भंडार को हम प्राप्त न कर लेंगे और नये नये सिद्धांतों को प्राप्त न करते जांयगे तथा उनका अनुभव न करते जांयगे इसकी आशा कदापि नहीं की जा सकती कि हम देशी-भाषा द्वारा उन विचारों और सिद्धांतों को अपने देशमें फैला सकें या अपने देशीय-भाषा के साहित्य को उस भंडार से उन्नति देसकें। मेरा अभिप्राय केवल इतनाही है कि इसकी अति आवश्यकता है कि विदेशी भाषा द्वारा विज्ञान की उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के साथही साथ हमको सदैव कटिबद्ध होकर प्रस्तुत तथा यत्नवान रहना चाहिये कि विज्ञान-विद्या तथा विज्ञानशास्त्र को अपनी देशीय-भाषा के साहित्य में यथोचित रीतिसे लाते हुये उसी के आधार पर कार्य्य-संचालन करते हुये प्रचार भी करते जांय। जबतक विज्ञान-विद्याका ज्ञान हमको अपनी देशीभाषा में पूर्णतया न होगा हमारी मानसिक तथा मस्तिष्क-संबन्धी शक्तियों का वास्तविक विकास नहीं हो सकता। जब तक मस्तिष्क में वैज्ञानिक-ज्योति की जागृति न होगी प्राकृतिक तथा मनुष्य निर्मित पदार्थों के उपयोग का सच्चा सुख हमारे लिये स्वपनही बना रहेगा। और हमारी अवनति होती ही जायगी। क्या यह किसी प्रकार से माना जा सकता है कि जिस देश के मनुष्यों ने पांच हजार-वर्ष पहिले विज्ञान के बहुत से सिद्धांतों को स्थिर किया और जिनके बीज से अन्यान्य देशों ने विज्ञानरूपी पौधेही नहीं वरन बड़े बड़े वृक्ष तैय्यार कर आज उनके सुन्दर सुस्वादिष्ट फलों का उपभोग कर रहे हैं क्या उस देश के निवासियों में अब वह किंचित सामर्थ्य नहीं कि उन देशों से उन वृक्षों तथा फलों को लाकर भारत-वर्ष में वैज्ञानिक वृक्षही नहीं वरन वैज्ञानिक बड़ी बड़ी वाटिकायें लहलहाकर देश का पुनरुद्धार करें। अवश्य ऐसा हो सकता है। मेरा तो विचार यह है कि यदि देशीयभाषा में विज्ञान विद्या का प्रचार हमारे देश में हो जाय तो आज भारत-माता न्यूटन, गैलीलियो सरीखे वैज्ञानिक-सुपुत्रही नहीं उत्पन्न कर सकती वरन वैज्ञानिक-संसार में वह आविष्कार दिखला सकती है जो आज तक किसी देश ने नहीं करपाया।

महानुभाव! जो परिषद् आपने स्थापित की है और जो कुछ काल से कार्य्य भी कर रही है वह इसी अभिप्राय से स्थापित हुई है, मुझे बहुत कुछ उससे आशायें हैं। तथापि द्रव्याभाव से अब तक उसे कार्य्य-क्षेत्र में संकुचित रहना पड़ा परंतु यह आशा है कि इस प्रांत के धनी मानी सज्जनगण द्रव्य से इसकी सहायता करें। सज्जनगण—मेरा तो परिषद् के सभासदों से यही निवेदन है कि जो कार्य उन्होंने हाथ में लिया है। वह महत्कार्य है। और महत्कार्य के साधन में बाधाएँ भी बहुत बड़ी बड़ी और भयंकर हुआ करती हैं परन्तु उनसे हताश न होना चाहिये। इस बात की कुछ भी चिन्ता न करना चाहिये कि आपके सम्मान कर्ता "विज्ञान" के ग्राहक बहुत कम हैं। यह भारतवर्ष का अभाग्य है कि विज्ञान के कम, और अश्लील उपन्यासों के ग्राहकों की सीमा नहीं। पर अन्त में हीरा हीरा ही रहेगा और मिट्टी मिट्टी ही।

मुझे यह भी आशा है कि हमारे प्यारे नव युवकगण उत्साह-युक्त उद्योग तथा परिश्रम-पूर्वक विज्ञान-विद्या उपार्जन करते हुये एवम् उसके ज्ञान तथा अनुभव का प्रचार करते हुये देश को विशेष वैभवशाली बनाकर भारत जननी के सच्चे सुपुत्र कहलाने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे और समस्त संसार में विज्ञानरूपी झंडा भारत वर्ष का हो आगे कर दिखायेंगे।

वैज्ञानिक युगान्तर *

इतिहासके प्रेमी इस बात को भली भांति जानते हैं कि प्रत्येक कालमें एक विशेष प्रकार के विचारों का प्रचार होता है, जो किसी देश से फैलने आरम्भ होते हैं और शनैः शनैः सारे संसार पर अपना रङ्ग जमा लेते हैं। भारतवर्षमें ही इस कथनके समर्थनमें अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। आजसे लगभग २५०० वर्ष पहले भगवान् बुद्धने अपने जगत्विख्यात धर्मका उपदेश काशी में किया। थोड़े ही दिनोंमें वह धर्म दूर दूर तक फैल गया और सभ्य संसारका बहुत भाग उसके रङ्गमें रङ्ग गया। बौद्धमत का ज़ोर सातवीं शताब्दीतक बना रहा। पन्द्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें भारत में वीरताकी वह ज्योति जागी, जिसकी अद्वितीय द्युतिके सामने इतिहास प्रसिद्ध शूर वीरोंका यश फीका पड़ गया। जो वीरताके काम राजपूत योद्धाओं और रमणियोंने उस काल-में कर दिखाये, वैसे आज तक सुननेमें न आये और आशा है कि न आवेंगे ही।

अतएव विक्रम से ६०० वर्ष पूर्व से, उसके ६०० वर्ष पीछे तकके कालको बौद्ध काल और पन्द्रहवीं शताब्दीसे अठारहवीं शताब्दी तकके समय को राजपूत वीरताका काल कहना अनुचित न होगा। इङ्गलेण्डमें महारानी एलीज़िवेथके शासन कालमें जितने उच्च कोटिके नाटककार होगये और अपूर्व नाटक-निर्माण कर गये, वैसे फिर न हुए। अकबर शाहके राज्यमें, तुलसीदास, नन्ददास, सूरदास आदि आर्य भाषाके जैसे अद्वितीय कवि हो गये, उनके समान कवि पैदा होने मुश्किल हैं। आज कलही देखिये, बङ्गाली साहित्य में कविता, आख्यायिकाओं और नाविलों का ज़माना है। कवि शिरोमणि जगद्विख्यात रवी बाबू की अनुपम कविता, बंकिमके अपूर्व उपन्यास, गिरीशचन्द्रके मनोहर नाटक आदि इसके प्रमाण हैं। हिन्दी साहित्यमें कविता, नाटक और नाविलोंका ज़माना नहीं। आज कल जितने मौलिक ग्रन्थ हिन्दी में निकलते हैं, वह गूढ़ और मनन योग्य विषयों पर ही निकलते हैं। हिन्दीमें आजकल कोई उच्च कोटिका कवि नहीं, अच्छा उपन्यास लेखक नहीं, नाटककार तो नाम लेने को नहीं, तो इससे हिन्दी के प्रेमियोंको हताश न होना चाहिये। आज कल हिन्दी अपने एक अंग विशेषकी पूर्त्तिमें लगी हुई है, इस अंगके पुष्ट होजाने पर और बातोंका समय आयगा।

जो कुछ अब तक कहा गया है उसका सारांश यही है कि प्रत्येक कालका लक्षण एक विशेष प्रकारकी विचार-प्रणाली होता है। लगभग छः सौ वर्ष हुए कि भारतवर्षमें तांत्रिक मत के अनु-यायियोंने ऐसीही एक विचार-प्रणाली का बीज बोया। उस बीजसे एक मनोहर वृक्ष उत्पन्न हुआ, परन्तु हाहन्त, वह फलने फूलने भी न पाया था कि थोड़े ही दिनोंमें यहांकी खर ज़मीन, यहां का प्रदेश, विदेशीय आक्रमणों, राजनैतिक अशान्ति और आपसके झगड़ोंके कारण उसके प्रतिकूल हो गया और वह मुर्झाने लगा। परन्तु, जिन विदेशि-योंने, देशमें अशान्तिकी आग भड़का दी थी, उन-की नज़र इस अनुपम वृक्ष पर पड़ी। उन्होंने उस-की क़द्र दानीकी। कुछ टहनियां काट लीं और उन्हें बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे यहांसे लेगये और अपने देशमें जालगाया। वहां उसकी वह परवरिश की कि बहुत विस्तृत हुआ और फलने फूलने लगा।

* यह व्याख्यान प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव ने २२ नवम्बर, १९१९ को परिषद् के छठे अधिवेशन में दिया था। लगभग ५० चित्र भी दिखलाये थे।

उन्होंने उसकी पौद यूरोपके प्रान्तमें पहुंचाई, जहांकी आबोहवा (जल वायु) उसके बहुत मुआफिक़ आई और उसने यथेष्ट वृद्धि पाई ।

यही विचार-शैली है जिसको कि हम विज्ञान कहते हैं। आज उस विज्ञानका ऐसा महत्व है, उसका ऐसा प्रभाव है, कि मनुष्यके ज्ञानके अन्योन्य विभागों पर, विषयों पर, भी उसका साम्राज्य स्थापित हो गया है ।

प्रायः यह समझा जाता है कि विज्ञान एक विषय विशेष है, परन्तु ऐसा समझना बड़ी भूल है। विज्ञान वस्तुतः, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, एक विचार-शैली या अध्ययन-प्रणाली है। इस शैलीके अनुसार किसी भी विषयका-अध्ययन किया जा सकता है। यही कारण है कि क्रमशः एक एक करके विषय विज्ञानके वर्द्धमान क्षेत्रके अन्तर्गत आते जाते हैं। पहले विज्ञानमें केवल, भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र ही सम्मिलित समझे जाते थे। कुछ दिनों बाद प्राणि-विद्या, गणित और ज्योतिष शामिल हो गये। आज कल तो अर्थ-शास्त्र, इतिहास, दन्त कथा (किस्से कहानियां) आदि अनेक विषय विज्ञानके विभाग समझे जाते हैं। इसका कारण यही है कि वैज्ञानिक विधिसे जब तक कि किसी विषयका अनुशीलन और प्रतिपादन नहीं किया जाता, तब तक बुद्धिमान मनुष्योंको सन्तोष और विश्वास नहीं होता। इतिहासका ही उदाहरण लीजिये। २० वर्ष पहलेके रचे हुए ग्रन्थों की तुलना हालके लिखे हुए ग्रन्थों से कीजिये। दोनों में आकाश और पाताल का साअन्तर दिखाई देगा। पहले ज़मानेमें घटनाओं का उल्लेख कर देना भर इतिहासकारका कर्तव्य समझा जाता था। अब प्रमाण देना, उल्लिखित घटनाओंके सत्यासत्य विवेचनमें किन उपायों का आयोजन किया ा है, इत्यादि बातें बतलाना भी आवश्यक ाता है ।

ज्ञानका महत्व और प्रभाव यहां तक बढ़ा हु है कि धर्मने भी विज्ञानके सामने मस्तक झुका दिया है और अन्योन्य धर्म अपने अस्तित्व के लिए विज्ञान का सहारा ढूंढ रहे हैं।

विज्ञान का यह विस्तृत और सर्वदेशीय प्रभुत्व देखकर ही वर्तमान युग वैज्ञानिक युगान्तर कहलाता है।

जब से मनुष्य की बुद्धिका विकाश आरम्भ हुआ तभीसे विज्ञान का आरम्भ समझना चाहिये। परन्तु प्रयोगात्मक विज्ञान की उन्नति बड़ी शीघ्रता के साथ पिछले ५० वर्षों में ही हुई है। मनुष्य के सत्य के ढढ निकालने के प्रयत्न के तीन रूपान्तर प्रत्येक देश में देखने में आते हैं। पहला रूपान्तर या अवस्था वह है जिसमें मनुष्य केवल एक बात का ख़याल रखता है कि एक विश्वास दूसरे के विरुद्ध या विपरीत न हो। दूसरी अवस्था वह होती है जब मनुष्यका सत्यासत्य निर्णय करने की कसौटी धार्मिक विश्वास होती है। जो बात धार्मिक विश्वास के—चाहे वह विश्वास सच्चा हो या झूठा—विरुद्ध या प्रतिकूल हुई वह झूठी समझी जाती है। तीसरी अवस्था वह है जिसमें किसी बात का झूठा या सच्चा समझा जाना इस परीक्षा पर निर्भर है कि वह प्राकृतिक तथ्यों (facts) के अनुकूल है या प्रतिकूल। यही अन्तिम विधि वैज्ञानिक विधि है।

इस वैज्ञानिक विधिका प्रचार नागार्जुन आदि महात्माओंने भारतमें लगभग छः सौवर्ष हुये किया था। इसी का प्रचार लगभग उसी समय में रौजर बेकन नामके एक साधुने यूरोपमें किया। बेकन का मत था कि ज्ञान तर्क और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा बढ़ता है। यह ज्ञानके दो साधन हैं। इनमें भी प्रत्यक्ष अनुभव अधिक महत्व का है। प्रत्यक्षानुभव द्वारा उपार्जित ज्ञान ही विश्वसनीय ज्ञान है। सच्चा और उपयोगी ज्ञान प्रकृति के अवलोकन से प्राप्त होता है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हमारे पुराने विश्वासों और निमूर्ल विचारों की छाया से प्रकृति के अवलोकन में बाधा न पड़ जाय। कई बार ऐसा हुआ है कि लोगों ने नई चीज़ें बनाली हैं या नया आविष्कार कर लिया है, पर अपने निमूर्ल विश्वास के कारण

उसे कुछ का कुछ समझ छोड़ दिया है। लीबिगने ब्रोमीन एक बार बनाली थी, परन्तु बिना परीक्षा किये यह मान लिया कि वह लोहे और अयोडीन का यौगिक है। जब ब्रमीन का आविष्कार बेलार्ड ने कर लिया, तब उन्हें ख़याल आया और उक्त पदार्थ की परीक्षा की। फिर तो भेद खुल गया। लीबिग इस घटना को सदा सुनाकर यह उपदेश दिया करते थे कि कपोल कल्पित व्याख्या कदापि न करनी चाहिये।

एकाग्रचित्त होकर प्रकृति का अवलोकन और निरीक्षण, विचार पूर्वक किये गये प्रयोगों के परिणाम-यही मार्ग हैं, जिनसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फ्रांसिसबेकन भी रोजरबेकन के अनुयायियों में से थे। इस नयी विचारशैली की पुष्टि रायल सोसायटी के अधिवेशनों में हुई, और उसके दो सदस्यों ने उसका प्रयोग बड़ी सफलता पूर्वक किया। यह सदस्य थे न्यूटन और लौक। न्यूटनने तो आकर्षण के सिद्धान्त का आविष्कार किया, पर लौक ने दर्शन शास्त्र में उससे काम लेना शुरू किया और अपना जगत्प्रसिद्ध ग्रन्थ रच डाला। (Lock's Essay on Human Understanding)

अब वैज्ञानिक-शैली का अधिक विस्तार न कर के हम इस बात पर विचार करेंगे कि विज्ञान ने मनुष्य जाति का कितना उपकार किया है, उसका सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ा है और भविष्य में वह हमें किधर लेजायगा।

विज्ञान ने जैसे जैसे उन्नति की और जैसे जैसे वैज्ञानिक शैली का प्रचार होता गया, मनुष्य की बुद्धि का विकाश भी उतना ही अधिकाधिक होता गया। मनुष्यों का अन्ध विश्वास घटता जाता है। १० वर्ष पहले जितना भूत परेतों का ज़िक्र सुनने में आता था, अब नहीं आता। जितना मनुष्य को पहले पग पग पर भय लगता था उतना अब नहीं लगता। अब उसे न यमदूतों का भय है और न बहिश्त की परियों के यौवन सौन्दर्य का लोभ। अब वह वीरों की नाईं वर्तमान का विचार करता है, कठिनाइयों का सामना करता है, अपनी आत्मा पर श्रद्धा रखता है और भविष्य को सुख मय बनाने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक जाति के विकाश क्रम में तीन अवस्थाएं आती हैं:—

(१) धर्म की अवस्था (Age of Theology)
(२) दर्शनकी अवस्था (Age of Philosophy)
(३) विज्ञान की अवस्था (Scientific age)

आज कल विज्ञानका युग है। वह ज़माना गया, जब मनुष्य किसी दूसरे लोक की वस्तुओं की ओर खिंचता था, जब उसे स्वर्ग का पृथ्वी की अपेक्षा अधिक ध्यान रहता था। अब तो उसे अपना, अपनी जाति का, अपने देश का और अपने लोक का ख़याल रहता है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होना था कि वह पुराने ख़यालात को छोड़े, पांच हज़ार वर्ष पहले संसार की उत्पत्ति हुई थी, इस सिद्धान्त को तथा ऐसे ही अन्य सिद्धान्तों को असत्य माने और अपना अधिक ख़याल करने लगे। इसी प्रकार क्रमशः मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ने लगीं, बढ़ती जारही हैं और बढ़ती चली जायंगी। आज कल तो सभ्यता का अर्थ ही यह समझा जाता है कि आवश्यकताएं बढ़ें। परन्तु यह विषय विचारणीय है कि यह आदर्श कहां तक सत्य है। हमारा निज का विश्वास है— और धीरे धीरे समस्त सभ्य संसार एक स्वर से इसे स्वीकार कर लेगा—कि वेदान्तका जो उच्च आदर्श भारतीय ऋषियों ने मनुष्य के सामने रखा है, वही हमारा एक मात्र अवलम्ब है, उसी का सहारा हमको लेना पड़ेगा, नहीं किसी दिन यादवों की नाईं मनुष्य जाति नेस्त और नाबूद होजायगी।

यद्यपि ईसाई मत के पैर विज्ञान के प्रहार से टूट गये हैं, तथापि वेदान्त एक ऐसा मत है, जिसकी अभी केवल परछाईं का ही स्पर्श विज्ञान कर पाया है। 'ज्ञान को पन्थ भयावनो है'। विज्ञान का दुरुपयोग करके यूरोपीय महा भारत में कितने निर्दोषियों का रक्तपात हुआ है, पर हमें पूर्ण आशा है कि भविष्य में 'विज्ञान' ही ऐसी घटनाओं को असम्भव कर देगा।

विज्ञान देश और काल की दूरी को धीरे धीरे मिटा रहा है। जो दूरी पहले वर्षों में तय करते थे वह आज कल कुछ दिनों में ही तय कर लेते हैं। पैदल चलने से मनुष्य सन्तुष्ट न हुआ, तो घोड़े को गुलाम बना डाला, उससे भी जब असन्तोष हुआ, तो भाप को नाथा, रेल चलाई, एक पटरी की रेल बनाई और समुद्र की छाती पर भी अगनबोटों में यात्रा करना आरम्भ कर दिया। जब जल थल पर विचरने से तृप्ति न हुई तो गगन मण्डल में विहार करने के लिए वायुयान बना डाले।

जहां जहां देखा कि वृथा बहुत चक्कर खाकर समुद्र में यात्रा करनी पड़ती है, तहां तहां थल के संकीर्ण भाग काटकर नये नये रास्ते बना लिये। कभी कभी समुद्र में तूफ़ान आ जाते हैं, तो बड़े बड़े जहाज़ आक् की रुई के दानों की तरह समुद्र में लहरों के थपेड़ों से परेशान हो जाते हैं और फिरकी की तरह चक्कर खाकर डूब जाते हैं। ऐसी घटना से बचने के लिए पनडुब्बी का आविष्कार हुआ,जो शान्ति पूर्वक भयंकर तूफ़ान उठने पर पानी के नीचे छछूंधर की तरह अपना रास्ता काटती आगे बढ़ती चली जाती है।

अन्त में अब ऐसे वायुयान भी बन गये हैं, जो ज़मीन पर दौड़ सकते हैं, हवा में उड़ सकते हैं और पानी में तैर सकते हैं।

जो समाचार पहले ज़माने में वर्षों में मिलते थे वह अब मिनटों में मिल सकते हैं। यदि जी चाहे तो मित्रों से १००० मील की दूरी पर से भी बातें कर लीजिये।

यह लोक-संग्रह (Federation of World) का बड़ा भारी लक्षण दिखाई पड़ता है। वह समय शीघ्र ही आयगा, जब हम देश और जातिके अन्तर और भेद भाव को भूल जायंगे और एक कुटुम्ब के व्यक्तियों की नाईं प्रेम भाव से रह सकेंगे। वह समय गया जब जातियां अपनी अपनी सभ्यताओं को जुदे जुदे ढंग पर वृद्धि कर सकती थीं और अपनी रीतरिवाज, रहन सहन, जुदी रख सकती थीं। अब तो सब एक रंग में रंग जायंगे। सब घुल मिल कर एक हो जायंगे। भविष्यकी (Problems) समस्याएं कुल मनुष्य जाति की होंगी, न कि एक एक देश की।

विज्ञान ने मनुष्य को पशु-बल से अधिक काम लेने से बचाया है। जो काम वह पहले बड़े कठिन परिश्रम से और वर्षों में करता था, वह अब सहज ही कुछ दिनों में कर डालता है। अब ऐसे ऐसे कारख़ाने भी देखने में आते हैं कि जहां लाखों आदमियों के बराबर काम होता है, पर मनुष्य एक भी देखने में नहीं आता। इस बात का भी मनुष्य पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि अब उसे अपनी बुद्धि और मस्तिष्क से अधिक काम लेना पड़ेगा और मनुष्य जाति का विकाश अधिक वेग से होगा।

तार द्वारा चित्र भेजना, जल-प्रपातों को नाथ कर उनसे बिजली उत्पन्न करना या अन्य काम लेना, बिजली से शहर में रोशनी करना, पंखे चलाना, कारख़ाने और मिलें चलाना-यह सब बातें भी लोक-संग्रह में सहायक होंगी।

मनुष्य ने इतनी शक्ति ही संचय नहीं की, किन्तु सुदूर भूत काल में घटित घटनाओं का भी रहस्योद्घाटन करने का साहस कर डाला है। इतिहास की तो दौड़ अधिक से अधिक तीन चार हज़ार वर्षों तक ही है किन्तु विज्ञान करोड़ों अर्बों वर्ष की बातों का पता लगाता है। यह बातें केवल कल्पित ही नहीं हैं, परन्तु उस ज्ञान पर निर्भर हैं जो वह आकाश का निरीक्षण कर संचय करता है। अन्य तारों में जो परिवर्तन तथा घटनाएं उसे आज प्रत्यक्ष दीखती हैं, अपनी बुद्धि के बल से वह समझता है कि पृथ्वी का भी विकाश क्रम वही होगा।

कैसे महत्व का था वह दिन जब गैलिलियो ने अपना दूर्बीन पहले पहल आकाश की ओर उठा कर देखा था। क्रमशः उसदूर्बीन में शोध होते गये और आज के दिन दूर्बीन ऐसे बड़े बड़े

बन गये हैं कि इंजिनों द्वारा वह हिलाये, उठाये और घुमाये जा सकते हैं। दूर्बीन की ताकत किस भांति बढ़ती रही है, यह साथके चित्र से ज्ञात होगा। जहां पहले आकाश में कुछ भी दृष्टि गोचर न होता था, वहां पुराने दूर्बीनों से एक तारा सा नज़र आने लगा। और शक्तिशाली दूर्बीन से वह धुंधला सा तारा समूह प्रतीत होने लगा। वर्तमान दूरबीनों से तो वह असंख्य ताराओं को समूह दीख पड़ता है। इन तारों में से प्रत्येक असंख्य मीलों की दूरी पर है, उसका आकार हमारे सूर्य से लाखों गुना बड़ा है। उनकी दूरी का अन्दाजा मीलों में लगाना असम्भव है। इनका हिसाब लगाया जाता है प्रकाश वर्षों में। एक सैकण्ड में प्रकाश १८६००० मील चलता है। इस हिसाब से एक वर्ष में जितनी दूर प्रकाश आ सकता है वह फासिला एक प्रकाश-वर्ष कहलाता है। यदि मीलों में आप हिसाब पूछें तो ५८ खरब और ८३ अरब मील है।

जो सितारा पृथ्वीसे बहुतही नज़दीक है, वह ४·३ प्रकाशवर्ष दूर है। इस दूरीका ख़यालमें आना भी मुहाल है। हां एक तरकीब है, जिससे इसका कुछ अन्दाज़ा लग सकता है। मान लीजिये कि एक बड़ी भारी तोप है, जो ५५० गज प्रति सैकंडके वेगसे गोला फेंक सकती है और यह गोला इसी वेगसे लाखों वर्ष तक चला जा सकता है। तोपको चलाइये और जैसे ही गोला उसके मुंह से बाहर निकले आप जल्दी से कूद कर उस पर सवार हो जायं, तो आप २५ लाख वर्ष में अल्फा-सेंटारी तक पहुचेंगे। उस की दूरी मीलों में २५ नील है। कुछ तारे तो पृथ्वो से इतने दूर हैं कि यद्यपि पृथ्वी की उत्पत्ति हुए करोड़ों वर्ष हो गये, तथापि उनसे चला हुआ प्रकाश आज तक पृथ्वी तक नहीं पहुंचा।

ईश्वर की महिमा अनन्त है। उसके विराट रूप का दर्शन वैज्ञानिक ने ही किया है।

उधर सूक्ष्म दर्शक नेभी मनुष्य के ज्ञान की सीमा बहुत विस्तृत कर दी है। जो चीज़ें पहले आंख से दीखती भी न थीं, उन में एक ब्रह्माण्ड की सी रचना दिखाई पड़ती है। कहां एक इंच के एक करोड़वें भाग के बराबर कण, जो परासूक्ष्मदर्शक से दीख सकते हैं और कहां वह तारे जिनके आकारका ख़यालमें आना मुश्किल है।

आज से लाखों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियोंने जो गुण गाये, आज इनका कुछ अनुभव मनुष्यको होने लगा है।

'अणोऽणीयान महतो महीयान।'

मनुष्यने पता चला लिया है कि पृथ्वी मंडलकी उत्पत्ति नीहारिका से हुई है और विकाश का बहुत कुछ क्रम भी जान लिया है। उसने यहां ही बैठे रहकर दूर से दूर तारोंकी जांच कर डाली है और जान लिया है कि उसमें कौन कौनसे पदार्थ विद्यमान हैं।

उसने विकाश-वादकी रचना की है और उसकी पुष्टिके लिए ज्योतिष, भूगर्भ आदि अनेक शास्त्रोंका उपयोग किया है। धरती खोद खोदकर उसने पृथ्वी के इतिहासका बहुत कुछ पता लगा लिया है। किस ज़मानेमें ज़मीनकी सतहकी हालत कैसी थी, उसपर कैसे जानवर विचरते थे, कैसे वृक्ष उसके वक्षस्थलको सुशोभित करते थे, इत्यादि बातें उसने जान ली हैं।

विज्ञानकी सर्वोपयोगी और रोचक शाखा रसायन शास्त्र है। जितना उपकार मनुष्य मात्रका इस शास्त्रने किया है, उतना किसी अन्य शास्त्र ने नहीं किया। इसके आदि कालमें मनुष्यको रसायन की खोज थी। यद्यपि कीमियागरीमें वह सफल मनोरथ नहीं हुआ, तथापि कोयला संभूत काले कोलटार से अनेक बहुमूल्य पदार्थोंका पैदा करना, कूड़ेकरकटमें फैंकी हुई चीज़ों का उपयोग कर अनेक उपयोगी द्रव्य बनाना, यह रसायन शास्त्रके ही किरिश्मे हैं।

जहां बारूद और डैनेमैटने लाखों मनुष्योंका नाश किया है, तहां उन्होंने खेतोंकी उपजाऊ शक्ति बढ़ा दी है और मनुष्यके लिए पर्वतोंको काटकर मार्ग बना दिये हैं। साधारण पदार्थों से अनेक

उपयोगी पदार्थ बनाना भी रसायन शास्त्रने मनुष्य को सिखाया है। एक गेहूं को हो लीजिये। इससे रोटी, शीरा, मंड, साबुन, शक्कर, शर्बत, बारूद, गोंद (बारा), सूत, स्पिरिट, तेल, अचार, आतिशबाज़ी, रङ्ग, वार्निश आदि अनेक पदार्थ बन सकते हैं।

कभी कभी खदानोंमें और सुरङ्गोंमें पानीका सोता (जल स्रोत) निकल आता है। इससे सुरंगों या खानोंमें पानीके भर जाने और आदमियोंके डूब जानेका डर रहता है। ऐसी दुर्घटना से बचनेके लिए उचित स्थानों पर इंजीनियर लोहेके दर्वाज़े लगा देते हैं। एक बार सेवर्न (Severn) के नीचे सुरङ्ग खोदी जा रही थी। एकाएक किसी सोतेमें से पानी आने लगा। मज़दूरोंने सोचा कि हो न हो सेवर्नका पानी सुरङ्गमें दे बैठा और वह भाग उठे। पीछे पीछे पानी बड़े वेग से चला आता था और आगे आगे मज़दूर भाग रहे थे। अतएव घबड़ाहट से वह लोहेका दर्वाज़ा बन्द करना भूल गये। परिणाम यह हुआ कि ऊर्ध्वगामी रास्तों (शाफ़्ट) में १५० फुट पानी चढ़ गया और सारी सुरङ्ग भर गई। बड़े बड़े इंजिनों से काम लिया गया और पानी निकालकर ३६ फुट कर दिया गया। अब यह आवश्यक जान पड़ा कि कोई पानीमें घुसकर लोहेके दर्वाज़े बन्द कर आवे। दर्वाज़ा ऊर्ध्वगामी रास्ते से लगभग ५५० गज़ था। इसके अतिरिक्त रास्तेमें दो ठेले उलट गये थे और रास्ता रुक रहा था और दर्वाज़ेमें दो रेल अड़ गये थे। अतएव ठेलोंके ऊपर होकर जाना और रेलोंको हटाना आवश्यक था। फ़्लूस द्वारा आविष्कृत यंत्र लेकर लेम्बर्टने उतरनेका साहस किया और डेढ़ घण्टे के बाद दर्वाज़ा बन्द करके निकला। यह रसायन शास्त्रका ही प्रताप था, क्योंकि यंत्रमें दबी हुई ओषजन और दाहक सोडा था।

इस प्रकार मनुष्यकी शक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है। वह अब प्राकृतिक घटनाओंका मुस्तैदी से सामना कर सकता है और प्रकृतिके गूढ़ और गुप्त रहस्यों को जान लेनेका बराबर प्रयत्न कर रहा है। इन सब बातोंका मनुष्यके विकाश पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ेगा।

अब विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य भविष्यके लिए क्या कर रहा है? मनुष्य मात्रके लाभका काम जो आजकल हो रहा है वह स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्साके सम्बन्धमें है। भारत जैसे अभागे देशको छोड़, जहां सब चीज़ें महंगी है, पर मनुष्य जीवन बड़ा सस्ता है, जहां महामारी, विशूचिका आदि राक्षसियोंको भर पेट खानेको मिलता है, अन्य देशोंमें मृत्यु संख्या घटती जा रही है और स्वास्थ्य अधिक अच्छा होता जा रहा है। चिकित्साशास्त्र जो अबतक केवल अनुभव जन्य ज्ञान पर ही अवलम्बित था, वह अब विज्ञानकी सुदृढ नींव पर खड़ा हो रहा है। अब अनेक यंत्रों द्वारा ओषधियोंके गुण और दोषोंका ठीक ठीक अध्ययन हो सकता है। उधर बिना थनोंके स्पर्श किये गाय का दूध निकालनेके यंत्र, बिना धूल उड़ाये झाड़ू लगानेके यंत्र, इत्यादि जीवाणुओं से बचनेके उपायों का आविष्कार हो रहा है। इन सबका फल यह होगा कि मनुष्य सतयुगकी नाईं अपनी पूरी आयु तक जीवित रहकर पूर्ण उन्नति करसकेगा। वस्तुतः वह दैहिक कष्टों से मुक्ति पा जायगा।

प्राणि विद्या विशारद पौधों और जन्तुओं की जातियां (नस्ल) सुधारने के विषयमें अनेक आश्चर्य जनक प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिकाके विश्वामित्र, लूथर बरबंकने बेरकी गुठली उड़ादी, तो नागफनीके कांटे ग़ायब कर दिये हैं। जिस फलमें जो स्वाद और सुगंध चाहिये वही पैदा की जा सकती है, यह उनका दावा है। कुत्तों और घोड़ोंकी नस्ल कितनी सुधर गयी है, कितने अद्भुत आकार और प्रकारके कुत्ते और घोड़े देखनेमें आते हैं, वह मनुष्यकी वर्द्धमान बुद्धि और योग्यताके परिचायक हैं।

मनुष्य ने पेड़ पौधों और जानवरों पर ही दया दृष्टि नहीं की, मनुष्य पर भी प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। परन्तु मनुष्य जैसे हठी,

साहसी और चपल-प्रकृति पशु को प्रयोगों का पात्र बनाना कितना कठिन कार्य है, यह पाठक स्वयम् समझ सकते हैं। मनुष्य के विषय में मनोगत भावों और विचारों पर विजय प्राप्त करना कठिन है। यह तो स्वयम् ही सुधरे तो सुधरे, परन्तु नूतन शिक्षा प्रणाली, विवाह पद्धति और विचार शैली चमत्कारिक परिवर्तन कर रही है और हमें पूर्ण आशा है कि कुबेर से वैश्य, ब्रह्मा से ब्राह्मण और राम जैसे क्षत्रिय उत्पन्न होने लगेंगे। सन्तति-शास्त्र की उन्नति होने से वैसे ही दुर्बल देह और मस्तिष्कवाले मनुष्यों का पैदा होना मुश्किल हो जायगा। यदि कदाचित् कोई ऐसा मनुष्य पैदा भी हो जायगा तो उसकी दुर्बलता की चर्चा रासायनिक भाषा में हुआ करेगी और यह कहा जायगा कि उसके शरीरमें अमुक यौगिकों का अभाव है और सम्भव है कि उन यौगिकों को यथा स्थान, उचित विधिसे पहुंचाकर दुर्बलता दूर करदी जायगी। अतएव वर्त्तमान विज्ञान के सेवन से ही सतयुग फिर आयगा और शान्ति और सुखका साम्राज्य संसार भर में फैल जायगा।

संस्कृत कवियों का प्रकृति निरीक्षण

कवि के मानसिक भावों का पता कविकृत् वर्णनों से ही लगता है। वस्तुवर्णन पढ़ कर ही मनुष्य कवि के हृदय की गम्भीरता या छिछलेपन को जान सकता है। वर्णनके ही आधारपर कवि की निरीक्षण शक्तिका पता लगाया जा सकता है। जिस कवि में वस्तुओं को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने की शक्ति नहीं है वह वस्तुओं का समुचित वर्णन क्या कर पायेगा? अनुभवी लेखक ही जिसे निरीक्षण करने की शक्ति है किसी दृश्य का यथार्थ वर्णन कर सकता है। अच्छे वर्णनों को पढ़ कर हम कवि के अनुभवीपने को जान सकते हैं। वर्णन दोनों प्रकारके दृश्यों का होता है—कृत्रिम जैसे राजसभा, राजमहल, युद्ध इत्यादि और प्राकृतिक जैसे तपोवन, नदी, पर्वत, जंगल आदि। परन्तु प्राकृतिक वर्णनों को पढ़ कर कवि की निरीक्षण शक्ति जितनी जानी जा सकती है उतनी राजसभा आदि कृत्रिम दृश्योंके वर्णनोंसे नहीं। कारण इसका यह है कि कृत्रिम दृश्यों में समय तथा देश-कृत भेद होता है। उन्हें पढ़ कर मनुष्य ठीक नहीं बता सकता कि वर्णन कितना अनुभव-जन्य है और कितना कवि-कल्पना-जन्य। परन्तु प्राकृतिक दृश्य सब मनुष्योंके सामने सदैव एकसे विद्यमान रहते हैं। इससे यह न समझना चाहिये कि उनमें समय तथा देश कृत अन्तर नहीं होता—होता है ज़रूर, परन्तु बात यह है कि वर्णनों को पढ़ कर और उन दृश्यों को अपनी आंखों से देख कर हम वर्णन की यथार्थता को अच्छी तरह जान सकते हैं, कवि की निरीक्षण शक्ति को भली भांति जांच सकते हैं। यही कारण है कि समालोचक कवि कृत प्राकृतिक वर्णनों का ही, उसके अनुभव तथा निरीक्षण शक्ति को जानने के लिए, आश्रय लेता है। दूसरा कारण यह भी है कि कवि को युद्धादि का विशद वर्णन करने के लिए इन्हें अपनी आंखों से देखना ज़रूरी है, परन्तु सब कवियों को तो ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता है। अतः समुचित चित्रण में वह यदि समर्थ न हो तो उनकी निरीक्षण शक्तिपर दोषारोपण करना न्याय संगत नहीं होगा। इसके विपरीत प्रकृति सबके सामने उपस्थित है। यह कोई दोष नहीं दे सकता कि मेरी वहां तक पहुंच नहीं है, इस लिए मैं उत्तम वर्णन नहीं कर सका। यदि आंख खोल कर देखने की शक्ति ईश्वर ने दी है तो प्रकृतिका अवलोकन सर्वदा हो सकता है। अतः इतना सुभीता रहने पर भी यदि कवि समुचित प्राकृतिक वर्णन नहीं कर सकता तो उसमें अवलोकन शक्ति का बहुत अंशों में अभाव है, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है।

प्रत्येक भाषा के साहित्यमें काव्यकला कुशलों के लिए प्रकृति कविताकी एक बड़ी भारी सामग्री है। प्रातःकाल सूर्य की सुनहरी किरणें जब वृक्षों

की चोटीको छूती हैं और सायंकाल जब रक्त रविबिम्ब क्षितिजके नीचे जानेको उद्यत हो जाता है कौन ऐसा सच्चा कवि है जिसकी हृदयतंत्री इन दृश्योंसे बजने न लगती हो ? अंग्रेजी साहित्य की यह विशेषता है कि प्रकृतिके ऊपर भिन्न भिन्न प्रकारकी कवितायें की गई हैं। प्रत्येक महाकवि प्रकृतिको भिन्न भिन्न दृष्टिसे देखता है। वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, टेनिसन—सबों ने प्रकृति को सूक्ष्मतया देखा और उनको इसमें नई नई चीज़ें, नये नये सिद्धान्त, दिखाई दिये। वर्ड्सवर्थ प्रकृति को मनुष्य से भी बढ़कर शिक्षक मानता है तो टेनिसन को प्रकृति में अटल नियमों की आभा दिखाई पड़ रही है। उधर शेली (Shelley) को सौन्दर्य की पराकाष्ठा का अनुभव वहीं हो रहा है और उसे प्रकृति सुभग सौन्दर्य सम्पन्ना नायिका सी जान पड़ती है। भारतीय संस्कृत कवियों में भी ऐसे सिद्धान्तों की कमी नहीं है। परन्तु इन लोगों के सम्पूर्ण ग्रन्थों को अच्छी तरह मथा जाय तब कहीं सिद्धान्तरूपी अमृत मिलने की आशा है। प्रकृति को छोड़, प्राकृतिक दृश्यों का भी विशद वर्णन अंग्रेजी कवियों ने अच्छा किया है। आज कल कोरे अंग्रेजी साहित्य के पढ़ने वाले नवयुवक यह झट कह बैठने में नहीं सकुचते कि भारतीय कवियों में किसी ने भी प्रकृति का यथार्थ वर्णन कहीं भी नहीं किया है। परन्तु यह सिद्धान्त सर्वथा भ्रममूलक है। साहित्य का अध्ययन तथा मनन करने वाले समालोचक इस एक देशीय सिद्धान्त को अस्वीकार करने में कभी नहीं हिचकेंगे। इस सार्वजनिक भ्रान्ति का मूलोच्छेद करने के लिये संस्कृत कवियों के प्राकृतिक वर्णन का दिग्दर्शन यहाँ कराया जायगा। सबसे पहिले कविता कामिनी कान्त कालिदास के ही वर्णनों पर विचार कीजिये।

१—तपोवन वर्णन

भारतीय तथा यूरोपीय सभ्यता में बड़ा अन्तर है। भारत तथा यूरोप के स्थान विशेषों से ही सभ्यता के भेद का अनुमान किया जा सकता है। यदि एक पूर्व की ओर है तो दूसरी पश्चिम की ओर। यदि पहिली सूर्य की रोशनी में चमकनेवाली है तो दूसरी प्रगाढ़ अन्धकार में सूर्य रश्मि के उजाले को टकटोर रही है। यूरोपीय सभ्यता पूर्णतया आधिभौतिक है। शरीर के ही शृङ्गार करने पर लगी हुई है। इसे पता नहीं कि आत्मा पर कितनी धूल पड़ी हुई है। Eat, drink and be merry—खाओ, पीओ और चैन करो, वहां का यह लक्ष्य है, यही महामंत्र है। परन्तु भारतीय सभ्यता पूरी आध्यात्मिक है। भारतीय जीवन की नींव धर्म की सुदृढ भित्ति पर खड़ी है, आत्मा की उन्नति ही अन्तिम ध्येय है; सांसारिक सुखों को भारतीय अनित्य समझते हैं। परन्तु ध्यान रहे सुखके साधनों के पाने के पहिले ही यह सिद्धान्त नहीं बना लिया गया, प्रत्युत् सुखों को अच्छी तरह भोगकर उन्हें तुच्छ जान छोड़ दिया। भौतिक उन्नति अच्छी तरह हो जाने के बाद भारत का ध्यान आत्मा की ओर अटल विश्वास से लग गया। जब अन्तिम अवस्था, सन्यास, तपोवनों में ही बिताई जाती थी तब हम सोच सकते हैं कि यह तपोवन कैसा आदर्श होगा। भारत के जातीय कवि कालिदास के ग्रन्थरत्नों में इसका विशद चित्र खींचा हुआ मिलता है। रघुवंश तथा शकुन्तला नाटकों में कालिदास ने तपोवन का ऐसा अच्छा वर्णन किया है कि वैसा आदर्श चित्रण संस्कृत साहित्य में बहुत कम मिलता है।

पुत्रोत्पत्ति के लिए महाराज दिलीप अपनी धर्मपत्नी सुदक्षिणा के साथ सूर्य कुल गुरु महर्षि वशिष्ठ के पास जा रहे हैं। जाते जाते आश्रम मिलता है, जिसका वर्णन कालिदास ने इस प्रकार किया है:———

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः ॥ ४९ ॥
आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिव नीवार भाग धेयोचितैर्मृगैः ॥ ५० ॥

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥५१॥
आतपात्ययसंक्षिप्त नीवारासु निषादिभिः।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु ॥ ५२ ॥
—रघुवंश १ स०

सायंकाल समिध, कुश और फलों को लेकर मुनि लोग दूसरे वनों से लौट रहे हैं। पांत की पाँत पर्ण कुटियां बनी हुई हैं, जिनमें अपनी स्त्रियों तथा सन्तानों के साथ वह निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतु के बीत जाने पर आंगन में नीवार की राशि लगी हुई है। पुत्रों के साथ पाले गये कोई कोई मृग आंगन में बैठे जुगाली कर रहे हैं, कोई कोई कुटी के द्वार को रोक बैठे हैं। ऋषिकन्यायें पौधों को सींच रही हैं। पौधों के नीचे थाला बनाया गया है; उनमें पानी भरा हुआ है। पक्षिगण उसी जल से अपनी प्यास बुझा कर पेड़ों की शाखाओं पर विश्राम कर रहे हैं। पवित्र अग्नि जल रही है। उसमें घी की आहुति दी जा रही है। साथ ही वेद मंत्रों की ध्वनि से वह स्थान गूंज रहा है। धूम तथा सुगन्ध वायु में चारों ओर फैल रहे हैं।

कैसा अच्छा तात्विक वर्णन है। पढ़ते पढ़ते मालूम होता है कि तपोवन का चित्र खींचकर सामने रख दिया गया है। शकुन्तला में भी इससे कहीं अच्छा कण्वमुनि के आश्रम का वर्णन है। पाठक ध्यानपूर्वक पढ़िये—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखाद्भ्रष्टाः तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः दृश्यन्त एवोपलाः
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः
तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दरेखांकिताः
शाकुन्तल, प्र० अंक)

आश्रम के वृक्षों के खोखलों में रंगबिरंगे सुग्गे रहते हैं। खानेके लिए धानकी पकी बालियाँ यह तोड़ लाये हैं। इन्हीं बालियोंके कुछ दाने उनके मुख से गिर गये हैं। ऋषि लोगों ने इङ्गुदीफल का पत्थर पर कुचल कर तेल निकाला है। इस लिए शिलाएँ तेलसे चिकनी दिखाई देती हैं। ऋषियों में मृगों का विश्वास इतना हो गया है कि शब्द सुनने पर भी वह भगते नहीं, खड़े खड़े जुगाली करते रहते हैं। वल्कल परिधान हैं। स्नान करने के बाद भीगे वल्कलों को यह आश्रम में लाते हैं, इसी लिए सरोवर के रास्तों पर वस्त्रों की शिखा से चूने वाले पानी का चिन्ह बन गया है।

कहिये कैसा अच्छा वर्णन है। वृक्षों के नीचे गिरे दानों, चिकनी शिलाओं, पानी के टपकने से चिन्ह वाले रास्तों को देखकर कौन नहीं कह सकता कि हो न हो यह ऋषियों के आश्रम की प्रान्तभूमि है। स्वयं आश्रम का शाब्दिक चित्रण ज़रा देखिये—

कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूलाः।
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन॥

आश्रम के समीप ही नदी बह रही है। वायु के झोंकों से उसमें छोटी छोटी लहरें उठ रही हैं। नदी के किनारे पेड़ों की कतार है। छोटी छोटी लहरों के लगने से वृक्षों के जड़ की मिट्टी धुल गई है। अग्नि कुंड ऋषियों के यज्ञ करने के लिए वृक्षों के नीचे बने हुए हैं। आग में घी की आहुति दी जाती है। होम धूम के उठने से वृक्षों के कोमल पत्तों का लाल रंग कुछ मलीन पड़ गया है।

निस्सन्देह यह वर्णन हृदयग्राही है। चि[illegible] जो कार्य तपोवन के अच्छे चित्रों को खीं[illegible] कर सकता है उसी को कवि ने शब्दों में [illegible] खूबी के साथ सम्पादन कर दिया है।

कवि को आश्रम की प्रत्येक चीज के [illegible] सहानुभूति है; उसे आश्रम के वृक्ष और मृग[illegible] याद आये बिना नहीं रह सकते। उनका वर्णन उसे किसी प्रकार छोड़ते नहीं बनता। वाल्मीकि के आश्रम का छोटा चित्र देख लीजिये—

सायं मृगाध्यासित वेदि पार्श्वं,
स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय।
(रघु० १४ स०)

वेदियों के पास मृग सानन्द बैठे हुए हैं। ऋषि लोग मृगछौनों को अपनी सन्तान की अपेक्षा कम प्यार की दृष्टि से नहीं देखते। रघुवंश के पंचम-

सर्ग में रघुने आश्रम को कुशलवार्ता पूछते पूछते इन मृगों के बच्चों का भी हाल पूछा है—

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वात्
अभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु।
तदंकशय्याच्युतनाभिनाला
कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः॥

ऋषियों को यज्ञ के लिए कुश की आवश्यकता रहती है। मृग के छौने उन्हीं के अंकुरों को खा डालते हैं। तो भी मुनिगण इन्हें इतना प्यार करते हैं कि बच्चों को खाने से कभी मना नहीं करते। मृगियों के जब बच्चे पैदा होते हैं, प्रेम के वश यह लोग अपनी गोदी में लेकर रात को उन्हें सुलाया करते हैं। इस लिये बच्चों के नाभिनाल वहीं गिरे हुये हैं। भला इससे बढ़कर विश्वप्रेम का विमल दृश्य और कहां दिखाई देगा। पशुओं के बच्चों के साथ इतना प्रेम व्यवहार विदेशीय साहित्य में कहीं नहीं मिलता। आश्रम के वृक्षों के विषय में कवि कहता है कि—

निवातनिष्कम्पतया विभान्ति
योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि
(१३ स० रघु०)

मालूम होता है यतियों के देखा देखी वृक्ष भी तपस्विव्रत धारण कर निश्चल खड़े होकर योगाभ्यास कर रहे हैं। महाकवि श्रीहर्ष ने तो यहां तक कह डाला है कि बूढ़े योगियों के रूप में वायु से कम्पित वृक्ष अतिथि सत्कार के लिए अपने मीठे फलों को लिये तने की छड़ी के सहारे खड़े कंप रहे हैं। क्या ही अच्छी उक्ति है! प्रकृति निरीक्षण और कल्पना का कैसा अच्छा सम्मिलन है!

तपस्वी के घर में कौन सी सामग्री है? इसे भी जरा सुन लीजिये—

ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीप
मास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः।
तस्यै सपर्यापनुदं दिनान्ते
निवासहेतोरुटजं वितेरुः॥
(रघु० १४ स० ८१ श्लोक)

पर्णकुटी में दीपक जल रहा है। इङ्गुदी फल से तेल निकाला गया है। जमीन पर मृगचर्म का बिस्तर बिछा हुआ है। बस और कुछ नहीं है। सोने के लिये मृगचर्म और अन्धकार दूर करने के लिये दीपक! बस घरमें केवल यही सामान है।

नीचे लिखे श्लोकों में कालिदास ने मुनिजीवन के सरल सुखों का खासा वर्णन किया है—

अशून्यतीरां मुनि संनिवेशै
स्तमोपहन्त्रीं तमसां विगाह्य।
तत्सैकतोत्संगबलिक्रियाभिः
संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः॥
पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो
बीजं च बालेयमकृष्टरोहि।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गा
मुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम्॥
पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्
संवर्धयन्तीः स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः
स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्॥

परित्यक्त सीता को वाल्मीक जी शान्त कर रहे हैं।

तमसा के तीर पर ध्यान मग्न मुनियों के आसन मारकर बैठनेसे कुछ भी स्थान खाली नहीं रहता। ऐसी तमसा में जो अज्ञानान्धकार को दूर कर देने वाली है स्नान करने और उसके बालुकामय प्रदेशों पर बैठकर बलिप्रदान करने से तुम्हारे हृदय को शान्ति मिलेगी। मुनि कन्याएं ऋतु में होनेवाले फल फूल लाती हैं और पूजा के योग्य बिना जोते बोये उत्पन्न होने वाले नीवार को इकट्ठा करती हैं। यह तुम्हारे नये दुःखको दूर कर देंगी। यह बालिकाएँ अपने बल के अनुसार छोटे बड़े घड़ों में जल भर भर कर पौधों को सींचा करती हैं। लड़के होने के पहले मुनि कन्याओं के साथ रहने से तुम पुत्र प्रेम को सीख जाओगी।

वाल्मीकि के इन वचनोंमें मुनि जीवन के सुखों का कैसा अच्छा वर्णन है। घड़ों से पौधों को सींचना, पूजा के लिए धान बटोरना, भोजन के लिए फल फूल लाना, स्नान कर बलिप्रदान करना,

बालिकाओंके लिए यह कैसे निर्दोष और सात्विक काम हैं। इस जीवन में कैसा विचित्र आनन्द है। मुनि कन्याएँ प्रकृति के साथ कितनी सहानुभूति प्रगट कर रही हैं। भावी मातृ जीवन की प्रेम मयी शिक्षा, सन्तान का लालन पालन—यह कन्यायें तपोवनमें सीख रही हैं। छोटी बहिनों के समान लतिकाओं से यह प्रेम रखती हैं। नित्यप्रति जलसे सींचकर देख भाल करना उनका काम है। ऐसी संगति से कैसा अच्छा विश्व प्रेम उनके हृदय में उदय होगा, यह अनुभव सेही जाना जा सकता है। कैसा निर्दोष आनन्द का सोता बह रहा है! स्वर्गीय जीवन यह नहीं है तो और कैसा है?

आश्रम और मुनियोंके जीवन का वर्णन पढ़ कौन सहृदय ऐसा होगा, जिसके नेत्रों के सामने यह चित्र खिंच नहीं जाता। कौन ऐसा है जो इसे पढ़ कर भी कालिदास को प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षक न मानता हो?

वायु के चमत्कार

[ले०—मौलाना करामत हुसैन कुरेशी]

मातांके उदरसे निकलते ही जिस चीज़ की मनुष्य मात्र को–नहीं नहीं सारे जीवधारियों को–आवश्यकता होती है वह हवा है। हवा एक अद्भुत पदार्थ है, जिसका पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए, जिसके रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए, अनन्त काल से कवि और दार्शनिक प्रयत्न करते रहे हैं। मनुष्य की सभ्यता के आरम्भ काल में ही जब उसमें विचार शक्ति का विकाश होने लगा था तभी से उसे इस बात का ज्ञान होने लगा होगा कि वह वायु के एक अगाध समुद्र की तलैटी में रहता है। उसके दाएं बाएं, आगे पीछे, ऊपर नीचे वायु ही वायु है। जब इस वायु के समुद्र में प्रकोप होता है तो वह भयंकर अनधड़ चलने लगते हैं कि बड़े बड़े दरख़ तिनकों की तरह अपने स्थान से उखड़ कर इधर उधर जा गिरते हैं। कभी कभी इस ज़ोर की आंधी चलती है कि करोड़ों मन रेत बड़े वेग से हवा के साथ उड़ कर आकाश में आच्छादित हो जाती है और बात की बात में सैकड़ों मीलों की दूरी तै कर लेती है। ऐसे समय में दिन में रात का दृश्य दिखाई देने लगता है और रेत की वर्षा होती रहती है। ऐसी ऐसी घटनाओं का अनुभव भारत आदि देशों के मनुष्यों को लाखों वर्ष से होरहा है। अरब जैसे रेतीले मरु देशों की दम घोटनेवाली घातक बादिसिमूम का अनुभव भी वहां के रहनेवालों को लाखों वर्ष पहिले ही होगया होगा। वह ज़बरदस्त बगूले जिनमें मनुष्य और पशु भी उड़ कर कहीं के कहीं जा गिरते हैं और मर जाते हैं मनुष्य के हृदय में अनन्त काल से भय के भाव उत्पन्न करते आये हैं। इन्हीं कारणों से अनेक जाति के लोग वायु को अनेक भांति से पूजते रहे हैं। हिन्दुओं ने वायु को ही प्राण माना है, क्योंकि यही एक ऐसा पदार्थ है जिसकी अनुपस्थिति में मनुष्य का जीवन क्षण भर के लिए भी सम्भव नहीं है। वह वायु को देवता मानते हैं, जिसकी प्रेरणा से ही अनधड़ आते हैं और तूफान खड़े होते हैं। अन्य जाति के लोग भी समझते थे कि वायु का सम्बन्ध अदृश्य व्यक्तियों, सुर और असुरों से है, जो आकाश में और रिक्त स्थानों में विचरते हैं और जब उन्हें क्रोध आजाता है तो उपरोक्त भयंकर घटनायें कर दिखाते हैं। आदिम मनुष्यों को पृथ्वी और आकाश दोनों भय और भेद से भरे दीखते थे। आज कल भी मिथ्या विश्वास वाले पुरुष और स्त्रियां समझती हैं कि भूत और परेत एक प्रकार की हवा होते हैं जो समय कुसमय हवा के झोके के साथ चले आते हैं और प्रायः पीड़ा के कारण होते हैं। इसी लिए वह सदा कमरों के दरवाज़े और खिड़कियां बन्द करके भीतर ही सोते हैं और अपने आप एक भयंकर भूत खड़ा कर लेते हैं। यूनानियों के वह देवता जो बादलों में रहते हैं और अपनी असीम शक्ति का परिचय मेह, ओला, बिजली की कड़क और बादल की गरज़ के द्वारा

देते हैं केवल इसी वायु पूजा के कारण पूजे जाने लगे हैं। उत्तरीय यूरोप के निवासियों का एक पुराना गीत है, जिसमें वहां की होने वालो प्राकृतिक घटनाओं का कारण एक देवता (थौर) माना [illegible] है। उस गीत का आशय नीचे दिया जाता है:—

"[illegible]ह लालिमायुक्त प्रकाश, जो तुम आसमान में [illegible] हुआ देखते हो, वह मेरी लाल दाढ़ी है। रात [illegible] हवा के कारण वह फहराने लगती है और [illegible] की जातियों के हृदय में भय उत्पन्न करती है। [illegible]बजली मेरी आंखें हैं। मेरे रथ के पहियों का शब्द ही बादलों की गरज है। मेरे हथौड़े की चोट से ही भूक[illegible] पैदा होते हैं।"

यह शब्द युद्ध के देवता "थौर" से कहलाये गये हैं। दक्षिणीय यूरोप में भी ऐसा ही मिथ्या मत फैला हुआ है। वहां के मनुष्य मानते हैं कि देवताओं के रथों के पहियों की घड़घड़ाहट ही बादल की गरज है। जब पहियों के वेग के कारण आसमान के फरश में दरज हो जाती है तो स्वर्ग लोक के वर्णनातीति गौरव और असीम सम्पत्ति की झलक थोड़ी देर के लिए दिखाई दे जाती है, जिसको कि मनुष्य बिजली कहता है।

जब से मनुष्य का जीवन, विचार और सभ्यता पृथ्वी पर सरसाने लगी है, अगनित मनुष्यों ने जन्म लिया होगा। उनमें से बहुतों ने वायु का भेद जान लेने का प्रयत्न किया होगा, पर इस असीम समय में कोई भी सफल मनोरथ न हुआ। जो कुछ ज्ञान वायु के विषय में प्राप्त हुआ है, वह पिछले लगभग सौ वर्षों में हुआ है।

पदार्थ क्या है, इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। जिस मनुष्य को पदार्थ का, प्रकृति का, ज्ञान न हो, उसे तत्सम्बन्धी ज्ञान शब्दों द्वारा करा देना असम्भव है। कोई मनुष्य ऐसा न होगा जिसे पदार्थ का ज्ञान न होगा। यद्यपि पदार्थ की परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। साधारणतया पदार्थ के तीन गुण ऐसे हैं, जिनकी जांच करके हम यह निश्चय कर सकते हैं कि कोई दी हुई वस्तु पदार्थ मय है अथवा नहीं। वह गुण हैं:—भार, आयतन और शक्ति वाहन।

जिस चीज़ में भार है, जिसका आयतन है अर्थात् जो जगह घेरती है और शक्ति का वाहन कर सकती है, वह पदार्थ का रूपान्तर, पदार्थ मय अथवा पदार्थ निर्मित समझी जाती है। यहां पर हमें यह निर्णय करना है कि वायु भी पदार्थ है अथवा नहीं।

वायु जगह घेरती है

यह एक साधारण अनुभव की बात है कि यदि किसी गिलास का मुँह नीचा करके देग़ में डुबोना चाहें तो उसमें पानी नहीं भरता। पानी भरने के लिए यह आवश्यक है कि वह थोड़ा सा टेढ़ा कर दिया जाय। टेढ़ा होते ही उस में से कुछ बुलबुले निकलने लगेंगे और पानी भरता जायगा। हवा निकलती जायगी और उसका स्थान पानी से भरता जायगा।

यदि दो बराबर के गिलास लेकर नीचे की विधि से प्रयोग करें तो यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि जितनी वायु एक गिलासमें से निकलेगी उतना ही पानी उसमें प्रवेश करेगा। इस प्रयोग के लिए यदि दो नापने के, निशान लगे हुये, गिलास या घट मिल जायं तो और भी अच्छा है। पहिले एक गिलास को लेकर उसे कूंड़ी में डुबो पानी से भरलो और कूँड़ी में औंधा ही खड़ा कर दो। फिर दूसरे गिलास को औंधा कर उसका मुंह पानी में डुबो दो; यदि गिलास सीधा होगा तो उसमें पानी प्रवेश न करेगा। अब भरे हुये घट को बाएं हाथ में उठा लो, पर ख्याल रहे कि उसका मुंह पानी के बाहर न आने पाये, नहीं तो पानी निकल जायगा और घट खाली हो जायगा। दाएँ हाथ में जो खाली घट पहिले से लिये हुये हो उसका मुंह पानी में इतने नीचे उतार दो कि भरे हुये घट के मुंह से दो एक अँगुल नीचे ही रहे और उसको धीरे धीरे टेढ़ा करने लगो। इसमें से थोड़ी थोड़ी हवा निकलने

लगेगी और भरे हुये घट में चढ़ने लगेगी। नीचे-वाले घटमें पानी प्रवेश करता जायगा और ऊपर-वाले में पानी उतरता जायगा। किसी भी समय यह देखा जा सकता है कि नीचें के घट में के पानी का आयतन ऊपरवाले घटमें के वायु के आयतन के बराबर है। अतएव इस प्रयोग से सिद्ध होता है कि वायु भी जगह घेरती है।

चित्र* में दिखलाये हुये आकार की एक नली लो। मुँह पर अंगुली रखकर छिद्र बंद करलो और नीचे के चौड़े मुंह को पानी से भरे गिलास में डुबोने का प्रयत्न करो। पानी नली में बहुत कम चढ़ेगा। नली को पानी में इतना डुबाओ कि केवल उसका ऊपरी भाग पानी के ऊपर रहे। अब यदि ऊपरके सिरे से अंगुली ज़रा हटा दो तो उसमें से हवाकी धारा निकलती हुई मालूम होगी। साथ ही साथ नली में पानी चढ़ता हु । नज़र आयेगा।

हवा शक्ति का वाहन कर सकती है

फूंक से कागज़ के टुकड़े तिनके या धूल उड़ा सकते हैं। हवाई बन्दूक से गोली चला सकते हैं। दबी हुई हवा से और भी अनेक काम, लिये जा सकते हैं। पर्वत राशियों में मीलों लम्बी सुरंगें दबी हुई हवा से चलने वाले यंत्रों द्वारा बनाई जाती हैं। अतएव स्पष्ट है कि हवा में स्थितिस्थापकता विद्यमान है। इसी के सहारे वह शक्ति का वाहन कर सकती है और अनेक प्रकार के काम उससे लिये जा सकते हैं।

हवा में बोझ होता है

प्राचीन काल के यूनानी दार्शनिक मानते थे कि वायु पदार्थ का पतला और अदृश्य रूपान्तर है और उसका संगठन परमाणविक है। विटरूवियस ने एक जगह स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि वायु में गुरुत्व होता है। अरस्तु ने इस बात की जाँच करने के लिए कई प्रयोग किये, परन्तु कई कारणों से उनका परिणाम रूप यह सिद्धान्त निश्चय हुआ कि हवा में ऋणात्मक भार होता है अर्थात् किसी वस्तु में हवा भर देने से उस वस्तु का भार कम हो जाता है।

अरस्तू के बाद दो हज़ार वर्ष तक घोर अंधकार फैला रहा। इस समयमें दार्शनिक मत मतान्तरों का जन्म हुआ, जो प्रयोग करना नीचे कोटि के मनुष्यों का काम समझते थे। वह सत्य की खोज में केवल कल्पना का ही सहारा लेते थे और प्रयोगात्मक ज्ञान को अश्रद्धा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रयोगात्मक विज्ञान की उन्नति बिलकुल रुकी रही।

उपरोक्त समय में ही संसार के बड़े बड़े धर्मों का जन्म हुआ। और विशेषतः यूरोप में प्राचीन सभ्यता और विद्या कलाओं को बरबरों के अत्याचार से बड़ा धक्का पहुंचा। इधर भारत में यद्यपि यूनानियों और मुसलमानों के आक्रमण होते रहे, तथापि ज्योतिष और वैद्यक में बराबर उन्नति होती रही और इसी देश में विज्ञान का जन्म हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में विज्ञान का दीपक यवनों द्वारा यूरोप में पहुंच गया। वहां शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो चला था। अतएव इसकी ज्योति फैलने लगी, परन्तु इधर भारत में वह अंधाधुंध मचगयी कि लोगों को घर बाहर की सुधि हीन रही और उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा में ही तन और प्राण होम देने पड़े। अतएव सोलहवीं शताब्दी में भारत में विज्ञान की ओर से उदासीनता फैलती गई और यूरोपमें उसकी नित्य वृद्धि होती गई। वहीं वायु के उपरोक्त तीन गुणों की पूरी पूरी जांच की गई और यह सिद्ध हुआ कि वायु भी पदार्थ का रूपान्तर है। यूरोप में ही वायु के अवयवों का रहस्य खुला।

हवा दृश्य है अथवा अदृश्य?

साधारण व्यक्तियों की यह धारणा है कि यद्यपि वायु अदृश्य पदार्थ है, वह अस्पृश्य नहीं

---

* चित्र समयपर न बन सका। नली दस पन्द्रह अंगुल लम्बी और दो अंगुल व्यास की हो। उसका एक छोर तपाकर और खींचकर पतला कर लेना चाहिये, जैसा कि पिचकारी का या आंख में दवा डालने की नली का होता है।

है। वायुके अस्तित्व का ज्ञान प्रायः स्पर्श द्वारा ही होता है। वैसे पत्तोंके हिलने डोलने, धूलके उड़ने आदि से भी उसका ज्ञान होता रहता है। सच पूछिये तो श्वासकी धौंकनी हमें उसका ज्ञान निरन्तर कराती रहती है। पर क्या वायु सचमुच अदृश्य है? अदृश्य शब्दका अर्थ क्या है? अदृश्य कहते किसे हैं? आइये पहले अन्तिम प्रश्न पर विचार करलें।

मनुष्यका क्या, प्राणीमात्र का ज्ञान केवल आपेक्षिक है, निरपेक्ष ज्ञान होना मनुष्यके लिए असम्भव है। आप बरफी खाकर दूध पीजिये। शकर रहते भी दूध फीका मालूम होता है। क्यों? तीन बरतन लेकर एकमें गरम पानी रखिये। दूसरेमें गुनगुना और तीसरेमें बर्फका पानी। दायां हाथ गरम पानीमें डालिये और बायां बर्फमें। फिर दोनों उठाकर गुनगुने पानीमें डाल दीजिये। गुन गुना पानी दाएँ हाथको ठंडा और बाएँको गरम मालूम होगा। क्यों? कारण यही है कि हममें निरपेक्ष ज्ञान संचय करने की शक्ति नहीं है। हवा भी हमको इसीलिए नहीं दीखती कि हवामें हम डूबे हुए हैं। जब तक कोई ऐसा पदार्थ न हो, जिससे हम उसकी तुलना कर सकें, तब तक हमें उसके अस्तित्वका चाक्षुष ज्ञान नहीं हो सकता। पर कुछ ऐसे उपाय हैं, जिनसे हम वायु को देख सकते हैं, उसे क्या उसकी परछाईं भी देख सकते हैं।

अंगीठीमें आग भर कर धूपमें रखिये, उसके ऊपर वायु ऊपरको चढ़ती दिखलाई देगी और उसकी परछाईं भी पृथ्वी पर पड़ती दिखाई देगी। पानीके अन्दर किसी नली को डुबो दो और उसके ऊपरके सिरे से धीरे धीरे फूको। हवा के बुलबुले आपको स्पष्ट दिखलाई देंगे। पानीके कतरे आप हवामें देख सकते हैं, उसी प्रकार हवाके बुलबुले पानीमें दीख पड़ते हैं। पानीमें डूबी हुई मछलियां पानोको नहीं देख पातीं, हवामें डूबे हुए हम हवा को नहीं देख पाते। दृष्टिके लिए आकार और सीमा बद्धताकी आवश्यकता है। दिखाई पड़नेके लिए वस्तु को रङ्ग और पारदर्शकतामें, प्रकाश और छायामें आस पासके पदार्थों से कुछ विभिन्नता प्रकट करनी चाहिये, जिसका निरीक्षण कर मस्तिष्क वस्तुकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त करले। स्मरण रहे कि हम किसी भी वस्तु को नहीं देख सकते। हम केवल रङ्ग, छाया और प्रकाशकी विभिन्नताओं को देखते हैं और उन्हीं से पूर्व संचित ज्ञानके सहारे वस्तुओंकी स्थिति और आकारका ज्ञान हमको हो जाता है।

इस बातके प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। कभी कभी डाक्टर शल्य चिकित्सा द्वारा जन्मांधों को दृष्टि प्रदान करनेमें सफल हुए हैं। ऐसे मनुष्योंको दृष्टि लाभ करने पर भी, चीज़ोंका देखना सिखाना पड़ा है। देखने देखनेमें बड़ा अन्तर होता है। ठोस वस्तुओंके चित्रोंमें ठोसपना शिक्षित आंखें ही देख सकती हैं। साधारण आदमियोंको तो वह एक-तल-वर्ती रेखाएं ही प्रतीत होती हैं। नीले रङ्गकी दीवार पर उसी रङ्ग और झाईंका काग़ज़का टुकड़ा चिपका दीजिये। आपको वह दूर से दिखाई न देगा। पास आने पर जब उसका उभार दीख पड़ेगा, तब काग़ज़के अस्तित्वका ज्ञान होगा।

हवा में बोझ होता है

हवामें, हम कह आये हैं, गुरुत्व होता है। इस बातके सिद्ध करनेके लिए अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। एक कांचकी कुप्पी लो। उसमें एक छेद वाली काग लगाओ और कागमें एक ऐसी नली लगाओ जिसमें बीचमें टेप, टोंटी, हो। कुप्पीमें थोड़ा पानी भर कर, नली समेत काग लगाकर, टेप खोल दो और लोहेकी जाली पर रखकर नीचे से लेम्प द्वारा गरम गरो। जब पानी खौलने लगे और पांच मिनट तक खौलता रहे तो टोंटी बन्द कर दो और ठंडा होने दो। फिर तोल लो। तोलकर टोंटी खोलो, हवा शब्द करती हुई कुप्पीमें प्रवेश कर जायगी और तोलने पर कुप्पीका भार अधिक मिलेगा। जब पानी खौल रहा था तो हवा सब निकल गई थी और केवल

जल वाष्प कुप्पी में भरी रह गई थी। ठंडी होने पर जल वाष्प जलमें परिणत हो गई और शून्य पैदा होगया। टेप खोलने पर शून्यमें हवाका प्रवेश हो गया, जिस कारण कुप्पी का भार बढ़ गया। अब यदि नपने घट से पानी भरकर कुप्पीका आयतन निकाल लो तो उतनी ही हवाका भार कुप्पीके भारकी वृद्धिके बराबर होगा।

यदि वायु वहिष्कारक यंत्र हो तो कुप्पीको पहले तोल लो और तदनन्तर उसमें के वायुको निकालकर टेप बन्द करके दुबारा तोल लो। अन्तर से कुप्पी भर वायुका भार मालूम हो जायगा।

प्रयोगों के द्वारा मालूम हुआ है कि १ घन गज़ वायुका भार १ सेर के लगभग होता है। पाठको, अनुमान कीजिये, जिस कमरेमें मैं बैठा हुआ यह लेख लिख रहा हूं वह पांच गज़ लम्बा, तीन गज़ चौड़ा और ४ गज़ ऊंचा होगा। कदाचित् किसी मंत्र द्वारा इसमेंकी वायुको ठोस रूप दे, एक जगह इकट्ठा करके, छतसे किसीके सर पर डाल दें, तो क्या परिणाम होगा। इस डेढ़ मनके बोझके गिरने से किसी का भी चूर्ण हो जायगा। आप सम्भव है सिंहासन से बैठे हुए इस लेख को पढ़ रहे होंगे। आप जानते हैं आपने हवाका ही कितना बोझ उठा रखा है। देखिये, चौंकियागा नहीं जब आपको यह बताया जाय कि आपने लगभग १०० मन का बोझ केवल वायु का उठा रखा है। क्या कभी यह बात आपके ख़याल में भी आ सकती है कि आपके ऊपर १०० मन का बोझ लदा हुआ है और आप १०० मन का बोझ उठा सकते हैं। आपके शरीरके प्रत्येक वर्ग इञ्च पर लगभग सात सेर का वायु का बोझ (दबाव) पड़ता है।

वायु के अतिरिक्त एक और पदार्थ है, जिसे हम ईथर कहते हैं। वह सर्व व्यापी है। हमारे कण कण में वह समा रहा है। वह पत्थर से हजार गुना भारी और फौलाद से लाखों गुना मज़बूत है, तथापि हमें उसके अस्तित्व का बिलकुल ज्ञान नहीं है।

वायु मण्डल से पृथ्वी को लाभ

यह तो प्रत्येक मनुष्य का अनुभव होगा कि उसके जीते रहने के लिए श्वासोच्छ्वास क्रिया अत्यावश्यक है। बिना सांस लिए मनुष्य दस पांच मिनट तक ही जीता रह सकता है। इसी प्रकार वृक्ष और पौधे भी श्वास लेते रहते हैं। श्वासोच्छ्वास में वायु का एक अवयव मात्र—ओषजन—काम आता है। भूमि की उर्वर शक्ति नत्रजनीय पदार्थों पर निर्भर है। यह विज्ञान के पाठक कई स्थानों पर देख चुके हैं कि वृक्षों को बाढ़ के लिए वायु के शेष दो अवयव कितने आवश्यक हैं। अतएव यह कहना कि पृथ्वी पर जितनी जागती जोत जगमगा रही है वह वायुमण्डल की बदौलत ही है। वायुमण्डल ही सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का मूल कारण है और वही सौन्दर्य और जीवन का गहवारा है।

माना कि कभी कभी प्रकोप होने पर वायु से बरबादी भी बहुत हो जाती है, पर रात दिन वायुमण्डल हमारी रक्षा करता रहता है। यह तो सभी जानते हैं कि पृथ्वी तल से जितना ऊंचे चढ़ते जाते हैं, उतनी ही ज़्यादा ठंडक मिलती जाती है। जो लोग बैलूनों या वायुयानों में ५ या ६ मील ऊंचे तक पहुंचे हैं उनका अनुभव है कि मारे सर्दी के उनके हाथ पैर बेकाम होगये थे। फिर अनुमान कीजिये कि वायुमण्डल के बाहर अर्थात् २०० मील की ऊंचाई पर किस गज़ब की सरदी होगी। सम्भवतः वहां तो ताप क्रम-२७३° श (केवल शून्य) होगा। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या कारण है कि पृथ्वी का तापक्रम भी समस्त देश के तापक्रम के बराबर ही नहीं हो जाता। यद्यपि दिन में सूरज से गरमी आती रहती है, रात के १२ घण्टे का समय ही इतना पर्याप्त होता है कि पृथ्वी ठंडी होकर केवल शून्य तक पहुंच जाय। परन्तु देखा यह जाता है कि ध्रुव देश में भी, जहां महीनों

सूर्य के दर्शन नहीं होते तापक्रम शून्य से ३० वा ४० अंशों से अधिक नीचे तक नहीं जाता है। वह क्या वस्तु है जो आपकी रक्षा करती है और सूर्य को अनुपस्थिति में महा प्रलय से बचाती है। वह वस्तु है वायु मण्डल।

वायुमण्डल सूर्य की प्रकाश और तापकी किरणों को आपतक पहुंचने देता है। यह किरणें पृथ्वी से टकराकर अप्रकाशमान ताप किरणों में बदल जाती हैं, जिन्हें वायुमण्डल फिर निकल कर देश में जाने से रोकता है। वायुमण्डल दिन में गरमी पाई हुई पृथ्वी को रात को उसी प्रकार गरम रखता है, जिस प्रकार भोजन की गरमी पाये हुये शरीर की रक्षा (ओवर कोट) लबादा करता है या जिस प्रकार लौड़ बदन को गरम रखती है।

परन्तु महाशयो, समुद्र इस वायुमण्डल का शनैः शनैः पान कर रहा है। आज से करोड़ों वर्ष बाद वायुमण्डल को वह उदर सात् करचुका होगा। तब महा प्रलय का समय आजायगा। उस समय का खयाल करते हुये भी रोमांच खड़े हो जाते हैं।

लाखों मन भारी गोलों की मार से आप कैसे बचते हैं ?

विज्ञानके पिछले अंक में "उल्कापात" शीर्षक लेखमें आकाशीय गोला-वर्षाका कुछ वृत्तान्त दिया है। प्रति दिन लगभग दो करोड़ उल्का हमारे वायु-मण्डल में प्रवेश करते रहते हैं। वायु मण्डल के बाहर अनन्तदेशमें असंख्य उल्का, जिनका आकार रेतके कण से लेकर बड़े बड़े पर्वतों तक का सा होता है, बड़े वेग से इधर उधर घूमते रहते हैं। इनका वेग प्रायः २० से १०० मील प्रति सैकंड तक होता है। इनमेंसे कुछ वायुमण्डलमें भी प्रवेश कर जाते हैं और कभी कभी पृथ्वी तक पहुंच जाते हैं। अब ज़रा इस बात को सोचिये कि यदि इनमेंसे कोई एक छोटा सा उल्का भी पृथ्वी तल तक अपने असली वेग से पहुंच जाय तो क्या परिणाम हो। १२ इंच की तोप का गोला प्रायः एक तिहाई मील प्रति सैकंड के वेग से चलता है। उसमें इतनी गति सम्भूत शक्ति होती है कि एक फुट मोटी फौलाद की चद्दर को दफ़ती की नाईं छेद कर निकल जाता है। गति सम्भूत शक्ति वेग के वर्ग के अनुपात में बढ़ती है। अनुमान कीजिये कि १०० मील प्रति सैकंड के वेग से चलने वाले, गोले के समभार वाले उल्का में कितनी अधिक शक्ति होगी। बड़े बड़े पहाड़ों की हक़ीक़त उन के सामने कुछ न होगी। पृथ्वी पर पहुंचतेही, हज़ारों फुटतक धंसते हुये वह चले जायंगे। परन्तु वायु मण्डल यहाँ भी हमारे आड़े आता है। वायुमण्डलमें प्रवेश करते ही वायु की रगड़ के कारण उल्का का वेग घटने लगता है और उसमें गरमी पैदा होने लगती है। यही गरमी उसे जलाकर तहस नहस कर देती है या उसकी छार छार हो जाती है। इसी से बहुत कम उल्का पृथ्वी तक पहुंच पाते हैं और यदि पहुंच भी जाते हैं तो उनका वेग बहुत घट जाता है। कदाचित् वायुमण्डल की चादर उघाड़ दी जाय, तो सरदी के अलावा इस आकाशी गोला वर्षा के कारण समस्त प्राणियों का अन्त बात की बात में होजाय और पृथ्वी चलनी की नाईं छिद्र युक्त हो जाय या मक्खिका का सा छत्ता दीखने लगे।*

[असमाप्त]

---

* प्रो० ब्रजराज, बी० एस-सी., ने परिषद् के एक अधिवेशन में 'वायु' पर व्याख्यान दिया था। उसी के नोट लेकर यह लेख लिखा गया है। यदि प्रोफेसर महोदय स्वयम् इसे लिखते तो अपूर्व आनन्द आता, परन्तु समयाभाव से वह ऐसा न कर सके। अब जो कुछ आपका एक भाई भक्ति भाव से भेट कर सकता है प्रस्तुत है, उसे स्वीकार कीजिये।

—कुरैशी।

(पृष्ठ ५६ के आगे)

हाइड्रोजन, कोल गैस या अल्काहल वाष्प भरकर उसमें रखी जायं और आर्क एक शक्ति-शाली चुम्बकके ध्रुवोंके बीचमें रखा जाय तब जो स्पन्दन उपरोक्त प्रकार जुड़ी हुई बेठनमें होंगे उनकी आवृत्ति बहुत अधिक होगी और वह तार रहित समाचार भेजनेके लिए सर्वथा उपयोगी होंगे। इस बेठनको ऐन्टेनावाली बेठनके समीप रखनेसे ऐन्टेनामें भी स्पन्दन उपपादित हो जायगा और उससे तरंगें भी विसर्जित हो जायंगी।

यह तरंगें हीयमान नहीं होतीं अर्थात् इनका कम्प विस्तार नहीं घटता। अतः यह कहा जाता है कि इस रीतिसे बहुत थोड़े कम्पविस्तारवाली तरंगोंसे वही काम चल सकता है जो मारकोनीके प्रेषकसे उत्पन्न हुई बहुत बड़े विस्तारवाली तरङ्गोंसे चलता है,क्योंकि यद्यपि प्रत्येक तरङ्गका विस्तार कम है किन्तु तरङ्गोंकी संख्या अधिक होनेसे ग्राहक यंत्र पर वही प्रभाव पड़ जाता है। किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि इस प्रेषकको काममें लानेके लिए बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। बहुतसी बातोंका सदा ध्यान रखना पड़ता है। अतः अभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह मारकोनीके यंत्रसे अच्छा है या बुरा।

अंतमें एक और प्रकारके प्रेषकका उल्लेख करना है। बहुत से पाठकोंके मनमें यह प्रश्न अवश्य उठा होगा कि जब आजकल डाइनेमो द्वारा अन्योन्यान्तर गामी प्रवाह उत्पन्न होता ही है तब एक बेठनको ऐसे डाइनेमोसे जोड़ देने मात्रसे उसमें स्पन्दन उत्पन्न हो जायगा। फिर इस कार्यकेलिए इतने झंझटोंकी क्या आवश्यकता है? इस प्रश्नका उत्तर देनेमें कोई कठिनाई नहीं। यदि ऐसे डाइनेमो द्वारा उत्पन्न किये हुए स्पन्दनकी आवृत्ति इतनी अधिक है (प्रायः १ लाख) तो अवश्य ही उसका प्रयोग लाभकारी होगा। साधारण डाइनेमोकी आवृत्ति तो इतनी होती नहीं, किन्तु क्या इस कार्यके लिए विशेष प्रकारके डाइनेमो नहीं बनाये जा सकते?

साधारण डाइनेमोमें बहुत से चुम्बकीय ध्रुव होते हैं और बहुत सी बेठनें। यातो ध्रुवोंको स्थिर रखके बेठनोंको एक पहियेपर लगाकर घुमाते हैं या बेठनोंको स्थिर रखके ध्रुवोंको उसी प्रकार पहियेपर लगाके घुमाते हैं। ध्रुवोंकी अधिकता और पहियेके वेगपर ही इससे उत्पन्न होनेवाले प्रवाहकी आवृत्ति निर्भर है। जैसे यदि किसी डाइनेमोमें २० जोड़े ध्रुव हों और पहिया एक मिनटमें ३००० या एक सैकंडमें ५० चक्कर करे तो प्रवाहकी आवृत्ति २० × ५० = १००० होगी। अर्थात् एक सैकंडमें प्रवाहकी दिशा २००० बार बदलेगी। पहियेकी नाप या उसके वेगके बढ़ानेकी भी सीमा है। पहियेकी परिधिका वेग ३००–४०० फुट प्रति सैकंडसे अधिक नहीं होना चाहिये। अतः यदि उसका व्यास २ फुट हो तो एक सैकंडमें प्रायः ५० चक्करसे अधिक उस पहियेकेलिए हानिकर हैं। ऐसे पहियेके साथ यदि ४०० जोड़े ध्रुवोंका प्रयोग किया जाय तो भी प्रवाहकी आवृत्ति २०.००० से अधिक नहीं हो सकती। परन्तु इससे भी तार-रहित समाचार प्रेषकोंका काम नहीं चल सकता, क्योंकि इस कार्यकेलिए १ लाख या कमसे कम ५०००० की आवृत्ति तो नितान्त आवश्यक है।

यदि ऐसा यंत्र बन सके और उसका वैद्युतिक दवाव (E.M.F.) भी खूब अधिक हो तो न तो चिनगारियोंकी आवश्यकता हो और न आर्क लम्पकी। उसका एक ध्रुव ऐन्टेनासे जोड़ देना होगा और दूसरे ध्रुवको पृथ्वीमें गड़े हुए किसी धातुके पत्रसे। हां, ऐन्टेना और डाइनेमोमें स्वरैक्या तो अवश्य करना होगा।

इस प्रकारके कई डाइनेमो बनाये गये हैं किन्तु इनमें दो ही मुख्य हैं। एक अलैक्ज़ेंडरसन (Alexanderson) का और दूसरा गोल्डश्मिट (Goldschmidt) का। पहिलेकी आवृत्ति प्रायः १ लाख हो जाती है, किन्तु दूसरेमें चाहे जितनी बढ़ाई जा सकती है। पहिलेमें साधारण डाइनेमोके

ही समान विद्युत्प्रवाह उत्पादित किया जाता है और दूसरेमें निम्न आवृत्तिके अन्योन्यान्तर गामी प्रवाह या एकदिशागामी प्रवाहको ही उच्च आवृत्तिवाला बना लिया जाता है। इनका सविस्तार वर्णन करनेकी यहां कोई आवश्यकता नहीं।

इन रीतियोंके अतिरिक्त तार-रहित समाचार भेजनेके लिए स्पन्दन उत्पन्न करनेकी एक और रीति है, किन्तु यह अभी इस योग्य नहीं हुई है कि दूर दूर समाचार भेजनेके काम आ सके। इसमें न तो चिनगारीवाले प्रेषककी भांति ह्रीयमान तरङ्ग-समूहोंकी विरल श्रेणी उत्पन्न होती है और न ऐसी तरङ्गें जिनका कम्प विस्तार घटता ही न हो। इसका स्थान इन दोनोंके बीचमें है। इसकी तरङ्गें ह्रीयमान तो अवश्य होती हैं, किन्तु एक समूहका अग्रभाग दूसरेके पृष्ठ भागसे प्रायः लगा ही रहता है। अर्थात् यद्यपि कम्पविस्तार स्थिर नहीं रहता तथापि कहा जाता है कि इसकी तरङ्ग श्रेणीमें ऐसे स्थान भी नहीं होते कि जहां तरङ्गोंका अभाव ही हो। यह आविष्कार गैलेटी (Galleti) का है।

इसमें अधिक वैद्युतिक दबाववाले एक दिशा गामी प्रवाहका प्रयोग होता है और चिनगारीवाली गोलियोंके कई जोड़े इस प्रकार लगाये जाते हैं कि पहिले एक जोड़ेमें चिनगारी निकले तब थोड़ी देर बाद दूसरे जोड़ेमें और तब उतनी ही देर बाद तीसरेमें। अर्थात् क्रमसे एक निर्दिष्ट समयके पश्चात् उत्तरोत्तर कई चिनगारियां उत्पन्न होती हैं और प्रत्येक चिनगारी ऐन्टेनामें विद्युत्स्पन्दन करके तरङ्गें विसर्जित कर देती हैं। यह चित्र ३८ में स्पष्ट दिखाया गया है।
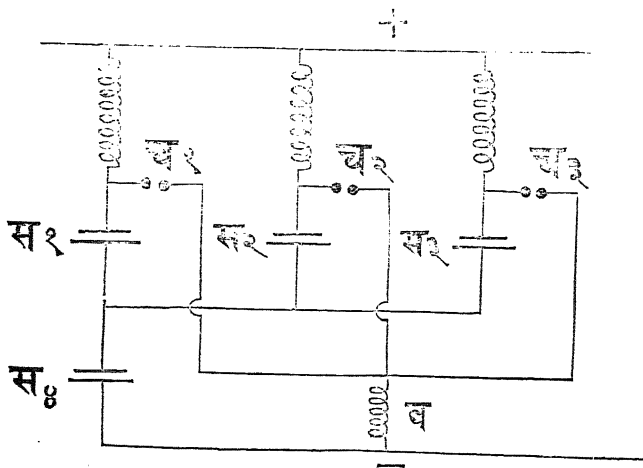
+ और − चिह्नवाली रेखाऐं उन तारोंको सूचित करती हैं जिनके द्वारा विद्युत्प्रवाह इस प्रेषकमें प्रविष्ट कराया जाता है। $च_1$, $च_2$, $च_3$ इत्यादि चिनगारी निकलनेके स्थान हैं और $स_4$, $स_1$ $स_2$ इत्यादि विद्युत्संग्राहक हैं। स४ के ही कारण चिनगारियां सब एक साथ नहीं निकलतीं, किन्तु क्रमसे एकके पश्चात् एक, समान अंतरसे, निकलती हैं। मि० गैलेटी कहते हैं कि इस प्रकार वह एक सैकंडमें प्रायः १०००० चिनगारियां उत्पन्न कर सकते हैं।

चित्र ३८

किन्तु यह बड़ी भूल होगी यदि यह समझ लिया जाय कि ऊपर लिखी हुई सभी रीति व्यवहारमें एकसी या समान उपयोगिता रखती हैं। क्योंकि किसी विशेष समयपर अनुकूल परिस्थितिमें किसी प्रयोगका सफल हो जाना एक बात है, किन्तु व्यापारके लिए सदा सर्वदा प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी बिना रोकटोक तार-रहित समाचार भेज सकना दूसरी बात है।

तार-रहित समाचार-प्रेषकोंमें निम्नलिखित बातें होनी अत्यन्त आवश्यक हैं:—

१—समाचार किसी भी समय भेजा जा सके।

२—उसके भेजने और समझनेमें गलती न हो।

३—दूरतक समाचार भेजनेके लिए जितनी अधिक शक्तिकी आवश्यकता हो उतनी प्रेषक तरंगोंके रूपमें परिणत कर सके।

४—विद्युत्स्पन्दनकी आवृत्ति और तरंगोंकी लम्बाई सर्वथा स्थिर हो, क्योंकि इनमें थोड़ी भी घटबढ़ हानिकर है।

५—यदि तरंग श्रेणी विरल हो तो एक तरंग समूह और दूसरे तरंग समूहके बीचका अंतर स्थिर रहे अर्थात् एक तरङ्गके बाद दूसरी ठीक निर्दिष्ट समयके पश्चात् ही निकले।

६—प्रेषकमें जितनी शक्ति पहुंचाई जाय उसका जितना अधिक भाग हो सके तरङ्गरूपमें परिवर्तित हो जाना चाहिये।

यद्यपि यह अंतिम बात मुख्य आवश्यकताओंमें से नहीं है तो भी यह स्पष्ट है कि व्यापारिक और व्यवहारिक दृष्टिसे यह भी कुछ कम ज़रूरी नहीं है।

जब इन सब बातोंपर दृष्टि रखकर इन भिन्न भिन्न प्रकारके प्रेषकोंपर विचार किया जाता है तब स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन सबको समान मूल्यके समझना कितनी बड़ी भूल है। थोड़े ज्ञान और थोड़े अनुभववाले मनुष्य ही यह समझते हैं कि इन सब यंत्रोंसे एक ही प्रकारका काम हो सकता है।

इसमें संदेह नहीं कि इन सभी यंत्रोंसे विद्युत्स्पन्दन कराया जा सकता है, किन्तु बड़े विस्तृत अनुभवने मारकोनीके चिनगारीवाले प्रेषककी उत्कृष्टता और व्यवहारिक उपयोगिताको अवश्य सिद्ध और प्रमाणितकर दिया है। यह अभी प्रमाणित नहीं हुआ है कि तार-रहित टेलीफोनको छोड़कर और कहीं स्थिर-कम्पविस्तार-वाली तरङ्गें अधिक उपयोगी होती हैं। अतः यद्यपि अनेक प्रकारके प्रेषक-यंत्रोंका आविष्कार हुआ है और सम्भवतः किसी समय उन्नत होकर वह अधिक उपयोगी सिद्ध हो जायं, तथापि इस समय तो यहा कहना होगा कि मारकोनीके यंत्र ही सबसे उत्कृष्ट हैं। उन्हें ही संसारभरमें सबसे पहिले तार-रहित समचारोंके भेजनेमें व्यापारिक दृष्टिसे सफलता प्राप्त हुई है और आज इस नवीन और विलक्षण आविष्कारसे संसारको जितना लाभ हुआ है उसका श्रेय अवश्य ही महाशय मारकोनीको प्राप्त है।

भारत-गीत ६३

आर्य महिला

अहो पूज्य भारत-महिला-गण, अहो आर्य-कुल-प्यारी
अहो आर्य-गृह-लक्ष्मि-सरस्वति, आर्य-लोक-उजियारी
अहो आर्य-मर्याद-स्रोतिनी, आर्य-हृदय की स्वामिनि
आर्य-ज्योति, आर्यत्व-द्योतिनी, आर्य-वीर्य-घन-दामिनि
आर्य-धर्म-जीवन-महिमा-मयि, आर्य-जन्म-संजीवनि
आर्य-शील-सुषमा-मयि, सुन्दरि, अयि मा, आर्य सती-मणि
अयि त्रिभुवन-अभिवन्द्य-यशस्विनि, अयि त्रि-शक्ति-संशोभिनि
त्रि　-जयिनि मृग नयनि, मनस्विनि, मधुमयि, त्रिजग-प्रलोभिनि

तुम हो शक्ति अजेय, विश्व की, अयि अमेय-बल-धारिणि
अयि स्वदेश-सुख-दुःख-संगिनी, अखिल श्रेय-संचारिणि
आर्य जगत में, जननि, पुनः निज जीवन-ज्योति जगाओ
आर्य हृदय में पुनः आर्यता का शुचि स्रोत बहाओ
अक्षय सुकृत-मयी स्व-कुक्षि से कृती आर्य सुत ज्याओ
त्रितय शक्ति-पूरित स्व-वक्ष से पुनः पुंस्त्व-पय प्याओ
करो सार्थ कमनीय नाम निज, अहो आर्य-कुल-कामिनि
आर्यप्रेम की पुण्य पताका, आर्य गेह की स्वामिनि

श्रीपद्मकोट
१६ - १२ - १९१९

—श्रीधर पाठक।

पारिभाषिक शब्द

अब वह समय आ गया है कि पारिभाषिक शब्दोंको निश्चित रूप दे देना चाहिये। दसवर्ष पहले हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थ मिलने मुश्किल थे। यद्यपि पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० बापूदेव शास्त्री, पं० लक्ष्मीशङ्कर मिश्र प्रभृति विद्वानोंने गणित, भौतिक विज्ञान आदि विषयों पर ग्रन्थ लिखे, परन्तु वह लुप्तप्रायसे होगये थे और अब भी हैं। आज ईश्वरकी कृपासे बहुत से वैज्ञानिक ग्रन्थ देखनेमें आते हैं और आशा है कि थोड़े दिनोंमें ही हिन्दी भाषाका वैज्ञानिक भाण्डार भरा पूरा दीखने लगेगा। इसीलिए आज उपरोक्त कामकी आवश्यकता है। परन्तु इस काममें धनकी अपेक्षा है। हमें आशा है कि कोई विज्ञान प्रेमी इस कार्यके लिए पर्याप्त धन परिषद्को प्रदान करेंगे।

डा० त्रिलोकीनाथ वर्माके सुप्रख्यात ग्रन्थ "हमारे शरीरकी रचना" में जो पारिभाषिक शब्द आये हैं, यहां दिये जाते हैं। वैयाकरणों, साहित्यिकों और वैज्ञानिकोंसे निवेदन है कि जहां परिवर्तन उचित समझें, सूचना दें।

A

Abbreviation संकेत
Abdomen उदर
Abdominal उदरस्थ
Abductor muscle बहिर्नायनी पेशी
,, of thigh ऊरु बहिर्नायनी
Absence of sound निःशब्दता
Absorption, co efficient of आत्मीकरण-का गुणक
Acetabulum वंक्षणोलूखल
Aconite मीठा तेलिया
Acoustic nerve श्रावणनाड़ी
Acromion process अंसकूट
Act of respiration श्वास क्रिया
Adductor longus ऊरु अन्तर्नायनी दीर्घा
,, magnus ,, ,, गरिष्ठा
,, muscle अन्तर्नायनी पेशी; अन्तर्वाहिनी पेशी
Adductor of thigh ऊरु अन्तर्नायनी
Adipose tissue वसामय सौत्रिक तंतु।
Afferent केन्द्रगामी
Air वायु

Air cell वायु कोष्ठ
Air passage श्वास मार्ग
Albumen अलब्युमेन
Alimentary canal अन्नमार्ग
,, system पोषण संस्थान
Alkaline क्षारीय
Alveolus दन्तोलूखल
Amœba अमीबा
Amœboid अमीबावत
Amphi-arthrodial अल्प चेष्टावन्त
Amphibia मंडूक श्रेणी, स्थलजलचर
Amylopsin श्वेतसार विश्लेषक
Anæmia रक्तहीनता
Anal canal गुदा
Analysis विश्लेषण
Anatomist व्यवच्छेदक
Anatomy व्यवच्छेदविद्या, शवच्छेद विद्या
Angle of rib पर्शुका कोण
Animal प्राणि
Animal kingdom प्राणिवर्ग
Animal protein जान्तविक प्रोटीन
Ankle टखना, गुल्फ
Anterior fontanelle ब्रह्मरंध्र, ब्रह्मविवर, पूर्व विवर
Anterior tibial artery जंघापुरोगा धमनी
,, nares नासापुरोद्वार
Antero-inferior spine पुरोधः कूट
,, superior spine पुरोर्ध्व कूट
Antibacterial serum कीटाणुनाशक सीरम
Anti-helix कर्णमध्यार्बुद
Anti toxic serum विषनाशक सीरम
Anus मलद्वार, च्युति
Aorta बृहत् धमनी, महा धमनी
Apex शिखर
Arachnoid मस्तिष्कका मध्यावरण
Argon आर्गन
Arm बाहु
Artery धमनी
Arteriole धमनिका
Articular capsule संधिकोष
Articular process सन्धि प्रवर्धन
Articulation संधि;
,, ,, शब्दोच्चारण
Ascending उद्गामी
,, aorta उद्गामी बृहत् धमनी
,, colon ,, बृहदंत्र
Assimilation एकीकरण, समीकरण
Atrium of heart ग्राहक कोष्ठ
Attraction sphere आकर्षण गोला
Auditory centre श्रावण केन्द्र
,, tube कंठ कर्णी नली
Auricular artery शष्कुलीया धमनी
Auricular surface of ilium त्रिकस्थालक
Aves पक्षीश्रेणी
Axilla कक्षतल, कक्ष
Axillary artery कक्षीया धमनी
Axillary border कक्षानुगा धारा
Axillary nerve कक्षीया नाड़ी
Axis अक्ष
,, cylinder सूत्राक्ष

B

Back पीठ
Backbone पृष्ठवंश
Back of neck कृकाटिका
Bacteria कीटाणु, बकटीरिया
Base अधोभाग
,, of skull करोटि पीठ
Beak like process तुण्ड
Beard कूर्च
Biceps femoris द्विशिरस्का और्वी
,, muscle द्विशिरस्का पेशी

Biconcave युगल-नतोदार
Biconvex युगलोन्नतोदर
Blastodermic vesicle बुद बुद
Blood रक्त
Blood circulation रक्तचक्र, रक्तसंचार
,, circulatory system रक्त वाहक संस्थान
,, corpuscle रक्त कण
,, plasma रक्तवारि
,, propelling organ रक्त संचालक यंत्र
,, serum रक्तरस
,, vessel रक्तवाहिनी
Body गात्र, पिण्ड
,, of mandible हनु मण्डल, हनुगात्र
Bone अस्थि
,, , head of a मुण्ड
,, , marrow मज्जा
,, , nasal नासस्थि
,, , public भगास्थि
,, , stapes रकाब
Brachialis muscle कूर्पर नमनी पेशी
Brain मस्तिष्क
Bridge of the nose नासा वंश
Bronchi वायु प्रणालियां
Bronchiole सूक्ष्म वायु प्रणाली, वायु प्रणालि
Bronchus वायु प्रणाली

C

Calcaneus पार्ष्णि अस्थि
Calcium केलसियम, खटिक
,, carbonate खटिक कर्बनेत
,, compound खटिक यौगिक
,, Fluoride खटिक प्लविद, फ्लोरिद
Phosphate खटिक फोस्फेत, स्फुरित

Canal of Schlemm (चक्षु का) चक्रवत् शिरा कुल्या
Cane sugar इक्षोज, गन्नेकी शकर
Canine teeth रदनक दन्त
Cannon कैनन (एक डाक्टर का नाम)
Capillary केशिका
Capitulum कन्दली
Capitate शिरोधारी
Capsule बन्धन कोष
Capsule of kidney वृक्क कोष
,, of lens ताल कोष
Caput शिर
Carbohydrates कर्बोज
Carbon कर्बन
Cardiac centre हृदय केन्द्र
,, opening of stomach अमाशय का हृदय द्वार
,, portion of stomach आमाशय का मध्यांश
,, sound हृदयका शब्द
Coronary artery हार्दिकी धमनी
Carotid artery शिरो ग्रीया धमनी
Carpals कूर्चास्थि
Cartilage उपास्थि, कार्टिलेज, तरुणास्थि
Caruncula शंकु आकार पिण्ड
Caseus किलाट
Casein किलाटज
Caseinogen किलाटजजनक
Cauda Equina अश्व पुच्छ
Caudate nucleus केत्वाकार पिण्ड
Cell सेल
Cellulose सेल्युलोज, काष्ठोज
Cement सीमेंट, संघात, मसाला
Centigrade शतांश
Centimetre शतांशमीटर
Central मध्यस्थ

Central nervous system मध्यस्थ वात मंडल
„ canal of cord सुषुम्ना की नाली
„ sulcus माध्यमिक सीता
Centre केन्द्र
„ of ossification अस्थि विकाशकेन्द्र
Cerebellum लघु मस्तिष्क
Cerebral fossa वृहत् मस्तिष्क खात
„ nerve मास्तिष्क नाड़ी
Cerebrum वृहत् मास्तिष्क
Cervical plexus ग्रैवेयी नाड़ी जाल
Cervical artery ग्रैवेयी धमनी
Cervix uteri गर्भाशय की ग्रीवा
Chyme आहार रस
Chin चिबुक
Chloride क्लोराइड, हरिद
Chorion अङ्कुर विशिष्ट आवरण (भ्रूण का)
Chloroform क्लोरोफार्म
Cheese किलाट
Chemical रासायनिक
„ composition रासायनिक संगठन या संघट्टन
Chain of ganglia गंड शृंखला
Ciliary body उपतारानुमण्डल
Cilium सेलांकुर
Circulation of blood रक्त परिक्रमण, रक्त संचार, रक्त परिभ्रमण
„ lymph लसीका संचार
Circumvallate papilla खातवेष्टितांकुर
Citrate सिट्रेट
Class श्रेणी
Clavicle , अक्षक, हंसली
Clot छिछड़ा, थक्का
Cluster कूचा
Cocci विन्दवाकार कीटाणु
Coccyx गुदास्थि, चंचु, चंचुअस्थि, पुच्छास्थि
Cochlea कोकला
Coition मैथुन
Colon वृहदंत्र
Columnar स्तंभाकार
Common carotid artery मूल शिरोधो वर्तिनी धमनी
„ iliac artery मूल श्रोणिगा धमनी
„ „ vein संयुक्ता श्रोणिगा शिरा
Common salt नमक
Composition संगठन, संघट्टन
Compound यौगिक मुरक्कब, संयोजित
Concave नतोदर
Concha कर्ण कुहर
Condyle of mandible हनुमुण्ड
Conical शंक्वाकार
Contraction संकोच
Connective tissue बन्धकतन्तु
Convolution चक्रांङ्ग
Cor हृदय
Convex उन्नतोदर
Coraco-acromial ligament तुंड कूटिका बंधन
Coracohumeral ligament तुण्ड प्रगंडिका बंधन
Coracoid process अंसतुण्ड
Cornea कनीनिका
Corniculate cartilage शंकाकार कार्टिलेज
Corpora qaudrigemina चतुष्पिण्ड
Coronary artery हार्दिकी धमनी
Coronoid fossa चंचुखात
„ process चंचु प्रवर्धन
„ process of mandible हनुकुन्त
Corpus गात्र
Corpus callosum महा संयोजक
Corpuscle कण
Corpus albicantes श्वेतांश

Corpus cavernosum urethrae मूत्रदंडिका
Corpus cavernosum penis शिश्न दंडिका
Corpus luteum पीतांग
Corpus mammillarium वृत्त पिंड
Corpus penis शिश्न शरीर
Corpus uteri गर्भाशय का शरीर
Corrugator supercilii भ्रू संकोचनी पेशी
Cortex वल्क
Corti कौरटी (नाम एक वैज्ञानिक का)
Corti's tunnel श्रोत्र सुरंग
Costal cartilage उपपर्शुका
Covering वेष्ट
Cowper's glands शिश्न मूल ग्रन्थि
Cranium कपाल
Cranial nerve मास्तिष्क नाड़ी
Cream बालाई
Cream शर
Cribriform plate चालनी पटल
Crico thyreoid membrane मुद्रा चुल्लिका कला
Crista galli शिखर कंटक
Crown दन्त शिखर
Crus cerebri मस्तिष्क स्तंभ, नाड़ी स्तंभ
Cubical घनाकार
Cubic millimetre घन मिलीमीटर, घन सहस्रांश मीटर
Cuboid bone घनास्थि
Cutaneous त्वगीया
Cutis vera चर्म
Cylindrical बेलनाकार
Cisterna chyli लसीका कोष

D

Decidua गर्भकला, पतनशाल गर्भकला
Decimetre दशांश मीटर
Deep cavity उलूखल
Defæcation शौच
Deglutition गिलन
Deltoid muscle अंसाच्छादनी पेशी
Dens दंत प्रवर्धन
Dentine रदिन
Dentition दन्तोद्गम
Dermis चर्म
Descending aorta अधोगामी महाधमनी
Descending colon „ वृहत् अंत्र
Destination इष्ट प्रदेश
Dextrose द्राक्षौज, अंगूरी शकर
Diaphragma वक्षोदर मध्यस्थ पेशी
Diaphragm muscle वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी
Diarrhœa अतिसार
Diarthrodial joint चेष्टावन्त संधि
Diastole प्रसार
Differentiation of structure रचना विभेदन, रचना भेद
Digestive canal आहार पथ
Digestive system पोषण संस्थान
Digital artery आंगुलीया धमनी
Diphtheria डिपथीरिया
Disc चक्री
Discus proligerus डिम्बवेष्ट
Dislocation विसंधान, संधिभंग, संधिच्युति
Division of labour श्रम विभाग, कार्य विभाग
Dorsum of hand करभ
Duct प्रणाली
„ , having a प्रणाली सहित
Ductless प्रनाली विहीन
Ductus deferens शुक्र प्रणाली
Duodenal पक्वाशयिकी
„ artery „ धमनी
Duramater मस्तिष्क का वाह्यावरण

E

Ear कर्ण
Efferent केन्द्रत्यागी
Ejaculatory duct शुक्र स्रोत
Elastic स्थितिस्थापक
Elasticity स्थितिस्थापकता
Elbow कूर्पर
Elbow joint कफोणि संधि
Element मूलतत्व, मौलिक
Eleventh nerve एकादशी नाड़ी
Ellipsoid दीर्घ गोलाभाकार
Embryo गर्भ
Embryology गर्भ विज्ञान
Emotions चित्त वृत्तियां
Emulsion इमलशन
Enamel रुचक, दन्त वेष्ट
Encephalon मस्तिष्क
Energy शक्ति
Eosinophile अम्लरंगेच्छु
,, leucocyte ,, श्वेताणु
Epidermis उपचर्म
Epididymis उपांड
Epiglottis स्वरयंत्रच्छद
Epigastric region कौड़ी प्रदेश
Epigastrium कौड़ी
Equilibriation साम्यस्थिति
Erector penis शिश्न प्रहर्षिणीपेशी
Erythrocyte रक्ताणु
Ethmoid बहु छिद्रास्थि, झर्झरास्थि
Eustachian tube कण्ठकर्ण नाली
Excretion मलत्याग, मलोत्सर्ग, मलोत्सर्जन
Expiration प्रश्वास, बहिः श्वसन
Extensor muscle प्रसारणी पेशी
External बहि, वाह्य
,, acoustic meatus कर्णांजलि
External auditory meatus कर्णांजली
,, carotid artery बहिः शिरोधीया धमनी
,, ear वाह्य कर्ण
,, illiac artery वाह्य श्रोणिगा धमनी
,, illiac vein ,, ,, शिरा
,, nose वहिर्नासिका
External organs of generation वाह्य जननेन्द्रियां
,, rectus of eye सरल बहिर्नेत्रचालनी
,, surface वहिः पृष्ठ
,, urinary meatus मूत्र वहिर्द्वार
Eye चक्षु, नेत्र, पद
Eye ball अक्षि गोलक
Eyebrow भ्रू ; भव
Eye lash अक्षि पक्ष्मन् , लोम, बरौनी
,, piece चक्षुताल

F

Facet स्थालक
,, for clavicle अक्षक संधिस्थालक
,, for costal cartilage उपपर्शुकास्थालक
Facial or External maxillary artery मौखिकी धमनी
Facial nerve मौखिकी नाड़ी
Faeces मल, विष्ठा
Fahrenheit फहरनहाइट
Falx cerebelli लघु दात्रिका
Falx cerebri वृहत् दात्रिका
Fascia मांसावरक
Fat वसा
Fatty acid मैदस अम्ल
Fatty Fascia वसामय झिल्ली
Female genital organs नारी जननेन्द्रियां
Female pelvis नारी वस्ति गह्वर
Femur ऊर्वस्थि, ऊरु नलक

Fenestra vestibuli कर्णकुटी द्वार
„ cochlea कोकला द्वार
Fertilisation गर्भ स्थिति, गर्भाधान
Fibrin फाइब्रिन
Fibrinogen फाइब्रिनजनक
Fibre सूत्र
Fibre like सूत्राकार
Fibro cartilage सूत्र मय-कार्टिलेज
Fibrous सौत्रिक
Fibrous tissue सौत्रिक तंतु, बंधक तन्तु
„ , made up of सौत्रिक
Fibula अनु जंघास्थि, फिबुला
Filiform papillae सूत्राकारांकुर
First appearance of menstrual discharge रजोदर्शन
Flaccid condition शिथिलितावस्था
Flexed posture संकुचित स्थिति
Flexor digitorum brevis पादांगुली संकोचनी मध्य पर्व्विका पेशी
„ „ longus पादांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका पेशी
„ profundus हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका पेशी
Flexor muscle नमनी पेशी, संकोचनी पेशी
Floor of fossa गूहा भूमि ; खात भूमि
Fold of nates चूतड़
Fontanelle विवर
Food इड़ा, खाद्य
Foot पद, पाद
Foramen magnum महाछिद्र
Foramen rotundum वृत्तछिद्र
Foramen spinosum कोण छिद्र
Forceps चिमटी
Fore arm अग्र बाहु, प्रकोष्ठ
Fore arm bone प्रकोष्ठास्थि, अरत्नि
Forehead मस्तक
Fossa खात
Fracture अस्थि भंग
Freely moveable joint बहु चेष्टावन्त संधि
Frontal air sinus ललाट कोटर
Frontal bone ललाटास्थि
Frontal pole ललाट ध्रुव
„ sinus ललाट कोटर
Fundus of stomcch ऊर्ध्वांश (आमाशयका)
Fundus uteri गर्भाशयका ऊर्ध्वांश
Fungiform papillae छत्रिकांकुर
Funnel फ़नल
Furrow परिखा

G

Gastric आमाशयिक
„ artery आमाशयिकी धमनी
Gastric juice आमाशयिक रस
„ region आमाशयिक प्रदेश
Gastric nemius जंघा पिण्डिका पेशी
Gelatine जिलेटीन
Gemelli muscles यमला पेशियां
Genio-hyoid muscle चिबुक कंठिका पेशी
Gland ग्रन्थि
Glans penis मणि
Glenoid cavity of scapula अंसपीठ
„ fossa हनुसन्धिस्थालक
Glossopharyngeal nerve जिह्वा कंठनाड़ी
Glossus जिह्वा
Gluten गोधूमज
Gluteus minimus नैतम्बिका लघवी
Gluteus medius नैतम्बिका मध्यस्था पेशी
Gluteus maximus नैतम्बिका महती
Gluteus muscle नैतम्बिका पेशी
Gluteal artery नैतम्बिकी धमनी
Glycerine ग्लीसरीन
Glycogen शर्कराजन, शर्कराजनक, ग्लाइकोजन

Graaffian follicle डिम्बकोष, डिम्बाशय
Gracilis ऊर्वन्तः पार्श्विका पेशी
Gramme ग्राम
Grape sugar अंगूरी शकर
Gravitation गुरुत्वाकर्षण
Greater multangular bone वृहत् वहुकोण
,, wing वृहत् पक्ष
Great omentum अंत्रच्छदा कला
Groin वंक्षण
Groove परिखा
Groove for nerve नाड़ी परिखा
Groove for venous sinus शिराकुल्या परिखा
Growth वृद्धि क्रम, वर्धन
Gums मसूड़े
Gustatory cell रसज्ञ सेलें
Gyrus cinguli उपसंयोजक खण्ड

H

Hair लोम
Hair cells of cochlea लोमश सेलें
Hair follicle लोम कूप
Hæmoglobin कण रञ्जक, रक्तग्लोबिन
Hæmorrhage रक्त क्षरण
Hamate bone वक्रास्थि, फणधर
Hamular process अंकुश
Hand पाणि, हस्त, हाथ
Handle of malleus मुग्दर दंड
Hard palate कठिन तालु
Head शिर
,, of a rib पर्शुका मुण्ड
Heart हृदय
Heat उष्णता
Heel एड़ी
Helix कर्ण वाह्य तीर्णिका
Hepatic artery याकृति धमनी
Hip कूल्हा, नितम्ब
Hip joint वंक्षण सन्धि
Hollow viscus आशय
Horizontal अनुप्रस्थ, समस्थ
,, section क्षितिज काट
Humerus प्रगंडास्थि, बाहुनलक
Hyaline cartilage सूत्रविहीन कार्टिलेज
Hydrochloric acid उज्ज हरिक
Hydrogen उज्जन, उद्जन
Hymen योनिच्छद, कुमारिच्छद
Hyoglossus muscle जिह्वा कंठिका पेशी
Hyoid कण्ठिकास्थि
Hypermetropia दूर दृष्टि, दूर दर्शनासामर्थ्य
Hypochondrium यकृत प्रदेश
Hypoglossal nerve जिह्वाधोवर्ती नाड़ी
Hypogastrium कुक्षि
Hypophysis cerebri हाइपोफिसिस पिंड

I

Iliac bane जघनास्थि
,, crest जघन चूड़ा
,, fossa जघन खात
Iliac region श्रोणि प्रदेश
Iliacus श्रोणि पक्षिणी पेशी
Ilium श्रोणि अस्थि
Immovable joint अचल संधि, स्थिर संधि
Immune रोगाक्षम
Immunity रोगाक्षमता
Impregnation गर्भाधान
Incisor teeth कर्त्तनक दंत, छेदक दन्त
Incus नेहाई, शूर्मिकास्थि
Index finger प्रदेशनी, तर्जनी
Inferior निम्न
,, border अधोधारा
Inferior concha अधः सीपाकृति, अधः शुक्तिका

Inferior extremity निम्नशाखा, अधोशाखा
Inferior labial astery अधोओष्ठ्या धमनी
Inferior lip निम्न ओष्ठ, अधो ओष्ठ
Inferior meatus of nose नासाधः सुरंगा
,, mesenteric artery अंत्राधो धमनी
,, obilque muscle of eye वक्राधो नेत्र चालनी
,, rectus of eye सरलाधो नेत्र चालनी
,, Thyreoid artery चुल्लिकाधो धमनी
Inferior mesenteric vein अंत्राधो शिरा
Inferior vena cava निम्न महाशिरा
Inflammation प्रदाह
Infra orbital nerve नेत्राधरीय नाड़ी
Infundibulum वायु मन्दिर
Inner surface अन्तस्तल
Insoluble अनघुल
Inspiration उच्छ्वास, अंतःश्वसन
Intercostal artery पर्शुकांतरिका धमनी
Intercostal nerve पर्शुकांतरिका नाड़ी
Internal आभ्यन्तर
Internal acoustic meatus कर्णांतर नाली
,, carotid artery अन्तः शिरोधीया धमनी
Internal coat of eye अन्तरीय पटल
Internal ear अन्तस्थ कर्ण
Internal generatve organs अन्तरीय जननेन्द्रियां
,, iliac vien अंतः श्रोणिगा शिरा
,, mammary artery अन्तः स्तनीया धमनी
Internal secretions of testis ओजस्
Internal oblique of abdomen मध्य उदरच्छदा पेशी
,, rectus of eye सरलांतर्नेत्र चालनी पेशी
Intertubercular plane अर्बुदांतरिक रेखा
Intestine अंत्र
Invarion आक्षेप
Invertase शर्करा परिवर्तक
Invertebrate पृष्ठवंश विहीन
Involuntary muscle अनैच्छिक मांस
Iris उपतारा
Irregular विरूप
Iodine आयोडीन
Ischial tuberosity कुकुन्दर पिण्ड
Irritability उत्तेजित्वं ; उत्तेज्य

J

Jaw हनु
Jugular foramen मन्या विवरम्
,, notch कण्ठ कूपम्

K

Kala Azar काला आज़ार
Kidney वृक्क
Kidney shaped वृक्काकार
Knee जानु

L

Labium majus वृहत् भगोष्ठ
Labium minus क्षुद्र भगोष्ठ
Labyrinth गहन
Lacrimal artery आश्रवी धमनी
Lacrimal bone अश्र्वास्थि
Lacrimal duct अश्रुस्रोत
Lacrimal gland अश्रुग्रन्थि
Lacrimal sac अश्रुकोष
Lactose दुग्ध की शक्कर
Lamina फलक
,, of vertebra कशेरु पत्रक
Large lymphocyte वृहत् लसीकाणु
Laryngeal ventricle स्वर यंत्र कुटी
Larynx स्वर यंत्र

Lateral पार्श्विक
,, malleolus बहिर्गुल्फ
,, semi circular duct पार्श्व अर्ध चक्राकार नाली
,, rectus of eye सरल बहिर नेत्र चालनी
,, wall बहिः प्राचीर
Latissimus dorsi कटि पार्श्व प्रच्छदा पेशी
Lattice work जाफरी
Layer स्तर
Leech जोंक
Leg जंघा
Legumen चणकज
Lens ताल
Lentiform nucleus तालूपम पिण्ड ; तालाकार पिण्ड
Lesser multangular bone क्षुद्र बहु कोण
Lethal विनाशशील
Leucocyte श्वेत कण, श्वेताणु, विवरण कण
Levator palpebræ superioris ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिका पेशी
Levator ani muscle गुदोत्थापिका पेशी
Levator Veli palatini तालूत्थापिका पेशी
Lid नेत्रच्छद
Life चैतन्यता, जीवन
Ligament बंधनी, संधि बंध, बधन
Ligamentum lata uteri गर्भाशयका पार्श्विक बंधन
,, patellæ जानवस्थि बंधन
Light प्रकाश
Lingual artery रासनिकी धमनो
Liquid द्रव ; तरल
Little fiuger कनिष्ठा
Liver यकृत
Living सजीव, जीवित
Lobule of ear कर्ण पाली, लौर

Loins कटी, कमर, जघन, कटिदेश
Longitudinalis linguæ Inferior अधो अन्वायाम रसनिका
Longitudinalis linguæ superior ऊर्ध्व अन्वायाम रसनिका
Longitudinal inferior sinus अधो अन्वायाम शिरा कुल्या
Longitudinal Venous sinus अन्वायाय शिरा कुल्या
Lower निम्न
Lower jaws निम्नहनु
Lubb-dup लूबडप
Lumbar कटिदेश
Lumbar plexus कटि नाड़ी जाल
Lumbar artery कटिकी धमना
Lumbar region कटिप्रदेश, कटि, जघन, कोख
,, vertebra कटि कशेरुका
Lumbrical muscle कृमिवत पेशी
Lunate bone चतुर्थी चन्द्राकार
Lung फुप्फुस
Lying in woman प्रसूता
Lymph रस, लसीका, लिम्फ
,, corpuscle लसीका कण
,, gland लसीका ग्रन्थि
Lymphocyte लसीकाणु

M

Macula पीत विन्दु
Magnesium phosphate मग्न स्फुरित
Main pulmonary artery मूल फुप्फुसीया धमनी
Malar bone गण्डास्थि, कपोलास्थि
Malar eminence गंड कूट
Malarial fever मैलेरिया ज्वर
Male generative organs नर जननेन्द्रियां

Male pelvis नर वस्तिगह्वर
Malleolar artery गौल्फी धमनी
Malleus मुग्दरास्थि or मुग्दर
Malleolus गुल्फ, गट्टा
Maltose मालटीय शर्करा, यवौज
Mamma स्तन
Mammal स्तनधारी
Mammary artery स्तनीया नाड़ी
Mammary gland दुग्ध ग्रन्थि, दुग्ध जनक ग्रन्थि
Mammillary body वृन्ताकार पिण्ड
Mammilla स्तन वृन्त
Mandible अधो हन्वस्थि,
Masseter muscle चर्वण पेशी
Mastication चर्वण
Mastoid process गोस्तन प्रवर्धन
Maxilla ऊर्ध्व हन्वस्थि
Maxillary artery हान्विकी नाड़ी
Meatus बिल, सुरंग
Meatus urinarius internus मूत्रान्तर द्वार
Meatus urinarius externus मूत्र वहिर्द्वार
Medial wall अन्तः प्राचीर
Medial epicondyle अन्तरार्बुद
Medial malleclus अन्तर्गुल्फ
Medial surface मध्य पृष्ठ
Medial rectus of eye सरलान्तर नेत्र चालनी
Medulla oblongata सुषुम्ना शीर्षक
,, spinalis सुषुम्ना
Medium माध्यम
Membrane कला, झिल्ली
Membranous cochlea झिल्ली कृत कौकला
Membranous labyrinth झिल्लीकृत अन्तस्थकर्ण
Meninges of brain मस्तिष्कके आवरण
Menopanse रजो निवृत्ति
Menses आर्तव, ऋतु
Menstruating female or woman रजस्वला, ऋतुमती
Mental nerve चिबुक नाड़ी
Mesentery अन्त्र धारक कला
Metacarpal bone करभास्थि
Metatarsal cone प्रपादास्थि
Metatarsus प्रपाद
Metazoa बहुसेल युक्त प्राणी
Metre मीटर
Microbes जीवाणु
Microscope अणुवीक्षण, सूक्ष्मदर्शक
Microscopic अणुवीक्षणीय
Midaxillary line कक्षतल मध्यरेखा
Midbrain मध्य मस्तिष्क
Middle coat of eye मध्य पटल
Middle ear मध्य कर्ण
Middle finger or toe मध्यमा
Middle line of body मध्य रेखा
Middle meatus of nose नासा मध्य सुरंगा
,, piece of sternum or mesosternum उरोस्थि का मध्य खण्ड
Millimetre सहस्रांशमीटर
Mineral matter खनिज पदार्थ
Mixing with saliva लाला मिश्रण
Mixture मिश्रण
Monster अद्भुत बालक
Modiolus कौकला स्तम्भ
Molar teeth चर्वणक दन्त
Monthly course मासिक स्राव
Morula कलल
Motionless निश्चेष्ट
Motor गति-सम्बन्धी
Motor area गतिक्षेत्र
Motor path गति पथ
Motor nerve गति नाड़ी

Moveable joint चलसंधि
Movement गति
Mucous membrane श्लैष्मिक कला
Multicellular बहुसेल युक्त
Multinucleate बहु मींगी वाली, बहु मींगी युक्त
Multipolar बहु ध्रुव
Muscle मांस, पेशी
Muscular system मांस संस्थान
Muscular tissue मांसतन्तु
Myopia दूर दर्शनासामर्थ्य
Myosin मांसज
Myelin sheath मैदस पिधान

N

Nail नख
Nape of neck गुद्दी, मन्या
Nasal fosa नासा खात
,, bone नासास्थि
Naso lacrimal duct अश्रु प्रणाली
Navel नाभि
Navel cord नाल
Navicular नौकाकृति
Neck ग्रीवा
Neck of tooth दन्त ग्रीवा
Nerve नाड़ी, वातनाड़ी, वात रज्जु
Nerve cell वातसेल
Nerve fibre नाड़ी सूत्र
Nerve ganglion नाड़ी गंड, वात गंड
Nerve plexus नाड़ी जाल
Nervous system नाड़ी मंडल, वात मण्डल
Nervous cutaneus colli ग्रैवेयी त्वगीया नाड़ी
Nervous system वात मंडल, वात संस्थान
Nervous tissue वात तन्तु
New born नवजात
New born baby नवजात शिशु
Nipple चूचुक
Nitrogen नत्रजन
Nitrogenous नत्रजनीय
Non living निर्जीव
Non lethal अविनाशशील
Non nitrogenous अनत्रजनीय
Nose नासिका
Nose, bridge of नासा वंश, नासा सेतु
Nostrils नासा रंध्र
Nucleated मींगीदार
Nucleole अणु मींगी
Nueleolus चैतन्य केन्द्र, मींगी
Nucleus of origin उत्पत्ति केन्द्र, उत्पत्ति स्थान

O

Objective वस्तु ताल
Obliquus internus abdominis उदरच्छदा (अन्तरीय)
,, externus ,, उदरच्छदा वाह्य
Obturator foramen गवाक्ष
Occipital bone पश्चात् अस्थि
Occipito frontalis (muscle) शिर च्छादनी पेशी
Oculo-motor nerve नेत्र चालनी नाड़ी
Ocular muscle नेत्र पेशी
Odontoid दंतवत
Œsophagus अन्न प्रणाली
Olecranon fossa कूर्परखात
Olecranon process कपालिका, कूर्पर कूट
Olfactory cell घ्राण सेल
Olfactory centre घ्राण केन्द्र
,, hair घ्राणांकुर
,, lobe घ्राण खण्ड, घ्राण पिण्ड

Olfactory nerves घ्राण नाड़ियां
,, organ घ्राणेन्द्रिय
,, tract घ्राण पथ
Omohyoid muscle अंस कण्ठिका पेशी
Opaque अपारदर्शक
Opening of external acoustic meatus कर्ण वहिर्द्वार
,, internal etc कर्णान्तरद्वार
Ophthalmic चाक्षुष
Opthalmoscope चक्षुदर्शक यंत्र
Optic commissure दृष्टि नाड़ी योजिका
,, disc चक्षु बिम्ब, चाक्षुष बिम्ब
,, foramen दृष्टि नाड़ी छिद्र
,, groove ,, ,, परिखा
,, nerve दृष्टि नाड़ी
Orbicularis oculi नेत्र निमीलनी पेशी
Orbicularis oris मुख संकोचनी पेशी
Orbit अक्षि खात
Orbital plate of frontal नेत्रच्छदि फलक
Organ अंग
Organ of Corti श्रावण यंत्र
,, hearing श्रवणेन्द्रिय
Organ of touch स्पर्शेन्द्रिय
Organic जान्तव
Organic matter सजीव पदार्थ
Os coxae नितम्बास्थि
Os externus of uterus गर्भाशयका वहिर्मुख
Os ischium कुकुन्दरास्थि
Os pubis भगास्थि
Osseous spiral lamina कोकला फलक
Ossification अस्थि विकाश
Osteology अस्थि संस्थान
Outer coat of eye (Sclera) वाह्य पटल
Oval अण्डाकार
Ovary डिम्ब ग्रन्थि
Ovarian artery डिम्बिका धमनी
Oviduct डिम्ब प्रणाली
Ovum डिम्ब, शोणित
Oxidation ओषजनीकरण
Oxygen ओषजन
Oxyhaemoglobin ओषित कण रञ्जक

P

Palm करतल, हस्ततल
Palate तालु
Palatine artery तालविकी धमनी
,, process तालु फलक
Palatine bone तालूषक, तालवस्थि
Palmar artery कारतलिकी धमनी
Pancreas क्लोम
Pancreatic juice क्लोमरस
Papilla lacrimalis अश्रु अंकुर
Papillae of skin चर्म प्रवर्द्धन
Paralysed वातग्रस्त, पक्षा घात ग्रस्त
Paralysis पक्षाघात
Parietal bone पार्श्विकास्थि (कपालकी)
Parotid gland कर्णा ग्रवर्ती लाला ग्रन्थि
Parturient canal प्रसव पथ
Parturition प्रसव
Patella पाली, जान्वस्थि
Pectoralis minor muscle उरश्छादनी लघवी
Pectoralis major muscle उरश्छादनी वृहती
Pedicle चक्रमूल
Pelvic floor श्रोणि आधार
,, region वस्ति देश
Pelvis वस्ति गह्वर
Penile portion of urethra शिश्नस्थमूत्र मार्ग
Penis शिश्न, उपस्थ
Pericardial sac हृदय कोष

[असमाप्त]

दो चिकित्सा।

यह पुस्तकें पास रखनेसे फिर किसी ग्रहस्थो या वैद्यको और चिकित्सा पुस्तक की ज़रूरत नहीं रहती। 'गृह वस्तु-चिकित्सा' में घर की ७०। ८० चीज़ों से चिकित्सा लिखी है। जिस चिकित्सा के लिए घर से बाहर नहीं जाना होता न बाज़ार दौड़ना पड़ता है। दूसरी 'सरल चिकित्सा' में १५० ऐसे सिद्ध नुसखे लिखे हैं जो कभी निष्फल नहीं जाते। दोनों जिल्ददार हैं और दोनों एक साथ १≡) में भेजी जाती हैं।

मैनेजर—चिकित्सक—कानपुर

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा-कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'के-सीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २—ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३—करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥). ४—संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५—सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अव-तारकी सिद्धि ।). ६—काग़ज़ काम, रद्दीका उप-योग-).७—केला—मूल्य -). ८—सुवर्णकारी-मूल्य ।) ६—खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५७
भाग १०
Vol. X.

धन १९७६ । दिसम्बर १९१९

Reg. No. A- 708
संख्या
No. 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग १० { धन, संवत् १९७६। दिसम्बर, सन् १९१९। } संख्या ३

उन्नत देशके देहाती कैसे रहते हैं?

[ले०-महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस्-सी., एल. टी., विशारद]

यूरोपमें डेनमार्क एक छोटासा देश है। इसका क्षेत्रफल १४८२५ वर्गमील और जनसंख्या तीस लाखके लगभग है। भारत वर्षमें लखनऊ कमिश्नरीका जितना क्षेत्रफल है उसका सवाया डेनमार्कका है। जनसंख्यामें लखनऊ कमिश्नरी इससे बढ़ी हुई है, क्योंकि १९११ की मनुष्य गणनाके अनुसार इसकी जनसंख्या साठ लाख है। डेनमार्कके मनुष्य अधिक तर खेती करते हैं, परन्तु यहांके खेतीहर निरे गंवार नहीं होते, वरन् इस प्रकार अपना जीवन बिताते हैं कि भारत वर्षके बहुत से नगरोंके रहनेवाले भी वैसा नहीं करते। यह खेतीहर गाँवोंमें रहते हुए और खेती करते हुए भी पढ़ने लिखनेसे इतना सम्बन्ध रखते हैं कि अपने देशमें तथा अन्य देशोंमें क्या हो रहा है, इसकी वह पूरी जानकारी रखते हैं। अपने देशके पार्लामेंटमें कौन सदस्य प्रजाके हितका कितना ध्यान रखता है, यह उनसे छिपा नहीं रहता। इसी डेनमार्कके गांव-निवासियोंके रहन-सहनके सम्बन्ध में कार्नहिल मेगज़ीनमें एडिथ सेलर्स नामके सज्जन लिखते हैं—

जिन जिन देशोंको मैं जानता हूं उनमें डेनमार्क ही अकेला ऐसा देश है जिसने यह दिखा दिया है कि देहातके रहनेवालोंको किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये। यहांके देहाती बड़े ही चतुर होते हैं। इनको यह जाननेकी उतनी ही इच्छा रहती है कि देशमें और संसारमें क्या हो रहा है जितनी कि पढ़े लिखे नगर निवासियोंको होती है। यहांकी भाषामें जब पहले पहल विज्ञानकी प्रारम्भिक पुस्तकें सस्ती सस्ती छपीं तब नगर निवासियोंसे अधिक देहातियोंने ही इनको ख़रीदा। पार्लामेंटमें स्थान चाहनेवाले सदस्योंसे देहातमें ही भांति भांतिके रहस्यके प्रश्न पूछे जाते हैं और यहींके रहनेवाले इनके कामोंको बड़ी सावधानीसे

देखते रहते हैं और किसी अनुचित काम पर आलोचना करते हैं।

डेनमार्कके गांवोंमें ऐसा कोई घर नहीं है जहां समाचार पत्र और पुस्तकें न मिलती हों और ऐसा कोई किसान नहीं जो इंगलैंड और उपनिवेशोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश मजूरोंसे अधिक जानकारी न रखता हो। बोअर-युद्धके समय मैं डेनमार्कमें था। उस समय मुझसे मालूम नहीं कितनी बार यह पूछा गया कि इस युद्धका क्या कारण है। एक बूढ़ी स्त्रीके मुंहसे यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यदि अलिवर क्रोमवेल जीवित होते तो यह युद्ध न छिड़ने पाता। विज्ञान और राजनीतिमें ही यहांके किसान प्रेम नहीं दिखाते, वरन् इतिहास, साहित्य और जनश्रुतिमें भी नगर निवासियोंसे अधिक रुचि दिखाते हैं। इन देहातियों की इस जिज्ञासा-वृत्तिके लिए आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि इनको भी पढ़ने लिखने और अध्ययन करनेका उतना ही अवसर मिलता है जितना किसी नगर निवासी को मिल सकता है वरन् नगर निवासियोंसे देहातियोंको पढ़ने लिखनेका अधिक समय मिलता है।

डेनमार्कके देहातियोंकी यह अनुपम दशा क्यों है यह जाननेके लिए उस संस्थाके विषयमें कुछ जानना ज़रूरी है जिससे यहांके देहाती अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उन्नति करनेमें समर्थ हुए हैं।

डेन्मार्कके प्रायः प्रत्येक गांवमें एक मिलन-मन्दिर (meeting house) होता है, जिसको उस गांवके निवासी अपने खर्चसे बनवाते हैं और जिसके प्रबन्धके लिए अपनेमेंसे ही कुछ सदस्योंकी समिति नियुक्त करते हैं। यह मन्दिर सारे गांवका सामाजिक केन्द्र होता है, जहां पुरुष और स्त्री सभी दिल बहलाने, पढ़ने लिखने और गपशप करनेको इकट्ठे होते हैं। गांवकी समृद्धि के अनुसार मिलन मन्दिरका आकार भी होता है। कहीं कहीं तो यह देखने लायक एक रमणीक भवन होता है और कहीं पुरानी झोपड़ीसे ही काम लिया जाता है। चाहे मिलन मन्दिर छोटा हो चाहे बड़ा, प्रत्येकमें एक सभा भवन (hall) होता है, जिसमें प्रकाशका पूरा प्रबन्ध रखा जाता है और जो इतना बड़ा होता है कि गांवके सभी अवस्थाके पुरुष, स्त्री, इसमें सुख पूर्वक बैठ सकते हैं। सभा-भवनके एक किनारे एक ऊंचा चबूतरा होता है और दूसरे किनारे वाचनालय और पुस्तकालय। कहीं कहीं वाचनालय और पुस्तकालयके लिए अलग कमरे रहते हैं। डेन्मार्कके देहाती इस बातका बड़ा ख़याल रखते हैं कि सबके पढ़ने लायक समाचार पत्र ही नहीं वरन् साप्ताहिक और समालोचनपत्र और पत्रिकाएं तथा पुस्तकें मिल सकें। यह बात भी नहीं है कि यह लोग पुस्तकालयकी पुस्तकोंपर ही भरोसा रखें। वह अपने पाससे भी पुस्तकें मंगा मंगा कर पढ़ते हैं और यदि निर्धन हुए तो कई मिलकर किसी पुस्तक या समाचारपत्रको मंगाते हैं और बारी बारीसे पढ़ते हैं।

जिस गांवका प्रबन्ध उत्तम हुआ वहांके मिलन मन्दिरमें पढ़ने लिखने और गप-शपके सिवा कोई न कोई ऐसा काम भी होता है जिसमें गांवके सारे निवासी सम्मिलित होते हैं। जाड़ेके महीनोंमें सप्ताहमें कमसे कम एक दिन सन्ध्याके समय गांव भरके युवक शारीरिक उन्नतिके लिए इकट्ठे होते हैं जहां एक अवैतनिक पहलवान सबको तरह तरहकी कसरत सिखलाता है। सप्ताहमें एक दिन बालक युवा वृद्ध नर नारी व्याख्यान सुननेके लिए आते हैं। महीनेमें दो बार वाग्वर्द्धिनी सभा होती है, जिसमें गांवके सब लोग आते हैं और वादविवाद करते हैं। नियम सिखलानेके लिए विश्वविद्यालयके विद्यार्थी भी आते हैं। महीनेमें दो बार गाने बजानेकी मण्डली भी अपना गुण दिखला जाती है। कभी कभी निजी नाटक मंडलियां भी लोगोंके चित्तको प्रसन्न कर जाती हैं।

व्याख्यान दाताओंको कभी कभी पुरस्कार दे दिया जाता है, परन्तु अधिकतर व्याख्यानदाता

लोकसेवा और परोपकारके विचारसे ही काम करते हैं, क्योंकि यह या तो किसी कालेजके प्रोफेसर हुए या विद्यार्थी या राजनीतिज्ञ जो गांवका सुधारना भी ऐसा ही कर्तव्य समझते हैं जैसा पढ़ना, पढ़ाना।

छोटेसे गांवमें भी एक राजनीतिक संस्था होती है, जो गवमैंटके कामोंको ध्यानसे देखती रहती है और उचित कामके लिए बधाई तथा अनुचितके लिए चेतावनी देती रहती है। एक ऐसी संस्था भी होती है, जिसमें लोग तरह तरहके अस्त्र शस्त्र चलाना सीखते हैं, जिससे काम पड़नेपर देशकी रक्षा कर सकें। प्रायः प्रत्येक गांवमें एक कृषिसुधारिणी संस्था भी होती है, जिसके सदस्य यह विचार करते हैं कि भूमिकी उपज किस प्रकार बढ़ाई जाय। इसीके साथ साथ सहयोग समिति भी होती है, जिसके द्वारा गांवके सब आदमी आवश्यक सामग्री खरीदते और अपने खेतकी उपज बेचते हैं। यह सब समितियां सरकारी कृषिविभागसे सम्बन्ध रखती हैं, जिसका काम यह होता है कि नवीन अनुभवकी बातें किसानोंको बतलाता रहे और अपने कर्मचारियोंको देहातोंमें इस लिए भेजा करे कि जो बात लोगोंकी समझमें न आवे उसे अच्छी तरह समझा दें।

इन मिलनमन्दिरों, कृषिसुधारिणी समितियों तथा व्याख्यानोंसे ही डेनमार्कके गांवमें जैसी आदर्श उन्नति होनी चाहिए होती है, परन्तु वहांके निवासी इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं रहते। किसान हाई स्कूल और कृषिविद्यालयसे भी काम लेते हैं। डेनमार्ककी कुल जनसंख्या तीस लाख है, जिसके लिए ७५ हाईस्कूल हैं, जहां किसान ही नहीं वरन् किसानोंकी सहायता करनेवाले मजूर भी जाड़ेके दिनोंमें जब कुछ काम काज नहीं रहता इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनीति, स्वास्थ्य विज्ञान और अन्य उपयोगी बातें सीखते हैं। प्रति वर्ष दस सहस्र शिक्षार्थी जिसमें एक तिहाई मजूर होते हैं सत्तारे (अवकाश) के महीनोंमें हाईस्कूलमें जाते हैं। यह जब पढ़कर अपने अपने गांवोंको लौटते हैं तब जो कुछ नयी नयी बातें सीखते हैं उनको व्याख्यानों और वाग्वर्द्धिनी सभाओं द्वारा गांववालोंको सिखाते हैं। इन वाद-विवादोंसे डेन्मार्कके किसानोंको बड़ा लाभ होता है। इनसे उनकी बुद्धि तीव्र ही नहीं होती वरन् उनको ऐसी बातोंसे भी प्रेम हो जाता है जिनका उनसे विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह याद रखना चाहिये कि इन वादविवादोंमें सम्मिलित होकर लाभ उठानेमें एक टका भी खर्च नहीं करना पड़ता। हाईस्कूलमें पढ़ने वा पढ़ानेके लिए भी उनको बहुत कम खर्च करना पड़ता है।

परन्तु क्या डेन्मार्ककी यह दशा सदासे ऐसी ही चली आ रही है और डेन्मार्कके निवासियोंको इसके लिए कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ा है? इतिहास उत्तर देता है, नहीं। इनकी वर्तमान समृद्धिका कारण उनकी पिछली आपत्तियां हैं। जब उनका समुद्री बेड़ा छिन गया और इनके शक्तिहीन होनेके कारण इनके देशका एक बड़ा प्रान्त श्लेशविग-होल्स्टीन (Schleswing-Holstein) भी १६०५ वि० में शत्रुओंके हाथ चला गया तब इस देशको इतना धक्का पहुँचा कि नगर और गांव सब जगहके रहनेवाले किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और यही जान पड़ने लगा कि अब उनका अन्त आ गया और अब यह सदाके लिए धूलमें मिल गये। ऐसा होनेमें कुछ भी कसर नहीं थी यदि सच्चे देशभक्तोंकी एक मंडली, जीजानसे धर्मके पंथ पर चलनेवालोंकी नाईं, श्रद्धा और विश्वासके साथ उन्नति करनेके लिए कटिबद्ध न हो जाती। धर्मगुरु ग्रंटविग (Grundtvig) ने इंगलैंडसे हार खाने पर जो काम जारी किया था उसीको इस मंडलीने फिर जारी किया। यह मंडली देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जाती और लोगोंको बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें सिखलाती कि जागो, "उठो और अपने अपने काममें फिर लग जाओ; हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और भाग्यको कोसना पुरुषों

का काम नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि देशमें एक दमसे जागृति हो गयी। एक दूसरेसे ऐसा प्रेम हो गया जैसा पहले स्वप्नमें भी नहीं समझा गया था। लोगोंमें यह भाव उत्पन्न हो गया कि बिना सबके मिले ऐसी आपत्तिके समय निर्वाह होना कठिन है। इसलिए जहां तक हो सके प्रत्येकको अपने देश भाईकी सहायता करनी चाहिये और सबसे पहले किसानोंको ही सहायता पहुंचानेकी जरूरत है, क्योंकि यही सबके जीवनाधार हैं।

इस समय देहातकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी। बहुत सी भूमि अच्छी तरह बोयी जोती न जानेके कारण ऊसर हो गयी थी। किसान जितना बोझ उठा सकते थे उससे कहीं अधिक उनके सिर पर था। साथ ही साथ चरित्रबलमें भी यह लोग गिरे हुए थे। इसलिए ऊपर वाली मंडलीका पहला काम यह था कि इनको इसकी शिक्षा दी जाय कि अच्छी खेती किस प्रकार हो सकती है। इस मंडलीने उन कड़ी शर्तोंको भी सुगम करानेकी चेष्टा की जिन पर किसानोंको खेत दिये जाते थे। बड़े बड़े कृषिविद्या विशारद गांव गांव घूम कर व्याख्यान देते, प्रयोग दिखलाते, खेती करनेकी वैज्ञानिक रीतियां बतलाते, खरीदने और बेचनेके लिए सहयोग समितियां स्थापित करनेमें किसानोंको सहायता देते और समझाते कि एक दूसरेसे मिलकर कैसे काम करना चाहिये। कुछ समयमें यहांकी सरकार भी इस काममें हाथ बँटाने लगी। कृषिविद्यालय और भ्रमणकारी स्कूल खोले गये, जो घूम घूम कर किसानोंको ही नहीं वरन् मजूरोंको भी उनके काम उनके पास जा कर सिखाते थे।

इस मंडलीने ऐहिक उन्नति करनेका ही बीड़ा नहीं उठाया था। इसने समझ लिया था कि अन्न बल से ही मनुष्य जीवन पूर्ण नहीं होता वरन् इसके साथ साथ चरित्र बलके उन्नत करनेकी भी आवश्यकता है। इस लिये इसने विचारा कि इन किसानोंका जीवन तभी सुफल होगा जब यह उदासी के गढ़ेसे निकलकर संसारके दुःख सुखका सामना प्रसन्नता पूर्वक करें, उत्तम नागरिक बनें और अपनी ही उन्नति न करें वरन् देशको भी लाभ पहुंचावें, क्योंकि सबकी भलाईके साथ अपनी भलाई होती है। वैसे तो इस मण्डलीमें भिन्न भिन्न प्रकृतिके मनुष्य थे, परन्तु उपर्युक्त बातपर सबका मत एक हो गया। कुछ तो किसानोंको यह सिखलानेमें लगे कि खेती किस प्रकारकी जाय कि उनको सब तरहका सुख मिले। कुछ इस यत्नमें थे कि कभी कभी मन बहलाने और चित्तको प्रसन्न रखनेकी सामग्री होनी चाहिए और कुछ यह चाहते थे कि इन किसानोंके हृदयमें ऐसी आशा उत्पन्न करदी जाय कि वह अपना जीवन भले काममें लगावें। बड़े बड़े धर्मोपदेशक छोटे छोटे गांवके गिरजा घरोंमें बड़ेही मनोहर धर्मोपदेश देते; धुरंधर राजनीति विशारद गांवके मैदानोंमें दिलको फड़का देनेवाले व्याख्यान देते; पुराने खलिहानोंमें नामी नामी गायक और बजैया संगीत, नाटक और देश भक्तिकी कविताओं द्वारा लोगोंके चित्तको लुभाते और अपने पूर्वजोंके वीर कर्मोंकी प्रशंसा द्वारा दिखलाते कि मनुष्य क्या कर सकता है और हम लोगोंको आगे क्या करना चाहिए। सप्ताहमें कमसे कम एक दिन प्रत्येक गांवमें इस तरहका जमाव हुआ करता था। इसमें लोगोंके मन बहलानेका ही ध्यान नहीं रखा जाता था, कुछ ऐसी चर्चा भी होता थी जिससे किसान स्वयम् कुछ सोचें, विचारें। एक पंथ दो काज हों, उनका मन भी बदले और शिक्षा भी मिले। परिणाम यह हुआ कि थोड़ेही दिनोंमें किसान भाइयोंको पढ़ने लिखने की चाट पड़गयी, जिससे पुस्तकोंकी मांग खूब ही बढ़ी और व्याख्याताओंमें से तरह तरह के प्रश्न करनेका हियाव पड़ने लगा; देश तथा संसारकी बात जाननेके लिए मिलन-मन्दिरकी आवश्यकता जान पड़ने लगी जिनको अपने खर्चसे बनवाकर अथवा किराये पर लेकर वाचनालय तथा पुस्तकालयका प्रबन्ध किया जाने लगा। जब किसानोंमें जागृति होगयी

मण्डलीका उद्देश पूरा होगया। अब केवल इस बातकी कमी थी कि कुछ समयतक यह काम ऐसे ही होता रहे। अन्तमें डेन्मार्कके देहाती गुण-ग्राहकता और चतुराईमें नगरनिवासियोंसे भी बढ़ गये।

भारतवर्षके गांवोंकी बात छोड़िये और सोचिये कि कितने शहर ऐसे हैं जहां पठन पाठनका और विद्या, बुद्धि और बलमें उन्नति करनेका लोगोंको वैसा ही सुभीता है, जैसा डेन्मार्कके छोटे छोटे गांवोंमें है। यदि ऐसा सुभीता नहीं है तो यहांके धर्मशिक्षकों, राजनीति-विशारदों, प्रोफ़ेसरों, अध्यापकों और विद्यार्थियोंका क्या कर्तव्य है?

वायुमंडलके चमत्कार

छले लेखमें हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि वायु एक प्रकारका पदार्थ है। उसमें बोझ होता है, वह जगह घेरता है और शक्तिका वाहन कर सकता है। वह एक ऐसा पदार्थ है जो हमें सब तरफ़से घेरे हुए है, बल्कि दबाये हुए है। यदि यह दबाव हट जाय तो हमारी रक्त वाहिनी, शिराएं और धमनियां फूल कर फट जायं और हम लोग थोड़ी देरमें तड़प तड़प कर मर जायं। क्या आपने कभी सींगी लगाते हुए देखा है? केवल मुंहसे सींगीमेंकी हवा हटा देनेसे रंध्रों द्वारा रुधिर निकल पड़ता है। कदाचित् पूर्णतया हवा शरीर परसे हटा दी जाय तो उपरोक्त दशा होते देर न लगे। कभी कभी कोई तमाशा करनेवाले कांचके गिलासको पानी भर कर उसपर कागज़ ढक कर गिलासको औंधा देते हैं और पानी नहीं गिरता है। इसका भी कारण यही है कि वायुका दबाव कागज पर पड़ता है, जो पानीको साधे रहता है। प्रयोगों द्वारा मालूम हुआ है कि प्रति इंचपर वायुके कारण लगभग साढ़े सात सेरका दबाव पड़ता है। इस हिसाबसे हमारे कुल शरीरपर लगभग ४०० मनका दबाव पड़ता है? क्या आप कभी ख़याल भी कर सकते हैं कि आप इतने दबावको सह सकते हैं?

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि वायुका दबाव निश्चित है, तो दबावका कारण—वायुमण्डलकी ऊंचाई अथवा वायुसागरकी गहराई जिसकी तलैटीमें हम रहते हैं—निश्चित होगा। हां, अवश्य होना चाहिये, परन्तु हमारे ज्ञानकी सीमा इतनी विस्तृत नहीं कि हम उसका ठीक ठीक निश्चय कर सकें। उसका कारण यह है कि वायुका गुरुत्व पृथ्वीतलपर सबसे अधिक है। जैसे जैसे ऊपर चलते जाते हैं हवा हल्की होती जाती है। जिस नियमके अनुसार वायुकी गुरुतामें अन्तर होता जाता है, उस नियमको हम ठीक ठीक नहीं जानते। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिकोंने अपनी अपनी समझसे वायुमण्डलकी ऊंचाईका अन्दाज़ा लगाया है। अरेनियसका अनुमान है कि वायुमण्डल २५० मील तक चला गया है। अन्य वैज्ञानिकोंका मत है कि सम्भवतः इसकी सीमा ५०० मील है।

उल्का १०० या १२५ मीलकी ऊंचाई पर दिखाई देजाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि इतनी ऊंचाईपर भी वायुकी पर्याप्त मात्रा होनी अनिवार्य है, क्योंकि वायुकी अनुपस्थितिमें उल्काका जल उठना असम्भव है। जो कुछ भी हो, इतना अवश्य निश्चय है कि ऊंचाईके साथ वायुकी मात्रा और साथही साथ दबाव बड़ी शीघ्रतासे घटता है। ४६५४ गज़ ऊंचे पर समुद्र तलकी अपेक्षा दबाव केवल '६२ रह जाता है। ग्लेशर और मेक्सवेलने, जिनकी बैलून यात्राका हाल पाठक पढ़चुके हैं, यह मालूम किया था कि छः मील ऊंचे पर दबाव केवल चौथाई रह जाता है। छह या सात मीलसे अधिक ऊंचेका अनुभव किसी मनुष्यको अभी तक नहीं हुआ है, किन्तु अनुमान है कि ३१ मील ऊंचे पर वायुका दबाव ३ सहस्रांशमीटर है और ६२ मील ऊंचेपर केवल '०२

स० मी०। स्मरण रहे कि पृथ्वी तलपर दबाव ७६० स० मी० है। यह नाप तो पारे के स्तम्भकी ऊंचाई के रूपमें हुई। इसको यों भी समझ सकते हैं कि ३१ मील ऊंचेपर दबाव केवल ५ माशे ५ रत्ती प्रति वर्ग इंच होगा। ६२ मील ऊंचे पर तो दबाव ३ रत्ती ही रह जायगा।

थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि आप पृथ्वी मण्डलसे ३१ मील ऊंचे तक जाना चाहते हैं। आप को न तो कोई बैलून और न कोई परोप्लेन वहां तक पहुंचा सकेगा। हाँ जर्मनोंकी किसी भीम-काय होविटज़रको चलाइये और उसके गोले पर सवार हो जाइये तो वह शायद् आपको वहां तक पहुंचादे। पर ठहरिये आपको पहलेसे तय्यारी भी करनी पड़ेगी। उसका हाल सुन लीजिये। ४०० मनका एक लबादा बनवाना पड़ेगा जो आपके शरीरके बाल बालको ढका रखेगा। केवल आंखोंके सामने देखनेकी गरज़से कांचके पत्र लगा सकेंगे। उस लबादेके अन्दर सांस लेनेके लिए ओषजनके पात्र और प्रश्वासकी अशुद्ध वायुके शोषणके लिए सोडियम ओषिद रखना पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त आपको गरमी पैदा करनेके लिए भी सामान लेजाना होगा, क्योंकि इतनी ऊंचाईपर बड़ी भयानक ठण्ड पड़ती है। मान लीजिये कि आप समुचित तय्यारी करके गोले पर बैठ वहां तक पहुंच गये और किसी प्रकार वहां ठहर गये। आपके पीछे आपके किसी मित्रको भी सूझी कि आपसे मुलाकात कर आवें और वह भी वहां पहुंचें, तो बड़ा लुत्फ होगा। आप बड़े तपाकसे उनसे बढ़-कर हाथ मिलाएंगे, परन्तु इसके बाद आप जो कुछ कहेंगे उसका जवाब न पाएंगे। वास्तवमें आप अपनी कहे जायंगे, उनकी एक न सुनेंगे। उधर वह अपना सुर अलापेंगे और समझेंगे कि आप बड़े मगरूर हैं कि उनकी बातोंका जवाब ही नहीं देते। बात यह है कि यदि वहांपर किसीके कानोंपर तोपें भी दाग़ दी जायं, तो भी उसके कानों पर जूंतक न रेंगे। इसका कारण यह है कि शब्दका वाहक है वायु और वहां है प्रायः वायुका अभाव।

प्रकृतिने आपके बचावके अनेक उपाय कर रखे हैं। पृथ्वीके वायुमण्डलके बाहर, अनन्त आकाशमें बड़े बड़े सूर्य कभी कभी टकरा जाते हैं। उस समय बड़ा भीषण शब्द उत्पन्न होता है, जो कदाचित् पृथ्वी तक पहुंच जाय तो समस्त प्राणियोंको बहरा कर दे। इसी घटनासे बचानेके लिए प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध पहलेसे हो कर रखा है कि ५०० मीलके आगे शब्दका वाहक वायु है ही नहीं, जिससे वहांका शब्द हम तक पहुंच ही नहीं पाता।

वायु के अवयव

ओषजन और नत्रजन, यह वायुके दो प्रधान अवयव हैं। ओषजन चीज़ोंके जलने और पशुओं और पौधोंके श्वासोच्छ्वासमें काम आता है। नत्र-जन ओषजनकी तेज़ीके कम करनेमें साधारणतया काम आता है, पर वास्तवमें वही जीती जागती सृष्टिकी अधिष्टात्री देवी है। उसके बिना न पौधोंकी वृद्धि और शरीर रचना सम्भव है और न पशुओंकी वायुमें इन दो गैसोंके अतिरिक्त कर्बन द्विओषिद, उज्जन, आर्गन, नियन, हीलियम, क्रुप्टन, जीनन, नमकका तेज़ाब, शोरेका तेज़ाब, अमोनिया, गंधकका तेज़ाब, ओज़ोन आदि अनेक पदार्थ न्यूना-धिक मात्रामें रहते हैं।

कौनसा अवयव किस परिमाणमें मौजूद है, यह समझनेके लिए आप मान लें कि आपके पास एक लोटा है, जिसमें एक सेर पानी अमाता है और आप १०००० लोटे वायुके भर कर जांच करते हैं तो आपको निम्न लिखित गैसें इस परि-माणमें मिलेंगी।

नत्रजन	७८०३ लोटे,	जिसका	भार	होगा	६.७५८०	सेर	अथवा	पौने दस सेर
ओषजन	२०६६	"	"	"	२.६६८४	"	"	तीन सेर
आर्गन	६४	"	"	"	.१६७६.	"	"	साढ़े तीन छटांक
कर्बनद्विओषिद	३	"	"	"	.००५६	"	"	साढ़े पांच माशे
उज्जन	१	"	"	"	.०००१	"	"	छः चावल

इनके अतिरिक्त चार और गैस हैं, जो वायुमें अतिन्यून परिमाणमें पायी जाती हैं। उनका भी यदि कुछ अन्दाज़ जानना हो तो मान लीजिये कि आप एक करोड़ लोटेवायु लेकर परीक्षा करते हैं तो आप को इस प्रकार निम्न लिखित अवयव मिलेंगे।

नाम	आयतन	भार
नियन	१५० लोटे	८ तोले ६ माशे
हीलियम	१५ "	२ माशे ५ रत्ती
क्रुप्टन	१५ "	१ माशा ६ रत्ती
जीनन	.००६ "	२ रत्ती २ चांवल

ग्राहम महोदय की कल्पना

सम्भव है कि उपरोक्त बड़ी बड़ी संख्याओंसे पाठक घबड़ा गये हों। अतएव ग्राहम महोदयकी कल्पनाका कथन करना अनुचित न होगा। मान लीजिये कि आपने मंत्रके बलसे वायु मण्डलको द्रव रूपमें बदल दिया, तो उसके अवयव अपने गुरुत्वानुसार तह बना लेंगे। यहां यह भी मान लीजिये कि यह द्रव एक दूसरेसे अलग ही रहते हैं, मिलते घुलते नहीं। इन तहोंकी मोटाई और क्रम इस भांति होगा:—

पानी	५ इंच
कर्बन द्विओषिद	१३ फुट
आर्गन	६० गज़
ओषजन	१ मील
नत्रजन	४ मील

वायुमण्डलकी सैर

बैलूनों या वायुयानोंमें बैठकर मनुष्य सात मीलसे अधिक ऊंचा नहीं जा सका है। अतएव इतनी ऊंचाई तकका हाल तो हमें मालूम है। छः मीलतक वायुमें वह सब अवयव पाये जाते हैं जो ऊपर गिन आये हैं। छः मीलपर पहुंचकर जल वाष्प बादलोंका रूप धारण करलेती है। इससे आगे जल वाष्प नहीं मिलती। छः मीलके आगे ३० मीलतक ओषजन, नत्रजन और ओज़ोन ही पाये जाते हैं, यद्यपि अन्य अवयव भी सूक्ष्म मात्रामें रहते हैं। ३० से ६० मीलतक ओज़ोन, नत्रजन, उज्जन और हीलियम ही वायु मण्डलके मुख्य अवयव हैं। इस प्रदेशमें ओषजन प्रायः ओज़ोनके रूपमें ही मिलती है। ६० मीलके ऊपर केवल हीलियम और उज्जनका साम्राज्य है।

यहां पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब मनुष्य की पहुंच सात मील से आगे है ही नहीं, तो क्या उपरोक्त समस्त बातें कल्पित हैं? गिरते हुए उल्काओंकी परीक्षा रश्मिचित्र दर्शक से वैज्ञानिकों ने समय समयपर की है और अन्य यंत्रोंसे उनकी ऊंचाई भी नापी है। इन दो प्रयोगोंके परिणामों से उक्त सिद्धान्त निर्धारित हुए हैं।

इन परीक्षाओंसे मालूम हुआ है क ६२ मीलकी ऊंचाई पर वायुके १०० भागोंमें प्रायः ९९$\frac{१}{२}$ भाग उज्जनके और $\frac{१}{२}$ भाग हीलियमका होगा।

वायुमें जल वाष्पका परिणाम

१०० भाग (आयतन) वायुमें १३ भाग जल वाष्प साधारणतया प्रस्तुत रहती है। या यों समझिये कि १०० मन वायुमें ३३ सेर जल वाष्प होगी। यद्यपि यह मात्रा अत्यन्त अल्प मालूम पड़ती है, तथापि समस्त वायु मण्डलमें प्रस्तुत जलका परिमाण बहुत अधिक है। उसकी तौल प्रायः एक पद्म चालीस नील मन (१४००००००००-

...००००० मन) है। यदि जादूके ज़ोरसे इस वाष्पको इकट्ठा कर पानी बनालें तो एक मील गहरी, १०० मील चौड़ी १२० मील लम्बी झील बन जायगी।

जल वाष्पका पृथ्वी पर प्रभाव

इस अदृश्य जलवाष्पका पृथ्वीपर महत्व-पूर्ण प्रभाव पड़ता है। कदाचित् वायु मण्डलमें जल वाष्प न रहे, तो औसत तापक्रम २० श कम हो जाय। संयुक्त प्रान्तमें गर्मियोंमें भी जाड़ेकी अपेक्षा अधिक कड़ी सर्दी पड़ने लगे और जाड़ेमें शिमलेका मज़ा आने लगे। उधर यूरोप आदि शीत प्रधान देश तो सदा प्रगाढ़ हिमावरणसे ढक जायं और ध्रुव देशोंकी नाई मनुष्यके रहने योग्य न रहें।

इसका कारण वही है जो पहले बतलाया जाचुका है। सूर्यसे आने वाली प्रकाश युक्त किरणें पृथ्वी से टकरा कर अप्रकाशमान उष्णताकी किरणोंमें बदल जाती हैं। जल वाष्प और कर्बन द्विओषिद ही इन किरणोंको फिर निकलने नहीं देते और पृथ्वीको लिहाफकी तरह गरम रखते हैं।

कदाचित् जल वाष्प वायुसे हल्की न होती

प्रकृतिकी छोटीसे छोटी घटनाओंमें परमात्माके अपूर्व गौरवका अनुभव होता है। इन्हें देख सृष्टि-वादको माने बिना बुद्धिको शान्ति और मनको विश्वास नहीं होता। जल वाष्प वायुसे हलकी होती है। यदि वायुके भारी पनको १०० मानें तो जल वाष्पका ६२ होगा। यह कारण है कि जल-वाष्प पृथ्वीसे ऊपर उठ जाती है और मीलों ऊपर पहुंचकर बादल बना देती है। यदि जल वाष्प वायुसे भारी होती तो वह पृथ्वी-तलपर ही एकत्रित होती जाती और हम सदा एक बड़े गहरे कुहरेमें घिरे रहते। अपने मित्रोंके दर्शन होने मुश्किल हो जाते। यद्यपि हम उनसे बातचीत कर सकते पर उनकी सूरत मुश्किलसे दीख पड़ती। हमें रास्ता चलना मुश्किल होजाता। फिर प्राकृतिक दृश्योंकी छटा—आकाशकी नीलमा युक्त आभा, तारोंका मन लुभाने वाला टिमटिमाता प्रकाश, पुष्पोंका स्वर्गीय सौन्दर्य—सदाके लिए हमारी आंखोंसे छिपजाते। वस्तुतः यह कहना कठिन है कि उस दशामें कितने पशु, पक्षी, मनुष्य और वनस्पति इस भूमण्डलपर जीते रहते और सभ्यताका विकास कहांतक हो पाता।

कर्बन द्विओषिद के चमत्कार

वायुके दस हज़ार भाग लें तो उसमें ३ भाग कर्बन द्विओषिद मिलेंगे। यद्यपि कर्बन द्विओषिद-की मात्रा इतनी कम है, तथापि इसीसे मनुष्यों और वनस्पतियोंके शरीरका कर्बन प्राप्त होता है। यही पृथ्वीको गरम रखता है और मनुष्य और वनस्पतिके उपजने योग्य बनाता है। यही चट्टान रूपी दैत्योंका नाश कर पोटासियम रूपी रत्न भूमि को प्रदान करता है और उसकी उर्वर शक्तिको ज्योंका त्यों बनाये रखता है। यह विषय बहुत विस्तृत है। अतएव किसी स्वतंत्र लेखमें इसकी चर्चा की जायगी।

सर्वव्यापी धूल

साधारणतया हवा हमको स्वच्छ और निर्मल दिखाई पड़ती है, परन्तु यदि किसी कमरेमें सूर्यका एक किरण समूह प्रवेश करता हो तो उसके मार्गमें बहुतसे धूलके कण, हलकी, चीज़ोंके रेशे इत्यादि उड़ते हुए दिखायी देंगे। इससे प्रतीत होता है कि वायु अगणित छोटे छोटे कणोंसे भरी हुई है, जो बड़े वेगसे हिलते डोलते रहते हैं। शहरोंके ऊपर तो वस्तुतः धूल कणोंका एक समुद्र सा ही सदा बना रहता है, परन्तु न्यूनाधिक धूल-कण वायुमण्डलमें सर्वत्र ही पृथ्वीतलसे लेकर जहां तक वायु मण्डलका अन्त है—पाये जाते हैं।

अब इस बातकी खोज करनी है कि यह धूल कण कहांसे आते हैं? वातावरणके निचले भागोंमें तो यह कण पृथ्वीसे ही पहुंचते हैं। वायुके वेगसे, मरुतके झकोरोंसे, आंधीके ऊधमसे बारीक मट्टी, रेतके कण, समुद्रकी तरंगोंके टकरानेसे पैदा हुई बौछारोंका जल और लवण, गन्दी नालियोंके पानी-के छींटोंके साथ उचटे हुए हानिकारक जीवाणु,

[आगे पृष्ठ १३१ पर देखिये।]

लाखकी खेती

(ले०—श्री० शङ्करराव जोशी)

अति प्राचीन काल में भी भारतवासी लाखका उपयोग जानते थे। इतना ही नहीं, लाखकी खेती करना भी वह अच्छी तरह जानते थे। संस्कृत ग्रन्थोंमें पलासके वृक्षको 'लक्षतरु' नाम दिया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि उस ज़मानेमें इस वृक्ष पर लाखके कीड़े पाले जाते थे। मोग़ल बादशाहोंके ज़मानेमें लाखसे वार्निश बनायी जाती थी।

नक़ली रंगोंका प्रचार होनेके पहले लाखके रंगकी बहुत मांग थी। परन्तु नक़ली रंगोंके प्रचारके साथ ही साथ लाखके रंगका महत्व घटता गया और आजकल तो यह रंग निरुपयोगी समझ कर फेंक दिया जाता है। आजकल लाखकी मांग बढ़ती जा रही है। भांति भांतिके पदार्थ बनानेमें इसका उपयोग किया जाता है। आजकल उसी लाखका मूल्य ज्यादा होता है, जिसमें रंगका अंश बहुत ही कम होता है।
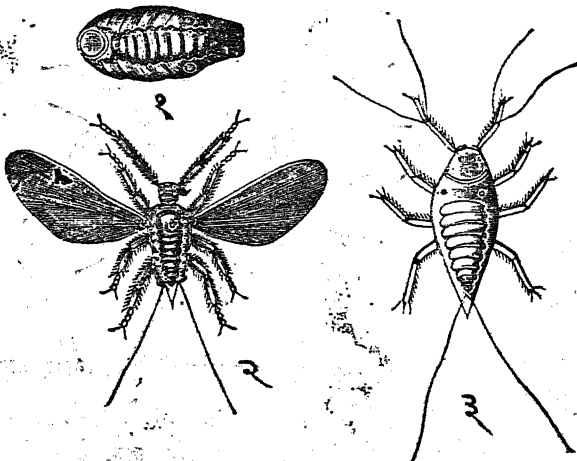
चित्र ३६—१. नरका कोश, बीहन लगानेके १३ सप्ताह बाद।
२. पंखवाला नर।
३. बिना पंखका नर अंडेसे निकलनेके बाद।

लाख एक प्रकारके कीड़ेकी देहके रंध्रों (छेदों) मेंसे निकला हुआ मल है। यह कीड़े कई प्रकारके वृक्षों पर पाले जाते हैं। कभी कभी जंगली वृक्षों पर भी यह कीड़े पाये जाते हैं। कीड़ा वृक्षोंकी कोमल डालियोंका रस चूसता रहता है। यही रस भिन्न रूपमें उसके शरीरके रंध्रोंसे निकल कर उसे ढक देता है और वायुके संसर्गसे लाखके रूपमें परिणत हो जाता है। लाखका कीड़ा कुसुम, पलास, बेर, बबूल, बड़, पीपल और सिरिसके वृक्षों पर पाला जाता है। आसाममें अरहर पर भी लाखका बीहन लगाया जाता है।

बबूल

सारे भारत भरमें सिंध ही एक ऐसा प्रान्त है, जहां बबूलके वृक्ष पर लाख लगाई जाती है। मध्यभारत आदि एक दो प्रान्तोंमें सिंधसे बीज मँगाकर लाखकी खेती करनेका प्रयत्न किया गया था; किन्तु वृक्षों पर लाख न जमी। सम्भव है कि इन प्रान्तोंकी आबोहवा सिंधप्रान्तके कीड़ोंकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं है।

बेर

बेरका झाड़ मध्यभारत, मध्यप्रदेश और पंजाबमें अधिकतर पाया जाता है। बेरका पेड़ बड़ा मज़बूत होता है। छांटनेसे वृक्षको नुकसान नहीं पहुँचता। बेरके झाड़ पर बीहन लगानेसे अच्छी पैदा होती है।

पलास

पलास मध्यभारत, मध्यप्रदेश, बंगाल, सिंध और पंजाबमें ज़्यादा पाया जाता है। इस पर सुगमतासे लाख लगाई जा सकती है। इस वृक्षकी लाखको रंगीन लाख कहते हैं, क्योंकि उसमें रंगका अंश अधिक रहता है। कुसुम वृक्षकी लाखके बाद इसीका नम्बर आता है।

कुसुम

इस वृक्षकी लाख सर्वोत्तम होती है । कुसुम वृक्षकी लाखका बीज बेर और पलास वृक्ष पर लगानेसे खूब पैदा होती है। कुसुमके झाड़पर हर साल लाख नहीं लगायी जा सकती, प्रति तीसरे या चौथे वर्ष लगायी जाती है।

अरहर

आसाममें अरहर पर भी लाख लगाई जाती है। वहाँ यह पौधा तीन साल हरा भरा रहता है। परन्तु भारतके अन्य प्रान्तोंमें यह पौधा एक सालसे ज़्यादा नहीं जी सकता और इसीसे इस पर लाख लगाना संभव नहीं।
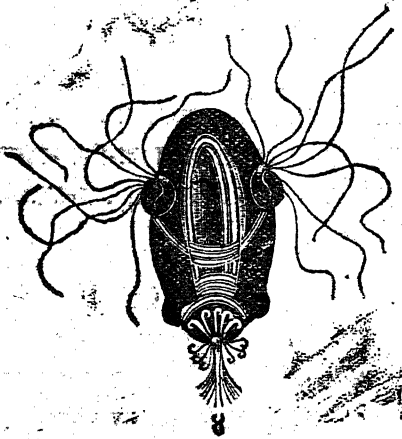
चित्र ४०—मादा एक मासकी उम्रकी।

आम, सीताफल आदि वृक्षों पर भी लाखके कीड़े पाले जासकते हैं। परन्तु लाख लगानेसे, फल कम लगते हैं और वृक्षोंकी आयु भी घट जाती है। लाखकी अपेक्षा फल ज़्यादा क़ीमती होते हैं। यही कारण है कि इन वृक्षों पर लाख लगाना लाभदायक नहीं।

जल वायु

लाखकी खेती उन्हीं प्रान्तोंमें की जा सकती है, जहांकी आबोहवा न ज़्यादा गरम हो और न ज़्यादा सर्द और जहां वर्षाका परिमाण ३० इंचके क़रीब हो। लाखकी पैदा उन्हीं प्रान्तोंमें अच्छी होती है, जहांकी हवामें कुछ नमी हो। उष्ण प्रदेशोंमें लाख की खेती नहीं की जा सकती, क्योंकि ज़्यादा गरमी-से लाख पिघल जाती है, जिससे मादाके श्वासोच्छ्वास क्रिया करनेके छेद बंद हो जाते हैं। छेदोंके बन्द हो जानेसे मादा दम घुट कर मर जाती है। ज़्यादा सरदी पड़नेसे मादाकी बाढ़ रुक जाती है, जिससे फसल खराब हो जाती है। इसलिए अधिक परिमाण पर लाखकी खेती शुरू करनेके पहले दो चार वर्षतक कुछ झाड़ों पर लाख लगाकर देख लेना चाहिये कि लाखकी खेती की जा सकती है या नहीं।

लाखके कीड़ेका जीवन

लाखसे भरी हुई डाली उठाकर देखनेसे उसपर बहुत से गोल गोल दाने एक दूसरेसे मिले हुए नज़र आवेंगे। इन्हीं दानोंमें मादा रहती है। मादा पहले इस स्थान पर बस कर रस
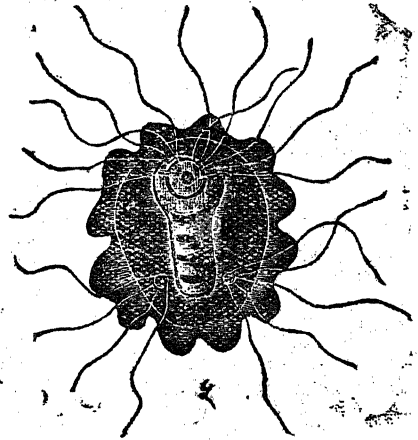
चित्र ४१—मादा, बीहन लगानेके ११ सप्ताह बाद।

चूसती रहती है। यही रस उसके शरीरके रंध्रोंसे अन्य रूपमें निकल कर उसे ढक देता है। जब मादा पूर्ण बाढ़ तक पहुँच जाती है, तब उसके शरीरसे बच्चे निकल कर दूसरे स्थान पर जा बसते हैं। वर्षमें दो बार बच्चे पैदा होते हैं।

बच्चे जुदे जुदे स्थानोंमें जुदे जुदे समय पर निकलते हैं। बच्चोंके पैदा होनेका समय, ऋतु और उस वृक्षकी जाति पर निर्भर होता है, जिस पर वह पाले गये हैं।

नवजात कीड़ा बहुत सूक्ष्म होता है। उसके छह पैर, दो छोटी आंखें, सिर पर दो बारीक बाल (स्पर्शतन्तु) और पूँछकी तरफ दो लम्बे पतले बाल होते हैं। इसके सिरे पर एक पतली नली होती है। यह नली कुछ झुकी हुई होती है। इस नलीकी दोनों ओर एक बारीक बाल होता है। (आकृति ३८)। मादाके उदरसे निकलने पर बच्चे अनुकूल स्थानकी तलाशमें इधर उधर घूमा करते हैं और योग्य स्थान पाने पर वहीं बस जाते हैं और उसे छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते। यह कीड़े पास पास रहना ज़्यादा पसन्द करते हैं। कोमल डालियां ही इनके बसनेके लिए उपयुक्त स्थान हैं। जब तक कोमल शाखा नहीं मिल जाती, यह कीड़े इधर उधर घूमा ही करते हैं। उचित स्थान मिल जाने-

चित्र ४२—मृतमादा। बच्चे निकल रहे हैं।
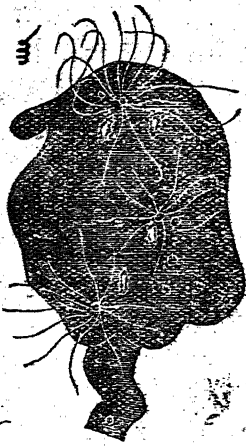
पर बच्चे ऐसे स्थान पर जा बसते हैं, जहां वायुवेग का उनपर असर नहीं होता। शैशवास्थामें नर मादाका पहचानना कठिन है। बस जाने पर कीड़ा अपनी सूंड़को शाखामें घुसा कर रस चूसने लगता है, जो त्वचाके छिद्रों द्वारा उसके शरीरसे बाहर निकल कर उसे ढक देता है। यही रस वायुके संसर्गसे सूख कर लाख बन जाता है। अन्य कीड़ोंके समान यह कीड़े भी त्वचा बदलते हैं। कीड़ा लाखके आवरणमें ही त्वचा बदलता है।

नवजात नर और मादाका पहचानना असंभव सा है। कोश (लाखका आवरण) देखकर नरमादाका पहचानना कठिन नहीं। नरका कोश लम्बाकार होता है। कोशके आगेके भागमें दो छेद होते हैं, जिनमेंसे महीन सफेद बाल बाहर निकलते रहते हैं। परन्तु मादाका कोश गोलाकार होता है। कोशके आगेके भागमें दो और पिछले भागमें एक छिद्र होता है। इन छेदोंमें से सफेद महीन बाल ऊपर निकलते रहते हैं। यह बाल ही इन कीड़ोंके श्वासोच्छ्वास लेनेके अंग हैं। यह लाखके दाने, कोश, तीन मास तक बढ़ते रहते हैं। तदनन्तर उनमेंसे बिना पंखके नर निकलने लगते हैं। परवाले नर भी निकलते हैं। नरको निकलते देखकर यह अनुमान न कर लेना चाहिये कि बच्चे ही निकलने लगे हैं। अक्तूबरमें लगाये हुए बीहनसे फरवरी मासमें नर निकलते हैं और जून या जुलाईमें बच्चे। बच्चोंके पैदा होनेका समय, बीहन लगानेके समय और आबोहवा पर निर्भर है।

गर्भधारण करने पर मादा खूब रस चूसने लगती है। इस समय उसके शरीरसे एक प्रकारका रस भी निकलता है। इस रसको खानेके लिए चींटियां वृक्षों पर चढ़ जाती हैं और तब वह कीड़ोंको नष्ट कर डालती हैं। इसी समय मादाके श्वासोच्छ्वास लेनेका अवयव—दो सफेद महीन बाल—भी खूब बढ़ जाते हैं, जिससे वृक्षोंकी डालियां श्वेत नज़र आती हैं। यदि टहनियां श्वेत नज़र न आवें तो समझ लेना चाहिये कि चींटियोंने कीड़ोंका काम तमाम कर डाला है। बरसातके बाद—अक्तूबर, नवंबरमें,—लगाई हुई

फसल सात आठ मासमें और जून या जुलाईमें लगायी हुई फसल तीन साढ़े तीन महीनेमें तैयार हो जाती है। बरसातके बाद, शरद्कालमें, लगायी हुई फसलकी पैदावार ज़्यादा होती है, क्योंकि इस वक्त कीड़ोंको अधिक समय मिलता है। बच्चे पैदा होनेके तीन सप्ताह पहले मादाका शरीर सिकुड़ने लगता है। अतएव बच्चे पैदा होनेके १५ दिवस पूर्व लाख लगी हुई टहनियां काटी जा सकती हैं। इससे बच्चोंको हानि नहीं पहुँचती। यह टहनियां बीजके लिए डाक द्वारा अन्य स्थानोंको सुगमता पूर्वक भेजी जा सकती हैं। यदि ज़्यादा वृक्षों पर लाख लगाना हो तो भी उतावली नहीं करनी पड़ती, क्योंकि टहनियां काटने पर १५ दिवसमें सुगमतासे बीज लगाया जा सकता है। बच्चे निकलने पर १२ से ३० घंटोंके भीतर ही कोमल टहनियों पर जा बसते हैं। किन्तु कभी कभी विशेष कारणवश अधिक समय लग जाता है। बच्चे लगभग सवा मास तक निकला करते हैं। परन्तु पहले तीन सप्ताहोंमें अधिकांश बच्चे निकल आते हैं।

चित्र ४३—कम लाखसे ढकी हुई टहनियां।

चित्र ४४—खूब लाखसे ढकी हुई शाखाएँ।

तैय्यारी

भिन्न भिन्न स्थानोंमें लाखके कीड़े भिन्न भिन्न समय पर निकलते हैं। अतः अधिक वृक्षोंपर लाख लगानेके पहले यह देख लेना अत्यावश्यक है कि उस प्रान्त विशेषमें कीड़े कब निकलते हैं। बीज बांधनेके पहले वृक्षोंका छांटना अत्यावश्यक है। वृक्ष छांटते समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाय कि कटा हुआ स्थान फट न जाय या उसके सिरे भुथर न जायं। भुथरी और फटी हुई डालियां तेज़ चाकूसे छील कर ठीक कर दी जायं। इस प्रकार ठीक की हुई शाखाओं पर नवीन शाखाएं शीघ्रही निकल आती हैं। जिन वृक्षों पर लाख लगी होती है, उन वृक्षों-से लाख लगी हुई डालियां काटते समय भी इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाय। किन्तु लाख लगी हुई शाखाएं काटनेसे वृक्षकी छँटाईका काम भी हो जाता है। इन वृक्षोंको पुनः छांटनेकी ज़रूरत नहीं होती। लाख लगी हुई टहनियोंके तब एक फुट लम्बे टुकड़े कर लिये जाते हैं। उष्णता एवं चींटी आदि जीवों द्वारा खराबकी हुई टहनियां कदापि बीजके लिए न चुनी जायं। नीरोग लाख लगी टहनियां ही चुनना अच्छा होता है। यह छोटे छोटे टुकड़े तब हवादार स्थान में छायामें रख दिये जाते हैं। लाल कीड़े घूमते नज़र आते ही यह टुकड़े वृक्षोंपर बांध दिये जाते हैं। बीजकी लकड़ियां वृक्षों पर इस प्रकार बांधी जाती हैं कि उनके दोनों सिरे वृक्षकी डालियांसे सटे रहें। बीज केलेकी छाल या सनसे टहनियोंसे कसकर बांध दिया जाता है। हमने एक बार मध्यदेशमें एक स्थानपर देखा था कि कीड़ोंके निकलनेपर बीजके लिए रखी हुई डालियोंके टुकड़े किये

गये थे। परन्तु ऐसा करना हानिकारक है, क्योंकि बच्चोंके निकलने पर टहनियां काटनेसे उनके सिरे सूख नहीं पाते। और विशेषता यह है कि अधिकांश नवजात कीड़े इन गीले सिरों पर जा बसते हैं और वहांसे कदापि नहीं हटाये जा सकते।

बीज लगाते समय इस बात पर अवश्य ध्यान रखा जाय कि किस वृक्ष पर कितना बीज लगानेसे उपज अच्छी होगी। ज्यादा बीज बांधनेसे वृक्ष कमज़ोर हो जाता है और न उपज ही ठीक होती है। इस बात पर ध्यान रखा जाय कि प्रत्येक टहनीका
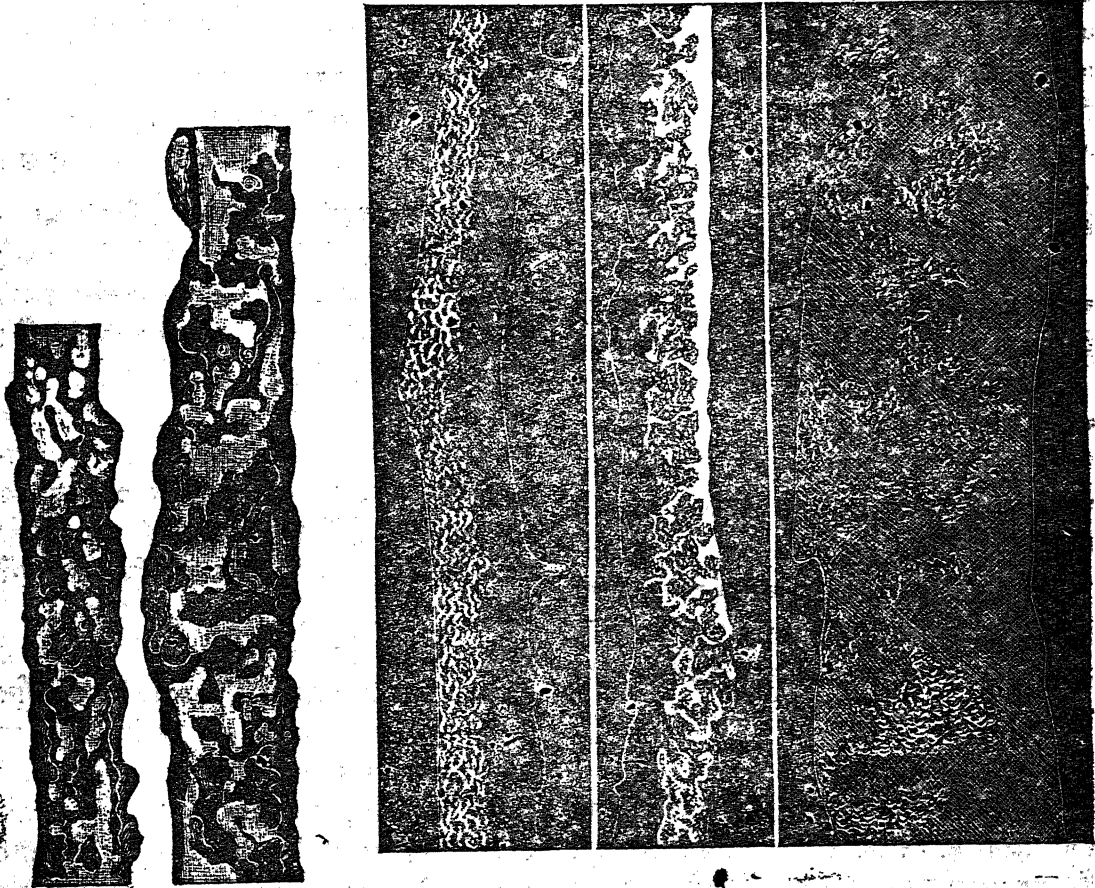
चित्र ४५—रोगी कीड़े। चित्र ४६—नीरोग कीड़े।
चित्र ४७—बच्चे, कोमल शाखा पर बस गये। चित्र ४८—बस जानेके कुछ दिन बाद।
चित्र ४९—पकी हुई लाखकी शाखा, जिसमेंसे कीड़े निकल चुके हैं।

आधा भाग कीड़ोंसे ढकने पाये। आधी टहनीके ढकते ही बीज की लकड़ी वहांसे हटा कर अन्यत्र बांध दी जाय। एक ही शाखा पर अधिक कीड़े बस जानेसे सबको काफी खुराक नहीं मिल सकती, जिससे बहुतसे कीड़े मर जाते हैं।

लाख का छीलना

जब कीड़ोंका निकलना बन्द हो जाय, तब बीजकी टहनियां वृक्ष परसे निकाल ली जायँ। इन टहनियोंकी लाख शीघ्र ही छील लेना ही अच्छा है। लाख छीलनेमें देरी करनेसे लाख खराब हो जाती है। कारण अन्यान्य हानिकारक कीड़े उसमें लग जाते हैं। इस प्रकार खराब हुई लाखके दाम भी कम उठते हैं। छीली हुई लाख धूपमें कदापि न सुखाई जाय; क्योंकि धूपमें सुखानेसे लाखके दाने सिकुड़ जाते हैं और पीछे उनसे रंग अलग करनेमें बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। छायामें सुखा कर बेच डालना ही अच्छा है। यदि तुरन्त न बिक सके तो उसे धो डालना चाहिये।

लाख धोनेकी तरकीबका सविस्तर वर्णन करना, इस लेखमें सम्भव नहीं। यदि हो सका तो फिर कभी इस विषयमें एक स्वतन्त्र लेख लिखेंगे।

लाखसे चपड़ा बनाया जाता है। भारत वर्षमें चपड़ा चांदी सोनेके आभूषणोंमें भरने और चूड़ियां, खिलौने, मुहरकी बत्तियां आदि बनानेके काममें आता है। तलवारोंकी मूठ भी अकसर चपड़ेसे ही जोड़ी जाती हैं।

विदेशोंमें लाखसे अनेक वस्तुएं बनाई जाती हैं। ग्रामोफ़ोनकी चूड़ियां, वार्निश, छापेकी स्याही, तसवीरोंके ब्लाक पर लगानेका वार्निश आदि अनेकों पदार्थ चपड़ेसे ही बनाये जाते हैं।

शत्रु

चीटियां मादाके श्वासोच्छ्वास लेनेके बाल नष्ट कर डालती हैं, जिससे वह दम घुट कर मर जाती हैं। यह नरको दूसरे स्थान पर बसानेके लिए उठा ले जाती हैं, जिससे वह मर जाते हैं। इससे मादाकी बाढ़ रुक जाती है और सन्तति भी नहीं हो पाती। चीटियोंसे कीड़ोंकी रक्षा करनेका सहल उपाय यह है कि वृक्षके तने पर डामर या फिनाइल पोत दिया जाय, या किसी चिपकने पदार्थसे भिगोया हुआ कपड़ा बांध दिया जाय।

परोपजीवी (parasites) कीड़े भी इन्हें नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा मनुष्य, बन्दर, गिलहरी, अग्नि, पाला लू आदि भी इन कीड़ोंको हानि पहुंचा सकते हैं।

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य

[लेखक—प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०]

"बिन पण्डित ग्रन्थ प्रकाश नहीं,
बिन ग्रन्थके पण्डित खण्डित भा है"।

भिखारीदास।

'विज्ञान' शब्दकी नई परिभाषा हिन्दी भाषाभाषियों तथा नवशिक्षितोंके मनमें ऐसी जम गई है कि अत्यन्त संकुचित अर्थसे हटकर लोग उसके वास्तविक और विशाल अर्थपर कम ध्यान देते हैं। एक ओर जहां नवशिक्षित समाज भौतिक, रसायन, जीव तथा गणित, इन्हीं चारपर विज्ञानको समाप्त कर देता है, दूसरी ओर इन चार विषयोंसे अनभिज्ञ वा इनपर ध्यान न देनेवाले अनुभवजन्य अध्यात्मज्ञानको ही विज्ञान समझते हैं। सच पूछिये तो सभी तरहका अनुभव-जन्य ज्ञान विज्ञान शब्दमें विवक्षित है; और अपनी प्राचीन अध्यात्मविद्यासे लेकर छोटीसे छोटी अनुभव-जनित विद्या, जैसे शिल्पके यंत्रोंका ज्ञान भी, विज्ञानके अन्तर्गत है। किसी विषयको अपने अनुभवकी कसौटीपर कसकर उसके सम्बन्धमें नियमोंका निर्धारण जब मनुष्य करता है, जब उस विषयके सम्बन्धमें सम्यक् ज्ञान प्राप्त करनेके लिए परीक्षा करता और उसे अपनी विचार-शृंखलामें उचित स्थान देता है, वस्तुतः तब उस विषयके ज्ञानको विज्ञानका रूप दे देता है। इस दृष्टिसे विज्ञान शब्दसे वेदके छः अङ्ग, चारों उपवेद, दर्शनोंके अनेक अङ्ग, योग और वेदान्त, सभी विवक्षित हैं। रसायन, भौतिक, गणित तथा जीवविज्ञान भी अंशतः वेदांगों, उपवेदों तथा दर्शनोंमें शामिल हो जाते हैं। गत दो

तीन सौ वर्षोंमें, पाश्चात्य देशोंमें, इन विज्ञानोंकी इतनी अधिक उन्नति हुई है कि अब लोग इन्हींको प्रधानता देने लगे हैं और विश्वविद्यालयोंमें इन्हींकी शिक्षा दी जानेसे शिक्षित समाज विज्ञान शब्दसे केवल इन्हीं विशेष विज्ञानोंको समझने लगा है।

विज्ञानके इसी विशाल अर्थको लेकर इस लेखमें यह विचार करना है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य अबतक कितना और कैसा है, भविष्यमें उसकी कितनी और कैसी उन्नतिकी आशा है और यथेष्ट उन्नतिके लिए क्या क्या उपाय हिन्दी-हितैषियोंके लिए करणीय हैं।

यद्यपि व्याकरण तथा निरुक्त दोनों ही विषय भाषा विज्ञानके अन्तर्गत हैं और काव्यरीति स्वयं विज्ञानका एक अंग है, तथापि इस निबन्धमें इन विषयोंका समावेश वर्तमान लेखकके लिए अनधिकार चर्चा सी हो जायगी। तो भी इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि जहां काव्य-रीतियोंके विषयमें हिन्दीसाहित्य सैकड़ों-हज़ारों अच्छे अच्छे ग्रन्थोंके नाम गिना सकता है वहां एक भी व्याकरण या एकभी निरुक्त ग्रन्थका निर्देश नहीं कर सकता, जिसे हम वैज्ञानिक दृष्टिसे इस अङ्गको गौरव देनेवाला कह सकें। यों तो छोटे-मोटे बीसों व्याकरण छप चुके हैं, कोषोंकी भी कमी नहीं, परन्तु हिन्दीके मूलरूप प्राकृतके अध्ययनके अभावसे एक भी व्याकरण स्वाधीनतापूर्वक भाषाविज्ञानपर विचार करनेमें सहायता देनेवाला नहीं दीखता। अंग्रेजी वा संस्कृतकी शैलीका अनुकरण करना ही व्याकरणकारोंने भाषाविज्ञानका अध्ययन समझ रखा है। हिन्दीके शब्दोंके निरुक्तपर भी किसी कोषकारने विचार नहीं किया है। हिन्दी-शब्दसागरने जो काम आरम्भ किया है वह न जाने कब पूरा होगा। परन्तु वह भी निरुक्त (Philology) की कमीको पूरा नहीं कर सकता। जब तक हिन्दी-हितैषी प्राकृतके विद्वान इस ओर ध्यान न देंगे, निरुक्तका अङ्ग अपूर्ण ही रहेगा।

प्राचीन विज्ञानोंपर हिन्दी-भाषामें पुस्तकोंकी कमी नहीं है, संस्कृतके ज्योतिष-ग्रन्थोंके अनुवादके सिवा हिन्दीमें ही ज्योतिष सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। हां, इतना अवश्य कहना पड़ता है कि इनमें फलित ज्योतिषकी ही संख्या अधिक हैं। दोनोंको मिलानेसे ज्योतिष ग्रन्थोंकी ही संख्या सौसे अधिक हो जाती है। इनमें हम गणितकी गणना नहीं करते। साथ ही आधुनिक ज्योतिषपर अब तक छोटी छोटी दो चार ही पुस्तकें देखनेमें आई हैं, जिनसे कोई गणितज्योतिष सम्बन्धी महत्वकी बात सीखनेमें नहीं आ सकती। हां, इनसे ज्ञानपिपासा बढेगी, बुद्धिका विकास होगा और साथ ही मनोरञ्जन भी हो सकता है। इनमें सबसे उत्तम मनोरञ्जन पुस्तकमालाकी 'ज्योतिर्विनोद' नामक पुस्तक है। गणितज्योतिषके विषयसे सर्वसाधारणको रुचि नहीं। पञ्चाङ्गकी रचना करनेवाले भी प्रायः 'नाविक पंचांग' (Nautical Almanac) की ही गणनासे काम निकाल लेते हैं। स्वयं गणित करने और दृग्गणितके यन्त्रोंसे काम लेनेके झगड़ेमें नहीं पड़ते। गणितमय ज्योतिष-ग्रन्थ तो तभी उपयोगी हो सकता है जब 'मान मन्दिर' वा 'यंत्रमन्दिर' निर्माण करके हमारे ज्योतिषी स्वयं दृग्गणितसे काम लें। यही बात है कि ऐसे आधुनिक ग्रंथोंका अभाव है, प्रत्युत इस तरहके प्राचीन ग्रंथोंका भी यथोचित अध्ययन नहीं होता।

वैद्यकके सभी तरहके ग्रंथ, अनुवाद तथा स्वतंत्र दोनों, हिन्दीमें सैकड़ों हैं, परन्तु इनमें शरीररचनाविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र और रसायनके ग्रंथों-की अत्यन्त कमी है। शरीर-रचनाके विषयमें हालमें ही संस्कृतमें, 'प्रत्यक्ष शारीरम्' प्रकाशित हुआ है। इसका अनुवाद हिन्दीमें अभी नहीं हुआ, परंतु उससे अच्छा और अधिक पूर्ण ग्रंथ "हमारे शरीरकी रचना" है। "प्रसूति शास्त्र" नामका एक और भी उत्तम ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। आगरेके मेडिकल स्कूलके पाठ्य ग्रंथ भी हिन्दीमें लिखे

गये हैं; परंतु उनकी हिन्दी रद्दी है। हिन्दीमें उनसे भी बड़े और विस्तृत ग्रंथोंकी बड़ी आवश्यकता है, जिनमें प्राचीन और आधुनिक दोनों रीतियोंका तुलनात्मक अध्ययन हो और जिनके द्वारा हमारा प्राचीन चिकित्सा शास्त्र सर्वांगपूर्ण हो जाय। रासायनिक विश्लेषण, यांत्रिक निदान, विद्युत्-रश्मियों तथा रेडियमका प्रयोग, अभिनवशल्य-चिकित्सा, भारतीय होमिओपेथी प्रभृत अनेकानेक विषयोंपर एक भी पुस्तक नहीं है।

सांख्य और वैशेषिक, योग और वेदान्तपर भी संस्कृतसे अनुवाद तथा स्वतंत्र हिन्दीके ग्रंथ सैकड़ों हैं। वैशेषिकसे भौतिक शास्त्रका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यदि उसे प्राचीन भौतिक शास्त्र कहें तो अनुचित न होगा; परंतु प्राचीन और आधुनिक दोनों भौतिकोंके तुलनात्मक अध्ययन-पर अभी तक कोई पुस्तक नहीं लिखी गई। इसी प्रकार वेदान्तशास्त्रपर भी तुलनात्मक ग्रंथोंकी आवश्यकता है। श्री पाण्डेय रामावतार शर्म्माने एक साल कलकत्ता विश्वविद्यालयमें वेदान्तके तुलनात्मक अध्ययनपर एवं नव-वेदान्त-पर कई व्याख्यान दिये थे। वह भी अंग्रेज़ीमें थे और उसी भाषामें छपे भी हैं। परंतु हिन्दीमें उनका अनुवाद नहीं हुआ; अनुवादकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि व्याख्याता महोदय, यदि आवश्यकता हो तो, उसी विषयपर स्वतंत्र ग्रंथ लिख सकते हैं। परंतु वह व्याख्यान ही पर्य्याप्त नहीं हैं। पाश्चात्य वेदान्तकी तुलना प्राच्य वेदान्तसे बिना विस्तारपूर्वक किये दोनों पक्षोंसे अभिज्ञता नहीं हो सकती।

हमारे देशमें अंग्रेजीके माध्यमसे शिक्षाका आरम्भ हुए अस्सी वर्षसे अधिक हुए। इस अस्वाभाविक और अनोखी रीतिके प्रचारमें आरम्भसे ही कठिनाइयां दीखने लगीं। शिक्षाकी अधिकांश डोर सरकारके तथा मिशनरियोंके हाथमें थी। इन दोनोंमें मिशनरियोंको देशी भाषा द्वारा खिष्टीय मतका प्रचार करना इष्ट था। प्रारम्भिक शिक्षामें देशी भाषाओंका रखा जाना अनिवार्य्य था। उसके अनुकूल ग्रंथ भी होने चाहिएं। उधर पाश्चात्य देशोंमें, विशेषतः इंग्लैण्डमें, विज्ञानके प्रचार और प्रसारके लिए सुबोध पुस्तकें और वैज्ञानिक सामयिक पत्रभी निकलने लगे थे। विज्ञानको लोकप्रिय और सर्व सुलभ बनानेका प्रयत्न प्रारंभ हो गया था। वहांकी देखा-देखी यहां भी देशी भाषाओंमें सुबोध पुस्तकें रची जाने लगीं। आरेके सेकेंड मास्टर पं. बलदेवराम-झाने १८६० में 'सरल विज्ञान विटप' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करायी। यह अंग्रेजीकी Popular Natural Philosophy का अनुवाद था। 'विटप' मूल ग्रन्थके अनुकूल कई जिल्दोंमें होना चाहिये, पर लेखकने एकही पुस्तक इस नामकी देखी है। पादरी शेरिंग द्वारा सम्पादित १८५६ तथा १८६० ई. में विद्यासागर नामकी पुस्तकमाला संयुक्त प्रान्तके मिर्ज़ापुरसे प्रकाशित हुई। काशीके पण्डित मथुराप्रसाद मिश्रने 'बाह्यप्रपंच' दर्पण आदि कई छोटी छोटी आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं, जो १८५८, १८५६, १८६० ई. में छपीं। राजा शिवप्रसादका 'विद्यांकुर' शिक्षाक्षेत्रसे इसी समय निकला। अंग्रेजीमें वैज्ञानिक पाठ्य ग्रंथ हमारे देशके लिए लिखे जाने लगे और उनका अनुवाद किया जाने लगा। पं० बद्रीलाल ने ऐसा ही एक छोटा सा आधुनिक रसायन-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरका ग्रन्थ अंग्रेज़ीसे अनुवाद किया था, जो कलकत्तेके वैपटिस्ट मिशन प्रेसमें छपा था। उसका दूसरा संस्करण १८८३ ई० में छापनेका यश लखनऊके मुंशी नवलकिशोरको प्राप्त हुआ। १८७० और १८८० के बीचमें रुड़कीके इंजिनियरिंग कालिजके छोटे दरजोंके लिए हिन्दीमें ग्रन्थ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। लाला जगमोहनलालने, जो रुड़कीमें अध्यापक थे, कई पुस्तकें हिन्दीमें स्वतंत्र भी लिखीं और कई पुस्तकोंके अनुवाद भी किये। इसी समय काशीके पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र, पं०

उमाशंकर मिश्र, पं० रमाशङ्कर मिश्र प्रभृति मिश्र-बन्धुओंने पदार्थ, जीव, गणित, यंत्र सभी आधुनिक विज्ञानोंपर छोटे छोटे, परन्तु सबसे नये और नवाविष्कृत विषयोंको समाविष्ट करते हुए ग्रन्थ लिखे, जो हिन्दी मिडिल परीक्षामें पढ़ाये भी जाने लगे। खेद है कि हिन्दी-हितैषियोंका प्रभाव शिक्षा-विभागपर घट जानेसे विज्ञानकी पढ़ाई मिडिलसे उठा दी गई। इन मिश्रबन्धुओंको इस क्षेत्रमें बहुत कालतक और बड़े महत्वकी सेवा करनेका श्रेय प्राप्त है। इन्होंने 'काशीपत्रिका' भी निकाली जो कई वर्ष तक छपती रही। कोई २५ वर्ष हुए वह बन्द हो गयी। इसमें साहित्य, विज्ञान आदि सभी तरहके उत्तम लेख रहते थे। एक ओर उर्दू और दूसरी ओर नागरी अक्षरोंमें निकलती थी। पहली वैज्ञानिक पत्रिका यदि इसे कहें तो अनुचित न होगा। लाहोरमें बाबू नवीनचन्द्रराय बंगाली होकर भी राष्ट्र भाषा हिन्दीके प्रचारमें रत थे। पंजाब विश्व-विद्यालयमें पढाये जानेके लिए 'स्थितितत्व', 'गतितत्व' आदि कई छोटी छोटी पुस्तकें सन १८८२ ई० के लगभग उन्होंने स्वयं लिखकर और हिन्दीमें अनुवाद करके छपवायीं। उनके कार्य्यको थोड़ा बहुत उनकी सुयोग्य पुत्री चलाये जा रही हैं। बिहार प्रान्त भी इस काममें पिछड़ा नहीं था। वहांके असिस्टंट इंस्पेक्टरोंने कई वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करायीं। मध्य प्रदेशसे हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रंथ निकले या नहीं, इसका पता वर्तमान लेखक को नहीं है–कोई पुस्तक देखनेमें नहीं आयी। परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि पंजाब, संयुक्त प्रान्त तथा बिहार अर्थात् समस्त हिन्दी-भाषी उत्तर भारत लगभग ६० वर्षोंसे हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी रचनामें थोड़ा बहुत प्रयत्नशील है।

गणित, भौतिक, रसायन, तथा जीवविज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थोंकी रचना स्वतन्त्र रीतिसे और आधुनिक क्रमसे होना हालमें ही प्रारम्भ हुआ है। इन शास्त्रोंके अनेक अङ्ग प्राचीन हैं, विशेषतः गणितके। परन्तु भौतिक, रसायन तथा जीव-विज्ञानके अधिकांशका आविष्कार सौ बरसके भीतर ही हुआ है। रसायनशास्त्रका ठीक क्रमसे संगठित होना उसी दिनसे समझा जा सकता है जिस दिन मेंडलेफका अनुवर्तन-सिद्धांत प्रकाशित हुआ। अतः आधुनिक रसायनशास्त्र ५० वर्षसे अधिक पुराना नहीं है। यदि हिन्दी भाषामें आधुनिक रसायनपर ५० वर्षके पहले कोई ग्रन्थ न होता तो आश्चर्य्यकी बात न थी और न इसमें हमारे साहित्यकी न्यूनता थी। जीव और भौतिक विज्ञानकी दशा भी प्रायः ऐसी ही थी। जीव-विज्ञानका अध्ययन तो अबतक प्रारंभिक दशामें ही समझा जाता है। ऐसी दशा होते हुए इन विज्ञानोंपर भी उस समय हमारे यहां छोटी कक्षाओंके उपयुक्त पुस्तकोंका होना कम गौरव-की बात नहीं है। गंभीर और ऊँचे विषयोंकी पुस्तक लिखी भी जातीं तो उन्हें कौन पूछता; और अब ही उन्हें पढ़नेकी कौन इच्छा करता है? जिस कक्षाकी पुस्तकें अपेक्षित थीं उसी कक्षाके उपयुक्त बनती भी थीं। हिन्दी द्वारा पढ़ाई मिडिलसे अधिक बी. ए., एम्. ए. आदिमें भी होती तो विद्वानोंके अध्ययनके उपयुक्त केवल ग्रंथ ही न बनते वरन् मौलिक गवेषणाओंको उचित उत्तेजना मिलती और उनका विवरण प्रकाश करनेवाली पत्रिकाएं भी निकलतीं।

गणितके विषयकी हिन्दीमें पचासों पुस्तकें देखी हैं; परन्तु स्वर्गीय सुधाकरजीके 'चलन-कलन' और 'चलराशिकलन' से ऊंची कोटिका ग्रंथ हिन्दीमें अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। यह ग्रंथ भी प्रचारके अभावके कारण दुर्लभ हो रहे हैं। सुधाकरजीसे पहले स्वर्गीय पं० बापूदेव शास्त्रीने गणितके ग्रंथोंको हिन्दीमें लिखना प्रारंभ किया था, परन्तु उनके अपूर्ण बीजगणितके सिवा और कोई ग्रंथ लेखकके देखनेमें नहीं आया। सुधाकर जीके लिखे कई ग्रंथ अप्रका-

शित हैं। समीकरण मीमांसा हालमें ही देखनेमें आयी है।*

हिन्दीमें विज्ञानकी ऐसी हीन दशा देखकर कोई ऐसा न समझे कि उस समय अंग्रेज़ी-द्वारा उच्च कोटिकी पढ़ाई होती रही होगी। प्रमुख विश्व-विद्यालयोंमें भी अंग्रेज़ी भाषाके द्वारा सायंसकी पढ़ाई उन दिनों अत्यन्त कम थी। यहांतक कि जो विषय उस समयके एम्. ए. में भी नहीं पढ़े जाते थे, वही आज प्रवेशिका (मेट्रिक) पास करते ही लड़कोंके गले मढ़े जाते हैं। जहां अंग्रेज़ीके माध्यमसे ही विज्ञानकी इतनी कम चर्चा थी वहां हिन्दीके माध्यममें विज्ञानका प्रवेश करना राजा शिवप्रसाद, पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र आदि उस समयके हिन्दी हितैषियोंकी ही सतत चेष्टाका फल था। जब उनका प्रभाव कम हो गया विज्ञानकी हिन्दी पुस्तकें शिक्षा-विभागसे उठा दी गईं।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पुस्तकोंका जीवन प्रचारपर निर्भर है। यंत्रालयमें ग्रन्थका उपनयन-संस्कार हो जाना ही पर्य्याप्त नहीं है। जिन ग्रन्थोंका प्रचार नहीं होता, छपनेके पीछे भी उनकी अल्प मृत्यु हो जाती है। जिनका प्रचार हुआ छपें या न छपें, उनके जीवनका बीमा हो गया। छापनेवाले तो आप उनकी खोजमें रहते हैं। विज्ञानके ग्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ नहीं कि परलोक-साधनके लिए उनका पढ़ना आवश्यक हो। अर्थ-साधनके द्वार भी नहीं, क्योंकि हमारे देशमें पढ़े लिखे नौकरी करते हैं, शेष खेती अथवा व्यापारसे रोटी कमाते हैं। जिन पढ़े-लिखोंने नौकरी न की वह वकालत, डाकृरी, इंजीनियरीसे धन कमाते हैं, उन्हें हिन्दी पुस्तकोंके पढ़नेकी न तो योग्यता है और न आवश्यकता। डाकृरी, इंजीनियरी आदि सीखनेवालोंको गणित, भौतिक, रसायन तथा जीवविज्ञान पढ़ना पड़ता है अवश्य, पर उन्हें अंग्रेज़ीमें पुस्तकें उपलब्ध हैं; पढ़ानेवाले अंग्रेज़ या अंग्रेज़ी-भाषी हैं। उन्हें हिन्दीकी आवश्यकता नहीं है। रहे हमारे यहांके वैद्य, उन्हें अपने आयुर्वेदके द्वारा जितनी वैज्ञानिक शिक्षा मिलती है उतनेसे एक तिल भी बढ़नेकी अधिकांशमें महत्वाकांक्षा नहीं; और बहुतेरे तो विज्ञानको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं*। शिल्पमें ही विज्ञानका सबसे अधिक प्रयोग है, पर वह विदेशियोंके हाथमें है। भारतीय जहां कहीं कारखानोंमें, यंत्रशालाओंमें काम कर रहे हैं, खलासी, कुली, मजदूर, जमादार ड्राइवर, लश्कर आदिसे अधिक श्रेणीका काम न करते हैं, न पाते हैं। योग्य हों तो पा भी जायं, पर न वह योग्य होनेकी स्वयं चेष्टा करते हैं, न साधन है, न योग्य बनानेकी किसी ओरसे कोशिश ही होती है। ऐसी दशामें विज्ञानके ग्रन्थ पढ़नेवाले कहांसे आयें? विज्ञानके ग्रंथोंमें 'लण्डन-रहस्य' 'चन्द्र-कान्ता-सन्तति' प्रभृतिउपन्यासों वा 'छबीली-भटियारिन' सरीखी कहानियोंकी सी रोचकता होनी असंभव है और 'कजली' और 'औरत मर्दके झगड़े' की तरह सुलभ दामोंपर उनका मिलना वा छपना भी कल्पनासे बाहर है। 'इञ्जील' की पुस्तकोंकी नाईं विज्ञान ग्रन्थोंके प्रचारार्थ कोई विदेशी वा देशी संस्था धन लुटाने को तैयार नहीं है। ऐसी दशामें विज्ञानग्रन्थोंके जीवित रहने तथा नये ग्रन्थोंके प्रकाशित होनेकी क्या आशा।

* इसकी हस्त-लिखित प्रति गणिताचार्य्य श्री डा. गणेशप्रसादजीके पास लेखकने हालमें ही देखी है। यदि कोई उत्साही प्रकाशक मिले तो उक्त ग्रंथरत्न प्रकाशित हो सकता है।

* सहारनपुरके एक प्रसिद्ध वैद्यराजको लेखकने ज्वालापुरकी आयुर्वेदिक प्रयोगशालामें अणुवीक्षण यंत्रके सहारे मक्खीकी अगणित आंखोंके दर्शन कराये थे। वैद्यराजने कुछ देर विचार करके अपनी यह धारणा प्रकट की कि यह सब दृश्य आपके कांचका खेल है, वस्तुतः मक्खीके इतनी आंखें नहीं हैं। जबतक दृष्टि-सम्बन्धी प्रकाश सिद्धांत इन्हें नहीं समझाया गया तबतक इन्हें विश्वास नहीं हुआ।

प्रो. जदुनाथ सरकारने जनवरी, १६१८ के माडर्न रिव्यूमें लिखा है—"साहित्य-सम्मेलनोंका बड़ा ज़ोर इस बातपर है कि देशी भाषाका माध्यम कालिजोंमें हो जानेसे विविध विषयोंपर ग्रंथोंका अभाव दूर हो जायगा और ग्रंथकारोंकी जीविकाका उपाय हो जायगा। परन्तु यह उल्टी बात है। यह न भूलना चाहिए कि इङ्गलैण्डका बृहत् साहित्य पाठ्यग्रन्थोंके लेखकोंकी सृष्टि नहीं है, वरन् हमारी विद्यासमितियों और सेंट्रल टेक्स्ट बुक कमेटियों (पाठ्यग्रंथ निर्धारिणी समितियों) की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती और बड़ी संस्थाओंसे उत्पन्न हुआ है।" * हमको खेद है कि सरकार महोदय जैसे पुराने अध्यापकने ऐसी ओछी बात लिखी! उन्होंने ज़रा भी इस बातपर ध्यान न दिया कि इंग्लैण्डमें विविध साहित्यके अच्छे ग्रंथ उनके रचयिताओं, उनकी पोषक संस्थाओं और देशके विद्वानोंके अपनी मातृभाषाके सहायक होनेके कारण लिखे गये थे और लिखे गये हैं। प्रोफेसर महोदयकी गिनती भारतीय इतिहासके विद्वानोंमें है और आपने यह अँग्रेजीका लेख देशी भाषाओंके पक्षमें ही लिखा है। आपने कई इतिहास ग्रंथ लिखे हैं। अर्थशास्त्रपर भी एक ग्रन्थ लिखा है। आपके सभी ग्रन्थ अँग्रेजीमें हैं। हम पूछते हैं कि यदि मेकालेने अँग्रेजी-द्वारा शिक्षाका प्रचार न किया होता तो आज स्वयं प्रोफेसर महोदय उन ग्रंथोंको अँग्रेजीमें लिखते या बँगलामें ?

इस साहित्य-सम्बन्धी प्रश्नपर विचार करते हुए लोग प्रायः यह भूल जाते हैं कि साहित्यपर राज्याश्रय और राष्ट्राश्रयका कितना बड़ा प्रभाव पड़ता है। हमारे देशमें विद्वानोंकी सृष्टि लगभग ७५ वर्षसे अंग्रेजी सरकारके हाथमें है। फल यह होता है कि अँग्रेजीसे अभिज्ञ जन ही वस्तुतः विद्वान् हो पाता है। अँग्रेजी द्वारा ही उच्च कोटिका विद्याध्ययन करके उसके सिर विद्वत्ताकी पाग बंधती है। लड़के अँग्रेजी बोलनेका अभ्यास आदिसे ही करते हैं। व्याख्यानका अँग्रेजीमें ही देना वक्ता होनेका सर्टिफिकेट है। बाप-बेटोंमें अँग्रेजीमें ही पत्रव्यवहार होता है; रेलमें बैठे बैठे दो सज्जनोंके परिचयका आरम्भ अँग्रेजीसे ही होता है; रेलके बाबुओंसे हिन्दीमें सभ्यतापूर्वक बातचीत कीजिये तो डाँट सुनिए और अँग्रेजीमें असभ्य वाक्यसे भी डाँट दीजिए तो दब जाते हैं। इन सबका कारण है राज्याश्रय। राष्ट्राश्रय हिन्दीको अवश्य है, परंतु पूरा नहीं, क्योंकि शिक्षाकी नीति राष्ट्रके हाथमें नहीं है। भारतीय गणित-परिषद्की गवेषणात्मिका पत्रिका कलकत्ते से अँग्रेजीमें ही निकल रही है। प्रयाग से अर्थशास्त्र-सम्बन्धी ऐसी ही पत्रिका अँग्रेजीमें प्रकाशित हो रही है। सरकारी विभागके भूगर्भ, कृषि, ज्योतिष, पुरातत्व आदि सभी विषयोंकी रिपोर्ट अँग्रेजीमें ही निकलती है। आधुनिक शिक्षासे थोड़ेसे विद्वानोंका जो निर्माण हो जाता है वह हवा देखकर चलते और अँग्रेजीमें ही ग्रन्थ-रचना करते हैं। परन्तु ग्रन्थ पराई भाषामें होनेके कारण बहुधा वह गौरव नहीं पाते जो अँग्रेजोंके लिखे ग्रन्थ अँग्रेजीमें पाते हैं। राज्याश्रयके कारण ही कर्नल कीर्तिकर और मेजर बसुका भारतीय वनस्पतियोंपर विशाल ग्रन्थ हज़ारों रुपये खर्च करके अँग्रेजीमें तैयार हुआ है। डाकूर राधाकुमुद

*"I have heard it openly argued in our Literary Conferences and Academies that the introduction of the Vernacular Medium in our Colleges was necessary as the best means of enriching our literature and giving bread to our starving authors. This is putting the cart before the horse. It should never be forgotten that the great literature of England is not the creation of text-book-writers: it has grown out of a patronage of a body much larger and far wiser than our Central Text-book Committies and Boards of Studies."

(Modern Review, Vol. XXIII, No. 1. Page 6.)

मुकुर्जीका गवेषणात्मक भारतीय जलयानोंका इतिहास भी अँग्रेजीमें ही छपा है। सर जगदीश-चंद्र बसुके तीन चार मौलिक वैज्ञानिक ग्रन्थ, जिनका श्रेय भारतको ही है, अंग्रेजीमें ही छपे हैं। प्रफुल्लचन्द्र रायका भारतीय रसायनका इतिहास भी अंग्रेजीमें ही छपा है। प्रयागस्थ पाणिनीय कार्यालय सैकड़ों ग्रन्थ अंग्रेजीमें ही निकाल रहा है। कहां तक गिनावें, सबका कारण यही है कि अंग्रेजीको राज्य और विद्वज्जन दोनोंका आश्रय है। ग्रन्थकारोंको निश्चय था कि देशी भाषाओंमें इन ग्रन्थोंको कोई पढ़नेवाला न मिलेगा। शिक्षाका माध्यम पूर्ण रीतिसे अपनी भाषा होती तो इस बातका डर न होता। अपनी भाषाओंमें ही पढ़ने-वाले और अपनाने वाले विद्वान् मिल जाते।

हमारे इस अन्तिम निष्कर्षकी पुष्टि अब तकके वैज्ञानिक साहित्यपर विचार करनेसे भी हो जाती है। अब तक जो कुछ वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित हुआ है वह ऐसी कोटिका है जिसका उपयोग साधारण हिन्दी पढ़नेवाले कर सकते हैं। हां, कुछ थोड़ेसे ग्रन्थ ऐसे भी देखनेमें आये हैं; जो विषय-की असाधारणता एवं विशेषताके कारण जनतामें नहीं फैले—जैसे, हिन्दी केमिस्ट्री, गुरुकुलकी विज्ञानप्रवेशिका, भौतिक तथा रसायन, वनस्पति-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र आदि कई पुस्तकें जो गुरुकुल विश्वविद्यालयमें तैय्यार हुई हैं। पर साथही यह भी स्मरण रहे कि यह पुस्तकें विज्ञान पढ़नेवाली कक्षाओंके लिए बनी हैं और जहां तहां पढ़ाई भी जाती हैं। यह भी सच है कि गुरुकुल या हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके परीक्षार्थी ही इन्हें लेते हैं, और इनकी संख्याके परिमाणके अनुकूल ही इन पुस्त-कोंका प्रचार भी है। देशमें हिन्दीमें उच्चकोटिकी शिक्षा दी जाने लगे तो बड़ी शीघ्रतासे उच्चकोटिकी पुस्तकें भी बनने लगें।

वैज्ञानिक साहित्यकी आजतककी दशाकी आलोचना करते हुए हम नागरी प्रचारिणी सभा औरविज्ञान परिषदकी सेवाओंको भूल नहीं सकते। नागरी प्रचारिणी सभाने अपने स्थापन कालसे ही वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण अपना उद्देश रखा है। कई छोटी-मोटी पुस्तकें भी निकाली हैं। पारिभाषिक कठिनाइयां देखकर इसने एक बड़े महत्वका काम छेड़ा, और कई वर्षोंके सतत परि-श्रमसे उसका प्रसिद्ध वैज्ञानिक कोष प्रकाशित हुआ।

यद्यपि अनेक हिन्दी-हितैषी ही इसे उल्टा प्रयत्न कहते और सभाको इस संबन्धमें मनमानी उल्टी सीधी सुनाते हैं; पर इसमें तिलभर भी सन्देह नहीं कि यह काम कितना ही अपूर्ण हो, कैसाही कच्चा हो, इस कोषसे सभी वैज्ञानिक लेखक काम ले रहे हैं। जिन जिन विषयोंका कोष इसमें सम्मिलित है उन उन विषयोंकी शब्दा-वलीके लिए यह ग्रंथ बड़ा भारी आधार है। सभाको चाहिए कि इसमें जीव-विज्ञान, भूगर्भ-विद्या, आदि विषयोंका कोष भी सम्मिलित करे और वर्तमान कोषमें उचित परिवर्तन और परि-वर्द्धन करके उसका एक नया संस्करण निकाले। उसका ४) रु० मूल्य भी अधिक है। 'हिन्दी-शब्द-सागर' की अपेक्षा यह काम कम महत्वका नहीं है। सभाकी मनोरंजन-पुस्तकमाला यद्यपि विशेषतः विज्ञानके लिए नहीं है तथापि इस मालामें राज-नीति, भौतिक, पुरातत्व आदि विषयोंकी कई अच्छी पुस्तकें निकल चुकी हैं।

विज्ञानपरिषद् अभी बिलकुल नई संस्था है, परन्तु इसका काम बड़े झपाटे से हो रहा है। 'विज्ञान' नामक हिन्दी भाषाका एक मात्र वैज्ञानिक पत्र बड़ी धूमधामसे, बड़े खर्चसे, बड़े आबोताबसे, पांच बरससे निकल रहा है। इसमें विज्ञानके सभी विषयोंके सैकड़ों लेख निकल चुके हैं। शब्दावली भी बहुत कुछ बन गयी है। इसके लेखक सभी नये वैज्ञानिक पदवीधर हैं, जिन्होंने हालमें ही हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया है, परन्तु इनकी शैलीमें वह शिथिलता नहीं है जो विज्ञानकी पुरानी पुस्तकोंमें पदपदपर खटकती है। उपयुक्त शब्दों-

में विज्ञानके ऊंचे ऊंचे भावों और तथ्योंको व्यक्त करनेकी शक्तिका पंक्ति पंक्तिमें परिचय मिलता है, जिससे आशा होती है कि विज्ञानका भविष्य अच्छा ही है और यदि हिन्दीको राष्ट्रशिक्षाका माध्यम बननेका गौरव प्राप्त हुआ तो यही लेखक उच्च कोटिके ग्रंथ लिखकर उसका भंडार भर देंगे। विज्ञान-परिषदने इतने थोड़े कालमें छोटी-बड़ी दस बारह पुस्तकें भी निकाल डाली हैं। परिषदके सभी ग्रन्थ, विज्ञानकी तरह सचित्र और सुबोध हैं। परिषद बड़े महत्वका काम कर रही है। हिन्दी हितैषियोंको उचित है कि उसे अपनायें और उसका उत्साह बढ़ायें।

श्रीमान् महाराजा होलकरकी उदारताका आश्रय पाकर इन्दौरकी मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति ने भी कुछ उपयोगी पुस्तकें निकाली हैं। जहांतक लेखकको ज्ञात है, यह पुस्तकें स्वास्थ्य-विज्ञान विषयक हैं। परन्तु इनका आकार बहुत छोटा है और यह प्रारम्भिक कक्षाकी हैं। हमें आशा है कि होलकर सरकारकी उदार सहायताका भविष्यमें और भी उपयोग होगा और विविध वैज्ञानिक विषयोंपर अधिकारी लेखकोंसे मौलिक ग्रन्थ लिखवाकर प्रकाशित किये जायंगे।

इन संस्थाओंके अतिरिक्त आजकल वैज्ञानिकोंको स्वयं अपने ग्रन्थ प्रकाशित करनेका उत्साह उत्पन्न हो रहा है और हर्षकी बात है कि इस तरह भी कई बड़े अच्छे ग्रन्थ निकल गये हैं। विकास-सिद्धान्तपर साठेजीका 'विकासवाद' अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और अर्थशास्त्रपर नार्मएंजेलका 'भारी भ्रम', प्रो० राधाकृष्ण झा एम.ए. की 'शासन पद्धति' डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्म्माकी 'हमारे शरीरकी रचना', प्रो० कर्म्मनारायणका 'बच्चा', बा० मुख्तार सिंहका 'साबुन', प्रो० लक्ष्मीचन्द्रकी कई शिल्प सम्बन्धी पुस्तकें—सभी महत्वके ग्रन्थ हैं, जिनसे हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यका सच्चा गौरव है। इन पुस्तकोंके निकलनेसे हम अनुमान कर सकते हैं कि वैज्ञानिक साहित्य किस दिशामें जा रहा है।

राष्ट्रभाषाके अबतकके वैज्ञानिक साहित्यकी तुलना प्रान्तीय भाषाओंके वैज्ञानिक साहित्यसे की जाय तो भी हमारी दशा किसी दृष्टिसे शोचनीय नहीं दीखती। हमारा वैज्ञानिक साहित्य सम्प्रति बंगाल, मराठी और गुजरातीकी अपेक्षा कम नहीं है वरन् कई बातोंमें बढ़ा हुआ है और होना भी परमावश्यक है। भविष्यमें राष्ट्रीय शिक्षाकी भाषा कमसे कम उत्तर भारतमें इसी हिन्दीको होना है। इसमें ही वैज्ञानिक साहित्यके ऊंचेसे ऊंचे विचार प्रकट होने चाहियें और इसके द्वारा ही विज्ञानके अत्यन्त साधारण और नित्यके उपयोगी तथ्योंकी जानकारी भारतके करोड़ों स्त्रीपुरुषोंको होना आवश्यक है। जिन पाश्चात्य देशोंकी जनता वैज्ञानिक और ऐहिक उन्नतिमें प्रसिद्ध है तथा नित्यकी कलाओंमें दक्ष समझी जाती है उनमें प्रारम्भिक शिक्षाके द्वारा विज्ञानका उसी तरह प्रचार है जिस तरह हमारे यहां पुनर्जन्म, कर्म्म और आस्तिकताके सिद्धान्त प्रत्येक देहाती मजूर जानता है। विज्ञानके इस प्रचार और विकिरणका फल पाश्चात्य देशोंमें स्पष्ट है। वहांका साधारण कुली हमारे मजूरोंसे बहुत कम मेधावी और श्रमी है, परन्तु अपने कार्य्यमें विज्ञानकी शिक्षाके कारण अधिक कुशल है। हमारे यहांके परिश्रमी और समझदार मजूर शिक्षा पायें तो पाश्चात्योंसे कहीं अधिक काम कर दिखायें। जर्मन तथा अमेरिका आदि शिल्पप्रधान देशोंमें विज्ञानकी सर्वोपयोगिनी सरल शिक्षाका ऐसा विस्तार और इतना प्रचार और प्रसार है कि बच्चोंके खेल वैज्ञानिक हैं और मजूर लोग मेहनतका सभी काम यन्त्रोंसे लेते हैं। घर घर बिजलीसे चौका बासन कराया जाता है, चौकीदारी करायी जा रही है, जब बच्चे और स्त्रियां तक वैज्ञानिक तथ्योंसे परिचित हो जायँ तभी ऐसी स्थिति सम्भव है। स्कूलोंमें जैसी शिक्षा हो रही है उससे यह दशा कदापि सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक शिक्षा सर्वव्यापिनी होनी चाहिये; वैज्ञानिक साहित्य सर्वसुलभ और सुबोध होना

चाहिये। प्रयागराजकी विज्ञान परिषद् लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण करके यही उद्देश्य पूरा कर रही है। सुबोध साहित्यसे जनताकी शिक्षा सुगम तो हो जाती है; परन्तु साथ ही जनतामें प्रारम्भिक शिक्षा अशुल्क और अनिवार्य हुए बिना इस कार्यमें यथेष्ट सफलता होनी कष्ट-कल्पना है।

यहां हम इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य-निर्माणकी साम्प्रतिक गति सन्तोषदायक नहीं है और प्रस्तुत साहित्यकी दशा यथेष्ट अच्छी नहीं है। 'विज्ञान' घाटे के साथ निकल रहा है। वैज्ञानिक ग्रन्थ ऐसे क्रमसे नहीं निकल रहे हैं कि विज्ञानाध्ययनमें यथेष्ट सहायता मिल सके। निकलें भी तो यह निश्चय नहीं कि उनका समुचित आदर ही होगा, क्योंकि हिन्दी-द्वारा शिक्षा देनेवाली संस्थायें दो तीनसे अधिक नहीं, जिनमेंसे एक या दोमें ही विज्ञानको शिक्षा होती है। साढ़े तेरह करोड़ हिन्दीको अपनानेवाले नरनारियोंमें शायद ही साठ विद्यार्थी प्रतिवर्ष वैज्ञानिक विषयोंको मैट्रिक या उससे बड़ी कक्षाओंमें हिन्दी द्वारा पढ़ते हों। यह अत्यंत थोड़ी संख्या यद्यपि गुरुकुल और सम्मेलनके उद्योगोंका फल है तथापि 'स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य, त्रायते महतो भयात्'। इसी थोड़ी सी संख्यासे हमको बहुत कुछ वृद्धिकी आशा है। बनारसके हिन्दू-विश्वविद्यालयसे अब भी हमको आशा है कि वह राष्ट्रभाषाके इस बड़े स्वत्व को न भूलेगा और शीघ्र ही राष्ट्रभाषाद्वारा शिक्षाका प्रबन्ध करेगा। भारत राष्ट्रीय शिक्षाकी बेसेंट वाली महासभा भी सम्भव है कि इस महत्वके प्रश्नपर विचार करके राष्ट्रभाषाको ही शिक्षाका माध्यम बनाये। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने भी हिन्दी द्वारा उच्च शिक्षा देनेवाले विश्वविद्यालयकी रचना अपने उद्देश्योंमें रखी है; उसे चाहिए कि शीघ्र इस उद्देशकी पूर्तिका प्रबन्ध करे। शिक्षाका सार्वत्र माध्यम जबतक राष्ट्रभाषा न होगी, साहित्यके अंग तबतक पूरे न हो सकेंगे और उच्च कोटिके वैज्ञानिक ग्रन्थोंको तबतक कोई न पूछेगा।

विज्ञानके साहित्यज्ञोंको यह भी न भूलना चाहिए कि अर्थशास्त्र के नियमानुकूल आमद और मांग वा खपतका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कहीं आमदकी गतिपर खपत निर्भर होती है और कहीं खपतकी गतिपर आमद घटती बढ़ती है। यद्यपि वर्तमान दशामें उच्च कोटि के वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी खपत नहीं है तथापि उनकी आमद वा रचनासे मांग उत्पन्न हो जाना असम्भव नहीं है। जो लोग यह बहाना लेकर उठते हैं कि ग्रन्थाभावसे हिन्दी द्वारा शिक्षा नहीं होनीहै; वही वस्तुतः मांगका निर्देश करते हैं। यद्यपि यह बहाना मात्र है कि पुस्तक बने तब हम शिक्षा दें तथापि यदि पुस्तक बनी-बनाई मौजूद हो तो पढ़नेवालोंको अवश्य उत्तेजना मिलेगी। यद्यपि यह बहाना मात्र है कि पारिभाषिक शब्द नहीं हैं, नहीं तो हम ग्रन्थकी रचना अवश्य करते, तथापि वैज्ञानिक परिभाषाकी रचना अनेक ग्रन्थोंके निर्माणमें उत्तेजक हुई है। वर्तमान ग्रन्थकारोंको पारिश्रमिक मिलना ठीक है। फिर भी; न तो प्रकाशकोंमें साहस, उद्यम और व्यवसायकी उचित मात्रा है न वह इतने व्युत्पन्न हैं कि इस महत्कार्य्यके महत्व को समझ सकें। ऐसी दशामें ग्रन्थकारोंको उचित है कि देश-भक्तिकी दृष्टिसे इस कामको अवैतनिक करें अथवा थोड़े ही पारिश्रमिकपर सन्तुष्ट हो रहें। ग्रंथकार व्युत्पन्न हैं, इस सेवाके महत्वको समझते हैं, इसी दृष्टिसे हम उनसे ऐसी प्रार्थना करनेका दुःसाहस, करते हैं। स्वदेशी साधारण जनसमुदाय अशिक्षा और अविद्याके घोर अंधकारमें इधर उधर टटोल रहा है, ठोकरें खा रहा है; रोग, दुर्भिक्ष, वित्ताभाव आदि के गर्तों में गिर रहा है, विदेशियों की प्रति-योगिता और स्पर्द्धाके कांटे उसके अंग अंग में चुभ रहे हैं; राष्ट्रभाषा की अपर्याप्त अभिज्ञतासे मनके सैकड़ों भावोंको व्यक्त नहीं कर सकता, अवाक् हो रहा। है इन दुःखोंसे उद्धार करनेके लिए विज्ञानका प्रकाश चाहिए कि वह अपनी वास्तविक स्थिति

को समझ जाय, आगा पीछा देखकर चले; कांटों से अपना मार्ग परिष्कृत करले; और साथ ही उसे राष्ट्र-भाषा की ऊंची शिक्षा चाहिए कि अपने मनके भाव भी प्रकट कर सके। ग्रन्थकारो, यह पुण्यकार्य्य तुम्हारे ही हाथमें है, तुम्हारे ही करनेका है; तन मन धनसे स्वार्थत्यागपूर्वक इस महद्नुष्ठानमें लग जाओ। यह तुम्हारा स्वधर्म है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भूः मा तेसङ्गोऽस्त्वकर्म्मणि॥"
(भगवद्गीता)

'राज' किसे कहते हैं ?

[ले०—श्री० सम्पूर्णानन्द, बी. एस-सी., एल. टी.]

आजकल राजनैतिक उन्नतिका समय है और केवल बड़े बड़े नेता ही नहीं प्रत्युत् सामान्य लोग भी राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करने लगे हैं। ऐसी दशामें यह आवश्यक है कि शिक्षित जनता को राजनीतिके मूल सिद्धान्तोंका साधारण ज्ञान हो जाय।

राजनीति भी विज्ञानका एक प्रधान अङ्ग है। इसमें भी प्रयोगोंके द्वारा और ऐतिहासिक तथा वर्तमान् दृग्विषयों पर विचार करके सिद्धान्त स्थिर किये जाते हैं। इसमें भी नियम हैं। इसकी भी परिभाषाएँ हैं। बिना इन बातोंके जाने बहुत सी घटनाएँ समझमें नहीं आतीं और बहुधा महत्त्वपूर्ण शब्दोंका असाधु प्रयोग किया जाता है, जिससे कभी कभी अर्थका अनर्थ हो जाता है।

राजनीतिका मूल 'राज' है। (यह अँग्रेज़ीके 'State' शब्दका पर्य्याय है। मैंने स्वयं अपनी एक पुस्तकमें 'state' के लिए 'राष्ट्र' शब्दका व्यवहार किया है, पर 'राज' शब्दही इस अर्थमें अधिक प्रचलित है। अतः यहां उसीका प्रयोग हुआ है।) प्रश्न यह है कि 'राज' किसे कहते हैं ? जब हम 'बीकानेर राज,' 'ब्रिटिश राज,' 'राजकी सम्पत्ति,' आदि पदसमूह बोलते हैं तो हमारा क्या तात्पर्य्य होता है ?

कुछ लोग 'राज' को शासनकालके अर्थमें लेते हैं। "आजकल रामराज नहीं है", इस वाक्यमें राजका अर्थ शासनकाल (और तत्सम्बन्धी सुखदुःख) ही है। कहीं कहीं, पर बहुत कम, 'राज' से वही अर्थ विवक्षित होता है जो सामान्यतः 'राज्य' (अर्थात् अधिकार क्षेत्र) से निकलता है। कोई कोई स्वेच्छाचारी नरेश 'राज' को 'राजा' का पर्य्याय मानते हैं। फ्रांस के चौदहवें लुई ने स्पष्ट कहा था 'L' etat, c'est moi! मैं राज हूँ।"

यह सब अर्थ सङ्कीर्ण हैं और सर्वत्र विवक्षित भी नहीं होते। सामान्यतः लोग 'राज' शब्दको 'Government' या 'सर्कार' के अर्थमें प्रयुक्त करते हैं। पर यह भी भूल है। 'राज' 'सर्कार' नहीं है या यों कहिये कि 'सर्कार' 'राज' नहीं है। 'राज' व्यापक है और 'सर्कार' व्याप्य—'राज' बड़ी वस्तु है, 'सर्कार' छोटी।

'Government' शब्दका अर्थ है शासन। यह शब्द उस व्यक्ति, सभा, संस्था, आदि के लिए प्रयुक्त होता है जो शासन करे; इस अर्थमें इसका विशिष्ट रूप 'The Government' होजाता है और इसका हिन्दी पर्य्याय 'सर्कार' शब्द होता है। अतः मोटे शब्दोंमें 'सर्कार' का अर्थ हुआ प्रधानतम शासनकर्ता। ('प्रधानतम' इसलिए कि बिना इस विशेषण के छोटे छोटे तहसीलदार, कलक्टर, आदिमें अति व्याप्ति होजायगी।

पर 'राज' का अर्थ इससे बढ़ कर है। 'राज' का सम्पत्ति, भूमि, पशु, आदि पर स्वाम्य होता है, राज युद्ध और संधि करता है, राज न्याय करता है, राज ऋण लेता और देता है इत्यादि। यह बातें 'शासन' के अन्तर्गत नहीं हैं। अतः 'राज' सर्कार' से बढ़ कर है, शासन करना उसके कामोंमें से केवल एक काम है।

'राज' की समुचित परिभाषा करने के पहिले यदि हम इस बात पर विचार करें कि जो प्राचीन कालमें राज थे या इस समय हैं उनमें सामान्य गुण क्या थे और हैं तो हमको शब्दकी वैज्ञानिक परिभाषा बनानेमें बड़ी सहायता मिलेगी। वैज्ञानिक परिपाटी यही है।

इस प्रकार विश्लेषण करनेसे गौण बातोंको छोड़ कर हमको निम्न-लिखित लक्षण प्रायः सभी राजोंमें, किसी न किसी रूपमें, मिलते हैं:—

(१) जनसमुदाय—केवल एक कुटुम्बसे, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, राज नहीं बन सकता। इस समुदायके लिए कोई संख्या नियत नहीं की जा सकती, पर आजकल पहिलेकी अपेक्षा प्रायः बड़ी संख्या होती है। इससे देशकी रक्षा भी अच्छी भाँति होती है और उन्नति भी अच्छी होती है।

(२) नियतभूभाग—जो लोग नित्य एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाया करते हैं, जैसे साइबीरिया और तुर्किस्तानकी कई जातियां, उनका राज नहीं हो सकता, किसी प्रकारका शासन भले ही हो।

(३) ऐक्य—भिन्न भिन्न भागोंको कुछ स्वातंत्र्य भले ही हो पर विशेष अवसरों पर उनको एक होकर काम करना चाहिये।

(४) अधिकारी और प्रजाका भेद—प्रजातंत्र देशों में भी यह भेद होता है। समस्त जनता में राज-सत्ता स्थित मानी जाती है, अतः जनताका समूह अधिकारी है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति पृथक् रूपसे प्रजा है। जहां यह भेद नहीं होता वहां राज नहीं, अराजकता होती है।

(५) व्यक्तित्व—राज भी एक व्यक्ति है। यह एक महत्वकी बात है। बहुत से मनुष्योंके समूहसे ही राज नहीं हो जाता। वह स्वयं एक विराट् व्यक्ति है। जिस प्रकार हमारे शरीरमें भिन्न भिन्न अवयव हैं, उसी प्रकार राजके भी अवयव हैं। परन्तु जैसे हाथ, पांव, मुंह आदिके ढेरको ही मनुष्य नहीं कहते उसी प्रकार बहुत से मनुष्योंके समूहसे ही राज नहीं बनता। वह वस्तुतः एक चैतन्य व्यक्ति है। उसका शरीर है, मस्तिष्क है, आत्मा है।

(क) राजका शरीर—राजके जो भिन्न भिन्न महकमे और विभाग हैं उनके मिलनेसे राजका शरीर बनता है। जिस प्रकार हमारे शरीरमें छोटे छोटे सेलस हैं, उसी प्रकार यह महकमे हैं। सेलस (cells) की भांति यह विभाग भी जीवित हैं। जब कोई मनुष्य जज या मजिस्ट्रेट या हेडमास्टर होता है तो उसको अपने पदकी आत्माका अनुभव होता है। वह स्वतंत्र नहीं रह जाता। उस पर उस कामकी छाया पड़ जाती है। (सामान्य बोल चाल में लोग कहते हैं कि मनुष्य पर कुर्सीका प्रभाव पड़ता है।) इन छोटे महकमों और विभागोंसे राजशरीरके बड़े बड़े अवयव, जैसे राजसभा, व्यवस्थापक सभा, मंत्रिमण्डल, सेना, आदि, बनते हैं। इन सब अवयवोंका समुदाय ही राजशरीर है।

(ख) राजका मस्तिष्क और आत्मा—जिस प्रकार मनुष्य शरीरके भीतर क्षेत्री आत्मा होता है और उसके अन्तःकरणमें समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकारके भाव उत्पन्न होते हैं जो उसके दैहिक कामोंके द्वारा व्यक्त होते हैं, उसी प्रकार राज-शरीरमें राजात्मा है। उसके अन्तःकरणमें भी समय समय पर भिन्न भिन्न भाव उत्पन्न होते हैं। यह भाव उसके टुकड़ोंके भावों से भिन्न भिन्न होते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि प्रजाका प्रत्येक व्यक्ति शान्ति चाहता है, पर आवश्यकता राजको युद्ध करने पर बाध्य करती है; कभी कभी प्रजाका प्रत्येक व्यक्ति क्रोधसे भर कर युद्ध चाहता है, पर किसी कारण वश राजको शान्तिका अव-लम्बन करना पड़ता है। कभी कभी स्वतंत्र देशोंमें भी राजको ऐसे नियम बनाने पड़ते हैं (जैसे युद्ध-कालमें इंग्लैण्डमें राज्यरक्षा विधान, या प्रेस को दबाना या खाने पीनेको विधानतः परिमित करना) जो प्रजा वर्गको कष्टप्रद प्रतीत होते हैं। राज भूमि आदि पर स्वाम्य रखता है और अपने स्वत्वकी रक्षाके लिए विदेशियोंसे लड़ता है और स्वयं

अपने यहां के न्यायालयों में दीवानी, माल और फ़ौजदारीके अभियोगोंमें वादी, प्रतिवादी बनकर लड़ता है । कभी लोभ वश दूसरोंका स्वत्वापहरण करना चाहता है, कभी दुर्बलोंकी रक्षामें तत्पर होता है।

राज के स्वभाव में पुंस्त्व अधिक होता है । इसीलिए Bluntschli ने कहा है "The State is masculine" राज वीर और उत्साही होता है । उसको अपने नाम, यश, आत्माभिमान का बड़ा ध्यान रहता है । उसकी मानरक्षा के लिए कभी कभी सब कुछ, यहां तक कि उसका अस्तित्व भी, न्यौछावर हो जाता है ।

इन सब सामान्य लक्षणों पर विचार करके निम्न-लिखित परिभाषा बनी है :—(The State is the politically organised national person of a definite country) किसी देश विशेषकी जनताके राजनीतिक उद्देश्योंके पालन करनेके लिए जातिके सङ्गठित होने से जिस विराट् व्यक्ति की सृष्टि होती है वह राज है ।

यह परिभाषा कुछ क्लिष्ट सी प्रतीत होती होगी पर 'राजनीतिक उद्देश्य' क्या क्या होते हैं अर्थात् राजके अधिकार क्या क्या होते हैं और उसके क्या क्या कर्तव्य हैं, इसका निश्चय हो जाने पर यह क्लिष्टता जाती रहेगी ।

इन प्रश्नों पर किसी अगले लेखमें विचार होगा ।

एक विचित्र तोल

कई वर्ष हुए प्रयागकी प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' में मैंने एक लेख सोनेकी वैज्ञानिक तोल पर और तोलके द्वारा उसकी शुद्धता जांचने पर दिया था । तबसे कई मित्रोंने मुझसे अनुरोध किया कि उसी प्रकारके कुछ और लेख निकालूँ; अतः इस लेखमें यह दिखानेका उद्योग करता हूँ कि सोनेके जिस आभूषणमें चपरा (लाख लाह) भरा हो उसके सोनेकी तोल बिना चपरा निकाले किस प्रकार की जा सकती है; या कचौड़ीदार गहने (हँसली, कंगन, अनन्ता, कड़ा) आदिके विषयमें यह कैसे जाना जा सकता है कि इसके ऊपरकी खोलमें कितना सोना है और भीतर कितना तांबा है । इन बातोंका सिद्धान्त यदि पूर्ण रीतिसे समझ लिया जाय तो किसी भी मिश्रित पदार्थके अवयवोंकी तोल बिना उन अवयवोंको अलग किये हुए की जा सकती है ।

यह सिद्धान्त समझनेके लिए दो बातोंकी आवश्यकता है—(१) विज्ञानके एक मोटे नियमका जानना जिसमें किसी वस्तु के वज़न और पानीके वज़नका सम्बन्ध या अनुपात निकालना होता है, और (२) गणितके द्वारा इस नियमका प्रयोग करना ।

पानीका एक विशेष धर्म—पानीमें कंकड़ पत्थर, सोना चांदी आदि चीज़ें डूब जाती हैं, लकड़ी आदि चीज़ें तैरती रहती हैं, मनुष्यका शरीर डूब जाता है, परन्तु या तो कुछ प्रयास करनेसे उतरा सकता है या थोड़ी देरमें स्वयम् ही ऊपर आजाता है । गोता लगानेवाले जानते हैं कि पानीके भीतर रहना कितना कठिन काम है, उन लोगोंको भीतरसे पानी ऊपरको उछाल देता है । इसीलिए मोतीकी सीपें निकालनेवाले लोग पानीमें कूदनेसे पहले अपनी कमरोंमें एक एक भारी पत्थर बांध लेते हैं, जिससे पत्थरके बोझके कारण वह पानीके भीतर रह सकें ।

इससे मालूम हुआ कि पानी हर एक चीज़को ऊपरकी तरफ उछालता है, परन्तु जो चीज़ें बहुत भारी होती हैं वह इतनी उछालके कारण ऊपर नहीं आसकतीं; जो हलकी होती हैं वह या तो पानीके बीचमें लटकी रहती हैं या कुछ ऊपर और कुछ भीतर रहती हैं ।

यदि हमें यह जानना हो कि पानी की उछाल कितनी होती है तो हम इस प्रकार जांच कर सकते

हैं। चूंकि हमारा यह लेख सोनेके बारेमें है, इसलिए जांचके लिए हम सोना ही लेते हैं। एक छोटी सी कांचकी शीशी लो, उसे तोलकर उसका वज़न लिख लो, मान लो १ तोला ३ माशे है, फिर उसमें ऊपर तक पानी भर कर तोलो, मानलो २ तोले ५ माशे हुआ।

ख़ाली शीशीकी तोल = १ तो० ३ मा०,
पानी और शीशीकी तोल = २ तो० ५ मा०,
घटाने से, पानीकी तोल = १ तो० २ मा०,

अब शीशी ख़ाली करके किसी सुनारसे कहो कि उसमें सोना गला कर भरदे, भर जाने पर उसे तोलो तो वह लगभग २३ तोले ९ माशेके निकलेगी, जिसमें से १ तो० ३ मा० खाली शीशीकी तोल है, इसलिए बाक़ी २२ तो० ६ मा० सोनेकी तोल हुयी। इससे हमें स्पष्ट हो गया कि पानीका जितना घनफल हो, या पानी जितनी जगह घेरे उतना ही घनफल सोना लेनेसे अर्थात् जितने सोनेसे उतनी ही जगह घिर जावे उतना सोना लेनेसे, पानीके वज़न और सोनेके वज़नका सम्बन्ध हमें मालूम हो जाता है। हमारे उदाहरण में शीशी भर पानीका वज़न १ तो० २ मा० अर्थात् १४ माशे है और उसी शीशी भर सोने का वज़न २२ तो० ६ मा० अर्थात् २७० माशे है। तो पानी से सोना कितने गुना भारी है? २७० को १४ से भाग देने पर १९.३ निकला अर्थात् पानीसे सोना १९ गुनेसे कुछ अधिक भारी होता है।

इसी प्रकार चांदी, तांबा, रांगा, पीतल, जपरा, आदि चीज़ोंका गुरुत्व निकाला जा सकता है। वैज्ञानिक पुस्तकोंमें सबका गुरुत्व दिया रहता है, परन्तु विज्ञानी लोग दूसरे प्रकारोंसे भी यह गुरुत्व निकालते हैं।

अच्छा उस शीशीको तोड़ कर सोने का डला निकाल लीजिये। यह डला २७० माशे है, इच्छा हो तो फिर तोल लीजिये। अब इस डले को एक पतले सूतसे बांध कर अपने कांटे (तराज़ू) के एक पलड़ेमें इस तरह बांध दीजिये कि डला बिलकुल नीचे लटकने लगे। किसी गहरे बरतनमें पानी भरके रखिये और तराज़ूके दूसरे पलड़ेमें बांट रख कर इस प्रकार तोल कीजिये कि सोनेका डला जो सूतके द्वारा लटका हुआ है पानीमें डूब जाय, परन्तु बरतनके पेंदे तक न पहुंचे और न बरतनके किसी किनारे पर सूत लगने पाये। स्मरण रहे कि तराज़ूका स्पर्श पानीसे या बरतनसे न हो, केवल सोनेका डला सूतके द्वारा पानीके भीतर रहे। इस तरह तोलनेसे वज़न २७० माशेसे कम होगा, अर्थात् कोई २५६ माशे होगा, पहले वज़न से १४ माशे कम होगा। यह क्यों? क्योंकि डला पानीके भीतर रहनेसे पानी उसे ऊपर उछालता है। कितना ऊपर उछालता है? अपने गुरुत्व भर, अर्थात् सोनेके डलेका जितना घनफल है (शीशी भर), उतने ही घनफल (शीशी भर) पानी का जितना वज़न होगा उतनी ही उछाल उस डले पर पानी की होगी। उछालसे वज़न कम पड़ गया। जो डला तोलमें २७० माशे था, वह पानीके भीतर तोलनेसे २५६ माशे हुआ अर्थात् १४ माशे कम निकला और हमें पहलेसे ही मालूम है कि डलेका जितना घनफल है (शीशीभर) उतने ही घनफल पानीका वज़न १४ माशे है। इससे हमें मालूम हो गया कि पानीके भीतर कोई चीज़ रखकर तोलनेसे उतनी ही कमी तोलमें हो जाती है जितना वज़न पानीके उतने घनफलका है जितना उस चीज़का है।

सापेक्ष गुरुत्व—इस सिद्धान्तके बल पर हम जान सकते हैं कि अमुक चीज़ पानीसे इतने गुनी भारी है। ऊपरके उदाहरणमें सोनेका वज़न २७० माशे, पानीके भीतर सोनेका वज़न २५६ माशे, अर्थात् पानीकी उछालके कारण तोलमें कमी १४ माशे, अर्थात् सोनेके डलेका जितना घनफल है उतने ही घनफल पानीका वज़न १४ माशे। इससे मालूम हुआ कि पानीके गुरुत्व (भारीपन) से सोनेका गुरुत्व २७० ÷ १४ गुना वा १९.३ गुना

होता है। इसी प्रकार जिस ठोस पदार्थका गुरुत्व पानीकी अपेक्षा जानना चाहें उसे बाहर तोलकर और फिर पानीके भीतर तोलकर जान सकते हैं। एक उदाहरणमें हम तांबेका गुरुत्व निकालते हैं। तांबेका एक पैसा कांटेमें तोला तो ९६ ग्रेन निकला, फिर ऊपर बतलायी हुयी रीतिसे उसी पैसेको सूत्रके द्वारा पानीमें लटका कर तोला तो ८५ ग्रेन निकला। दोनों तोलोंका अन्तर ११ ग्रेन, अर्थात् पैसेका जितना घनफल है उतने ही घनफल पानीका वज़न ११ ग्रेन है तो पानीसे तांबा ९६ ÷ ११ गुना अर्थात् ८·७ गुना भारी हुआ। इसी प्रकार भूरे चपरेका भार पानीसे १·१५ गुना होता है। रसायन शास्त्र की पुस्तकोंमें सभी चीज़ोंका भार इसी तरह दिया रहता है। ऐसे भारको 'विशिष्ट गुरुत्व' अथवा 'सापेक्ष गुरुत्व' कहते हैं। आगे चलकर हम यही शब्द 'सापेक्ष गुरुत्व' काममें लायेंगे, इसलिए इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

सापेक्ष गुरुत्वके ज्ञानसे हम कई चीज़ोंकी जांच भी कर सकते हैं। आज ही मैंने अपनी अंगूठी-की जांच की है। अंगूठीकी तोल १२९ ग्रेन है और पानीके भीतर तोलनेसे १२२ ग्रेन है। दोनों तोलों का अन्तर लगभग ७ ग्रेन है, इससे १२९ को भाग दिया तो अंगूठीका सापेक्ष गुरुत्व १९ के लगभग निकला, इससे मुझे मालूम हुआ कि अंगूठीमें शुद्ध सोना है।

स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी जांचमें धोखा भी रहता है। एक तो साधारण लोगोंके पास उतने सच्चे तराज़ू और बांट नहीं रहते; दूसरे, यदि गहनेके भीतर कोई छेद ऐसे हैं जिनमें हवा तो है परन्तु पानी नहीं घुस सकता तो जांच ठीक नहीं उतर सकती; तीसरे किसी हलकी और किसी भारी धातुका मिश्रण इस प्रकार किया जा सकता है कि मिश्रित वस्तुका सापेक्ष गुरुत्व १९ हो जाय, परन्तु वह सोना न हो। इसी प्रकारके अन्य धोखे भी हो सकते हैं; परन्तु यदि पश्यतोहर लोगोंने अपनी कोई खास चालबाज़ी नहीं दिखायी तो साधारणतः जांच शुद्ध होती है।

सोने और किसी अन्य वस्तुसे मिश्रित पदार्थमें सोनेकी तोल निकालना—सापेक्ष गुरुत्वके सिद्धान्तमें गणितका प्रयोग करनेसे यह हो जाता है। मानलो पहुंचीके दाने सोनेके बने हैं और उनमें चपरा (लाख या लाहका एक भेद) भरा हुआ है। बिना चपरा निकाले हम यह जानना चाहते हैं कि इन दानोंमें कितना सोना है। इसके लिए सोने और चपरेका सापेक्षगुरुत्व अलग अलग जाननेकी ज़रूरत है। सोनेका सापेक्षगुरुत्व १९·३ है, अर्थात् सोना पानीसे १९·३ गुना भारी होता है, और भूरे रंगके चपरेका सापेक्षगुरुत्व १·१५ है।

पहुंचीके दानोंके कोढ़ोंमें एक पतला सूत डाल कर एकमें ही बांध लो और कांटे पर रखकर तोलो। मान लो तोल ३ तोले ११ माशे २ रत्ती हुई। अब इन्हीं दानोंको ऊपर बतलायी हुयी रीतिसे सूतके द्वारा पानीमें लटका कर तोलो। मान लो तोल २ तो० ७ मा० ६ रत्ती निकली।

दानोंकी तोल हवामें	३तो० ११मा० २र०	= ३७८र०
" " पानी "	२तो० ७मा० ६र०	= २५४र०
दोनों तोलोंका अन्तर		= १२४र०

अर्थात् जितना घनफल पहुंचीके दानोंका है उतने ही घनफल पानीका वज़न १२४ रत्ती है। हमें मालूम है कि खालिस चपरा पानीसे १·१५ गुना भारी होता है। इसलिए साधारण त्रैराशिक द्वारा हम जान सकते हैं कि उतने ही घनफल खालिस चपरेका वज़न १२४ × १·१५ रत्ती = १४२·६ रत्ती है।

अर्थात् जितना घनफल इन दानोंका है उतना ही घनफल खालिस चपरेका लेनेसे उसका वज़न १४२·६ रत्ती होगा; और इसमें से अगर थोड़ा सा चपरा निकाल कर उसकी जगह उतना ही घनफल सोनेका मिला दें तो सोनेके भारी होनेके कारण कुलका वज़न बढ़ जायगा। हम देखते हैं कि खालिस चपरेका वज़न १४२·६ रत्ती है, परन्तु

थोड़ा चपरा निकाल कर उतना ही घनफल सोना मिला देनेसे वज़न ३७८ रत्ती हो गया। तो वज़न कितना बढ़ा? ३७८—१४२·६=२३५·४ रत्ती।

हमें मालूम है कि अगर १·१५ रत्ती चपरा निकाल कर उसकी जगह उतना ही घनफल सोनेका रखें तो इस सोनेका वज़न १९·३ रत्ती होगा, तो १·१५ रत्ती वज़न की जगह पर १९·३ रत्ती वज़न आ गया, अर्थात् वज़न में १९·३—१·१५ रत्ती =१८·१५ रत्ती की बढ़ती हुई। और हम ऊपर देख चुके हैं कि हमें २३५·४ रत्ती वज़न बढ़ाने की ज़रूरत है।

साधारण त्रैराशिकसे मालूम हो सकता है कि जब १८·१५ रत्ती बढ़ती की ज़रूरत है तो १९·३ रत्ती सोना मिलाया गया है, इस लिए २३५·४ रत्ती बढ़तीके लिए २३५·४ × $\frac{१९·३}{१८.१५}$ रत्ती सोना मिलाया गया है।

∴ सोनेकी तोल २३५·४ × $\frac{१९·३}{१८·१५}$ रत्ती = २५०·३ र०

= २ तो० ७ मा० २ र०

मालूम हुआ कि पहुंची के दानोंमें २ तो० ७ मा० २ र० सोना है।

इस कुल हिसाब को इकट्ठा करें तो यह रूप होगा—

$$\left\{ ३७८—१·१५ \times (३७८—२५४) \right\} \times \frac{१९.३}{१८.१५} =$$

सोनेका वज़न, अर्थात् सोना और चपरा मिले हुए पदार्थमें सोनेका वज़न = { मिश्रित पदार्थका वज़न हवामें—चपरेका सापेक्ष गुरुत्व × (मिश्रित पदार्थका वज़न हवामें—मिश्रित पदार्थका वज़न पानीमें) } × सोनेका सापेक्ष गुरुत्व ÷ (सोनेका सापेक्ष गुरुत्व—चपरेका सापेक्ष गुरुत्व)

यही नियम हर तरहके मिश्रित पदार्थोंमें काम दे सकता है, केवल मिश्रित वस्तुओंके सापेक्ष गुरुत्व अलग अलग जाननेकी ज़रूरत होती है। नियमका साधारण रूप है—

$$\left\{ \text{हवा—छोटा गुरुत्व (हवा—पानी)} \right\} \times \frac{\text{बड़ा गुरुत्व}}{\text{बड़ा गुरुत्व—छोटा गुरुत्व}}$$

$$\text{या} \left\{ \text{ह—छो (हा—पा)} + \right\} \frac{\text{ब}}{\text{ब—छो}}$$

इस साधारण रूपमें हवा, पानी आदि शब्दों या ब, छो, आदि संकेतोंका अर्थ ऊपर लिखे हुए विवरण से समझ लेना चाहिये। इस नियम से बड़े गुरुत्व वाली वस्तु का वज़न निकलता है।

कचौड़ीदार हँसलीमें सोनेका वज़न—अगर सोनारने आपकी बहनके लिए कचौड़ीदार हँसली बना दी है तो उसकी जाँच ऊपर कहे हुए नियमसे इस तरह कर लीजिये—

हँसली की तोल हवामें १७ तो० ६ मा० २ र०
= १६८२ रत्ती

" " " पानीमें १५ तो० १० मा० ६ र०
= १५२६ रत्ती

सोनेका सापेक्ष गुरुत्व १९·३ है, ताँबे का सापेक्ष गुरुत्व ८·७ है।

∴ हँसलीमें सोनेका वज़न

$$= \left\{ १६८२—८·७\ (१६८२—१५२६) \right\} \frac{१९·३}{१९·३—८·७}$$

$$= \left\{ १६८२—१३५७·२ \right\} \frac{१९·३}{१०·६} \text{ रत्ती}$$

= ५९१·४ रत्ती

= ६ तो० २ मा०

ऐसी जाँचों के लिए उन चीजों का सापेक्ष गुरुत्व जानना आवश्यक होता है जिनके मिश्रणसे कोई गहना आदि तैयार किया गया हो। चपरा कई तरह का होता है, इस लिए उसके सापेक्ष गुरुत्व में भेद हो जाया करता है। गहने में जिस तरहका

चपरा भरा हुआ हो उस तरह के चपरेका सापेक्ष गुरुत्व पहले निकाल लेना चाहिये। इसकी रीति ऊपर बतायी जा चुकी है। सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल आदिके सापेक्ष गुरुत्व में तब तक अन्तर नहीं आता जब तक उनमें कोई अन्य पदार्थ चोरी से न मिला दिया गया हो। जिस पानीके अन्दर तोल की जाय वह साफ़ हो, न बहुत गर्म हो न बहुत ठंडा। अन्य भी छोटी मोटी बातें ऐसी हैं जिनसे हिसाब करने में अल्प अन्तर आ जाता है, परन्तु यह अन्तर अत्यन्त अल्प होता है, और हिसाब में बड़ी बाधा नहीं डालता।

पाठकोंके सुभीतेके लिए कुछ चीजों के सापेक्ष गुरुत्व यहाँ पर दे दिये जाते हैं—

पानी	१	पीतल	८·५
सोना	१९·३	लोहा	७·९
चाँदी	१०·५	भूरा चपरा	१·१५
ताबा	८·९		

नोट—मुझ लेखक को वैज्ञानिक ज्ञान अधिक नहीं है, इसलिए मैं अधिक विज्ञान जाननेवाले सज्जनोंसे नम्र निवेदन करता हूं कि इसी प्रकार के उपयोगी विषय जनता के उपकार के लिए तैयार करने की कृपा करें।

चन्द्रमौलि सुकुल, एम. ए., एल. टी.

टेलीफोनके आविष्कारक डा० बेल

[ले०—पं० रामानन्द त्रिपाठी, एम. ए.]

लीफोनके प्रयोगसे बहुत से सज्जन परिचित होंगे और यह भी जानते होंगे कि टेलीफोन द्वारा हम आपसमें किस सुगमतासे बातें कर सकते हैं। टेलीफोनका सिद्धान्त, उसकी प्रक्रिया तथा उपयोगका विस्तृत वृत्तान्त विज्ञान भाग ३ पृष्ठ २७५ पर दिया हुआ है। यहां हम केवल आविष्कारकका संक्षिप्त जीवन चरित्र देना चाहते हैं।

टेलीफोनके आविष्कारकका पूरा नाम है एलेग्ज़ेण्डर ग्रेहेम बेल। उनका जन्म ३ मार्च सं० १८४७ के दिन एडिनबरा (स्काटलैण्ड) में हुआ था। उनकी शिक्षा पहले स्थानीय विश्व-विद्यालयमें और तदनन्तर लण्डन विश्व-विद्यालय में हुयी। उनके बाप और दादाको बहिरे-गूँगोंकी शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों और योजनाओंसे प्रगाढ़ प्रेम था। अतएव सपूत बेटेको उक्त प्रणालीसे प्रेम और सहानुभूति होना कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं थी। शिक्षा समाप्त होने पर बेल महोदय १८७० में अपने पिताके साथ केनेडा पहुंचे और वहां इस विषयका पूर्ण रीतिसे अध्ययन किया। केनडासे वह संयुक्त राज्य (अमेरिका) को चले गये, जहां वह बोस्टन विश्व-विद्यालयमें स्वर-शारीर-शास्त्र (vocal physiology) के अध्यापक नियुक्त हो गये।

छः साल पीछे उन्होंने एक वैद्युतिक यंत्रका आविष्कार किया, जिसके द्वारा उन्हें शब्दोंको दृष्टिका विषय बना देना अभीष्ट था। बहिरोंको शब्दोंके सुननेके समर्थ कर देना तो असम्भव था, पर इस यंत्रसे वह चाहते थे कि शब्दोंको बहरे देख सकें। स्वयम् शब्द तो दिखायी नहीं दे सकते। यंत्रके सामने बोले हुए शब्दोंसे एक धातुकी रीड हिलने लगती थी, जिससे एक तारमें विद्युत धारा पैदा हो जाती थी। यह धारा तारके दूसरे सिरेपर पहुंच उसके सामने रखी हुई एक वैसी ही रीडमें कम्पन पैदा कर देती थी।

डा० बेल चाहते थे कि इन कम्पनों को इतना स्पष्ट कर दें कि उनको देखकर बहरे मनुष्य यह साफ साफ समझने लगें कि वह किन शब्दोंसे उत्पन्न हुए हैं और उचित अभ्यासके उपरान्त कही हुयी बातोंका ज्ञान इन कम्पनोंके देखने मात्र से उन्हें होने लगे।

परन्तु मनुष्य सोचता क्या है और होता क्या है। वह सोचते तो यह थे कि बहिरोंके कामके एक यंत्रका निर्माण कर डालें पर प्रकृति उन्हें मनुष्य जातिके एक बड़े उपकार का साधन बनाना चाहती थी। उन्होंने जब यह देखा कि दो धातु निर्मित रीड एक से कम्पन कर रही हैं, तो उन्हें यकायक यह खयाल पैदा हुआ कि इस तर्कीबसे ही दूरसे आपसमें बात चीत करनेका प्रयत्न क्यों न किया जाय।

शव के कान में टेलीफोन की उत्पत्ति कैसे हुयी

शारीरशास्त्रके अध्ययनसे डा० बेलको यह तो मालूम ही था कि मनुष्य के कान का पर्दा एक कम्पन-शील यंत्र है। जब शब्दकी तरंग कानमें पहुंचती है तो वह झिल्ली (पर्दे) में कम्पन उत्पन्न कर देती है, ठीक उसी तरह से जैसे कि लोहे की रीड हिलने लगती थीं। इस बातकी परीक्षा उन्होंने एक मरे हुए मनुष्यके कानसे की। कानके पीछे उन्होंने एक तिनका झिल्ली से छूता हुआ रखा। तिनकेका दूसरा छोर धुआंसे ढके हुए कांच-पटसे लगा हुआ था। डा० बेल ने कानमें कुछ शब्द कहे, जिससे झिल्ली हिलने लगी और तिनके हिलनेसे कांच-पट पर चिन्ह हो गये। इस भयंकर प्रयोग में ही टेलीफोन का जन्म हुआ।

डा० बेल ने सोचा कि झिल्ली इतनी छोटी और दुर्बल होती है तथापि वह किस खूबीके साथ मनुष्यके बोलनेके उतार चढ़ाव को ठोस और भारी हड्डियोंमें होकर मस्तिष्क तक पहुंचा देती है। फिर यदि किसी लोहे के बिम्ब (चादर) के कम्पनसे उपर्युक्त प्रकारसे किसी लोहेकी छड़ या तारमें कम्पन पैदा हो जाय, तो क्या आश्चर्य है। अन्तमें इन कम्पनोंके सहारे वैद्युतिक धारामें परिवर्तन होकर दूसरे दूरस्थ बिम्बमें कम्पन पैदा हो जाना और उससे बहुत कुछ असली शब्द से मिलता जुलता शब्द सुनायी पड़ना असम्भव न होगा।

डा० बेलके मित्र उनके इस प्रकारके विचारों-पर हंसने लगे और उन्हें परामर्श देने लगे कि वह इन शेखचिल्लियोंकी सी बातोंको छोड़ उसी अधिक उपयोगी कार्यमें लगे रहें, जिसके लिए वह इतने दिनसे परिश्रम कर रहे थे। उनके दो धनी मित्र जो अबतक द्रव्यसे उनकी सहायता कर रहे थे अब उनकी बातों से असन्तुष्ट हो उठे और भविष्यमें सहायता देनेसे इन्कार किया। बात यहां तक बढ़ी कि जिस रमणीसे उनका विवाह होने वाला था, उसके पिताने भी डा० बेलसे साफ साफ कह दिया कि यदि तुम इस 'फुलिश टेली-फोन' की धुनको छोड़ अपने पूर्व निश्चित मार्ग पर काम करते न रहोगे तो अपनी पुत्री से हम तुम्हारा सम्बन्ध न होने देंगे

परम आत्मत्याग

इस नये आविष्कर्ताने उस ऊंचे दर्जेका आत्मत्याग और आत्मसमर्पण दिखलाया जो योगियोंके योग्य है। उसने अपने मित्रोंको छोड़ा अपनी भावी पत्नीके प्रेम को तिलाञ्जलि दी, यहां तक कि अपने अध्यापकके पदको त्यागा और तन, मन, और (यत्किञ्चित) धनसे अपने यंत्रके शोधमें अनवरत परिश्रम करने लगा। जो कुछ धन, उसके पास था, वह शीघ्र ही खर्च हो गया, किन्तु वह चालीस सप्ताह तक निरन्तर काम करता ही रहा। यह समय बड़ी परीक्षा और निराशाका था, क्योंकि यंत्रसे केवल विचित्र और निरर्थक ध्वनि ही निकलती थी। परन्तु साहसी और परिश्रमी शोधकके लिए प्रकृतिके भण्डारमें किसी बातकी कमी नहीं है। अपनी अधिष्ठात्री देवीसे जो वरदान वह चाहे, ले सकता है। १० मार्च १८७६ को यंत्रसे स्पष्ट शब्द निकले "Mr. Watson, come here; I want you." (मिस्टर वाटसन यहां आइये; मुझे आपसे काम है।) मिस्टर वाटसन उस समय तीन मंजिल नीचे काम कर रहे थे। बोस्टन नगरकी एक संकीर्ण गलीके छोटे कमरेमें जहां मशीनोंका बड़ा भारी शोर

हो रहा था, मिस्टर वाटसनको जब यह शब्द सुनाई दिये, तो उनके हर्ष का पारावार न रहा और वह पागलोंकी तरह दौड़कर एक सांसमें तीन मंज़िल चढ़ गये और बोल उठे "I can hear you; I can hear the words" मैंने तुम्हारी बात सुन ली, तुम्हारे शब्द मुझे सुनायी दे गये।)

इस नवजात यंत्रका उच्चारण दिन प्रतिदिन अधिकाधिक स्पष्ट होने लगा और उसने आधुनिक सभ्यताके मधुर रागका वह सुर अलापा जिसने सारे संसारमें एक नयी प्रगति, एक नये जीवनका संचार कर दिया। वह दिन नवीन सभ्यताके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा, क्योंकि वस्तुतः इस नूतन आविष्कारने एक नये युगका ही आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार डा० बेलने अपनी २६ वीं साल गिरहके दिन संसारके सबसे अधिक महत्वके आविष्कारका बीमा कराया। उन्होंने एक ऐसा नया आविष्कार किया था कि संसारकी किसी भी भाषामें इसका द्योतक शब्द मिलना असम्भव था और इसीसे पेटेण्ट कराते समय उन्होंने लिखाया कि तारकी विधि में एक नया शोध किया गया है। वास्तवमें वह तारसे इतना विभिन्न था, जितना कि किसी प्रख्यात व्याख्यातेकी सरस वक्तृता और गूंगे-बहरेके संकेत-संभाषणमें अन्तर होता है।

आविष्कार के दो महीने पीछे यंत्र फिलेडेल्फिया की प्रदर्शनी में भेजा गया। वहां वह छः सप्ताह तक रखा रहा, पर किसी ने उधर ध्यान भी न दिया। वास्तव में कुछ (जज) विवेचक तो उसका उपहास कर रहे थे कि ब्राज़िल के सम्राट वहां आ पहुंचे और बांह पसार कर बोल उठे "प्रोफेसर बेल, आपके दर्शन कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ"। यह देख विवेचकों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कौन व्यक्ति है जो सम्राट से इतना घनिष्ठ परिचित मालूम होता है और उन्हें उसके शोधका हाल जाननेकी भी उत्सुकता हुयी।

ब्राज़िल-सम्राट मनुष्य मात्र के उपकार के कार्योंसे बड़ी सहानुभूति रखते थे और इसी नाते उन्होंने कुछ साल पहले डा० बेलकी बहरे गूंगों की पाठशालाका निरीक्षण भी किया था। उनकी इच्छा थी कि वह ऐसा ही एक स्कूल अपने देशमें भी खोलें। प्रस्तुत अवसर पर डा० बेल ने सम्राट्से प्रार्थना की कि ग्राहक (रिसीवर) अपने कानसे लगा लें और स्वयम् कमरे के दूसरे छोरपर प्रेषककी तरफ चले गये। किसीको भी पता न था कि क्या घटना होनेवाली है और विवेचक तथा अन्य वैज्ञानिक, जो कुल मिलाकर लगभग ५० थे, बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

इतने में सम्राट्ने ग्राहक परसे सिर उठाकर बड़े आश्चर्य से कहा 'हे भगवान! यह तो बोलता है' ('My god! it talks!") सम्राट् के बाद इङ्गलेण्ड के सुप्रख्यात वैज्ञानिक लार्ड केल्विनने ग्राहक में कान लगाकर बातें सुनीं और आश्चर्यसे पुकार उठे, "अमेरिकामें जितनी चीज़ें मैंने देखी हैं, उन सबसे अधिक चमत्कारिक यही है। यह तो वस्तुतः बोलती है"।

उस मण्डली के जगत् विख्यात् पुरुषों और धुरन्धर विद्वानोंने बारी बारीसे पहले टेलीफोनके शब्द सुने और जिस को जितना अधिक विज्ञानका ज्ञान था उसको उतना ही कम विश्वास अपने कानोंका होता था। उनका आश्चर्य उनके वैज्ञानिक ज्ञानके अनुपातमें बढ़ा चढ़ा था, पर 'हाथ कंगन को आरसी क्या', जो बात प्रत्यक्ष देखी, उसको न मानें तो करें क्या।

गूंगे-बहिरों के युवक शिक्षकने स्वस्थ जिव्हा और कानवालोंको वह महान् शक्ति प्रदान कर दी कि वह अपने शब्दको आज हज़ारों मीलतक पहुंचा सकते हैं और सहस्रों योजनोंसे, धीरेसे कहे हुए शब्दोंको, सहज ही सुन सकते हैं।

डा० बेलने और भी बहुत कुछ काम किया है, जिसका सम्बन्ध प्रकाश रश्मियों के परिवर्तन द्वारा

शब्द-भेजनेकी विधि, उपपादन-तुला और बोलने वाली-मशीन आदिसे है। इसका वृत्तान्त भी कभी विज्ञानके पाठकोंके भेंट किया जायगा। वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धिमें भी डा० बेलने बहुत काम किया है और अब तक गूंगे बहरोंके इलाज आदि और स्वर यंत्रके विषयमें प्रमाण माने जाते हैं।

जीवन में सफलता

(ले० पं० गिरजादत्तशुक्ल)

जीवनकी सफलताके विषयमें लोगोंके विचार भ्रमसे भरे हैं। वह समझते हैं कि जिस मनुष्यके पास खाने पीने और खर्च करनेके लिए पर्याप्त द्रव्य है, उसीका जीवन सफल है। धनही उनकी सफलताके नापनेका प्रधान पैमाना है। परन्तु यह भारी भूल है। बाहरी तड़क भड़कमें न भूलिये, धनवानोंके हृदयसे जाकर पूछिये। आपको यह पता लग जायगा कि उन्हें केवल एक बातका आराम है, और वह यह कि धन प्राप्ति के लिए न अधिक प्रयास ही करना पड़ता है और न अधिक चिन्ता ही। बस इस आनन्दको छोड़ कर धन भाण्डारके साथ ही साथ दुःख भाण्डार भी उनके पास है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि द्रव्य नितान्त अनावश्यक वस्तु है, नहीं धनका बहुत बड़ा महत्व है, किन्तु उसकी एक सीमा है। उसे लक्ष्य कदापि न बनाना चाहिये। लक्ष्य प्राप्तिके लिए उसे साधन बनाना ही समुचित है। रोटीके प्रश्न ने कितने ही कार्य्य करनेवालोंके मार्गमें अड़चनें डाली हैं, और यदि कार्य्य कर्त्ता उसकी चिन्तासे मुक्त रहे, तो इसमें सन्देह नहीं कि बहुत बड़ी बाधा दूर हो जाय। यहां पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि आखिर सफलता है क्या वस्तु? हम सफल उसी मनुष्यको कहेंगे जिसने समाजमें उचित सम्मान प्राप्त किया है और जो हृदयमें अपनेको उस सम्मान का पात्र भी समझता है। सम्भव है कि ऐसा मनुष्य कोई बड़ा महत्व पूर्ण कार्य्य न कर सका हो परन्तु ऐसा होते हुए भी उसका जीवन सफल ही कहा जायगा, क्यों कि वह उसे स्वयं तथा औरोंके लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है। वह अपनी योग्यताके विचार से सन्तुष्ट हो सकता है, वह योग्यता कैसी ही छोटी और साधारण क्यों न हो, और यही बहुत बड़ी सफलता है। इस बातका ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि जीवन में सफलता प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य के लिए संभव है।

कितने ही लोग अपनी अयोग्यता और असमर्थताके कारण सफलता प्राप्तिको अत्यन्त कठिन समझ कर हताश हो जाया करते हैं। यह ठीक है कि कालिदास और शेक्सपियरकी ऐसी कविता सभी नहीं कर सकते। सूरदास और तुलसीदास के ऐसे भावुक भक्त होना सभी लोगोंके भाग्यमें नहीं। हृदय प्राण को मुग्ध कर देने वाले चित्रोंका निर्म्माण करना प्रत्येक मनुष्यका कार्य नहीं। परन्तु क्या यदि हमें अपूर्व प्रतिभा न मिली हो तो हम कुछ करें ही नहीं? जितनी बुद्धि और योग्यता परमात्माने हमें प्रदान की है, क्या उसीसे सन्तुष्ट होकर उसका सदुपयोग भी कर सकना हमारे लिए सम्भव नहीं? हमें आशा है कि प्रत्येक मनुष्य हमारे इस कथनसे सहमत होगा कि साधारण से साधारण कार्य जो अच्छी भांति जी लगाकर किया गया है, अंतमें संतोषजनक फल देता है। सच पूछिये तो संसारका जीवन निम्न-श्रेणीके पुरुषोंके कार्य्य पर ही अवलम्बित है। क्या समुद्रमें जहाज़ चल सकते हैं, यदि संसारके साधारण पुरुष उसमें काम करना छोड़ दें। कोई ऐसा व्यवसाय नहीं, कोई ऐसी संस्था नहीं, जिसमें साधारण पुरुषोंके बिना काम चल सके और इसलिए साधारण मनुष्योंके शान्तिमय जीवनमें,

जिसे वह बिना किसी महत्वपूर्ण पुरस्कार की आशाके प्रतिदिन व्यतीत करते हैं, एक निराली ही छटा है। जिस मनुष्यकी आत्मा जीवनके प्रत्येक क्षणमें कर्त्तव्य पालनका संतोष पा सकती है, वह इतिहासमें नेल्सनका गौरव और यश न प्राप्त कर सके तो भी वह उतना ही सफल कहा जायगा जितना एक युद्धके विजयी होनेपर वह कहा जाता।

जो मनुष्य जीवनमें सफलता प्राप्त करनेका इच्छुक है, उसे कोई अवसर हाथ से न जाने देना चाहिये। अवसरोंका सदुपयोग ही सफलताकी सच्ची कुंजी है। जो सोया सो खोया। जिसने एक भी मौक़ेको, उससे पूर्ण लाभ उठाये बिना, जाने दिया, उसने बड़ी भारी भूल की। सफलता देवी-की आराधना में तनिक सी भी भूलके लिए स्थान नहीं। यदि आप रेलगाड़ीके ड्राइवर हैं तो सिग्नलों की ओर देखते रहिये। यदि आप क्लर्क हैं तो चिट्ठियोंमें ग़लतियां न होने पावें। यदि आप मंत्री हैं तो बातोंको भूल जानेकी आदत छोड़ दीजिये। यदि आप सम्पादक हैं तो ध्यान रखिये कि आप जो कुछ लिखें वह ठीक हो। कहनेका आशय यह है कि आप जो कार्य्य करें सर्वोत्तम रीतिसे कीजिये, और जीवनमें जो कुछ आगे आजाय उसका स्वागत करनेके लिए प्रत्येक क्षण तय्यार रहिये। सफलताके मन्दिरकी ओर वह लोग दृष्टि भी उठानेका विचार न करें जिनके पांवोंमें आलस्यकी बेड़ी पड़ी है तथा जिनके हृदयोंमें न शक्ति है और न भक्ति है, क्योंकि ऐसे लोग प्रथम तो उसके निकट ही नहीं पहुंच सकते, फिर पहुंचें भी तो देवीके दर्शन से वञ्चित ही रह जाते हैं।

सच्ची शिक्षा ही सफलताकी जननी है। 'सच्ची' शब्द का प्रयोग हम इसलिए करते हैं कि लोगोंके विचार इस विषयमें भी भ्रमपूर्ण हैं। आजकल बहुतोंकी दृष्टिमें शिक्षाका उद्देश्य भोजन का प्रबन्ध करना है। साधारण स्थिति का मनुष्य उसको अपनी सामाजिक अवस्था सुधारनेका एक सुन्दर मन्त्र समझता है और मध्यस्थितिका मनुष्य पेन्शन प्राप्तिका एक सुगम साधन। इसमें सन्देह नहीं कि भोजन का प्रबन्ध सबसे प्रथम और अत्यन्त महत्व पूर्ण वस्तु है, परन्तु जो लोग शिक्षाका इतना ही उद्देश्य समझते हैं, वह भारी भूल करते हैं। शिक्षाका असली कार्य्य मनुष्यके मस्तिष्कको सर्वोत्तम बनाना है। यह वह इनजीनियर है जिसे हम मस्तिष्कके यन्त्रकी निगरानी करनेका भार सौंपते हैं। अथवा यों कहिये कि शिक्षासे हम इस यन्त्र का चलाना, सम्हालना तथा इसके द्वारा सर्वोत्तम काम लेना सीखते हैं। जो मनुष्य मस्तिष्कके समस्त कर्तव्यों पर पूर्ण अधिकार रखता है और मनुष्य मात्र अथवा अपने ही आनन्द और लाभके लिए उसका प्रयोग कर सकता है, वही सुशिक्षित कहा जा सकता है। शिक्षाका कार्य्य हमारे हृदय और आत्माको उदार और उन्नत तथा चरित्रको पवित्र बनाना है।

क्या कारण है कि विद्वान होने पर भी लोग प्रायः सफलता नहीं प्राप्त करते। उदाहरणके लिए दो वकीलोंको ले लीजिये। दोनों एक ही कक्षा एक ही श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए हैं और दोनोंकी सामाजिक अवस्था एक है। क्या कारण है कि एक तो बहुत शीघ्र नामी वकीलोंमें हो जाता है और दूसरा वैसे ही पड़ा रह जाता है। इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जायगा कि पहला अपने प्राप्त ज्ञानको प्रति दिन व्यवहारमें लाता है और दूसरा ऐसा नहीं करता। पुस्तकोंमें लिखा है सत्य बोलो। एकने इसे पढ़ कर इस पर अमल किया। दूसरेने भी इसे पढ़ा, परन्तु उसने पुस्तक ताक पर रख दी और अपने प्राप्तज्ञानको व्यवहारमें स्थान नहीं दिया। क्या कोई भी इसमें आश्चर्य्य कर सकता है कि पहला मनुष्य शीघ्र ही जिस पेशेको अपनायेगा उसीमें सफल होगा तथा दूसरा जहां कहीं जायगा ठोकर खाता रहेगा। अतएव उत्तम शिक्षा प्राप्त करने पर हमें उचित है कि उसे प्रतिदिनके व्यवहारमें स्थान दें।

विवाहने यदि कहीं कहीं मनुष्यको असफल बनाया है तो कहीं कहीं वह जीवनमें सफलता प्रदान करने का प्रधान साधन हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि अच्छी स्त्रीके मिलनेसे अनेकों कठिनाइयां दूर हो जाती हैं और अनेक उत्तम गुणोंकी ओर मनुष्यका ध्यान आकृष्ट होता है। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें स्त्रीने पुरुषके हृदयमें नवीन शक्तिका संचार किया है और उसके मनमें कार्य्य करनेका अदम्य उत्साह भर दिया है। यह भी देखा गया है कि स्त्रीके आजानेसे लोग सफ़ाईसे रहने लगे हैं और समाजमें उनकी रहन सहनका ढंग पहलेकी अपेक्षा अत्यन्त सुन्दर हो गया है। इसके अतिरिक्त घरके कितने ही काम स्त्रीके कारण कम ख़र्च और अधिक उत्तमतासे होने लगते हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्त्री ही गृहको स्वर्ग बना देती है। हम तो यहां तक कहेंगे कि बिना स्त्रीके कोई घर रहने योग्य हो ही नहीं सकता। जैसे बिना कमलके नदीकी शोभा नहीं होती वैसे ही बिना गृहिणीके कोई गृह सरस हो ही नहीं सकता। परन्तु विवाह विचार करके करना चाहिये। जब तक हम यह न जान लें कि हमारा भविष्यमें निश्चित जीवन क्या होगा, हमारी क्या आमदनी होगी और हमारी क्या सामाजिक स्थिति होगी, विवाह करके अपने ऊपर एक बोझा डाल लेना केवल मूर्खता है। इसके विपरीत यदि हम अपनी आमदनी और अपने सामाजिक स्थानको निश्चित रूपसे पहलेसे ही जानते रहें तो युवावस्थामें ही पारवारिक भार उठानेकी आवश्यकता होनेसे अधिक कष्ट नहीं मालूम होगा, क्योंकि तब हृदय और शरीर दोनोंमें कठिनाइयां सहन करनेकी शक्ति रहेगी।

पुरुष और स्त्रीमें झगड़ा होनेका कोई मौक़ा न आये, इस पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। इसके लिए कुछ ऐसे विषयों पर बातचीत इत्यादि होनी चाहिये जिनपर दोनोंका एक मत हो, परन्तु इस विषयमें अधिक न कह कर हम केवल इतना कह देना अलम् समझते हैं कि समस्त झगड़ों तथा मतभेदोंका अन्त करनेके लिए दम्पतिके हृदयमें प्रेम होना चाहिये। प्रेमकी अनुपस्थितिमें सब प्रकारके उपद्रवोंका जन्म होगा तथा उसके रहते सर्वदा शान्तिका राज्य रहेगा।

सफलता-प्राप्तिके प्रेमीको एक बात और करनी चाहिये। उसके लिए अपनी शक्ति अच्छी तरह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। जिस मनुष्यका पाषाण हृदय कभी द्रवित होना जानता ही नहीं, जिसकी आंखसे करुणाके आंसू कभी टपके ही नहीं, ऐसा शुष्क हृदय मनुष्य यदि दूसरोंके हृदयको हिला देने वाली कविता लिखने बैठे, तो समय तथा शक्तिका नाश अथवा दुरुपयोग तो वह करेगा ही, साथ ही साथ बुध समाजमें उपहासका पात्र भी यथेष्ट रूपसे होगा। यही दशा होगी उस गणितके प्रेमीकी जो गणितज्ञ होनेकी लालसामें तो मरा जाता है, परन्तु जिसका कोई भी जोड़ और बाक़ी ग़लतियोंके बिना नहीं जाता। सफलताकी प्राप्तिमें उस मनुष्यसे अधिक निराश कोई भी नहीं होगा जो इस प्रकार अपनी शक्तिको ऊटपटांग रीतिसे न समझ कर अपना उद्देश्य स्थिर करता है। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपनी शक्तिको समझलें और उतने ही पैर पसारनेकी चेष्टा करें जितनी लम्बी हमारी सौर है।

इतनी बातें तो हमने व्यक्तिगत अथवा एक साधारण परिवार गत जीवनके विषयमें बतलाईं। अब हम सार्वजनिक जीवनके सम्बन्धमें कुछ कहेंगे। जो स्थान एक कुटुम्बके भरण पोषण करनेवाले स्वामीका उस परिवारमें होता है, वही स्थान नेताका उसके देश अथवा जातिमें होता है। इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सार्वजनिक जीवन बड़ा उत्तर-दायित्व पूर्ण होता है। स्वदेश और स्वजातिके हितसिद्धकी जहां तनिक भी सम्भावना है, वहां नेताको बड़ीसे बड़ी कठि-

नाइयोंके आगे भयभीत न होना चाहिये। थोड़ी भी कायरताकी झलक अथवा उसके होनेकी निर्मूल शंका तक बड़ेसे बड़े राजनीतिज्ञोंको उनके उच्चासनसे उतार देनेके लिए पर्याप्त है। लोगोंके हृदयमें एक बार यह बात बैठा देनी चाहिये कि उनका हितचिन्तन ही नेताका प्रधान उद्देश्य है। उनके आँसुओंके पोंछनेके लिए वह प्राण तक दे देनेको तय्यार है। बस फिर तो जनता उस पर अनुरक्त होकर उसके पैर चूँमेगी और उसके चरणतलकी धूलको अपने मस्तक पर चन्दनवत् धारण करेगी। देशभक्ति, साहस, सहृदयता, तथा निस्स्वार्थताके साथ साथ नेतामें वक्तृत्व शक्तिका होना परम आवश्यक है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि जिस मनुष्यमें इस गुणका अभाव है, वह अच्छा नेता हो ही नहीं सकता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि उसके समस्त गुणोंके साथ साथ यह गुण भी हो तो वह देवताकी तरह पूज्य हो सकता है। वक्तृत्व शक्तिमें एक मोहनी है। कठिनसे कठिन काम जिसका और किसी प्रकार सिद्ध हो सकना नितान्त असम्भव था, वक्तृताका आश्रय लेकर वक्ताओंने अत्यन्त आसानीसे कर दिखाया है।

अन्तमें थोड़ा सा स्वास्थ्यके सम्बन्धमें निवेदन करके हम इस छोटे से लेख को समाप्त करेंगे। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि कितने ही सर्वदा अस्वस्थ बने रहनेवाले मनुष्योंने भी बहुत बड़ा नाम और यश कमाया है, तदपि हम यही कहेंगे कि उन्हें नियम के समर्थक अपवाद-स्वरूप समझना चाहिये। सफलता प्राप्त करना कोई आसान बात नहीं है, इसके लिए निरन्तर परिश्रम की आवश्यकता है और इस बात को कौन न स्वीकार करेगा कि यदि स्वस्थ मनुष्य अस्वस्थ मनुष्य से किसी और गुण में कम न हो तो वह अधिक कार्य्य कर सकने के योग्य होने के कारण अवश्य ही जीवन-संग्राम में सदैव विजयी रहेगा।

—:o:—

[पृष्ठ १०४ के आगे]

उपयोगी जीवाणु, तथा अनेकानेक पदार्थोंके कण वायु मण्डलमें पहुंच जाते हैं और हल्के होनेके कारण वहीं लटके हुए रह जाते हैं या धीरे धीरे नीचे गिर जाते हैं। पर वायुमण्डलके ऊपरी भागोंमें यातो उसके बाहरसे आते है या पृथ्वीतलसे पहुंचते हैं। पृथ्वी पर जब कभी ज्वाला मुखी जागते हैं और उनमेंसे बड़े बड़े भयावने धड़ाकोंके साथ, बड़े वेगसे लाखों मन रेत निकलती है, तो उसका कुछ हिस्सा बहुत ऊंचा चढ़ जाता है और वायु-मण्डलको भेद कर अनन्त आकाशमें पहुंच जाता है। ऐसी घटनाएं अन्य तारों और ग्रहों पर हज़ारों गुने बड़े पैमानेपर हर घड़ी हुआ करती हैं। अतएव प्रत्येक धड़ाके के साथ इन पिण्डोंमें से लाखों मन रेत निकल जाती है। अनुमानतः सूर्य ५४ खरब मन रेत प्रतिवर्ष खो बैठता है और पृथ्वीको प्रतिवर्ष पांच लाख साठ हज़ार (५६००००) मन रेत लाभ होता है। यह रेत जैसे ही देशमें पहुंचती है कि बड़े वेगसे चक्कर लगाने लगती है और उसका कुछ अंश जो अन्य तारों, ग्रहों और उपग्रहोंके पास जा निकलता है उनके आकर्षणके द्वारा, उनमें जा पहुंचता है।

यह घटना-चक्र अनन्त कालसे अनन्त ग्रहों, उपग्रहों और तारोंमें हो रहा है। अतएव उनका भार प्रायः ज्योंका त्यों ही बना रहता है, क्योंकि जितनी धूल किसी पिण्डसे अलग होजाती है प्रायः उतनी ही उसमें बाहरसे आजाती है। यदि यह धूल-विनिमय न होता तो यह पिण्ड कभीके काफूर हो जाते। इन्हीं घटनाओंके कारण समस्त देश, जिसकी झलक परम प्रवीण दूर्दर्शकों द्वारा मनुष्यको मिली है, ऐसी रेतसे भरा हुआ है, जो, जैसाकि ऊपर बतला आये हैं, बड़े वेगसे चक्कर लगा रही है। इन धूल कणोंका वेग हज़ारों मीलों में नापा जाता है। यह कण उचित दशामें मिल कर उल्का, पुच्छल तारे, सूर्य, ग्रह, उपग्रह अथवा नीहारिका बना लेते हैं। इन्हींसे सम्भवतः नये ब्रह्माण्डोंकी रचना होती है।

नाइयोंके आगे भयभीत न होना चाहिये। थोड़ी भी कायरताकी झलक अथवा उसके होनेकी निर्मूल शंका तक बड़ेसे बड़े राजनीतिज्ञोंको उनके उच्चासनसे उतार देनेके लिए पर्य्याप्त है। लोगोंके हृदयमें एक बार यह बात बैठा देनी चाहिये कि उनका हितचिन्तन ही नेताका प्रधान उद्देश्य है। उनके आँसुओंके पोंछनेके लिए वह प्राण तक दे देनेको तय्यार है। बस फिर तो जनता उस पर अनुरक्त होकर उसके पैर चूँमेगी और उसके चरणतलकी धूलको अपने मस्तक पर चन्दनवत् धारण करेगी। देशभक्ति, साहस, सहृदयता, तथा निस्स्वार्थताके साथ साथ नेतामें वक्तृत्व शक्तिका होना परम आवश्यक है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि जिस मनुष्यमें इस गुणका अभाव है वह अच्छा नेता हो ही नहीं सकता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि उसके समस्त गुणोंके साथ साथ यह गुण भी हो तो वह देवताकी तरह पूज्य हो सकता है। वक्तृत्व शक्तिमें एक मोहनी है। कठिनसे कठिन काम जिसका और किसी प्रकार सिद्ध हो सकना नितान्त असम्भव था, वक्तृताका आश्रय लेकर वक्ताओंने अत्यन्त आसानीसे कर दिखाया है।

अन्तमें थोड़ा सा स्वास्थ्यके सम्बन्धमें निवेदन करके हम इस छोटे से लेख को समाप्त करेंगे। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि कितने ही सर्वदा अस्वस्थ बने रहनेवाले मनुष्योंने भी बहुत बड़ा नाम और यश कमाया है, तदपि हम यही कहेंगे कि उन्हें नियम के समर्थक अपवाद-स्वरूप समझना चाहिये। सफलता प्राप्त करना कोई आसान बात नहीं है, इसके लिए निरन्तर परिश्रम की आवश्यकता है और इस बात को कौन न स्वीकार करेगा कि यदि स्वस्थ मनुष्य अस्वस्थ मनुष्य से किसी और गुण में कम न हो तो वह अधिक कार्य्य कर सकने के योग्य होने के कारण अवश्य ही जीवन संग्राम में सदैव विजयी रहेगा।

—:०:—

[पृष्ठ १०४ के आगे]

उपयोगी जीवाणु, तथा अनेकानेक पदार्थोंके कण वायु मण्डलमें पहुंच जाते हैं और हल्के होनेके कारण वहीं लटके हुए रह जाते हैं या धीरे धीरे नीचे गिर जाते हैं। पर वायुमण्डलके ऊपरी भागोंमें याता उसके बाहरसे आते है या पृथ्वीतलसे पहुंचते हैं। पृथ्वी पर जब कभी ज्वाला मुखी जागते हैं और उनमेंसे बड़े बड़े भयावने धड़ाकोंके साथ, बड़े वेगसे लाखों मन रेत निकलती है, तो उसका कुछ हिस्सा बहुत ऊंचा चढ़ जाता है और वायुमण्डलको भेद कर अनन्त आकाशमें पहुंच जाता है। ऐसी घटनाएं अन्य तारों और ग्रहों पर हज़ारों गुने बड़े पैमानेपर हर घड़ी हुआ करती हैं। अतएव प्रत्येक धड़ाके के साथ इन पिण्डोंमें से लाखों मन रेत निकल जाती है। अनुमानतः सूर्य ८४ खरब मन रेत प्रतिवर्ष खो बैठता है और पृथ्वीको प्रतिवर्ष पांच लाख साठ हज़ार (५६००००) मन रेत लाभ होता है। यह रेत जैसे ही देशमें पहुंचती है कि बड़े वेगसे चक्कर लगाने लगती है और उसका कुछ अंश जो अन्य तारों, ग्रहों और उपग्रहोंके पास जा निकलता है उनके आकर्षणके द्वारा, उनमें जा पहुंचता है।

यह घटना-चक्र अनन्त कालसे अनन्त ग्रहों, उपग्रहों और तारोंमें हो रहा है। अतएव उनका भार प्रायः ज्योंका त्यों ही बना रहता है, क्योंकि जितनी धूल किसी पिण्डसे अलग होजाती है प्रायः उतनी ही उसमें बाहरसे आजाती है। यदि यह धूल-विनिमय न होता तो वह पिण्ड कभीके काफूर हो जाते। इन्हीं घटनाओंके कारण समस्त देश, जिसकी झलक परम प्रवीण दूर्दर्शकों द्वारा मनुष्यको मिली है, ऐसी रेतसे भरा हुआ है, जो, जैसाकि ऊपर बतला आये हैं, बड़े वेगसे चक्कर लगा रही है। इन धूल कणोंका वेग हज़ारों मीलों में नापा जाता है। यह कण उचित दशामें मिल कर उल्का, पुच्छल तारे, सूर्य, ग्रह, उपग्रह अथवा नीहारिका बना लेते हैं। इन्हींसे सम्भवतः नये ब्रह्माण्डोंकी रचना होती है।

महाशयो, यहकण समुदाय, यह कणोंका गुच्छक, जो इस समय तख़त पर बैठा, मेज़ पर झुका हुआ, बड़े अहंकारसे यह लेख लिख रहा है, इसके एक एक कणका इतिहास इतना पुराना है कि बुद्धि उसका विचार करके थकित हो जाती है। इसमें-के किसी एक कणपर ही विचार कीजिये जो दिमाग़में हरकत कर रहा है और विचार उत्पन्न कर रहा है। यही कण सूदूर भूत कालमें हज़ारों मील प्रति सैकण्डके वेगसे, आकाशीय धूलके रूपमें, चक्कर लगा रहा था। अन्य कणोंके साथ मिलकर इससे एक नीहारिका बन गई होगी, नीहारिकासे एक सूर्य और उसकी सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई होगी। यह उसी सम्प्रदायमें कहीं छिपा पड़ा रहा होगा। अर्बों वर्ष तक वह सूर्य प्रकाश और उष्णता उत्पन्न करके अन्तमें ज्योतिहीन हो गया होगा और अन्तमें किसी तारेसे टकरा गया होगा, जिससे दोनोंकी छार छार होगई होगी। इसी प्रकार यह कण अनेक ब्रह्माण्डोंका अवयव होनेका सौभाग्य प्राप्त कर कभी पृथ्वीपर आपड़ा होगा। यहां पर भी न जाने कितनी बार वह वनस्पतिका रूप धारणकर, पशुओं और मनुष्योंका अङ्ग बन चुका है, बार बार देहा वसान होने पर फिर मिट्टीमें मिल चुका है और आज फिर अभिमानसे मस्तिष्कमें बैठा विचार उत्पन्न कर रहा है। ईश्वर तेरी माया अपरम्पार है! तेरी सृष्टिके एक तुच्छसे तुच्छ कण की यह सनातनता और यह प्रचीनत्व, ऐसा विचित्र इतिहास और ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन।

मनुष्य इन बातोंका पार क्या पासकता है? जो रेतके कण वायु मण्डलमें प्रवेश करते हैं, वह प्रायः विद्युन्मय होते हैं। उनमें प्रायः ऋण विद्युत् विद्यमान रहती है। अतएव वायु मण्डलमें घुसते ही उनका विचलन ध्रुव देशोंकी ओर होता है, अर्थात् सीधे भूतल तक न पहुंचकर वह पृथ्वी के ध्रुवोंकी ओर मुड़ जाते हैं और वहां पहुंचकर आकाशमें विचित्र तमाशे दिखाते हैं। जो बिजली कि चमक चमक कर हमें नख दिखाती है, वह कणोंके साथ अनन्त आकाशके दूरवर्ती सूर्य या तारे-से चलकर लाखों वर्षतक यात्रा करती हुई, हमारे ग्रहतक आ पहुंची है। उन सूर्योंका मनुष्य को दूर्वीक्षणकी सहायतासे भी दर्शन होना दुलर्भ है, यद्यपि उनके पाससे यह कणदूत आते हैं और विद्युत्की भेट हमारे मन्दिर में चढ़ाते हैं!

वायु मण्डलमें जो रेतके कण विचरते हैं उनसे एक और बड़ा उपकार होता है। यही वास्तवमें हमारे इन्द्र हैं, क्योंकि इन्हींका आश्रय ले जल वाष्प बादल बनाती है और पानी बरसता है। कदाचित् वायु मण्डल कण रहित हो जाय तो सम्भवतः वर्षा होना बन्द हो जाय और पृथ्वी जीवनशून्य हो जाय।

[असमाप्त]

—:०:—

'का कह तोहि पुकारूँ ?'

कर्बन द्विओषिद के रहस्यपूर्णचमत्कार

[ले०—प्रो० मनोहर लाल भार्गव, एम० ए०]

जूलियस सीज़रके क़त्ल किये जाने के बाद जब मार्क एंटेनीने अपने दोस्तके खूनका बदला लेनेके इरादे से रोमके निवासियोंके सामने वह ओजस्वनी वक्तृता, वह पुरज़ोर तक़रीर, दी जो इतिहास में विख्यात है और उनके दिलों में जगह करली तो क्लिओपेटराने भी यही मसलहत समझी कि एंटोनीसे मित्रता करे और उसे अपने हुस्नका गुलाम बनाले। वह इस अभीष्ठमें कितनी कृतकार्य हुई यह सभी इतिहासज्ञ जानते हैं। हम सारी प्रेम कहानी सुनाना नहीं चाहते। केवल प्रेमियोंकी पहली भेंटके अवसर पर जो एक घटना हुई उसका उल्लेख करना चाहते हैं। क्लिओपेट-राने अपना वैभव और विलास-प्रियता दिखलाने के लिये एक जाममें शराब भरकर उसमें कुछ मोतियोंको गलाया और एंटोनीको प्याला पेश किया।

इतिहासकार के लिए तो इतना लिखना काफी है पर वैज्ञानिकको अधिक विस्तृत वृत्तान्तकी अपेक्षा है। यद्यपि वह पर्याप्त नहीं है तथापि वैज्ञानिक ज्ञान चक्षुसे उस सुदूर कालमें घटित घटनाको आज ऐसी स्पष्ट रीतिसे देख सकता है मानों उसके आंखोंके सामने होरही हो। वह दावेके साथ कह सकता है कि मोतियोंको शराबमें छोड़नेके समय शराबमें एक उफान सा आया होगा जो प्रेमियोंकी उमंगोंका, मनके भावोंका दिलोंके जोश और जज़बातका नमूना होगा। या यों कहिये कि जिसने बतला दिया कि परिवर्तनशील संसारमें मायावी मोह उतना ही क्षण भङ्गर और अपायी है जितना इस शराबका जोश। रूप लावण्यके मदसे मतवालो, होश सम्भालो, चेतो, यह यौवन मोतियोंकी आबकी तरह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। वायुके बुलबुलों की तरह ग़ायब हो अनन्तमें समा जायगा।

शराबका जोष कमहोने पर मोतियोंके बेघुले हुए टुकड़ोंके आस पाससे हवाके कुछ बुलबुले निकल कर इठलाते नृत्य दिखाते प्यालेके ऊपर तक आ ग़ायब हो जाते होंगे। यह प्रयोग पाठक आप भी घर पर कर सकते हैं। थोड़ा सा अमचूर लेकर पानी में कुछ देरतक भिगो दीजिये। तदनन्तर छान कर कांच के साफ गिलासमें भर लीजिये और खड़िया या संगमरमरके कुछ छोटे छोटे टुकड़े डाल दीजिये। आप देखेंगे कि पहले एक उफान सा आता है जो धीरे धीरे शान्त हो जाता है और अन्तमें उन टुकड़ों के आस पाससे वायुके बुलबुले आनन्द पूर्वक निकलते हैं और अपना तमाशा दिखाते हुए अनन्त वायुमें जा मिलते हैं।

जो गैस इस प्रकार बनती है उसीका नाम कर्बन द्विओषिद है। यह गैस हमारी उच्छ्वासमें रहती है। इस बातकी परीक्षा भी सुगमतासे की जासकती है। एक गिलासमें निथरा हुआ चूनेका साफ पानी रखिये और किसी निगालीके एक सिरे को उसमें डुबो कर दूसरे सिरेसे फूंकिये। थोड़ी देरमें पानी दूधिया हो जायगा। हम हर समय शुद्ध वायु अन्दर खींचते रहते हैं और कर्बन द्विओषिद मिश्रित वायु बाहर निकालते रहते हैं। यही कर्बन द्विओषिद चूनेके साफ पानीको गदला कर देती है। यहां पर एक बात और बतला देना आवश्यक है जिसका काम आगे चल कर पड़ेगा। वह यह है कि यदि निगालीसे आप फूंकते ही रहें तो जो गदलापन पहले पैदा होगा वह गायब होजायगा और चूनेका पानी फिरसे स्वच्छ और निर्मल हो जायगा। इसका कारण यह है कि कर्बन द्विओषिद पानीमें घुलकर कर्बनिक अम्ल बना लेती है। यही घुले हुए चूनेके साथ मिलकर खड़िया बना लेता है, जिस कारण एक बुकनी सी पैदा होकर पानी गदला हो जाता है। सब चूनेकी खड़िया बन चुकने पर अम्ल खड़ियाको घुलाने लगता है और जो पर्याप्त मात्रामें हुआ तो पानीको साफ़ कर देता है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वह इस बातको याद रखें कि जिस पानीमें कर्बन द्विओषिद घुला रहता है वह खड़ियाको घुला सकता है, शुद्ध पानीमें खड़िया अनघुल है।

प्रत्येक गृहस्थके घरमें प्रति दिन लकड़ी और कोयले जलते हैं और अन्तमें बचती है एक मुट्ठी भर राख। इस प्रकार प्रतिदिन संसारमें करोड़ों मन ईंधन जल जाता है और मुश्किलसे उसका दसवां भाग राखके रूपमें बच रहता है। धुएंकी गाड़ी उड़ती चली जाती है। यह न जाने कितना कोयला स्वाहा कर जाती है। दुनियाके कारखानों में भी न मालूम कितना कोयला गायब हो जाता है। प्रतिदिन स्टेशनों परसे सैकड़ों गाड़ियां कोयलेकी भरी निकलती हैं, बड़े बड़े स्टेशनों पर देखिये तो कोयलेके पहाड़से चिने रहते हैं। जहाजोंमें कोठेके कोठे कोयलेके भर कर बन्दर से रवाना होते हैं, पर सफ़र खतम होनेतक सब खाली हो जाते हैं। प्रति वर्ष लगभग ३० अरब मन कोयला जलाया जाता है। लकड़ीका तो पता ही लगाना मुश्किल है। प्रश्न यह है कि कोयला और लकड़ी जाते कहां हैं? क्या जलकर इनका अन्त हो जाता है और यह गायब हो जाते हैं?

सायंसने इस बातकी बहुत खोज और परख की है और यह मालूम किया है कि पदार्थका नाश नहीं हो सकता। दुनियाकी कोई चीज़ मिटती नहीं, सिर्फ उसकी शकल बदल जाती है। कोयला भी जलकर आंखोंसे ओझल होजाता है, पर सच पूछिये तो वह न दिखलाई देनेवाली एक गैसमें बदल कर हवामें जा मिलता है। यह वही गैस है जिसकी चर्चा हम आज कर रहे हैं। इसका नाम हम आप को बतला चुके हैं कर्बन द्विओषिद है।

अद्भुत चक्र

कोयला जलता है। इसका क्या अर्थ, इसका क्या मतलब? रसायन शास्त्री, कीमियागर, आपको बतलायेगा कि कोयला हवाके एक हिस्से ओषजनके साथ मिलकर एक मुरक्कब, यौगिक, बना लेता है, जिसे कर्बन द्विओषिद कहते हैं। इस यौगिकके, इस गैसके, बननेमें ही गरमी पैदा होती है, जिससे हम काम लेते हैं। यौगिक हवामें जा मिलता है। हवामें से इसे पौधे पीलेते हैं और बढ़ते हैं। पौधोंको या फलोंको पशु-पक्षी खाते हैं। इस तरह कोयलेका अंश उनके शरीरोंमें जा पहुंचता है या दरख्तोंके धरतीमें गिरकर दब जानेसे पत्थरका कोयला बन जाता है। इस भांति फिर कोयलेका कोयला होजाता है। उधर जो कोयला पशु पक्षियोंके जिस्मोंमें जा पहुंचता है वह भी हर सांसके साथ थोड़ा थोड़ा करके बाहर निकलता है, जिसकी जांच करनेकी तरकीब हम ऊपर लिख आये हैं। सच पूछिये तो हम भी कोयलेकी तरह जल रहे हैं, पर जलते हैं बहुत ही आहिस्ता आहिस्ता। यही वजह है कि जलनेमें और सांस लेनेमें कर्बन द्विओषिद बनता है। इंजनोंमें कोयला झोंका जाता है और हमारी जठराग्नि (पेटकी आग) में रसीला भोजन। पर काम दोनोंका एक ही है—गरमी पैदा करना और मशीन चलाना।

जब कभी सोडा, लेमनेड, रसभरी, आदिकी बोतलें खोली जाती हैं, तो यही गैस आपके शौक़की दाद देनेके लिए बड़े जोशसे बाहर निकल पड़ती है। या यों कहिये कि दर्वाज़ा खुलते ही, जिस तरह क़ैद ख़ानेसे क़ैदी निकल भागते हैं, डाट खुलनेसे गैस हवा हो जाती है। शकर अंगूर या महुएसे, लाहन डाल कर, जब शराब बनाते हैं तब भी यही गैस पैदा होती है। इसीके पैदा होनेसे शराब बनानेके मटकों या नांदोंमें झागसे दिखाई देते हैं। जहां जहां चीज़ें सड़ती हैं या उनमें ख़मीर उठता है, तहां यह गैस अवश्य रहती है।

सारांश यह है कि दरख्तों या जानवरोंके तनों या जिस्मोंके जलने, सड़ने और गलनेसे यह गैस पैदा होती है। यही संगमरमर या चूनेके पत्थरके तपाने या तेज़ाबमें गलानेसे पैदा होती है। इसी वजहसे यह हवामें मौजूद रहती है।

अब इसकी गुण गाथा भी सुन लीजिये। यह एक ऐसी गैस है कि आंखसे देखी नहीं जा सकती है—अदृश्य है। इसमें रंग नहीं होता। यह पानीमें घुल जाती है और जिस पानीमें यह घुली रहती है उसमें खड़िया घुलने लग जाती है। यह चूनेके साफ़ पानीको गदला कर देती है। इस गैसमें बत्ती जलती नहीं रह सकती। यदि किसी बरतनमें यह गैस भर ली जाय और उसमें जलता फलीता या मोम बत्ती रख दी जाय, तो फौरन बुझजाय। इसी तरह यदि उस बरतनमें कोई जानवर रखदिया जाय तो फौरन दम घुटकर मर जाय।

यह गैस हवासे भारी होती है, इसी लिए यह पानीकी तरह उंडेली जासकती है। किसी बरतनमें इस गैसको इकट्ठा कर लीजिये, फिर बरतनको जलती हुई बत्ती पर इस तरह थामिये जैसे पानी उंडेलते हैं, तो आप देखेंगे कि बत्ती बुझ जाती है। हवासे भारी होनेके कारण ही यह अंधे कुओंमें या उन कुओंमें जो कम चलते हैं, खत्तियोंमें और पुराने तहखानोंमें जमा हो जाती है। इसीसे अकसर पुराने तहखानोंमें या कुओंमें जो लोग बे अहतयातीसे चले जाते हैं वह बेहोश हो जाते हैं और कभी कभी जान तक खो बैठते हैं। ऐसी कोई वार-

दात हो जाने पर गांवोंके सीधे सादे लोग समझने लगते हैं कि उनमें भूत रहते हैं।

एक बार मेरे एक दोस्त, जो एक गांवमें रहते हैं, आये और कहने लगे कि भाई तुम बड़ी सायंस छौंका करते हो, लो एक सच्ची आंखोंकी देखी बात हम तुम्हें सुनाते हैं, फिर देखें तुम्हारी सायंस कहां काम देती है। एक दिन कुछ लड़के खेलते हुए गांवके बाहर चले गये। वहां उनकी गेंद एक अंधे कुएमें जा गिरी। कुएके बारेमें यह मशहूर था कि उसमें भूत रहता है। इसी लिए, गो कुआ पांच छः हाथसे ज्यादा गहरा न होगा और उसमें सीढ़ी लगी हैं, किसीकी हिम्मत न हुई कि उसमें उतर जाय और गेंद उठा लाये। इतनेमें वहां जयदेव और सुखदेव दोनों भाई आ पहुंचे। सुखदेव आगरेमें रह आया है और समाजी खयालातका आदमी है। उसने लड़कोंको हिम्मत दिलायी और उनसे कहा कि कुएमें उतर कर गेंद निकाल लाओ, पर डरके मारे उतरता कौन? इसलिए सुखदेव खुद उतरा, पर ज्योंही वह गेंद उठानेको झुका कि झट बेहोश हो कर गिर पड़ा। यह देख जयदेवने आस पासके खेतोंमें काम करनेवाले दो एक आदमियोंको बुलाया और खुद हनुमानजीका ध्यान धर कुएमें उतर कर सुखदेवको उठा दिया और झट पट बाहर निकल आया। आध घंटे तक उस पर पानी छिड़का,हवा की, उसके हाथ पैर ऊपर नीचे किये, तब कहीं उसे होश आया, नहीं तो वह मर चुका था। जयदेव तो कहता था कि वह दमसाधकर कुएमें घुसा था, इससे वह बच गया, पर हम तो यही जानते हैं कि हनुमानजीने सहायता करी, नहीं तो सब नमस्ते निकल जाती।

मैंने अपने मित्रसे कहा, "आपके गांवमें जब खत्ती खोली जाती हैं तो दो तीन दिन तो वैसेही खुली रहने देते हैं और फिर जलता हुआ फूस नीचे उतारते हैं, तब नीचे उतरते हैं या योंही एकदम खत्ती खोल कर उसमें घुस जाते हैं?" उन्होंने कहा, "नहीं, एकदम नहीं घुसते।" मैंने पूछा, "अंधे कुओंको जब साफ कराते हैं तो उतरनेके पहले, खाली चरस क्यों चलाते हैं और उसे इस प्रकार क्यों उलटते हैं जैसे पानी भरा हो? इसी प्रकार तहखानोंमें भी उतरनेके पहले पूरा एहतियात क्यों करलेते हैं?" इन बातों का वह कुछ उत्तर न दे सके तब मैंने उन्हें ऊपर दी हुई बातें बतलाईं और समझाया—

"कर्बन द्विओषिद हवासे भारी होनेके कारण गुफाओं, गड्ढों, तहखानों, अंधेकुओं आदिमें भर जाती है। इसमें प्रवेश करनेसे आदमी दम घुटकर मर जाता है। आपके गांवके सुखदेव ने शेखीसे उतरनेमें और कुएमें रहनेमें देर लगायी। इसीसे वह बेहोश होकर गिर पड़े। यदि खूब सांस भर कर और दम साधकर वह उतरते, जैसा जयदेवने किया, तो कुछ हानि नहीं पहुंचती। खत्तियों और अंधेकुओंमें भी जलता हुआ फूंस इसी लिए उतारते हैं कि उनमेंकी हवा गरम होकर ऊपर उठने लगे और उसकी जगह साफ हवा पहुंच जाय। खाली चरस चलानेका भी यही अभिप्राय है। चरसमें हवा रहती है, जब वह कुएमें फांस दिया जाता है तो भारी गैस उसमें भरने लगती है और उसकी हलकी हवा कुएमें फैल जाती है। इसी लिए बाहर खींचे जानेपर उसमें गैस भर आती है, जो चरसमेंसे पानीकी तरह उंडेल दी जाती है। चरसमें फिर साफ हवा भर जाती है, जो उसके फांसे जाने पर कुएमें रह जाती है। इस तरह कई बार करनेसे सब गैस निकाल ली जाती है और साफ हवा भरदी जाती है।

मेरे मित्रकी समझमें बात बैठ गयी। उन्होंने इस लेखमें दी हुई और और बातें बड़े शौक़से सुनीं।

मौतकी घाटी

संसारमें बहुत से ऐसे स्थान हैं, जिन्हें हम 'मौतकी घाटी' या "मौतके गड्ढे" कह सकते हैं। यह अकसर गड्ढे या नीचे स्थान होते हैं, जिनमें न जानवर जाते हैं और न आदमी, क्योंकि उनमें

जातेही प्राण पखेरू उड़जाता है। बात यह है कि उनके पेंदोंमें बहुत छोटे छोटे बारीक छेद होते हैं, जिनमेंसे कर्बन द्विओषिद निकलता रहता है और निचाव होनेके कारण उसी प्रकार जमा हो जाता है जैसे पानी। इन सबमें बहुत मशहूर जगह जावाकी 'मौतकी घाटी (Valley of Death in Java) है। यह एक अंधेरी, गहरी और पेड़ोंसे घिरी हुई घाटी है और असलमें एक पुराने ज्वालामुखीका मुख है। जो मनुष्य और पशु इसकी छाया और ठंडकके लालचसे उतर जाते हैं, वह अकसर दम घुट जाने से मर जाते हैं; पर कभी कभी आदमी बेखटके उसमें उतर जाते हैं। इसकी वजह यह है कि कर्बन द्विओषिद उसमें बारहों महीने नहीं निकलता रहता। जब कभी उसका निकलना बंद होजाता है, तो दस पांच दिनोंमें घाटीकी हवा साफ हो जाती है, पर जब गैस निकलने लगती है, तो उसमें उतरनेमें बड़ी जोखिम होती है।

पश्चिमी अमेरिकामें एक ऐसी ही घाटी है, जिसका नाम 'डेथ गल्च' (Death Gulch) है।

लाचर सी (Laacher See) के आस पासके जंगल में एक नीची जगह है, जिसमें कर्बन द्विओषिद सदा भरा रहता है। जो चिड़िया या कीड़े मकोड़े उड़ कर उसमें घुस जाते हैं फौरन ही मर जाते हैं। थोड़े दिनका ज़िक है कि डाक्टर क्रेटन (Dr. Creighton) अपनी लड़की और बीबीके साथ उस जंगलमें सैर कर रहे थे कि ज़ोरकी आंधी और मेहसे घिर गये। वह वहीं पर एक टूटे फूटे मकानमें बचावके लिए जा खड़े हुए। थोड़ीही देरमें एक औरत दौड़ी हुयी आयी और कहने लगी कि मेरा महबूब नीचे गिर गया है और शायद इसके चोट भी लगी है, क्योंकि वह बातोंका जवाब नहीं देता। पादरी साहब उसकी मदद करनेके लिए उसके साथ हो लिये और उन्होंने जाकर देखा कि एक तहखानेमें कई सीढ़ी नीचे वह आदमी पड़ा हुआ है। उन्होंने सिर अन्दरको डाला तो दम घुटने लगा, इससे वह समझ गये कि कर्बन द्विओषिद भरा हुआ है और वह सांस भर कर और दम साधकर नीचे उतर गये और उसे उठा लाये। पर अफसोस, बहुत देर होचुकी थी और वह मर चुका था।

चित्र ४१—छ, छिद्र जिसमें से कर्बन द्विओषिद निकलता रहता है। क, क तक द्विओषिद भरा रहता है।

ऐसे स्थान अकसर ज्वालामुखियोंके आसपास ही पाये जाते हैं, चाहे ज्वालामुखी मुर्दा हो या ज़िन्दा। लाचर सी खुद एक मुर्दा आतिशफिशांका दहाना है, जिसमें पानी भर गया है। नेपिल्समें भी एक गड्ढा है, जिसके पेंदेमें से कर्बन द्विओषिद बराबर निकलता रहता है और दो तीन फुट तक भरा रहता है। इसीलिए अगर कोई छोटा जानवर कुत्ता, भेड़ या बकरी उसमें चला जाता है तो मर जाता है। आदमी उसमें जा सकता है, पर खड़े रहनेमें ही खैरियत है। जहां बैठा या लेटा कि दूसरी दुनियामें पहुंचा। इस गड्ढेका नाम इसी लिए, 'ग्रोटो-डेल-केन' (Grotto del Cane) पड़ गया है।

[असमात]

पारिभाषिक शब्द

[गताङ्क से आगे]

Pericardium हार्दिक आवरण, हृदय कोष, हृदावरण
Periosteum अस्थि वेष्ठ, अस्थ्यावरण
Peripheral प्रान्तस्थ
Peristaltic movement कृमिवत आकुंचन
Peristalsis ,, ,,
Permanent teeth स्थायी दन्त
Petrous portion अश्म कूट
Phalanges पोर्वें, पर्वें
Phosphates फोस्फेत, स्फुरेत
Photograph छाया चित्र
Photographic apparatus छाया चित्रण यंत्र
Physical phenomenon भौतिक घटना
Physiology इन्द्रिय व्यापार शास्त्र
Physiological cup बिम्बनाभि
Piamater मास्तिष्क अन्तावरण
Pinna कर्ण शष्कुली
Piscidia मत्स्थ श्रेणी
Pisiform मटराकार
Plague महामारी
Plantar artery पादतलिकी धमनी
Plasma रक्त वारि
Pleura फुप्फुसावरण, परिफुप्फुसीया कला
Pneumonia फुप्फुस प्रदाह
Pollex अंगुष्ठ
Polymorphonuclear leucocyte बहु रूप मींगी युक्त श्वेताणु
Pomum Adami चुल्लि कोण
Popliteal artery जानु पश्चात् धमनी
Porta hepatis यकृतद्वार
Position स्थिति
Portal vein संयुक्ता शिरा
Posterior fontanelle अधिपति विवरं, पश्चात् विवर, अधिपति रन्ध्रं
Posterior nare नासा पश्चिम द्वार
,, semicircular canal पाश्चात्य अर्ध चक्राकार नाली
Posterior tibial artery जंघा पश्चिमगा धमनी
Postero lateral fontanelle पाश्चात्य पार्श्विक विवर
Postero inferior spine पश्चिमाधः कूट
Power of resisting disease रोगनाशक शक्ति
Pons सेतु
Premolar teeth अग्र चर्वणक दन्त
Presentation उदय
Process प्रवर्धन, कूट, अर्बुद
Projection ,,
Prostate प्रोस्टेट
Protein प्रोटीन
Protoplasm जीवन मूल, प्रोटोप्लाज़्म
Pseudopodium मिथ्यापाद
Protozoon आदि प्राणी
Pterygoid process जतूका चरण
Pubic symphysis भग संधि, विटप सन्धि
Pudendal plexus जननेन्द्रिय संबधी नाड़ी जाल
Pulse नाड़ी, नब्ज़, धमनी स्पन्दन, या, धमनी स्फुरण
Pulmonary artery फुप्फुसीया धमनी
Pubic region विटप देश
Pulmonary vein फुप्फुसीया शिरा
Pulley घिड़री
Pulp cavity दंत कोष्ठ
,, of tooth दंत मज्जा
Puncta lacrimalis अश्रु छि
Pupil तारा

Pyloric portion of stomach आमाशय का दक्षिणांश
Pyramidal सूच्याकार
Pyramidalis abdominis सूच्याकारा उदर च्छदा पेशी
Proximate principles मूलअवयव
Psychical areas मानस क्षेत्र

Q

Quadratus labii s uperioris muscle ऊर्ध्वोष्ठ गत चतुरस्रा पेशी
Quadratus femoris ऊरु चतुरस्रा
Quadratus lumborum muscle कटी चतुरस्रा पेशी
Quadratus muscle चतुर्भुज पेशी, चतुरस्रा पेशी
Quadratus plantae muscle पादतलस्थ चतुरस्रा पेशी।

R

Race preservation स्वजाति रक्षा
Radial artery बहिः प्रकोष्ठिका धमनी
Rami communicantes सम्बन्धक
Ramus of mandible हनुकूट
Radius वहिः प्रकोष्ठास्थि,
Raised line तीर्णिका
Reaction प्रतिक्रिया
Reading centre पाठकेन्द्र
Receptaculum chyli लसीका कोष
Rectum मलाशय
Rectus abdominis उदरस्थ सरल पेशी
Rectus abdominis muscle उदरच्छादनी सरला
Rectus femoris muscle ऊरु प्रसारणी सरला
Red blood cell लाल रक्तकण
Reflex action परावर्तित क्रिया, प्रत्यावर्तन
Refraction वर्तन
Relaxation विसार, प्रसार
Rennet रेनेट
Reptilia सर्पश्रेणी
Respiratory act श्वास कर्म
,, system श्वासोच्छ्वाससंस्थान
,, centre श्वासोच्छ्वास केन्द्र
Reproduction ; power of उत्पादन शक्ति
Reproductive system उत्पादक संस्थान
Representative प्रतिनिधि
Rib पर्शुका, पसली
Ring finger अनामिका
Ring of cricoid मुद्राचक्र
Roof of fossa गुहाच्छदि
Root of penis शिश्न मूल
Root of tooth दन्तमूल
Rostrum of corpus callosum महासंयोजक नासा
Rounded वर्तुल

S

Saccharum lactis दुग्धोज
Saccular कोष्ठाकार
Sacral plexus स्कथि नाड़ी जाल, त्रिक नाड़ी जाल
Sacral region त्रिकदेश
Sacrum त्रिक अस्थि
Saliva लाला
Salivary gland लाला ग्रन्थि
Salt लवण
Sartorius दीर्घायामा पेशी
Scala tympani मध्य कर्ण सम्बन्धी कुल्या
,, vestibuli कर्ण कुटी संबंधी कुल्या
Scalene tubercle पर्शुका.कण्टक
Scapha कर्ण खात (शष्कुली खात)

Scaphoid नौका कृति
Scalp टटरी
Scapula स्कंधास्थि, अंसज, अंसफलक
Scrotum अण्डकोष, वृषण
Scapular region खवा
Season ऋतु
Section पक्ष
Secundines परिस्रव
Self-preservation जातिरक्षा
Sense-organ ज्ञानेन्द्रिय
Semen शुक्र
Semi circular canals or ducts अर्धचक्राकार नालियां
Semi lunar अर्ध चन्द्राकार
Seminal vesicle शुक्राशय
Semitendinosus कण्डरा कल्पा पेशी
Sensitive coat (Retina) साम्वेदनिक पटल
Sensory area सम्वेदना क्षेत्र
,, path ज्ञानपथ
,, nerve साम्वेदनिक नाड़ी
Serum रक्त रस
Serumtherapy सीरमचिकित्सा
Sesamoid तिलजैसी
Shell खोल
Shoulder स्कंध
,, blade अंसफलक,
,, joint स्कंध संधि
Skeleton ठठरी, अस्थि पंजर, कंकाल
Skin of milk मलाई
Skin त्वचा
Skull खोपड़ी, कर्पर, करोटि
Small intestine क्षुद्रांत्र
,, lymphocyte क्षुद्रलसीकाणु
Smegma शिश्नगूथ
Socket उलूखल
Sodium chloride सोडियम क्लोराइड
Soft palate कोमल तालु
Sole तला; पादतल
Soluble घुलनशील
Sound शब्द
Special sense organ विशेष ज्ञानेन्द्रिय
Specific gravity गुरुत्व
,, medicine अमोघौषध
Spermatozoon शुक्रकीट
Spermatic cord अंड धारक रज्जु
,, artery आंडिकी धमनी
Speech centre वाणी केन्द्र
Sphenoid bone जतूकास्थि, तितलिखरूपास्थि
Spherical गोलाकार
Sphincter संकोचनी पेशी
Sphincter ani muscle मलद्वार संकोचनी
Sphincter muscle संकोचनी पेशी
Sphincter vaginae योनि संकोचनी पेशी
Spider cell मकड़ी वतसेल
Spinal सौषुम्न
Spinal canal काशेरुकी नली
,, cord सुषुम्ना
,, foramen सुषुम्ना छिद्र
Spindle shaped गिल्लयाकार, तर्काकार
Spine पृष्ठ वंश, रीढ, कशेरु
,, of scapula अंसप्राचीरक
Spinous process of vertebra पश्चात् प्रवर्धन, कशेरु कण्टक
Spirillum कर्षण्याकार कीटाणु
Splanchnic nerves इड़ा नाड़ी
Spleen प्लीहा
Sponge स्पंज
Sprain बंधन वितान, स्नायु वितान
Squama of temporal bone शंखचक्र
Squint वक्रदृष्टि,
Stapedius muscle कर्णांतरिका पेशी

Stapes रकाबास्थि
Stapes bone रकाब
Starch श्वेतसार
Stellate तारोपम
Stereognostic centre रूप, आकार केन्द्र
Sterno cleido mastoid muscle शिर चालनी पेशी
Sterno cleido mastoid उरः कर्ण मूलिका पेशी
Sternum वक्षोस्थि, उरोस्थि
Stethoscope शब्द परीक्षक यंत्र
Stimulus उत्तेजना
Stomach आमाशय
Straight सरल
Styloid process कीलाकारप्रवर्धन; शिफा प्रवर्धन
" " of radius बहिर्मणिक
Styloid process of ulna अंतर्मणिक
Stylo glossus शिफा रसनिका
Stylo hyoid शिफा कण्ठिका
Succus entricus क्षुद्रांतरीय रस
Sub arachnoid space मध्यावरणाधः प्रदेश
Subclavian artery अक्षकाधो वर्तिनी धमनी
Subdural space वहिरावरणाधः प्रदेश
Sublingual gland जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रन्थि
Sub maxillary salivary gland हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि
Sulcus सीता
" lacrimalis अश्रुवाहिका
Sulphate गंधेत
Sulphnr गंधक
Superficial temporal artery उपरितन शांखिकी धमनी
Superior ऊर्ध्व
" extremity ऊर्ध्व शाखा
" border ऊर्ध्व धारा
Superior concha " शुक्तिका
Superiorlip ऊर्ध्व ओष्ठ
" palpebrum ऊर्ध्व नेत्रच्छद
" meatus of nose नासा ऊर्ध्व सुरंग
" mesenteric artery अंत्रोर्ध्व धमनी
" " vein " शिरा
Superior oblique muscle of eye वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी
Superior rectus of eye सरलोर्ध्व नेत्र चालनी
Superior sagittal sinus ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या
Superior semi circular canal ऊर्ध्व अर्ध चक्राकार नाली
Superior thyreoid artery चुल्लिका ऊर्ध्व धमनी
Superior vena cava ऊर्ध्वमहाशिरा
Supinator muscle करोत्तानिनी पेशी
Supra clavicular nerves उपाक्षिका नाड़ी
" orbital nerve अधिभ्रू नाड़ी
" renal gland उपवृक्क
Surface तल
Suture सेवनी
Sweat घर्म, स्वेद
Symphysis (pubic) विटप संधि
Synarthrodial articulation अचल संधि, अचेष्ट संधि
Synarthrosis स्थिर संधि
Syndesmology संधि संस्थान
Synovia स्नेह
Synovial membrane स्नैहिक कला
Syphilis उपदंश
System संस्थान

T

Tactile corpuscle स्पर्श कण

Talus गुल्फास्थि
Tarsal artery कोर्ची धमनी
Tarsal bones कूर्चास्थि
,, plate नेत्र फलक
Taste bud स्वाद कोष
,, centre स्वादकेन्द्र
Tears अश्रु
Teeth दांत
Temple कनपटो
Temperature ताप परिमाण
Temporal bone शंखक, शंखास्थि
,, lobe शंख खण्ड
,, pole शङ्खध्रुव
,, region शङ्खदेश
Temporalis muscle शङ्खच्छदा पेशी
Tendon कण्डरा
Tensor veli palatini तालूत्तंसनी
Tentorium cerebelli मस्तिष्क वितान
Tertian fever तैय्या
Testes शुक्र ग्रन्थि
Testicle अण्ड
Thalamus थैलेमस
Thermometre तापमापक यंत्र
Thigh ऊरु
Thoracic duct महालसीका वाहिनी
Thoracic nerve वात्तसी नाड़ी
Thorax उरस्, उरः स्थल, वक्षस्थल
Throat कंठ
Thumb अंगुष्ठ
Thyreoid gland चुल्लि ग्रन्थि
Thyreohyoid membrane चुल्लि कंठिका कला
Thyroid carti lage चुल्लि कार्टिलेज
;, gland चुल्लिका ग्रन्थि
Tibia जंघास्थि
Tibialis anterior जंघा पुरोगा पेशी
Tiny projection अंकुर
Tissue तन्तु
Tongue जिह्वा, रसना, जीभ
Tooth दांत, दन्त
Toxin विष
Trachea टेंटवा
Tragus कर्ण वाह्य तोरणिका
Translucent अर्ध स्वच्छ
Transparent पारदर्शक
Transversalis abdominis अन्तः उदर-च्छदा पेशी
Tranversalis abdominis उदरच्छदा (मध्य)
Transverse colon अनुप्रस्थ वृहत् अंत्र
,, linguæ व्यत्यस्त रसनिका पेशी
,, process पार्श्व प्रवर्धन
,, section व्यत्यस्त काट
Triangularis muscle त्रिकोण पेशी
Triceps muscle त्रिशिरस्का पेशी
Trigeminal nerve त्रिशाखा नाड़ी
Trochanter major महा शिखरक
Trochanter minor लघुशिखरक
Trochlear surface of humerus डमरुक
Trunk धड़
Tubercle अर्बुद
Tubular नल्याकार
Tuberculosis क्षयरोग
Tunica Vaginalis अण्डवेष्ट, पर्य्यांडिका
Tympanic membrane कर्ण पटह
Typhoid टायफोयड

U

Ulna अन्तः प्रकोष्ठास्थि
Ulnar artery अन्तः प्रकोष्ठिका धमनी
Umbilical cord नाभि नाल
,, region नाभि प्रदेश
,, vesical नाभिपुट, अंत्रपुट

Umbilicus नाभि
Umbo पटह नाभि
Unciform फणधर
Unicellular एक सेल युक्त
Upper ऊर्ध्व
,, jaw ऊर्ध्व हनु
,, lip ऊर्ध्व ओष्ठ
Unit इकाई
Urea यूरिया
Ureter मूत्र प्रणाली
Urethra मूत्र मार्ग
Uric acid यूरिक अम्ल
Urinary bladder मूत्राशय, वस्ति
,, system मूत्र वाहक संस्थान
Urine मूत्र
Uterine artery गर्भाशयिकी धमनी
Uterus जरायु, गर्भाशय
Uvula अलि जिह्वा, कव्वा, शुण्डिका

V

Vacuole शून्य स्थान
Vagina योनि
Vaginal artery यौनी धमनी
,, fornix योनि कोण
,, opening योनिद्वार
,, orifice योनि द्वार
Valve कपाट
Vasdeferens शुक्रप्रणाली
Vastus lateralis muscle ऊरु प्रसारिणी वाह्य (बहिः स्था)
,, medialis muscle ऊरु प्रसारणी अन्तस्था
Vegetable kingdom वनस्पति वर्ग
,, protein वानस्पतिक प्रोटीन
Vein शिरा
Venous sinus शिरा कुल्या
Ventricle of the heart क्षेपक कोष्ठ
Venule शिराक
Vermiform appendix उपांत्र, अंत्र परिशिष्ट
Vertberal border वंशानुगा धारा
Vertebra कशेरुका, मोहरा
Vertebral artery काशेरुकी धमनी
Vertebral column कशेरु
,, canal काशेरुकी नली
Vertebrate पृष्ठवंशधारी
Vertex शीर्ष
Vertical ऊर्ध्व
Vertical plane ऊर्ध्व रेखा
Vertical linguæ लम्ब रसनिका
Vestibule of internal ear कर्ण कुटी
Vibration उत्कंपन
Villi ग्राहकांकुर
Vision दृष्टि
Visual centre दृष्टि केन्द्र
Vocal eord स्वररज्जु
Voice स्वर
Volatile उड़नशील
Voluntary ऐच्छिक, इच्छाधीन
Voluntary movement इच्छाधीन गति
Voluntary muscle स्वाधीन मांस
Vomer नासा फलकास्थि
Vulva भग

W

Whey तोड़
White matter श्वेत भाग

Z

Zygomatic bone कपोलास्थि
Zygomatic nerve गंडनाड़ी
Zygote गर्भ सेल

समालोचना

सृष्टि विज्ञान—ले० राज्य रत्न आत्माराम जी तथा एस. ए. दुदानी। प्रकाशक जयदेव ब्रादर्स करेली बाग बरोदा। पृष्ठ संख्या २६८। मूल्य २)।

भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यताकी तुलना आधुनिक सभ्यता के साथ करने तथा इसके प्राचीन गौरवको आदर्श रखकर उन्नति करनेका उपदेश आर्यसमाज सदासे देती आयी है। इसी उद्देशसे इसने भिन्न भिन्न विषयों पर बड़ी खोज और बड़े परिश्रमके साथ कई ग्रन्थ प्रकाशित भी किये हैं और करती जा रही है। इसके अनुयायियोंका यह पूरा विश्वास सा है कि जो कुछ उन्नति आजकल हो रही है या होनेवाली है उसका कुछ न कुछ विवरण हमारे प्राचीन वेदादि ग्रन्थोंमें पाया जाता है। इसकी पुष्टिमें वह प्रत्येक विषय पर वेदोंके मन्त्रोंका अवतरण दिया करते हैं और उसके साथ ही तद्विषयक विचार जो अन्य यूरोपीय अथवा भारतीय विद्वानोंने आजतक प्रकट किये हैं उनका उल्लेख कर उनसे तुलना करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी उद्देश्यसे लिखी गयी है। इसका विषय सृष्टि है और यह "वैदिक विज्ञान ग्रन्थमाला" नामक सीरीज़की पहिली पुस्तक है। इसमें इस विषय पर मुख्य मुख्य दो मतोंका संक्षिप्त विवरण देकर इनमेंसे डारविनका खंडन किया गया है और दूसरेके सम र्नमें प्राचीन ग्रन्थों और विशेष कर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंके प्रमाण दिये गये हैं।

इसी विषय पर स्वामी दयानन्दने एकवार रुड़कीमें एक व्याख्यान दिया था। "उनके उपदेशोंका सार यह है कि आदि सृष्टि अमैथुनी होती है और आदि सृष्टिमें आदि ऋषियोंको ईश्वरने सर्व विद्याओंके मूल रूपी भंडार सत्यविद्याका दान दिया जो कि शब्द अर्थके सम्बन्ध रूपी-निभ्रान्त-ज्ञानवेदके नामसे प्रसिद्ध है"। उसी व्याख्यानके समाचारसे प्रेरित होकर पुस्तकके लेखकने इसे '१२ वर्षके मननके पश्चात्' तय्यार किया है। इसके लिए इन्होंने कई पुस्तकें भी पढ़ली हैं। ऐसी २४ पुस्तकोंकी एक तालिका इस पुस्तकके आरम्भमें हो इन्होंने दे दी है। प्रमाणमें तीन चित्र भी दिये हैं।

पुस्तकमें छः अध्याय हैं जिनमेंसे प्रथम चारमें सृष्टिविषयक दो मतोंका निदर्शन करनेके उपरान्त विकासवादके माननेवाले डारविन इत्यादि तथा इसमें सन्देह करनेवाले अथवा विरोधी कोएडर इत्यादि यूरोपीय विद्वानोंके विचार दिये गये हैं और इसके साथ ही प्राचीन पुस्तकोंके आधार पर तिब्बतके आदि देश होने तथा ऋग्वेदीय लिपिके प्रथम और पूर्ण होनेकी बात युक्तियोंके साथ सिद्ध की गई है। शेष दो अध्यायोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके प्रमाण देकर युग, प्रलय, इत्यादि सृष्टिविषयक बातों पर प्रकाश डाला गया है और अन्तमें वेदोंकी मौलिकता सिद्ध की गयी है और इनके मूल सिद्धान्त देनेके पश्चात् पुरुषसूक्तके सृष्टिसम्बन्धी ११ मंत्रोंकी विस्तृत व्याख्या की गयी है।

पुस्तकका मुख्य सिद्धान्त लेखकने सारी सृष्टिका आधार ईश्वरकी सत्ता बतलाया है और इसमें यह भी दिखलानेकी चेष्टा की है कि संसार स्पर्धा करनेवालोंके ही लिए नहीं है और न दुःख प्रधान है किन्तु इसका चरम उद्देश्य सुख है। वृद्धि, स्थिति और मृत्यु यह तीन नियम शरीरों-पर काम कर रहे हैं, नकि एक; और जिस प्रकार मनुष्यके सब अङ्ग आकार इत्यादि नियत हैं तथा जिस प्रकार ऋतु इत्यादि निश्चित हैं उसी प्रकार उसकी उन्नति भी नियत है।

पुस्तक में सूक्ष्मदर्शक यंत्रको अप्रामाण्य सिद्ध करनेकी युक्तियां, भिन्न भिन्न भाषाओंके साथ संस्कृतके शब्दोंकी कृत्रिम समता तथा वेदोंके सर्वविद्याओंके मूल ठहरानेके प्रमाण कुछ हास्यजनकसे हो गये हैं। इनमें कुछ अस्वाभाविकता आ गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि लेखकको प्रत्यक्ष

क्रियात्मक अनुभव बहुत कम है। भाषामें भी "क्यूं," "बोधन कराता है" इत्यादिका प्रयोग और वाक्यों की कहीं कहीं शिथिलता शोध-नीय हैं। पुस्तक तथापि मनन करने योग्य तथा प्रामाण्य है। इसमें सन्देह नहीं।

—एम. दर.

श्रावक धर्म दर्पण—ले० श्री० मोतीलाल जी रांका, श्री श्वे० स्था० जैन धार्मिक ज्ञान वर्द्धनी पाठशाला, ब्यावर। मूल्य ≶)॥

इस पुस्तक में जैसा उसके नामसे विदित होता है श्रावकोंके धर्मकी चर्चा की है। पुस्तकके पढ़नेसे साधारणतः सभी और विशेषतः जैनी सज्जन लाभ उठा सकते हैं। परन्तु हमारा विचार है कि इन कोषाकार अथवा सूच्याकार पुस्तकों के निकालने से विशेष लाभ नहीं हो सकता। यह तो केवल बच्चों को कण्ठस्थ कराने के काम की हैं। आवश्यकता है छोटे छोटे व्याख्यानों या उपाख्यानों की, जिनमें धर्म के मर्म को सरल, सुबोध भाषामें समझाने का प्रयत्न किया जाय। प्रस्तुत पुस्तकके ढंग की पुस्तकोंसे प्रचार का काम नहीं हो सकती। पुस्तकें होनी चाहिएं जेम्स एलेन अथवा मिसेज़ बेसेन्ट के रचे हुए ग्रन्थों के ढंग की।

जैनी लोग बड़े धनवान होते हैं और धर्म के प्रचार में रुपया भी बहुत खर्च करते हैं, परन्तु उसका सद् व्यय नहीं होता। यदि कोई वास्तव में जाति का उपकार करना चाहे तो समालोच्य ग्रन्थ के एक एक अध्याय पर २०, २० पृष्ठ के व्याख्यान लिखवाकर छपवाये और मुफ़्त वितरण कराये।

श्राविका धर्म दर्पण—ले० श्री मती सौ० रंभा बहेन रमजी। प्रकाशक श्री जैन पुस्तक प्रकाशक कार्य्यालय, ब्यावर, पृष्ठ संख्या ४८। मूल्य ＿)॥

मूल पुस्तक गुजराती में है। उसी का अनुवाद ब्यावर से प्रकाशित हुआ है। पुस्तक अच्छे अच्छे उपदेश-कुसमों की एक सुगंधित मालिका है। पर अनुवाद करने में भाषा की त्रुटियां रह गई हैं। अनुवादों की भाषा तो शुद्ध होनी चाहिये।

शिक्षा—कवि सम्राट् रवींद्रनाथ ठाकुर के शिक्षा विषयक पांच निबन्धों का अनुवाद। अनुवाद कर्ता नाथू राम प्रेमी। प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। पृष्ठ संख्या १०४। मूल्य ॥＿)

पुस्तक में जो विचार प्रकट किये गये हैं उनपर प्रत्येक शिक्षा प्रेमीको विचार करना चाहिये, क्योंकि किसी भी देशपर शिक्षा प्रणाली का अत्यन्त महत्व पूर्ण गूढ़ प्रभाव पड़ता है। शिक्षा प्रणाली का सुधार सभी प्रकार के अन्य सुधारों का जीवन है। अतएव समालोच्य ग्रन्थ का अनुवाद कर, हिन्दी भाषा भाषियों को उससे लाभ उठाने का अवसर देने का पुण्य प्रेमी जी ने कमाया है। पुस्तक संग्राह्य और विषय विचारणीय है।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ५८ | Reg. No. A-708
भाग १० | मकर १९७६ । जनवरी १९२० | संख्या ४
Vol. X. | No 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १० | मकर, संवत् १९७६ । जनवरी, सन् १९२० । | संख्या ४

खेतीका प्राण और उसकी रक्षा

३—खेतीके काम और यंत्र

(लेखक—ऐल० ए-जी०)

बुवाई

उपरोक्त क्रियाओं द्वारा जब खेतकी मिट्टी इस योग्य हो जाती है कि उसमें बीज उपजकर बढ़ सके तब बुवाईका कार्य आरम्भ करते हैं। इसका आरम्भ करने से पूर्व यह देख लेना चाहिये कि बीजमें कोई ऐसी त्रुटि तो नहीं है जिसके कारण वह उपज न सके।

इस बातको जांचनेके लिए पहिले यह देखना चाहिये कि बीज टूटा हुआ या घुना या बहुत पतला तो नहीं है। यदि बीज ऐसा होगा तो उपजेगा नहीं, क्योंकि ऐसे बीजके अंकुरमें उगने और बढ़ने की शक्ति नहीं होती। देखनेके अतिरिक्त निम्न लिखित प्रयोगों द्वारा भी बीजकी जांच कर सकते हैं।

(१) थोड़ा सा बीज पानीमें डाल देना चाहिये। यदि तीन चौथाई बीज बैठ जांय तो बीज अच्छा है। यदि चौथाई से अधिक तैरने लगें तो खराब है।

(२) जिस बीजको बोना हो उसमें से १०० दाने गिन कर गमलोंमें या ज़मीनमें बो दें। यदि ७५ फ़ीसदी बीज उग आवें तो बीज अच्छा है नहीं तो बुरा है।

इसी प्रयोगको दो स्याही सोख्तोंके बीचमें बीज रखकर कर सकते हैं। केवल उन्हें तर रखना पड़ता है।

उपरोक्त विधिसे बीजको जांचनेके पश्चात् यह देखना चाहिये कि बीजमें खरपतवारों (weeds) या अन्य जिन्सोंके बीज तो मिले हुये नहीं हैं। यदि हों तो उन्हें बिनवा देना चाहिये, ऐसा करने से खेतमें खरपतवारों की वृद्धि न होगी और असल जिन्समें दूसरी जिन्सोंके पौदे न मिलेंगे। बीज जितना साफ़ और उत्तम होगा फ़स्ल भी उतनी ही अच्छी और अधिक पैदावारके देनेवाली होगी।

प्रत्येक जिन्सके लिए बीज बोनेकी मात्रा स्थिर है। यह मात्रा निम्न लिखित कारणों से घटती बढ़ती रहती है।

(१) खेत की नमी—यदि नमी अधिक हो तो मात्रा घट जायगी और कम हो तो मात्रा बढ़ जायगी।

(२) समय—यदि बुवाई समयसे पहिले की जायगी तो कम बीज पड़ेगा और यदि देरसे की जायगी तो अधिक बीज पड़ेगा।

(३) बीज—बीज यदि अच्छा होगा तो कम पड़ेगा और बुरा होगा तो अधिक पड़ेगा।

बीज केवल इतना बोना चाहिये जितनेसे उचित पैदावार हो सके। अधिक बीज बोनेसे फ़स्ल घनी होती है। पौदोंको काफ़ी खुराक नहीं मिलती। रोशनी और हवा भी कम मिलती है। फल यह होता है कि दाना पतला और हलका पड़ जाता है। पैदावार भी घट जाती है। बहुत कम बोनेसे दाना अच्छा पड़ता है, परन्तु पैदावार कम होती है। इसलिए बीज तोलसे डालना चाहिये।

बीज बोनेकी अनेक विधि हैं। उनमें से मुख्य निम्न लिखित हैं:—

(१) छिटकना या बखेरना।

इस तरहसे बोया हुआ बीज बेढंग पड़ता है। कहीं पर अधिक और कहीं पर कम पड़ जाता है। फल यह होता है कि जहां पर अधिक बीज पड़ता है वहां पर फ़स्ल घनी हो जाती है और जहां पर कम वहां पर बेगरी हो जाती है। पौदों का फासला आपस में एकसा नहीं रहता। फासला एकसा रखने के लिये बाद को पौदे उखाड़ने पड़ते हैं क्योंकि ऐसा न किया जाय तो पैदावार घट जाय। इन बातोंके अतिरिक्त ऐसी बोई हुई फस्लोंमें निकाई गुड़ाईके वह औज़ार जो कि बैलोंके द्वारा खींचे जाते हैं चलाये नहीं जा सकते क्योंकि पौदे पंक्तियोंमें नहीं होते और बेतरतीब होनेके कारण उनके उखड़ आनेका डर रहता है। इस लिए आज कल इस रीतिसे फ़स्ल बोनेका रिवाज घटता जा रहा है। प्रायः खरीफ़की फ़स्लें इस रीतिसे बोते हैं। इस प्रकारकी बुवाई करते समय पहिले खेतमें बीज छिड़क देते हैं। फिर जोत कर पटेला चला देते हैं।

(२) हलके पीछे कूंड़में—इस रीतिसे बोनेमें फस्ल पंक्तियोंमें उगती है। इसमें बीज हलके पीछे कूंड़में डालते जाते हैं। बीज डालने वालेको चाहिये कि एकसा बीज छोड़ता रहे। पहिली रीतिकी अपेक्षा इस रीतिसे बीज गहरा पड़ता है। रबीकी फस्लें इसी रीतिसे बोई जाती हैं। बोनेके बाद पटेला चला कर बीज ढँक देते हैं।

(३) बांस या चोंगेसे—हलके पीछे एक बांसकी नली बांध देते हैं। इस नलीके ऊपरका सिरा प्यालेनुमा होता है। इस प्यालेनुमा मुंहमें बीज डालते जाते हैं। इस रीतिसे बीज बोनेमें बीज दूसरी रीतिकी अपेक्षा गहरा पड़ता है। जब खेतके ऊपरकी मिट्टी खुश्क हो जाती है तब इसी रीतिसे बोते हैं। इस प्रकारसे बोनेके बाद खेतमें पटेला नहीं देते, क्योंकि बीज कूँड़की बग़लसे गिरनेवाली मिट्टीसे ही ढँक जाता है। इसके अतिरिक्त बीज पर पटेला देनेसे मिट्टीकी एक मोटी तह पड़ जाती है, जिसके कारण उगने वाले पौदेको ऊपर आनेमें रुकावट पड़ती है। इसलिए इस दशामें ऐसा नहीं करते। रबीकी फस्लें प्रायः इसी रीतिसे बोई जाती हैं।

(४) खुर्पीसे—पहिले खेतमें रस्सीसे एक से आवश्यक फासलों पर लकीरें खींच देते हैं। फिर इन लकीरों पर खुर्पीसे गड्ढा करके २ या ३ बीज एकसे फ़ासले पर बोते चले जाते हैं। इस रीतिसे बीज बहुत कम पड़ता है और बुवाई भी शीघ्र हो जाती है। ऐसा प्रायः तरकारियों और ख़रीफ़की फसलोंकी बुवाईमें करते हैं, क्योंकि उन फस्लोंमें पौदोंके दरमियानका फ़ासला अधिक होता है। १ से अधिक बीज एक जगह पर इसलिए बोते हैं कि उनमें से एक न एक अवश्य उपज आवे।

(५) पौद लगाना—इस विधिसे प्रायः तरकारियां लगाई जाती हैं। इस कामको करनेसे पूर्व

बीजको एक क्यारीमें बो देते हैं। इस क्यारीको गुड़ाई और खाद दे कर खूब उपजाऊ बना देते हैं। इसमें बोनेके बाद जब पौदोंमें ४-६ पत्तियां आ जाती हैं तब उन्हें उखाड़ कर असल खेतमें लगाते हैं। पौदोंको उखाड़नेसे पूर्व क्यारीको सींच देते हैं, जिससे कि उखाड़ते समय उनकी जड़ें न टूटें। यह काम प्रायः दो पहर बाद किया जाता है, जिससे कि पौदे असल खेतमें लगने पर अधिक न मुरझा जावें। खेतमें लगानेके बाद सिंचाई करते जाते हैं, जिससे कि पौदेकी जड़ें नई मिट्टीमें जम जावें और अपना कार्य शीघ्रतासे करने लग जांय। इस रीतिसे बीज भी कम खर्च होता है और पौदे भी बलवान रहते हैं। उनके मरनेका डर नहीं रहता। इस रीतिसे पौदे खेतमें पंक्तियोंमें लगाये जाते हैं।

जीवन-शक्ति का कौशल

जब हम किसीके दांतोंकी सुन्दरताका वर्णन करते हैं तो उन्हें प्रायः मोतीकी भांति निर्मल और चमकीला कहते हैं। हम दांतोंकी चमककी उपमा मोतीकी द्युतिसे देते हैं अर्थात् हम दूसरी तरह पर दांतोंको इतना बहुमूल्य शारीरिक-अलंकार समझते हैं, जितना कि मोतियों या अन्य मणियोंको। अथवा यों कहिये कि हम दांतोंकी शोभा बढ़ानेवाली द्युतिकी गहनों या मणियों पर किये गये इनामिलसे तुलना कर सकते हैं। और वास्तव में यह है भी ठीक, क्योंकि दांतोंका केवल ऊपरी हिस्सा देखकर हम प्रकृति द्वारा किये हुए इस इनामिलकी ही प्रशंसा किया करते हैं। मामूली तरह पर देखनेसे हम दांतोंको दूसरी हड्डियोंकी भांति निर्जीव समझते हैं और जीवनकी इस अद्भुत और अपूर्व कारीगरीके नमूनेको कृत्रिम रीतिसे सजाये हुए अलंकारोंके सदृश समझते हैं, परन्तु वास्तविक दृष्टिसे देखनेपर हमें पता चलेगा कि हम कहांतक भूल करते हैं।

जब हम किसी सोने या चांदी की चीज़पर इनामिल करते हैं तो यह इनामिल बाहरसे लगाया जाता है, परन्तु हमारे दांतोंका इनामिल जीवन शक्ति द्वारा अन्दरसे लगाया जाता है। यह एक बड़ा भारी अन्तर है। रासायनिक रीतिपर विश्लेषण करनेसे पता चला है कि हमारे दांतोंकी द्युति कई धातुओंके यौगिकों—विशेषकर लवणों (Salts)—के कारण है जो हमारे खूनमें घुले हुए मौजूद हैं। खूनके संचारके साथ इनामिल चढ़ानेवाले यह यौगिक भी हमारे शरीरके हर भागमें विचरते फिरते हैं, परन्तु उन्हें इस इनामिल-के रूपमें परिवर्तन कर दांतोंपर चढ़ा देनेके लिए जिन कोषोंकी आवश्यकता होती है उनके मौजूद होने पर ही दांतोंकी सुन्दरता निर्भर है। अगर किसी उखड़े हुए दांतको लेकर उसे ज़रा गौरसे देखें तो हमें उसकी जड़ोंके पास जहां वह मसूड़ोंमें धंसा हुआ था छोटा सा छेद मिलेगा। यह छेद दांतके अन्दर तक चला जाता है और सुरंगके आकारका होता है। इसी सुरंगमें दांतके पालन पोषण करनेवाली सारी सामग्री जमा रहती है। इसे हम दांतका गूदा या दन्त-मज्जा (pulp of the teeth) कहते हैं। यह गूदा सजीव है, इसीलिए बहुत मुलायम या नरम होता है। इस गूदेके बिना दांतका जीवित रहना असंभव है। इस गूदेको सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा देखने पर इसमें सैकड़ों रक्त वाहिनियां और नाड़ियां (blood vessels and nerves) दिखलायी पड़ती हैं, जो हर तरह पर हमारे शरीरकी दूसरी नाड़ियां और रक्त वाहिनियों के समान हैं। दांतके भीतर इन रक्त वाहिनियों (blood vessels) का फंदा ऐसा (loop) बना हुआ है, जो दांतके भीतर होता हुआ बाहर निकल आता है और इस नलीमें मौजूद रहनेवाले रुधिर द्वारा ही दांतका पालन पोषण हुआ करता है। दांतोंकी नाड़ियों (nerves)-की शक्ति इसी रुधिर द्वारा बनी रहती

है। शैशवावस्था में जब दांत जमने शुरू होते हैं तो यह नसें बहुत नरम और बारीक होती हैं। जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है रुधिर संचार बढ़नेसे इनमें प्रौढ़ता और मोटापन आजाता है। यही कारण है कि बच्चों और बूढ़ोंको दांत उखड़वाने में अधिक दर्द होता है, परन्तु प्रौढ़ मनुष्योंको इनकी अपेक्षा कम तकलीफ़ होती है। प्रौढ़ावस्था में दांतोंमें ख़ून काफ़ी तौर पर मौजूद नहीं रहता है अर्थात नसोंके मोटे पड़ जानेसे उन्हें ख़ून कम मिल पाता है, इसलिए वह साम्वेदनिक (sensitive) हो जाती हैं। दांत बनना शुरु होने पर अधिक ख़ूनकी आवश्यकता भी रहती है,जिससे कि दांतोंके बनने- में उन्हें पूर्ण सामग्री मिलनेका सुभीता रहे। दांत बन चुकने पर इस सामग्री की तथा रुधिरकी इतनी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि हमारे दांत घिस जाने या कमज़ोर पड़जाने पर उखड़कर बार बार नहीं बनते रहते हैं।

दांतों में दर्द कैसे होता है ?

यह बात तो विज्ञानके सभी पाठकोंको मालूम है कि हमारे शरीरके प्रत्येक भागका प्रत्येक कार्य रुधिर-संचार पर निर्भर है। विना इस रुधिर-संचार रूपी चालक-शक्ति (motor power) के हमारी शरीर रूपी मशीनका चलना असंभव है। भोजन काट कर भली भांति चबानेके लिए दांतोंका कड़ा और सुदृढ़ होना परमावश्यक है। इसीलिए दांत हमारे शरीरके बड़े आवश्यक तथा बहुमूल्य अंगोंमेंसे हैं। साथ ही साथ यह बहुत छोटे होते हैं और फिर इनका भीतरी भाग तो औरभी छोटा होता है, इसलिए प्रकृतिने बाहरसे इनके लिए कुछ अधिक रुधिर के पहुंचनेका सुभीता कर दिया है। दांत एक डिबियाके अन्दर रखा होता है, जिस पर उसी तरह की कड़ी झिल्ली (membrane) चढ़ी होती है, जैसी अन्य हड्डियोंपर होती है। दोनों हालतोंमें इस झिल्लीका काम है कि वह रक्तवाहि- नियों (blood vessels) की जो उसमें मौजूद होतीहैं रक्षा करती रहे। इसमें नाड़ियांभी बहुतसी होती हैं और यहभी आवश्यक है कि यह किसी कड़ी ठोस चीज़ पर तनी रहे। जब कभी किसी कारण सूजन आजानेसे (inflammation) यह झिल्ली फूल जाती है तो इसके साथ जुड़ी हुई नाड़ियोंपर बड़ा तनाव पड़ता है। इसी कारण दांतोंमें दर्द मालूम होने लगता है और टीस पड़ने लगती है। यह कहा जासकता है कि ऐसी अवस्थामें अगर इस झिल्लीके साथ नाड़ियां जुड़ी हुई न होतीं तो दांतोंमें दर्दकी शिका- यत ही न होती। परन्तु प्रकृति अपने जीवन संबंधी कार्यमें चतुर है, उसके कौशलके आगे हमारी सारी चौकड़ी हिरन हो जाती है। दांतोंकी स्वस्थ अवस्थाकी सबसे पहिली आवश्यकता है रुधिरकी बहुतायत और नाड़ियोंकी दृढ़ता।

दांतका छेद, (रक्त वाहिनियां और नसें) सजीव पदार्थोंसे भरा होता है, जिसके साथ कुछ ऐसेभी छोटे छोटे कोष होते हैं जो रुधिरमें से उन आवश्यक और उपयोगी पदार्थोंको छांट लेते हैं जिनके द्वारा दांतोंके बनने और पालन पोषण कर- नेकी उन्हें आवश्यकता होती है। इस मज्जाके बाहर (dentine) रदिन पदार्थ होता है, जो मज्जा से ही बनता है और उसीके यौगिकों द्वारा जमा होता रहता है। यह रदिन बहुत कड़ी होती है और चूनेके लवणों (salts) से बनी हुई होती है।

जीवधारियों द्वारा बनाया हुआ सब से दृढ़ (कड़ा) पदार्थ

इसी रदिनमें होकर सैकड़ों छोटी छोटी नाड़ियां तथा उनकी शाखायें फैली हुई होती हैं। इसी लिए इस रदिनको दबाने या किसी चीज़ से खुरचने से तकलीफ़ हुआ करती है। इसमें रक्त वाहिनियां (blood vessels) होती ही नहीं। इनके लिए स्थान ही नहीं है, परन्तु मज्जाके उलूखल (cavity) में रुधिर वाहिनियों (blood vessels) का जो फंदा (loop) सा बना होता है, उसीके रुधिर द्वारा इसका संगठन हो इसकी वृद्धि होती है। यही कारण है कि रदिन पर ओपरेशन करनेसे रुधिर नहीं निकलता है। दांतके ठोस भागका

बड़ा हिस्सा इस रदिनका ही बना होता है और इसीके ऊपर इनामिल (दन्त वेष्ठ) की पतली तह होती है। सारे संसारके समस्त देहधारियों द्वारा बनायी हुयी सभी चीजोंमें यह इनामिल सबसे कड़ा पदार्थ है। मोती, सीप, अंडा आदि सभी पदार्थोंसे यह कहीं ज्यादा मज़बूत और कड़ा होता है। प्रकृतिने इसे इतना कड़ा इसलिए बनाया है कि यह अपने अन्दर रहनेवाली रदिन तथा अन्य अवयवोंकी भली भांति रक्षा कर सके।

इस संक्षिप्त विवरणसे पाठकोंको मालूम हुआ होगा कि दांतों पर यह इनामिल लगा हुआ नहीं होता है, वरन् धीरे धीरे चढ़ता रहता है। इसलिए यह परमावश्यक है कि हम बालकों और बालिकाओंके भोजन तथा उनके स्वास्थ्य की इतनी देख भाल रखें कि उनके उगते हुए नये दांतोंको काफी रुधिर मिलता रहे, जिसमें रदिन और दंतवेष्ठ बनानेवाले यौगिकोंकी आवश्यक मात्रा मौजूद हो। आज दिन डाक्टरोंसे यह बात छिपी नहीं है कि स्वास्थ्यका उगते हुए दांतों पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, तथा प्रौढ़ावस्थामें दांतोंकी अवस्थाका स्वास्थ्य पर कितना बड़ा असर पड़ता है। इनामिलके भीतर रगें न बनाकर प्रकृति ने अपनी दूर दर्शिता और परम चातुर्य का एक और जाज्वल्यमान उदाहरण दिया है, क्योंकि इसके भीतर नाड़ियोंके होने से किसी चीज़को काटकर खाना तो दूर रहा जबड़े खोलना भी कठिन हो जाता। इस इनामिलके नीचे नाड़ियां होने से इन नाड़ियों और इनामिल दोनों की ही रक्षा होती है।

संसार भरकी मशीनोंसे अद्भुत !

जिस समय नये दांत मसूड़ोंको चीरकर बाहर निकलते हैं उस वक्त उनके इनामिल पर एक बड़ी पतली झिल्ली चढ़ी हुई होती है, परन्तु थोड़े ही दिनोंमें यह झिल्ली गिर जाती है और दांत बड़ा होने तथा नया इनामिल चढ़ने लगता है। अस्तु हमारे दांत भी जीवन शक्ति, प्रकृति, द्वारा जीवन कार्य सम्पादन करनेके लिए सजीव बनाये गये हैं। इसलिये हमारा धर्म है कि हम अपने दांतोंकी भी अन्य जीवधारियोंकी भांति रक्षा करें। यह अपने उस कार्य सम्पादन के लिए जो इन्हें प्रकृतिने सौंपा है परमोपयोगी और परमोत्कृष्ट हैं। सच तो यह है कि काटने, निचोड़ने और चबानेके लिये जितनी भी मशीनें इस समय तक संसारमें बनी हैं उन सबसे यह श्रेष्ठ और अद्भुत हैं।

—शालिग्राम वर्मा

इनफ्लूएञ्जासे बचनेके कुछ उपाय

[ले०—"एक डाक्टर"]

यह रोग दुनिया भरमें पिछले वर्ष फैला था। कहा जाता है कि नये इतिहासमें ऐसे रोगका बिलकुल हाल नहीं मिलता। इसने विद्वानोंके रक्षाके सब नियमोंको दबाकर करोड़ोंको मार डाला। अभी तक इसका ठीक ठीक कारण गुप्त है। [The exact cause of this epidemic is still a mystery—Indian Med. Gazette Oct 1919. Page 386.] इसके कृमिके विषयमें अभी एक मत स्थिर नहीं हुआ। प्राचीन आयुर्वेदिक चरक नामके प्रसिद्ध ग्रन्थके निदान स्थानमें एक अध्यायका नाम जनपद ध्वंसनीय अध्याय है, जिसमें एक दम करोड़ों मनुष्योंके महामारी द्वारा मरनेके विषय पर विचार किया गया है। उसके मतानुसार ऐसे भयंकर रोगोंका पृथ्वीमें उसी समय उदय होता है जिस समय संसारमें पापकर्म अधिक बढ़ जाते हैं। ऐसे समयमें मनुष्योंका लाखोंकी संख्यामें युद्धसे, अकालसे, सूखेसे, बातके वेगसे (cyclones) और महामारी रूपमें प्रगट हुये रोगोंसे एक थोड़े ही कालमें मरना बताया गया है। पाठकोंके सामने

दोनों कालके मत हैं। वह स्वयं विचार करें कि यह सृष्टिके गुप्त नियमोंमें से एक नियम है या इसका कोई साधारण ज्ञात कारण है।

महामारीके समय बचनेके कुछ उपाय यह हैं।

(१) दूध घीके पशुओंकी वृद्धि, और रक्षा। दूध, घी, चावल आदि ऐसे हलके पदार्थोंका सेवन।

(२) कभी कभी कुनैनका प्रयोग करना।

(३) यूकेलिपटसका तेल (eucalyptus oil) या कपूरका सूंघना।

(४) तुलसीके काढ़ेका प्रयोग।

(५) जुकामका डर होते ही जायफल, लौंग पीस कर (१ रत्ती) कभी कभी मुंहमें रखना।

(६) सर दर्दके लिये माथे पर पानीमें पिसी राईका लेप करना जो १० मिनिटके पीछे गरम पानीसे धो डालना चाहिये।

(७) शरीरको किसी तरह बहुत कमजोर न करना चाहिये। (जैसे थकान या विषय आदिसे।)

रोग हो जाने पर नीचे लिखी बातोंका ध्यान रखना चाहिये।

(१) रोगीको कमसे कम ८ दिन तक लिटाकर रखना चाहिये। बहुतसे लोग दो दो दिनमें भी अच्छे हो जाते हैं, किन्तु उनको जल्दी ही—

(२) भर पेट खाना (दाल, रोटी वग़ैरह) नहीं खाना चाहिये।

(३) खाना—दूध, दूध और साबूदाना या मांड पतला पतला मिला कर देना चाहिये। जिनके बलग़म बहुत बढ़ा हो और सांस भी न समाती हो उनको कुछ घंटों तक ताक़त देनेवाली और बलग़म घटाने वाली दवाओंके अतिरिक्त कुछ नहीं देना चाहिये।

(४) पानी गरम किया हुआ या सोंठ डालकर उबाला हुआ प्यास भर देना चाहिये।

(५) क़ब्ज़के लिये मुनक्के उबालकर देने चाहियें। डाक्टरी दवा कैलोमेल (Calomel gr 3 से gr 5) जवान आदमियोंके लिये काफ़ी होती है। यह मृदुरेचन है।

(६) मदिरा (brandy or country wine) से बहुत बलग़म बढ़े हुए रोगी भी अच्छे हो गये हैं। जायफल और सोंठ, लौंग ने भी ताक़तके लिये अच्छा काम किया है। मदिराका प्रयोग रोगीकी कमज़ोरीकी दशामें ज़रूरत पड़ने पर अवश्य ही कराना चाहिये। साथ साथ कुनैन भी कभी कभी उपयोगी देखी गई है।

(७) कई डाक्टरोंकी रायमें कपूर इस रोगकी एक सर्वोत्तम औषधि है। गर्भवती स्त्रियोंको कुनैन समझकर देनी चाहियें। या बिल्कुल नहीं देनो चाहिये। डाक्टर अन्य औषधियोंको भी काममें ला सकते हैं जैसे Creosotal or Vaccines वेकसीन्स (Vaccine) कई बड़े डाक्टरोंकी रायमें बिलकुल व्यर्थ हैं और कभी काममें नहीं लानी चाहियेः— निम्नलिखित वाक्योंसे इसका हाल पूरी तरहसे मालुम हो सकता है :—

"Says Dr. James Burnett. M. A. M. R., M. R. C. P. of Edinburgh, "I only mention these Vaccines to condemn them. We do not know the organism responsible for the epidemic, bronchitis or pneumonia Consequently the Use of Vaccines for their treatment or even preventiou is purely empiric and borders on quackery"

[Ind. Med. Gazette]

निर्णायक

१—विषय प्रवेश

१. बीजगणित के नियमों के अनुसार यह स्पष्ट है कि

$$अ_1 य + अ_2 र + अ_3 = 0$$
$$इ_1 य + इ_2 र + इ_3 = 0$$

इन समीकरणोंके मूल यह होंगे—

$$य = \frac{अ_2 इ_3 - अ_3 इ_2}{अ_1 इ_2 - अ_2 इ_1}$$

$$\text{और } र = \frac{अ_3 इ_1 - अ_1 इ_3}{अ_1 इ_2 - अ_2 इ_1}$$

उन्हीं नियमों के अनुसार

$$अ_1 य + अ_2 र + अ_3 ल = 0$$
$$इ_1 य + इ_2 र + इ_3 ल = 0$$

इन त्रिवर्ण समघात सरल समीकरणों की अव्यक्त राशियों का सम्बन्ध ऐसा होगा—

$$\frac{य}{अ_2 इ_3 - अ_3 इ_2} = \frac{र}{अ_3 इ_1 - अ_1 इ_3} = \frac{ल}{अ_1 इ_2 - अ_2 इ_1}$$

यदि यहां ल की जगह १ लिखें तो वही पिछले उत्तर लब्ध होंगे।

अब नीचे लिखे हुए तीन चतुर्वर्ण समघात सरल समीकरणों पर विचार कीजिये।

$$क_1 \equiv अ_1 य + अ_2 र + अ_3 ल + अ_4 व = 0$$
$$क_2 \equiv इ_1 य + इ_2 र + इ_3 ल + इ_4 व = 0$$
$$क_3 \equiv उ_1 य + उ_2 र + उ_3 ल + उ_4 व = 0$$

इन समीकरणों से उत्पन्न

$$प_1 क_1 + प_2 क_2 + प_3 क_3 = 0$$

इस समीकरण में यदि ऐसा हो कि

$$प_1 अ_3 + प_2 इ_3 + प_3 उ_3 = 0$$
$$\text{और} \quad प_1 अ_4 + प_2 इ_4 + प_3 इ_4 = 0$$

तो ल और व के गुण शून्य होंगे और उस दशा में $प_1$, $प_2$ और $प_3$ के बीच यह

समीकरण equation ; मूल root; समघात homogeneous; सरल of the first degree; अव्यक्त unknown; गुण coefficent.

सम्बन्ध होगा—

$$\frac{\text{प}_{१}}{\text{इ}_{३}\ \text{उ}_{४} - \text{इ}_{४}\ \text{उ}_{३}} = \frac{\text{प}_{२}}{\text{उ}_{३}\ \text{अ}_{४} - \text{उ}_{४}\ \text{अ}_{३}} = \frac{\text{प}_{३}}{\text{अ}_{३}\ \text{इ}_{४} - \text{अ}_{४}\ \text{इ}_{३}}$$

यदि $\text{प}_{१}$, $\text{प}_{२}$ और $\text{प}_{३}$ के मान ऐसे ही लिये जायं तो यह समीकरण बनता है—

$$\left\{ \text{अ}_{१} (\text{इ}_{३}\ \text{उ}_{४} - \text{उ}_{३}\ \text{इ}_{४}) + \text{इ}_{१} (\text{उ}_{३}\ \text{अ}_{४} - \text{अ}_{३}\ \text{उ}_{४}) + \text{उ}_{१} (\text{अ}_{३}\ \text{इ}_{४} - \text{इ}_{३}\ \text{अ}_{४}) \right\} \text{य} + \left\{ \text{अ}_{२} (\text{इ}_{३}\ \text{उ}_{४} - \text{उ}_{३}\ \text{इ}_{४}) + \text{इ}_{२} (\text{उ}_{३}\ \text{अ}_{४} - \text{अ}_{३}\ \text{उ}_{४}) + \text{उ}_{२} (\text{अ}_{३}\ \text{इ}_{४} - \text{इ}_{३}\ \text{अ}_{४}) \right\} \text{र} = 0$$

अथवा $$\text{ट}\,\text{य} + \text{ड}\,\text{र} = 0 \qquad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (२)$$

यहां ट और ड के रूप एक से हैं, केवल उनके घटक भिन्न भिन्न हैं।

ट इस प्रकार लिखा जाता है—

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_{१}, & \text{अ}_{३}, & \text{अ}_{४} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{३}, & \text{इ}_{४} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{३}, & \text{उ}_{४} \end{vmatrix}$$

नियत नियमों के अनुसार इस प्रकार के संकेतों से जिन बैजिक फलों का बोध होता है वह निर्णायक कहलाते हैं। यहां खड़ी या पड़ी पंक्तियों की संख्या तीन है, इस लिये इसे तीसरी कक्षा का निर्णायक कहते हैं। ड भी तीसरी कक्षा का निर्णायक है और यों लिखा जाता है—

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३}, & \text{अ}_{४} \\ \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३}, & \text{इ}_{४} \\ \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३}, & \text{उ}_{४} \end{vmatrix}$$

समीकरण (२) से स्पष्ट है कि

$$\frac{\text{य}}{\text{ड}} = \frac{-\text{र}}{\text{ट}}$$

अथवा

$$\frac{\text{य}}{\begin{vmatrix} \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३}, & \text{अ}_{४} \\ \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३}, & \text{इ}_{४} \\ \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३}, & \text{उ}_{४} \end{vmatrix}} = \frac{-\text{र}}{\begin{vmatrix} \text{अ}_{१}, & \text{अ}_{३}, & \text{अ}_{४} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{३}, & \text{इ}_{४} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{३}, & \text{उ}_{४} \end{vmatrix}}$$

घटक constituents, निर्णायक determination; कक्षा order.

अतएव दिये हुए (१) समीकरणों के अव्यक्तों के बीच यह सम्बन्ध होगा।

$$\frac{य}{\begin{vmatrix} अ_२, & अ_३, & अ_४, \\ इ_२, & इ_३, & इ_४, \\ उ_२, & उ_३, & उ_४, \end{vmatrix}} = \frac{-र}{\begin{vmatrix} अ_१, & अ_३, & अ_४ \\ इ_१, & इ_३, & इ_४ \\ उ_१; & उ_३, & उ_४ \end{vmatrix}} = \frac{ल}{\begin{vmatrix} अ_१, & अ_२, & अ_४ \\ इ_१, & इ_२, & इ_४ \\ उ_१, & उ_२, & उ_४ \end{vmatrix}} = \frac{-व}{\begin{vmatrix} अ_१, & अ_२, & अ_३ \\ इ_१, & इ_२, & इ_३ \\ उ_१, & उ_२, & उ_३ \end{vmatrix}}$$

प्रत्येक कोटि के अनेक वर्ण समघात सरल समीकरणों के अव्यक्तों का सम्बन्ध निर्णायकों के द्वारा, ऊपर की भांति, प्रकट किया जा सकता है। साधारणतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि (म+१)--वर्ण समघात म सरल समीकरणों के अव्यक्तों का सम्बन्ध $म^२$ घटकों से बने हुए म-घात फलों के द्वारा प्रकट किया जा सकता है और इन फलों को समीकरणों की व्यक्त राशियों से बने हुए निर्णायकों के रूप में लिख सकते हैं। इस निष्कर्ष की सत्यता आगे चल कर स्पष्ट हो जायगी।

२. पहिली कक्षा के निर्णायक का रूप ऐसा होगा—

$$|अ|$$

इसका बैजिक रूपान्तर अ है।

दूसरी कक्षा के निर्णायक का रूप ऐसा होगा—

$$\begin{vmatrix} अ_१, & अ_२ \\ इ_१, & इ_२ \end{vmatrix}$$

इसका बैजिक स्वरूप $अ_१ \; इ_२ - अ_२ \; इ_१$ है।

कक्षा चाहे जो हो, प्रत्येक निर्णायक का विस्तृत बैजिक रूपान्तर जिन नियमों से निकाला जाता है वे अगले भाग में दिये जायंगे।

तीसरी कक्षा के निर्णायकों के कुछ साधारण धर्म यहां सिद्ध किये जायंगे। यह नियम निर्णायक सम्बन्धी व्यापक नियमों के विशिष्ट उदाहरण होंगे।

३. यह देख चुके हैं कि

$$न \equiv \begin{vmatrix} अ_१, & अ_२, & अ_३ \\ इ_१, & इ_२, & इ_३ \\ उ_१, & उ_२, & उ_३ \end{vmatrix} = अ_१ (इ_२ \; उ_३ - उ_२ \; इ_३) + अ_२ (इ_३ \; उ_१ - उ_३ \; इ_१) + अ_३ (इ_१ \; उ_२ - उ_१ \; इ_२)$$

यहां विस्तृत फल का प्रत्येक पद $\pm अ_प \; इ_फ \; उ_ब$ इस रूप का है; इसमें प फ ब यह १, २, ३ इन अनुबन्धों का एक प्रस्तार है। यह पद तीन घटकों का गुणनफल है। प्रत्येक खड़ी या पड़ी पंक्ति का केवल एक घटक इस पद में है। $अ_१ \; इ_२ \; उ_३$ यह पद जो बाईं ओर से दाहिनी ओर उतरती हुई कर्ण रेखा वाले घटकों से बना है धनचिन्हित है। शेष सभी पदों के चिन्ह प फ ब इस प्रस्तार पर अवलम्बित होते हैं। कोई एक प फ ब प्रस्ता

कक्षा order ; फल function अनुबंध suffix ; प्रस्तार permutation ; कर्णरेखा diagonal ; बैजिक algebraic

१, २, ३ इस प्रस्तार के अनुबन्धों का स्थान आपस में बदलने पर पैदा होता है। १, २, ३ में जितनी बार अदल बदल करने की आवश्यकता हो वह संख्या यदि सम हो तो + चिन्ह, यदि विषम हो तो — चिन्ह लगाया जाता है। इस प्रकार आधे पद धन और शेष आधे ऋण होते हैं।

४. यदि **न** की खड़ी पंक्तियों के क्रमानुसार पड़ी और पड़ी पंक्तियों को क्रमानुसार खड़ी करके लिखें तो नया निर्णायक **न** के बराबर होता है अथवा

$$\begin{vmatrix} अ_१, & अ_२, & अ_३ \\ इ_१, & इ_२, & इ_३ \\ उ_१, & उ_२, & उ_३ \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} अ_१, & इ_१, & उ_१ \\ अ_२, & इ_२, & उ_२ \\ अ_३, & इ_३, & उ_३ \end{vmatrix}$$

यह सिद्ध करने के लिये इन निर्णायकों के विस्तृत रूप लिखना बस होगा।

अनुमान—यदि कोई नियम पड़ी पंक्तियों में सिद्ध किया जाय तो वह खड़ी पंक्तियों के विषय में भी सच होगा।

५. यदि **न** की कोई दो खड़ी या पड़ी पंक्तियां लें और पहलीके स्थानमें दूसरी और दूसरीके स्थानमें पहिली लिखें तो नया निर्णायक '—**न**' के समान होता है। क्योंकि ऐसा करने से **न** के विस्तृत रूप में अनुबन्धों का क्रम वही बना रह कर केवल दो अक्षर अपना स्थान आपस में बदल लेंगे या अक्षरों का क्रम वही बना रह कर दो अनुबन्धों का स्थान आपस में बदल जायगा। दोनों अवस्थाओं में नया निर्णायक '—**न**' के बराबर होगा। उदाहरणार्थ यदि दूसरी और तीसरी पड़ी पंक्तियों को आपस में बदलें तो नया निर्णायक यह होगा—

$$\begin{vmatrix} अ_१, & अ_२, & अ_३ \\ उ_१, & उ_२, & उ_३ \\ इ_१, & इ_२, & इ_३ \end{vmatrix} = अ_१ (उ_२ \; इ_३ - इ_२ \; उ_३) + अ_२ (उ_३ \; इ_१ - इ_३ \; उ_१) + अ_३ (उ_१ \; इ_२ - इ_१ \; उ_२)$$

$$= -न$$

अनुमान—इससे यह सिद्ध होता है कि यदि निर्णायक की दो पंक्तियां समान हों तो उसका मान शून्य होगा।

६. $$न = अ_१ (इ_२ \; उ_३ - उ_२ \; इ_३) + अ_२ (इ_३ \; उ_१ - उ_३ \; इ_१) + अ_३ (इ_१ \; उ_२ - इ_२ \; उ_१)$$

$$= अ_१ \begin{vmatrix} इ_२, & इ_३ \\ उ_२, & उ_३ \end{vmatrix} + अ_२ \begin{vmatrix} इ_३, & इ_१ \\ उ_३, & उ_१ \end{vmatrix} + अ_३ \begin{vmatrix} इ_१, & इ_२ \\ उ_१, & उ_२ \end{vmatrix}$$

इससे यह स्पष्ट है कि **न** पहिली पंक्ति वाले $अ_१$, $अ_२$, $अ_३$ इन घटकों का सरल समघात फल है और उनके गुण शेष पंक्तियों के घटकों से बने हुए दूसरी कक्षा के निर्णायक हैं। यदि चाहें तो **न** को किसी दूसरी पंक्ति के घटकों से बने हुए सरल समघात फलों के रूप में प्रकट कर सकते हैं। अब यह स्पष्ट है कि

$$\begin{vmatrix} \text{क}_{\text{१}} + \text{ख}_{\text{१}}, & \text{क}_{\text{२}} + \text{ख}_{\text{२}}, & \text{क}_{\text{३}} + \text{ख}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{१}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{१}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} \text{क}_{\text{१}}, & \text{क}_{\text{२}}, & \text{क}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{१}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{१}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix} + \begin{vmatrix} \text{ख}_{\text{१}}, & \text{ख}_{\text{२}}, & \text{ख}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{१}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{१}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix}$$

अथवा यदि किसी पंक्ति के घटक द्विपद हों तो वह निर्णायक दो निर्णायकों के योगफल के बराबर होगा। इस नियम को अधिक व्यापक बनाते हुए यह कह सकते हैं कि यदि पहिली पंक्ति के घटक प पदों से बने हों तथा दूसरी पंक्ति के फ पदों से और तीसरी के ब पदों से तो उस निर्णायक को प × फ × ब निर्णायकों के योगफल के रूप में लिख सकते हैं। इन निर्णायकों की पंक्तियां मूल निर्णायक के अनेक पदों में से अनुरूप पदों के घटकों से बनी हुई होती हैं।

अनुमान १— यदि किसी पंक्ति के घटकों को प से गुणा करें तो न प-गुना हो जाता है। अर्थात्

$$\begin{vmatrix} \text{प}.\text{अ}_{\text{१}}, & \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{३}} \\ \text{प}.\text{इ}_{\text{१}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{प}.\text{उ}_{\text{१}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix} = \text{प}. \begin{vmatrix} \text{अ}_{\text{१}}, & \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{१}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{१}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix}$$

अनुमान २—यदि किसी पंक्ति के घटकों में दूसरी किसी पंक्ति के घटकों को क्रमानुसार जोड़ दें तो निर्णायक का मान नहीं बदलता। यथा—

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_{\text{१}} + \text{अ}_{\text{२}} + \text{अ}_{\text{३}}, & \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{१}} + \text{इ}_{\text{२}} + \text{इ}_{\text{३}}, & \text{इ}_{\text{२}} & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{१}} + \text{उ}_{\text{२}} + \text{उ}_{\text{३}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix}$$

$$= \begin{vmatrix} \text{अ}_{\text{१}}, & \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{१}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{१}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix} + \begin{vmatrix} \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix} \quad \begin{vmatrix} \text{अ}_{\text{३}}, & \text{अ}_{\text{२}}, & \text{अ}_{\text{३}} \\ \text{इ}_{\text{३}}, & \text{इ}_{\text{२}}, & \text{इ}_{\text{३}} \\ \text{उ}_{\text{३}}, & \text{उ}_{\text{२}}, & \text{उ}_{\text{३}} \end{vmatrix}$$

$$= \text{न}$$

७. तीसरी कक्षा के दो निर्णायकों का गुणन फल तीसरी कक्षा के निर्णायक के रूप में लिखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में नीचे लिखे हुए निर्णायक पर विचार कीजिये।

$$\text{न} = \begin{vmatrix} \text{कअ} + \text{खइ} + \text{गउ}, & \text{कअ'} + \text{खइ'} + \text{गउ'}, & \text{कअ''} + \text{खइ''} + \text{गउ''} \\ \text{क'अ} + \text{ख'इ} + \text{गउ'}, & \text{क'अ'} + \text{ख'इ'} + \text{ग'उ'}, & \text{क'अ''} + \text{ख'इ''} + \text{ग'उ''} \\ \text{क''अ} + \text{ख''इ} + \text{ग''उ}, & \text{क''अ'} + \text{ख''इ'} + \text{गउ'}, & \text{क''अ''} + \text{ख''इ''} + \text{ग''उ''} \end{vmatrix}$$

इसमें प्रत्येक पंक्ति के घटक त्रिपद हैं, अतएव इसे नीचे लिखे हुए नर्णायकों के सदृश ३ × ३ × ३ = २७ निर्णायकों के योगफल के रूप में लिख सकते हैं।

$$\begin{vmatrix} \text{कअ''}, & \text{कअ'}, & \text{खइ''} \\ \text{क'अ}, & \text{क'अ'}, & \text{ख'इ''} \\ \text{क''अ}, & \text{क''अ'}, & \text{ख''इ''} \end{vmatrix}, \quad \begin{vmatrix} \text{कअ}, & \text{खइ'}, & \text{गउ''} \\ \text{क'अ}, & \text{ख'इ'}, & \text{ग'उ''} \\ \text{क''अ}, & \text{ख'इ''}, & \text{ग''उ''} \end{vmatrix}, \quad \text{इत्यादि।}$$

इनमें से छः को छोड़ शेष सब शून्य हो जाते हैं; और इन छहों में

$$\begin{vmatrix} \text{क}, & \text{ख}, & \text{ग} \\ \text{क}', & \text{ख}', & \text{ग}' \\ \text{क}'', & \text{ख}'', & \text{ग}'' \end{vmatrix}$$

यह निर्णायक साधारण अवयव पाया जाता है।

यहां यदि $\begin{vmatrix} \text{क}, & \text{ख}, & \text{ग} \\ \text{क}', & \text{ख}', & \text{ग}' \\ \text{क}'', & \text{ख}'', & \text{ग}'' \end{vmatrix}$ इसके बदले ट लिखें

और $\begin{vmatrix} \text{अ}, & \text{इ}, & \text{उ} \\ \text{अ}', & \text{इ}', & \text{उ}' \\ \text{अ}'', & \text{इ}'', & \text{उ}'' \end{vmatrix}$ इसके बदले ठ लिखें तो

न का विस्तृत रूप प्रत्यक्ष लिख कर यह सिद्ध किया जा सकता है कि जो छः निर्णायक शून्य नहीं होते उनमें ट के साथ जो अवयव संलग्न होता है वह ठ के विस्तृत रूप वाले छः पदों मेंसे अपने चिह्न सहित कोई एक पद होता है (जैसे ऊपर उदाहरणार्थ दिया हुआ दूसरा निर्णायक = ट अ. इ.' उ'') और इस प्रकार ठ के छहों पद एक एक करके न छः निर्णायकोंमें, संयुक्त रहते हैं। अतएव

$$\text{न} = \text{ट} \left\{ \text{अ इ}' \text{ उ}'' - \text{अ उ}' \text{ इ}'' + \text{अ}' \text{ इ}'' \text{ उ} - \text{अ}' \text{ उ}'' \text{ इ} + \text{अ}'' \text{ इ उ}' - \text{अ}'' \text{ उ इ}' \right\}$$

$$= \text{ट ठ}$$

अर्थात् ट और ठ का गुणन फल न है।

ऊपर जिस भाँति पड़ी पंक्तियोंके द्वारा गुणाकार किया गया है उसी भाँति खड़ी पंक्तियों के द्वारा भी कर सकते हैं। जैसे--

$$\begin{vmatrix} \text{क}, & \text{ख} \\ \text{क}', & \text{ख}' \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} \text{अ}, & \text{इ} \\ \text{अ}', & \text{इ}' \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} \text{कअ} + \text{खइ}, & \text{कअ}' + \text{खइ}' \\ \text{क}'\text{अ} + \text{ख}'\text{इ}, & \text{क}'\text{अ}' + \text{ख}'\text{इ}' \end{vmatrix}$$

$$\text{या} = \begin{vmatrix} \text{कअ} + \text{क}'\text{अ}', & \text{खअ} + \text{ख}'\text{अ}' \\ \text{कइ} + \text{क}'\text{इ}', & \text{खइ} + \text{ख}'\text{इ}' \end{vmatrix}$$

$$\text{या} = \begin{vmatrix} \text{कअ} + \text{खअ}', & \text{कइ} + \text{खइ}' \\ \text{क}'\text{अ} + \text{ख}'\text{अ}', & \text{क}'\text{इ} + \text{ख}'\text{इ}' \end{vmatrix}$$

$$\text{या} = \begin{vmatrix} \text{कअ} + \text{क}'\text{इ}, & \text{खअ} + \text{ख}'\text{इ} \\ \text{कअ}' + \text{क}'\text{इ}', & \text{खअ}' + \text{ख}'\text{इ}' \end{vmatrix}$$

आधुनिक विज्ञान और प्रकृति के रहस्य

[ले०—प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

पचास वर्ष पहले विज्ञान शुष्क समझा जाता था। वैज्ञानिक प्रकृतिको ही मानते थे। चार्वाकोंकी नाईं उनकी दृष्टिसे आत्मा प्रकृतिका ही रूपान्तर था। परलोक और जन्मान्तरमें तो अब भी सन्देह है। पर इधर पचास बरसोंमें अनेक अद्भुत खोजोंसे विज्ञान विदग्धोंकी आंखें खुल गयी हैं। और जो पहले समझते थे कि प्रकृतिके रहस्य हमको हस्तामलकवत् हो गये हैं वही अब प्रत्यक्ष देखते हैं कि "ज्यों कदलीके पातमें पात, पातमें पात, त्यौंही प्रकृतिकी बातमें बात, बातमें बात।" उन्हें नित्य यह विश्वास होता जारहा है कि प्रकृतिका रहस्य अपार अनन्त है और अनेक इसके कायल हो गये हैं कि कसल "कुशूदो न कुशायद ब-हिक्मत ईं मुअम्मारा"—यह पहेली किसी हिकमतसे न हल हुई है न होगी। प्रकृतिकी थाह बुद्धिसे नहीं लगनेकी, क्योंकि बुद्धि तो आप प्रकृतिका एक अंश है। परन्तु जहां तक बुद्धि पहुंचती है अद्वैतवादकी कायल होती जाती है। एकताके सबूतपर सबूत मिलते जा रहे हैं। यद्यपि एकता तक वस्तुतः पहुंच जाना अपना आपा खो बैठना है तथापि अनुमान की ऐनकके सहारे दूरसे बुद्धिकी धुंधली निगाहको भी एकताका तेजोमय रूप प्रकृतिके परदेको फाड़ कर चकाचौंधमें डाल देना है। बस, उसके कदम आगे नहीं बढ़ सकते। बार बार हट कर बुद्धि अपने पीछे देखती है, जांच पड़ताल करती है। एकताकी अलौकिक ज्योतिके बलसे, अदृष्ट पूर्व विस्तारसे, अपनी जानकारी बढ़ाती जाती है। परन्तु आगे जानेमें (बुद्धि) जिब्रईलके पर जलते हैं। विज्ञान ने इधर सौ बरसोंमें प्रकृतिकी एक अद्भुत लीला देखी। उसने देखा कि समस्त प्रकृति सृष्टिके आदिसे ही धीरे धीरे उन्नति कर रही है। नित नये रूप बदल रही है। नित नये स्वाँग निकाल रही है। सृष्टिके मश्कके तख्ते पर अपना हाथ फेरती जाती है। अच्छेसे अच्छे रूप और गुणकी रचना करनेमें समर्थ होती जाती है। लाखों बरसके तजरबेसे आज उसने वर्तमान मनुष्यका रूप बना पाया है। वर्तमान सभ्यता इसी प्रकृतिका विकास है। और रंग ढंग कहता है कि इस तरह उन्नति करते करते न जाने कैसी उन्नत दशामें प्रकृति इस सृष्टिको पहुंचावेगी। इस तरह विज्ञानने यह देखा कि जगतका होनहार बड़ा अच्छा है, अनेक वैज्ञानिकोंने उसके भविष्यकी कुण्डली बनायी है। यद्यपि कई उसकी आकस्मिक मृत्यु आदिका भय बताते हैं, तथापि अधिकांशका यही कहना है कि जगतकी आयु इतनी बड़ी है कि जितने बरस उसकी उत्पत्तिसे आज तक बीत गये हैं, अरबों बरसका ज़माना, उसके दूध पीनेके दिन थे, अभी तो पूरे दांत नहीं आये। अभी उसने तोतले शब्द कहने सीखे हैं। उसकी आयु बहुत बड़ी है। दुनिया बूढ़ी नहीं हुई, बच्चा है। चन्द ही सालमें दुनियाका अन्त बताकर कयामत ढाने वाले सचेत हो जायँ और सतयुगकी राह तकनेवाले निराश न हों। विश्वके हाथकी रेखायें देख कर गणितज्ञ वैज्ञानिक ज्योतिषीका पूरा समर्थन करते हैं और सृष्टिकी भावी बड़ी भाग्यवती बताते हैं। ऐसी स्थितिमें विज्ञानके सामने बराबर यह प्रश्न आया है कि इस सृष्टि वा मानव जीवन-का ही क्या उद्देश्य है? यह समस्त सृष्टि किस मार्गसे मुद्दतसे चली आरही है? और इस मार्गका यद्यपि कहीं ओर छोर नहीं दीखता तथापि जिस रीतिसे यह यात्रा हो रही है क्या उससे यह नहीं जान पड़ता कि इस मार्गके अन्तमें कोई बड़े मार्के-की बात होगी, जिसका लक्ष्य सबको प्रेरित कर रहा है? यह प्रश्न बड़े महत्वके हैं। क्योंकि यदि यह मालूम हो कि हम कहां जायँगे तो हम कोई पासकी राह ले सकते हैं—मार्गका सम्बल संभाल

सकते हैं। किसीसे सुभीतेकी सलाह ले सकते हैं, नहीं तो—

"बांस पुरान साज सब अठ कठ सरल
तिकोन खटोलारे
हमहि दिहल जड़ करम कुटिलचन्द
मन्द मोल बिन डोलारे,
विषम कहार भार मद मांते चल दिन
पांउ बटोरेरे,
मन्द विलन्द अभेरो दलकनि पाइय बहु
झकझोरेरे,
कांट कुराय लपेटन लोटन ठावें ठांव
बझाऊरे,
जस जस चलिय दूरि तस तस मग
बासन भेंट लगाऊरे,
मारग अगम संग नहि सम्बल नांव
गांव कइ भूलारे,
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब होहु
राम अनुकूलारे।

इतिहास नीति और विज्ञानका संबन्ध

जैसे "क्या था और कैसा था", इन प्रश्नों का उत्तर इतिहास समझा जाता है; "क्या और कैसा होना चाहिये", इन प्रश्नोंका उत्तर नीति और धर्मशास्त्र है; उसी तरह "क्या है और कैसा है", इन प्रश्नोंका उत्तर ही विज्ञान समझा जाता है। स्थायी तथ्योंको लेते हुए "विज्ञान" जिस प्रकार ज्ञात इतिहासकी सीमाओंका अतिक्रमण कर जाता है, उसी तरह जीवन मात्र पर विचार करते हुए नीति और धर्मशास्त्रके क्षेत्रमें भी उसका प्रवेश होता है। जैसे स्वास्थ्यके लिए डाक्टरकी राय लिये बिना काम नहीं चलता, वैसे ही आधुनिक योग क्षेमके लिए विज्ञानको भी बुलाना ही पड़ता है। सारांश यही कि "क्या है और कैसा है", इन प्रश्नोंके उत्तरसे ही उसे छुटकारा नहीं मिल जाता, उससे यह भी पूछा जाता है कि तुम्हारी रायमें—"क्या और कैसा होना चाहिये।"

विकाश सिद्धान्तका निष्कर्ष

विविध वैज्ञानिकों ने विविध भांतिसे इसका उत्तर दिया है। विकाशवादियोंकी यह धारणा है कि प्रकृतिमें चुनावका नियम चलता है। जो अधिक बलवान हैं वह निर्बलोंका अन्त कर देता है। सबलों और निर्बलों आदिका संघर्ष आदिसे ही चला आ रहा है। निर्बल नष्ट हो जाता है, सबल-की वृद्धि होती है। इसे योग्य तमावशेष (Survival of the fittest) नियम कहते हैं। प्रेम वा करुणा वा दयाका तो कोई स्थान ही नहीं। बल्कि अहिंसा भी पास नहीं फटकने पाती। बलवानके व्यक्तिगत स्वार्थके आगे समस्त निर्बल संसारको सिर झुकाना पड़ता है। इसीलिए विकाशवादियोंके निकट संसारका स्वार्थपर होना ही स्वाभाविक है। और अपनी रक्षा तथा अपने सुखके लिए भरपूर बल लगाना व्यक्तिका परम धर्म है; परम उद्देश्य है:—

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततंरक्षे द्दारैरपि धनैरपि॥

योग्यतमावशेषकी ऐसी व्याख्या संकुचित पक्ष-की है। सन्तति पर दम्पतिका प्रेम नन्हे से नन्हे जीवोंसे लेकर मनुष्यतक में पाया जाता है। समय समयपर स्वजातीय पर दया, निर्बलकी सहायता और रक्षा—यह बातें भी चराचर जीव मात्रमें देखी गयी हैं। ज्यों ज्यों शरीर और शारीरिक जीवनमें विकाश होता जाता है, त्यों त्यों इन गुणोंकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। मनुष्य शरीरमें योग्य-तमावशेष वाला पाशविक नियम नहीं रह जाता। जीवन संघर्ष है और अवश्य है पर वह संघर्ष नहीं जो पशु पशु में था। मनुष्यका जीवनसंघर्ष प्रकृतिके साथ है, परिस्थितिके साथ है, उसके सजातीयके साथ नहीं।* इस सम्बन्धमें शन्तिवादी लेनका निम्न अवतरण पढ़ने योग्य है—

* उसी का प्रतिबिम्ब हमारे जीवन पर पड़ता है, जिससे यह भ्रम हो जाता है कि मनुष्यों में संघर्ष है।—र०

"मनुष्यके लिए जीवनप्रयासका नियम उसी प्रकार लागू है जैसे और शरीरधारियोंके लिए, किन्तु मनुष्यका रगड़ा संसारसे है, मनुष्य मनुष्य के बीच नहीं है। कहावत है कि जीव अपने सजातीयको नहीं खाता, सिंह भी सिंहको नहीं खाता। वह और ही प्राणियोंका शिकार करके खाता है। यह पृथ्वी ग्रह ही मनुष्यका शिकार है। मनुष्यका प्रयास, मानव समाजरूपी शरीरका प्रयास, संसाररूपी परिस्थितिके प्रति है—अपने ही भिन्न भिन्न अंगोंसे नहीं है।*

यह भूल यों होती है कि एकही मानव-जाति रूपी शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंमें जो अपूर्णता दीखती है, उसे लोग अलग अलग शरीरोंमें परस्पर विरोध समझ लेते हैं। आधी सदासे कुछ ही अधिक हुआ होगा कि ब्रिटेन दो करोड़ प्राणियों को भी सुख पूर्वक नहीं रख सकता था। वही अब चार करोड़ प्रजाका अधिक सुख पूर्वक पालन करता है। यह बात स्काट इंग्लिश वेल्श और ऐरिश जातियोंके परस्पर आक्रमणसे नहीं हुई, किन्तु इसीका उलटा हुआ अर्थात् इनमें परस्पर और बाहिरी जातियोंसे भी सहकारिता अधिकाधिक घनिष्ठ हो गयी, उसका ही यह फल है।"

समस्त मानव जाति शरीर है और यह पृथ्वी ग्रह उसकी परिस्थिति है, जिससे वह दिन पर दिन अधिक परिचित, अभिज्ञ और अनुवर्ती होता जा रहा है। यही बात उपस्थित सत्य घटनाओंसे मेल खाती है। किसी अन्य रीतिसे तो घटनाएँ समझ में नहीं आतीं, प्रत्युत असम्बद्ध दीखती हैं। क्योंकि मनुष्य झगड़ोंसे हटता जाता है; शारीरिक बल प्रयोगसे दूर होता जाता है; वरन् सहकारिता की ओर उसका अधिकाधिक बढ़ता जाना निर्विवाद है जैसा कि निम्न लिखित घटनाओंसे सिद्ध होगा।

किन्तु यदि मनुष्योंमें परस्पर स्पर्धाका नाश कर देना ही जीवनका नियम है तो यों समझना चाहिये कि मानवजाति प्रकृतिके नियम की अवहेलना कर रही है और अवश्य नाशके मार्ग पर होगी।

सौभाग्य वश इस विषयमें प्रकृतिके नियमको समझनेमें भूल हुई है। समाज वैज्ञानिक दृष्टि से कोई सर्वांग शरीर नहीं समझा जा सकता। जो अपने सजातियोंके संसर्गके बिना ही जीवन बितानेका प्रयत्न करता है वह मर जाता है। राष्ट्र भी सर्वांग पूर्ण देह नहीं है। अन्य जातियोंकी सहकारिता बिना ही यदि ब्रिटेन जीवित रहनेका प्रयत्न करे तो आधी आबादी भूखों मर जाय। सहकारिता जितनी ही पूर्ण हो उतनी ही जीवन-शक्ति की वृद्धि समझनी चाहिये। सहकारिता जितनी ही अपूर्ण होगी उतनी ही कम जीवन शक्ति भी होगी। जिस शरीरके भिन्न भिन्न अंग ऐसे अन्योन्याश्रित हैं कि बिना सहकारिता जीवनका ह्रास वा क्षय होजाता है, उस शरीरको इस विषयमें स्पर्धी वा विरोधी शरीरोंका समूह न समझना चाहिये। वरन् एक ही शरीर जानना चाहिये। अपनी परिस्थितिसे रगड़ा करनेका प्राणियोंका स्वभाव ही है और उपर्युक्त बात इसके अनुकूल ही है। शरीरधारी जितना ही ऊंचे दर्जेका होगा उतना ही उसके अंगोंमें अन्योन्याश्रय और निकट

* फ्रांसमें नविको महाशयका रचा एक अच्छा ग्रन्थ Le Darwinisme Social (Felix, Alcan Paris) नामक निकला है, जिसमें समाज विज्ञानमें डारविनके इस सिद्धान्तके प्रयोग पर बड़ी योग्यतासे विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। और जिस जीव वैज्ञानिक पक्षका ऊपर वर्णन हुआ है उसका नविको के ग्रन्थमें अच्छा पुष्टपोषण हुआ है। मनुष्य समाजपर जीव विज्ञानके नियमोंका वास्तविक प्रयोग तो विशेषतः अध्यापक कार्ल पियरसनने स्पेंसर और हक्सलेके सिद्धान्तोंको शुद्ध करनेमें अंशतः पहले ही किया था। (The Grammar of Science, P. 433-438)

सम्बन्ध होगा और उतनी ही सहकारिताकी भी आवश्यकता होगी।*

यदि जीव वैज्ञानिक नियमका अर्थ यों समझा जाय तो सब बातें स्पष्ट होजायं। विरोधसे मनुष्यकी अनिवार्य्य निवृत्ति और सहकारितामें विवश प्रवृत्ति इस बातको प्रकट करती है कि मानव जाति रूपी शरीर अपनी परिस्थितिका अधिकाधिक स्वामी होता जाता है और इस तरह उसकी शक्ति बढ़ती जाती है।

पूर्वोक्त नियम जीववैज्ञानिक रीतिसे वर्णन किया गया है। इन रीतियोंसे मनुष्यके "जीवन प्रयासमें जो आध्यात्मिक अभ्युदय सम्मिलित है उसका सबसे अच्छा वर्णन उसकी वृद्धिके स्थूल-विवरणमें बड़ी उत्तमतासे हो जायगा।

डारविनके सिद्धान्तानुसार मानवी सृष्टिके आदिमें मनुष्यका साधारण स्वभाव मनुष्यभक्षक था। अगले मनुष्य राक्षस वा मनुजाद थे। मानलो कि किसी मनुजादने अपने बन्दीको मार डाला। यह स्वभावानुकूल होगा कि वह उस मांसको अपने लिए ही रखे, दूसरों को न दे। शक्तिके प्रयोगका यह प्रचंड रूप है और मनुष्यके स्वार्थका सबसे नीच भाव है। किन्तु सारा मांस एक ही दिनमें खाया जाना सम्भव नहीं था, अतः वह सड़ने लगा और खाने योग्य न रहा और मनुजाद भूखों मरने लगा। जो लोग यह कहा करते हैं कि मनुष्य स्वभाव नहीं बदलता, उनकी भूल दिखानेको इस बीभत्सका वर्णन आवश्यक है। अतः पाठक क्षमा करें।

वह मनुजाद जिस समय भूखों मर रहा है, उसी कालमें उसके दो पड़ोसियोंकी भी ठीक वही दशा है। यद्यपि पूर्वोक्त मनुजाद अपने भोज्यका रक्षामें शारीरिक दृष्टिसे सम्पूर्ण समर्थ था तो भी उसके स्वाभाविक नाशके (सड़नेके) रोकनेमें असमर्थ होनेसे यों प्रबन्ध करना पड़ा कि दूसरी बार तीनोंने मिलकर एकही बन्दीको मारकर मिल बाँटकर खानेका निश्चय किया। पहलेके बन्दीसे दोनों पड़ोसियोंने भाग लिये और दूसरे दिन अपने बन्दीसे पहलेको भाग दिया। इस प्रकार मांस खराब होने न पाया। यह सबसे पहला दृष्टान्त है, जिसमें संसारमें शारीरिक बलको सहकारिता के आगे सिर झुकाना पड़ा। अन्तमें तीनोंके तीन बन्दी दस बारह दिनमें समाप्त होगये और खानेको कुछ न रह गया। तब यह बात सूझी कि यदि हम इन्हीं बन्दियोंको जीता रखते तो इनसे अपने लिए शिकार कराते और कन्द मूल खुदवाते। निदान अब जो बन्दी मिले तो मारे नहीं गये। दास बना लिये गये। यह भी शारीरिक बल-प्रयोग की कमी ही हुई। जिस स्वार्थकी प्रवृत्तिसे पहले मारे जाते थे उससे ही अब सेवामें लगाये जाते हैं। तब भी युद्ध कामनाके साथ समझदारी इतनी कम खर्च की गयी कि दास भूखों मरने लगे और उपयोगी कामके लिए सर्वथा अशक्य होगये। अब उनसे धीरे धीरे अच्छा बर्ताव होने लगा और युद्ध कामना घटने लगी। दास भी इतने सध गये कि बिना देख रेखके कन्द मूलकी खुदाई करने लगे और उनके स्वामी देख रेखके समयको शिकारमें लगाने लगे। जो झगड़ालूपन पहले दासोंपर खर्च होता था, अब और जातिके बैरियोंसे उन्हें बचानेमें खर्च होता है। यह बात कठिन भी थी, क्योंकि दासोंमें स्वयम् एक स्वामीसे दूसरे स्वामीके यहां चले जानेकी प्रवृत्ति बहुधा देखी जाती थी। इसलिए राज़ी रखनेके लिए उनसे और भी अच्छा व्यवहार किया जाने लगा। शक्तिके प्रयोगमें यह और भी कमी हुई और सहकारितामें और भी वृद्धि

---

* सहकारितासे स्पर्धामें रुकावट नहीं पड़ती। यदि कोई प्रतिस्पर्धी कारबारमें हमसे बढ़ जाय तो उसका कारण यही है कि वह हमारी अपेक्षा अधिक सफल सहकारिता संयोजन कर सकता है। किन्तु यदि चोर कुछ चुरा लेजाय तो वह सहकारिता करता ही नहीं, बल्कि उसकी चोरीसे हमारी सहकारिताका बहुत कुछ प्रतिरोध होगा। मानव समाज रूपी शरीरका सब कुछ स्वार्थ इसमें ही है कि वह स्पर्धाको प्रोत्साहित करे और मुख्य चोरोंको दबावे।

हुई। दासोंने उनके लिए मजूरी की और स्वामियोंने उन्हें भोजन दिया और उनकी रक्षा की। ज्यों ज्यों जातियों की वृद्धि हुई त्यों त्यों यही बात पायी गयी कि जिस जातिमें दासोंका जितना ही अधिकार, जितना ही सुख, दिया गया उतनो ही उन जातियोंमें वृद्धि और दृढ़ता हुई। धीरे धीरे दासत्वने रैयत वा आसामीका रूप ग्रहण किया। स्वामी ने भूमि दी और रक्षाका प्रबन्ध किया और रैयतने स्वामीके लिए मजूरीकी और सैनिक बने। *शारीरिक बलके प्रयोगसे मानव जाति और भी हट गयी और मिल जुलकर काम करने की और अदला बदलीकी रीति और भी बढ़ी। अब सिक्के चले बलका रूप भी बदल गया और रैयत लगान देने लगी। सैनिक तनखाह पाने लगे। अब दोनों पक्षमें स्वच्छन्दतासे अदला बदली होने लगी—शारीरिक बल आर्थिक शक्तिसे बदल गया। ज्यों ज्यों बल प्रयोगसे साधारण आर्थिक सुभीतेकी ओर मनुष्यकी प्रवृत्ति होती गई त्यों त्यों व्यवसायका अधिकाधिक प्रतिफल मिलने लगा। तातारी खान जो अपने राज्यका धन ज़बरदस्ती लूट लेता था, अब लूटनेको कुछ पाता ही नहीं, क्योंकि जिस धनसे लाभ नहीं हो सकता उसके उपार्जनके लिये मनुष्य उद्योग न करेंगे। अतः खानके अन्ततः किसी धनीको अनेक दुर्यातना करके मार डालने पर भी उस धनका सहस्रांश न मिल सकेगा जो लंडनका कोई व्यापारी बलप्रयोगाधिकारहीन उपाधिके प्राप्त करनेमें खुशीसे खर्च कर देगा। और वह उपाधि भी ऐसे शासकसे, ऐसे महाराजाधिराजसे, मिलेगी जो बल प्रयोगका कोई भी अधिकार न रखते हुए संसारके सबसे धनी सम्राज्यका स्वामी है। जिसका धन ऐसे उपायों से इकट्ठा हुआ है, जिनका बलप्रयोगसे कोई सरोकार ही नहीं है।

जाति वा उपजातिके भीतर ही भीतर यह सिलसिला जिस समय बराबर जारी रहा, उसी कालमें भिन्न भिन्न राष्ट्रों वा जातियोंमें जो परस्पर बलप्रयोग वा द्वेष भाव था वह दूर नहीं हुआ, पर उसमें कमी अवश्य आयी। पहले तो यह बात थी कि झाड़ीके भीतरसे अपने बैरीजाति वालेका धूलि धूसरित शिर दिखाई दिया नहीं कि इधर रालसके तीरका निशाना बन गया, क्योंकि वह "पर"* है अतः मारणीय है। कुछ दिन पीछे यह दस्तूर हो गया कि अपनी जातिवालोंसे लड़ाई हो तभी उसे मारनेका प्रयत्न किया जाय। ऐसे भी अवसर आने लगे जिनमें शान्ति होती थी, शत्रुतामें कमी होती थी। पहलेके युद्धोंमें बैरीकी स्त्रियां बूढ़े सभी मारे जाते थे। बल और युद्धकामना अनियन्त्रित होती तो है, किन्तु ज्यों ज्यों दासोंसे मजूरीका और दासियोंसे उपस्त्रीका काम लिया जाने लगा युद्ध कामना घटती गयी। बलप्रयोग कम होता गया। बैरीकी स्त्रियां विजेताके पुत्र उत्पन्न करने लगीं। झगड़ालूपन और भी घटा। बैरीकी बस्ती पर जो फिर चढ़ाई की गयी तो मिला कुछ नहीं, क्योंकि लूट मारसे कुछ बचा ही न था। अतः बैरियोंके सरदारको ही मार कर सन्तोष किया। युयुत्सामें और कमी आयी। सम्वेगका और भी ह्रास हुआ। या बैरियोंसे देश छीन कर अपने लोगोंमें बांट दिया, जैसा नारमन विजेताओंने किया था। अब मनुष्य सर्वनाश करनेके दरजेसे † आगे बढ़ गये।

---

* यद्यपि यह भारतवर्षके इतिहास, दशा और सभ्यताके अनुकूल नहीं है तथापि अंग्रेज आदि जातियोंकी दशासे जिन के यहां विकाशवादका दुरुपयोग हुआ है इस दृष्टान्तका विस्तार पूर्णतया मिलता है।

* संस्कृतमें "पर" का अर्थ सम्भवतः "शत्रु" इन्हीं कारणोंसे हो गया है। —ले०

† जीवविज्ञानके टेढ़े दृष्टान्तोंकी सहायता बिना ही संसारकी साधारण घटनाओंसे यह स्पष्ट है कि संसारमें योग्यतमका जीवित बचजाना मनुष्यके युयुत्सा वृद्धिके किसी कालमें सिद्ध भी था। तोभी वह समय अब अत्यन्त दूर चला गया है। आजकल अब हम किसी जातिको जीतते

अब विजेता विजितको केवल अपनेमें मिला लेता है ‡ वा विजित ही विजेताको मिला लेता है। जैसा समझ लिया जाय। अब एक दूसरेको चट कर जानेकी बात नहीं रही। दोनोंमें एक भी निगला नहीं जाता। इसके अनन्तर विजेता अपने बैरी राजाको बेदखल नहीं करता, वरन् उस पर कर लगा देता है। यह बल प्रयोगमें और भी कमी हुई। किन्तु विजेता राष्ट्रकी दशा अपने ही राज्य-में खानकी सी हो जाती है। जितना ही वह निचोड़ता है उतना ही कम पाता है। यहाँ तक कि अन्तको जो कुछ मिलता है उससे भी अधिक उसके पानेके लिए सेनामें खर्च हो जाता है। स्पेनिश अमेरिकामें स्पेनकी जो दशा हुई—जितना अधिक उसका राज्य बढ़ता था उतना ही स्पेन दरिद्र होता जाता था—वही दशा हो जाती है। अब बुद्धिमान विजेताको यह सूझती है कि कर लेनेकी जगह उस देशके बाज़ार पर अपना इजारा कर लिया जाय तो अधिक लाभ होगा। इस सिद्धान्त पर अंग्रेज़ोंने उपनिवेशोंकी पुरानी रचना की। किन्तु इजारेकी रीतिमें लाभके बदले हानि अधिक हुई।* इस पर उपनिवेशोंको अपनी अपनी ही रीति चलानेकी आज्ञा दी गयी। इस तरह बलप्रयोगमें और भी कमी आयी। विरोध और झगड़ालूपन और भी घटा। इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि बलप्रयोग एक दम छोड़ दिया गया। अब परस्पर लाभ वाली सहकारिताका ही सम्बन्ध रह गया। सो केवल उपनिवेशोंमें ही नहीं जो पर राज्य बन गये हैं, किन्तु उन राज्योंमें भी जो नाम मात्रको वा वस्तुतः पराये हैं। अब मनुष्योंमें परस्पर कठिन रगड़ेकी दशा नहीं है। हम ऐसी दशाको पहुंचे हैं कि परदेशियोंके सुखी रहने पर ही हमारी जीविका या जीवन है। यदि इंग्लैण्ड किसी जादूसे समस्त विदेशियोंको मार डाले तो उसकी आधी प्रजा भूखों मर जाय। ऐसी दशामें परदेशियोंसे बहुत दिन तक विरोध रह नहीं सकता। किसी गम्भीर जीववैज्ञानिक नियमसे वा आत्मरक्षाके सच्चे भावसे ही ऐसे विरोधका कोई न्याय्य कारण समझा जाय ऐसी भी कोई स्थिति नहीं है। ज्यों ज्यों शरीरके अंग प्रत्यंगका अन्योन्याश्रय नवीन रीतिसे घनिष्ठ होता जाता है, त्यों त्यों वह आध्यात्मिक अभ्युदय आवश्यक है, जो आदिसे ही मानव प्रकृतिके इतिहास पट पर अंकित होता आया है—उस दिनसे जब मनुष्य अपने बंदीको मार कर खा जाते थे और साथियों तकमें बांटना अस्वीकार करते थे, आज तक जब कि तार और बंकने आर्थिक रीतिसे सैन्य बलको बिलकुल निरर्थक कर दिया है। १

हैं तो उसका सर्वनाश नहीं करते। उसे ज्योंकी त्यों रहने देते हैं। जब हम सबल निर्बल जातियोंको जीत लेते हैं उन्हें नष्ट कर देनेके बदले उनमें सुव्यवस्था करके बढ़नेका अवसर देते हैं, जिसका फल यह होता है कि उच्च गुणोंके द्वारा विजित होने से नीच गुणोंकी रक्षा हो जाती है, नष्ट नहीं होने पाते। अमेरिका और फिलिपैनका सम्बन्ध इसका उदाहरण है। जिनराष्ट्रोंमें मोटे हिसाबसे बराबर ही वृद्धि हुई है, उनमें भी युद्ध होनेसे अयोग्यकी रक्षा हो जाती है। क्योंकि विजित जातिका सर्व नाश नहीं किया जाता, किन्तु उनमें जो सबसे योग्य होते हैं तथा विजेताओंमें जो सेनाके लिये योग्यतम होते हैं, उभयपक्षमें उनका ही नाश होता है और दोनों ओरके निकम्मे ही बच जाते हैं और वंश चलाते हैं।

‡ भारतवर्षमें भी हिन्दुओंमें यूनानियों, मगों, पारसियों, शाकद्वीपियों, हूणोंका ऐसा मेल हो गया है कि सहसा जाति भेद ध्यानमें नहीं आता।

* अंग्रेजो की इस नीतिका यह हाल हुआ कि अमेरिका का वह अंश जो अब संयुक्तराज्य कहलाता है, सवासौ बरस से अधिक हुए उनके हाथोंसे निकल गया। भारतमें रेल आदि इसी प्रकारके अंग्रेजी इजारे है।

१सम्प्रति महायुद्धमें जर्मनीकी हार और सन्धि तथा दर्जनों छत्रधारियोंका राजत्याग आदि बल प्रयोगके कारण नहीं, वरन् शुद्ध आर्थिक और सामाजिक शक्तियोंके कारण हुआ है। अधिभौतिक शक्तियोंकी पराजय और आध्यात्मिक शक्तियोंकी जय हुई है। १

प्रस्तुत विचारोंसे कोई ऐसा न समझले कि विकासवाद एक दम नयी बात है। डारविनके दिमाग़की ही उपज है। डारविनको समझानेवाले आफ्रिकाके पादरी थे, जिन्होंने वहांके बनमानसों और जंगली मनुष्योंमें बड़ा सादृश्य पाया था। जैसे साधारण गोरी सभ्यतावाला अपनेको ही मनुष्य समझता है और अ-गोरी जातियोंको मनुष्य कोटिमें गिनता ही नहीं और जैसे, अब तक अधिकांश भारतीय गोरी जातियोंको त्रिजटाकी सन्तान समझा करते हैं, उसी तरह यह निष्कर्ष निकाला था कि आफ्रिकाके मनुष्य बानरसे ही उत्पन्न हुए होंगे। मनुजादों, बनमानसों और बानरोंसे और मनुष्योंसे प्राचीन सम्बन्ध हमारी कल्पना नहीं है, ऐतिहासिक बात है। वह भी दो चार हज़ार बरसका इतिहास नहीं, युगों पहलेकी बात है जहां आधुनिक पाश्चात्य कल्पना और प्राच्य परम्परामें इतना घना सादृश्य है। सृष्टिकी घटनाओंके अवतारोंके क्रमके विश्लेषण पूर्वक अध्ययनसे विकासका पूरा पता लगता है। एक स्थल पर हक्सले इन बातोंको इन शब्दोंमें मानता है कि "हिन्दू ऋषियोंकी चर्चाही क्या जो तारसा निवासी पालके जन्मके युगों पहले विकास सिद्धान्तसे पूर्ण परिचित थे।" वैष्णवोंमें भी श्री सम्प्रदायके आचार्य्य रामानुज स्वामीने बड़ी योग्यतासे विकासको सिद्ध किया है। सांख्यकारने भी सृष्टिका विकास दिखाया है। योग सूत्र "निमित्त प्रयोजकम् प्रकृतीनाम् वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्" से यह स्पष्ट है कि जीवात्मामें प्रत्येक शक्ति पहलेसे ही विद्यमान है। चींटींमें वही शक्तियां हैं जो ब्रह्मामें हैं। शक्तिकी नदी सब जगह वेगसे बहती है। जो किसान अपने खेतका बांध हटायेगा उसके खेतमें जल तुरन्त भर आयेगा, यही आन्तरिक शक्ति हमारे यहां विकासका हेतु मानी गयी है। हिन्दू विकासवादमें और डारविनके विकासवादमें यह अन्तर अवश्य है कि डारविनने जीवनका रगड़ा विकासका हेतु माना है और हिन्दुओंने आन्तरिक शक्तिको ही हेतु समझा है। मनुष्येतर योनियोंमें जीवन संग्राम देख कर ही डारविनने भूल की, कार्य्यको कारण समझ बैठा। वस्तुतः जीवन संग्राम उसी प्रवृत्तिका कार्य्य है जो सृष्टि मात्रमें कूटस्थ है। जो सारे खेल खिलाती और सब खोयेकुटवाती है। श्री रामानुजाचार्य्यके अनुसार नीचसे नीच योनिमें आत्माकी दशा अत्यन्त खींची हुई कमानीके समान है, जिसमें प्रसारकी बड़ी प्रबल प्रवृत्ति है। शक्तियोंके घनीभवनके कारण प्रसारका होना ही स्वाभाविक और आवश्यक है। प्रसारके बदले संकोच उत्पन्न करनेके जो कारण उपस्थित होंगे वही अधर्म वा पाप समझे जाने चाहियें। ऊर्ध्वगति स्वभावसिद्ध है। अधोगति अस्वाभाविक है और घोर पाप कर्मसे ही हो सकती है।

'धर्मेण गमनमूर्ध्वम् गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण ।'

अविद्याके कारण नीच योनियोंके स्वाभाविक-विकाससे जब मार्गमें बाधाएं उपस्थित होंगी, रुकावटें आगे आवेंगी तभी जीवन संग्रामका दृश्य सामने आवेगा। वेगवती तरंगिणीकी राहमें जब तक चट्टानोंकी रुकावट नहीं है, चुपचाप धारा बहती जाती है। चट्टानोंने बीचमें रुकावट डाली कि धारा कुछ देरके लिए रुकी, परन्तु धीरे धीरे बल एकत्र करके चट्टानको मारे थपेड़ोंके रेत कर डालती है और घोरनाद करती और तटोंको बहाती दूने वेगसे समुद्रको जाती है। इस अवरोधको ही देख कर पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने जीवन प्रयास तथा योग्यतमावशेषका हेतु समझ लिया। नीच योनियोंसे जीवका विकास होते होते मानवयोनितक पहुंचा है। इस योनिको ही सम्प्रति सबसे उत्तम मानते हैं, इससे ही विकासका मार्ग प्रशस्त और अनिरुद्ध सा हो जाता है। जीवोंमें साधारणतया तीन प्रकारकी उच्चाभिलाषा होती है जो उसे उन्नतिकी ओर झुकाती है—तरक्कीकी राहमें लगती है। सातत्य, सर्वज्ञता और सुख। सभी चाहते हैं कि हम सदा बने रहें, मरें नहीं, हमारा नाश न हो जाय। इसके लिए सच्चे झूठे जितने उपाय सूझते हैं,

मनुष्य सभी करता है। यही सातत्यकी कामना है। सब कुछ जाननेकी इच्छा सबके मनोंमें होती है और उसके लिए अपने बल भर सभी उपाय करते हैं। यही सर्वज्ञताकी इच्छा है। जिये तो सुखसे ही जिये और मरेभी तो जहां कहीं आत्मा जाय सुखी ही रहे, यह इच्छा ऐसी प्रबल है कि कई गयाजीमें अपना श्राद्धभी कर आते हैं। यही सुखकी इच्छा है। इस प्रकार इन तीनों इच्छाओंको साथ लिये हुए जीवात्मा शरीर परिवर्तन करता है। चराचर जीवोंमें इन्हीं इच्छाओंके अनेक रूपोंमें चिह्न पाये जाते हैं। वनस्पतियोंके जीवनका जैसा अनुशीलन विज्ञानाचार्य्य सर जगदीशचन्द्र वसुने किया है, संसारमें प्रसिद्धही है। वनस्पतियोंमें भी ऐसी प्रवृत्ति पायी जाती है। अपने यहां जागृत, स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओंके हिसाबसे वनस्पतियों कि सुषुप्ति और पशुओंकी स्वप्नावस्था बतायी है। अवस्था भेदसे जैसे जागृत अवस्था कर्मके लिए सबसे अधिक विकसित दशा है, उसी तरह मानव शरीर उन्नतिके लिए सबसे अधिक विकसित शरीर है। मानव शरीरमें इन तीनों इच्छाओंका सबसे ज्यादा ज़ोर है। इन इच्छाओंको दूसरे शब्दमें कहें तो क्रमशः सत्, चित् और आनन्द कह सकते हैं और यह भी कह सकते हैं कि जीवकी स्वाभाविक इच्छा सच्चिदानन्द होनेकी है।

जीवात्माकी सबसे ऊंची आकांक्षा यही हो भी सकती है कि वह सच्चिदानन्द हो जाय। सच्चिदानन्द उस आदर्शका नाम है जिसे आस्तिक हिन्दू ईश्वर, जैन तीर्थंकर और बौद्ध बुद्ध वा अर्हत कहते हैं। परन्तु हम यह कह आये हैं कि जीवात्मा चेतन आत्मा और अचेतन अनात्माके संसर्गका फल है। अतः उसकी ऊंचीसे ऊंची आकांक्षा ईश्वरताकी ही हद्दतक पहुंच सकती है और ईश्वरता भी प्रकृतिसे सविकार है निर्विकार नहीं है।

इस स्थल पर यह कह देना भी उचित होगा कि जहां रामानुज स्वामीके मतसे विकासका होना जीवके लिए आवश्यक है, वहां भगवान शंकर विकास नहीं मानते। बात ठीक ही है। विकास-प्रवृत्ति और निवृत्ति, वृद्धि और क्षय, यह बातें प्रकृतिकी हैं। घटना बढ़ना आदि विकार प्रकृतिमें ही सम्भव है। आत्मा पूर्ण अखण्ड अनन्त अविकार सनातन एक रस है। अनिर्वचनीय और एक है। उसमें विकासकी कल्पनाकी गुञ्जाइश कहां है? शंकरके मतसे आत्मा ही सत्य है। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म", "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या", "एकमेवाद्वितीयम्" आदि आत्माकी सत्ताको ठीक और शेषको मिथ्या और अनित्य बताते हैं। प्रकृतिमें घटना बढ़ना आदि स्वाभाविक है। परिवर्तन उसका धर्म है। जगत् और संसार नाम आप पुकार कर विकासकी दाद देते हैं और वृद्धि और ह्रासके नियमकी मर्य्यादा करते हैं। जहां रामानुज स्वामी सालोक्य सामीप्य सारूप्य और सायुज्य चार प्रकारकी मुक्ति ठहराते हैं और बन्धनको भ्रममात्र बताते हैं, रामानुज स्वामी का जीव सच्चिदानन्द हो जाता है। शंकर स्वामीका जीव रह ही नहीं जाता, आत्मामें लीन हो जाता है। किसी ईरानी कविने कहा है—

> ख़िरदरा दोश मी गुफ़्तम् कि ए अक्सीर दानाई
> हमव बे मग़ज़ हुशियारी हमव बेदीद बीनाई
> चगोई दर वजूदां कीस्त की शायस्तगी दारद
> कि तू बा आबरूए ख़ेश ख़ाके पाए ओसाई
> बगुफ़्ता नूर मन कज़ बहर ओ पेवस्त मीसोज़म
> चुरुख़ बिनमूद जां दरबाख़्तम् अकनू च फ़रमाई

विन नैनन निरखति फिरति विन इन्द्रिय तोहि ज्ञान।
हे बुधि तू केहि बिधि भई असि विज्ञान निधान॥
तो हूं ते अतिही बड़ी कौन शक्ति बलवान।
जाके पदरज शिर धरति तू हू सह सम्मान॥

> बोली सो हृदयेश मम सतत प्रकाशकभान।
> जरौं विरह, पै मिलतही वारिदेउँ निजप्रान॥

अर्थात् मैंने बुद्धिसे कल पूछा कि तेरे इन्द्रियां नहीं हैं परन्तु पूरा ज्ञान है, आंखें नहीं परन्तु सब कुछ देखती है। पर वह क्या शै है, जिसके आगे तू भी शिर झुकाती है। वह बोली जिस हृदयेश्वरके

विरहमें मैं नित जलती हूं, जब उसके दर्शन होते हैं अपने प्राण निछावर कर देती हूं। उसके होते, मैं नहीं रह जाती।

"मन् शमअ जां गुदाज़म तू सुबह दिल्कुशाई
सोज़म गरत न बीनम्, मीरम् चरुख नुमाई
नज़दीकत्रों चुनीनम्, दूरां चूना कि गुफ़्तम्
ने ताब वस्ल दारम् ने ताकते जुदाई"

मैं जलती दीपक सिखा तू सुख देन बिहान।
बिरह जरौं बिन तोहि मिलें मिले देतिहौं प्रान॥
मिलिवेको साहस नहीं बिरह सहन नहिं होय।
दूरइती जितनी कही, लग इतने नहिं दोय॥

अपने आपेसे बढ़ कर प्रेम पात्र कौन हो सकता है? जीव ज्योंही पीछे मुड़ता है अन्तरात्माके दर्शन होते हैं और वह तल्लीन हो जाता है। फिर जीव की सत्ता ही नहीं रह जाती। सूर्य्यकी किरणें समस्त विश्वमें फैल रही हैं, प्रकाशही प्रकाश है। सूर्य्यको ढूंढ़ती फिरती हैं, ज़रा पीछे मुड़ी कि सूर्य्यही सूर्य्य है फिर किरणें कहा हैं। किरणें तो सूर्य्यसे विलगताका ही नाम है। जीव अपने परम प्यारे अपने आपकी खोज में मररहा है अपने प्यारेसे साक्षात्कार होतेही एक रत्ती और क्षण भरभी वियोग सहसकता है?

मन तू शुदम तू मन शुदी मन तन शुदम तू जां शुदी।
ता कस न गोयद बादज़ीं मन दीगरम् तू दीगरी॥
"मैं तू हुआ तू मैं हुआ मैं तन हुआ तू जां हुआ।
जिससे न फिर कोई कहे मैं और हूं तू और है"॥

श्री रामानुजाचार्य्यके अनुसार जीवकी सायुज्य-मुक्ति भगवानके अंगमें सम्मिलित हो जाना है, परन्तु भगवान शंकरके यह द्वैत है ही नहीं। कौन अंगी और कैसा अंग। जब आत्माको छोड़ और कोई सत्ता ही नहीं तो बन्धन भी भ्रम ही ठहरा। झूठही बात है। जीव जिसे कहते हैं कभी बंधाही नहीं। नित्यमुक्त है। यही कारण है कि शंकरके यहां विकास सिद्ध नहीं है।

जीवनका चरम उद्देश्य

[ले० श्रीयुत 'अब्दुल्ला']

किसी मतको लीजिये, किसी सम्प्रदाय पर विचार कीजिये सबका उद्देश्य सच्चिदानन्द हो जाना किसी न किसी रूपमें अवश्य है। शंकरका अद्वैत कई एक मंजिल ऊंचे ले जाता है। यही बात शंकरमें औरोंसे विलक्षण है। जब होमरूल या स्वराज्यकी या कलोनियल (औपनिवेशिक) स्वराज्यकी आकांक्षा है तो आगे जाकर सर्वथा स्वतन्त्र हो जानेकी अभिलाषा होनी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसी तरह ईश्वरका साक्षात्कार अथवा सामीप्य प्राप्त हो तो उस प्राणोंके प्राण, जीवोंके जीव, परम प्यारेसे एकदम एक हो जाने की इच्छा भी क्या किसी तरह असंगत हो सकती है। इसी लिए यदि रामानुजादि कलोनियल स्वराज्य तक जाते हैं, तो शंकर पूर्ण स्वतन्त्र, पूर्ण स्वाधीनताके अन्त तक पहुंच जाते हैं।

परन्तु व्यवहारमें यदि पूर्ण स्वाधीनताके लिए प्रयत्न न करके केवल औपनिवेशिक स्वराज्य-के लिए ही कोशिश की जाय तो पूर्ण स्वाधीनता चाहने वालेसे व्यवहारमें कोई विरोध नहीं पड़ता, क्योंकि दोनों एक ही मार्गसे चल रहे हैं।

उसी मार्गमें किसी मंज़िल पर औपनिवेशिक स्वराज्य वालेकी सराय पड़ेगी पड़े। जिसकी यात्रा वहां पूरी हुयी वह ठहर जाय। पर पूर्ण स्वाधीनता वालेको आगे बढ़नेमें बाधा ही क्या है? दोनोंके लक्ष्यमें अवश्य अन्तर होगा। बात यह नहीं है कि दोनों उद्देश्योंके अलग अलग मार्ग नहीं हैं। अलग अलग मार्ग हैं और अवश्य हैं। परन्तु हमारे कहनेका विशेषतः यह तात्पर्य्य है कि यदि दोनों एक ही मार्गसे चलें तो भी रास्ता खोटा होनेका नहीं है। जब अधिकांश दलोंके अनुसार

अपनी उन्नति ही सबका एकमात्र उद्देश्य है, जब हर एक सच्चिदानन्द ही होना चाहता है वा उससे भी आगे बढ़ना चाहता है, तो इतना कहनेमें तो कोई कसर हो नहीं कि विकास-वादका ही निश्चय नहीं है। प्रत्युत सर्ववाद सम्मत है कि जीवमात्र उन्नतिके उद्योगमें है—सारी प्रकृति विकास चाहती है। प्रकृतिके जड़-चेतन दोनों रूप दीखते हैं*। दोनों रूपसे उन्नति करते करते वह मनुष्य योनिकी मंज़िल तक पहुंची है। प्रकृति की ओरसे मनुष्य एक ख़ास मिशन लेकर आया है। उसका अस्तित्व प्रकृतिके किसी विशेष कार्य्य-के लिए हुआ है। और योनियोंमें चाहे वह प्रकृति-से प्रेरित होकर ही उन्नति करता रहा हो, परन्तु मानव योनिमें जीव अधिक सचेत है, मिशनको समझता है। बड़े छोटे, ऊँच नीचके भेद प्रभेद हमारे आपसके सामाजिक झगड़े हैं। प्रकृतिके लिए महामारीका वाहन कृमि और महामारीका शिकार मनुष्य दोनोंकी प्रतिष्ठा बराबर है। जब सभी प्राणी सभी जीव अपने अपने उद्देश्य रखते हैं तो मनुष्य इस नियमका अपवाद नहीं हो सकता। मनुष्य जीवनका मुख्य उद्देश्य उन्नति ही है और वह उन्नति सभी दिशाओंमें सभी विषयोंमें।

हम अन्यत्र दिखा आये हैं कि जीवित शरीर के भीतर ज्ञातकर्म्मके अतिरिक्त अविज्ञात कर्म्म भी होते रहते हैं, जिनका कारण जीव वा जीवन का अदृश्य बल ही समझा जा सकता है। क्योंकि इस बलके निकल जाने पर अविज्ञात कर्म्म भी बन्द हो जाते हैं। जीव जिस योनिमें होता है उस योनिके अनुकूल ही अपनी परिस्थितिसे अपने शरीरकी वृद्धिकी सारी सामग्री खींच लेता है, यथाशक्ति उत्तमसे उत्तम शरीरकी रचना करता है और शरीरान्त तक इस काममें रत्ती भर उठा नहीं रखता। हम यह नहीं कह सकते कि सभी मनुष्येतर प्राणियोंमें उद्योग करनेके पूर्व किसी अंशोंमें ज्ञात कर्म्मोंको उत्पन्न करनेके लिए संकल्प उठता है। अथवा सारे काम अविज्ञात ही रीति पर होते हैं। परन्तु कुछ प्राणियोंके लिए तो निर्विवाद रीतिसे सिद्ध है कि संकल्प शक्ति अवश्य है। कुछ प्राणियों की गवाही पर हम यह मानलें तो बहुत अनुचित न होगा कि संकल्प भी चेतनाके साथ साथ विकाश पाता है। अतः यदि धात्वादि खनिजोंमें नहीं तो बनस्पतियोंमें जिस परिमाण से इन्द्रियोंका उदय होता है, उसी परिमाणसे संकल्प शक्तिका बीज भी उगा हुआ है। यही बढ़ते बढ़ते मनुष्यमें वर्तमान रूपमें दिखायी देता है। विकास सिद्धान्तसे हम यह अनुमान भी कर सकते हैं कि भविष्यमें मनुष्यसे भी अच्छी योनिके प्राणी उत्पन्न होंगे जिनमें दसकी जगह पन्द्रह बीस इन्द्रियां हो और जितने कर्म्म अभी अविज्ञात हैं सभी विज्ञात हो जायं। अपने शरीरके सभी अवयव अपनी संकल्प शक्तिके पूरे अधिकारमें आ जायं। जीवात्माका शरीर पर सोलह आना स्वराज्य हो जाय और मनुष्य कामरूप देवता हो जाय। उस समय मनुष्य-योनि शायद प्रकृतिके पूरे आदर्श तक पहुँच जाय। विकास सिद्धांतके ही मार्गसे हमने अपने अनुमानको इतनी दूर पहुंचाया है। परन्तु हमारे यहाँके योगी प्रकृतिकी उस उन्नत दशाके आने तक भी ठहरना नहीं चाहते। वह इतने बलवान हैं कि करोड़ों बरस बाद आने वाले युगोंको प्राचीन कालके महर्षियोंकी तरह आज ही बुला

---

* भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनो बुद्धिरेवच। अहंकार इतीयंमेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा। अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिंविद्धिमे-पराम्। जीवभूताम् महाबाहो ययेदम् धार्य्यते जगत्

भगवद्गीता अ० ७ श्लोक ४,५

द्वाविमौ पुरुषौलोके क्षरश्चाक्षरएवच। क्षरःसर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः॥ यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययईश्वरः॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहं अक्षरादपिचोत्तमः। अतोऽस्मिलोके वेदेच प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

भगवद्गीता अ० १५ श्लोक १६,१७,१८

लेना चाहते हैं। यह प्रयत्न भी प्रकृतिसे बाहर नहीं हैं। *विकास सिद्धान्तके प्रतिकूल नहीं है। प्राकृतिक विकाश गणितके उत्तरोत्तर वृद्धिके नियम पर चलता दिखाई देता है। जो उन्नति गत तीन करोड़ बरसोंमें नहीं रही वह तीन लाख बरसोंमें हो गयी। जो तीन लाख बरसोंमें नहीं पायी थी वह तीन हजार बरसोंमें देखनेमें आयी। जो गति-वृद्धि तीन हजार बरसमें न हो सकी थी वह गत तीन सौ बरसोंमें हुई और जो गत तीन सौ बरस भी नहीं कर पाये, गत तीस बरसोंने कर दिखाया। गत तीस बरसों में भी जगत उतने वेग से नहीं चल रहा था जितना गत तीन बरसोंमें विकास के मार्गमें आगे बढ़ रहा है। इससे न तो हमारे योगी कोई अनोखी बात कर रहे हैं और न मनुष्य से भी ऊंचे प्राणीके उत्पन्न होने में कई करोड़ बरसोंका लगना ही अनिवार्य्य है।

इसी चेतना के इस अंगके विकासको श्रुतिमें 'अयंखलु क्रतुमयः पुरुषः, वाले महावाक्यमें दरसाया है। जीवके विकासका यह बड़े महत्त्वका सूत्र है कि यह पुरुष यह व्यक्ति यह जीवात्मा अपने खयालोंका पुतला है, अपने विचारोंसे ही बनता है, अपने संकल्पसे ही रूप धारण करता है- जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है।

यह पुरुष श्रद्धामय है जैसी श्रद्धा करता करता है वैसा ही होता है। अर्थात् इस पुरुषकी रचनामें किसी आन्तरिक संकल्पशक्तिकी क्रियाही कारण हो रही है। इसी देह और जीवको दोहरे विकास की शक्ति को ही और शब्दों में दैवी वा ईश्वरी शक्ति कहा है।

"ईश्वरः सर्व भूतानांहृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति। भ्रामयन्सर्व भूतानि यंत्रारूढानि मायया" भ० गी०]

इस सूत्रको लेकर लोक यह कह सकते हैं कि यदि मनुष्य अपने विचारोंका ही पुतला है और उसके विचार पाशविक हुए, कदाचारकी ओर प्रवृत्त हुए, आवारगीपर आमादा हुए तो अच्छा विकास होगा, प्रकृति खूब ही उन्नति करेगी। ऐसी आपत्ति उठानेवाले विकास-सिद्धान्त के इस पहलुपर पूरा ध्यान देंगे तोयह गुथी भी सुलझ जायगी।

जिस तरह प्रकृति शरीरोंको बनाती बिगाड़ती, अभ्यास करती जाती है और नित्य अच्छेसे अच्छे शरीर बना रही है। उसी तरह चेतनामें भी बराबर वृद्धि हो रही है। खनिजोंमें जहां चेतनाका सूक्ष्म रूपसे वा तरल रूपसे सर्वांगमय विस्तार था वहां वनस्पतियोंमें बिलग हुआ जिसमें अंग प्रत्यंगकी चेतना अलग अलग दीखने लगी, परन्तु व्यक्तिगत बिलगता नहीं आयी तो भी (अमीवा) जीव मूलके एकसे दो, दो चार, चारसे आठ आठसे सोलह आदि विभाग होकर एक चेतन वा एकही जीवसे अनेक जीवोंका विभक्त हो होकर बन जाना* व्यक्ति वा अंहकारका सूत्रपात समझना चाहिये। पशुओंमें इस व्यक्ति विभागका स्थूल रूप और कम विकसित दशा देख पड़ती है। मनुष्यमें अहन्ता अच्छी तरह विकसित और सूक्ष्म रूपसे एकही शरीरमें सम्पूर्ण विस्तृत देख पड़ती है। निदान जीव और शरीर दोनोंका विकास होता आया है। परन्तु इस विकास मार्गमें जीव ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों उसकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ती गयी— अपनी संकल्प शक्तिसे अपने लिये स्वयं मार्ग खोजने लगा, स्वभावरूपी मार्गदर्शकसे स्वाधीनता पाने लगा। जब इसकी भीतरी आँखें खुल गयीं, उनका धुंधलापन मिट गया, स्वभावकी ऐनक उतार फेंकी, इधरउधर देखकर परीक्षाएँ करने लगा, आगे बढ़नेके बदले दाहिने बायें पीछे भी

* श्रद्धामयोऽयंपुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः (गीता)

* अमीवा वा आदि प्राणी वा मूल जीव उन सूक्ष्म सेलोंका नाम है जिनसे चराचर प्राणीका शरीर बनता है। और नित्य विकास और ह्रास होता रहता है। अमीवा एकसे दो, दोसे चार, चारसे आठ होता हुआ बढ़ता जाता है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्रसे वह और उसकी वृद्धि देखी जा सकती है॥

मुड़ने लगा। राहके तमाशे देखने लगा। जब कभी कुमार्ग चला, ठोकरे खायीं। दहिने बायें तमाशबीनी में राहखोरी करने लगा, गड्ढेमें गिरा या काँटोंमें उलझा। यह सब ज़ाहिरी रुकावटें उसे सीधी राह आगे बढ़नेमें सहायता देती हैं। और जहां वह इन रुकावटोंसे डर कर कुछ विरम जाता है, वह आँखें खोलकर सामनेके सीधे मार्गको साफ पाकर सरपट भी दौड़ जाता है और अपनी कमी ही पूरी नहीं कर लेता बल्कि आगे बढ़ जाता है। इस तरह राहका तजरबा करते चलना, कठनाइयोंको अनुभव करते चलना, उसके आगेकी चाल में बाधा डालनेके बदले अधिकाधिक लाभका कारण होता है। जैसे वैज्ञानिक किसी कल्पना पर परीक्षाएं करता है, जिन बातोंको सोचता है, प्रयोग की कसौटी पर परख लेता है। अगर बात पाव तोला बावन रत्ती न ठहरी या परीक्षामें सफलता न हुई तो उसकी जानकारी बढ़ी, अनुभव की थैलीमें एक सिक्का और पड़ गया। उसका नुकसान कुछ भी न हुआ। परीक्षामें असफलता ही भविष्यकी सफलताकी नींव है, कामयाबीकी कुंजी है और ऊपर चढ़नेकी सीढ़ी है। सफलता तो मंज़िल है, जहां आदमी दम लेता है, रुक जाता है, पीछे निगाह डालकर छोड़े हुए मार्गकी जाँच पड़ताल करता है, आगे बढ़नेके लिए नयी सीढ़ियों पर कदम रखनेके पहिले भली भांति देख भाल करता है।

इन बातोंपर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि यद्यपि चोरके मनमें चोरी करनेमें हर्ज नहीं है, उसकी प्रत्यगात्मा वा अन्तरात्मा उसको चोर बनानेमें ही श्रद्धावान् है, उसका "हृद्देशे" स्थित "ईश्वर" उससे चोरीही कराता है। वस्तुतः उसे चोरीके बुरे प्रभावोंका अनुभव कराना उसी तरह इष्ट है जैसे बच्चोंको दीपकसे जलनेका अनुभव कराते हैं। अभी स्पष्टतः उसने विकासकी ऊंची छतपर चढ़नेकी सबसे नीचे वाले डंडेको ही तय नहीं किया है। इस सीढ़ीपर चढ़नेमें हर डंडे पर कदम रखकर बढ़नेमें ही आपका सुभीता है। बहुतेरे दो एक डंडे छोड़ते लम्बे डग रखते चढ़ते हैं, पर कहीं उस उद्योगमें फिसले तो बहुत दिन का खाया पिया निकल गया, सारी की करायी मेहनत मिट्टीमें मिल गयी और फिरसे उन्हें चढ़ना आरंभ करना पड़ा।*

यह तो हुई दो एक डंडे छोड़ने वालेकी बात और जो कई डंडे छोड़ कर ऊपर फांद कर पहुचने का दुस्साहस करते हैं, ऐसा गिरते हैं कि हड्डी पसलीका पता नहीं लगता†। अनुभवकी पाठशालामें डबल प्रमोशनकी आशा नहीं। छोड़े या भूले हुए पाठ को बिना पढ़े आगे बढ़े कि स्वभाव शिक्षकने थप्पड़ और तमाचे जड़े। 'आगे दौड़' 'पीछे छोड़' का हौसला पस्त हो गया। स्वभावकी पाठशाला छोड़ कर कोई कहीं जा भी नहीं सकता, यही बन्धन है। इसी लिए कदम फूंक फूंक कर रखनेमें ही कुशल है। बुद्धिके प्रकाश भरही बढ़ना है। अन्तरात्मा—मनोदेव (कांशंस)—जो कुछ कहिये चेतावनी देता रहता है। 'सावधान सावधान, अन्धकारे प्रवेष्टव्यं दीपो यत्नेन धार्य्यताम्।' जीवात्मा अपने संकल्पसे ही काम लेता है, अपनी गति और वेगके विषयमें स्वाधीन है, परन्तु साथही अबभी इतनी उन्नत दशामें भी, एकदम निःसहाय नहीं छोड़ा गया है। अन्तरात्मा अब भी उसे उचित इशारोंसे राह पर लगाता ही रहता है। उसकी सहायता करता ही रहता है। चोर डाकू और हत्यारेका अन्धकारमें भी साथ देता है। और महापातकी से जन्म जन्मान्तरमें भी प्रायश्चित करा कर ही छोड़ता है। यहां महापातकी वही समझा जाना चाहिये जिसका विकासकी नसेनीसे महापतन हुआ है।

---

* गीतामें योगभ्रष्टका उदाहरण प्रसिद्ध है—
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो ऽभि जायते
"अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।"

† रामराज्य में शूद्र की तपस्या उदाहरण है।

'पातक' वही पाप कर्म्म हैं, जो मनुष्यके अधः पतनका कारण होते हैं 'पतित' गिरे हुओंका नाम है। 'धर्मात्मा' वही है जिसकी ऊर्ध्व गति अनवरुद्ध है, जिसकी ऊपरकी यात्रा बिना रुकावटके होती है अथवा शीघ्र होती जाती है, धर्म्म वा अधर्म्म और पाप और पातककी यही व्याख्या वैज्ञानिक रीतिसे पूरी उतरती है। यों तो अपनी अपनी समझके अनुसार इन शब्दोंका प्रयोग जीवनकी घटना-सूचीमें और तथ्योंके विस्तारमें भिन्न भिन्न दृष्टियोंसे अनेक अर्थोंमें आया है। इसका कारण भी स्पष्टही है। विकासकी असंख्य डंडोंवाली नसेनी पर चढ़ते हुए संख्यातीत मनुष्योंका अनुमान कीजिये। जो बीसवीं पर है, उसके लिए उन्नीसवीं पातक है, इक्कीसवीं पुण्यमयी है। परन्तु जो अभी पन्द्रहवीं पर ही है उसके लिए उन्नीसवीं ही चौगुनी पुण्यमयी है। इस तरह पाप पुण्य भी स्थिरांक नहीं हैं, सापेक्ष हैं। जो एक के लिए पाप हैं दूसरेके लिए पुण्य कार्य्य हो सकता है।

'कहीं पुण्य किये से बड़ा पाप होता है।

कहीं पाप किये से पुण्य आप होता है'—बनारसी

धर्माधर्मकी इस मीमांसासे स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी कसौटी अलग रखता है, प्रत्येकके लिए पाप पुण्यकी नाप अलग अलग है। प्रत्येक मनुष्यकी भलाई इसीमें है कि अपना धर्म पाले और दूसरेके फटेमें पांव न डाले, न किसी की देखा देखी अपने कर्तव्यको छोड़ अन्य के कर्तव्य करने लगे।

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मोभयावहः॥

* * * * *

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः
स्वकर्म्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवाः।" भ० गीता

* * * * *

पराया धर्म चाहे कैसा ही अच्छा हो उससे अपना गुण हीन ही धर्म अच्छा है। अपने धर्ममें मरना भी भला है पर अन्यका धर्म भयका कारण है। अपने अपने कर्म्ममें लगे रहनेसे मनुष्य सिद्धि पाता है। भगवानकी अर्चा जो अपने कर्तव्य पालनसे करता है सफल होता है। गीताके वाक्य उपर्युक्त बातोंकी पुष्टि करते हैं।

यह भी स्वाभाविक बात है कि मनुष्य जिन बातों को अपने लिए समझता है सबके लिए अच्छा समझने लगता है। इस भ्रममें अनेक मनुष्य अपने सुधार के बदले औरों के सुधारका ठेका ले लेते हैं। और खुदाई फ़ौजदार बन बैठते हैं। औरोंको उपदेश करना ही अपना कर्तव्य जानते हैं। खंडन-मंडनके झगड़े, साम्प्रदायिक मतभेद अधिकांश इसी भ्रमके फल हैं। विद्वानको यह गीताकी चेतावनी याद रखनी चाहिये।

"न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्म्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्"

* * * * *

"तानकृत्स्नविदान्मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।"

विद्वान् उपदेशकोंको यह उचित नहीं कि अज्ञानियोंको उनके मार्गसे विचलित करके अपने कठिन और न समझमें आने वाले उनके लिये अत्यन्त ऊंचे धर्ममें लगादें, जिससे वह किसी ओरके न रहे, न घरके न घाटके। उत्तम शिक्षक वही है जो कि प्रत्येक शिष्यकी योग्यता और समाई देख कर उतनी ही शिक्षा देता है जितनी वह दृढ़तासे ग्रहण करले। प्रारम्भिक कक्षा वालोंको सुबोध विषय बताता है और ऊंची कक्षावालोंको दुर्बोध विषय हृदयगम कराता है। ऐसे शिक्षकसे दोनों प्रकारके शिष्य अपनी अपनी योग्यताके अनुसार लाभ उठा सकते हैं।

—:o:—

भारतीय इतिहास सम्बन्धी खोज और उसका फल

[लेखक—श्रीयुत रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंन्दजी ओझा]

हिन्दू जातिका इतिहास प्रेम

यह बात निश्चित है कि मुसलमानोंके समयसे पूर्वका भारतीय इतिहास पहलेका लिखा हुआ नहीं मिलता और ऐसे विस्तीर्ण देशका, जिसमें अनेक स्वतंत्र राज्योंका उदय और अस्त होता रहा, शृंखलाबद्ध इतिहास एकत्र लिखा जाना संभव भी न था। तो भी यह निर्विवाद है कि यहांके लोगोंमें इतिहाससे प्रेम अवश्य था और भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न राज्योंका इतिहास संक्षेपसे या काव्योंमें लिखा गया था। भिन्न भिन्न वंशोंके राजाओंकी वंशावलियां तथा ऐतिहासिक घटनाएँ लिखी रहती थीं। विष्णु, भागवत, वायु, मत्स्य आदि पुराणोंमें सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओंकी प्राचीन कालसे लगाकर भारतके युद्धके पीछेकी कई शताब्दियोंतककी वंशालियां एवं नंद, मौर्य, शुंग, काण्व, आंध्र आदि वंशोंके राजाओंकी नामावलियां तथा प्रत्येक राजाके राजत्वकालके वर्षोंकी संख्या तक मिलती है। रामायणमें रघुवंशका और महाभारतमें कुरुवंशका विस्तृत इतिहास है। ईसवी सन्‌के प्रारंभके पीछेके समयके भी अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे गये थे। हर्षचरितमें थानेश्वरके बैसवंशी राजाओंका, गौडवहोमें कन्नौजके राजा यशोवर्मन्‌का, नवसाहसांकचरितमें मालवके परमारोंका, विक्रमांकदेवचरितमें कल्याणके चालुक्यों (सोलंकियों) का, पृथ्वीराज विजयमें सांभर और अजमेर के चौहानोंका, द्व्याश्रयकाव्य, कीर्तिकौमुदी, कुमारपालचरित आदिमें गुजरातके सोलंकियोंका और राजतरंगिणीमें कश्मीरपर राज्य करनेवाले भिन्न भिन्न वंशोंके राजाओंका इतिहास लिखा गया था। ऐसे ही धर्माचार्य्योंकी कुल परंपरा भी कुछ कुछ वृत्तांत सहित लिखी जाती थी। ये सब इस बातके प्रमाण हैं कि भारतवासी इतिहासप्रेमी अवश्य थे।

मुसलमानोंके समयमें इतिहासकी दशा

मुसलमानोंके समयमें राजपूतानेके सिवा बहुधा सब हिन्दूराज्य क्रमशः नष्ट हो गये। अनेक प्राचीन नगर, मंदिर, मठ आदि धर्मस्थान नष्ट कर दिये गये और अनेक प्राचीन पुस्तकालय अग्निकी आहुति बन गये। इस प्रकार अधिकतर प्रचीनग्रंथ एवं मंदिर, मठ, स्तूप आदिमें लगे हुए शिलालेखादि नष्ट हो गये और जो ग्रंथ बचने पाये वे मकानोंके तहखानों या दुर्गम स्थानोंमें छिपाकर रक्खे जाने लगे। मुसलमानोंके राज्य समयमें विद्याकी भी अवनति हुई। ऐसे समयमें जिनके पास पुस्तकें रह गईं वे लोग जातिद्वेष, धर्मद्वेष और परस्परके विरोधके कारण, चाहें वे उनके काममें न भी आवें अथवा वे उनको समझ भी न सकें तो भी उनको गुप्त रखने और दूसरों को उनके लाभसे वंचित रखनेमें अपना गौरव समझने लगे। कई पुस्तकें कुटुम्बकी संपत्तिके विभाग करनेमें इस तरह बांटी गईं कि एक ही पुस्तकके पत्रों के दो या तीन हिस्से होकर वे अलग अलग भाइयोंकी संपत्ति हो गईं। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि प्रत्येक पुस्तक को बीचमेंसे काटकर दो भाइयोंने प्रत्येक पत्रेका आधा आधा हिस्सा लिया। कितने ही ग्रंथ निरक्षर लोगोंकी संपत्ति होजानेसे रद्दीके रूपमें बेचे जाकर पंसारियोंकी दुकानोंमें पुड़िया बनानेके काममें आये और कई विधवा स्त्रियोंने उन्हें गलाकर उनकी कुट्टीसे नाज आदि भरनेकी हलकी टोकरियां बनाईं। इस प्रकार भी कई पुस्तकें नष्ट हुईं और अबतक भी कहीं कहीं होती जाती है। ऐसी दशामें इस देशके बचेखुचे ग्रंथोंका सर्व साधारणके लिए तो होना न होना बराबरसा हो गया।

पुस्तकोंके अतिरिक्त भिन्न भिन्न धर्मावलंबियोंने धर्मबुद्धिसे अनेक मंदिर, गुफायें, स्तूप, मठ, स्तंभ, मूर्तियां, तालाब, बावडी आदि बनवाये थे, उनमेंसे जो मुसलमानोंसे बचने पाये उनमें या उनपर जो लेख खुदवाये थे वे भी इतिहासके अमूल्य साधन थे; परन्तु विद्याके ह्रासके साथ प्राचीन लिपियोंका पढ़ना लोग भूल गये, जिससे ई. स. की १० वीं शताब्दीके पूर्वके तो बहुधा सब शिला लेख निरुपयोगी हो गये इतना ही नहीं किंतु कहीं कहीं तो वे करामाती वस्तु समझे जाने लगे और यंत्रोंमें उनकी गणना हो जानेसे उनको जलसे धोकर उनकी मैल से मैला कुचैला बना हुआ जल बीमारों या प्रसूति पीडित स्त्रियोंके लिए दवा या शीघ्र प्रसूतिका साधन समझा जाने लगा, कई स्थानोंमें प्राचीन शिलालेख कुल्हाड़ियां घिसने, भंग या मसाला पीसने अथवा स्नान करने और औरतोंके पैर रगड़नेकी चौकियोंके तौर काममें लाने या तंबाकू आदि कूटनेकी ओखलियां बनानेके काममें लाकर नष्ट से कर किये गये। अथवा उनके टुकड़े कर मकानों या मंदिरोंकी सीढ़ियाँ या छबने बनानेमें या शहरपनाह, मकानों और बावड़ियोंकी चुनाई या नीवोंमें मामूली पत्थरके स्थानमें, काममें लाये गये, जिसके कई उदाहरण मिल चुके हैं। इसतरह बर्बाद किये हुए कई शिला लेख मैंने वहांसे निकलवाकर उदयपुर और अजमेरके अजायब घरोंमें रक्खे हैं।

भिन्न भिन्न वंशोंके कई राजाओं तथा सामंतों ने धर्मबुद्धिसे ब्राह्मणों, साधुओं, मंदिरों, मठों आदिको गांव, कुंए, खेत आदि दानमें दिये थे उनको चिरस्थायी रखनेके विचारसे उनकी सनदें तांबेके पत्रोंपर खुदवाकर दी गई थीं। उनमें से कईएकमें भूमिका परिमाण और उसकी सीमा आदिके अतिरिक्त दान देनेवालेके पूर्वजोंकी वंशावली, कई ऐतिहासिक घटनाओंके साथ खुदी हुई रहती थीं। परंतु इतिहासके इन अमूल्य साधनोंका भी भूमिके अंदर गड़े रहने, व्यापारियोंके यहां गिरवी रक्खे रहने अथवा गुप्त रक्खे होनेसे इतिहास प्रेमियोंके लिए तो होना न होना बराबर सा ही था। यदि कोई प्राचीन ताम्रपत्र मिल भी गया तो उसकी लिपि पढ़ी न जानेसे वह भी कुछ काम नहीं दे सकता था। कई प्राचीन ताम्रपत्र तांबेके तौर बेच देनेसे ठठेरोंने उनके बर्तन बना डाले।

ऐसे ही प्राचीन कालके अनेक राजाओंके सोने, चांदी और तांबेके सिक्के भी कभी कभी मिल जाते थे। परंतु अधिक प्राचीनोंकी तो लिपि पढ़ी न जानेसे और सामान्य रूपसे सिक्कोंकी कदर न रहनेसे सोने और चांदीके सिक्के बहुधा गलाये जाकर उनसे जेवर बनते रहे। इन्हीं कारणोंसे तांबेके मनों सिक्के तांबेके भाव बिककर बर्तन बनानेके काममें आये और अबतक बहुतसोंकी यही दशा होती है। यदि कोई प्राचीन सिक्का किसी ब्राह्मणके हाथमें आया तो उसपरके प्राचीन अक्षर सिद्धिदायक मंत्र समझे जाते हैं। उसको घरमें देवपूजाके सिंहासन में स्थान दे दिया जाता है और देवमूर्तियोंके समान प्रतिष्ठाका पद उसे मिल जाता है।

विद्याके ह्रासके साथ हमारे इतिहासकी बची खुची सामग्रीकी यही दशा मुसलमानोंके राजत्व-काल तक बनी रही। कोई १७० वर्ष पूर्व इस देशके प्राचीन इतिहासकी यह दशा हो गई थी कि विक्रम बापारावल, भोज, सिद्धराज (जयसिंह) पृथ्वीराज, जयचंद आदि राजाओंके नाम किस्से कहानियोंमें सुननेमें आते थे; परंतु यह कोई नहीं जानता था कि वे कब हुए और उनके पहले उन वंशोंमें कौन कौनसे राजा हुए। भोजका इतिहास लिखने वाले बल्लाल पंडितको भी यह मालूम न था कि मुंज (वाक्पतिराज) सिंधुल (सिंधुराज) का बड़ा भाई था और उसके मारे जाने पर सिंधुराज को राज्य प्राप्त हुआ था; क्योंकि उक्त पुस्तकमें सिंधुराजके मरनेपर उसके छोटे भाई मुंज का राजा होना लिखा है। जब भोजके इतिहास लिखनेवाले को भी उसके वंशका कुछ भी ऐतिहासिक ज्ञान न

था तब सामान्य लोगोंमें उसकी क्या अवस्था होनी चाहिए यह सहजही अनुमेय है।

समय सदा एक रूपमें किसी वस्तुको रहने नहीं देता बल्कि सदा नई नई स्थिति उपस्थित करता रहता है। अकबर बादशाहकी नीति शाहजहां तक बनी रही परंतु औरंगजेबके मुगल सिंहासन छीनते ही समयने अपना रंग बदला और उससे अकबरकी राजनीतिका परित्याग कराकर उसे धर्मद्वेषमें प्रवृत्त किया और उसके जीतेजी मुगलोंके साम्राज्यकी जमी हुई नींव हिला दी और उसके मरते ही थोड़े ही समयमें उसे छिन्न-भिन्नकर धीरे धीरे अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाके मार्गको निष्कंटक कर दिया।

इतिहास सम्बन्धी खोजका प्रारम्भ।

इस देशपर अंग्रेज सर्कारका राज्य हो जानेपर देशभरमें शांति फैल गई। कलकत्ता अंग्रेज सरकारकी राजधानी बना और विद्याका सूर्य, जो कई शताब्दियोंसे अस्तसा हो रहा था, फिर उदय हुआ। पश्चिमी शैलीसे अंग्रेजीकी पढ़ाई शुरू होनेके साथ साथ संस्कृत और देशी भाषाओंकी पढ़ाई भी होने लगी। कई अंग्रेजोंने केवल विद्यानुरागसे संस्कृत पढ़ना शुरू किया। सर विलियम जोन्सने 'शाकुंतल नाटक' का अंग्रेजी अनुवाद प्रसिद्ध किया, जिससे कविकुलगुरु कालिदासको यूरोपके सर्वोत्तम कवि 'शेक्सपिअर' का पद मिला। इतना ही नहीं किन्तु हिन्दुओंका साहित्य कितनी उच्चकोटिका है यह संसारको मालूम हो गया और धीरे धीरे यूरोपमें भी संस्कृतका पठनपाठन शुरू हुआ।

ई. स. १७८४ में सर विलियम जोन्सके यत्नसे एशियाके इतिहास, शिल्प आदिके खोजके लिए कलकत्तेमें 'एशियाटिक् सोसायटी आफ बंगाल' नामकी समिति स्थापित हुई। तबसे "भारतीय इतिहासकी खोज" का प्रारम्भ हुआ। कई अंग्रेज और देशी विद्वानोंने समितिका उद्देश सफल करनेकेलिए लेख लिखे, जो ई. स. १७८८ में 'एशियाटिक रिसर्चेज़' नामक ग्रंथमालाकी पहली जिल्द में प्रकाशित किये गये। ई. स. १७९७ तक उक्त ग्रंथमालाकी ५ जिल्दें प्रकाशित हुईं। उनसे यूरोपके शिक्षित वर्गमें बड़ी भारी जागृति हुई और उनका एक नया संस्करण भी ई. स. १७९८ में इंग्लेंडमें चुपकेसे छप गया। उक्त पुस्तकोंकी मांग यहांतक बढ़ी कि पांच छः बरसोंमें उनके दो और संस्करण छप गये। ऍम्. ए. लॅबांम नामक विद्वान् ने 'रिसर्चेज एशियाटिक्स' नामसे उनका फ्रेंच अनुवाद भी छाप डाला, जिसकी बहुत कुछ प्रशंसा हुई। ई. स. १८३६ तक उक्त ग्रंथमाला की २० जिल्दें छप गईं। फिर उसका छपना बंद हो गया। ई. स. १८३२ से 'जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' निकलना शुरू हुआ, जो अबतक शिक्षितवर्गकी उत्तम सेवा कर रहा है।

इस प्रकार 'एशियाटिक् सोसाइटी ऑफ बंगाल' के द्वारा एशियाकी प्राचीन खोजके विषयमें यूरोपमें भी जागृति हुई और उसी उद्देशसे ई. स. १८२३ के मार्चमें लंडन नगरमें 'रॉयल् एशियाटिक् सोसाइटी' नामक समाज स्थापित हुआ और क्रमशः उसकी शाखायें सीलोन (लंका) तथा बंबईमें भी स्थापित हुई। ऐसे ही समय-समयपर जर्मनी, फ्रांस, इटली, रशिया आदि यूरोपके अन्य देशोंमें तथा अमेरिका, जापान आदिमें भी एशिया सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयोंकी खोजके लिए समाज स्थापित हुए, जिनके 'जर्नलों' (सामयिक पुस्तकों) में भारतवर्षके प्राचीन खोज-सम्बन्धी विषयोंपर अनेक लेख प्रकाशित होने लगे। यूरोपके कई विद्वानोंने चीनी, तिब्बती, पाली, अरबी, फारसी आदि भाषायें पढ़कर उनमेंसे जो कुछ सामग्री एशिया और भारतवर्षके इतिहास आदि पर प्रकाश डालनेवाली थी उसे एकत्र करके प्रकाशित की।

प्राचीन लिपियोंका पढ़ा जाना

'एशियाटिक् सोसाइटी आफ बंगाल' के द्वारा प्राचीन खोजकी जागृति होनेपर कई विद्वान् अपनी अपनी रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न विषयोंकी खोजमें लगे। कितने ही विद्वानोंने यहांकी ऐतिहासिक खोजमें लगकर प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदिका टटोलना शुरू किया। इस प्रकार हमारे यहांकी प्राचीन लिपियोंपर विद्वानोंकी दृष्टि पड़ी। ई. स. १७८५ में चार्ल्स विल्किन्सने दीनाजपुरी किलेके बदाल स्थानके स्तंभपर बंगालके राजा नारायणपालके समयका लेख पढ़ा और पंडित राधाकांत शर्माने देहलीके फीरोजशाहकी अशोकके लेखवाली लाटपर खुदे हुए अजमेरके चौहान राजा बीसलदेव (विग्रहराज) के वि. सं. १२२० के तीन लेख पढ़े। इन लेखोंकी लिपिनागरी होनेसे वे आसानीसे पढ़े गये। उसी वर्षमें मौखरी वंशी राजा अनंतवर्मन्के नागार्जुनी गुफाके लेखोंका पता लगा, जिनकी लिपि गुप्त लिपिसे मिलती हुई होनेके कारण उनका पढ़ना कठिन प्रतीत हुआ, तो भी चार्ल्स विल्किन्सने ई. स. १७८५ से १७८९ तक श्रमकर उन्हें पढ़ लिया। इससे गुप्त लिपिकी आधी वर्णमालाका ज्ञान हो गया। इसी तरह दक्षिणमें डाक्टर बी. जी. बॅबिंगटन्ने मामल्लपुरम्के कितने ही संस्कृत और तामिल भाषाके पुराने लेख पढ़कर ई. स. १८२८ में उनकी वर्णमालायें प्रसिद्ध कीं। ई. स. १८३३ में वाल्टर इलियट्ने प्राचीन कनाडी लेखोंको पढ़कर उनकी वर्णमाला प्रकाशित की। ई. स. १८३४ में कप्तानट्रायर और डाक्टर मिलने मिलकर इलाहाबादके अशोकके लेखवाले स्तंभपर खुदा समुद्रगुप्तका लेख पढ़ा। ई. स. १८३५ में डब्ल्यू. एच. वाथनने वलभीके राजाओंके दानपत्रोंको पढ़ा और ई. स. १८३७-३८ में जेम्स प्रिंसेपने देहली (मिहरोली), कहाऊं, एरण और गिरनार (जूनागढ़) आदिके गुप्त लिपिके लेख पढ़े। इस प्रकार ट्रायर, मिल और प्रिंसेपके श्रमसे चार्ल्स विल्किन्सकी गुप्त लिपिकी अधूरी वर्णमाला पूरी होगई और गुप्तोंके समयके लेख, दानपत्र और सिक्कोंके पढ़नेमें सुगमता हो गई। फिर जेम्स प्रिन्सेपने अशोकके लेखोंकी ब्राह्मी (पाली) लिपिके पढ़नेके उद्योगमें लगकर इलाहाबादके स्तंभपरके अशोकके प्रत्येक अक्षरको गुप्तलिपिसे मिलाना और जो मिलता गया उसको वर्णमालामें स्थान देना शुरू किया। प्रिन्सेपके असाधारण श्रमसे ब्राह्मी लिपिके अधिकतर अक्षर पहिचानमें आ गये और क, ज, प तथा व अक्षर पादरी जेम्स स्टिवन्सन्ने पहिचाने जिससे ब्राह्मी लिपिकी वर्णमाला भी पूर्ण हो गई।

राजस्थानके इतिहासके पिता कर्नल जेम्स टॉडने विद्यानुरागसे ऐतिहासिक पुस्तकों आदिके अतिरिक्त एक बड़ा संग्रह प्राचीन ग्रीक (यूनानी) शक, पार्थियन और कुशनवंशियोंके सिक्कोंका भी किया था। ऐसे कितने ही सिक्के सर अलेग्जंडर, बर्न आदि अन्य विद्वानोंने भी संग्रह किये थे। उनकी एक तरफके प्राचीन ग्रीक (यूनानी) लिपिके लेख तो पढ़े जाते थे, परन्तु दूसरी ओरके खरोष्ठी लिपिके, जो ईरानकी प्राचीन राजकीय लिपि 'अरमइक्' से निकली थी और जो फारसीकी नाईं दाहिनी ओरसे बाईं ओरको पढ़ी जाती थी, लेखोंके पढ़नेका कोई साधन न था। मि. मेसनको अफगानिस्तानमें खोज करते समय यह मालूम हो गया कि जो लेख एक तरफ ग्रीक लिपिमें हैं उसीका आशय दूसरी ओर खरोष्ठ लिपिमें है। इस अनुमानके सहारे प्रिन्सेपने बड़े श्रमके बाद उक्त लिपिके १७, मि. नारिसने ६ और, जनरल कनिंगहम ने ११ अक्षरोंको पहचानकर खरोष्ठी वर्णमालाको भी पूर्ण कर दिया। इस प्रकार प्रिन्सेप आदि विद्वानोंके महान् श्रमसे प्राचीन लिपियोंकी वर्णमालायें मालूम हो गईं। इससे प्राचीन खोजमें बड़ी उन्नति हुई। क्योंकि प्राचीन और सबसे अधिक उपयोगी ऐतिहासिक साधनों (शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदि) का पढ़ना सरल हो गया। ई. स.

१८९४ तक समस्त भारतवर्षकी प्राचीन* लिपियोंके पढ़नेके लिए कोई पृथक पुस्तक नहीं बनी थी अतएव उक्त समयमें मैंने 'प्राचीन लिपिमाला' नामक पुस्तक हिन्दी भाषामें प्रकाशित की, जिससे प्राचीन लिपियोंके पढ़नेवालोंके लिए अवश्य सुगमता हुई। आठ वर्षके भीतरही उसकी सब प्रतियां बिक गईं। बड़ी कीमत देनेपर भी उसकी कोई प्रति न मिलती देखकर मैंने उसका बृहत् संस्करण छपवाना शुरू कर दिया है जो शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा।

सरकारकी तरफसे 'प्रचीन शोधविभागका' कायम होना

प्रारम्भमें भारतवर्षकी प्राचीन खोजके सम्बन्ध में जो कुछ कार्य होता था वह विद्वानों या समाजों के द्वाराही होता था। 'ईस्ट इंडिया कंपनी'की सरकारका इस तरफ कुछ भी ध्यान न था। ई. स. १८४४ में 'रायल एशियाटिक सोसायटी'ने सरकारी तौरसे भी इस उपयोगी कार्यका होना आवश्यक समझकर सरकारकी सेवामें निवेदन किया और ई. स. १८४७ में लार्ड हार्डिंजके प्रस्तावपर 'बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स' ने भारतवर्षके प्रचीन स्थानोंका अन्वेषण करने, उनके चित्र तैयार करने तथा उनका विवरण लिखनेके लिए खर्चकी मंजूरी दी, परन्तु ई. स. १८६१ तक उसका कुछ भी वास्तविक फल न हुआ। ई. स. १८६१ में संयुक्त प्रदेशके चीफ इंजिनियर कर्नल ए. कनिंगहमने इस विषयकी योजना तैयारकर भारतके गवर्नर जनरल लार्ड कनिंगकी सेवामें पेशकी, जो स्वीकृत हुई, और जिससे सरकारकी तरफसे प्राचीन खोजके लिए 'आर्कियालाजिकल् सर्वे' नामक महकमा कायम हुआ, जिसके अध्यक्ष वही कनिंगहम नियत हुए। इस प्रकार सरकारके इस कार्यको हाथमें लेनेसे प्राचीन खोजके काममें और भी उन्नति हुई।

* यहांपर प्राचीन लिपियोंके पढ़े जानेका हाल बहुत ही संक्षेपसे लिखा गया है। जिनको विशेष रूपसे जाननेकी आकांक्षा हो वे मेरी बनाई हुई 'प्राचीन लिपिमाला' के पृष्ठ १३ से १७ तक देखें।

मेजर जनरल कनिंगहम ने उत्तरी और डाक्टर बर्जेस्ने पश्चिमी तथा दक्षिणी भारतमें प्राचीन खोज सम्बन्धी अन्वेषण करके कई उत्तम रिपोर्टें छापीं, जिनकी बहुत कुछ प्रशंसा हुई।

ई. स. १८७२ से डाक्टर बर्जेसने 'इंडियन एंटिकेरी' नामक भारतीय प्राचीन खोजका मासिकपत्र निकालना प्रारम्भ किया जो अबतक चल रहा है और जिसमें प्राचीन विषयोंके अतिरिक्त अनेक शिलालेख और ताम्रपत्रादि छप चुके हैं। ई. स. १८७७ में गवर्नमेंटके लिए मेजर जनरल कनिंगहमने अशोकके समयके समस्त लेखोंको एक पुस्तक प्रसिद्ध की और सन् १८८८ में जे. एफ. फ्लीट (डाक्टर) ने गुप्तों तथा उनके समकालीन राजाओंके लेखों और दानपत्रों की अत्युत्तम बृहत् पुस्तक तैयार की। सन् १८८८ से 'एपिग्रफिया इंडिका' नामक त्रैमासिक पुस्तकका छपना सरकारी 'आर्कियालाजिकल विभाग'की ओरसे प्रारम्भ हुआ, जिसमें केवल शिलालेख और दानपत्र प्रकाशित होते हैं। इस वक्त इसकी १३ वीं जिल्द छप रही है। प्राचीन खोजके लिए ये जिल्दें रत्नाकरके समान हैं।

प्राचीन खोजके प्रेमी लार्ड कर्जनने अपने शासन कालमें 'आर्कियालाजिकल'विभागकी विशेष उन्नति की और 'डाइरेक्टर जनरल आफ आर्कियालाजी' की अध्यक्षतामें भारतके प्रत्येक विभागके लिए अलग अलग सुपरिंटेंडेंट नियत किये। इतना ही नहीं, किन्तु प्राचीन स्थानोंकी संरक्षाका भी पूरा प्रबन्ध कर दिया। तबसे प्राचीन खोजमें इस विभागने पहलेसे भी अधिक अच्छा काम किया है।

प्राचीन पुस्तकोंकी खोज और उनका संग्रह.

इसी तरह सरकारने बहुधा भारतके प्रत्येक विभागमें संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, कनाडी, तामिल, आदि भाषाओंकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंकी खोजकर उनके विषयकी रिपोर्ट प्रकाशित करने तथा जो प्राचीन पुस्तकें मिल सकें उनको खरीदकर संग्रह करनेका कार्यभी शिक्षाविभाग

के द्वारा करानेका प्रबन्ध किया। इससे अनेक अलभ्य पुस्तकोंका संग्रह होगया। ऐसे अनेक संग्रहों की कुछ कुछ विवरण सहित सूचियां भी तैयार हो गई और होती जाती हैं। यूरोपके भिन्न भिन्न राज्यों एवं अमेरिका आदिमें भी यहांकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रह करनेका उत्साह बढ़ा और वहां भी भेटोंसे या गहरे मूल्यसे खरीदनेसे अनेक बड़े बड़े संग्रह हो गये। उनमेंसे भी कई एककी विवरण सहित उत्तम सूचियां छप चुकी हैं और छपती जाती हैं।

प्राचीन पुस्तकोंके संग्रहोंमेंसे उत्तम उत्तम पुस्तकोंको छपवाकर प्रसिद्ध करनेका प्रशंसनीय कार्य पहले पहल 'एशियाटिक् सोसाइटी आफ बंगालने' प्रारम्भ किया और उसकी 'बिब्लिओथेका इंडिका' नामक ग्रंथमालामें अनेक ग्रंथ छप गये हैं और छपते जाते हैं। ऐसेही बंबईकी गवर्नमेंट, माइसोर, ट्रावनकोर, बड़ौदा आनंदाश्रम (पूना) आदिकी संस्कृत ग्रंथमालाओंमें एवं काशीके 'पण्डित' पत्र आदिमें अनेक ग्रंथ छप चुके हैं। बंबईके सुप्रसिद्ध 'निर्णयसागर' यंत्रालयके उत्साही मालिक ने 'काव्यमाला' तथा अनेक संस्कृत ग्रंथ बड़ी शुद्धताके साथ छापकर प्रसिद्ध किये हैं। कितनेही दूसरे यंत्रालयों तथा कई व्यवसायी पुरुषोंनेभी अनेक ग्रंथोंको छापकर प्रसिद्ध किया है। अमेरिकासे 'हावर्ड ओरिएंटल सीरीज' और इंग्लैण्डकी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय)से 'एनेकडोटा आक्सोनिएन्सिआ' नामक ग्रंथावलियां निकल रही हैं। ऐसेही इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स, हालेंड, रशिया आदि यूरोपके देशोंकी समितियों, पुस्तकप्रकाशकों या विद्वानोंकी ओरसे अनेक अलभ्य पुस्तकें छप चुकी हैं और अनेकोंके यूरोपकी अंग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद भी छप चुके हैं।

प्राचीन वस्तुओंके संग्रहके म्यूज़ियम

प्राचीन वस्तुओंकी खोजके साथही साथ भिन्न भिन्न समितियों तथा सरकारने प्राचीन शिलालेख दानपत्र, सिक्के, मूर्तियां तथा शिल्पके उत्तम उत्तम नमूने आदिका संग्रह भी किया है। ऐसी वस्तुओं के बड़े संग्रह बंबई (एशिआटिक् सोसाइटीका) कलकत्ता (इंडिअन म्यूजिअम और बंगाल एशिआटिक् सोसाइटीका), मद्रास, नागपुर, अजमेर, मथुरा, लाहोर, पेशावर, लखनऊ आदिके म्यूज़िअमोंमें सुरक्षित हैं।

देशी राज्योंमें प्राचीन शोधकी जागृति

कितनेही देशी राज्योंमें प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रह तो पहलेसे ही थे। जब सरकार की तरफसे प्राचीन खोजका प्रशंसनीय कार्य होने लगा, तब कितनेही विद्याप्रेमी देशी राज्योंने भी अपने यहां प्राचीन खोज सम्बन्धी कार्यालय स्थापित किये। भावनगर दरबारने अपने पंडितोंके द्वारा काठियावाड, गुजरात और राजपूतानेके अनेक शिलालेख तथा दानपत्र संग्रह कराकर उन में से कितनेही तो पुस्तकाकार प्रकाशित किये। काठियावाडके पोलिटिकल एजंट कर्नल वाटसन् का प्राचीन वस्तुओंका प्रेम देखकर काठियावाडके राजाओंने मिलकर राजकोटमें 'वाटसन् म्यूजिअम' स्थापित किया, जिसमें कई प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, सिक्कों और ऐतिहासिक हस्तलिखित पुस्तकोंका उत्तम संग्रह है। माइसोर राज्यने केवल वस्तुओंका संग्रह ही नहीं किया है बल्कि प्राचीन खोजके लिए आर्कियालाजिकल विभाग कायम कर अपने विस्तृत राज्यमें मिलनेवाले हजारों शिलालेखों तथा दानपत्रोंको 'एपिग्राफिया कर्णाटिका' नामसे कई जिल्दोंमें प्रकाशितकर पुरातत्ववेत्ताओंके लिए बड़े महत्वका काम किया है। चंबा राज्य (पंजाबमें) ने 'भूरिसिंह म्यूजिअम' में अनेक शिलालेख और दानपत्र संग्रहकर प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा. फोजलके द्वारा 'एंटिक्विटीज़ आफ दि चंबा स्टेट' नामक अमूल्य पुस्तकमें उन्हें प्रकाशित करवाया है। ट्रावनकोर तथा हैदराबाद राज्योंने भी अपने यहां प्राचीन खोजका प्रशंसनीय कार्य प्रारम्भ कर दिया है। उदयपुर, झालरापाटन, ग्वालियर, धार, भोपाल, बड़ौदा, जूनागढ़ आदि कई राज्योंमें प्राचीन लेखादि वस्तुओंका संग्रह होता जाता है।

ऐतिहासिक सामग्रीके* विभाग।

अंग्रेज सरकारकी उदार सहायता, भिन्न भिन्न संस्थाओं तथा यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान तथा हमारे यहांके अनेक विद्वानोंके श्रमसे अबतक भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी जो सामग्री एकत्र हुई है उसके निम्नलिखित चार विभाग किये जा सकते हैं:—

(क) हमारे यहांकी प्राचीन पुस्तकें।
(ख) यूरोप, चीन, तिब्बत और सीलोन (लंका) वालोंकी तथा मुसलमानोंकी लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें।
(ग) प्राचीन शिलालेख और दानपत्र।
(घ) प्राचीन सिक्के, मुद्रा तथा शिल्प।

(क) हमारे यहांकी प्राचीन पुस्तकें।

(१-२) रामायण और महाभारत—इनमें क्रमशः रघु और कुरुवंशका इतिहास, जो पुराणोंमें संक्षेपसे मिलता है, विस्तारके साथ लिखा गया है, इतनाही नहीं किन्तु इनसे इनके लिखे जानेके समयकी इस देशकी दशा, लोगोंकी सामान्य स्थिति, धर्माचरण, युद्धप्रणाली आदि अनेक बातों का पता चलता है।

(३) पुराण—जिन प्राचीन राजाओंके नाम अबतकके मिले हुए प्राचीन शिलालेखादिमें नहीं मिलते उनकी नामावलियां पुराणोंमेंही मिलती हैं। १८ पुराणोंमेंसे बहुधा प्रत्येकमें कुछ वंशावलियां मिल ही जाती हैं, परन्तु विष्णु, भागवत, वायु और मत्स्यमें वे विशेष रूपसे मिलती हैं। छपे हुए भविष्य पुराणका 'प्रतिसर्ग पर्व' नवीन बना हुआ है और प्राचीन इतिहासके लिए सर्वथा निरुपयोगी है।

(४) राजतरंगिणी—इसमें कश्मीरका प्राचीन कालसे लगाकर अकबरके कश्मीर-विजय करने तकका श्रृंखलबद्ध इतिहास है। इसका प्रथम खंड अमात्य चंपकके पुत्र कल्हणने ई. स. ११४८ में लिखा, जिसमें गोनंदसे लगाकर जयसिंह तक का वृत्तान्त है। दूसरा खंड ई. स. १४१२ में जोनराजने लिखा, जिसमें जहांसे कल्हणने छोड़ा वहां से लगाकर कोटाराणी तकका, जिसके साथ कश्मीरके हिन्दू राज्यकी समाप्ति हुई और कुछ मुसलमानोंका इतिहास है। ई. स. १४७७ में श्रीवर पंडितने तीसरा और उसके पीछे प्राज्यभट्टने चौथा खंड लिखा था।

(५) हर्षचरित—कादंबरीके कर्ता प्रसिद्ध बाणभट्टने ई. स. की सातवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें इस गद्य काव्यकी रचना की। उसमें थानेश्वरके बैस वंशका, जिसमें प्रसिद्ध विद्वान और विजयी राजा हर्ष (हर्षवर्धन) हुआ था, इतिवृत्त है।

(६) गौडवहो—ई. स. की आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें कवि वाक्पतिराजने इस प्राकृत काव्यकी रचना की। इसमें कन्नौजके [मौखरी वंशी] राजा यशोवर्मन्‌की गौड़देशपरकी चढ़ाई तथा वहांके राजाके मारे जानेका वर्णन है।

(७) मुद्राराक्षस—ई. स. ८६० के आसपास विशाखदत्त पंडितने गुणाढ्यकी 'बृहत्कथा' के आधारपर यह नाटक रचा, जिसमें मौर्य चंद्रगुप्तके राज्य पाने और नन्द वन्शके नष्ट होनेका हाल है।

(८) नवसाहसांकचरित्र—ई. स. १००० के आसपास पद्मगुप्त (परिमल) कविने इस मनोहर काव्यको रचा। इसमें वाक्पतिराज (प्रथम) से सिंधुराज (नव सहसांक) तक, मालवेके परमारोंका इतिहास है।

* 'नागरी प्रचारिणी सभा' (बनारस) के लिए मैंने ई. स. १६०८ के प्रारम्भमें 'भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी सामग्री, नामक लेख लिखा था जो उक्त सभाकी उस वर्षकी पत्रिका की भिन्न भिन्न तीन संख्याओंमें प्रकाशित हुआ था। उसमें और कुछ बढ़ाकर ई. स. १९११ में मैंने उसको अलग पुस्तकाकार भी छपवा दिया है। उसमें ऐतिहासिक सामग्रीका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। अतएव इस लेखमें उस का संक्षेपसे दिग्दर्शन किया गया है।

(९) विक्रमांकदेवचरित–ई. स. की ११ वीं शताब्दीके अन्तके आसपास प्रसिद्ध कश्मीरी पण्डित बिल्हणने इसे रचा। इसमें कल्याण (निज़ाम राज्यमें) के चालुक्य (सोलन्की) राजाओं का तैलपसे लगाकर विक्रमादित्य (छठे) तकका वर्णन है।

(१०) रामचरित—ई. स. की १२ वीं शताब्दी के प्रारम्भके आसपास संध्याकरनंदीने इसकी रचना की। इसमें बंगालके पाल वंशी राजा रामपालका चरित है।

(११) द्व्याश्रयकाव्य–ई. स. ११६० के आसपास प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्रने यह ग्रंथ लिखा। इसमें मूलराजसे सिद्धराज (जयसिंह) तक गुजरातके सोलंकियोंका इतिहास है।

(१२) कुमारपालचरित—ई. स. ११६० के आसपास उपर्युक्त आचार्य हेमचन्द्रने यह कृति कार्य लिखा। इसमें गुजरातके सोलंकी राजा कुमारपालका वृत्तान्त है

(१३) पृथ्वीराजविजय —ई. स. ११९० के आसपास कश्मीरी पंडित जयानक (जयरथ) ने इस काव्यकी रचना की। इसमें चाहमानसे लगाकर अजमेर और देहलीके अंतिम हिन्दु सम्राट पृथ्वीराज तक चौहानोंका इतिहास है।

(१४) कीर्तिकौमुदी —ई. स. १२२५ के आसपास गुजरातके सोलंकी राजाओंके पुरोहित सोमेश्वर कविने यह काव्य बनाया। इसमें मूलराज से लगाकर वीरधवल,तकका गुजरातके सोलंकियों का वृत्तान्त और मन्त्री वस्तुपालका चरित है।

(१५) सुकृतसंकीर्तन— ई. स. १२२८ के करीब अरिसिंह पंडितने इसे रचा। इसमें गुजरातके चापोत्कट (चावडा) वंशके संस्थापक वनराजसे भुभट (सामंतसिंह) तकके चावडावंशी राजाओंकी वंशावली, मूलराजसे वीरधवल तकका सोलंकियोंका इतिहास और मंत्री वस्तुपालकाचरित है।

(१६) हम्मीरमदमर्दन—ई. स. १२२९के आसपासजैन साधु जयसिंहने यह नाटक बनाया। इसमें गुजरातके राजा वीरधवलके समयकी कई एक ऐसी ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख मिलता है जिनका ब्यौरा अन्यत्र नहीं मिलता।

(१७) प्रबंधचिन्तामणि—ई. स. १३०४ में जैन साधु मेरुतंगने इसको बनाया। इसमें गुजरातके चावडों तथा सोलंकियोंके इतिहासके अतिरिक्त विक्रम कालिदास सिद्धसेनदिवाकर शालिवाहन लाखाक (कच्छका राजा लाखा) ' मुंज, राजशेखर माघ, धनपाल, सीता पंडिता, वस्तुपाल, जगद्देव आदि कई राजाओं, सामतों, विद्वानों, साधुओं, मंत्रियों आदिके सुने हुए वृत्तान्तोंका संग्रह है।

(१८) चतुर्विंशति प्रबंध (प्रबंधकोष)—ई. स. १३४० में राजशेखर सूरिने देहलीमें यह गद्य ग्रन्थ रचा। इसमें भद्रबाहु, हेमसूरि (हेमचंद्र), सातवाहन, विक्रमादित्य, वत्सराज (उदयन) लक्ष्मणसेन आदि २४ पुरुषोंके चरित हैं।

(१९) कुमारपालचरित—ई. स. १४३५ में जिन मंडनोपाध्यायने इस गद्य ग्रंथको रचा था। इसमें ३६ राजवंशोंकी नामावली, गुजरातके चावडा वंशकी सोलंकियों का इतिहास है।

(२०) कुमारपालचरित—ई. स. १३६५ में जयसिंह सुरिने यह काव्य बनाया, जिसमें मूलराज से कुमारपाल तकका हाल है।

(२१) कुमारपालचरित—ई. स. की १४ वीं शताब्दीके आसपास चारित्रसुंदरगणिने यह काव्य लिखा। इसमें भी मूलराजसे कुमारपाल तकका इतिहास है।

(२२) वस्तुपालचरित—ई. स. १४४० में जिनहर्षगणिने इस काव्यको बनाया। इसमें मूलराजसे वीरधवल तकका सोलंकियोंका इतिहास और मंत्री वस्तुपालका चरित है।

(२३) हम्मीर महाकाव्य—ई. स. की १५ वीं शताब्दी के प्रारम्भके आसपास नयचन्द्रसुरिने इसे ग्वालियर के तंवर राजा वीरमके दरबारमें रहनेके समय बनाया। इसमें चौहानोंका इतिहास है

और रणथंभोरके प्रसिद्ध चौहान राजा हम्मीरका विशेष रूपसे वर्णनहै।

(२४) जगडूचरित—सम्भवतः ई. स. की १४ वीं शताब्दिके आसपास सर्वानन्द सूरिने इस काव्यकी रचना की। इसमें १३ वीं शताब्दिमें होनेवाले प्रसिद्ध दानवीर जगडूशाहका चरित है और प्रसंगवशात कच्छ गुजरात और सिंधके इतिहाससे सम्बन्ध रखने वाली कुछ घटनाओंका भी उल्लेख किया गया है।

(२५) बल्लालचरित—ई.स. १५११ में आनन्द भट्टने नवद्वीप (नदिया) के राजा बुद्धिमंतखांके समय में सिंहगिरि रचित 'व्यास पुराण' शरणदत्त कृत 'बल्लालचरित' तथा कालिदास नंदीकी 'जयमंगल गाथा के' आधारपर इसकी रचना की। इसमें हेमंतसेनसे वल्लालसेनतक, बंगालके सेनवंशी राजाओंका इतिहास है।

(२६) मंडलीक काव्य—ई. स. की १५ वीं शताब्दिके आस पास गंगाधर कविने इसे बनाया। इसमें गिरनारके यादव (चूड़ासमा) राजाओंका इतिहास है।

(२७) कंपरायचरितम् (मधुराविजयम्)—ई. स. की १४ वीं शताब्दि के उत्तरार्द्धमें विजयनगरके यादव राजा बुक्कके ज्येष्ठ पुत्र कंपण (कंपराय) की विदुषी रानी गंगादेवीने इस काव्य की रचना की। इसमें बुक्क और विशेष कर कंपरायका वृत्तान्त है। इस काव्यका पता दो वर्ष पूर्व त्रिवेंद्रम्के पंडितजी हरिहर शास्त्रीने लगाया था।

(२८) कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकम्—ई- स- १५९३ में जैन साधु जयसोमने यह काव्य लाहौरमें रचा इसामें बीकानेर राज्यके मंत्री कर्मचंद (कर्मचंद मेहता) के वंशका कर्मचन्द्रतकका विस्तृत इतिहास है। यह काव्य उदयपुर, जोधपुर और विशेषकर बीकानेर राज्यके इतिहासके लिए उपयोगी है।

(२९) अच्युतरायाभ्युदयकाव्यम्—ई- स- की १६ वीं शताब्दि में राजनाथ कविने इसे बनाया। इसमें राजा तिम्मसे लगाकर अच्युतराय तक को विजयनगर के तुलवा वंशी राजाओंका इतिवृत्त है।

(३०) मूषकवंशम्—दक्षिणके मूषक (मूषिक) देश पर राज्य करनेवाले मूषकवंशके राजाओंकी विस्तृत वंशावली इस काव्यमें मिलती है, जो पहले सर्वथा अज्ञात थी। ट्रावनकोर राज्य आर्कियालाजिकल विभागके विद्वान् और उत्साही सुपरिंटेंडेण्ट टी. ए. गोपीनाथराव एम. ए. ने दो वर्ष पूर्व इस अलभ्य ग्रंथ को प्रसिद्धकर इतिहास-प्रेमियोंके लिए नई सामग्री उपस्थित कर दी है।

उपर्युक्त संस्कृत और प्राकृतके ऐतिहासिक पुस्तकोंका पता लग गया है और भविष्यत्में ऐसे ऐसे और भी ग्रन्थोंके मिल जानेकी संभावना है।

ऐतिहासिक ग्रंथोंके अतिरिक्त भिन्न भिन्न विषयों की कितनीही पुस्तकोंमें कहीं प्रसंगवश और कहीं उदाहरणके निमित्त कुछ कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है। कई नाटक ऐतिहासिक घटनाओंके आधार पर रचे हुए मिलते हैं और कई काव्य, कथा आदिकी पुस्तकोंमें ऐतिहासिक पुरुषोंके नाम एवं उनका कुछ वृत्तान्त भी मिल जाता है, जैसे कि पतञ्जलिके महाभाष्यसे साकेत (अयोध्या) और मध्यमिका (नगरी, चित्तौडसे ७ मील उत्तरमें) पर यवनों (यूनानियों) के आक्रमणका पता लगता है। महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटकमें सुंगवंशके संस्थापक राजा पुष्यमित्रके समय उसके पुत्र अग्निमित्रका विदिशा (भेलसा) में शासन करना, विदर्भ (बराड) के राज्यके लिए यज्ञसेन और माधवसेनके बीच विरोध होना, माधवसेनका विदिशाके लिए भागना तथा यज्ञसेनके सेनापति द्वाराकैद होना, माधवसेनको छुड़ानेके लिए अग्निमित्रका यज्ञसेनसे लड़ना तथा विदर्भके दो विभाग कर एक उसको और दूसरा माधवसेनको देना. पुष्यमित्रके अश्वमेधके घोड़े का सिन्धु (सिन्ध; राजपूताने में) नदी के दक्षिणी तटपर यवनों (यूनानियों) द्वारा पकड़ा जाना, वसुमित्रका यवनोंसे लड़कर घोड़ेको छुड़ाना

और पुष्यमित्रके अश्वमेध यज्ञका पूर्ण होना आदि वृत्तान्त मिलता है। वात्स्यायन 'कामसूत्र' में कुंतल देशके राजा शातकर्णीके हाथसे क्रीड़ाप्रसंगमें उसकी रानी मलयवतीकी मृत्यु होना लिखा मिलता है। वराहमिहिरकी 'बृहत्संहिता' तथा बाणभट्टके 'हर्षचरित' में कई राजाओंकी मृत्यु भिन्न भिन्न प्रकारसे होने का प्रसंगवशात् उल्लेख है। अजमेर के चौहान राजा विग्रहराजके राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललितविग्रहराज नाटक' में विग्रहराज (वीसलदेव) और मुसलमानोंके बीचकी लड़ाईका हाल मिलता है। कृष्णमित्रके 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक से पाया जाता है कि चेदी देशके राजा कर्ण ने कलिंजरके चंदेल राजा कीर्तिवर्मनको फिर राज्यसिंहासन पर बिठलाया था। इस प्रकार के उल्लेख इतने अधिक मिलते हैं कि यदि उनका संग्रह किया जाय तो एक पुस्तक बन जाय।

ऐसे ही कई विद्वानोंने अपने ग्रन्थोंके प्रारंभ या अन्तमें अपना तथा अपने आश्रयदाता राजा या उसके वंशका वर्णन किया है। किसी किसीने अपनी पुस्तककी रचनाका संवत् तथा उस समयके राजाका नाम दिया है। कई नकल करनेवालोंने पुस्तकोंके अन्तमें नकल करनेका संवत् तथा उस समयके राजाका नाम भी दिया है, जैसे कि जल्हण पंडितने 'सूक्तिमुक्तावली' के प्रारम्भमें अपने पूर्वजों के वृत्तान्तके साथ साथ देवगिरिके कितने एक राजाओंका परिचय दिया है। हेमाद्रि पंडितने अपनी 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' के व्रतखंडके अन्तकी 'राजप्रशस्ति' में राजा दृढ़प्रहारसे लगाकर महादेव-तकके देवगिरि (दौलताबाद) के राजाओंकी वंशावली तथा कितनोंका ही कुछ कुछ हाल भी दिया है। ब्रह्मगुप्तने शक संवत् ५५० (ई. स. ६२८) में 'ब्राह्मस्फुटसिद्धांत' रचा। उस समय भीनमाल (मारवाड़में) का राजा चाप (चावडा) वंशी व्याघ्रमुख था, उसके लेखसे ऐसा ही पाया जाता है। ई. स. की सातवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें माघ कविने, जो भीनमाल का रहनेवाला था, 'शिशुपालवध' काव्य रचा, जिसमें वह अपने दादा सुप्रभ-देवको राजा वर्मलातका सर्वाधिकारी बतलाता है। वि. सं. १२८४ (ई. स. १२२८) के फाल्गुन मासमें सेठ हेमचंद्रने 'ओघनिर्युक्ति' की नकल करवाई। उस समय आघाटदुर्ग (आहाड़, मेवाड़ की पुरानी राजधानी) में जैत्रसिंहका राज्य था। ऐसी ऐसी अनेक घटनाओंका उल्लेख मिलता है।

ऐतिहासिक काव्यों आदिके अतिरिक्त कई वंशावलियोंकी पुस्तकें मिलती हैं; जैसे कि क्षेमेंद्र रचित 'नृपावली' (राजावली), जैन पंडित विद्याधर रचित 'राजतरंगिणी,' रघुनाथ रचित 'राजावली', ई. स. की १४ वीं शताब्दीकी हस्तलिखित नेपालकी तीन वंशावलियां तथा जैनोंकी कई एक पट्टावलियां आदि। यह भी इतिहासके मूल साधन हैं।

अबतक अनेक संस्कृत, प्राकृत आदि ग्रंथोंके संग्रहोंकी कुछ कुछ विवरण सहित १०० से अधिक रपोर्टें या सूचियां छप चुकी हैं, जिनमें से ९८ के आधार पर डॉक्टर ऑफ्रेक्टने 'केटेलागस केटेलागरम्' नामक पुस्तक तीन खंडोंमें छपवाई है। उसमें अकारादि क्रमसे प्रत्येक ग्रन्थकार और ग्रंथोंके नामोंकी सूची है। असाधारण श्रमसे बने हुए इस ग्रंथसे संस्कृत साहित्यके महत्वका अन्दाज़ा हो सकता है।

भाषाकी ऐतिहासिक पुस्तकोंमें हिन्दीकी रत्नमाला, पृथ्वीराज रासा, खुम्माण रासा, राणा रासा, रायमल रासा, हम्मीर रासा, वीसलदेव रासा, गुजरातीके कान्हड़दे प्रबंध, विमल प्रबन्ध आदि, और तामिल भाषाके कालवलिनाडपदु, कलिंगतुपरणी, विक्रम शीलनुला, राजराजनुला, कोंगुदेशराजाक्कल आदि से भी बहुतसे ऐतिहासिक वृत्तांतोंका पता चलता है। (इन पुस्तकोंके विशेष वर्णनके लिए 'भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी सामग्री' पृ. २७-३१ देखो)।

(ख) यूरोप, चीन, तिब्बत औ सीलोन (लंका) वालोंकी तथा मुसलमानोंकी लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें

यूरोपवालोंकी पुस्तकें।

यूनानके बादशाह सिकंदरने एशियाके पश्चिमी विभागको विजयकर ३२७ ईसवीके पहले पंजाब और सिंध पर हमला किया। इसका कुछ भी वृत्तान्त हमारे यहां पहलेका लिखा हुआ नहीं है। परन्तु उसका सविस्तर वृत्तान्त यूरोपियन लेखकोंकी पुस्तकोंमें मिलता है। इसी प्रकार हमारे इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली कई बातें उनकी पुस्तकोंमें मिलती हैं। ऐसे पुस्तकलेखकोंमें मुख्य यह हैं:—

१. हिराडोटस—ई. स. के पूर्वकी पांचवीं शताब्दीमें प्रसिद्ध यूनानी इतिहासलेखक हिराडोटसने इतिहासकी बृहत् पुस्तक लिखी। उसमें ईरानके बादशाह दारा (प्रथम) ने ई. स. पूर्व ५१० के आसपास पंजाब पर चढ़ाई करके उसका कितना ही अंश अपने राज्यमें मिला लिया, इसका तथा पंजाबका, जो दाराके राज्यके २० सूबोंमें से ऐसा समृद्धिवान् था कि वहांका खिराज सोनेमें पहुंचता था जब कि बाकीके सब सूबोंका चांदीमें आता था, वृत्तान्त मिलता है। इसका कुछ भी उल्लेख हमारे यहां पहलेका लिखा नहीं है।

२. केसिअस्—यह ईरानके बादशाह अर्तजर्कसिस्का वैद्य था। इसने ई. स. के पूर्व ४०० के आसपास भारतवर्षके सम्बन्धमें सुनी हुई बातोंके आधार पर इंडिका नामकी पुस्तक लिखी थी।

३. मेगेस्थिनीज़—सीरियाके बादशाह सेल्युकसने मंगस्थिनीज़ नामक विद्वान्को मौर्य राजा चंद्रगुप्तके दरबारमें अपना राजदूत नियत किया था। इसने पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें रहकर इंडिका नामक पुस्तक अपने व्यक्तिगत अनुभवसे लिखी थी, जो अब उपलब्ध नहीं है; परन्तु उसका अंशमात्र, जो अन्य लेखकोंने अपनी पुस्तकोंमें उद्धृत किया था, मिलता है। वहभी बहुत उपयोगी है।

४-८. एरिअन्, कर्टिअस, रूफस्, प्लुटार्क, डायाडारस् फ्राँटिनस्—सिकंदर बादशाहका वृत्तान्त भिन्न भिन्न १६ विद्वानोंने लिखा था, जिनके ग्रंथोंके आधारपर इन पांच विद्वानोंने उसकी पंजाब और सिंधकी चढ़ाईका हाल लिखा है। उनमेंसे एरिअन्की पुस्तक सबसे अच्छी मानी जाती है।

९. पेरिप्लस् ओफ दी इरीथ्रिअन् सी—ई. स. की पहली शताब्दीमें किसी यूनानी व्यापारीने यह पुस्तक लिखी थी (कर्ताका पता नहीं लगा), जिससे भारतवर्षके तत्कालीन व्यापारकी दशाका हाल मालूम होता है।

१०. टालमी—ई. स. की दूसरी शताब्दीमें मिसर देशके अलेक्ज़ेंड्रिआ नगरके रहनेवाले टालमी नामक विद्वान्ने भूगोलकी पुस्तक लिखी, जिसमें यहांके कई नगर, नदी आदिके नाम तथा उनके अक्षांश आदि दिये हैं। उसने क्षत्रप राजा चष्टन तथा सातवाहनवंशी पुलुमाई आदि राजाओंका उल्लेख भी किया है। उसने सुनी हुई बातोंके आधारपर ही यह पुस्तक लिखी थी।

११. मार्कोपोलो—वेनिस नगरका प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ई. स. १२९४ के आसपास दक्षिणमें आया था। उसकी यात्राकी पुस्तककी दूसरी जिल्दमें वहांका कुछ कुछ वृत्तान्त मिलता है।

१२. निकोलोडी क्राउंटी—इटली देशका निवासी निकोलो ई. स. १४२० के करीब दक्षिणके विजयनगरमें रहा था। उसने उक्त नगरका तथा वहांके राजा देवराज (दूसरे) का वृत्तान्त लिखा है, जो विजयनगरके इतिहासके लिए उपयोगी है।

१३. फर्नाओ नूनीज—इस पोर्चुगीज इतिहासलेखकने ई. स. की १६ वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें विजयनगर राज्यका इतिहास लिखा था।

१४. भिन्न भिन्न लेखक—समय समयपर अनेक यूरोपियन विद्वानोंने अपनी पुस्तकोंमें भारतवर्षके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा था उसका संग्रह मि.

मेकक्रिंडलने, एन्श्यंट इंडिया, नामक पुस्तकमें किया है। यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। (यूरोपियन लेखकोंकी उपर्युक्त १ से १४ तककी पुस्तकोंका विशेष हाल जाननेके लिए 'भरतवर्षके प्राचीन इतिहासकी सामग्री,' पृ-१३—३६ देखो)

[असमाप्त]

—:o:—

'का कहि तोहि पुकारूँ'

(गताङ्क के आगे)

[ले०—प्रोफेसर मनोहर लाल भार्गव, एम. ए.]

ज्वाला मुखी पहाड़ और कर्बन द्विओषिद

ज्वाला मुखी पर्वतोंके खुले हुए मुखोंमें से कर्बन द्विओषिद् निकलता रहता है और जब वह अपनी तेज़ी दिखलाते हैं तब तो इतना द्विओषिद् निकलता है कि हज़ारों लाखों पशु, पत्ती और अन्य प्राणी दम घुटकर मर जाते हैं। सं. १८८३ में आइस लेण्डके एक ज्वाला मुखी (Skaptar-Gokul) से इतनी ज़्यादा ज़हरीली गैस निकली (इसमें कर्बन द्विओषिद् और गंधक द्विओषिद् दोनों मिले हुए होंगे) कि एकदम भरमें ९००० आदमी, ११००० मवेशी, २८००० घोड़े और १९०००० भेड़ दम घुटकर मर गईं।

ज़मीनमें से यह गैस निकला करती है

एक एकड़ खाद दी हुई धरतीसे साल भरमें डेढ़ सौ मनसे अधिक कर्बन द्विओषिद् निकलता है। इसका कारण यह है कि धरतीमेंके जैव पदार्थोंकी ओषजनके साथ रासायनिक क्रिया होती है और इसका परिणाम रूप द्विओषिद् पैदा होजाता है।

डा० हिल (Dr. Leonard Hill) ने इस सम्बंध में एक व्याख्यानमें कहा थाः—

"धरतीमें ओषिदीकरण* बराबर जारी रहता है। इसी कारण कुओं और खदानोंकी वायुमें ओषजनकी मात्रा घटता रहता है और कर्बन द्विओषिद् बनता रहता है। सोनामक्खीका (लोहे और गंधकका यौगिक) जो अंश धरतीमें रहता है उससे हीरा कसीस और गंधक द्विओषिद् बन जाता है। गंधक द्विओषिद् पानीमें घुलकर गंधसाम्ल बन जाता है, जो ओषजनसे मिलकर गंधकाम्लमें परिणत होजाता है। गंधकाम्ल चूनेके पत्थरको गलाने और कर्बन द्विओषिद् निकल कर वायुमें मिलने लगता है। खानियोंमें हर एक मिनटमें २००० से ५००० घन फुटतक कर्बन द्विओषिद् बनता रहता है। इसीके बननेके कारण वहां गरमी पैदा होती रहती है।"

यह एक और कारण है जिससे पुराने कुओं, सुरंगों और खानियोंमें कर्बन द्विओषिद् इकट्ठा होजाता है। साधारण लोग इनमें जानेसे डरा करते हैं और डरना उचित भी है। पर जो लोग साहस करके चले जाते हैं, वह कभी कभी, यदि कर्बन द्विओषिद् उनमें भरा हुआ हो तो बड़ा धोखा खा जाते हैं। सुरंग आदिमें जानेके पहिले उनकी परीक्षा करलेनी चाहिये, जिसकी आसान तर्कीब यह है कि एक लम्बे बांसके सिरे पर मोमबत्ती जलाकर जमादो और बांसको सुरंगमें डालो। यदि बत्ती जलती रहे तो कोई डरकी बात नहीं है, क्योंकि कर्बन द्विओषिदके अधिक परिमाणमें होनेसे बत्ती बुझ जाती है।

कर्बन द्विओषिद वायु में कहां से आता है?

हम यह बतला चुके हैं कि जानदार चीज़ोंके गलने, सड़ने, और जलनेमें कर्बन द्विओषिद् पैदा होता है। ज़मीनमें जो वानस्पतिक अथवा पाशव पदार्थोंके अंश रहते हैं वह भी धीरे धीरे वायुके ओषजनके साथ मिलकर कर्बन द्विओषिद् बनाते रहते हैं। मनुष्यकी श्वासमें भी कर्बन द्विओषिद् रहता है। इन सब कारणोंसे कर्बन द्विओषिद् वायु में पहुंचता रहता है। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि श्वासमें कर्बन द्विओषिद कहांसे आ जाता

* पदार्थोंका ओषजनके साथ मिलकर नये पदार्थ बनालेना।

है और प्रति दिन कितना पैदा होता है और अन्तमें कहां चला जाता है।

मरने का सबसे बड़ा चिन्ह क्या है? गरमी का न होना। जिस देहमें गरमी नहीं है वह मुर्दा है। गरमी और जीवनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है कि जिस दिलमें गरमी (जोश) न हो वह दिल भी मुर्दा समझा जाता है। परन्तु शरीरमें गरमी कैसे उत्पन्न होती है? वेदमें लिखा है कि यज्ञसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यज्ञसे ही सृष्टिकी स्थिति है और यज्ञसे ही इसका लय होगा। मनुष्य के जीवनके विषयमें भी यह कथन अक्षरशः सत्य है। जठराग्निमें नित्य अन्नकी आहुति देनी पड़ती है, एक बारही नहीं बल्कि कई बार। इसके अतिरिक्त प्रति पलभी एक और हवन होता रहता है, जिसके किये बिना किसी मनुष्यका कुछ मिनटों तक ही जीना हो सकता है। वह हवन है प्राणका अपानमें और अपानका प्राणमें—

'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथा परे।
प्राणा पानगती रुध्वा प्राणायाम परायणः॥

इन दो यज्ञों द्वारा ही जीवनकी स्थिति है। इन्हीं दो यज्ञोंमें जो गरमी पैदा होती है उसीके आश्रित जीवन है। हिन्दुओंके प्रत्येक काममें यज्ञ अवश्य होता है। वास्तवमें हम सब बड़े कट्टर हिन्दू हैं। हम देख चुके हैं कि प्रत्येक श्वासमें एक प्रकारका हवन होता है, शरीरका मल जो रुधिर के संचारके कारण फेफड़ोंमें आकर जमा हो जाता है, उसीको प्रतिक्षण हम श्वास कर्ममें जलाया करते हैं। उसीकी भेट हम वायु-देवके देहमें प्रवेश करने पर चढ़ाते हैं। वायुदेव अग्निका रूप धारणकर उसे अंगीकार करते हैं और स्वयम् कर्बन द्विओषिद बन कर फिर बाहर निकल आते हैं। बिना बलिदान किये कोई काम सिद्ध नहीं होता। जहां हमने हाथ हिलाया, गर्दन हिलायी, या पैर फैलाये नहीं कि दो चार प्राणियोंकी बलि देनी पड़ी। यदि आप दौड़ने लगे तब तो प्रति मिनट सैकड़ों प्राणियोंका बलि दान होने लगा। यह प्राणी हैं आप के शरीरकी ईंटें, जिन्हें वैज्ञानिक कोष अथवा सेल कहते हैं। इन्हीं सेलोंके लाखोंके परिमाणमें मिलने से शरीर बनता है। यही बराबर टूट टूट कर, छिन्न भिन्न होकर, अपना शरीर न्यौछावर करके आपको काम करने की शक्ति प्रदान करते हैं। रुधिरकी धाराओंके साथ जो ओषजन शरीरमें चक्कर लगाया करती है वही इन मृत सेलोंको भस्म करती रहती है। इसी लिए जब आप दौड़ लगाते हैं तो बहुत सी सैल टूटने लगती हैं और इसीसे अधिक ओषजनकी आवश्यकता पड़ती है। सांस फूल आता है और आप थक जाते हैं। कदाचित् आप उस समय वायुकी जगह शुद्ध ओषजन पान करने लगें तो दम बिलकुल न फूले। पर स्मरण रहे कि दौड़ लगानेसे शरीरको दोनों अवस्थाओंमें बराबर हानि उठानी पड़ेगी।

साधारणतः वायुके १०००० भागमें ३ भाग कर्बन द्विओषिद्के रहते हैं। सभा मण्डपों या समाज मन्दिरोंमें १०००० भागमें ५० भाग तक इसका परिमाण बढ़ जाता है। जब तक कि १०००० भागमें इसका परिमाण ३०० तक नहीं हो जाता तब तक तो सांस लेनेवालोंको पता भी नहीं चलता परन्तु इतनी मात्रा बढ़ जाने पर ज़ोरसे सिरमें दर्द होने लगता है। जो कहीं इससे भी अधिक मात्रा बढ़ी, तो सांस फूलने लगता है और शरीरमें शिथिलता आने लगती है। जब १०० भाग वायुमें २५ या अधिक भाग कर्बन द्विओषिद्के होते हैं तो मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है।

निकाली हुई प्रश्वासमें प्रायः १०० भागमें ५ भाग कर्बन द्विओषिद्के रहते हैं, पर यदि बहुत देर तक सांस रोककर निकाली जाय तो मात्रा १० या १२ प्रतिशत हो जाती है।

हम ऊपर बतला आये हैं कि वास्तवमें जितनी जानदार चीज़ें हैं—पेड़ क्या, पशु क्या और मनुष्य क्या—सभी धीरे धीरे जल रही हैं। जिस दिन यह जागती जोत बुझी उसी दिन जीवनको अन्त हो जाता है। इस जोतसे जो गरमी पैदा होती है,

उसीसे ज़िन्दगी कायम रहती है। अब ज़रा सोचिये कि पेड़ पशु पक्षी और मनुष्य आदि प्राणी श्वासोच्छ्वास क्रियामें नित्य कितनी कर्बन द्विओषिद गैस बना डालते हैं। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि एक दिन रातमें प्रत्येक मनुष्य लगभग सेर भर कर्बन द्विओषिद बना डालता है। यदि मनुष्य सत्तर बरस जीता रहा तो लगभग ६०० मन कर्बन द्विओषिद पैदा कर देगा। संसारके सब मनुष्य प्रति दिन दो करोड़ अस्सी लाखमन (२८००००००) कर्बन द्विओषिद बना डालते हैं। अब ज़रा इन बातों पर भी गौर कीजिये कि पेड़, पशु, पक्षियों और अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यकी संख्या कितनी कम है। यह सब मिलाकर प्रतिदिन कितनी कर्बन द्विओषिद पैदा कर देते हैं। दूसरे सृष्टिके आदि से, करोड़ों वर्षोंके ज़मानेमें, जितने प्राणी हुए हैं उन्होंने कितनी गैस बना डाली होगी। दूसरे ज्वालामुखी आजकल तो बहुत कम हैं। सृष्टिके आदिमें तो पृथ्वीपर पग पगपर ज्वालामुखी थे, उनमें जो कर्बन द्विओषिद हज़ारों वर्षों तक निकलता रहा वह कहां गायब हो गया? आजकलके ज़मानेमें तो लगभग ३० अरब मन पत्थरका कोयला ही प्रतिवर्ष जलाया जाता है, जिससे लगभग १ खरब मन कर्बन द्विओषिद पैदा हो जाता है। कोयला, घास, फूल, लकड़ी, इत्यादि जो चीज़ें जलती हैं, उनका तो हिसाब लगाना ही कठिन है। फिर ज़रा सोचिये कि सब मिलाकर कितना कर्बन द्विओषिद पैदा होता है। इस हिसाबसे तो वायुकी ओषजन थोड़े दिनकी ही मेहमान होनी चाहिये थी। और कर्बन द्विओषिद्की असीम मात्रा वायु मण्डलमें होनी चाहिये थी। तो फिर आजकल १०००० भाग वायुमें कर्बन द्विओषिदके केवल ३ भाग ही क्यों हैं? इसके ही साथ यह भी याद रखना चाहिये कि आजकल वायुमें कर्बन द्विओषिदकी मात्रा इतनी धीमी चालसे बढ़ रही है कि लगभग २५० बरसोंमें आजकलकी अपेक्षा दुगनी हो जायगी।

चट्टानों का भूमपान

चट्टानोंमें अधिकांश चूना, मेगनीसियम, अलुमिनियम, सोडियम और पोटासियमके सिलाकेत होते हैं। वायुका कर्बन द्विओषिद् बराबर इन चट्टानों पर किया करता रहता है और उन सिलाकेतोंको छिन्न भिन्न करके उनका तहसनहस करके, घुलन शील कर्बनेत बना लेता है। यही कर्बनेत बह बहकर धरतीकी उर्वर शक्ति बढ़ाते हुए अन्तमें समुद्रमें जा पहुंचते हैं। समुद्रमें केलसियम और मग्नीसियम कर्बनेतोंको छोटे छोटे पौदे और जान्वर ग्रहण करलेते हैं और इनसे अनेकानेक पदार्थोंकी उत्पत्ति करते हैं। इन्हींसे सीपियां पैदा होती हैं, इन्हींके मोती बनते हैं। इन्हींसे मूँगेके पेड़ बनते हैं, जो इकट्ठे हो होकर मूंगोंकी चट्टानें और टापू बना लेते हैं। उधर छोटे छोटे फोरेमिनीफ़रा दिन रात लाखों मन कर्बनेत पानीसे खींच खींच अपना शरीर निमार्ण करते रहते हैं और मर कर समुद्रकी तलैटीमें अपनी शवोंके रूपमें चूनेकी वर्षा करते रहते हैं। इन्हींके शवोंसे संगमरमरकी उत्पत्ति होती है।

जो संगमरमरकी चट्टान और चूनेका पत्थर भूगर्भ में भरा हुआ पड़ा है उसमें अनुमानतः इतना अधिक कर्बन द्विओषिद् मौजूद है कि वायुमें के कर्बन द्विओषिदसे २५०० गुना होगा। यदि कदाचित उस सब कर्बन द्विओषिदको फिर स्वतंत्र गैस बना दें तो आजकलका वायु मण्डल आयतनमें ८०० गुना हो जाय। आजकल वायु मण्डलका बोझ प्रायः ७$\frac{1}{2}$ सेर प्रति वर्गइंच है परन्तु उक्त घटना होने पर लगभग ४०० मन प्रति वर्गइंच होजाय और कोई भी प्राणी जीता न बचे।

यह तो प्रकृतिका कर्बन द्विओषिदको वायुमें न बढ़ने देनेका एक उपाय है और वह भी कैसा उपयोगी है। वायु शुद्धकी शुद्ध हो जाती है और धरती की उर्वर शक्ति भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त जो, अन्य कौतूहलोत्पादक घटनाएं, जिनका

उल्लेख ऊपर हो चुका है, होती हैं उनका तो कहना ही क्या है। कर्बन द्विओषिद्के वायुमें न बढ़ने देनेका दूसरा साधन भी प्रकृतिने कर रखा है, जो पहलेसे कम मनोरञ्जक और उपयोगी नहीं है।

वसन्त ऋतुमें जब वृक्षोंकी नई नई पत्तियां निकलती हैं तो कैसी सुहावनी लगती हैं। प्रत्येक पेड़ रेशमी कपड़े पहने हुए जान पड़ता है। इनको देखकर शुभ्रता, कोमलता और भोलेपनके भाव मनमें उठने लगते हैं। साधारणतः भी बागोंमें हरयाली कैसी मन लुभानेवाली होती है। पर वास्तवमें क्या शान्त उपवनमें शान्ति छायी हुई होती है? क्या वायुके कोमल स्पर्शसे भूलती हुई नई नई कोपलें इतनी सरल हैं, जितना आप समझते हैं? वैज्ञानिक दिव्य दृष्टिसे देखिये तो आपको पता चले कि क्या भयंकर महाभारत हो रहा है। यह जो हरा हरा रोगन आपको पत्तियों पर चढ़ा दिखलाई पड़ता है, यह एक पदार्थ है जिसे हरित राग कहते हैं। इस पदार्थ पर जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, तो इसके अणुओं और परमाणुओंमें विचित्र गति उत्पन्न हो जाती है। उसके अणु उस समय साक्षात कालिकाका रूप धारण कर लेते हैं। जो कर्बन द्विओषिद्का अणु उनके सामनेसे निकला नहीं कि उन्होंने उसे झपट कर पकड़ा, पकड़ कर उसमें के कर्बनको तो डकार जाते हैं, पर ओषजन पर उनका कुछ अधिक बस नहीं चलता—उसे छोड़ देते हैं। यहां शायद आपको आश्चर्य हुआ होगा कि अणुओंकी उपमा कालिकासे क्यों दी गई। इसका कारण यह है कि कर्बन द्विओषिद्के अणुओंको तोड़कर उनमें से कर्बन ग्रहण करना कुछ आसान काम नहीं है। यदि आप कर्बन द्विओषिद्को गरमी पहुंचा कर उसके अवयवी कर्बन और ओषजन अलग करना चाहें तो १८००° शकी गरमी पहुंचानी पड़ेगी। मनुष्यके शरीरसे ५० गुनी ज्यादा गर्मी देनी होगी, बड़े बड़े प्रचण्ड भट्टोंमें जो गरमी नहीं पैदा होती, इतनी गरमी कर्बन द्विओषिद्के अणुओंके तोड़नेके लिए चाहिये। जो काम १८००° श तापक्रम पर मनुष्य अपने यंत्रों से कर पाता है, वही काम यह छोटी छोटी निर्बल कोपलें बातकी बातमें कर डालती हैं।

इस प्रकार दिन रात पेड़ों और पौधोंकी पत्तियां परिश्रम करती रहती हैं और हमारी बिगाड़ी हुई हवाको शुद्ध करती रहती हैं।

पत्थरों और पौधोंके ऋणसे उबरना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। फिर यदि पत्थर और पौधोंको कोई श्रद्धा पूर्वक पूजे तो क्या दोष है? सच पूछिये तो उन्हें न पूजना कृतघ्नता है।

होम्सने (Holmes) इस घटनाका कैसे अच्छे शब्दोंमें वर्णन किया है:—

The great sun
Girt with his mantle of tempestuous flame
Glares in midheaven; but to his noon tide blaze
The slender Violet lifts its lidless eye
And from his splen dour steals its fairest hue
Its sweetest perfume from his scorching fire.

कर्बन द्विओषिदकी कारीगरी

पाठक, भूले न होंगे कि जिस पानीमें कर्बन द्विओषिद् घुला रहता है वह चूनेके पत्थर, खड़िया, और संगमर्मरको आसानीसे गला सकता है। इस बातकी परीक्षा जिस प्रयोगसे की जा सकती है वह पहले दिया जा चुका है। दूसरा प्रयोग जो आसानीसे किया जा सकता है यह है कि सोडावाटर लेकर किसी संगमर्मरके टुकड़े पर डाल दो और देखलो कि उसका कुछ हिस्सा गल जाता है या नहीं। यदि संगमर्मरका टुकड़ा चिकना हुआ तब तो फौरन ही पता लग जायगा, क्योंकि सोडावाटरके प्रभावसे वह खुर्दरा हो जायगा। कर्बन द्विओषिदका यह साधारण गुण प्रकृतिमें बड़े बड़े तमाशे कर दिखाता है, जिनके सामने मनुष्यकी कारीगरी और मनुष्यका परिश्रम बच्चोंकासा खेल मालूम पड़ता है।

पृथ्वीके बहुतसे भाग चूने या खड़ियाकी चट्टानोंके बने हुए हैं। वर्षाका या नदियोंका पानी हवामेंसे कर्बन द्विओषिद घुला लेता है और जब उक्त खड़ियाकी चट्टानोंपर होकर निकलता है तो उनका थोड़ा बहुत अंश घुला लेता है। चट्टानोंका इस प्रकार घुलना, दिन रात बारों महीने जारी रहता है। यह घटना केवल पृथ्वीके पृष्ठपर ही नहीं होती, किन्तु भूगर्भमें भी होती रहती है। एक तो कर्बन द्विओषिद्से संपृक्त वर्षाका जल जहां रिस रिसकर पृथ्वीमें पहुंचा कि उसने अपने मार्गमें की खड़ियाकी चट्टानोंको गलाना शुरू किया। दूसरे पृथ्वीके भीतर जो बड़ी बड़ी जलकी धाराएं बहती रहती हैं और जिनसे नदियों, झीलों और कुओंमें पानी पहुंचता रहता है प्रायः उस कर्बन द्विओषिद्से संपृक्त रहती हैं जो भूगर्भमें उत्पन्न होती रहती है। यह भूगर्भस्थ धाराएं पृथ्वीके अन्दर बड़ी बड़ी गुफाएँ, कन्दराएं और सुरंगें काट लेती हैं।

कर्बन द्विओषिद्से संपृक्त एक घन गज़ पानी लगभग सेरभर खड़िया घुला लेता है। इससे सहजही स्पष्ट होजाता है कि भूगर्भमें बहनेवाली प्रबल जलधाराएं हज़ारों वर्षोंतक बहती रहकर कितनी खड़िया काट काटकर लेजाती हैं। पृथ्वीके इन खड़िका-प्रान्तोंमें गुफाओं और कन्दराओंमें बहनेवाले बड़े बड़े दरिया ही नहीं पाये जाते, बलिक कभी कभी चौड़े मैदानोंमें बड़ी बड़ी नदियां किसी गड्ढेमें प्रवेशकर लुप्त हो जाती हैं। स्पेनमें गुआडियाना (Guadiana) नदीकी यही दशा होती है। कभी कभी कोई नदी एक गुफामेंसे बड़ेवेगसे निकलकर, थोड़ी दूर खुले हुए मैदानमें बहकर दूसरी गुफामें प्रवेश करती है और गायब होजाती है। कार्निओलामें एकही नदी तीन कन्दराओंमें बहती है और जितनी बार पृथ्वीमें समाकर दूसरे ठौर जा निकलती है, उतनेही भिन्न भिन्न नाम उसके पड़ गये हैं। एडिल्सबर्गमें पोयक, प्लानिना (Planina) में उंज़ (Unz) और अपर लेबेक (Upper laibach) में लेबेक, उसी नदीके तीन भिन्न नाम हैं।

पृथ्वीके भीतर बहनेवाली इन नदियोंके मार्गों में बड़े बड़े कौतहलोत्पादक दृश्य देखनेको मिलते हैं। कहीं तो नदी सकड़ी होकर बड़े वेगसे किसी गड्ढेमें गिरकर गायब होजाती हैं और कहीं चौड़ी होकर अन्धकारमय और भयानक झीलोंका रूप धारण कर लेती है, जिनके शान्त तलको वायुकी तरङ्गें प्रायः स्पर्शही नहीं करती। पर कभी कभी किसी अदृश्य छिद्रमें होकर बड़े वेगसे हवा आने और हलचल मचाने लगती है। जहां कहीं नदीके मार्गमें कठोर चट्टान आजाती है तो नदी एक छोटा सा रास्ता काट लेती है। पर जहां मुलायम चट्टान मिलती हैं वहां तो बड़े बड़े कमरे खुदजाते हैं।

चित्र ४१—पाताल तोड़ कुआं (The Bottomless pit.)

संसारकी खड़ियाकी गुफाओं-मेंसे सबसे अधिक विशाल और विख्यात केंटकीकी मेमोथ केव है। इस गुफामें अनेक विशाल कमरे बने हुए हैं। इनमेंसे प्रायः ५७ का तो नामकरण भी होचुका है और सब का पूरा विवरण भी सैर करनेवालोंने दिया है। इनके अतिरिक्त इसमें ११ झीलें, सात नदियां, आठ केटेरेक्ट और बत्तीस अन्धकूप हैं। पाताल तोड़ (Bottom less pit) का चित्र यहां दिया जाता है। यह प्रायः १२० हाथ गहरा है। गुफाके अन्दर बहनेवाली नदियोंमें सबसे विख्यात 'ईको रिवर' है। इस नदीके किनारे शब्द करनेसे विचित्र प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। इसीसे इसका नाम ईकोरिवर पड़ा है। इन गुफाओं और नदियोंका विस्तृत वर्णन स्वतंत्र लेखमें दिया जायगा।

चित्र ५२—इकोरिवर (Echo river)

ज्ञान और भक्ति।

[ले०—एक हिन्दी हितैषी]

यद्यपि धर्म अधर्म्म पाप या पुण्य सबके लिये समान नहीं, यद्यपि सबके कर्तव्य अलग अलग हैं तथापि सबका यह उद्देश्य समान है, एक है, कि हम उन्नति करें, हम बढ़ें, हम अच्छे रहें, हमें सुख मिले, हम दुखी न हों। आदर, मान, धन-सम्पत्ति-विद्या, सन्तान सभी कुछ एक शब्द उन्नति वा वृद्धिमें आजाता है। वृद्धि होती जाती है, पर मनुष्य अपनी दशासे सन्तुष्ट नहीं होता। उसकी वासना सदा अतृप्त रहती है। उसकी अभिलाषा वृद्धिसे भी दो कदम आगे बढ़ी रहती है। सांसारिक सुखोपभोगके प्यालेपर प्याले ढालता जाता है। उसीकी मस्तीमें झूमता रहता है। पर सुखकी प्यास बुझती ही नहीं, हर प्याले पर बढ़ती जाती है, न जाने वह कौनसा स्वाद है। जो उत्तेजित होता जाता है, वह कौनसी मस्ती है जिसका ओर छोर नहीं दीखता। यह अतृप्त वासना पुकार पुकार कह रही है कि यह उस दरजेका सुख नहीं जिसकी तुझे खोज है, यह वह आनन्द नहीं जिसके पीछे तू बावला हो रहा है।

"आनन्द सिन्धु मध्य तव बासा।
बिन जाने कत मरसि पियासा॥"

पर मनुष्य परीक्षाओंमें लीन है और उनसे गलत नतीजे, भ्रमात्मक निष्कर्ष, निकाल रहा है। मिठाईमें मिठास, शब्दमें मनोहरता, रूपमें सौन्दर्य्य, गन्धमें सुबास, स्पर्शमें कोमलता देख बाहरी वस्तुओंमें इनका आरोप करके सुखका पता लगानेको डाल डाल पात पात भटकता है। अपने नाभिके सुबाससे बावला हिरन जंगल जंगल छलांगें भरता बियाबानोंकी ख़ाक छानता फिरता है कि "परम सुगन्ध कहां ते आयो," और सांसा-

रिक श्वान सूखी हड्डी चबाकर अपने मुखके रक्तसे प्रसन्न हो समझता है कि सूखी हड्डीका ही स्वाद है। इन्हीं भ्रमोंसे अपनी अतृप्त वासनाओंको सन्तुष्ट करनेको सामान पर सामान इकट्ठा करता है, सामग्री पर सामग्री बटोरता जाता है। संसार की बाह्य सामग्री अनन्त नहीं, वह झट चुक जायगी, पर वासनाको अनन्त सुखकी खोज है, वह बढ़ती ही जायगी, अनन्त ही हो जायगी और अबतक वासनाकी तृप्ति नहीं सुख कहां? यदि विषय और वासनाका सम्बन्ध भिन्नके रूपमें दिखावें और विषयको भाग और वासनाको हर करके दिखावें तो यह रूप होगा—

$\frac{\text{१ विषय}}{\text{१वासना}}$ = १ सन्तोष। अर्थात् यदि जितनी वासना हो उतनाही विषय भी प्राप्त हो तो सन्तोष हो जायगा और "सन्तोषं परमं सुखम्" परन्तु यथार्थ में जितनी वासना होती है उतना विषय मिल नहीं सकता। इसलिए यदि विषयको एक, वासनाको दो मानें तो भजन फल $\frac{१}{२}$ सुख अर्थात् आधा सुख होगा। वासना जितनीही बढ़ती जायगी सुखकी मात्रा उतनीही घटती जायगी। वासना अनन्त हुई तो सुखका अंक, भजनफल, शून्य हो जायगा।

इसीके विरुद्ध यदि हम वासनाको ही घटाते जाँय तो सुखका अंक बढ़ने लगेगा। यदि वासना शून्य हो जाय तो अत्यल्प विषय भी अनन्त सुख-का कारण होगा। यहां वासना कौनसी मिटानी है। "विषय-वासना, बाहरी सुखकी सामग्रीकी इच्छा"। परमानन्द प्राप्तिकी वासना तो तभी मिटेगी जब जीव सच्चिदानन्द होजायगा।

यही बात है कि जैन, बौद्ध, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, सभी इस बातमें सहमत हैं कि सांसारिक विषय वासना से मन को हटाना धर्मकी एक रीति है, वृद्धिका उपाय है, आत्मसंयमका आवश्यक अंग है। एपिक्युरस वा चार्वाकके ऐसे मतानुयायी जो विकास सिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नहीं रखते इस आत्मसंयमके मार्गका अनुसरण अवश्य नहीं करते और यद्यपि व्यवहारमें जीवमात्र विषय वासनामें लिप्त हैं—स्वभाव विषय वासनाकी ओर खींचता है, क्योंकि परीक्षा और अनुभव पर ही संसारका विकास निर्भर है और अभी विषय वासनावाले युगका अन्त विकास-कल्पमें नहीं हुआ है—तथापि संसारभर में विकसितबुद्धिवाले विषय वासनाको वृद्धिके मार्गका कंटक समझनेमें एक मत हैं।

हम पहले कह आये हैं कि जीवात्माके विकास-का अन्त दो तरह पर समझा जाता है। एक तो यह कि जीव सच्चिदानन्द हो जायगा, दूसरे यह कि जीव ब्रह्मलीन हो जायगा। जहां जीव अपने ईशको अपनेसे भिन्न सनातन समझता है और उसके सान्निध्यकी अभिलाषा करता है, उसे स्वामी अपनेको उसका दास मानता है, सच्चिदानन्दको अपना आदर्श ठहराता है, अपना आचरण उसीके अनुकूल बनाता है, वहीं वह भक्ति मार्ग का अनु-यायी समझा जाता है। परन्तु जहां जीव विचार और अनुभव और अनुशीलनसे वास्तविक सत्यकी खोज करता है, वास्तविक सत्ताको जानता है, अपनी परिस्थिति और अन्तःस्थितिकी जांच पड़ताल करके अपनी असलियतका पता लगाता है, सारांश यह कि वैज्ञानिक रीतिसे चलता है, वहां वह ज्ञान मार्ग का अनुयायी समझा जाता है। विकास वा परिणामके माननेवाले संसारमें सर्वत्र इन्हीं दो मार्गोंपर चलनेवाले पाये जाते हैं। चाहे किसी नामसे पुकारे जाँय, किसी रूपमें देखे जायँ, दोनोंका उद्देश्य उन्नति वा वृद्धि है। दोनोंका मार्ग एक ही दिशामें है। एकही केन्द्रकी ओर लेजाता है। दोनों अपने शरीरको और अपनी परिस्थितिको अपना औजार मानकर काम लेते हैं। दोनों अपनी इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखना चाहते

हैं। दोनों एक स्वरसे इस बातका इक़रार करते हैं कि :—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिस्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच॥
इन्द्रियाणि हयान्याहुः (कठोपनिषत)

शरीर रथ, आत्मा रथी, बुद्धि सारथी, मन लगाम है और इन्द्रियां दस घोड़े हैं। इन्हें वशमें रखनेसे ही राह कुशलसे कटेगी। दोनोंने मनकी बागडोर बुद्धिके हाथ दे रखी है। जो अपने गुरु, अवतार, इष्टदेव आदि किसीको आदर्श मानता है, उसके ही हाथ बागडोर देता है। जो आत्मानुभव करके अपनी बुद्धिको ट्रेन कर चुका है, उसकी बुद्धि इस काममें चाकचौबन्द हो चुकी है क्योंकि सईसी "इल्म दरियाव है।" विज्ञानवान अपनी बुद्धिकी ही सईसीमें अपनेको मंजिल मकसूद तक, अपने इष्ट तक, पहुँचाता है। यह तो हुई दोनोंमें समानता। ज्ञान और भक्ति मार्गका भेद उन दोनोंके विस्तारमें है। उन दोनोंके अनुशीलन की रीतियोंमें है। जिस तरह शिक्षामें आज कल भाषाओंके सिखानेकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीतियां (डिरेक्ट तथा इंडिरेक्ट मैथड) हैं [एक ध्वनि और शब्दको वस्तु और क्रियामें आरोप करके अर्थका अनुभव कराती है। दूसरी अपनी मातृभाषाके पर्यायोंसे परायी भाषाके शब्दको बदलकर उनके अर्थ समझ लेती है। पहली प्रत्यक्षरीति है दूसरी अप्रत्यक्ष।] इसी तरह आध्यात्मिक उन्नतिके लिए भी दो मार्ग हैं और उन दोनोंकी रीतियां भिन्न हैं। भक्तिमार्गमें मनुष्य अपना आदर्श अपनी उन्नति के अनुकूल चुनता है। अत्यन्त असभ्य दशामें जब कि किसी अप्रत्यक्ष और अदृश्य शक्तिसे डरकर मनुष्य एक काल्पनिक रूप खड़ा कर लेता है, तो उसकी प्रसन्नतामें अपनी भलाई और उन्नति समझता है। उसे प्रसन्न रखनेके लिये अपनी कल्पना के अनुसार अनेक उपाय रचता है। भूत, प्रेत, पिशाच राक्षस, गन्धर्व, दानव, आदिके भांति भांति के रूपों और गुणोंकी कल्पना करके उनकी पूजा वा उपासना करता है; समझता है कि यह शक्तियां अप्रसन्न रहनेसे हमको दुःख देंगी, कष्ट पहुचावेंगी, क्योंकि वह साधारणतया यह देखता है कि बलवान निर्बलको अप्रसन्न होनेसे सताते हैं, बल्कि भूखे रहने पर खा भी जाते हैं। मनुजादोंके युगमें इन्हीं कारणोंसे मनुष्यके बलिदान करनेकी रीति चलगयी थी। परन्तु धीरे धीरे जब सभ्यतामें उन्नति हुई, अपनी जातिकी रक्षाका भाव मनमें उदित हुआ, उस समय मनुष्यने जीके बदले जी देनेकी प्रथा चलायी और मनुष्यके बदले पशुका बलिदान करना सीखा। ज्यों ज्यों उन्हें दया और करुणाका स्वाद मिलने लगा, त्यों त्यों अपने आदर्श देवताओंमें उन्होंने दया और करुणाके भावका भी आरोप किया। आरम्भमें राक्षस मनुष्यको पकड़ कर मार डालने और खाजानेमें कोई रीति रस्म नहीं बर्तता था, परन्तु आगे चलकर उसने बिना देवताको चढ़ाये, बिना यज्ञके, भोजन करना बुरा ठहराया और फिर धीरे धीरे मनुष्यका बलिदान करना भी छोड़कर उसके बदले पशुका बलिदान ठीक समझा और यहूदियों, ईसाइयों, मुसलमानोंमें हज़रत इब्राहीमकी अपने बेटे इसहाककी कुरबानी, अपने यहांके नरमेधयज्ञ वा राजा हरिश्चन्द्रका अपने पुत्र रोहिताश्वको वरुणके लिये बलिदान करनेकी प्रतिज्ञा करना और इसी तरहकी काव्य कथाएं प्राच्य देशोंमें इस बातकी गवाही देती हैं कि मनुष्यका वास्तविक बलिदान किसी युगमें अवश्य हुआ करता था। आजभी हैजा महामारी और इस समय युद्धज्वर आदिके फैलनेपर ऐसी जातियाँ, जिनके विचार उन्नत नहीं हैं, समझती हैं कि कालीभवानी मनुष्योंको खाजाती है। और जीका बदला जी देनेके लिये पशुओंका बलिदान अबभी ऐसीही दशाओंमें होता है, बलिप्रदान और यज्ञका प्राचीन कालसे चोली दामनका साथ रहा है। परन्तु जब मनुष्योंका आदर्श बढ़ा यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस संसारका शासन करनेवाली शक्तियां मनुष्यके साथ अब लेन देनका

बर्ताव करती हैं, जब आपसमें क्रयविक्रय होता है, तो दर्जा बराबरीका है और मनुष्य अपने पराक्रमसे इन शक्तियोंको अपने वशमें भी कर सकता है। तदनन्तर मनुष्यने अपने लक्ष्यको और ऊंचा बढ़ाया और ऐसे देवकी भक्ति आरम्भ की, जिसके हाथमें इन सब शक्तियों का सूत्र हो जो इन सबसे बड़ा हो। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजा पतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट काम धुक् ॥१०॥

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

इष्टान्भोगान्हिवो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्त नप्रदायै यो ये भुङ्क्ते स्तेन एवसः ॥१२॥

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजते ते त्ववं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

प्रारम्भमें यज्ञके साथ साथ प्रजाको उत्पन्न करके ब्रह्माने कहा कि इस यज्ञके द्वारा तुम्हारी वृद्धि होने से यह यज्ञ तुम्हारी कामधेनु होवे। अर्थात् तुम्हारे इच्छित फलोंको देनेवाला होवे। तुम इस यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्ट करते रहो। देवता तुम्हें सन्तुष्ट करते रहें। परस्पर एक दूसरेको सन्तुष्ट करते हुए दोनों परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त करो। यज्ञसे सन्तुष्ट होकर देवता लोग तुम्हारे इच्छित भोग तुम्हें देंगे। उन्हींके दिये हुए भागोंमें से उन्हें भाग न देकर जो अकेले आपही उपभोग करता है वह चोरी करता है। यज्ञ करके शेष बचे हुए भागके ग्रहण करनेवाले सज्जन सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। परन्तु यज्ञ न करके केवल अपने ही लिये जो अन्नपकाते हैं वह पापी लोग पाप भक्षण करते हैं।

इन शब्दोंके शब्दार्थ मात्र ऊपर दिये गये हैं। आध्यात्मिक अर्थ चाहे जो कुछ लगाये जायँ परन्तु साधारणतः इसमें सन्देह नहीं मालूम होता कि मनुष्यने जब इतनी उन्नति करली कि देवताओं को वा प्राकृतिक शक्तियोंको उनके ठीक मूल्यपर आँकने लगा और क्षमा दया करुणा आदिकी वृद्धि हुई तो वह "अहिंसा परमोधर्मः" का मन्त्र पढ़ने लगा। वह अपने परम देवता परम पूज्य और देवोंके देवको अहिंसाकी मूर्ति मानने लगा। चाहे उसे अर्हत, तीर्थंकर वा बुद्ध कहता हो और चाहे दूसरे रूपमें प्रेमकी पराकाष्ठा वा प्रेमका आदर्श मानकर अल्लाह (प्रेम) राम, कृष्ण, वा ईसाके रूपमें मानता हो। इस विषयपर गम्भीर विचार करनेसे यह पता चलता है कि मनुष्य अपने आदर्शको अपनी उन्नतिके साथ साथ बढ़ाता रहा है। जिन विचारोंको उसने उच्च समझा, जिन भावोंको उसने उत्तम पाया, जिन बातों को उसने सत्य प्रिय और हित जाना और जिन क्रियाओंको उसने विकासके मार्गमें सहायक देखा-निदान जिन विचारों भावों बचनों और क्रियाओं को उसने धर्म और कर्तव्य समझा—अपने आदर्शमें उन्हींका आरोपण किया। अपने आदर्शको उनका काल्पनिक रूप देखकर अपने हृदय मन्दिरमें पधराया और जिस प्रकार हो सका मन बचन कर्मसे अपने आदर्शका आदर किया। "इंजीलके खुदाने मनुष्यको अपने अनुरूप बनाया", इस बातकी हँसी उड़ाते हुए फ्रांसके प्रसिद्ध दार्शनिक वाल्टेयरने कहा है कि मनुष्यने भी अच्छा बदला लिया कि उसने ईश्वरको ही अपने अनुरूप बना डाला। मर्मज्ञ लोग इस बातको दूर तक समझें, इसमें सन्देह नहीं कि उस वास्तविक अचिन्त्य और कल्पनातीत सत्ताको कल्पनाके शिकंजेमें कसकर अपने अनुरूप काट छांट करना और मन चाही पोशाक पहिनाना कैसा असम्भव है। कहनेकी आवश्यकता नहीं, उलटा कर हाथको ही पकड़ले, कैसे हो सकता है? बुद्धि चित्त अहङ्कार जो अन्तःकरण अर्थात् भीतरी औज़ार हैं इनकी क्या मजाल है कि उलट कर अपने पकड़ने वाले हाथोंका पता लगा सकें। इसी लिये यह कहना पड़ता है कि जितनी कुछ बातें आदर्श रूपसे कही जासकती हैं या जिनका आरोप ईश्वरमें हो सकता है वह उस

वास्तविक सत्तासे बहुत दूर है, तो भी साथही मनुष्यके विकास मार्गमें बहुत सहायक हैं। यहां तक कि जब मनुष्य अपने आदर्शकी कल्पनामें इतनी दूर पहुँच जाता है कि अपने गुरु वा इष्टदेव में अपने कल्पित समस्त ऐश्वर्योंकी रचना कर लेता है, जब आदर्श सर्वांगपूर्ण हो जाता है, जब कोई कसर नहीं रहजाती, उसकी चेतनाका प्राकृतिक विकास उसे उसकी वास्तविक सत्ताकी कल्पना तक खींच लेजाता है। अपने मंजिल तक पहुँचने पर उसे पता लग जाता है कि अभी रास्ता और आगे गया है और उद्दिष्ट स्थान कुछ आगे जाकर मिलेगा। अपने देवाधिदेव भगवानकी षोड़शोपचार पूजा करते करते बाहरी विग्रहको मनके चित्रपट पर उतारता है और अपने उपास्यके सब गुणोंको अपने चरित्रमें लाकर जब "तन्मय" हो जाता है, जब उसके रोम रोम में राम रम जाता है, जब वह अपने उपास्य वा आदर्शको ही सर्वत्र देखता है, निदान जब उसे अपने परम प्यारे का ऐसा सामीप्य प्राप्त हो जाता है कि उसे वह वस्तुतः अपने हृदयमें वा मनमें बिठा लेता है, जिसे अन्य शब्दोंमें "उपासना" कहते हैं; उस दशामें यह कैसे सम्भव है कि भक्त और भक्त भावन, उपासक और उपास्य, प्रेमी और प्यारे, यह दो रह जांय और "मैं" और "तुम"का झगड़ा बना रहे, द्वैत भाव तुरन्त नष्ट न हो जाय। भक्ति मार्गका आरम्भ चाहे जिस रूपमें हो, अन्तका तो इसी रूपमें होना अनिवार्य्य है। जब तक यह अन्त नहीं आया, तब तक भक्ति मार्गी अपने प्रेम पात्रको वा आदर्शको अपनेसे अलग माना ही चाहें। उसके यह मान लेनेमें कि "वह मैं ही हूँ" उपासना ही बिगड़ जाती है, भावही बदल जाता है। वह अप्रत्यक्ष रीति इनडिरेक्ट मेथड" ही नहीं रह जाता। ज्ञानी भी भक्तिके मार्गकी अवहेलना नहीं करता, भक्तिमार्गमें कठिनाइयां कम हैं, इसलिये ज्ञानीभी बहुधा भक्ति मार्गमें ही सुभीता देखता है और सिद्धान्तोंको समझते हुए भी इकरार करता है।

"सत्यपि भेदापगमे, नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वं
सामुद्रोहि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः।

हे नाथ अभेद होते हुए भी मैं तुमसे हूँ तुम मुझसे नहीं हो। तरंग समुद्रसे होता है, समुद्र तरंगसे कभी नहीं होता।

ज्ञानका मार्ग साधारणतः कठिन ही समझा जाता है। क्योंकि ज्ञानी पर दायित्व है। भक्त अपने स्वामी भक्तिभावनके आसरे रहता है। ज्ञानी अपनेको ब्रह्मसे भिन्न मानता ही नहीं। तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी के मुखसे कहलाते हैं—

मोरे प्रौढ़ तनयसम ज्ञानी।
बाल अबुध सम भक्त अमानी॥

जवान लड़के माता पिताके आसरे नहीं रहते। माँ बाप उनकी चिन्ता भी नहीं करते, क्योंकि अपनी देख रेख के वह आप जिम्मेदार हैं। तो भी यह तो स्पष्ट है कि यह बालक कभी छोटे भी रहे होंगे। ज्ञानी होजानेके पहले ज्ञानमार्गीका भक्त होना आवश्यक है। ज्ञान के आरम्भमें भी भक्तिके आरम्भिक दरजे ही हैं। हिसाब सिखानेमें जैसे गुणा भाग आदिके नियम याद करा दिये जाते हैं। उनका अभ्यास कराया जाता है। बारंबार अभ्यास करते करते वही नियम अंगुलियों पर उतर आते हैं, स्वाभाविक हो जाते हैं, उनसे सारे काम होते हैं। पर इन नियमोंके मूल कौनसे सिद्धान्त हैं, वह नियम कैसे बने, इन बातोंको जब वह बहुत ऊँचे दरजेमें बीजगणित पढ़ता है तभी जानता है; इसी तरह आरम्भमें सिद्धान्त न समझे रहने पर भी मनुष्य वेदान्तकी रीतिसे उपासना करता और बारबार तत्व ज्ञानकी शिक्षा भी पाता रहता है। यदि "अयंखलु क्रतुमयः पुरुषः" या मनुष्य जैसा सोचता है वैसाही हो जाता है, यह वैज्ञानिक नियम है और सच्ची बात है तो "अहंब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" (यह सारा ब्रह्मही ब्रह्म है) इन वाक्यों पर निरन्तर चित्त जमाये रहनेसे मनुष्यके जीवन मरणसे मुक्त हो जानेमें, विकासके

इन्द्रजालसे छूट जानेमें और जीवसे ब्रह्म भावना मनसे दृढ़ हो जानेमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। संसारके दुःख सुख हर्षामर्षका असत्य समझते समझते उसको निश्चय इन बन्धनोंसे मुक्ति हो जानी चाहिये। साथ ही "अहं ब्रह्मास्मि" यह याद रहे, दृढ़तासे हृदय पर अंकित हो जाय और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सब ब्रह्म ही है) यह भूल जाय तो उपासक आधा सत्य माननेके कारण भ्रमजालसे छुटकारा पानेके बदले और भी उलझ जायगा। पागलखानेमें अपनेको खुदा और सबको अपनी खिलकत माननेवालोंकी कमी नहीं है। और इसके विरुद्ध यदि उपासक "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" कोही याद रखता है और अपनेको "इदं" से अलग जानता है, तो वह भी आधे सत्यके भँवरमें पड़ कर डूब जाता है। परन्तु वह अपने को सदा दास ही समझता रहेगा, बन्धनसे मुक्त न होगा, वहभी एक प्रकार का पागलही समझा जाना चाहिये। इस तरह भ्रमपूर्ण उपासना बड़ी भयानक होगी, बड़ी खतरनाक होगी।

ज्ञानक पंथ कृपानक धारा।
परत खगेस न लागै बारा॥

इन दोनों खतरोंसे बचकर संसारमें यदि जीव इस प्रकार ज्ञानमार्गसे भगवद् उपासना करे तो विकासके जालसे क्यों न शीघ्र मुक्त हो जायगा? कारण यह है कि अपने आदर्शको अपनेसे अलग माननेवालोंके लिये विकास आवश्यक है। आदर्श तक पहुँचना ज़रूर है। रास्ता तय करना है। मंज़िल तक पहुंचना है। परन्तु ज्ञानमार्गवालेके लिये विकास कहां, आत्मा सदा पूर्ण है। उसमें क्षय वृद्धि कैसी, जब ऐसा पूर्ण है कि उसमें से पूर्ण निकाला तो भी पूर्ण ही रहा तो उसके लिये विकास कैसा? विकास तो प्रकृतिमें है। मायाका पसारा है। मायाकी निगाहों में है। पृथिवी परके मनुष्योंकेलिये सूरज निकलता है। बादलोंसे ढक भी जाता है, अस्तभी हो जाता है, रात हो जाती है, उदय अस्त नित्य होता है, पर सूरज तो वस्तुतः जहां है वहां बराबर चमक रहा है। न कभी छिपा न कभी डूबा न उसने कभी अन्धकार ही देखा, न कभी रात ही हुई, न उदय हुआ न अस्त। यह तो देखनेवालोंका दृष्टि विपर्यय है, समझका फेर है। आत्मा पूर्ण है उसमें विकास नहीं, वह सर्वत्र है, तो कहां जाय, राह कहां, मंजिल किधर?

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः
(यजु० अ० ४०, मं० ५)

—:०:—

भारत-गीत ६०

हो अपने तुम आप सहाई,
जो है काम आप करने का,
औरोंसे वह बनै न भाई

(२)

अपनी ओर निहार करो कुछ,
अपने हित नित आप कमाई
जो हरि-कृपा सहित चाहो निज,
सुख संपति जग सुजस बड़ाई
हो अपने तुम आप सहाई,

श्री पद्म कोट
१४-११-१६१६ —श्रीधर पाठक

वायुमण्डलके चमत्कार

[गताङ्कसे सम्मिलित]

दिव्य दृष्टिसे वायुकी सैर

सूर्यकी किरणोंके किसी कमरेमें प्रवेश करने पर उसके रास्तेमें रेतके जो कण दिखायी पड़ते हैं, उन्हें त्रसरेणु कहते हैं:—

जालान्तर गते भानौ सूक्ष्मं यद् दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते॥

इन्हींको देखकर भारतीय ऋषियों और यूनानी-दार्शनिकोंने परमाणु-वाद की रचना की। भारतीय ऋषियोंके मतानुसार परमाणु त्रसरेणुका तीसवां हिस्सा है:—

जालां तरगते रश्मौ यत्सूक्ष्मं दृश्यतेरजः।
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः सडच्यते ॥

परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक परमाणु त्रसरेणुके करोड़वें हिस्सेसे भी छोटा होता है।

अब थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि हमें दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी है, जिसके कारण हम वायु को भी देख सकते हैं और प्रत्येक वस्तुका आकार हमें १० करोड़ गुणा बड़ा दीखता है। तो हमें एक अद्भुत दृश्य दिखाई देगा। प्रत्येक त्रसरेणुमें हमें करोड़ों अखरोटके बराबर के कण दिखलाई देंगे जो बड़े वेगसे पेंडुलमकी नाईं हिल रहे हैं। त्रसरेणुके आसपास अर्बों और खर्बों वायुके कण झपट कर इधर उधर जाते हुए नज़र पड़ेंगे। इनमें से प्रत्येक ५२५ गज़ प्रति सेकंडके वेगसे भ्रमण कर रहा है। यह दशा तो निस्तब्ध वायु की है। आंधीमें तो यह गति और भी वेगवती हो जाती है। ज़रा सोचिये कि यह अणु कितनी तेज़ीसे भ्रमण करते हैं। तेज़से तेज़ डाकगाड़ी भी प्रति सैकंड २७ गज़से अधिक नहींचल पाती। हां, कुछ वायु-यान अनुकूल परिस्थितिमें ५५ गज़ तक उड़ लेते हैं। तो स्पष्ट है कि यह अणु तेज़से तेज़ डाकगाड़ीसे लगभग २० गुने और वायुयानोंसे १० गुने वेगसे रमते रहते हैं। इनके आकारका ध्यान रखते हुवे तो यह कहना पड़ता है कि यह ग़ज़ब ढ़ाते हैं। कहां एक इंचका पांच करोड़वां भाग (अणुका व्यास) और कहां ५२५ गज़। यदि आप भी उसी हिसाबसे अपनी ऊंचाई का ध्यान रखकर एक अरब मील एक सेकंडमें चलने लगें तो अणुकी बराबरीका दावा कर सकते हैं।

आइये अणिमा सिद्धिके सहारे हम भी अणुके लाखवें टुकड़ेके बराबरका रूप धारण करलें और एक अणु पर सवार हो इस अणु-संसारकी सैर देखनेके लिए एक तरफ खड़े हो जायं। यह देखिये बातकी बातमें दसहज़ार वायुके अणु हमारे सामनेसे निकल गये। इनमें से पहचाना या नहीं, ७८०० नत्रजनके थे, २१०० ओषजनके, ६४ आर्गनके, ३ कर्बन द्विओषिदके और एक उज्जनका। और गैसोंके अणु तो बहुत ही कम दिखाई देते हैं। यदि यह मानलें कि हवाका एक अणु एक सेकंडमें हमारे सामनेसे निकलता है तो पाँच बरसमें नियनके २६० हीलियमके २०, क्रुप्टनके ७ और ज़ीननके १अणुकी नौबत आयगी। परन्तु एक मिनटमें ही ४८ नत्रजनके और प्रायः १२ ओषजनके सामनेसे निकल जायंगे।

एक अंगुष्ठ मात्र वायुमें लगभग १६० संख अणु होते हैं। फिर ज़रा खयाल तो कीजिये कि समग्र वायुमण्डलमें, जो सैकड़ों मील ऊंचा, हज़ारों मील लम्बा चौड़ा है कितने अणु होंगे। यह महती संख्या कल्पनातीत है। हवाके प्रत्येक झोंकेमें, आंधीके प्रत्येक आक्रमणमें कितने अणु आपके पाससे निकल जाते होंगे, इसका हिसाब लगाना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है! परन्तु स्मरण रहे कि अणु संसारका प्रत्येक प्राणी धर्म परायण है। वहांके अटल नियमोंका कभी कोई उल्लंघन कर ही नहीं सकता ईश्वरकी महिमाका साक्षात् अनुभव इस जटिलतामें नियमोंकी अटलता पर विचार करनेसे हो सकता है।

[असमाप्त]

—:०:—

भारत-गीत ६३

हृदय हृदय के बीच दयानिधि,
सदय प्रेम भरि पूर भरौ
जड़ जंगम जग मांहि सबहि थल,
विमल प्रेम-मय रूप धरौ
सबहि निधिन कौं करौ प्रेम-निधि,
सब विधि जग-सन्ताप हरौ
सहज-प्रेम-संसर्ग-सेतु स्रजि,
प्रभु भू-स्वर्ग हि एक करौ

श्रीपद्मकोट, ३१-७-१९१९ —श्रीधर पाठक

—:०:—

नई ईजाद ! नमूना मुफ़ !! नई चीज !!!

इनाम १०) रुपया मसाला झूठा साबित करने वाले को

शीशा जोडने का मसाला

इस मसालेसे जोडनेपर टूटे हुए शीशे व चीनी के बरतन नये की तरह काम देने लगते हैं।

(१) यार शीशा (Glaztico No 1) चिमनी आदि आंचके सामने रहनेवाले बरतनोंके लिये।

(२) जार शीशा (Glaztico No 2) बोतल तश्तरी वगैरह, ठंडी चीजें रखने और पानीसे धोये जानेवाले बरतनोंके लिये।

धोखे से बचने और परीक्षा के वास्ते डाक खर्च आदि के लिये चार आने आने पर नमूना मुफ़ भेजा जाता है।

दाम—छोटी शीशी ।) मझोली शीशी ।≈) बड़ी शीशी ॥-)

एजन्टों के लिये खास कमीशन मुकर्रर है

पता—गयाप्रसाद भार्गव

मुहल्ला नरही—लखनऊ।

कामोत्तेजक वटिका—(ताकतकी प्रसिद्ध दवा)

यह दवा शारीरिक और मानसिक शक्तिको बढ़ाती है, बुद्धि और याददाश्तको तेज़ करती है, कबज़ियतको मिटाती है और वीर्य्यको पुष्ट करती है।

मूल्य २० दिनकी खुराक ४० गोलियोंकी डिब्बीका १) पोस्टेज ।)

पता—कपूर चन्द जैन, जनरल आर्डर सप्लायर, आगरा सिटी।

राजपूत औषधालय कटरा, प्रयागकी कुछ औषधें।

शुद्ध छोटी हर्रें

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी॥

हर्र मनुष्यकी माताके समान हितकारिणी है। माता तो कभी कभी कोप भी करती है पर हर्र सदा लाभ पहुंचाती है। यह छोटी हर्र अनेक प्रकारकी पाचक औषधोंसे शोधकर आयुर्वेद शास्त्रके मतानुकूल परम स्वादिष्ट तैयार की गई है, जो कि जादूकी तरह अपना प्रभाव दिखलाती है और समस्त उदर रोगोंके नाश करनेमें सत्य सिद्ध हो चुकी है। इसके सेवन करनेसे पेटका भारी रहना, जी का मचलाना, खट्टी डकारोंका आना, गलेका जलना, पेट मरोड़ना, दस्त खुलासा न होना, पेटमें कीड़ोंका पड़ जाना, वायु का न निकलना, अफरा, अजीर्ण, जलन्धर, वायुगोला, बरबट, शूल, संग्रहणी, बवासीर आदि रोग शर्तिया और समूल नष्ट हो जाते हैं। मूल्य १०० हर्र की डिब्बी का ।)

महा अजीर्णकंटक

अजीर्ण या पेट में उत्पन्न रोगोंकी यह महौषध है।

यह मन्दाग्नि, अजीर्ण, अफरा, खट्टी डकार, वायुगोला, पेटकी सख्ती, गड़गड़ाहट, कब्ज, आँव, अतिसार, संग्रहणी, हैज़ा, जी मचलाना व कय, खांसी, सांस, कफ, जुकाम, ज्वर, गठिया और सब प्रकार के दर्द आदि के लिये यह अत्यन्त गुणकारी है तथा विधिवत् सेवन करनेसे स्त्रियों और बच्चोंके भी समस्त रोगोंको नष्ट करता है।

दाम ॥) ४ डिब्बी मंगानेसे १ डिब्बी मुफ़्त।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मेहता कृष्णाराम द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools nnd Libraries.

पूर्णसंख्या ५६ Reg. No. A - 708

भाग १० कुम्भ १९७६। फरवरी १९२० संख्या ५

Vol. X. No 5

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय--सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १० { कुम्भ, संवत् १९७६ । फरवरी, सन् १९२० । } संख्या ५

विज्ञान-सूत्र

[ले०-वही अब्दुल्लाह]

मानव जीवन अमूल्य है। प्रत्येक मनुष्य संसारके लिए कोई उद्देश्य विशेष लेकर अवतीर्ण हुआ है। यदि इस उद्देश्य पूर्तिमें वह सफल न हुआ तो उसका जीवन व्यर्थ गया। उसका उद्देश्य व्यक्तिगतरूपसे चाहे जो हो, पर जब प्रकृतिने उसे सार्वजनीन वा सामाजिक वा जातीय वा राष्ट्रीय जीवनका एक अंग रचा है, जब उसे स्थानविशेष दिया है, तो साथ ही वह समाज वा राष्ट्रके लिए और राष्ट्र वा समाज उसके लिए दायित्व भार रखता है। अतः किसी व्यक्तिको अपनी या परायी शक्तिके अपने या पराये जीवनके अथवा उनके रूपान्तर मन वचन कर्म्म और सम्पत्तिके अपव्ययका तनिक भी अधिकार नहीं। कोरे संचयसे भी काम नहीं चल सकता। जहां सद्व्ययका साधन नहीं है वहां संचयकी गिनती अपचयमें और परिश्रमकी अपश्रममें होती है। इस विचारसे बच्चेकी शिक्षा भारी दायित्वका काम है। शिक्षकका इतना ही कर्त्तव्य नहीं है कि वह देखता रहे कि बालकके जीवनका अपव्यय न हो। उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह देखता रहे कि सद्व्ययके समस्त उपलब्ध साधनोंसे वह लाभ उठा रहा है वा नहीं, अथवा भावी जीवनमें उसे उन साधनोंसे लाभान्वित होनेका मार्ग प्रशस्त हो रहा है या नहीं।

इस कसौटीको लेकर जब हम प्रचलित शिक्षा पद्धतिपर विचार करते हैं, तो भ्रमका भारी परदा उठ जाता है और अपव्ययका भयानक दृश्य देखनेमें आता है। दस बरस विज्ञानकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा पाये पीछे हमारे देशके अनमोल धन हमारे ग्रेजुएट कानूनकी परीक्षा और वकालतके पेशेके भ्रमरावर्त्तमें पड़ जाते हैं, अथवा क्लार्की आदि नौकरियोंके लिए मारे मारे

फिरते हैं, या कोई ऐसा कारबार कर लेते हैं जिससे पहलेके पढ़ंत लिखंतसे कोई सरोकार ही नहीं। एक ओरसे ऐसी व्यक्तियोंकी अद्भुत रचना-में समाजका सार्वजनीनधन और शक्तिका अपव्यय होता है, दूसरी ओरसे व्यक्तिकी भी जीवन हानि होती है। लाभ कुछ नहीं, हानि अपरिमित। शिक्षा और परीक्षाकी धारासे निकल आनेपर जहां स्नातकने कपड़े बदले कि विद्यास्रोतके निमज्जनका आनन्द सपना हो गया। उसकी स्मृति मात्र कभी कभी आनन्द दे जाती है परन्तु लाभ क्या? प्रकृतिको क्या मिला? हानि यह भारी हुई कि धोबीका कुत्ता न घरका रहा न घाटका। स्नातक जो अब वकील है यही दस बरस आईन सम्बन्धी विषयोंकी परिपक्वतामें लगाता तो अपने पेशेका शीघ्र ही रत्न हो जाता। यह तो अभागी वकालत की ही मिसाल हुई। अन्य शिक्षासे असम्बद्ध जीविकाक्षेत्रोंमें भी यही दशा है।

जो लड़के या उनके अभिभावक भावीके इन विचारोंको लेकर विद्यामंदिरके पवित्र द्वार खट-खटाते हैं उन्हें मार्गनेता ("Usher") विशेष पग-डंडियों या पिटी हुई सड़कोंसे ले जाता है। कटी नयी "Courses" गलियोंकी राहसे ही वह दूसरे फाटक तक जा सकते हैं। अपने लिए सीधी राह वह आप तजवीज़ें इस बातकी कतई इजाज़त नहीं। उन्हें हुक्म होता है कि तुम खिचड़ी पकाना सीखा चाहते हो तो सोनेकी पतीली लाओ, उसमें ही पकाना सिखाया जायगा। या हम उसमें केवल पानी औटाना सिखायेंगे। खिचड़ी तुम यहांसे जानेपर पका देखना।

बहुतोंने उद्योग किये कि हम ज्यादा सीधे, अधिक सुगम और लाभदायक मार्ग निकालें, चन्दे हुए, तन मन धन अर्पण हुए, नये रास्ते निकले, पर दशा वही रही, धन और शक्ति कितना ही लगे पर हम वहीं रह गये। बल्कि एक कदम पीछे हटे, आगे बढ़नेकी नौबत न आयी। हमारी चेष्टा-ओंका फल देखनेमें तो सुन्दर दीखा, पर निकला नयनाभिराम इंद्रायण, ग़नीमत समझते अगर हम अकबरकी ज़ुबानमें इतना ही कह सकते :—

"वही है सूत मामूली मगर चर्खा तिलाई है।" पर हमें रोना तो इस पर आता है कि चरखेमें इतना सोना भी लगा और वह मामूली सूत भी उससे नसीब न हुआ।

साधारण तथा कट्टर निरीक्षकका ध्यान तथ्यों-पर ही रहता है। अनुमान करनेवाले कारण चाहे कैसे ही समझें उनके अनुमानका निर्विवाद होना कठिन है, पर जिन भौतिक एवं गोचर तथ्योंको बड़ी निष्ठुरतासे कदम जमाये देखते हैं उनसे आंख मूंदकर शुतुर्मुर्गकी तरह तजाहुले आरिफ़ानाकी रेतमें सिर गाड़नेसे कहीं हम बच सकते हैं। बचने का उपाय है अविद्यारूपी शत्रुसे मद मुकाबिल होकर लड़नेमें, भ्रमका क़िला तोड़ने में, प्रकृति देवीकी सहायताके लिये उसके चरणोंमें अपनी सेवाकी बलि करनेमें, शक्तिका बाहम सिंह होकर भ्रान्तिदानवके दमनमें।

भ्रम अनेक हैं जिनकी विस्तृत आलोचना कहीं और की जायगी, कोई करेगा ही। अपने राम तो कर्त्तव्य परायणोंके सामने काम धर देने-वालोंमें हैं। अच्छा समझें तो सिद्धिदाता गणेश-का नाम लीजिए, बिस्मिल्लाह कीजिए, नहीं तो इस प्रस्तावको भी उसी मामूली सूतका बिगड़ा रूप समझ कर संतोष कर लीजिए।

शिक्षाकी आधुनिक प्रथा संशोधनीय है, परन्तु उसका संशोधन देशकालकी आवश्यकताके अनुकूल होना चाहिए। देशकी भाषामें मिडिल की कक्षा तक शुद्ध शिक्षा इस तरहकी मिलनी चाहिए कि बालक चाहे तो केवल सैद्धान्तिक (Theoretical) विद्याके लिए आगे अध्ययन करे अथवा व्यावहारिक (Practical) विद्याका अनु-शीलन आरम्भ करे। लेखककी रायमें व्यावहारिक वह सब ज्ञान है जिसमें साधारण वा असाधारण ज्ञातृत्वके साथ ही साथ हाथकी सफाई और कारीगरीकी ज़रूरत हो, सीखनेवाला क्रिया

कुशल बने, भविष्यमें इन्जिनियर या रासायनिक या शल्यचिकित्सकादि से लेकर मामूली करकला कुशल दरज़ी, जुलहा, मोची, कुम्हार, बढ़ई, लोहार आदिका काम जीविकार्थ या आविष्कारार्थ कर सके। सैद्धान्तिक वह सब ज्ञान है जिससे मनुष्य काव्य, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, कानून आदि विषय जानकर सिद्धान्त शिक्षक, लेखक या वकील आदि हो सके अथवा विचार और तर्क द्वारा दर्शनोंका दिग्दर्शन करता कराता रहे। इन प्रान्तोंके आठवें दरजेको ही प्रवेशिका मानना चाहिये और अंग्रेज़ी की शिक्षाका आरम्भ इस सीमा तक पहुंच जानेके बाद होना चाहिये। जिन्हें बहुत ऊँचे ज्ञानविज्ञानका समीक्षात्मक या आविष्कारात्मक अनुशीलन करना हो वह तत्तद्विषयक ग्रंथोंकी ही छोटी छोटी रीडरोंके द्वारा उचित शब्दावलीसे पूर्ण परिचय करलें और इतनी अंग्रेज़ी जान जायं कि पुस्तक पढ़कर कभी कभी कोषकी सहायता भी लेकर अपने विषय विशेष की पुस्तकें अङ्गरेज़ीमें समझ लें। धारा प्रवाह अङ्गरेज़ी बोलनेकी अथवा लिखनेकी जिन्हें इच्छा होगी वह थोड़े ही होंगे, वह अपना प्रबन्ध स्वयं करें। उनके लिए सभी जनता क्यों सतायी जाय। कौंसिलकी, दरबारकी, अदालतोंकी सभाओंकी, सब जगहकी भाषा अपनी देशी भाषा होनी चाहिए और अङ्गरेज़ी भाषा की ऊँची अभिज्ञता आवश्यक न होनी चाहिए। सिविल सर्विस तथा एजुकेशनल सर्विसमें जो अङ्गरेज़ आते हैं, उन्हें हमारे देशकी भाषा पढ़नी पढ़ती है, परन्तु नाम-मात्र, और उन लोगोंकी संख्या भी थोड़ी है। उन पर ज़ोर डालना चाहिए कि वह हमारी भाषा अच्छी तरह सीख लें। तभी भारतवर्षमें जीविका कमाने के अधिकारी समझे जाँय। जो हमारे ही भाई देशनिवासी अङ्गरेज़ीका पक्ष लेकर हमारे देशकी करोड़ों जनता के सुभीतेकी अवहेला करते हैं, हम उनके बुद्धि विपर्य्यय पर तरस खाते हैं। उनकी परार्थ बुद्धिको सराहे बिना नहीं रह सकते। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे लोग संख्या में थोड़े नहीं हैं। अङ्गरेज़ीकी मायाने हमारे देशको इतना आवृत कर लिया है कि मातृभाषाके महत्व को और उसके साथ बड़े भारी स्वार्थके प्रश्नोंको हम भूल जाते हैं।

हमको यह भी याद रखना चाहिए कि बिना शिल्पकी उन्नतिके हमारा भावी जीवन असंभव है। क्लार्की, वकालत, आदिमें अब बिल्कुल गुंजायश नहीं है। अतः शिक्षाविभागमें कालिजों और विश्वविद्यालयों में कौड़ी कौड़ी अर्थकरी शिक्षाकी ओर व्यय होना चाहिए। इसके लिए लोकमतकी शिक्षाकी आवश्यकता है।

मिडिलतक शिक्षा सबकी एकसी होनी चाहिए; चाहे पंडित और शास्त्री बनना हो, चाहे लोहार बढ़ई, जुलाहा होना हो, और चाहे हाईकोर्टकी जजी या वकालत करनी हो। शास्त्री बननेको सभी आधुनिक विज्ञान और दर्शन संस्कृतकी प्राचीन प्रथाके अनुकूल पढ़ाये जाने चाहिए कि प्रत्येक विद्वान् बहुज्ञ निकले और उसपर कूपमंडूकवाली कहावत चरितार्थ न हो। सायंस आर्ट और ओरियंटल-या व्यवहार, सिद्धान्त और प्राच्य-विद्या-यह विभाग बने रहें परन्तु विशेषता (Specializatio) नवीं कक्षासे ही आरंभ हो जाय, विद्यार्थियों का विभाग उसी कक्षासे हो जाय।

छात्र एक मुख्य विषयके अनुशीलनार्थ एक प्रकारके विद्यालयमें प्रविष्ट हो, परन्तु उस विद्यालयमें उस विषय विशेषके आनुषंगिक विषयोंको उतना अवश्य सिखाया जाय जितनेके बिना छात्रका यथेष्टरीत्या पढ़ना ही असाध्य होगा। जैसे व्यावहारिक रसायन पढ़नेवालेको जितना भौतिक तथा गणित जानना अनिवार्य्य है उतना पढ़ानेका प्रबन्ध रसालयमें (वा रसायन विद्यालयमें) ही रहे। रसायन भौतिक आदि जहाँ केवल सिद्धान्तरूपसे पढ़ाये जाते हों वहाँ आनुषंगिक विषयोंका उतना ही समावेश रहे जितना पढ़ाई मात्रके लिये आवश्यक है। शुद्ध

सैद्धान्तिक पढ़ाईमें क्रियात्मक ज्ञानकी तिलभर भी आवश्यकता नहीं है। कोरे सिद्धान्तोंकी पढ़ाईमें उतना समय भी न लगेगा, जितना अब लगता है।

यह कहा जा सकता है कि हमने अत्यन्त सूक्ष्म रीतिसे बड़े महत्त्वके परिवर्तनोंका यहाँ दिग्दर्शन किया है, और इतने थोड़े दिग्दर्शनसे काम नहीं चल सकता। परन्तु यह स्मरण रहे कि इन परिवर्तनों का विस्तृत वर्णन आज हमारा मुख्य विषय नहीं है।

शास्त्री परीक्षाकी तय्यारी करनेवालोंको विज्ञान पढ़ानेमें लेखककी यह अनुभव हुआ है कि जो लोग विज्ञानका अध्ययन केवल सिद्धान्त जाननेके लिए करते हैं उनके लिए क्रियात्मक विज्ञानमें परिश्रम करना शक्तिका अपव्यय है। साथ ही यह बात भी नहीं है कि क्रियात्मक शिक्षा बिना उन्हें सिद्धान्त का ज्ञान ही न हो। कठिनाई केवल इतनी ही है कि जिस अध्यापकने पाश्चात्यरीतिसे शिक्षा पायी है, उसे यह कम सूझती है कि सिद्धान्तों को बिना क्रियाकी शिक्षाके कैसे पढ़ाया जाय। किन्तु प्राचीन दर्शनोंमें वैशेषिक और न्याय और थोड़ा सांख्य भौतिक विज्ञान ही सरीखे हैं, परन्तु उनकी शिक्षामें क्रियात्मक कर्म कोई अंग नहीं है। इसे कोई दोष भले ही समझे परन्तु जो विषय दार्शनिक अपनी प्राचीन पद्धतिसे पढ़ाते हैं उनमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होती। रही परीक्षाओं और प्रयोगोंकी बात सो विश्वकर्मा तन्त्र आदि शिल्पशास्त्री, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि ज्ञानविज्ञानविशारद इन सिद्धान्तोंका प्रयोग बराबर किया करते थे और अनुभव की कसौटी पर कस लेते थे। इस प्राचीन प्रथाको पुनरुज्जीवित करनेसे सहजही वह त्रुटियां दूर हो जाती हैं। लेखकने स्वयं अनुभव किया है कि सूत्रोंमें विज्ञानके गहनसे गहन सिद्धान्त समझाना कठिन नहीं है। कुछ दिनों इस पुरानी प्रथा पर पढ़ानेके प्रयत्नमें विज्ञान सम्बन्धी अनेक सूत्र रचे गये। या यों कहिये कि सूत्र रचनाका दुःसाहस किया गया। अन्ततः देखा गया कि इस रीति से विज्ञान शिक्षामें बहुत सौकर्य्य होता है।

हमारे एक परममित्र "मौलाना महजबीन" ओझा महोदयने जब संस्कृतभाषाकी एक पत्रिका निकालनेका प्रस्ताव कई बरस हुए देशके एक भारी मौलवी नेताके समक्ष उपस्थित किया था "तब मुल्ला महोदयने यह उत्तर दिया था कि बूढ़ी दादीको आभूषण पहनाकर क्या करोगे। हिन्दी आदि नयी बेटियों बहुओंको अलंकृत करो जिनकी शोभा देखने योग्य होगी।" पर हमारे मित्र ने न माना। पत्रिका निकाल ही दी। चली भी। बन्द भी हुई। उनका अरमान था कि विज्ञान सूत्र ग्रंथित करके छापे जायं, पर वह अरमान मनका मनमें ही रह गया। नेता महोदयकी बात हमें अबतक याद है। क्योंकि नेता महोदय वयोवृद्ध और अनुभवी हैं। इसी तरह हमने बहुत सोच विचार कर यह भी निष्कर्ष निकाला कि संस्कृतरूपी वृद्धा दादीके मुखसे निकले सूत्ररूप "उपदेश" [व्याकरणमें उपदेश शब्द विशेष महत्त्व रखता है] बच्चे अधिक गौरव अधिक आदरमान और महत्त्व देकर कंठस्थ और हृदयंगम करेंगे। यह उपदेश वृद्धाके आभूषण न होंगे। वरन् वह रत्न होंगे जो वयोवृद्ध अनुभवी गुरुजनोंसे बच्चोंको प्रसादरूप मिलते हैं। हमने यही समझ कर जो सूत्र रचे यहाँ प्रकाशनार्थ लिख दिये।

विज्ञान पारंगत विद्वज्जनोंसे अब्दुल्लाहकी विनीत प्रार्थना है कि सूत्रोंके क्रम पर, शब्दावली पर एवं भाव शुद्धतापर पूरा विचार करें और जहाँ कहीं अव्याप्ति अथवा अतिव्याप्ति दोष आगये हों, सूचना दें। इसमें अब्दुल्लाहकी मौलिकता कुछ नहीं है, रूप देने मात्रके लिए वह उत्तर दाता है।

सूत्ररचनाकुशल "अवच्छेदकावच्छिन्न" तार्किक फक्किकाओंकी फंकी फांकनेवाले एवं अन्य दूरदर्शी दीर्घश्रुत दुरूह दुर्बोध दुर्वृत्त-दुर्व्याख्य पदोंके प्रणयनमें प्रखर बुद्धिवाले विद्वानोंसे बद्धांजलि निवेदन है कि विज्ञानविशारदोंके विवादपर विचार न कर विशुद्ध सहृदयतासे इन सूत्रनामधारी अस्तव्यस्त वाक्योंको सुधारनेका प्रयत्न करके अपने अकिंचित्कर किंकरको चिरकृतज्ञ करें। किम्बहुना।

विज्ञानसूत्राणि

रसायनकाण्डम्

१—अथविज्ञानानुशासनम्।

२—अनुक्रान्तानुभूतज्ञानंहि विज्ञानम्।

३—तद्द्विधा जीवाजीवभेदात्।

४—ज्यौतिष-रसायन-भूगर्भ-भौतिकादीन्यजीव-विज्ञानानि।

५—आयुर्वेद-वानस्पत्यादीनि जीवविज्ञानानि।

६—दैर्घ्यवेध्रप्रस्थानि देशपरमाणानि।

७—देशपरिमाणैरावृतमित्यायतनम्।

८—तदन्तर्गतमवस्तुमात्रमिति मात्रा।

९—मात्राऽऽयतनयो निष्पत्तिरिति घनत्वम्।

१०—मात्राऽनुरूपेण पृथिव्याऽऽकर्षणमत्र भारो गुरुत्वं वा।

११—शतांशमितिरितिलम्ब परिमाणम्।

१२—तद्वर्ग एव क्षेत्रमानम्।

१३—ग्राम इति भारमानम्।

१४—सेकंडवा सार्द्धद्विपलानीति कालमानम्।

१५—लीटर वा सहस्रं सीसी इत्यायतनमानम्।

इति परिभाषा

१६—स्थूलत्वसूक्ष्मत्वयोरुत्तरोत्तरवृद्धया प्रकृतेः पंचधाऽवस्था।

१७—तन्नाम भूततत्त्वम् वा।

१८—क्षित्यम्मरुदग्निखमितिपंचभूतानि।

१९—अविभक्तास्थूलरूपाप्रकृतिराकाशः।

२०—तत्र तत्स्पन्दनेन विद्युत्कणाः।

२१—विद्युत्कणा एव क्रियाभेदेन तापो ज्योतिर्गतिर्वा।

२२—तेषां सूक्ष्मावकाशे परिस्पन्दनेन परमाणुस्थितिः।

२३—तेषां संख्याभेदात् युयुत्सा घनत्वरूपेषु परमाणवो विविधाः।

२४—सन्निकर्षेण स्वातंत्र्येण परिभ्रमन् परमाणुरेव तत्समूहो वा अणुः।

२५—एक विधपरमाणु संयोगादणुर्मौलिकः

२६—विविधपरमाणसंयोगात्सयौगिकः।

२७—परमाणोरभेद्यत्वात्तत्तद्भारविशिष्टनिष्पत्तिषु संयोगः।

२८—अणोर्मौलिकत्वाद्यौगिकत्वाद्वा द्रव्येषु तत्त्वम्।

२९—आंगारयौगिक विषयत्वाद्रसायनमांगारिकम्।

३०—अनांगारिके अन्ययौगिकवृत्तमभिधेयम्।

३१—अणुसमूहेष्ववकाशात्परिस्पन्दन संकोचप्रसाराः।

३२—सनिराकारस्तरलो वायवीयः।

३३—गत्यन्तरोनत्वात् समतलाधारानुरूपत्वात्तरलत्वाच्चस एव द्रवः सलिलं वा।

३४—अत्यल्प गत्यन्तरत्वात् दृढ़स्वरूपस्स एव कठिनम् क्षितिर्वा।

३५—परमाणुष्वन्योन्यसंयोगो वियोगोवा रासायनिको विकारः।

३६—अन्ये विकारा भौतिकाः।

३७—विविधेष्वणुष्वतिसामीप्यम् संमिश्रणम्।

३८—अणोरन्तर्गतः परमाणुस् तस्योपादानम्।

३९—उपादानान्योऽन्यसम्बन्धः संस्थानम्।

४०—अणुषु तेषां निष्पत्तिः स्थिरा।

४१—संस्थानमेव स्थिरम्।

४२—वायव्ये भारेणाकुंचनम् तापेन प्रसरणं च।

४३—तापभारयोः स्थिरत्वे स्थिरं तस्यायतनम्।

४४—स्थिर समायतनेषु वायवीयेषु अणोः संख्याः समाः।

४५...उज्ज परमाणुभार एव सूक्ष्मं भारमानम् ।
४६...उज्जनोहि वायव्योयापेक्षिकघनत्वमानम् ।
४७...वायव्यीयस्यापेक्षिकघनत्वं तस्याणुभारार्धम्

क्रमशः ।

जार्ज स्टिफिन्सन

[लेखक—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस्-सी., एल्. टी., विशारद]

पिछले लेखमें* बतलाया गया था कि जार्ज स्टिफिन्सन एक कुलीके घर जन्म लेकर अपने उद्योग और अध्यवसाय से अनेक गलयुक्त बैलटके बनानेमें किस प्रकार सफल मनोरथ हुआ। अब बतलाया जायगा कि आगे चलकर बाधाओं और विरोधोंका सामना करते हुए उसने क्या क्या काम किये। इंजनका सुधार करनेमें उसका प्रधान उद्देश यह था कि खानमें काम करनेवालोंकी तथा मालिकोंकी दशा सुधर जाय और साथ ही साथ देशको लाभ भी पहुंचे। किलिंगवर्थ के कोयलेकी खदानमें इंजनका मिस्त्री नियुक्त होनेपर इसने यह युक्ति तो निकाली ही थी कि कोयला खानके बाहर खींचा जा सके और घाट तक पहुंचाया जा सके। अब इसने यह सोचा कि जब खानके बाहर कोयला एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुंचाया जा सकता है तब खानके भीतर भी जहां मील डेढ़ मीलकी दूरीसे कोयला ढोकर एक जगह इकट्ठा किया जाता है इंजनसे काम लिया जा सकता है। वह यह तो जानता ही था कि भापके बलसे तरह तरहका काम लिया जा सकता है, केवल विशेष कामके लिए विशेष युक्तिकी आवश्यकता है। इसलिए खानके भीतर इंजनसे काम लेना चाहिए। चलते हुए इंजनमें गाड़ियां जोड़ देनेसे सबकी सब खिंची चली जा सकती हैं। इस युक्तिके निकाल लेने मात्रपर ही वह सन्तुष्ट नहीं था। वह सदैव उसके गुण दोषका विवेचन किया करता था। जहां कहीं सुधारनेकी आवश्यकता समझ पड़ती थी सुधारता था। उसने अनुभवसे जान लिया कि रेलकी पटरी जब तक उचित रीतिसे नहीं लगायी जायगी तब तक इंजनसे उतना काम नहीं लिया जा सकता जितना वह दे सकता है। पटरीके प्रत्येक जोड़पर हचकोला होता था, पटरीके नीचेकी मिट्टी कहीं कहीं बहुत दब जाती थी जिससे जोड़ कभी कभी उखड़ जाते थे और इंजन पटरीसे दूर गिर पड़ता था। इन सब कठिनाइयोंसे उसको विश्वास हो गया कि रेलकी पटरी जोड़ने और बैठानेकी रीतिमें जब तक सुधार नहीं होगा तब तक गमनागमनकी रीतिमें सुगमता नहीं हो सकेगी। इसलिए उसने पटरियोंके जोड़ने तथा प्रत्येक जोड़को थामे रखनेके लिए एक प्रकार की कुर्सी रखनेकी विधि निकाली जिसको उसने पेटेन्ट भी करा लिया। किलिंगवर्थकी खानके मालिकोंसे उसने यह आज्ञा ले ली कि सप्ताहमें दो दिन वह निउकैसलके लोहेके कारखानेमें (Walker Ironworks) काम करे। इस कारखानेके व्यवस्थापक मि. लोशन स्टिफिन्सनको १०० पौंड वार्षिक वेतन देने तथा आविष्कारोंके लाभमें भाग लगानेका निश्चय कर लिया। रेलकी पटरी और उसपर चलनेवाले इंजन दोनोंको स्टिफिन्सन एक ही यंत्रके अंग समझता था। यहां तक कि पहिये और पटरी को वह पुरुष और स्त्री समझता था। पटरीमें सुधार कर चुकनेपर उसका ध्यान पहियेकी ओर गया। उसने सोचा कि ढलवां लोहेकी जगह यदि पिटवां लोहेका पहिया बने तो हलका भी हो और दृढ़ भी रहे। १८७३ विक्रमीयके बने इंजनमें उसने ऐसे ही पहिये लगाए थे।

इन सब आविष्कारोंके साथ स्टिफिन्सन का ध्यान ऐसी लम्प बनानेकी ओर गया जिससे कोयलेकी खानमें आग न लग सके और काम करनेवालोंकी जान जोखोंमें न पड़े, क्योंकि कोयले-

*विज्ञान भाग ८ पृष्ठ २४१ से आगे

की खानोंमें कभी-कभी ऐसा धड़ाका होता था कि सैकड़ों मजूर दमके दममें उड़ जाते थे। इस ओर भी यह सफल हुआ, यद्यपि पीछे डेवीकी युक्ति स्टिफिन्सनकी युक्तिसे कहीं सुगम निकली। उस समय तक स्टिफिन्सन उतना प्रसिद्ध नहीं हुआ था जितना डेवी था। डेवी अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के कारण दूर दूर तक विख्यात था और रायल सोसाइटीका सभापति था। परन्तु स्टिफिन्सन तो एक साधारण मिस्त्रीका ही काम करता था। दोनों प्राण-रक्षिणी लम्प (Safety lamp) के बनानेमें स्वतन्त्र रीतिसे उद्योग करने लगे और अलग अलग जिस सिद्धान्तपर पहुँचे वह ठीक निकला। स्टिफिन्सनने अनेक प्रयोगोंसे परिणाम निकाला कि यदि लौ से उत्पन्न हवाका झोंका ऐसी नलीसे निकले जिसका छेद उचित आकारका हो तो नली मेंसे धड़ाका उत्पन्न करनेवाली गैस झोंकेके कारण लौके पास नहीं जा सकती। ऐसी लम्प यदि गैसके भीतर भी रक्खी जाय तो जलती रहेगी और धड़ाका नहीं होगा। इस सिद्धान्तके अनुसार उसने एक लम्प बनायी जिसकी परीक्षा २१वीं अक्टूबर सम्वत् १८७२ को की गयी। इसके बाद कुछ संशोधन करके दूसरी लम्प भी बनायी जिसकी परीक्षा ४थी नवम्बर को हुई। डेवीकी लम्प तो पहले पहल ९वीं नवम्बरको लोगोंके सामने लायी गयी, परन्तु स्टिफिन्सनकी तीसरी लम्पकी भी ३०वीं नवम्बरको परीक्षा ली गयी। डेवीकी लम्पसे यह सिद्ध होता है कि जालीदार चद्दरसे लौ बाहर नहीं निकल सकती। इसलिए इसने अपनी लम्पको चारों ओर जालीसे घेर दिया जिसमेंसे हवा तो भीतर जा सकती है परन्तु लौ नहीं निकल सकती। अब यदि विचार किया जाय तो जालीका प्रत्येक छेद एक एक नलीका काम देता है, इसलिए डेवीकी लम्पमें जो सिद्धान्त छिपा था उसीपर स्टिफिन्सन भी पहुँचा था। स्टिफिन्सनने दूसरी लम्पमें नलीकी चौड़ाई कम कर दी थी और बहुत सी नलियां लगायी थीं। तीसरी लम्पमें तो उसने यह संशोधन कर डाला कि धातकी चद्दरोंमें छोटे छोटे छेद किये जाँय और दो चद्दर एक दूसरीसे इतनी दूर रखी जाँय जितनी लम्बी पहली लम्पकी नलियां थीं। यह तीसरी लम्प डेवीकी लम्पसे बहुत कुछ मिलती है। यहां यह कहदेनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती कि इन दोनों महापुरुषोंके पक्षपातियोंने एक दूसरेको बुरा भला कहा है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि किसका आविष्कार पहले और किसका पीछे हुआ।

उस समय बड़े बड़े लोग यह चाहते थे कि भापके बलसे यदि राह चलनेकी भी सुगम रीति निकल पड़े तो अच्छा हो। जब स्टिफिन्सनका ध्यान इस ओर गया तब इसने पहले यह जानना निश्चय किया कि क्या ऐसा करनेसे कोई लाभ भी होगा, क्योंकि बिना लाभ हानि सोचे उद्देश-रहित किसी काममें हाथ डालना बुद्धिमानी नहीं है। उसने तुरन्त ही निश्चय कर लिया कि साधारण सड़कों पर भापके बल गाड़ी चलाना लाभदायक नहीं है, क्योंकि ट्रामकी पटरी पर जो घोड़े १० मन बोझ खींच सकते हैं वही साधारण सड़कों पर एक मन मुश्किलसे खींच पाते हैं। इसके सिवा साधारण सड़कोंका उतार चढ़ाव इतना अधिक और इतनी अधिकतासे होता है कि बहुतसा बल व्यर्थ हो जाता है जिससे किफ़ायत नहीं हो सकती। इसलिए उसने विचार कर लिया कि सड़कें ऐसी बनाई जाँय कि उतार चढ़ाव न हो, वे उतार चढ़ावकी सड़कों पर ही पटरी लगानेसे भारी भारी गाड़ियां सुगमतासे चल सकती हैं और पटरीदार सड़कों पर ही भापके बल चलनेवाले इंजन किफायतसे काममें लाये जा सकते हैं। अपने इन विचारोंको कर दिखानेके लिए अब उसने कमर बांध ली और अन्तमें इन तीनोंमें सफल होकर दूर दूर के नगरोंको एक कर दिया। क्या समझ सकते हैं कि साधारण अंग्रेज़ पर इन तीनों विचारोंमेंसे पहलेका ही क्या

प्रभाव पड़ा होगा ? ऊँची नीची पहाड़ी भूमिका समतल करके सड़क बनाना दिल्लगीका काम थोड़े ही था इसलिए यदि पहले ही प्रस्तावके स्वीकृत करानेमें उसे बहुत कुछ कहना सुनना पड़ा तो अचंभा नहीं था। दैवी और मानवी विघ्न बाधाओं का सामना करनेकेलिए स्टिफिन्सनके दिमाग और परिश्रमका मनुष्य होना चाहिये तभी सफलता हो सकती है। यदि उसमें उत्साह होता परन्तु प्रतिभा न होती तो सफल होना निरा असम्भव ही था। उसने इस बात पर अच्छी तरह सोड़े विचार कर लिया था कि भद्दी और पहाड़ी ऊँची नीची सड़कोंकी अपेक्षा पटरीदार समतल सड़कें कहीं अधिक लाभदायक होंगी। उसने गाड़ी चलानेवाले मालिकोंको समझाया था; कि यदि ऐसा इंजन बनाया जाय जो साधारण सड़कोंपर घंटे में १० मील चल कर २० या ३० मुसाफिरों को मील पीछे १शिलिंग किराया लेकर बरमिघम से लंडन तक पहुंचा सके तो वही इंजन पटरीदार समतल सड़क पर २०० से ३०० मुसाफिरोंको ३० से लेकर ४० मील प्रति घंटा चल सकता है

हेटन कालियरी कंपनीने १८७६ वि० में यह निश्चय किया कि उनकी खानिसे घाटतक आठ मीलकी पटरीदार सड़क बनायी जाय। इसलिए इसने स्टिफिन्सन को किलिंगवर्थकी खानिसे अपने यहां बुलाकर इन्जीनियर नियुक्त कर दिया। इसके हाथमें इतना धन नहीं दिया गया कि यह अपनी सभी अभिलाषाओंको पूरी कर सके। इस लिए सड़कोंके उतार चढ़ावको कई जगह वैसे ही रहने दिया जैसे साधारण सड़कों पर पहले था। उतार चढ़ाववाली सड़कसे समतल सड़क पर गाड़ी चलानेमें दो असुविधाएं दूर हो जाती हैं। एक तो पटरी पर दबाव कम हो जाता है जिससे पहियोंके फिसलनेका डर रहता है। दूसरे चढ़ाव के समय इञ्जनको अपने ही बोझके कारण बहुत बाधाका सामना करना पड़ता है। गाड़ियोंके ऊपर खींचनेकी बात दूर रही क्योंकि इनके कारण भी बाधा बढ़ जाती है। यदि स्थायी इञ्जन एक जगहसे रस्सोंके द्वारा गाड़ियोंको खींचे तो पहली असुविधाका डर नहीं रह जाती। यही कारण था कि अब तक स्थायी इञ्जनोंसे गाड़ियां ऊपर खींच ली जाती थीं। उतरते समय यह भी नहीं करना पड़ता था क्योंकि बोझके कारण वह स्वयम् ही नहीं लुढ़क आती थी वरन् समानान्तर पटरियों पर लौटती हुए खाली गाड़ियोंको ऊपर खींचनेमें भी सहायता देती थीं। १८ नवम्बर सम्वत १८७६ ई० में यह रेलवे खुल गयी।

इस समय तक डरहम प्रान्तकी (County) असीम कोयलेकी खानि बाहरवालोंके लिए किसी काममें नहीं आती थी, क्योंकि यहांसे समुद्र तक पहुंचानेके लिए कोई सुविधा नहीं थी, और पास के रहनेवाले ही इससे थोड़ा बहुत लाभ उठाते थे। उद्योगियोंके चित्तमें यह बात पचास वर्षसे समायी हुई थी कि यहां का कोयला दूर दूर के देशोंमें लेजाकर बेचा जाय परन्तु कैसे ले जाय यही प्रश्न था। किसी किसी का मत था कि खानिसे समुद्र तक नहर खोदी जाय, कोई कहता था कि समुद्रके किनारे तक ट्रामकी सड़क बनाई जाय, इत्यादि। परन्तु कोई युक्ति सुगम नहीं दिखाई पड़ती थी। अन्तमें एडवर्ड पीज़ने विचार किया कि खानिसे समुद्रके किनारे तक डालिङ्गटन से होती हुई स्टाकटन तक रेल की सड़क बनाई जाय और काठ की पटरी लगायी जाय, जिसपर कोयले से लदी हुई गाड़ियां घोड़ोंसे खींची जायं। क्योंकि अब तक उसने यह नहीं सोच पाया था कि इञ्जन के द्वारा भाप के बल गाड़ियां खींचनेमें कितनी किफायत हो सकती है और न उसके ध्यानमें यही बात आयी थी कि ऐसी गाड़ियोंसे मनुष्य भी यात्रा कर सकते हैं। इतनी बातके लिए भी उसको बहुतोंका विरोध करना पड़ा, क्योंकि जो छोटे छोटे खानिके मालिक अपनी आवश्यकतानुसार छोटी छोटी लाइन बनाकर काम निकालते

थे, वह समझ गये कि स्वतन्त्र कम्पनी द्वारा एक बहुत बड़ी लैन बन जानेसे उनके रोज़गारको धक्का पहुंचेगा, परन्तु पीज़ने सबको सन्तुष्ट करके काम आरम्भ करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया।

यह समाचार जार्ज स्टिफिन्सनके कान तक पहुंचा। उसको ऐसा काम करनेकी बड़ी अभिलाषा थी, जिसमें वह अपने अनुभवको बढ़ा सके और अपने उच्च विचारको कार्यरूपमें परिणत कर सके। उसको रेलवे सम्बन्धी प्रबन्ध का अच्छा अनुभव भी हो गया था। इसलिए उसने पीज़से मिलकर यह निश्चय कर लेनेके लिए कि अपने नये कामका प्रबन्धकर्त्ता उसे ही नियुक्त करले डारलिंगटनकी यात्रा की। इस यात्राका उद्देश यह नहीं था कि उसको ऐसी नौकरी मिले जिससे उसका नाम हो या धनकी प्राप्ति हो वरन् वह यही चाहता था कि किसी तरह वह ऐसे कामको अपने ही प्रबन्ध द्वारा करावे, जिसका विस्तार भविष्यमें बहुत होनेवाला है और जिसका उज्वल चित्र उसकी आँखोंके सामने नाच रहा है। पीज़को केवल उसने यही परिचय दिया कि किलिंगवर्थमें इञ्जनका मिस्त्री हूं और आगके द्वारा संचालित रेलवेका इञ्जीनियर नियुक्त होना चाहता हूं। पीज़ भी आदमी परखता था। उसने बातचीतमें ही जान लिया कि स्टिफिन्सनमें क्या क्या गुण हैं। इसलिए उसने संचालकोंसे (Directors) कहकर स्टिफिन्सन को इञ्जीनियर नियुक्त करा दिया। नियुक्त होते ही स्टिफिन्सनने पीज़को किलिंगवर्थमें भापके बल चलनेवाली गाड़ी दिखलाई और उसको राज़ी कर लिया कि यही रीति प्रस्तावित रेलवेमें भी चलायी जाय। पीज़ जैसे बुद्धिमान मनुष्यको विश्वास कराना कठिन नहीं था। इसलिए संवत् १८८० वि० में एकूमें यह संशोधन भी करा लिया गया कि रेलवे गाड़ियोंद्वारा मनुष्य भी यात्रा कर सकंगे। रेलवे एकूमें भापके बल चलनेवाली गाड़ीसे मनुष्यकी यात्रा करनेकी आज्ञा यही पहले पहल दी गयी थी।

यहां नौकरी कर लेनेपर उसको मालूम हुआ कि इञ्जन बनानेवाले मिस्त्री अच्छे नहीं मिलते, जिससे काममें बड़ी बाधा पहुंचती है। इसलिए न्यूकैसिलमें इञ्जन बनानेका कारखाना खोलनेका निश्चय कर लिया जिसमें लगे हुए कारीगर काम करते करते चतुर हो जावेंगे तो नये नये संशोधनोंमें भी सहायता पहुंचा सकेंगे। कारखाना खोलनेकेलिए इसने अपने पास से १००० पौंड की पूंजी भी लगा दी। यह धन खानिके मालिकोंने मिल कर इसकी जीवन रक्षिणी लम्पके आविष्कार करने पर भेंट किया था। मि० पीज़ और इनके एक मित्रने भी पांच पांच सौ पौंड की पूँजी लगायी।

अभी ऊपर लिखा गया है कि मि० पीज़का पहले विचार था कि लकड़ीकी पटरी जमायी जाय। परन्तु स्टिफिन्सनके आते ही यह विचार पलट गया। अब प्रश्न था कि पटरीके लिए पिटवां लोहा अच्छा होगा अथवा ढलवां। स्टिफिन्सनने कहा कि ढलवां लोहे की पटरी बहुत टूटती है इसलिए पिटवां लोहा ही अच्छा है। संचालकोंने आधी सड़क पिटवां लोहे की पटरीसे बनवायी और आधी ढलवां लोहेकी, क्योंकि पिटवां लोहे की बनवानेमें खर्च बहुत बैठ जाता।

इस समय स्टिफिन्सनको जिन जिन विरोधोंका सामना करना पड़ा उनके संक्षिप्त वर्णनसे पता चलेगा कि किसी नये कामका विरोध एक ही देशमें नहीं होता; सब जगह सुधारकोंको कष्ट उठाना पड़ता है। ह्वाइट हैविन (Whitehaven) गज़टमें लिखा गया कि यह कभी सम्भव नहीं कि हज़ारों मन का बोझा खींचती हुई भी बड़े बड़े शीघ्रगामी घोड़ोंकी चालके समान ही रेलगाड़ी चल सकेगी। इसलिए ऐसे प्रस्ताव पर सैकड़ों रुपया लगा देना निरीमूर्खता होगी। टाइन मरकरी (Tyne Mercury) नामक पत्रिकामें

लिखा गया कि बादलके समान गरजते हुए इञ्जन-से खींची जानेवाली गाड़ी पर कोई समझदार आदमी अपना पैसा नहीं खर्च करेगा। इन बेचारों को इसका स्वप्नमें भी खयाल नहीं आया होगा कि कुछ दिनोंमें यही गरजनेवाला इञ्जन सभ्यताकी कसौटी समझा जायगा और इङ्गलैंडके पहाड़ी देशोंको ही नहीं वरन् सारे संसारको एक सूत्र-में बांध देगा।

इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी लैन बन गयी और १८८२ वि० की २७ सितम्बर को खुल भी गयी। कोयले के डब्बे जोड़े गये और उनमें जितने आदमी सुख पूर्वक बैठ सकते थे बैठाये गये और स्टिफिन्सनके हाथका बना हुआ इञ्जन लगाया गया, जिसको स्टिफिन्सन स्वयम् ही चलानेको तैयार हुआ। जिस जिस जगह लैन ठीक बनी थी वहां गाड़ी १५ मील प्रति घंटेके हिसाब से चली।

यह लैन इसलिए बनायी गयी थी कि कोयला सुगमता पूर्वक समुद्र तक पहुँचाया जाय। उस समय मनुष्य का यात्रा करना तो किसीके ध्यानमें भी नहीं आया था। विरोधियोंमें मि. लैमटन भी थे जिन्होंने यह नियम भी करा दिया कि एक टन (२७ मन) कोयलेकी ढोआई मील पीछे दो पैसेसे अधिक न हो। इनका विचार था कि इतने कम किरायेमें कम्पनीको टोटा होगा, परन्तु बात ठीक उलटी निकली। कोयलेकी ढोआईसे ही इतनी आमदनी बढ़ गयी कि कम्पनी थोड़े ही दिनोंमें मालामाल हो गयी। मनुष्योंकी यात्राके लिए भी स्टिफिन्सनने डब्बा बनवाया। पहले पहल जो डब्बा बना उसका नाम Experiment था। जिस दिन लैन खुलनेको थी उससे एक दिन पहले यह न्यूकैसल पहुँचाया गया। उस समय यह बहुत ही भद्दा मालूम होता था। इसके भीतर इधर उधर आगेसे पीछे तक बैठनेका प्रबन्ध था। बीचमें एक लम्बी मेज़ जड़ दी गयी थी। भीतर जानेकी राह पीछेसे थी। रेलगाड़ीमें मनुष्यकी यात्रा करनेका आरम्भ इसी १८८२वि०की शिशिर ऋतुमें हुआ।

इस लैनके खुल जानेके बाद स्टिफिन्सनको लिवरपूलसे मैनचेस्टर तककी लैन बनानेकी चिन्ता हुई। यह नगर बहुत पहलेसे व्यापारके केन्द्र थे। परन्तु अच्छी सड़क न होनेके कारण कभी कभी हफ़्तोंतक काम रोक देना पड़ता था। उसपर भी ढोआई बहुत ज़्यादह देनी पड़ती थी, जिससे व्यापारकी बड़ी हानि होती थी। परन्तु व्यापा-रियोंको इस कठिनाईसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था। मि. जोज़ेफसैन्डर्सने अपने इंजीनियर मित्र जेम्सकी सहायतासे इन दोनों नगरोंको रेलकी लैनसे जोड़नेका विचार किया परन्तु सफलता नहीं हुई। पार्लियामेंटमें इस प्रस्तावका विरोध उससे भी अधिक हुआ जितना स्टाकटन-डार्लिंगटन रेलके बनानेमें हुआ था। जिन जिन जगहोंसे लैन निकालनेका विचार था उनकी पैमाइशका नक़्शा पार्लियामेंटमें उपस्थित करना था। परन्तु जमींदारों और नहरके मालिकों-का विरोध इतना बढ़ गया था कि पैमाइश करने-वालोंको तरह तरहसे दुख दिया करते थे। कभी इनके यंत्रोंको तुड़वा देते थे। कभी उनको जगहसे हटवा देते थे। इसलिए लैन बनानेवालोंको स्थानीय लड़ाकू और बलवान मनुष्योंसे यंत्रकी रखवाली करनी पड़ती थी। तिसपर भी डर लगा रहता था। पैमाइश करनेवाले रात्र दिनमें जिस समय दो चार मिनटका अवसर पाते थे किसी तरह नाप कर लेते थे, क्योंकि ज़मींदारोंकी तरफसे चौकी पहरा केवल इसलिए बैठाया गया था कि लैनवाले पैमाइश न करने पावें। अन्तमें एक कंपनी का संगठन हुआ, जिसने अपना कार्यक्रम १८८१ वि०के अक्टूबर महीनेमें प्रकाशित किया। इसी बीचमें जेम्स एक झंझटमें फंस गये। इसलिए दूसरे इञ्जीनियरके नियुक्त करनेका विचार हुआ। जेम्स स्वयम् स्टिफिन्सनका काम देखने गया और प्रसन्न होकर स्टिफिन्सनको ही नियुक्त कराया।

१८८० वि०के अन्तमें हाउस आव कामन्समें लिवरपूल-मैनचेस्टर-रेलवे-बिल पेश हुआ। इसके विरोधियोंका कहना था कि इन दोनों नगरोंके बीच ४ मीलकी दलदली भूमिपर रेलकी लैन कैसे निकाली जायगी। स्टिफिन्सन जब गवाही देनेके लिए सामने आया तब उसे स्वीकार करना पड़ा कि घंटा पीछे तीनसे ६ मीलकी चालसे ही रेलगाड़ी चलायी जायगी। यदि वह इससे आगे बढ़ता तो लैन बनानेकी आज्ञा ही न मिलती। फिर यह कठिनाई उपस्थित की गयी कि लैनसे मैन्चेस्टरके पासकी ही २०००० पौंडकी भूमि नष्ट हो जायगी, इत्यादि। इतने टेढ़े टेढ़े प्रश्न किये गये कि स्टिफिन्सन सबका उत्तर नहीं दे सका और अन्त में बिल यह कहकर अस्वीकृत हुआ कि इसमें बहुत सी त्रुटियां हैं और बहुत से विचार ऐसे हैं जो असम्भव होंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि स्टिफिन्सन का अनुमान कहीं कहीं अयुक्त सिद्ध हुआ, क्योंकि यह उसका पहला ही प्रयत्न था। परन्तु इस हारसे उसको उतना दुःख नहीं हुआ जितना इस बातसे हुआ कि संचालकोंने इसको अयोग्य समझकर इसकी जगह अन्य दो इंजीनियरोंको नियुक्त करलिया और इसको छुड़ा दिया। दूसरे वर्ष बिल पास हो गया और संचालकोंने दोनों इंजीनियरोंसे विधि न बैठनेके कारण रूठकर स्टिफिन्सनको ही १००० पौंड वार्षिक वेतनपर प्रधान इंजीनियर फिर नियुक्त करलिया। इस प्रयत्न में स्टिफिन्सनको जो जो कठिनाइयां भुगतनी पड़ीं, उनका लिखना असम्भव है। उनका अनुमान वही कर सकता है जिसपर बीते।

जिस चार मील चौड़े दलदलपर लैन बनाकर गाड़ी चलानेका हाल ऊपर लिखा गया है उसने सबके दांत खट्टेकर दिये। केवल स्टिफिन्सन ही ऐसा था जिसने सड़क बनानेके विचारको ढीला नहीं किया। इस दलदलमें बालू और मिट्टीकी कीचड़ बारहों मास इतनी रहती थी कि यदि इसपर कोई खड़ा होता तो उसका सारा बदन धँस जाता। कुछ लोगोंने कहा कि इसपर पुल बनाना चाहिये, परन्तु स्टिफिन्सनकी राय थी कि जब पानीपर पीपे या नावका तैरता हुआ पुल ठहर सकता है तब पानीसे भारी कीचड़में ऐसा पुल बनाना और सुगम होगा। इसके साथ काम करनेवालों तथा संचालकोंकी हिम्मत कुछ दिन तक काम करनेके बाद फिर छूट गयी। परन्तु स्टिफिन्सनके उत्साह और धीरज धरानेसे वह लोग काम करते गये। अन्तमें स्टिफिन्सनकी बात रही और पुल तैयार हो गया। पुलकी बनावट बहुत ही सीधी थी। दलदलके ऊपर झाऊ जैसी झाड़ी और पेड़की डालियोंका टट्टर बनाकर फैला दिया गया और उसपर कई इंच मोटी कँकड़की तह बिछा दी गयी और सड़क बना दी गयी, जिस पर रेलगाड़ी अच्छी तरह चलने लगी। Civil Engineering विज्ञान सम्बन्धी पहला प्रयोग इसी लिवरपूल मैनचैस्टर रेलवेकी तैयारीमें हुआ था और इसकी सफलताकी पाग स्टिफिन्सनके सिर ही बंधी थी।

इस रेलवेके संचालकों को यह आज्ञा मिल गयी थी कि गाड़ी चलानेके लिए इंजनका प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु जब तक पूरी लैन तैयार नहीं होगयी उस आज्ञाका पालन करना उचित नहीं समझा गया। इसका विरोध उस समयके विज्ञान विशारद और व्यवहार कुशल मनुष्य भी उतनाही करते थे जितना कि निरक्षर जनता। सबको इसका डर था कि कहीं इंजनके बल गाड़ी चलानेसे कोई उत्पात न खड़ा हो जाय। उस समय वाकर और रैस्टिक बड़े होशियार इंजीनियर समझे जाते थे। इसलिए कम्पनीने इनसे सम्मति ली कि रेल चलानेके लिए स्थिर इंजन अच्छा होगा या साथ साथ चलनेवाला। इन दोनों ने सोच समझकर यह निश्चय किया कि चलनेवाला Locomo-tive इंजनकी जगह स्थिर इंजन अच्छा

होगा। उन्होंने कहा कि मील मील डेढ़डेढ़ मीलकी दूरीपर इंजन गाड़े जांय जो इतनी ही दूरकी गाड़ियों को रस्सियों द्वारा आगे पीछे खींच सकें। पाठको, अनुमान कीजिये कि इस इंजनसे यात्रा किस प्रकार होती। स्टिफिन्सनकी वीरता इस बातमें थी कि वह आदिसे अन्ततक अपने निश्चयपर डटा रहा और जैसा चाहता था वैसा ही करालिया अर्थात् ऐसा इंजन लगाया जो गाड़ीके साथ साथ चलता हुआ गाड़ियोंको खींचे। अन्तमें संचालकों ने यह विज्ञापन दिया कि जो मनुष्य, नीचे लिखी बातोंका ध्यान रखते हुए चलनेवाला इंजन बनावेगा उसे पारितोषिक दिया जायगा—

१—इंजनमें जो कोयला जलाया जाता है उसका धुआं भली भाँति काममें आजाय।

२—यदि इंजनकी तोल ६ टन (१६२ मन) की हो तो उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि दिन प्रतिदिन २० टन बोझेको १० मील प्रतिघंटा खींच सके और बैलटमें भापका दबाव ५० पौंड प्रति वर्गइंचसे अधिक न होने पावे।

३—बैलटमें दो रक्षिणी पर्दे (Safety valve) होने चाहिएँ।

४—इंजन और बैलट दोनों कमानीपर अड़े रहें और ६ पहियेके बल चलें। इन सबकी सम्मिलित ऊँचाई चिमनी तक १५ फुटसे अधिक न हो।

५—जल सहित इंजनकी तोल ६ टनसे अधिक न हो। इससे कम तोलका इंजन यदि उसी अनुपातसे कम बोझ भी खींच सके तो अच्छा समझा जायगा। यदि तोल साढ़े चार ही टन हो तो चार पहिये ही काफी होंगे। कम्पनी को अधिकार होगा कि बैलटकी जाँच १५० पौंड प्रति वर्ग इंचके दबावसे करे।

६—इंजनमें पारेका एक ऐसा यंत्र भी लगा रहना चाहिये, जिससे ४५ पौंड प्रति वर्ग इंचके ऊपरका दबाव नापा जा सके।

७—ऐसा इंजन लिवरपूलमें रेलकी सड़कपर १८८६ वि०की पहली अक्टूबरको जांचके लिए पहुंचा दिया जाय।

८—इंजनका दाम ५५० पौंडसे अधिक न हो।

ऐसे चार इंजन परीक्षाके लिए पहुंचे थे जिनमें जार्ज स्टिफिन्सनका ही राकेट (Rocket) नामक इंजन सब बातोंको पूरीकर सका। जार्ज स्टिफिन्सनने जो जो आविष्कार किये थे सबका इंजनमें प्रयोग किया गया। इसके सिवा मि० बूथके विचारका भी समावेश कर दिया गया अर्थात् अनेक नलयुक्त बैलट का भी संशोधनकर दिया गया था। परीक्षा हो जानेपर जब सब बातें ठीक ठीक उतरीं सब विरोधियोंका मन कुछ नीचा हुआ और स्टिफिन्सन और बूथको ५०० पौंडका पारितोषिक मिला।

यह लैन सर्वसाधारणके हितार्थ १८८७ वि०के १५वीं सितम्बरको खोली गयी। इसी दिन एक दुःखजनक घटना भी हो गयी। लिवरपूलकी ओर से मि० हस्किसन पार्लियामेंटके एक सदस्य थे और रेलवेके बड़े भारी पोषक थे। राकेटसे धक्का लग जानेके कारण यह उसी दिन मर गये। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें उसकी उपयोगिता लोगोंको मालूम हो गयी और उनकी सब आपत्तियां धीरे धीरे कम होने लगीं। इससे व्यापारको इतना लाभ पहुंचा कि बड़े बड़े विरोधी भी अब रेलवेको अपनाने लगे—यहाँ तक कि और और नगरों और स्वामियोंसे रेल चलानेके प्रस्ताव होने लगे और लोग यही कोशिश करते थे कि सब जगहका काम जार्ज स्टिफिन्सनको सौंपा जाय। बात यह थी कि लोगोंको विश्वास हो गया कि काम कैसा ही कठिन क्यों न हो, जार्ज स्टिफिन्सन जब हाथ डालेगा तब पूरा करके ही छोड़ेगा।

एक बार सुरंग खोदी जारही थी। एक जगह बालूकी तह कट गयी जिससे सुरङ्गमें पानी बह चला। इसपर स्टिफिन्सनने ऐसे पंप बना डाले जिनके द्वारा कुल पानी खींचकर बाहर

कर दिया गया और जहाँ जहाँसे पानी आता था वहां पक्की दीवाल बनवादी गयी। इस लैनके बनानेमें संचालकोंको एक करोड़से भी अधिक रुपया खर्च करना पड़ा। परन्तु किसीको हिचक नहीं मालूम हुई, क्योंकि स्टिफिन्सनके धीरज और बुद्धिपर सब विश्वास करते थे और जानते थे कि अन्तमें लाभके सिवा हानि कभी नहीं होगी।

इसके बाद तो जगह जगह रेलकी लैनें खुलने लगीं और लोग रेलगाड़ी द्वारा अधिकतर यात्रा करने लगे, यद्यपि बहुतसे लोगोंको हस्किसनकी मौतवाली घटना भूली नहीं थी। ड्यूक आव वेलिंगटनने इसी डरसे रेलवे खुल जानेके कई वर्ष बाद तक रेलगाड़ीकी यात्रा नहीं की। महारानी विक्टोरियाने सम्वत् १८६६ वि० में पहले पहल रेल की यात्रा की।

इञ्जीनियरीका काम ही स्टिफिन्सनके लिए कितना बड़ा था। परन्तु इसको करते हुए इसने चेस्टरफील्डके पास वाली कोयलेकी खानिका प्रबन्ध भी अपने सिर लिया था साथ ही साथ ऐम्बरगेटमें चूना फूंकनेका काम भी आरम्भ कर दिया था। अभी तक चूना फूंकनेका इतना बड़ा प्रबन्ध किसीने नहीं किया था। न्यूकैसिलमें इञ्जन बनानेके कारखानेकी देख भाल तो कभी कभी करनी ही पड़ती थी, क्योंकि इसकी नींव इसीने रखी थी।

अब इङ्गलैंडसे स्टिफिन्सन की प्रतिभा, इञ्जन और रेलवे लैनकी प्रशंसा बाहरके देशोंमें होने लगी। बेल्जियमके बादशाह लिपोल्डने स्टिफिन्सनको बड़े आदरसे बुलाया और बेल्जियम में रेल कैसे चलायी जाय, इस पर सम्मति ली। बादशाह ने इसको नाइट आव् दि आर्डर आव् लिपोल्ड (Knight of the order of Leopold) बनाया। राजमंत्रियोंके साथ तथा महाराजा और महारानीके साथ भोजन करनेके लिए यह बुलाया गया। जब यह जाता था दर्शकोंकी बड़ी भीड़ जमा हो जाती थी। सम्वत् १६०२ के निमन्त्रणमें बेल्जियमके इञ्जीनियरोंने ब्रसेल्समें बड़े ठाटबाटसे स्टिफिन्सन को भोज दिया। कमरेके एक किनारे स्टिफिन्सनकी मूर्ति संगमर्मरके चबूतरे पर रखी गयी थी, जिस पर हार पहिनाये गये थे और बीचमें एक मेज पर 'राकेट' का नमूना रखा गया था। इस समय स्टिफिन्सनको जो हर्ष हुआ होगा उसका अनुमान कौन कर सकता है।

स्टिफिन्सनको स्पेन भी एक बार यह सम्मति देनेके लिए जाना पड़ा था कि मेडरिडसे बिस्केकी खाड़ी तक रेलकी लैन का प्रबन्ध कैसे किया जाय। परन्तु स्पेनिश सरकारकी उदासीनताके कारण इस काम का आरम्भ ही नहीं हो पाया।

स्पेनसे लौटने पर उसने इञ्जीनियरीका काम काज अपने बेटे राबर्टस्टिफिन्सन को सौंप कर अपना जीवन टैपटनमें बिताया। कोयलेकी खानि और चूनेके भट्ठोंका काम थोड़ा बहुत देख लेता था, परन्तु अधिक समय अपनी वाटिकामें लगाता था। सम्वत् १६०५ वि० की १२वीं अगस्तको ६८ वर्ष की अवस्थामें वह बहुत ही शान्तिके साथ परलोकको सिधारा। चैस्टरफील्डके ट्रिनिटी गिरजाघरमें उसका शरीर गाड़ा गया।

पाठको, यही जार्ज स्टिफिन्सनका संक्षिप्त जीवनचरित्र है। अब आपको जान पड़ा होगा कि एक कुलीके घर जन्म लेकर अपने गुण से राजाधिराजों से सम्मान पाने और सारे संसारको अपने बुद्धिबलसे उपकृत करनेकी शक्ति किसमें होती है। छोटेसे छोटा मनुष्य भी बड़ा बन सकता है। और स्वार्थ ही नहीं वरन् परमार्थ कमानेमें भी आगे आने वाले नरनारियों का आदर्श बन सकता है। जार्ज स्टिफिन्सनका जीवन चरित्र हमें सिखाता है कि यदि मनुष्यमें व्यवहारिक बुद्धि हो, इच्छा शक्ति निश्चय हो, विचार करने तथा सत्य संकल्पको प्रकट करनेमें निर्भयता हो, भले बुरे की पहिचान हो, मनन और चिन्तवन करनेका अभ्यास हो, शरीर और मन बलवान हों, तो वह संसार

का बहुत कुछ उपकार कर सकता है और संसार को उस कोटिसे ऊपरकी कोटिमें पहुँचा सकता जिसमें कि वह स्वयम् जीवन आरम्भ करनेके समय था। साथ ही साथ हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि ऊपर जो गुण गिनाये गये हैं उनमें से बहुतसे गुण मनुष्य अपने प्रयत्नसे इसी जीवन में प्राप्ति कर सकता है।

वायुमण्डल के चमत्कार

गताङ्क से सम्मिलित

[ले० मौलाना करामत हुसैन कुरैशी, एम. एस. सी.]

वायुमण्डल का भूत

वायुमण्डलकी वर्तमान अवस्था पर उसके अवयवोंकी प्रकृति, परिमाण, गुण और उपयोगिता पर हम विचार कर चुके हैं। पर सम्भव है कि कुछ सज्जनोंके दिलोंमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ हो कि क्या अनन्तकालसे वायुका संगठन ऐसा ही है जैसा वर्तमानमें है या भूतकालमें इससे कुछ भिन्न था? संसार परिवर्तनशील है। इसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो निरन्तर बदल न रही हो। हां कुछ बहुत धीरे धीरे बदलती हैं और कुछ अधिक तेज़ीसे। जो शीघ्रतासे परिवर्तन करती हैं उन्हींको क्षणभङ्गुर, अस्थिर और अपायी कहते हैं। दार्शनिक इसी खयालसे दुनियाके सुखोंको सोतेके स्वप्न सा समझते हैं। परन्तु जो चीज़ अत्यन्त मन्द गतिसे बदलती है उसे स्थायी और अटल कहते हैं। वायुमण्डल भी परिवर्तनशील है, परन्तु उसमें परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होते हैं। महाभारतमें लड़नेवाले भी सम्भवतः ऐसी वायुमें सांस लेते थे जिसमें हम ले रहे हैं। मिश्रकी मीनारें जब बन रही थीं तब भी वायुका संगठन प्रायःऐसा ही था जैसा अब है। परन्तु द्वापर और त्रेतायुग में वायुका संगठन अबसे अवश्य भिन्न रहा होगा। मान लीजिये कि प्रति वर्ष ओषजनकी मात्रा ·००१ प्रतिशत कम होती है, तो इतनी घट बढ़का परीक्षाओं द्वारा जान लेना बहुत कठिन है। पर १००० वर्षमें इस हिसाबसे ओषजनकी मात्रा १ प्रतिशत घट जायगी, जिस परिवर्तनका पता लगाना कठिन नहीं है। पृथ्वीकी आयु सम्भवतः एक अरब बरससे ज्यादा ही है। इस समयमें वायुका संगठन सम्भव है कई बार बिलकुल बदल गया हो।

पृथ्वीके विकास क्रमका जो कुछ ज्ञान हमको भूगर्भशास्त्र और ज्योतिषके अध्ययनसे प्राप्त होता है, उससे पृथ्वी पिण्डकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें कैसा वायुमण्डल रहा होगा, इस बातका भी बहुत कुछ पता लग जाता है। जब पृथ्वी पर श्वेत उत्तप्त द्रवी भूत चट्टानोंका समुद्र किलोलें कर रहा था, उस समय वायु मण्डलमें जल वाष्प, कर्बन द्विओषिद, नत्रजन, मार्शगैस और सम्भवतः हीलियम और उज्जन थी। प्राणोंकी रक्षा करने वाली ओषजन अत्यन्त न्यून मात्रामें थी। इस प्राचीन वायु मण्डलमें अचम्भेकी बात यह थी कि कर्बनद्विओषिदकी मात्रा अत्यधिक थी। जो कर्बनद्विओषिद चूनेके पत्थर, संगमरमर, खड़िया आदि पदार्थोंमें समायी हुई पृथ्वीके गर्भके अनेक भागोंमें भरी पड़ी है वह उस सुदूर कालमें स्वतंत्र रूपमें वायु मंडलमें विचरती थी। उसका ही आयतन सम्भवतः आजकलके वायुमंडलसे ६०० गुनेसे अधिक था। अतएव उस समय वायु मण्डलका दबाव भी बहुत ज्यादा था। प्रति वर्गइंच पर दबाव था ४०० मनसे कुछ अधिक। आजकलके पशु, पक्षियों और मनुष्योंका ऐसे दबावमें रहना असम्भव है। शायद किसी और ही तरहके प्राणी तब रहे हों तो दूसरी बात है।

वायुमण्डलकी यह दशा बहुत दिन तक न रही। पृथ्वी ठंडी हो रही थी और अब भी हो रही है। कुछ दिनोंमें जल वाष्पका पानी बनकर समुद्रों और सागरोंकी उत्पत्ति हो गयी और कर्बन द्विओषिदको ठंडी होती हुई चट्टानोंने सोखना शुरू

किया, यहां तक कि उसकी मात्रा बहुत कम (·०३%) रह गई।

प्राचीन वायु मण्डलमें ओषजनकी मात्रा अत्यन्त कम थी, इस बातके माननेके लिए अनेक कारण हैं। उस समय पृथ्वी पर बहुत से ऐसे पदार्थ थे, जिनका ओषजनके साथ मिलकर यौगिक बना लेना अनिवार्य था। अरबों मन कोयला जो अब खानियोंमें भरा पड़ा है, वह उस समय अवश्य ही कर्बन द्विओषिदके रूपमें रहा होगा। इसके अतिरिक्त जो लोहे और अन्य धातुओंके गन्धिद और नीचे ओषिद भूगर्भमें भरे हुए हैं, वह भी उस उच्च ताप क्रम पर ओषजन को कदापि न छोड़ते, यदि वह स्वतन्त्र रूपमें होती तो।

वनस्पति ऋण

हिन्दूशास्त्रोंमें ऋषिऋण, पितृऋण और देव ऋण—यह तीन तरह के ऋण माने हैं। पर आधुनिक विज्ञान आपको बतलाता है कि एक और भी ऋण है जिससे उऋण होना आपकी शक्तिके बाहर है और वह है वनस्पति-ऋण। हम ऊपर कह आये हैं कि प्राचीन वायु-मण्डल ओषजन विहीन था। उसमें ओषजन प्रायः कर्बन द्विओषिदके रूपमें ही विद्यमान थी। कर्बन-दैत्यसे ओषजन-अमृतको छुड़ाकर लाना और जीवनकी उत्पत्ति और स्थिति सम्भव कर देना यह वनस्पति-देवता का ही काम है। कुछ नीचे कोटिकी वनस्पति (अर्थात् जीवाणु) उस समय भी पृथ्वी पर रही होंगी जब ओषजन न थी। उन्हींसे ऐसे पौधोंका विकाश हुआ जो कर्बनद्विओषिदको तोड़कर कर्बन ग्रहणकर लेते हैं और ओषजन मुक्त कर देते हैं। शनैः शनैः इन पौधों ने निरन्तर काम करके ओषजनको कर्बनके पंजेसे छुड़ाया और अपनी जाति तथा अन्य जीवोंकी सृष्टि का द्वार खोल दिया। (ओषजनकी पौधों और पशुओं, दोनोंके जीवनके लिए समान आवश्यकता है)। इस प्रकार पौधों ने हमारे उपयुक्त वायुमण्डल को बना ही न दिया, किन्तु स्वयम् अपने शरीरोंको अनेक तपस्याओं द्वारा उस काले हीरेके रूपमें भूगर्भमें छोड़ गये, जिससे हमारी सभ्यताकी उज्वलता कायम है। वर्तमानकालमें भी पौधोंके बिना मनुष्य जीवन कितने दिन चल सकता है, यह सभी जानते हैं। श्वासके लिए ओषजन; खानेके लिए अन्न (और मांस भी, क्योंकि जिनका मांस खाते हैं, उनका भरणपोषण तो वनस्पतियोंसे ही होता है), पहननेके लिए कपड़े—यह सब पौधोंकी बदौलत ही मनुष्यको मिलते हैं।

पौधोंके ऋणसे उऋण होना अतएव मनुष्य के लिए असम्भव है।

वायुमण्डल का भविष्य

वायु-मण्डलका भविष्य अत्यन्त करुण दिखाई पड़ता है। एक दिन आयगा जब संसारकी अन्य वस्तुओंकी नाईं इसका भी अन्त हो जायगा। वर्तमानमें दो ऐसे कारण दिखाई पड़ते हैं, जिनसे सम्भवतः वायुमण्डलका अन्तमें नाश हो जायगा। कोई समय था, जब पृथ्वी मण्डल पूर्णतः वायुके रूपमें था। धीरे धीरे पृथ्वी ठँडी होती गई और पहले द्रव और बादमें ठोस होती गई। वायुमण्डल अथवा वातावरण उसी गैसीय नीहारिकाका अवशेष है, जिससे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। यह वह भाग है जो अभी तक द्रव या ठोस होनेसे बचा हुआ है। पर क्या इसी प्रकार पृथ्वीके ठंडे होते होते एक समय न आ जायगा जब पानी कठोरसे कठोर चट्टानोंके रूपमें बदल जायगा और वायु भी पहले द्रव और बादमें ठोस हो जायगी। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि ऐसा समय अवश्य आयगा। लाखों वर्षोंसे पृथ्वी ठंडी हो रही है। इसका ठंडा होना अब भी जारी है और भविष्यमें भी जारी रहेगा। इतना अवश्य है कि ज्यों ज्यों यह ठंडी होती जाती है त्यों त्यों इसके और अधिक ठंडे होनेकी गति मन्द होती जाती है। पृथ्वीकी गरमी के सूर्य भगवान ही देनेवाले हैं, पर सूर्य भगवान स्वयम्

धीरे धीरे ठंडे होते जा रहे हैं। जब यह ज्योतिहीन और उष्णता हीन हो जायंगे, तो इनके आश्रित ग्रह उपग्रह आदि भी बड़ी भयानक शीतमें ग्रसित हो जायंगे।

आजकल पृथ्वी तलका औसत तापक्रम १५° श है। जब औसत तापक्रम शून्य (०° श) हो जायगा तो पृथ्वी पर बड़ा भारी कुहरा पैदा हो जायगा और इस घटनाके कुछ दिन पीछे पानी ठोस बरफमें परिणत हो जायगा। अब तापक्रम –१८०° श से भी नीचे तक गिर जायगा, तो वायु धीरे धीरे पृथ्वी तल पर नीले द्रवका रूप धारण कर उतरने लगेगी। इसी नीले द्रवके समुद्र आजकलके समुद्रके ऊपर किलोलें करते होंगे, परन्तु आजकलके समुद्र लाखों वर्ष पहले ही कठोर चट्टानोंमें परिणत हो चुके होंगे।

आजकल जो कुछ किरिश्मे पानी दिखाता है उस सुदूर भविष्यमें द्रव हवा दिखाया करेगी। हवा ही हवा होकर पृथ्वी तल परसे ऊपरकी ओर उठा करेगी और कुछ ऊँचे पर बादलोंमें बदल जाया करेगी। उचित समय पर यही बादल वायुवर्षा किया करेंगे। यही वायु-द्रव नदी नालोंमें बह कर द्रवित वायुके समुद्रोंमें पहुँच जाया करेगी। उस ज़मानेमें ध्रुव प्रदेशोंमें वायुके ही पर्वत होंगे और समुद्रोंमें ठोस वायुके बरफ-पर्वत (ice bergs) तैरते फिरा करेंगे। इस अवस्थामें भी वायु मण्डल कुछ नाम लेनेको तो होगा, पर पृथ्वीका ठंडा होना यहां ही समाप्त न होगा। उपर्युक्त घटनाएँ सम्भवतः उस समय होंगी जब तापक्रम –१६०° होगा। तापक्रम धीरे धीरे और भी घटेगा। और साथ ही साथ जो कुछ रहा सहा वायु मण्डल है वह भी गायब होता जायगा यहां तक कि जब तापक्रम –२१०° श हो जायगा तो वायु मण्डलका निशान तक न रहेगा। पृथ्वी तल पर महाशून्यका साम्राज्य स्थापित हो जायगा। उस समय कुल हवा ठोस रूपमें होगी और पृथ्वी पर पूर्ण निस्तब्धता दिखाई पड़ेगी। उस समय न हवा की सनसनाहट, न वर्षा का जलतरंग, न बिजली की कड़क, न बादल की गरज, और न चिड़ियोंकी चहचहाहट सुनाई देगी। आकाशकी नीलमा युक्त आभा अपूर्व कालिमामें परिणत हो जायगी, जिसको भेदकर तारोंका प्रकाश अंधकारमय पृथ्वी पर पड़ा करेगा। इस प्रकार पूर्ण अंधकारमयी पृथ्वी ज्योतिहीन सूर्यकी परिक्रमा लाखों अरबों बरस तक करती रहेगी और अन्तमें यातो यह अनन्त आकाशमें लय हो जायगी या किसी अन्य सूर्यसे टकराकर फिर एक नई नीहारिका जन्म धारण कर लेगी और अपने इस जन्म की सारी लीला दुबारा उस परमप्रवीण सूत्रधारको कर देखायेगी।

यदि यह भी मान लिया जाय कि सूर्य ठंडा न होगा तो भी वायुमंडलका विनाश तो निश्चय ही है। पृथ्वीका भीतरी भाग गरम है, इसी कारण जो पानी या हवा ऊपरी तहको भेद कर भीतरकी तरफ जाना चाहता है वह गरमीके कारण फिर बड़े वेगसे बाहरकी ओरको फिर आता है। पर धीरे धीरे पृथ्वीका भीतरी भाग ठंडा होता जा रहा है। यह ठंडा होना किसी प्रकार नहीं रुक सकता।

इसका परिणाम यह होगा कि समुद्र और वायुमण्डल पृथ्वीकी ऊपरी ठंडी ठोस तहमें इस तरहसे समाते हुए चले जायंगे जैसे स्पंजमें पानी समा जाता है और अन्तमें पृथ्वीतलपर न पानी रहेगा और न वायु।

ट्यूबरक्युलोसिस और उसके जीवाणु

मालूम होता है कि बहुत प्राचीन समयसे मनुष्यजाति इस रोगसे हानि उठा रही है, क्योंकि एक विख्यात यूनानी चिकित्सक हिपोक्रेटीज़ (Hippocrates) ने ईसासे

४०० वर्ष पहले एक ग्रंथ इस विषयपर लिखा था।

इसके अतिरिक्त मिसिर देशकी रक्षित शव-ममीज़ (Egyptian mummies 2000 B. C.)—के फेफड़ोंमें भी क्षय रोगके चिह्न पाये गये हैं। हमारे यहाँ भी वैद्यकके प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ चरकसंहिता में इस रोगका सविस्तार वर्णन है।

आज कल, मनुष्यके जीवाणु शत्रुओंमें बेसिलस ट्यूबर्क्युलोसिस (bacillus tuberculosis) [जिसको ट्यूबर्किल बैसिलस (tubercle bacillus) भी कहते हैं] सबसे अधिक सांघातिक है। भारत वर्षमें जितनी मौतें होती हैं उनमेंसे प्रायः $\frac{१}{६}$ केवल इस एक रोगके कारण होती हैं। या यों समझिये कि कलकत्ता या बंबई जैसे बड़े शहरोंमें जितने आदमी रहते हैं उतने प्रतिवर्ष भारतमें इस रोगसे मर जाते हैं। इस दशाकी भयंकरताका अनुमान आप को तब होगा जबकि आप यह विचारेंगे कि इस रोगसे हमारे देशमें हर दो मिनटमें ३ आदमी मरते रहते हैं। कई वर्ष हुए होम्स (Oliver wendell Holmes) ने क्षयको 'भीषण श्वेत महामारी' (great white plague) कहा था, क्योंकि यह पहिले पश्चिमीय लोगोंको बहुत होता था।

ट्यूबर्क्युलोसिससे आर्थिक हानि

चूंकि ट्यूबर्क्युलोसिसके शिकार वही लोग बनते हैं जो काम काजी युवक हैं और चूंकि यह बहुत दिनों तक घुलाघुलाकर मारनेवाली (lingering) बीमारी है, यह हमको और रोगोंकी अपेक्षा अधिक आर्थिक हानि पहुंचाती है। इससे जो हानि होती है उसका ठीक ठीक रुपये आने और पाइयोंमें हिसाब लगाना तो कठिन है, परन्तु यदि हम एक भारतीय जीवका मूल्य १०००) भी ठहरायें तो ज्ञात होगा कि हमारे देशको नब्बे करोड़ रुपयेकी हानि प्रतिवर्ष होती है। यह रक़म ब्रिटिश भारतकी मालगुज़ारी-का लगभग तीन चौथाई है या यों समझिये कि भारतीय सरकार जो रुपया शिक्षा विभागमें खर्च करती है उसका लगभग नब्बे गुना है। तोभी यह रोग हमारे देशमें हरसाल बढ़ता ही जाता है और उसके रोकनेका कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता।

ट्यूबर्क्युलोसिसके जीवाणु

ट्यूबर्क्युलोसिसके जीवाणु पतले शलकाकार (Bacilli) होते हैं। यह धीरे धीरे बढ़ते हैं और बड़े ही सहनशील होते हैं। उनका नाश करनेके लिए जो प्रयत्न शरीर करता है उन सबका यह विरोध करते रहते हैं और धीरे धीरे बढ़ते ही जाते हैं और अन्तमें मृत्युके कारण होते हैं। मनुष्य और पशुओंके शरीरको छोड़कर यह प्रकृतिमें और कहीं नहीं पाये जाते। रोशनीके प्रभावसे और सुखानेसे यह नष्ट हो जाते हैं। परन्तु तोभी यह जीवाणु क्षय रोगीके थूकमें अंधेरे सीलवाले (bamp) मकानोंमें कई महीने, संभवतः साल भर तक जीवित रह सकते हैं। यह मनुष्य और पशुओं-के निवासस्थानोंमें भी पाये जाते हैं। पशुशालाओंकी मट्टी और धूलमें भी यह अक्सर पाये जाते हैं। यह असावधान क्षयरोगियोंके कमरोंकी धूलमें भी पाये जाते हैं।

चित्र ५१

ट्यूबर्क्युलोसिसके प्रकार

ट्यूबर्किल बैसिलस शरीरके किसी भागमें वृद्धि करके ट्यूबर्क्युलोसिसका कारण हो सकता है। फुफ-फुस (फेफड़े) का ट्यूबर्क्युलोसिस या क्षय इस रोग का d(est. known form) अत्यन्त साधारण रूप है और इसीमें सबसे अधिक मृत्यु होती हैं। हड्डियों का ट्यूबर्क्युलोसिस भी एक सामान्य रोग है और बहुतसे लंगड़े लूले जो हम देखते हैं बहुधा (Spinal column) मेरुदंडके ट्यूबर्क्युलोसिस अथवा पेशियों (muscle), पैर वा हाथकी हड्डियोंके ट्यूब-

क्युॅलोसिसके कारण कुरूप हो जाते हैं। कंठमाला (scrofula) की तरह जोकि लसीका ग्रन्थियों (lymphatic glands) का ट्यूबक्युॅलोसिस है, हड्डियों का ट्यूबक्युॅलोसिस बच्चोंको अधिक होता है। (tuberculouc meningitis) मस्तिष्कावरणका ट्यूबक्युॅलोसिस जिसके कारण कि क्षयको छोड़ कर सबसे अधिक मृत्यु होती हैं बड़े आदमियोंकी अपेक्षा बच्चोंमें अधिक पाया जाता है। चमड़ा (skin) गुरदा (kidueys) आंत स्वरयंत्र (larynx) और शरीरके अन्य भागपर भी यह जीवाणु आक्रमण कर सकते हैं। और जब यह एक बार शरीरमें कहीं पहुंच जायं तो उनका रक्त द्वारा फेफड़ोंमें पहुंचना सर्वदा संभव है।

ट्यूबक्युॅलोसिसके जीवाणु किस तरह शरीरमें प्रवेश करते हैं ?

ट्यूबक्युॅलोसिसके रोगियोंके सम्बन्धमें यह ठीक ठीक बतला देना बहुत कठिन है कि जीवाणु उनके शरीरमें कहाँसे पहुंचे। परन्तु इसमें कोई भी संशय नहीं कि प्रायः धूल, सूखे हुए थूक तथा थूकके कणों (जोकि किसी क्षय रोगीके खांसनेसे हवामें पहुंच जाते हैं) में मिले हुए जीवाणुओंके श्वास द्वारा अंदर पहुंचने से रोग होता है। बहुत से मनुष्य जीवाणुओंको निगल जाने और उनके (जीवाणु) अंतड़ियोंकी दीवारोंमेंसे होकर रक्त धारामें मिल जानेके कारण भी रोगग्रस्त हो जाते हैं।

ट्यूबक्युॅलोसिस जीवाणु किस तरह फैलते हैं ?

ट्यूबक्युॅलोसिसका एक रूप जो रोगीके पास रहनेवाले लोगोंके लिए अत्यन्त हानिकारक होता है क्षय है। इस रोगके जीवाणु या तो थूकके बिन्दुओं द्वारा हवामें खांसनेसे फैलते हैं या अगर रोगीका थूक फ़ौरन न नष्ट करवा दिया जाय तो मक्खियों द्वारा फैलते हैं। डिफ़थीरिया और निमोनिया जीवाणुओंकी तरह यह भी हवामें अन्य रीतियोंसे पहुंच जाते हैं। जो थालियां या बर्तन क्षय रोगी इस्तेमाल करता है जब तक कि जीवाणु नाशक पदार्थसे धो (disinfect) न लिए जायं काममें न लाने चाहिएँ क्योंकि उसके द्वारा भी रोग फैल सकता है। जिस खानेको रोगीने छुआ था बनाया हो उसमें भी जीवाणु होनेका बहुत भय है। ट्यूबक्युॅलोसिस जीवाणु धूलके साथ इधर उधर उड़ कर भी फैल सकते हैं। सड़कों और गलियोंमेंसे उड़कर जहाँ कि लोग थूकते रहते हैं और अन्य अनेक प्रकारसे यह जीवाणु नाक और मुंह तक पहुंच सकते हैं, क्योंकि यह बहुत सूखनेपर भी नहीं मरते। और धूल और सूखे हुए थूकमें जबकि और रोगोंके जीवाणु मर चुकते हैं, यह जीवित तथा बलवान पाये जाते हैं।

थूकनेकी आदतसे, जोकि अकसर असावधान (हमारे देशमें ज़्यादातर) क्षय-रोगियोंको होती है, बहुत डरना चाहिये, क्योंकि इस रोगके बढ़ने पर रोगीके फेफड़ोंमेंसे कई करोड़ जीवाणु रोज़ बाहर निकला करते हैं। सच पूछिये तो घरमें इधर उधर या रास्तोंमें किसीको न थूकना चाहिये, क्योंकि यह संभव है कि इस रोगसे पीड़ित होते हुए भी मनुष्यको इस बातका ज्ञान न हो कि उसे रोग है और वह थूककर दूसरोंको हानि पहुंचा रहा है।

थूकका जीवाणुशून्य (disinfect) करना

क्षय रोगियोंके थूकको नष्ट करा देनेकी आवश्यकता पर जितना ही ज़ोर दिया जाय थोड़ा है। या तो दफ़्तीके पीकदानोंमें जो जलाये जासकें
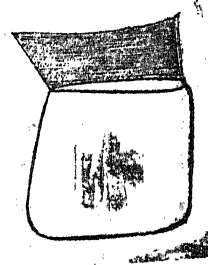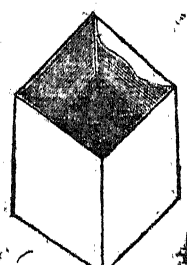
चित्र ५४ तथा ५५

या किसी ऐसे बर्तनमें जिसमें कोई जीवाणु नाशक

पदार्थ हो थूकना चाहिए। इस कामके लिए कार-बोलिक एसिड (carbolic acid) बहुत अच्छा जीवाणु-नाशक (disinfectant) है। परन्तु 'लाइज़ोल' (lysol) इससे भी अच्छा है, क्योंकि वह थूककी राल (mucous) को घुलाकर जीवाणुओं तक बहुत जल्दी पहुँच जाता है। जब क्षय रोगी सफ़र कर रहा हो तो थूक पानीमें न गलनेवाले (waterproof) लिफ़ाफ़ोंमें या जेबी थूकदानियोंमें जो इसी कामके लिए बनाई जाती हैं डालना चाहिये। यदि यह प्रबन्ध न हो सके तो कपड़ोंके टुकड़ोंमें रखना चाहिये, जिनको, जब तक कि वह जलाये न जायँ, एहतयातसे एक काग़ज़के थैलेमें रखना चाहिये। थूकको निगलना न चाहिये। ऐसा करनेसे जीवाणु आँतोंमें (intestinal tuberculosis) रोग पैदा कर सकते हैं। या आँतोंकी दीवारोंमेंसे निकलकर रक्त धारामें मिलकर शरीरके किसी और भागमें, जो अभी तक रोगसे बचा हुआ है, पहुँचकर रोग पैदा कर सकते हैं। थूकको किसी हालतमें सूखने नहीं देना चाहिये, क्योंकि सूखनेपर जीवाणुओंको फैलनेसे रोकना असंभव है।

बचाव के लिए अन्य उपाय

क्षय रोगीको खांसते समय एक रूमाल या काग़ज़ अपने मुंहके सामने रखना उचित है। इन रूमालोंको जलवा देना चाहिये या किसी जीवाणु-नाशक पदार्थ से धो डालना चाहिये। जबतक कि वह धोये न जायँ उन्हें पानीमें रख देना चाहिये। क्षय रोगीको हाथ, मुँह और चेहरे परसे, अलग रखने चाहियें और उन्हें कभी कभी जीवाणु-नाशक पदार्थ (disinfectant) से धो लेना चाहिये। उसे अपने बर्तन अलग रखने चाहियें और उनको और बर्तनोंके साथ कभी न मिलाना चाहिये। यदि कोई स्वस्थ मनुष्य उन्हें काममें लाना चाहे तो पाँच मिनट तक खौलते पानीमें डुबोकर साफ करले। रोगीके बिस्तर, कपड़े और खाट खटोले (furniture) अक्सर जीवाणु-नाशक पदार्थसे धो डालने (disinfect) चाहियें या यदि ऐसा न हो सके तो कमसे कम जितनी देर हो सके उनको कड़ी धूपमें डाल देना चाहिये। रोगीके कपड़े और कपड़ोंमें मिलाने और उनके साथ धोनेसे पहिले खौलते हुए पानीमें धो लेने चाहियें। क्षय रोगीका सोनेका कमरा और लोगोंसे अलग होना चाहिये। यह कमरा रोशनीदार व खूब हवादार होना चाहिये। जिस कमरेमें क्षयरोगी रहा हो उसको, और किसीके रहनेके पहिले, जीवाणुशून्य (disinfect) कराना चाहिये।

क्षय रोगी से भय

अगर क्षय रोगी सावधान है तो वह अपने कुटुम्बके साथ अपने आसपासवालों (निकटवालों) को बिना हानि पहुंचाये रह सकता है। परन्तु वह यदि असावधान है और अपने फेफड़ोंमेंसे निकले हुए लाखों जीवाणुओंको फैलाता फिरता है तो वह अपने पासवालों को वास्तवमें जोखिममें डालता है। बहुतसे लोग क्षय रोगियोंसे बड़ा डरते हैं, परन्तु यह डर अनुचित है, क्योंकि केवल असावधान क्षय रोगियोंसे ही डरना चाहिये।

शराब और ट्यूबरक्युलोसिस

पहिले एक लेखमें हम कह आये हैं कि शराब शरीरकी जीवाणु नाश करनेकी शक्तिको कम कर देती है। शीत प्रधान देशोंमें क्षयसे मृत्यु, धर्म-पंडितों (minister) की अपेक्षा शराब खेंचनेवालोंमें अधिक होती है। यहाँ पर हम पाठकों का ध्यान फिर आकर्षित करते हैं कि शराबी मनुष्यके लिए ट्यूबरक्युलोसिस के शिकार बननेकी अधिक संभावना रहती है। जर्मनीमें लोसला (Loslau) शहरके क्षय रोगियोंके स्वास्थ्य भवनोंमें सन् १८९४ में ९४% रोगी शराब पीनेवाले थे और केवल ६% ऐसे थे जो शराब नहीं पीते थे। ट्यूबरक्युलोसिस और शराबका सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि पैरिस शहर (Paris) में जो सन् १९०५में अन्तर्जातीय ट्यूबरक्युलोसिस परिषद् (International Tuberculosis

Congress) हुई उसमें निम्न लिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ "We strongly emphasize the necessity and importance of combining the fight against tuberculosis with the struggle against alcoholism." अर्थात् हम ट्यूबर्क्युलोसिसके साथ ही साथ शराबके भी विरुद्ध युद्ध करनेकी उपयोगिता तथा आवश्यकता पर अधिक ज़ोर देते हैं।

पशुओंमें ट्यूबर्क्युलोसिस

'शीत-रक्त-युक्त' (Cold blooded) पशुओं और चिड़ियोंके ट्यूबर्किल बैसिलाइ मनुष्यपर आक्रमण करते नहीं मालूम होते। परन्तु तिसपर भी जिस किसीने इस विषयका अध्ययन किया है उसका विश्वास है कि चौपायों और सूअरोंके ट्यूबर्किल बैसिलस मनुष्यके शरीरमें बढ़ सकते हैं। कभी कभी हम लोगोंके शरीरोंमें यह जीवाणु सांस द्वारा आते हैं परन्तु दूध द्वारा इनके फैलनेका अधिक भय है।

दूध में ट्यूबर्किल बैसिलाई

१५% से ३०% दूध देनेवाले जानवरोंको ट्यूबर्क्युलोसिस होता है। और १०% शहरके साधारण दूधमें जीवित ट्यूबर्किल बैसिलाई होते हैं। अक्सर मक्खनमें भी यह जीवाणु रहते हैं, जो तीन महीनेके बाद तक जीवित पाये गये हैं।

इसमें कोई संशय नहीं कि मक्खन और दूधमें के जीवाणु मनुष्यमें ट्यूबर्क्युलोसिस कर सकते हैं। और अब यह निश्चय सा प्रतीत होता है कि बहुत से बच्चे दूधके ट्यूबर्किल बैसिलाईसे रोग ग्रसित हो जाते हैं। परन्तु तिसपर भी दूधमेंके जीवाणु गायके शरीरमें बढ़नेके उपयुक्त हैं, मनुष्यके शरीर में नहीं और संभवतः वह इतने भयानक भी नहीं होते जितने कि मनुष्यके थूकमें के जीवाणु। ऐसा विश्वास होनेका कारण यह है कि फिलीपनो (फिलीपाइन द्वीपके निवासी), जापानी, अलास्का इंडियंस (Alaska Indians) और अन्य जातियोंमें जो दूध और मक्खन बिल्कुल नहीं इस्तेमाल करते ट्यूबर्क्युलोसिस इतना ही व्याप्त है जितना कि और देशोंमें।

दूसरा कारण यह है कि यदि दूधमें के जीवाणु मनुष्यके लिए बहुत हानिकारक होते तो शायद हम लोग सब न जाने कबके ट्यूबर्क्युलोसिससे मर गये होते। फिर भी इन जीवाणुओंसे डरना चाहिये और इनको नित्य दूधके साथ पीते रहना न चाहिये। इसलिये दूध देनेवाले जानवरों की पहिले परीक्षा कर लेनी चाहिये कि वह निरोग हैं वा नहीं। यदि मनुष्यको चौपायोंसे यह रोग लेलेने का भय न भी हो तोभी ट्यूबर्क्युलस चौपायों को निरोग जानवरोंसे अलग कर देना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे हम अन्य पशुओं को रोगसे बचाये रहेंगे।

मुकटबिहारी लाल दर,
बी, एस-सी.

भुनगा पुराण

[ले०—प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

पांचवां अध्याय

इतनी कथा सुन भुनगादि ऋषि बड़े आश्चर्यमें हो विनीत भावसे बोले "हे भगवन्! यह आप ने बड़ी विचित्र बात सुनायी कि क्षत्रिय देवता अपने शरीर को लम्बा करने लगता है फिर उसके दो भाग हो जाते हैं, और दोनों अलग व्यक्ति होकर रहने लगते हैं। इसी प्रकार इन देवताओंकी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी होती जाती है। यदि यह देवता अपनी इच्छानुसार बढ़ सकते हैं तो दो वा अधिक व्यक्तियोंके होनेके पहले अपने आकारको बढ़ाते बढ़ाते पर्वताकार क्यों नहीं हो जाते और ब्रह्माण्डको अतिक्रम क्यों नहीं कर लेते। हे भगवन्! आपने यह बताया कि इनके शरीर पारदर्शी होते हैं तो आपने अवश्य

देखा होगा कि इनके शरीरों के भीतर कैसे पदार्थ होते हैं। क्या क्या अवयव होते हैं। कैसी कैसी क्रियाएँ होती हैं। वह क्या रहस्य है कि एक ही व्यक्तिका अनेक हो जाना सम्भव है। हे महर्षि, यह सब रहस्य हम सबको कृपा करके सुनाइये।"

इतना प्रश्न सुन भुनगेश्वरजी बोले "कि हे भुनगा महर्षियो, यह क्षत्रिय देवता दिव्य रूपधारी जिस प्रकार बल वीर्यमें अपनी उपमा नहीं रखते उसी प्रकार बुद्धिमें भी अद्वितीय हैं। इनका शरीर ऐसे तरल पदार्थका बना होता है कि उसके चारों ओरसे आपसे आप यथेष्ट भोजनका प्रवेश होता रहता है। भोजनके पाचनकी क्रिया हम लोगोंके शरीरकी नाईं बहुत साधारण नहीं है। इनके शरीरमें साधारण तथा पांच या छः प्रकारके मूल पदार्थ होते हैं, पर इस कथनमें कोई विलक्षणता नहीं है। आश्चर्य्य और महाश्चर्य्य की बात यह है कि इनके शरीरके बीचोंबीच एक प्रकारकी वक्ररेखामयी वस्तु होती है, जिसे देवभाषामें केन्द्रास कहते हैं और उसके इधर उधर दो पदार्थ विन्दुरूपमें पाये जाते हैं जिन्हें वर्णआस कहते हैं। यह देवता घूमते घूमते दोनों वर्णआसओंको दूर दूर कर देते हैं। इन वर्णआसओंमें एक विचित्र ढंगका खिंचाव होता है। केन्द्रासके आधे आधे भागको वर्णआस युगल अपनी अपनी ओर खींचते हैं। धीरे धीरे इस खिंचावसे देवताका शरीर लम्बा और बीचसे पतला होता जाता है। यह क्रिया थोड़े ही देरमें पहलेके एक देवतासे दो उत्पन्न कर देती है। निदान जब कई व्यक्तियां हो गईं तब प्रत्येक व्यक्तिमें वही दो वर्णआस फिर प्रकट हो जाते हैं और फिर उसी प्रकार व्यक्ति विभाग जारी रहता है।

हे भुनगानन्दनो, तुमने यह पूछा कि यह देवता संख्यामें बढ़नेके बदले शरीरकी बड़ाईमें क्यों नहीं बढ़ जाते, तो इसका कारण यह है कि इनके शरीरका ऊपरी भाग ही भीतर भोजन ले जानेकी इन्द्रियां हैं। जितनी बड़ी देह है उसके अनुसार उतना ऊपरीतल है, इसीसे उसे पर्याप्त भोजन मिलता है। यदि शरीर आयतनमें बढ़ता जाय और साथ ही वह तल भी बढ़ता जाय तो परिणाम यह होगा कि शरीरके भीतरी भागमें जितने पदार्थकी, सामग्री की, आवश्यकता होगी ऊपरी तल अपेक्षाकृत उतना भोजन पहुंचा न सकेगा। इसलिए शरीर यात्रा सध न सकेगी। हे भुनगानन्दनो, यही बात है कि यह देवता निरन्तर अपने शरीरको न बढ़ाकर अपनी संख्या ही बढ़ाते रहते हैं और जैसे साधारण प्राणियों की मृत्यु होती है और शरीर छूट जाता है, सड़ गलकर नष्ट होता है, अथवा अन्य प्राणी उसे खा जाते हैं, उस तरह इनके शरीरकी दशा नहीं होती। इनका शव कभी होता ही नहीं। इसकी वृद्धि को ही मरण समझना चाहिये। मृत्यु उनके लोकमें उत्पन्न ही नहीं हुई। यमलोक तो अन्य प्राणियोंके लिए बना है। जिस समय पर एक व्यक्तिसे दो व्यक्ति हो जाते हैं, दोनों नयी व्यक्तियां होती हैं। पुरानी व्यक्ति इस तरह नष्ट हो जाती है कि उसका अत्यन्ताभाव समझना चाहिये।

हे भुनगानन्दनो, यह देवगण इस प्रकार जरा मरण से मुक्त निरन्तर अपनी सृष्टि बढ़ाते रहते हैं। तुमने सुना होगा कि अनेक प्राणी संसार में ऐसे हैं जिनका जीवन संसारमें सन्तान उत्पन्न करने तक रहता है। सन्तानोत्पत्ति होते ही मर जाते हैं। यही प्रकृति का नियम है। जगतनियन्ताने सृष्टिको सदा रखनेके लिये ऐसी परम्परा बना रखी है कि प्रत्येक प्राणी सन्तानकी उत्पत्तिसे सुख मानता है और सन्तानके योग्य हो जाने पर अपना जीवित रहना भी व्यर्थ समझता है। इन देवताओं की दशा ईश्वरकी रचनामें उसकी इच्छाके अनुरूप है। यह देवता एकसे अनेक होना और अपनेको एक दम मिटा देना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

हे भुनगानन्दनो, जिसे मृत्यु कहते हैं वह वस्तुतः संसारके परम्पराका रक्षक है। यही बात है कि सृष्टिके पालनके साथ साथ मरण भी अत्यावश्यक और अनिवार्य्य है।

इत्यार्षे श्रीभुनगा महापुराणे देव जीवन वर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः।

क्या भूगोल को भी विज्ञान कह सकते हैं ?

इस विषय का नाम देखते ही कई पाठक यह कहने लगेंगे कि वाह! यह तो ख़ूब तमाशा हुआ 'मैंड़की रा ज़ुकाम पैदा शुद।' क्या कभी भूगोल विषय भी इस बातका दावा कर सकता है कि मैं भी एक विज्ञान हूँ? उसमें रहता क्या है? द्वीप, प्रायःद्वीप, पहाड़, शहर आदि के केवल नाम और वर्णन रहते हैं। खेद की बात है कि पाठशालाओं में भूगोलके नाम से केवल ऐसी ही बातें पढ़ाई जाती हैं और यदि इस विषयमें केवल इतना ही हो, तो अवश्य उसकी गणना विज्ञान समुदायमें नहीं हो सकती। कालीदास ने रघुवंश के प्रथम सर्गमें कहा है:—

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥

अर्थात् मैं मन्द मनुष्य कविका यश प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ, तो मेरी भी वैसी ही हँसी होगी जैसी कि उस मनुष्यकी होती है, जो है तो बिलकुल ठिंगना, परन्तु हाथ फैलाकर उस फल को तोड़ना चाहता है जो केवल बड़े लम्बे मनुष्य के हाथ आसकता है।

महाकवि कालिदासके समान भूगोल विषय भी ऐसी इच्छा कर रहा है, जो उसको अलभ्य दीखती है और इस कारण उसका उपहास होना सम्भव है; परन्तु मुझे पूर्ण आशा है कि यदि कालिदासके समान प्रथमश्रेणीमें उसकी गणना न भी हो सके, तोभी पाँचों सवारोंमें उसकी गणना अवश्य हो जावेगी।

इस विषय पर आगे कुछ कहने के पहिले दो बातों का फ़ैसला कर लेना ज़रूरी है अर्थात् विज्ञान किन विषयों को कह सकते हैं और भूगोल विषय किसे कहते हैं। विज्ञान उस विषय को कहते हैं जिसका दिया हुआ ज्ञान कार्य कारण भाव से संगठित हो अर्थात् जो कुछ बतलाया जाय उसका कारण और कारण का फल साफ़ साफ़ दिखला दिया। जाय इसी परिभाषा के अनुसार मनो-विज्ञान, वैद्यकशास्त्र और, अर्थशास्त्रकी गणना विज्ञानोंमें होने लगी है। यदि भूगोल यह सिद्ध करदे कि हमारे विषयमें भी जो कुछ बतलाया जाता है वह कार्य कारण भाव से सँगठित है, तो उसका दावा भी माना जा सकता है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि भूगोल किन बातों का अध्ययन करता है? पृथ्वी मनुष्य का घर है, और इस दृष्टिसे पृथ्वीका अध्ययन करना (अर्थात् प्रकृतिके अनुसार मनुष्यके जीवनमें क्या परिवर्तन होता है) भूगोलका क्षेत्र है। साथ ही साथ इसका भी विचार करना चाहिये कि मनुष्य एक ऐसा जीव है जो प्रकृतिका सामना कर उसे अपने वशमें लासकता है, इसलिए भूगोल यह भी अध्ययन करता है कि मनुष्यके प्रयत्नसे प्रकृतिरूपी पृथ्वीमें क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं।

भूगोलका क्या क्षेत्र है, यह हमें मालूम हो गया और विज्ञान किस विषयको कह कसते हैं, यह भी मालूम हो गया। अब यह प्रश्न ले सकते हैं कि क्या भूगोल विषय ऐसा है जिसमें विज्ञान-के सब लक्षण मिल सकते हैं?

मेरा उत्तर यह है कि भूगोलके विज्ञान होने-में कोई सन्देह नहीं है, कारण कि उस विषयसे जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है वह कार्य कारण भाव-से संगठित रहेगा। परन्तु इस बातको सिद्ध करने

की आवश्यकता है। इसका प्रयत्न करनेके पहिले यह कबूल कर लेना पड़ेगा कि भौगोलिक विज्ञान अन्य पाँच विज्ञानों के आधार पर खड़ा है अर्थात् पदार्थ विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, अर्थ शास्त्र और समाज शास्त्र।

पृथ्वी पर सूर्यकी उष्णता पड़ती है, कहीं और कभी अधिक और कहीं और कभी कम। इसी उष्णताकी कमी वेशीसे मनुष्यके जीवनमें अनेक प्रकारके हेर फेर होते हैं और प्रकृतिके अनेक रूप उत्पन्न होते हैं; जैसे हवाका चलना, वर्षाका आना, बर्फका गिरना, तरह तरह की वनस्पतियोंका होना, समुद्रमें जलका आवागमन इत्यादि। उष्णताका अध्ययन करना पदार्थ विज्ञानका कार्य है। उष्णता तथा वर्षाकी कमी वेशी पर वनस्पतियोंकी उपज अवलम्बित होती है। चावल उसी देशमें पैदा हो सकता है जहां उष्णता तथा पानीकी बहुतायत हो और जहां पानी ठहर सके। चाके लिए उष्णता तथा पानी की बहुतायत तो चाहिये, परन्तु जमीन ऐसी चाहिये जहां पानी ठहर न सके। इस प्रकार वनस्पति शास्त्र बतलाता है कि किस प्रकारकी आबहवामें किस प्रकारको वनस्पति पैदा हो सकती है। खनिज पदार्थ कहां मिल सकते हैं, यह भूगर्भ विद्यासे जाना जा सकता है। वनस्पतिका पैदा करना अथवा भूगर्भसे खनिज पदार्थ निकालना मनुष्यके भरोसे है। इसलिए समाज शास्त्र का भी सहारा लेनेकी आवश्यकता होती है। एक देशका दूसरे देशसे किस प्रकार व्यापार सम्बन्ध होता या हो सकता है, इसका अध्ययन भी भूगोल करता है; परन्तु ऐसा करते समय अर्थशास्त्रके नियमोंका ध्यान रखना पड़ता है, इन कारणोंसे भूगोलको इन पांच विज्ञानोंका सहारा लेना पड़ता है।

तो फिर यह प्रश्न उठेगा कि जब दूसरे विज्ञानोंके भरोसे यह विषय बना है तो यह खुद कैसे विज्ञान कहलाया जा सकता है? मेरा उत्तर यह है कि पदार्थविज्ञान और रसायन शास्त्रको छोड़ ऐसे कौन विज्ञान हैं जो दूसरे विज्ञानोंकी सहायता नहीं लेते? चिकित्सा शास्त्रको देखिये, जिसके एकसे एक बढ़ कर धुरन्धर पण्डित बैठे हैं। वह भी शरीरशास्त्र, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र आदिके आधार पर बना है। शिक्षणशास्त्र एक ऐसा विषय है जिसने गत १०० वर्षोंमें बहुत उन्नति की है और जिसके कारण शिक्षण पद्धतिमें बड़े बड़े हेर फेर हो रहे हैं। यह विज्ञान भी मनोविज्ञान, नीतिविज्ञान जीवनशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विज्ञानोंके आधार पर बना है। यदि इनकी गणना विज्ञानोंमें है तो बिचारे भूगोलने ही क्या खून किया है कि वह जातिसे बाहर कर दिया जाय।

हां, यदि यह सिद्ध हो जावे कि भूगोलमें बतलाई हुई बातें कार्य कारण भावसे संगठित नहीं हैं, तो अलबत्ता उसे फांसीका हुक्म दे दीजिये; नहीं तो उसे विज्ञानोंमें स्थान दीजिये। अब मैं दो चार उदाहरण देकर यह बतलानेकी कोशिश करूँगा कि भौगोलिक बातोंका परस्पर कैसा सम्बन्ध है?

मार्च २१से जून २१ तक सूर्य उत्तरायण रहता है, इस कारण भूमध्य रेखाके उत्तरी भागोंमें विशेष उष्णता पड़ती है। हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जो भूमध्य रेखाके उत्तरमें है। इस कारण वहां उन महीनोंमें बहुत गरमी पड़ती है। भूमध्य रेखापर स्थित हिन्दमहासागरमें जल ही जल होने से वह इतना गरम नहीं होता। धरती पानीकी अपेक्षा जल्दी और अधिक गरम होती है। इस कारण हिन्दमहासागरकी अपेक्षा मई जूनमें हिन्दुस्तानमें बहुत अधिक गरमी पड़ने लगती है। वहांकी हवा गरमीसे हलकी हो ऊपर को उठती और उसकी जगह नैर्ऋत दिशासे भाप से लदी हुई ठंडी हवा हिन्दमहासागरसे आती है। इसीसे जूनसे सितम्बर तक बरसात होती है। इतनी देरमें सूर्य दक्षिणायन होकर भूमध्य

रेखाके दक्षिणी भागको गरम कर देता है और हिन्दुस्तान ठंडा हो जाता है। पदार्थ विज्ञानके नियमोंके अनुसार अब ईशानसे हवाका बहना शुरू होता है। यह हवा थलसे जलको जाती है। इस वास्ते वह सूखी रहती है, परन्तु बंगालका अहाता पार करके जब मद्रास अहातेके कर्नाटक प्रान्तमें पहुंचती है, तब वर्षा वहां पर हो जाती है। इस तरह वर्षाके सम्बन्धमें जो कुछ ज्ञान भूगोल देता है उसमें पदार्थ विज्ञानके सहारे कार्य कारण दिखला सकता है।

किसी देशकी आबहवा उसकी स्थिति पर अवलम्बित है। आबहवा पर वहांके निवासियोंकी रहन सहन और पैदावारी अवलम्बित है। पैदावारी और निवासियोंपर वहांका व्यापार, और व्यापारपर शहर, रेल तथा सड़कों इत्यादिका होना निर्भर है। उदाहरणके लिए हिन्दुस्तान ही ले लीजिये; उसका नकशा देखते ही मालूम होता है कि कोकण और मलाबार प्रान्तमें भारी वर्षा होनी चाहिये, क्योंकि नैर्ऋत दिशासे जून महीनेमें भापसे लदी हुई हवाका जो प्रवाह शुरू होता है उसे रोकनेके लिए सह्याद्री और नीलगिरि पर्वत उत्तर दक्षिण में खड़े हैं। इन पर्वतों के पूर्वमें महाराष्ट्र देश और मैसूरकी उच्च सम भूमिमें वर्षा कम होनी चाहिये। यथार्थमें है भी ऐसा ही। कोकणमें, मलावारमें १०० इंच तक सालमें वर्षा हो जाती है। इस कारण वहां चावल, नारियल, सुपारी, लौंग, केले इत्यादि जैसी चीजें बहुतायतसे हो जाती हैं, जिन्हें गरमी और सरदी दोनों चाहियें। महाराष्ट्र देश तथा मैसूरकी उच्चसमभूमिमें वर्षाकी कमी होनेसे ऐसी चीजें पैदा होती हैं जिन्हें गरमीके साथ अधिक वर्षा नहीं चाहिये; जैसे ज्वार, बाजरा, रुई आदि। कोकण मलाबारके निवासी चावल खाकर रहते हैं। मैसूर और महाराष्ट्र देशके निवासियोंका मुख्य आहार ज्वार बाजरा है। बराड़, खानदेश, धारवाड़में पानी बहुत कम बरसता है। इसलिए रुई उत्तम प्रकारकी पैदा होती है। इसी कारण इन प्रान्तोंमें रुईके अनेक कारखाने हैं। परन्तु रुईसे कपड़े बनानेके लिए ऐसी जगह चाहिये जहांकी हवा हमेशा तर रहे। सूखी हवामें रुईका धागा बहुत लम्बा पतला नहीं जा सकता, जल्दी टूट जाता है। आर्द्र हवामें लम्बा और पतला धागा निकाल सकते हैं। यही कारण है कि कपड़े बनाने तथा रुई कातनेके कारखाने बम्बई अहमदाबाद आदि ऐसे स्थानोंमें विशेष करके हैं जो समुद्रके किनारे हैं।

इसी तरह निवासियोंकी तरफ देखा जाय और उनके स्वभाव, रहन सहन और शरीरकी बनावटकी ओर ध्यान दिया जावे तो मालूम पड़ेगा कि आबहवाका असर प्रत्यक्ष है। गुजराती और मारवाड़ी व्यापारमें क्यों अधिक जाते हैं? कारण यही है कि उनके देशमें वर्षाका भरोसा नहीं, काश्तकारीमें मनुष्यको चैन नहीं, एक साल मुनाफ़ा तो दो साल टोटा। बंगालदेशकी ज़मीन उपजाऊ है, वर्षा शायद ही धोखा देती है और इस्तमरारी बन्दोबस्त है। इसलिये वहां जिसके पास पैसा हुआ कि उसने ज़मींदारी लेली और हमेशाके लिए बँधी आमदनी हो गई। ऐसे देशके निवासी व्यापारमें रुपया लगाकर क्यों जोखिममें पड़ने जावेंगे? परन्तु गुजराती क्या करेंगे? रय्यतवाड़ी बंदोबस्त होनेसे बड़ी जमींदारी तो मिल नहीं सकती, थोड़ी बहुत ज़मीन मिली भी तो उसमें पैसा डालनेसे बड़ी जोखिम रहती है। इस कारण वह लोग व्यापारमें घुसते हैं। ऐसा ही कच्छियों तथा मारवाड़ियोंका हाल है। नतीजा यह कि बम्बई शहर धनाढ्य व्यापारियोंका केन्द्र है और कलकत्ता आराम तलब धनाढ्य ज़मींदारोंका।

जैसे जैसे उत्तर हिन्दुस्थानमें जाते हैं वैसे वैसे लोगोंके कपड़े ढीले और साफ़े बड़े देखनेमें आते हैं। कारण पंजाबकी हवा बहुत सूखी है। धूपसे बचावके लिए ढीले वस्त्र और बड़े साफ़े चाहियें। प्रायः सभी मरुदेशोंमें जैसे अरब, मिसर,

बिलोचिस्तान, ईरान आदिमें ढीले कपड़े देखनेमें आते हैं और पैसा मिलने पर वहांके निवासी पाजामेका घेरा इतना बढ़ाते हैं कि मानों सारे आकाशको उसके भीतर रखने का इरादा हो। परन्तु बंगाल सरीखे उष्ण और तर देशमें शिराच्छादन शून्य मनुष्य दीखते हैं। वहांके मुसलमान भी धोती पहनते हैं। कारण यह है कि उनके देशमें किसानोंको दिन दिन भर घुटने तक पानीमें खड़े हो अपना काम करना पड़ता है। घूम घुमौव्वल पाजामा पहिननेसे उनका काम कैसे चल सकता है? जहांकी हवा भाप से पूर्ण है वहां शिराच्छादन की भी विशेष आवश्यकता नहीं। जहां लोग रात दिन पानीमें रहते हैं वहां तेल हलदी शरीर पर अधिक लगाना स्वाभाविक ही बात है।

अब ज़रा शरीरकी बनावटकी ओर ध्यान देना उचित है। मैदानमें रहनेवालोंकी पिंडलियां देखी जावें तो लम्बी, पतली सारसके पैरोंके समान निकलेंगी। संयुक्त प्रदेश तथा पंजाब निवासियोंका बहुधा ऐसा ही हाल है। क़दके ऊंचे, छाती कम चौड़ी और पिंडली पतली। ऐसा क्यों है? वह मैदानमें रहते हैं, वहां सपाट धरती होनेसे वह लंबी डगें भरते हैं। इस वास्ते पैर लम्बे होने ही चाहियें। चलनेमें विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं। इस सबब कलेजे तथा पिंडलियोंको विशेष मिहनत नहीं होती। नतीजा यह कि उनकी छाती कम चौड़ी और पिंडलें पतली रहती हैं। अब एक गुरखे को देखिये—पैर छोटे, छाती भरी हुई और चौड़ी, हाथ पैर गठीले और पिंडलियां गसी हुई और चौड़ी। इसका कारण क्या? पहाड़ पर चलने वाले लम्बी डग भर नहीं सकते, इसलिए लम्बे पैरोंकी आवश्यकता नहीं। पहाड़ पर चलनेसे पिंडलियों तथा कलेजेको पूरी मिहनत पड़ती है, इसलिये उनकी पिंडलियां कसी और भरी और छाता चौड़ा रहता है।

आबहवाका स्वभाव तथा चित्त वृत्ति पर क्या असर पड़ता है? इसके दो उदाहरण लीजिये। हिन्दुस्तान देशमें यदि समय पर मौसमी हवा न चले और पानी न बरसे तो बिचारे किसानोंको हाथ जोड़ आकाशकी ओर देखनेके सिवाय उपाय ही क्या है? हज़ार परिश्रम करने पर आखिरको भाग्यके भरोसे रहना पड़ता है। तो यदि वह ज्योतिषियोंके पास जा अपने भाग्यकी बात जन्म कुंडली दिखा पूछा करें तो क्या आश्चर्य है? एक दूसरा देश हालेन्ड है, जहां समुद्रसे लड़ भिड़ कर ज़मीन निकाली गई है। समुद्रको हटाकर उसे फिर न आने देनेके लिए डाइक्स अर्थात् बंद बाँधे गये हैं। हालेंडके निवासी डचलोगों तथा समुद्रसे रात दिन बारों मासका युद्ध चल रहा है। डचलोगोंकी खैरियत तभी तक है, जब तक वह अपने परिश्रम तथा कलाकौशलसे समुद्रको हटाये हुये हैं। जिस समय समुद्रने उनको हटा पाया कि डचलोगोंका नाश निश्चय है। ऐसे देश के निवासी ज्योतिषीजीसे ग्रहोंका फल पूछने कभी न जावेंगे। वह रात दिन उद्योगमें लगे रहेंगे। उद्योगहीसे उनका जीवन है, बिना उद्योग मरण है। यही कारण है कि हालेंड निवासी विलक्षण परिश्रमी और कार्य चतुर होते हैं।

इसी प्रकार यह सिद्ध कर सकते हैं कि भूगोल विषय जो कुछ ज्ञान देता है, वह वैज्ञानिक रीतिसे कारण सहित दिया जा सकता है और आधुनिक भूगोल अध्ययनकी परिपाटी भी यही चाहती है कि प्रत्येक बातका कारण देखा जाय। भूगोलके अध्ययनके समय अनेक चमत्कारिक बातें लक्षमें आती हैं; जैसे प्रायः सब मरुस्थल जैसे राजपूताना सिंध, बिलोचिस्तान, ईरान, अरब, मेसोपोटेमिया, मिसर, सहारा, बर्बरदेश आदि भूमध्यरेखा से २० से लेकर तीस पैंतीस डिगरी उत्तर और दक्षिणमें ही मिलते हैं। नियम विरुद्ध केवल गोबीका ही मरुस्थल है। दीन इसलाम उत्तरीय मरुकटिबन्धमें ही उत्तम रूपसे पाया जाता है। मरुभूमिसे जितने दूर जाते हैं उतनी ही उसकी अवनति और मुसलमानोंकी संख्यामें कमी देखते हैं। इसी प्रकार

एशियाका एक स्वाभाविक विभाग है, जो उत्तरमें थ्यानशान, आल्टाई और यबलोनाय श्रेणियोंसे घिरा हुआ है और दक्षिणमें हिमालय, नानलिंग आदि श्रेणियों से। उत्तरीय बौद्ध धर्म इसी स्वाभाविक विभागमें प्रचलित मिलता है। एशियाका एक दूसरा स्वाभाविक विभाग है जिसे हिन्दी चीन कहते हैं और जिसमें बर्मा, स्याम, अनाम, कम्बोदिया देश हैं। इस स्वाभाविक विभागमें ही दक्षिण बौद्धधर्म प्रचलित मिलता है, अन्य किसी विभागमें नहीं। यदि एक दृष्टिसे देखा जाय तो हिन्दूधर्म तथा बौद्धधर्म दोनों आर्य धर्म कहलाये जा सकते हैं, कारण दोनोंकी शिक्षा दीक्षा प्रायः एकसी है और दोनों आर्य ऋषियोंके चलाये हैं। अब यह विलक्षणता देखनेमें आती है कि यह आर्य धर्म केवल उन देशोंमें प्रचलित हैं जहां मौसमी हवाका प्रभाव पड़ता है, अन्यत्र नहीं। दुनिया भरमें केवल हिन्दुस्तान, हिन्दीचीन, जापान, और चीनी साम्राज्यके देश ही ऐसे हैं जिनके बारेमें यह कह सकते हैं कि यहां मौसमी हवा चलती है। क्या यह विचार करने योग्य प्रश्न नहीं है कि आर्य धर्म ने मौसमी हवाके देशोंमें ही क्यों विशेष अड्डा जमाया है?

ऐसी विचित्रतायें अन्य स्थानोंमें भी देखनेमें आती हैं, जैसे यूरोप महाद्वीपमें मुख्य तीन प्रकार की आबहवाएं देखनेमें आती हैं। एक तो वह देश जहां बारहों महीने नैर्ऋतसे हवा चलती है और जहांके निकटवर्ती समुद्रमें गल्फ स्ट्रीम (गरमजलका समुद्री स्रोत) बहता है और बारहों महीने वर्षा होती है।

ऐसे देश इंगलिस्तान, उत्तरफ्रांस, हालैंड, जर्मनी स्वीडन, डेनमार्क और नार्वे हैं। यहां विशेष कर ट्यूटन वंशके लोग प्रधान हैं और प्राटेस्टेंट धर्मका ज़ोर अधिक है। एक दूसरे प्रकार की आबहवा है, जिसे भूमध्य सागरकी आबहवा कहते हैं और जिसमें गर्मी सख़ और ठंड पहिलेकी अपेक्षा कम और ठंडमें ही बारिश होती है। ऐसी आबहवाके देश स्पेन, दक्षिण फ्रांस, इटाली, बालकन प्रदेश और यूनान हैं। यहां लेटिन जातिके लोगोंकी तथा रोमन काथलिक धर्मकी प्रधानता पाई जाती है। एक तीसरे प्रकारकी आबहवा (जैसे रूसकी) है, जहां थोड़े दिनोंके लिये सख़ गरमी और बड़ी लम्बी भयानक ठंडकी ऋतु होती है। वहां स्लाव जातिके लोग बसते और ग्रीकचर्च रूपी ईसाई धर्मको पालते हैं। विचारवान पुरुषोंको इस बात का अध्ययन करना चाहिये कि क्या विशेष प्रकार की आबहवा विशेष धर्म और सभ्यताके अनुकूल है और यदि ऐसा है तो क्यों?

भूगोलके अध्ययनसे अन्य विज्ञानों तथा इतिहासके अध्ययनमें सहायता मिलती है? क्या कारण है कि मुसलमानों को संयुक्त प्रदेश, पंजाब, बिहार और बंगाल जीतनेमें कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ी। दिल्ली आते ही कन्नौज टूटा और थोड़े ही दिनोंमें बंगाल बिहार भी उनके हाथमें आगया; परन्तु अन्त तक मध्य प्रदेश (गोंडवाना) प्रायः स्वतन्त्र रह सका। वहाँके निवासी कुछ ऐसे वीर या युद्ध कुशल न थे कि मुसलमान लोग डरजाते। मध्य प्रदेशकी स्वाभाविक रचनाने ही उसकी रक्षा की। मुग़ल बादशाहत तोड़नेमें मरहठे समर्थ हुए, इसका एक कारण यह भी है कि उनका देश कमज़ोरोंकी सहायता कर सकता है। हिन्दुस्तान के इतिहास देखनेसे मालूम होता है कि बड़ी बड़ी बादशाहतें सिन्धु और गङ्गा नदीके मैदानोंमें ही रहीं, न कि दक्षिणमें भौगोलिक कारण है। दक्षिणमें उच्च समभूमि होनेसे लोगोंका आवागमन कठिन होता है और इस कारण बड़े बड़े राज्य वहाँ हो ही नहीं सकते थे। परन्तु उत्तरके सपाट मैदानोंमें सुगमता पूर्वक हो सकते थे। अब मनुष्यने अपनी बुद्धिसे रेल, हवाईजहाज़, तार आदिका आविष्कार कर लिया है। इस कारण आवागमनकी कठिनाइयां कम हो गईं और अङ्गरेज़ी साम्राज्य

उत्तर दक्षिण दोनों पर हो गया है। इसी प्रकार इतिहाससे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं पर विस्तार भयसे यहाँ समाप्त करना चाहता हूं।

आशा है कि उपरोक्त कथनसे लोगोंको कदाचित निश्चय हो जावे कि 'भूगोल भी एक विज्ञान है और उसका अध्ययन वैज्ञानिक रीतिसे होना चाहिये।

हर्षका विषय है कि भूगोलका महत्व जानकर प्रयाग विश्वविद्यालयने कालेजोंमें भूगोलका वैज्ञानिक अध्ययन करानेका निश्चय किया है और उसके लिये प्रोफ़ेसर (आचार्य) और लेकचरर और रीडर (अध्यापक) शीघ्र ही नियुक्त होने वाले हैं।

—लज्जा शंकर झा

अनात्मको एकतापर आधिभौतिक विचार

पिछले प्रकरणोंमें* आत्म और अनात्मके सम्बन्धमें विचार करते हुए साधारण तर्कसे यह दिखाया गया है कि जिसे हम अनात्म कहते हैं, वह भिन्न भिन्न सत्ताओंका समूह नहीं है वरन् एक ही सत्ता है, किन्तु हमारे वाह्य और अन्तःकरणोंसे सम्पर्कभेदसे भिन्न भिन्न रूपोंमें दिखाई देता है वा प्रतीत होता है। दृष्टा और दृश्य दोनोंकी ओरसे विचार करनेसे तर्क वा परीक्षा दो तरहकी होती है एक आत्मगत् और दूसरी वस्तुगत, अथवा अधिक शुद्धरूपमें आध्यात्मिक और आधिभौतिक। इन दो रीतियोंमेंसे पूर्व प्रकरणमें हमने पहली रीतिका अनुसरण किया है। इस प्रकरणमें वस्तुगत परीक्षा ही हमारा अभीष्ट है। आत्मगत परीक्षाओंका ही आश्रय लेकर यह दिखानेकी चेष्टा की जा चुकी है कि आत्म और अनात्म रूपी एक ही सत्ताकी दो लहरोंके संघर्षसे फेनकी उत्पत्ति जिस प्रकार होती है उसी प्रकार हमारी इन्द्रियोंके विषय भी भिन्न भिन्न दीखते हैं। वस्तुगत वा आधिभौतिक परीक्षा विस्तृत और स्वतंत्र विषय होनेके कारण अलग ही दी जाय तो पाठकोंको अधिक सुभीता होगा।

देश और काल की कल्पनामें यह दिखाया जा चुका है कि किसी वास्तविक सत्ताका हमारी इन्द्रियोंके विशेष नाड़ी जाल पर विशेष प्रभाव पड़ता है, जिससे हमारी चेतनामें देश और काल की कल्पना उदय होती है। वस्तु की सत्ताका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी इन्द्रियों द्वारा मिलता है। काल, देश और वस्तु इन्हीं तीन से अनेक पाश्चात्य और प्राच्य दार्शनिक जगत की स्थिति बताते हैं और अद्वैतवादी इन्हें एक ही कहते हैं। परन्तु कोरी युक्ति और तर्क के अतिरिक्त क्या कोई वैज्ञानिक तथ्य भी ऐसे हैं जिनसे इनकी एकता प्रमाणित होती है, अथवा विज्ञान से क्या ऐसे वस्तुगत वा आधिभौतिक प्रमाण भी मिलते हैं जो इनकी एकताके पक्षमें हमारी युक्तियों वा तर्कों की पुष्टि करते हों? इस प्रश्नका उत्तर देने का प्रयत्न इस प्रकरणमें करेंगे।

देश की कल्पना पर विचार करते हुए हम यह देख चुके हैं कि विस्तारके परिमाण तीन ही हैं। यही बात गणित की शास्त्रीय परिभाषामें यों कही जाती है कि देशमें किसी नियत विन्दुपर ऐसी लम्ब रेखाएं तीन से अधिक कदापि नहीं बन सकतीं जो परस्पर समकोण बनाती हों। हमारे अनुभवमें केवल तीन ही दिशाएं आती हैं। इस बातका प्रमाण यही है। दूसरे शब्दोंमें हम यों कह सकते हैं कि समस्त गोचर पदार्थ के तीन ही परिमाण हैं—लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई अथवा अधिक शुद्ध रीति से दैर्घ्य, प्रस्थ और वेध। जिस धरातल पर हम खड़े हैं उसके ऊपर ही वा समानान्तर चार वा आठ समकोण बनाती

*देखिये विज्ञान, भाग ७ संख्या ६, कन्या सं० १९७५, पृ० २४१—२४७।

हुई रेखाओंको हम चार या आठ दिशाएं कहते हैं। पर यह आठों परस्पर समकोण नहीं हैं। पूरब पच्छिम जानेवाली एक रेखा और उत्तर दक्खिन जानेवाली दूसरी रेखा है। यह दोनों रेखाएं समकोण बनाती हुई हमारे पद तल पर मिलती हैं। कोणोंको मिलाती हुई रेखाएं लें तो भी दो ही रेखाएं हमारे पद तल पर समकोण बनाती हुई मिलेंगी। निदान हमारे पद तल पर धरातलस्थित यही दो दिशाएं हुई। इन्हें ही हम दैर्घ्य और प्रस्थ, लम्बाई और चौड़ाई कह सकते हैं। तीसरी रेखा के स्थान में पूर्व निश्चित विन्दु-पर हम स्वयं खड़े हैं, जिसे हम नीचे ऊपर अथवा वेध कह सकते हैं। यह रेखा भी धरातल स्थित दोनों रेखाओं से समकोण बनाती है। यही वस्तुतः तीसरी दिशा है। साधारण रीतिसे पूर्वोक्त आठ दिशाओंके साथ इस ऊपर नीचेकी और दो दिशाएं मान कर हम दस दिशाओंकी कल्पना करते हैं। परन्तु गणितकी रीतिसे विस्तृतिके तीन ही परिमाण हैं और तीन ही दिशाएं हैं।

हमारी इन्द्रियां ऐसी बनी हुई जान पड़ती हैं कि उन्हें इन्हीं तीनों दिशाओंका अनुभव होता है। साधारणतया यों भी कह सकते हैं कि जिस पदार्थ का हमारी इन्द्रियां बनी हुई हैं वह भी त्रिदिक् वा त्रिपरिमाणी हैं, अथवा जिस नाड़ी-जाल से हमारी विविध इन्द्रयोंको अनुभव करनेकी शक्ति है वह स्वयं त्रिपरिमाणी वा त्रिदिङ्मय है और हमारे लिए समस्त अनुभूत जगत इसीलिए त्रिपरिमाणी वा त्रिदिक् जान पड़ता है। वस्तुतः यह विश्व चाहे एकदिक् से लेकर चतुर्दिक् वा बहुदिक् भी हो परन्तु हमको अनुभव केवल त्रिदिङ्मय जगतका ही होता है। यह भी सर्वथा असंभव नहीं है कि हमारा शरीर भी चतुर्दिक् वा बहुदिक् हो, परन्तु हमारे नाड़ीजाल की वा हमारी चेतनाकी स्थिति ऐसी है। कि हम इस जाग्रत जगतमें त्रिदिक्से अधिक का अनुभव न करते वा कर सकते हों। हमारे त्रिदिक्वाले अनुभव के अन्तर्गत एकदिक् तथा द्विदिक् भी है। अतः एक वा दो दिशाओंको ही लेकर हम एकदिक् वा द्विदिक् जगत्का अनुमान कर सकते हैं। परन्तु चौथी दिशा हमारे अनुभवकी सीमासे अत्यन्त बाहर होनेके कारण हमारे अनुमान से भी बाहर है। तो भी यहां हम उसे बुद्धिग्राह्य कर देनेकी चेष्टा करेंगे।

एक कमरेके कोनेमें यदि हम खड़े हों तो स्वभावतः हमको कोण रेखाओंमें तीन दिशाएं अंकित होंगी। दो भीतोंके मिलनेके स्थानमें कोनकी रेखा जो नीचेसे ऊपर गई हुई है, एक दिशा हुई। दूसरी और तीसरी दिशाएं वह दोनों कोण रेखाएं हुई जो अगल बगलकी भीतों और धरातलके मिलनेके स्थानमें बनी दीखती हैं। यही तीन दिशाएं किसी भी विन्दु पर हमें दीखेंगी और चाहे कैसा ही टेढ़ा मेढ़ा आड़ा तिरछा मार्ग हम बनावें किसी विन्दु को स्थिर करके यही तीन दिशाएं हम पाएंगे। इन्हीं तीन दिशाओंके विविध तारतम्य और योगसे कमरेके किसी विन्दु पर वा किसी स्थानपर हम पहुंच सकते हैं। यदि इन्हीं तीन रेखाओंको हम अनन्त देशमें तीनों ओर विस्तृत मान लें तो देशमात्रमें किसी विन्दुपर पहुंच सकते हैं। सारांश यह कि देशमें केवल तीन दिशाएं सिद्ध होती हैं: चौथी, पांचवीं, छठी आदि दिशाएं क्यों नहीं हैं वा क्यों न मानी जावें? इस विषयको समझनेके लिए कि देश तीन ही दिशाओं से परिच्छिन्न क्यों दीखता है और चौथी दिशा सम्भव है कि नहीं, हम एक-दिक् और द्विदिक् संसार पर विचार किये बिना नहीं रह सकते।

यदि हम ऐसे जगत्की कल्पना करें जिसमें केवल एक ही दिशा हो तो हमें मानना पड़ेगा कि यह जगत् एक रेखा का बना हुआ है जिसका आदि-अन्त नहीं है, परन्तु रेखामें लम्बाई ही एक दिशा है, चौड़ाईकी कोई कल्पना नहीं है।

यदि इस रेखा-जगत्में हम रेखामय जीवोंका अस्तित्व मानें तो यह जीव नन्हीं रेखाओंके ही रूपमें होंगे, आगे पीछे ही चलना संभव होगा। अगल बगलकी इन्हें कल्पना नहीं हो सकती। ऐसे दो जीव यदि आमने सामने पड़ जायँ तो राह रुक जायगी; एक दूसरेकी बगलसे जानेकी न तो कल्पना रखता है, न मार्ग ही है। दोनोंको वा कम से कम एकको पीछे हटना पड़ेगा। ऐसी दशा में इन जीवोंका दोमुहां होना आवश्यक होगा। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि जीव एक रेखासे दूसरी रेखामें इन दोही दिशाओं द्वारा आ जा सकता है, परन्तु हमारी कल्पना हमारी एकसे अधिक दिशाओं की कल्पना पर निर्भर है, और इन जीवोंको इसका अनुभव ही नहीं। इन प्राणियोंके रूप भी एकसे ही होंगे, केवल बड़े छोटे ही होनेका परस्पर अन्तर होगा।

इसी प्रकार यदि हम ऐसे जगत्की कल्पना करें जिसमें केवल दो ही दिशाएँ हों, अर्थात् ऐसा धरातल हो जिसमें उत्तर, दक्खिन, पूरब, पच्छिम तो हों, पर ऊँचाई नीचाई न हो और यह धरातल विस्तारमें अनन्त हो। इस असीम मैदानमें जितने द्विदिक् प्राणियोंकी कल्पना हो सकती है सबमें रूपकी दृष्टिसे अनन्त भेद हो सकते हैं। द्विभुज, त्रिभुज, चतुर्भुज, पंचभुज, षड्भुजादि, गोल, लम्बोतरे, टेढ़े मेढ़े सभी रेखाओंके प्राणी अनन्त दिशाओंमें चलने फिरनेकी सामर्थ्य रखनेवाले परन्तु अपने धरातलमें ही सीमित रहने वाले असंख्य हो सकते हैं।

इन प्राणियोंकी कल्पनामें ऊपर नीचेके अस्तित्व की भी समाई नहीं हो सकती। यदि इन्हें रेखात्मक संसारके प्राणियोंका अनुभव हो तो वह शायद यह विचार कर सकें कि जिस प्रकार द्विदिक् और एकदिक् संसार है उसी तरह त्रिदिक् वा चतुर्दिक् वा बहुदिक्की सम्भावना भी है। उसे यदि एकदिक् संसारके प्राणियोंसे अधिक सुभीता है तो इतना ही कि वह अनेक रूप और जातियोंका हो सकता है और अनेक मार्गसे चल सकता है। यदि उसे एक परिधि चतुर्भुज वा अन्य किसी बंद आकारके भीतर रख दें जिसकी रेखाओंमेंसे घुसकर आना जाना संभव नहो, तो द्विदिक् प्राणी सहज ही कैद हो जायगा। उसकी वही दशा होगी जो ऊपर नीचे और सब ओरसे बन्द कमरेके अन्दर हमारी हो सकतीहै। उसकी चेतनामें ऊपर नीचे वाली दिशाका भान उसी तरह असम्भव है जिस तरह हमारी चेतनामें चौथी दिशाका। थोड़ी देरके लिए मान लीजिए कि हमने द्विदिक् जगत्के मैदानमें अपनी अँगुली रख दी। द्विदिक् प्राणीको हमारी अँगुलीका अनुभव केवल एक गोल रेखाके रूपमें हो सकता है। ऊपर नीचेके ज्ञानके अभावमें उसे अंगुलीके और अंशोंकी कल्पना भी नहीं हो सकती, अनुभव तो दूर रहे। अंगुली उठानेपर उसे क्या अनुभव होगा? वह यह समझेगा कि अभी इस संसारमें एक वक्र रेखा वाला प्राणी प्रकट हुआ था और अभी अभी एकाएकी अन्तर्द्धान होगया। अथवा, यदि कोई द्विदिक् प्राणी किसी द्विदिक् कारागारमें बन्द हो और हम उसे उठाकर बाहर करदें तो पहले तो उठाते समय वह अचेत हो जायगा क्योंकि उसकी चेतना द्विदिक् संसारमें सीमित है, और यदि अचेतन भी हुआ तो उसका अनुभव अभूत पूर्व और वर्णनातीत होगा। उसे आश्चर्य होगा कि मैं बन्दीखानेसे कैसे बाहर आगया।

गणितज्ञों ने इन कल्पनाओंके सहारे एवं अन्य गणित संबन्धी विचारोंसे चतुर्दिक् जगत्के संबन्ध में अनेक बातें स्थिर की हैं, जिनपर विस्तार करना यहां हमारा अभीष्ट भी नहीं है। यहां इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि जो जो अनुभव द्विदिक् संसारके कल्पित प्राणियोंके त्रिदिक् प्राणियोंके प्रति होने संभव हैं वही अनुभव ठीक ठीक त्रिदिक् प्राणियोंको चतुर्दिक्से हों, यह आवश्यक नहीं है। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उस तरहके अनुभव

किसी किसी विशेष परिस्थितिमें हो जाने असंभव भी नहीं हैं। यह असंभव कल्पना नहीं है कि हमारा शरीर स्वयं चतुर्दिक हो, परन्तु हमारी चेतना त्रिदिक्में सीमित होनेके कारण ही हम तीनसे अधिक दिशाओंका अनुभव नहीं कर सकते। यह बात भी सहज ही कल्पनामें आ सकती है कि यदि कोई चतुर्दिक् जगतका प्राणी—यदि उसका वास्तविक अस्तित्व हो—हमारे त्रिदिक् जगत्में आवे, अथवा यों कहना चाहिये कि अपने को हमारी इन्द्रियोंके गोचर करे, तो हमको उसके एकाएकी अन्तरिक्षसे अथवा उसी अज्ञात और अननुभूत चौथी दिशासे "प्रकट" हो जानेका दृश्य देखनेमें आवेगा। हम उसे त्रिदिङ्मय शरीरधारी ही देखेंगे और जब वह अपनी विशिष्ट चौथी दिशासे प्रस्थान करेगा हमारे लिए एकाएकी अन्तर्द्धान हो जायगा। यह भी न भूलना चाहिये कि जो दिशामें हमारे लिये अननुभूत और अज्ञात है कहीं गज़ दो गज़ की दूरी पर भी नहीं है। वह इतने ही पास है जितने हम स्वयं हैं। अन्तर्द्धान होने वाली चतुर्दिक् जगत्की व्यक्ति भी संभव है कि एक गज़ दो गज़ से भी अधिक निकट हो। उसकी दृष्टिसे हम लोग वस्तुतः बन्दीगृहमें पड़े हुए हैं, हमारे विचार अत्यन्त ही संकुचित हैं, हमारी इन्द्रियां नितान्त निकम्मी हैं। यह भी गणितके सहारे कल्पनागत बात है कि जिस दूरीको हम दो चार सहस्र मील समझते हैं चौथीदिशा द्वारा वह अत्यन्त ही पास हो और चतुर्दिक् संसारका प्राणी पलमें अमेरिका और भारतवर्षके अन्तरको बिना किसी अलौकिक बल वा शक्तिके तय कर सकता हो। जिस प्रकार त्रिदिक् प्राणीके लिए यह प्रायः असंभव है कि द्विदिक्को थामकर एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जा सके, शायद चतुर्दिक् वालेको हमारे लिए भी ऐसी ही कठिनाई हो। परन्तु यदि किसी विशेष परिस्थितिमें यह संभव हो जाय तो यह दृश्य भी देखने में आ सकता है कि जो मनुष्य आज कारागारकी चार दीवारीमें कैद है कल स्वच्छन्द निउयार्कके पार्कमें टहलता देखा जाय। इन कल्पनाओंमें इस बीसवीं शताब्दीमें अब भी यह बात अत्युक्ति सी जान पड़ेगी, परन्तु प्राचीन कथाओंमें और इसी विक्रमकी बीसवीं शताब्दीके वैज्ञानिक तथ्योंमें ऐसी बातोंका निरन्तर अभाव नहीं है।

हम कह चुके हैं कि हमारी दिशा सम्बन्धी कल्पनाएं विज्ञान और गणितके ही आधार पर हैं। इसकी गवाही भी एक दिशा विशेषसे मिली है। जो लोग यूरोपके अध्यात्मिक वा मानसिक परीक्षाओं और प्रयोगोंके विवरण पढ़ते रहे हैं वह प्रेतोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ जान चुके हैं। इंगलिस्तानमें भी एक सभा है जो प्रेतोंके सम्बन्धमें खोज किया करती है। प्रेतसे हमारा अभिप्राय उसके शुद्ध अर्थसे है—अर्थात् वह लोग जो मर चुके हैं। मरे हुए जीवोंको जीवित लोगोंके द्वारा बुलाकर उनसे मरनेके बादकी बातें पूछी जाती हैं। उन्नीस बरस पहले इसी सभाके एक उन्नायक नायक प्रोफ़ेसर मैअर्स थे जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मरने के बाद मैं भी अपनी गवाही इस सभाके सम्मुख दूंगा। अपनी मृत्युके दो बरस पीछे वह कई स्थानोंमें भिन्न भिन्न स्त्री पुरुषोंके द्वारा प्रकट हुए और अपनी पूरी परीक्षा कराई। जब सब तरह से यह निश्चय हो गया कि गवाही देने वाले प्रेत-जीव प्रोफ़ेसर मैअर्स ही हैं, तब उनसे मरनेके बादके वृत्त पूछे गये। उन्होंने मरनेके बाद अपने को वर्णनातीत सुखमें बताया। महत्वकी बात यह मालूम हुई कि वह प्रेतावस्थामें जैसे स्वच्छन्द, जैसे सशक्त, जैसे स्वतन्त्र थे उसकी कल्पना वह उन शब्दोंके द्वारा नहीं करा सकते थे जिन शब्दोंके सहारे वह अपने माध्यमसे काम लेते थे। उनका स्पष्ट कहना था कि इस मर्त्यलोकके प्राणी सभी एक तरहके बन्दीगृहमें बन्द हैं, जिसमें अन्धकार ही अन्धकार है और प्रेतयोनिसे गवाही देने वाला मर्त्यलोकके अल्प पारदर्शी आवरणके भीतर अपना तीव्र प्रकाश बड़ी कठिनाईसे पहुँचा सकता है। यह तो हुई इस त्रिदिक् संसारके प्राणियोंकी

लाचारीकी बात। साथ ही यह भी महत्त्वकी बात इन आध्यात्मिक वा मानसिक परीक्षाओंमें देखी गई कि एडिनबरा और लंडनमें प्रायः थोड़े ही क्षणोंके अन्तरमें भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा मैअर्स के जीवनकी गवाही हुई और तत्क्षण ही तार समाचार द्वारा उभय स्थानोंकी गवाही की सत्यता भी जांच ली गई। इससे यह हो गया कि कई सौ कोसकी दूरी जैसे क्षणमात्रमें बिजलीने तय की उसी तरह मैअर्सके प्रेतने भी तय की— बिजलीकी गतिसे चला! चतुर्दिकवाली कल्पनासे यह बात असम्भव नहीं प्रतीत होती। मैअर्स आदि की गवाही वैज्ञानिक तथ्य है, जो पौराणिक कथाओं से कम रोचक और विचित्र नहीं है।

त्रिदिक् संसारकी सभी वस्तुएं हमको त्रिदिक् दीखती हैं। यदि एकदिक् संसार वा द्विदिक् संसार वस्तुतः हो तो उसमें वस्तुएं भी एक दिक् वा द्विदिक् होनी चाहिएं। इसी प्रकार चतुर्दिक् संसार की वस्तुएं भी चतुर्दिक् रूपविशिष्ट होंगी। जब एक दिक् द्विदिक् रूप गणितके तथ्य हैं तो क्या यह सम्भव नहीं कि एकदिक् द्विदिक् वस्तु भी भौतिक विज्ञानके तथ्य हों? क्या हमने समस्त भौतिक शक्तियों पर पूर्ण विचार करके यह निश्चय किया है कि उनमें भी एक दिक् द्विदिक् आदि भेद हैं वा नहीं? भौतिक विज्ञानके पंडित यह अच्छी तरह जानते हैं कि चुम्बकत्व एक ऐसी शक्ति है जो रेखाओंमें ही चलती है, तड़ित तरंगों में चलती है और शुद्ध धरातलोंसे उसका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। कमसे कम इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यद्यपि बिजली व्यापक है तथापि त्रिदिक् वस्तु नहीं है। तरंगोंके साथ द्विदिक्की कल्पना भले ही हो सकती है। चुम्बकत्व और बिजलीका घनिष्ट सम्बन्ध भी वैज्ञानिकोंसे छिपा नहीं है। चुम्बकत्वसे बिजली प्रकट होती है और बिजलीके बलसे चुम्बकत्वका आविर्भाव होता है। यद्यपि विज्ञानने अब तक ठीक ठीक शब्दोंमें यह न बतलाया कि बिजली या चुम्बकत्व वस्तुतः है क्या, परन्तु इन दोनोंकी क्रियाओं और प्रक्रियाओं पर अनेक सूत्र ऐसे रचे जो नित्यके व्यावहारिक प्रयोगोंमें बावन तोला पाव रत्ती ठीक उतरते हैं। भौतिक एवं तडिद्विज्ञानके जगत्प्रसिद्ध आचार्य्य सर जे० जे० टामसनने यह सिद्ध किया है कि समस्त गोचर त्रिदिक् वस्तुओंके सूक्ष्म उपादान जो रासायनिक परमाणु हैं वह स्वयं सहस्रों अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत्कणोंके बने हैं और यह विद्युत्कण विद्युत्की शक्तिके अंशमात्र हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि त्रिदिक् वस्तुओंके उपादान त्रिदिक् परमाणु ऐसे विद्युत्कणोंके बने हैं जो स्वयं त्रिदिक् वस्तु नहीं हैं। ऊपर जितने अनुमान हमने दिक्वादके सम्बन्धमें किये हैं उन्हें भी यहां प्रयुक्त करें तो मानना पड़ेगा कि त्रिदिक् आकार, ठोस आकार, किसी सम धरातलकी गति अपने लम्बकी ओर हो जाने से ही बनता है। अथवा यों कहिये कि त्रिदिक् आकारका मूल द्विदिक् आकार अर्थात् समधरातल है। त्रिदिक् परमाणुकी रचना करने वाले विद्युत्कण भी इसी कल्पनाके अनुसार द्विदिक् समधरातलीय हैं, जिनकी गतिसे ही परमाणुकी रचना होती है। यों विचारनेसे भी बिजलीका द्विदिक् होना हमारी कल्पनामें सहज ही आ सकता है। विज्ञानने अभीतक यह पता नहीं लगाया है कि इन विद्युत्कणों के ही उपादान क्या हैं अथवा यह बिजली ही किन पदार्थों वा शक्तियोंसे बनी है। विज्ञान एक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थकी कल्पना करता है जिसे आकाश कहता है और संभव है कि भविष्य में इसी आकाशके ही सूक्ष्मांशोंमें विद्युत् चुम्बकत्व आदि शक्तियोंका पालना मिलजाय और जन्मका पता लगजाय, परन्तु अभी तो विद्युत्के ही रहस्य उसकी चकाचौंधमें गुप्त हो रहे हैं। सम्प्रति चुम्बकत्वका विद्युत्से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यदि हम यह मानलें कि जैसे विद्युत्कण परमाणुओंके उपादान हैं और द्विदिक् हैं वैसे ही चुम्बकत्वभी विद्युत्कणोंका उपादान है और एकदिक् है। ऐसी कल्पना करनेमें हमको विशेष

बाधा इसलिए नहीं है कि चुम्बकत्व केवल रेखात्मक ही नहीं वरन् उसमें आकर्षण और अपकर्षण दोनों ही गुण हैं जो विद्युत्कणोंमें विद्यमान हैं।

इस प्रकार हमने चुम्कत्वको एकदिक्, विद्युच्छक्तिको द्विदिक् और साधारण गोचर वस्तुओंको त्रिदिक् माना।

साथ ही यह प्रश्न भी उठाना अनुचित न होगा कि यदि एकदिक् द्विदिक् दोनों कल्पनाएं त्रिदिक्के अन्तर्गत हैं, और गणितके विचारसे दोनों तथ्य हो सकते हैं, तो क्या हम "वस्तु" के साथही ऐसी सत्ताका अनुमान नहीं कर सकते, अथवा ऐसी कोई सत्ता नहीं मानते जो एकदिक् द्विदिक् कही जा सके? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमने प्रस्तुत प्रबन्ध ही देश काल और वस्तुके विचारसे आरंभ किया है और यदि हम उसी कल्पनाके अनुसार चलें तो कह सकते हैं कि काल एकदिक् सत्ता है, देश द्विदिक् सत्ता है और वस्तु तो त्रिदिक् है ही। हमने कालकी सत्तापर विचार करते हुए यह दिखाया है कि कालके सम्बन्धमें या तो अनन्तताकी कल्पना हो सकती है अथवा यही कह सकते हैं कि उसकी सत्ता ही नहीं है, परन्तु इसमें तिलभर भी सन्देह नहीं कि भूत भविष्य और वर्तमान यह तीनों कालविभाग सापेक्ष हैं, नित्य नहीं हैं। ऐसी अनन्त सत्ताको एकदिक् कहें तो कोई बाधा नहीं प्रतीत होती। इसी तरह देशकी कल्पनामें यह दिखाया गया है कि देश अनन्तहै अथवा उसकी सत्ताकाही अभाव है, परन्तु इसमें रत्तीभर भीसन्देह नहीं कि उसके अंशोंकी कल्पना सापेक्ष है, नित्य नहीं है। देशकी कल्पना समधरातलके विस्तारके समान है, क्योंकि यदि हम प्रोफेसर रेनाल्ड्सके सिद्धान्तको थोड़ी देरके लिए मान लें तो यह कहनेमें तनिक भी संकोच न होगा कि समस्त गोचर वस्तु देशकी गति से ही निर्मित हैं। गति और कालका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि स्वयं काल शब्द गति का द्योतक है। गति देशमें ही संभव है और रेखामें हीं होती है, गतिसे ही समयका मान करते हैं। यह सचहै कि देशमें गति तीनों ही दिशाओं में होती है, परन्तु तीनोंही दिशाओंमें गति होते ही ठोस वा त्रिदिक् आकार बन जाता है और दो दिशाओंमें गति होनेसे सम धरातलकी सीमाएं बन जाती हैं।

इस तरह हमने कालको एकदिक्, देशको द्विदिक् और वस्तुको त्रिदिक् सत्ता माना है। कालका गोचर रूप चुम्बकत्वमें, देशका विद्युत्में स्पष्ट होता है। इसी प्रकार वस्तुका गोचररूप घन, द्रव और वायव्यमें प्रकट होता है।

हमारे प्राच्य दर्शनोंने जिस प्रकार पंच महाभूतके स्थूल और सूक्ष्म दो रूप माने हैं उसी तरह यहां हम भी घन, द्रव, वायव्य इन तीनों स्थितियों के स्थूल और सूक्ष्म दो रूप मान सकते हैं। पृथ्वी जल और वायु यही तीन भूत घन द्रव वायव्यके प्राचीन नाम हैं। अब एकदिक्, द्विदिक् और त्रिदिक् जब तीन जगत् सूक्ष्मताके तारतम्यसे माने गये और चुम्बकत्व, विद्युच्छक्ति और वस्तु यह तीन प्रत्येक जगत्की गोचर वस्तुएं मानी गयीं, तो यह कल्पना भी हम सहजही कर सकते हैं कि चुम्बकत्व सूक्ष्मसत्ताका वायव्य रूप है, विद्युत् द्रव रूप है और साधारण त्रिदिक् वस्तु घन रूप है। चुम्बकत्व वायुरूप है, विद्युत् जल रूप है और साधारण त्रिदिक् वस्तु घन रूप हैं। जिस प्रकार आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिव्यः आदि वाक्योंसे एक भूतका दूसरेसे उत्पन्न होना श्रुतिका प्रमाणहै उसी प्रकार चुम्बकत्व रूपी वायुसे विद्युद्रूपी जल, और विद्युद्रूपी जलके घनीभवनसे वस्तुरूपी पृथ्वीका घनीभवन सहज ही कल्पना गत हो सकता है। यह हम पहले दिखा आये हैं कि इसमें कई तथ्य प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुके हैं। विद्युत्से ही अथवा विद्युत्कणोंसे ही परमाणुओंकी रचना टामसन प्रभृति अनेक प्रमुख वैज्ञानिकोंके परीक्षा सिद्ध तथ्य हैं। चुम्बकत्वके

काल्पनिक वायव्य कणोंसे द्रवरूप वास्तविक विद्युत्कणोंकी रचना और वास्तविक विद्युत्कणोंसे घन रूप वास्तविक परमाणुओंकी रचना यह वर्तमान लेखकके मस्तिष्कसे ही मौलिक रूपसे उद्भूत नहीं है। इसका प्रथम भाग यद्यपि प्रयोग सिद्ध नहीं है तथापि दूसरा भाग तो सर्वमान्य हो है। पहले भागकी कल्पना के ऊपर एवं गत कई पृष्ठों में जिस दिग्वादका दिग्दर्शन किया गया है उस दिग्वादको लेकर मद्रास प्रान्त के एक विद्वान सिविलियन राममूर्त्ति* महोदयने चुम्बकत्व और विद्युत्-सम्बन्धी अनेक सर्वमान्य सूत्रोंको शुद्ध गणित द्वारा सिद्ध किया है। प्रकृतिके कई नियम जो भौतिक विज्ञानके आधार स्तम्भ हैं दिग्वादकी कल्पना पर गणितसे प्रमाणित किये हैं। दिग्वादकी उपर्य्युक्त कल्पनाएं इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूपसे गणितद्वारा सिद्ध की जा चुकी हैं। राममूर्त्ति महोदयका भी यही लक्ष्य है कि अनात्म एकही सत्ता है। चुम्बकत्व से बिजली, बिजलीसे समस्तगोचर वस्तुका आविर्भाव हुआ है। काल की ही कल्पना विस्तारसे और गति प्रसारसे देशका आविर्भाव है और देशकी ही गतिसे वस्तु प्रकट होती है। काल देश और वस्तु का तो भी कार्य्य कारण सम्बन्ध नहीं है। गति परिवर्त्तन मात्रको प्रकट करती है। सबका उपादान शक्तिमात्र है। शक्तिके ही भिन्न भिन्न रूप ग्रहण करनेसे विविध चक्रोंमें स्फुरण करनेसे क्रमशः सूक्ष्म वायव्य द्रव और घन का प्रादुर्भाव होता है। मिट्टीका एक निकम्मा ढेला शक्तिभवानीका एक अनन्त अखंड समूह है, यद्यपि देखनेमें अत्यन्त तुच्छ पदार्थ है।

*राममूर्त्ति महोदयका अप्रकाशित निबन्ध हमें काशी-गणितपरिषत्के सभापति विद्वद्वर डाक्टर गणेशप्रसाद एम० ए०, डी० एस-सी० की कृपा से पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह Proceedings of the Benares Mathematical Society Vol 1. नामक पत्रमें क्रमशः छप रहा है। निबन्ध बड़े महत्त्वका है।

वैज्ञानिक दृष्टिसे जितने अस्तित्वको हम अनात्म कहते हैं, जो कुछ अपने आपेके अतिरिक्त जगत् वा संसारकी सत्ता है, वह एकदिक् द्विदिक् एवं त्रिदिक् वस्तुओंसे ही निर्मित है। चतुर्दिक् पदार्थकी कल्पना भी राममूर्त्ति महोदयने की है और कई भौतिक नियम तदनुसार निकाले हैं जो अभी सर्वथा निर्विवाद नहीं कहे जा सकते। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि चतुर्दिक् सत्ता है तो वह त्रिदिक् सत्ता से उसी प्रकार बनी है, जिस प्रकार द्विदिक् त्रिदिक्का और एकदिक् द्विदिक्का उपादान है। निष्कर्ष यह कि एकदिक्से लेकर बहुदिक् जगत्तक जिसकी कल्पना हो सकती है और जो कुछ अस्तित्व अपने आपेके अतिरिक्त गोचर वा अगोचर हो सकता है सभी एक ही किसी मूल उपादानसे बना है अथवा उसका ही विविध रूपान्तर है। वह मूल उपादान निर्गुण है, अगोचर है, कल्पनातीत है, अक्षर है, अव्यय है, अखंड है, निराकार है, अपरिच्छिन्न है, व्यापक है, अनामय है और अनन्त है। उस मूल उपादानको ही मूलप्रकृति नामसे हमारे दार्शनिक पुकारते हैं, परन्तु वैज्ञानिक उसको ठीक उन्हीं विशेषणोंसे अलंकृत करते हैं जिन विशेषणोंसे हमारे वेदान्ती ब्रह्मको सम्बोधन करते हैं। ब्रह्म वा आत्मसत्ताको भी जब इन्हीं विशेषणोंसे पुकारते हैं तो अब पुनः यह विचार उपस्थित होता है कि क्या इन्हीं विशेषणोंसे युक्त दो सत्ताओंकी स्थिति संभव है? राममूर्त्ति महोदय अनात्म सत्ता पर गणितकी सारी युक्तियां लगाकर यही स्थिर करते हैं कि अनात्मसत्ता एक ही है, परन्तु आत्म और अनात्म एक ही है वा भिन्न इस पर वह विचार नहीं कर सके संभव है कि किसी अगले निबन्धमें यह प्रयत्न करें।

सत्ताके महाविटपकी शाखाएं नीचे हैं* और मूल ऊपर है। विज्ञानके उपासक शाखा पकड़

*ऊर्ध्व मूलमधः शाखं अश्वत्थः प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसियस्य पर्णानि यस्तं वेद सवेदवित्॥

एकड़ एक एकका अनुशीलन करते करते मूलकी ओर जा रहे हैं। स्थूलका विचार करते करते सूक्ष्म के विचार तक जाना नितान्त स्वाभाविक है। जितनी शाखाएं विज्ञानकी जानी गयी हैं, सबके मूलकी खोजमें भिन्न भिन्न मार्गोंसे आरोहण करके सभी वैज्ञानिक एक ही तने पर मिल जाते हैं और एक ही मूलकी ओर सभी प्रवृत्त होते हैं। मूल भी शाखाओंकी तरह भिन्न भिन्न दिशाओंमें प्रसरित दीखता है। परन्तु वह है एक, समस्त विटपके जीवनका आधार और समस्त अस्तित्वका प्राण। वैज्ञानिकोंने अभी आत्मसत्ता पर प्रयोग नहीं कर पाया है। प्रेतावस्थाकी साक्षी ही तक अभी उनके प्रयत्न सफल हुए हैं। परन्तु हम यह दिखा आये हैं कि गुणोंका समूह चाहे कितना ही भिन्न हो, वस्तुएं कैसी ही अलग दीखती हों पर सत्ता एकही हो सकती है और वह अनन्त ही हो सकती है। यदि हम आत्म और अनात्म दोनोंकी अज्ञातृत्व और अन्य निषेधवाचक विशेषणोंको ही गुण मान लें तो आत्म और अनात्मकी सत्ताएं पूर्व तर्कणानुसार भिन्न नहीं रह जातीं। हमें लाचार हो दोनों को एक ही मानना पड़ता है, चाहे हम आध्यात्मिक वाद से काम लें चाहे आधिभौतिक परीक्षा से। अन्तः श्रुतिका यही वाक्य पक्का ठहरता है :—

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।"

हवाका पानी बनाना

लगभग दो सौ वर्ष हुए कि इङ्गलैण्ड के एक विख्यात ग्रन्थकार स्विफ़्ट (Swift) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "गलीवर्स ट्रैविल 'Gullivers' Travels' में लोगाडो (Logado) के विज्ञान परिषद् के वैज्ञानिकों का मज़ाक़ उड़ाने, उपहास करने, की गरज़ से एक ऐसे दृश्य का चित्रण किया, जिसमें उन्हें हवा को पानी कर देने का प्रयत्न करते हुए दिखलाया था; मानों वह एक अघटित घटना के कर दिखलानेमें यत्नवान थे। आज वही अघटित घटना, वह असम्भव कार्य, अत्यन्त सुगम हो गया है।

हमारे देखते ही देखते विज्ञान ने बड़े अनोखे चमत्कार कर दिखाये हैं—अभाग्य वश उसने अपनी विनाशक शक्तिका भी पूर्ण परिचय दे दिया है। आजकल कठोरसे कठोर धातुको बातकी बातमें वाष्पमें परिणत कर देना, जीते हुए बीमारके अवयवोंका, बिना चीर फाड़ किये ही, छाया चित्र उतार लेना, मारकोनीका एक जलयानके पीछे जाना और उसका कुशल समाचार बिना तारके सुदूर समुद्र तट तक पहुँचाना, हवाको पानी जैसे द्रवमें बदल देना, हैड्रोजिन (उज्जन) तथा हीलियम जैसी अभिमानी गैसोंका मान मर्दन करना और उन्हें द्रवरूप दे देना, इत्यादि बातें बहुत मामूली हो गई हैं और उनके समाचार नित्य पढ़नेमें आते हैं।

पदार्थकी तीन दशा

साधारणतया पदार्थकी तीन दशाएं अर्थात् कठोर (ठोस), द्रव और वायव्य (गैस) मानी जाती हैं, परन्तु एक और दशा है जिसे पुरा-वायव्य अथवा विकीरक दशा कह सकते हैं। सर्व साधारण उपरोक्त तीन दशाओंसे भली भांति परिचित हैं और उनका भेद भी समझते हैं। उदाहरणके लिए पानी ही ले लीजिये। इसका ठोस रूप बरफ है। बरफकी दशामें इसकी आकृति और रूप दोनों निश्चित होते हैं। द्रवावस्थामें अर्थात् पानीका कुछ आकार नहीं होता। जिस बर्तनमें उसे रखिये उसी का सा रूप वह धारण कर लेता है, परन्तु उसका आयतन उतना ही बना रहता है। जब गर्मी पाकर पानी भाप होकर उड़ जाता है तो उसका न तो आकार और न आयतन ही निश्चित रहता है। जितने बड़े बर्तनमें उसे छोड़िये, वह उसमें व्याप्त हो जायगा।

एक विख्यात वैज्ञानिक सिद्धान्तके अनुसार पदार्थ मात्रके अणु सदा भ्रमण करते रहते हैं। इस सिद्धान्तको अणु भ्रमण वाद कहते हैं। ठोसोंके अणु अपनी स्थितियोंके इधर उधर घड़ीके लटकनके समान जुम्बिश किया करते हैं। निकटस्थ अणुओंका अन्तर अत्यन्त कम है, इसी कारण अणु एक दूसरे पर बड़ी प्रबल आकर्षण शक्ति डालते हैं। इसी आकर्षणके कारण ठोसका आकार और आयतन निश्चित रहता है। यदि ठोसको तपाया जाय अर्थात् उसका तापक्रम बढ़ाया जाय तो उसके अणुओं का वेग और उनका कम्प विस्तार (amplitude) बढ़ जाता है। अतएव उनका परस्पर आकर्षण दुर्बल पड़ जाता है। इस प्रकार एक अवस्था आ जाती है जब वह बिना संघर्षण अथवा रुकावटके इधर उधर स्वच्छन्द भ्रमण कर सकते हैं, परन्तु पदार्थके आयतनकी सीमाका उल्लंघन नहीं कर सकते। इस अवस्थामें ठोस द्रवमें परिणत हो जाता है। इस तापक्रमको द्रवणांक अथवा द्रवणविन्दु कहते हैं। इससे अधिक तापक्रम बढ़ानेका प्रभाव यह होता है कि अन्तराणु स्थान, अणुओंके बीचका स्थान (Inter molecular space), अधिकाधिक बढ़ता जाता है और अन्तमें अणुओं के परस्पर का आकर्षण लुप्त प्राय हो जाता है। इस अवस्थाको गैसीय अथवा वाष्पय अवस्था कहते हैं।

द्रवीभवन अर्थात् गैसका द्रव (पानी जैसा तरल) बना देना गैसीभवनकी उल्टी क्रिया है अर्थात् यह वह क्रिया है जिसमें गैसके अणुओंके बीचका स्थान-अन्तराणुस्थान—और उनका गति सम्भूतबल, दोनोंको यथोचित परिमाणमें कम करना पड़ता है, गति सम्भूतबल, जिसका प्रकट प्रभाव तापक्रम है, तापक्रम घटानेसे - गैसको ठंड पहुंचानेसे—घट जाता है। अन्तराणु स्थान ठंड पहुंचाने और दबाव डालनेसे—घट जाता है।

केवल तापक्रम घटानेसे ही गैस द्रवमें परिणत की जा सकती है, परन्त केवल दबाव डालनेसे ही यह परिवर्तन कर देना संभव नहीं। बेलफास्ट निवासी एण्ड्रूजने पहले पहल प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि प्रत्येक गैसकी एक संकटकी अवस्था होती है। इस अवस्थामें जो उसका तापक्रम होता है उसे संकट-तापक्रम और जो दबाव होता है उसे संकट-दबाव (critical temp.and pressure) कहते हैं। एण्ड्रूजने यह सिद्ध किया कि संकट तापक्रमसे जब तक गैस गरम रहती है, तब तक उसे केवल दबाव डालकर द्रव बना लेना असम्भव है। परन्तु संकट तापक्रम पर या उससे नीचे तापक्रम पर गैस को उचित दबाव डालकर द्रव (पानी) कर सकते हैं।

हम बतला चुके हैं कि पदार्थोंके अणुओंके वेगके कारण—उनके गति सम्भूतबलके कारण—ही हमें गरमी सर्दी का, तापक्रमका, अनुभव होता है। एक आदर्श अवस्था ऐसी है, जिसमें सब अणुओं की गति रुक जाती है। वह अवस्था अब तक पहुंची नहीं जा सकी है, परन्तु उसको ही सच्ची ठण्डकी अवस्था कह सकते हैं, उसीमें गरमीका अभाव होता है।

वह अवस्था, वह तापक्रम, बरफसे २७३°श नीचे है और केवल शून्य (Absolute zero) कहलाता है। इस तापक्रम पर रासायनिक युयुत्सा लोप हो जाती है। जो पदार्थ साधारण तापक्रमपर बड़े तेज़ मालूम पड़ते हैं वह शून्य तापक्रमपर तेजहीन हो जाते हैं।

सौ वर्ष से ज़्यादा हुए गैस दो प्रकारकी समझी जाती थीं। स्थायी अथवा सच्ची और अस्थायी अथवा नक़ली। अस्थायी गैस वह थीं जो सहज ही द्रव हो सकती हैं। स्थायी वह जो अनेक यत्न करने पर भी द्रव रूप धारण नहीं करतीं। फेरेडे जो आधुनिक विज्ञानके ऋषियोंमेंसे एक समझा जाता है उसने इन स्थायी गैसोंके द्रवीभवनका मार्ग दिखलाया और उनका मान मर्दन किया। अमोनिया, क्लोरीन (हरिन), नत्रस ओषिद (Nitrous oxide), उज्जहरिद (Hy-

drochloric acid), गंधक द्विओषिद (sulphur dioxide)—इन सब गैसोंको फेरेडेने ही द्रव किया। फेरेडेने जिस रीतिका अवलम्ब किया वह यह है। एक मुड़ी हुई नलिका लेकर उसके एक अंगमें वह ऐसे पदार्थको रखता था, जिसके तपानेसे गैस पैदा हो जाती थी। दूसरे अंगको बन्द करके, ठंडे मिश्रण (Freezing mixture) में रख देता था। पदार्थ के गरम करने पर गैस निकलती थी, पर स्थान संकुचित होनेसे बड़ा भारी दबाव पैदा हो जाता था। यह दबी हुई गैस जब दूसरे छोर पर ठंड पाती थी तो द्रवमें परिणत हो जाती थी।
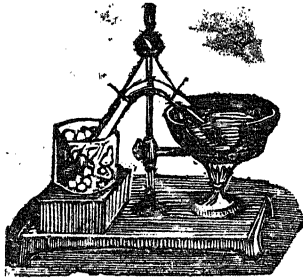
चित्र ४६

इस रीतिके भली भांति समझ लेनेके लिए मैं एक घटनाका वर्णन करता हूँ, जिसमें पहले पहल क्लोरीन (हरिन) का द्रवीभवन हुआ। सं० १८२३ ई० में सर हम्फ्रे डेवीने फेरेडेको आज्ञा दी कि क्लोरीन हैड्रेट पर गरमीके प्रभावकी जांच करें। उस समय फेरेडे डेवीकी प्रयोगशालामें सहायकका काम करते थे। फेरेडेने उपरोक्त प्रकार की नलिकाके एक अंगमें क्लोरीन हैड्रेट बन्द करके उसे तपाया। दूसरे अङ्गमें एक तेल सा इकट्ठा हो गया। जब यह प्रयोग हो रहा था उसी समय डा० पेरिस भी चले आये। उन्होंने तेल देखकर फेरेडेको बहुत भला बुरा कहा कि गन्दी नलिका काम में लाते हो। फेरेडेने तेल देखकर अपनी भूल मान ली और बन्द किये हुए, मुद्रित, छोरको रेतीसे घिस कर तोड़नेका प्रयत्न करने लगे। सहसा धड़ाका हुआ और तेल गायब हो गया। फेरेडेने फिर प्रयोग किया, फिर वही घटना हुई। तब उन्हें ध्यान आया कि यह तेल द्रव क्लोरीन है। दूसरे दिन डा० पेरिसको यह सूक्ष्म पत्र मिला :—

प्रियवर—जो तेल कल आपने देखा था वह वस्तुतः द्रव क्लोरीन निकला—भवदीय फेरेडे।

आरम्भमें प्रयोग कर्ताओंको हानिकारक धड़ाकों अथवा विस्फोटनोंसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था। पर कुछ दिन बाद थिलोरियर ने एक यंत्र बनाया, जिससे द्रव कर्बन द्विओषिद प्रचुर परिमाणमें बनाया जा सकता था। इस यंत्रका सिद्धान्त वही है जो फेरेडेके प्रयोगोंका था। गैसका उत्पादन उस लोहे के बर्तनमें होता है जो दाईं तरफ दिखलाया है (अ)। यह गैस बाईं तरफके बर्तन में (ब) पहुंच कर अपने ही दबावसे दब जाती है। यही बर्तन ग्राहक कहलाता है। उत्पादक और ग्राहकके बीचमें एक मज़बूत तांबेकी नली है, जिसके जोड़ोंमें बिलकुल सांस नहीं है। उत्पादक और ग्राहक—दोनों बेलनाकार बर्तनोंमें भीतर सीसेकी तह
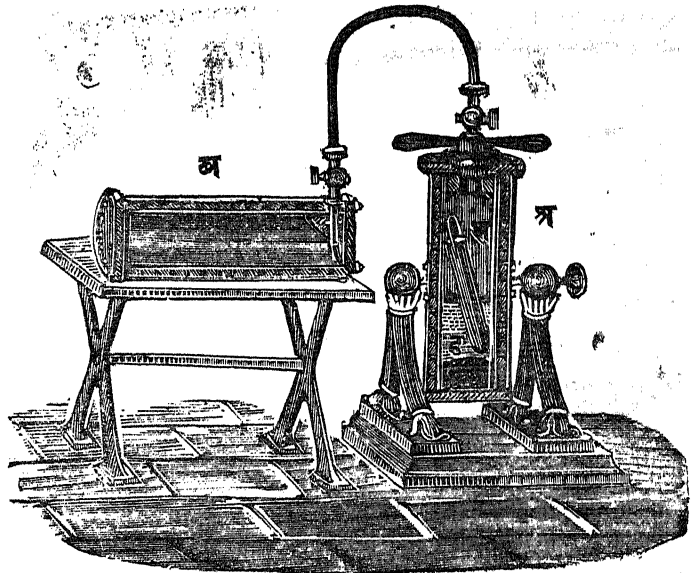
चित्र ४७—थिलोरियरका यंत्र

चढ़ी रहती है और बाहर लोहेके चक्र जड़े रहते हैं। उत्पादकमें सोडा बाइकार तोल कर रख दिया जाता है और गन्धकाम्ल एक खुली नलीमें भर कर, नलीको टेढ़ा करके रख देते हैं, जैसा

कि चित्रमें दिखाया है। उत्पादकके नीचे उसके हिलानेका इन्तज़ाम रहता है। हिलानेसे गंधकाम्ल बाइकारमें गिर जाता है और कर्बनद्विओषिद बनने लगता है। संबंधक नली—खोल दी जाती है। इसके द्वारा कर्बनद्विओषिद ग्राहकमें पहुँचता है और वहां द्रव हो जाता है। जब दोनों बरतनोंमें साम्यावस्था हो जाती है तो टेप बन्द करके उत्पादकको खोलकर फिर मसाला भर देते हैं। छः बार प्रयोग करनेसे एक गैलन द्रव कर्बनद्विओषिद बन जाता है।

थिलोरियर ने द्रव कर्बन द्विओषिदके सब गुणोंकी परीक्षा की और उसे ठोस रूपमें भी बदल सका। ठोस कर्बन द्विओषिद और ईथर (एक प्रकारका द्रव) मिला देनेसे एक बड़ा अच्छा ठंडक देनेवाला—शीतप्रद refrigerator—बन जाता है। इसका तापक्रम —११०°श होता है।

हम पहले बतला चुके हैं कि जब तक किसी गैसका तापक्रम उसके संकट तापक्रमसे ऊंचा रहता है, कितना भी ज़्यादा दबाव उसपर क्यों न डाला जाय वह द्रव रूप धारण नहीं करती। अब ज़रा Natterer के प्रयोगोंका हाल सुनिये। उसने ४०० वायु मण्डल तक का दबाव अपने प्रयोगों में स्थायी गैसोंपर डाला, पर वह उन्हें द्रव न कर सका। उपरोक्त कथन के प्रकाश में इस बातका कारण स्वतः स्पष्ट है। स्थायी गैसोंका संकट तापक्रम साधारण तापक्रम से बहुत नीचे है। इसी तरह मामूली ठण्ड पहुंचाकर दबाव डालना व्यर्थ है। उन्हें उनके संकट तापक्रम तक ठण्डा कर लेना आवश्यक है। तदनन्तर दबावके प्रभावसे वह द्रव हो जायेंगी, अन्यथा नहीं। पिकटे महोदय पहले पहल ओषजन के द्रवीकरणमें सफल हुए। उनकी विधिका सिद्धान्त यह था कि पहले ओषजन को किसी कम दबावपर किसी खौलती हुई द्रवीभूत गैसमें डुबोकर उसके संकट तापक्रमसे भी ज़्यादा ठण्डा कर दिया।

पानी, तेल आदि द्रवोंको खौलते हुए आपने देखा होगा। इन सबका खौलना तभी आरम्भ होता है जब उनकी भापका दबाव वायुमण्डलके दबावके बराबर हो जाता है। अतएव यदि किसी प्रकार द्रवके तल परका दबाव कम कर दिया जाय तो उसका उबाल विन्दु कम हो जायगा। उदाहरणके लिये पानी ले लीजिये। साधारणतया पानी १००°श पर उबलता है। पहाड़ों पर उसपरका दबाव कम हो जाता है और उसका उबलना नीचे तापक्रम पर शुरू हो जाता है। परिणाम यह होता है कि चीज़ोंका चुरना कठिन हो जाता है। यदि पानी किसी बर्तनमें रखा जाय और बर्तनमेंकी सब वायु निकाल ली जाय तो पानी बिना गरम किये ही उबलने लगेगा। दूसरी बात जो स्मरण रहे वह यह है कि जब कभी कोई द्रव भापमें बदलने लगता है तो वह गरमी सोखता है। यह देखिये, यहां पर एक घरियामें ईथर रखा है और घरिया पानीमें डूबी हुई है। ईथरमें होकर हवा फूंकनेसे ईथर तेज़ीसे भाप बनकर उड़ने लगता है। उड़नेमें जो गरमी इसे चाहिये, वह पानीमेंसे या उसीके अन्दरसे आती है। अतएव ईथर का और साथ ही साथ उसके आस पासके पानीका तापक्रम कम होता जाता है। थोड़ी देरमें पानी बरफ़में बदल जाता है।

अब सोचिये कि यदि कोई गैस द्रव रूपमें लीजाय और उसपर का दबाव हटा दिया जाय तो वह खौलने लगेगी। और खौलनेपर अपने आपको ठंडा करती जायगी। अतएव स्पष्ट है कि कम दबाव पर उबलती हुई द्रव गैसों से बहुत नीचा तापक्रम पैदा हो जाता है।

गंधक द्विओषिद साधारण तापक्रम पर दबाव डालकर द्रव बनाई जा सकती है। द्रव गंधक द्विओषिद कम दबाव पर खौलने दी जाय तो—७०° श तापक्रम प्राप्त हो सकता है। एक ताम्बेकी नलीको—७०°श तक इस प्रकार ठंडा करके, उसमें होकर कर्बन द्विओषिद को निकाल कर ठंढा कर सकते हैं और द्रव कर सकते हैं। खौलती हुई कर्बन द्विओषिद् गैससे ओषजन संकट

तापक्रम के नीचे तक ठंडी की जा सकती है और द्रव बनाई जा सकती हैं।

इस विधि का नाम 'कास्केड' विधि है। कैलीटे महोदय ने भी प्रायः उसी समय ओषजन को द्रव बनाया, परन्तु उनका यंत्र एक और ही सिद्धान्त पर बना था। इस सिद्धान्त के समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस बात पर पहले विचार करलें कि दबी हुई गैस-को यदि फैलने दिया जाय तो क्या होगा।

मानलो कि एक फुटबाल में गैस दबा कर भरी गई है। ब्लेडर के मुंह को खोलते हैं, हवा वेग से सनसनाती निकल जाती है। जब हवा निकली तो
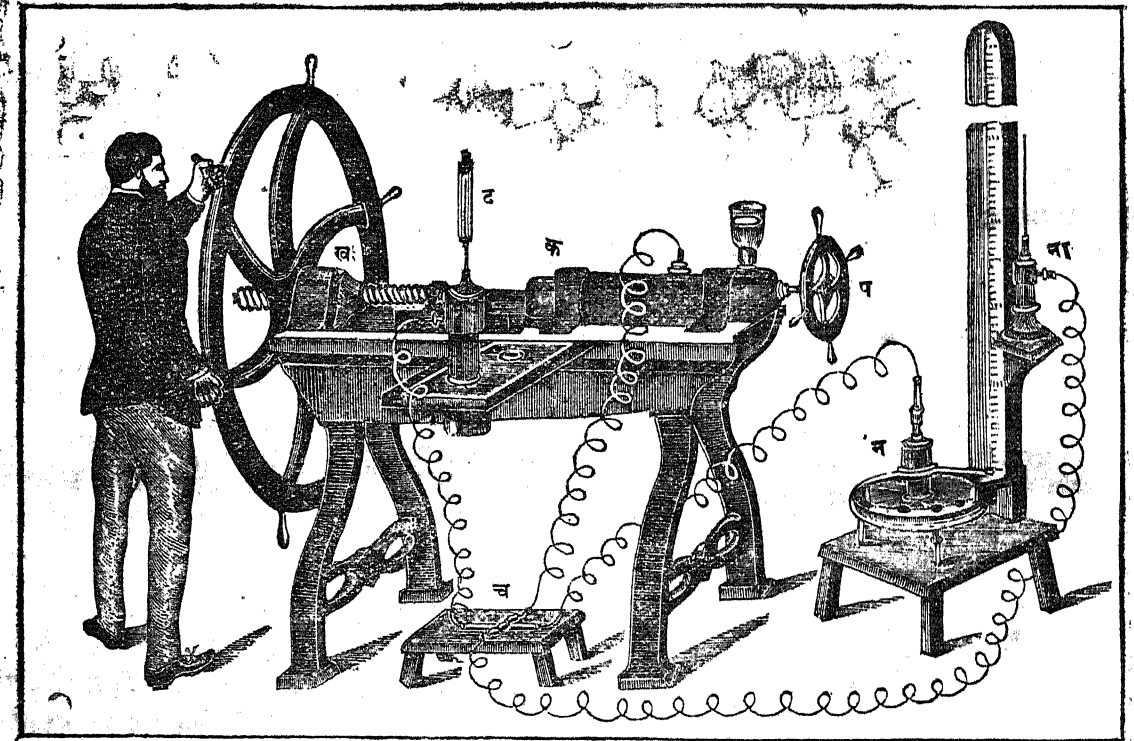
चित्र ४८—कैलीटेका यंत्र

उसे बाहर के दबाव को हटाकर ही निकलना पड़ा होगा। अतएव उसे बाहरी काम करना पड़ा, परन्तु ब्लेडरके बाहर निकलते ही वायु बहुत दूर दूर तक फैल जाती है। अतएव उसके अणुओं को बिलगानेमें भी कुछ काम हुआ होगा। इस कामको आभ्यन्तर काम कहते हैं। दोनों प्रकार के काम करनेमें शक्ति का व्यय होता है। यदि हवा सहसा फैल जाय, जैसा प्रस्तुत उदाहरण में होता है तो यह शक्ति उसके अन्दरसे ही खिंच आती है अर्थात् उसका तापक्रम घट जाता है। सारांश यह कि जब कभी दबी हुई गैस फैलती है तो वह ठण्डी हो जाती है।

कैलीटेके यंत्र का चित्र यहां दियाजाता है। क एक लोहेका पीपा है, जिसमें ख पेच द्वारा चलने वाला डट्टा है। पीपेमें ग कीपसे पानी भर देते हैं। आवश्यकतानुसार दबाव कम करने के लिये एक ढिबरी रखी गई है जो प पहिये के द्वारा खोली मूंदी जा सकती है। यही ढिबरी इस यंत्र

की एक विशेषता है। च पर एक चौमुखी नली है, जिसके द्वारा द्रवीकरण यंत्र द, दबाव डालने वाले यंत्र क, और दबाव नापनेके यंत्र न और ना से सम्बंध हो जाता है। ख के चलाने पर डट्टा क में प्रवेश करता है और उसमेंके पानीको दबाता है। यह दबा हुआ पानी वहांसे निकलकर च द्वारा द, न और ना में दबाव पैदा करता है। इन तीनोंमें एकसा दबाव होता है। अतएव द में का दबाव, न तथा ना के अंकोंसे मालूम हो जाता है। द में दबाव

चित्र ५९
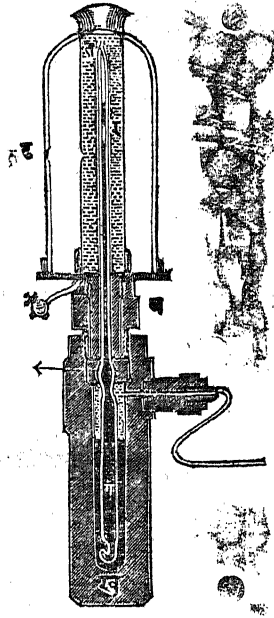
बढ़ने से क्या होता है, इसका हाल जाननेके लिए लिए द का बड़ा चित्र ५९ देखिये। चित्र में तव एक नली है जो ऊपर से (बंद) मुद्रित है। इसमें गैस भर दी जाती है और वह पारे में औंधा दी जाती है। तदनन्तर जिस बर्तन ठ में पारा है; उसको ब से बन्द करदेते हैं। केवल नली बाहर निकली रहती है, ब के ऊपर शीत प्रद मिश्रण भरने के लिए एक चौड़ा पात्र और ढकना ढ रखने के लिए स्थान है। पहले पात्रमें शीतप्रद रखकर गैसको ठंडा करते हैं, तदनन्तर ख चला कर दबाव बढ़ाते हैं। च द्वारा पानी ठ में पहुंचता है और पारे को दबाकर तव नली में घुसाता है, जिससे गैसपर दबाव पड़ता है। जब गैस खूब दब जाती है तो सहसा प को घुमा ढिबरी खोल देते हैं, जिससे गैसपरका दबाव एक दम कम हो जाता है। दबी हुई गैसके सहसा फैलनेसे गैस बहुत ठंडी हो जाती है और द्रवीभूत गैसके बहुत छोटे छोटे कण पैदा होकर नलिका में कुहरा सा दिखाई पड़ने लगता है। इस यंत्रसे केवल कुहरा सा पैदा हो सका था।

पिकटे (Pictet) और कैलीटे (Cailletit) ओषजन को पहले पहल द्रव बनाने के यश के पाने के लिए प्रतिद्वन्दी थे। दोनों इस मार्केके कामका सहरा अपने सर बंधाना चाहते थे। झगड़ा तो इसी बातसे दूर हो गया कि इनके यंत्र भिन्न भिन्न सिद्धान्तों पर बनाये गये थे। इसी से इस यश के दोनों भाजन हैं। इनके बाद दो रूसी रासायनिकोंने यंत्रोंमें बड़ा संशोधन किया और द्रवीकरणकी विधि अत्यन्त सुगम बना दी।

नीचेकी सारिणीमें कुछ गैसोंके उबाल विन्दु द्रवणविन्दु और द्रवावस्थाका रंग दिया है।

गैस	उबालविन्दु	द्रवणविन्दु	रंग
अमोनिया	–३३·७° श	–७५° श	बेरंग
कर्बनद्विओषिद	–७८° श	–६५° श	„
क्लोरीन	–३६·६° श	–१०२° श	पीला
उज्जन	–२५२° श	—	„
नत्रजन	–१९५° श	–२४१°	„
ओषजन	–१८३° श	—	पिलाई लिए हुए नीला

नत्रजन और ओषजनको द्रव कर लेनेके पश्चात् हवाको द्रव करनेका प्रयत्न किया गया। उपरोक्त दो प्रयोगोंके सिद्धान्त और विधिसे ही प्रायः काम लेकर लिण्डे (Linde) ने जरमनी में, हेम्पसन और देवार (Hampson and Dewar, ने इङ्गलेण्ड में और Tripler ने America में हवाको द्रव किया।

यहां पर प्रो० देवर (Prof. Dewar) के उस सरल यंत्रका चित्र दिया जाता है, जिससे, बिना वायु-पम्पकी सहायता के, वायु या अन्य गैस द्रव रूपमें परिणतकी जा सकती हैं। केवल दबी हुई गैसों से भरे बर्तनों की आवश्यकता पड़ती है। दाहिनी

तरफ द्रव कर्बन द्विओषिद (Liquid of CO_2) है, बाईं तरफ़ दबी हुई हवा या ओषजन। ऊपर की तरफ़ बीचों बीच छोटा पीपा है, जिसमें द्रवीकरण-यंत्र रखा है। अतएव स्पष्ट है कि यह यंत्र बहुत ही सुडौल है।

चित्रमें ६१ पूर्वोक्त द्रवीकरण यन्त्रका भीतरी दृश्य दिखाया गया है। कर्बन द्विओषिद अपनी
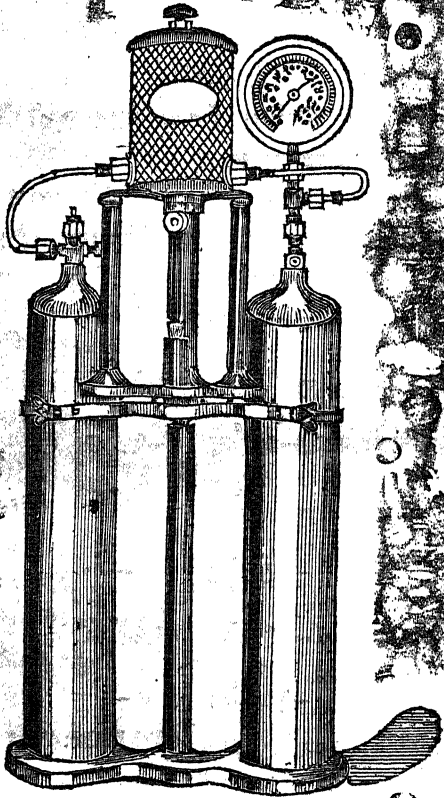
चित्र ६०

सिलेन्डरमेंसे निकलने पर गैस हो जाती है और क द्वारा यंत्रमें प्रवेश करती है। यह एक बेठनमें चक्कर लगाती है, जो पीपेकी भीतरकी तरफ एक वैसी ही बेठनके समानान्तर जड़ी हुई है। यह दूसरी बेठन ब छिद्र द्वारा दबी हुई वायुके सिलेण्डर से जुड़ी हुई है। कर्बन द्विओषिदकी नलीकाले बिन्दुओंसे और वायुकी नली सफेद बिन्दुओंसे दिखलाई गई है। इस बेठन या नलीके बाद कर्बन द्विओषिद यंत्रके भीतरी भागमें प्रवेश करती है और उसका प्रवाह पेच द्वारा ठीक रखा जाता है। इस पेचसे नीचेका छिद्र खोला मूंदा जा सकता है।

उधर गैस यन्त्रके भीतरी भागमें की एक बहुत लम्बी बेठनमें जाती है और उसमें चक्कर लगाते समय, भीतर इकट्ठी हुए कर्बन द्विओषिद से खूब
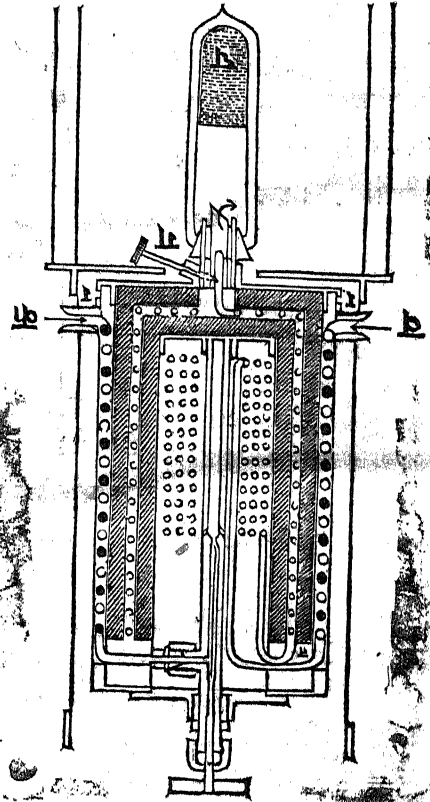
चित्र ६१

ठंडी हो जाती है। यहांसे भी निकल कर वह उस पैपमें जाती है जो बाहरी और भीतरी कोठों के बीचमें स्थित है और अन्तमें ग द्वारा खुलने मुंदने-वाले छिद्रमें से द्रवरूपमें निकल आती है और घ में जमा हो जाती है। लगभग पंद्रह मिनटमें छः घन इञ्च द्रव वायु बन जाती है।

पदार्थों की बिन्दवाकार दशाके कारण हम द्रव वायु में हाथ डुबोये रख सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि द्रव वायु काहेमें रखी जाती हैं। इस कामके लिये खास किस्मके बर्तन प्रोफ़ेसर देवारने बनाये हैं। इन बर्तनों-की दोहरी दीवारें होती हैं। दीवारोंके बीचके स्थानमेंकी सब वायु यंत्रों द्वारा निकाल-कर पूर्ण शून्य कर देते हैं और मुद्रित कर देते हैं। अन्दरके हिस्सेमें द्रव वायु भर देते हैं। वह वहां सुरक्षित रहती है। बर्तनका बाहरी हिस्सा खूब पालिश किया हुआ चमकीला रखते हैं।
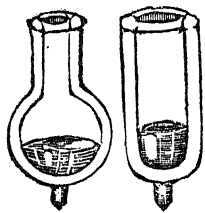
चित्र ६२

द्रव वायुके उड़नेके लिए उस तक गरमीका पहुँचना आवश्यक है। पर इन बर्तनोंके भीतर तक गरमी नहीं पहुँच सकती। विकीरण (radiation) द्वारा गरमी पहुँचना तो बाहरी चमकके कारण असम्भव है। प्रवाहन द्वारा पहुँचना शून्यके कुवा-हक होनेके कारण नहीं हो सकता। रहा अब एक ऊपरका खुला हुआ मार्ग, सो वह अत्यंत ठंडी वाष्पसे भरा रहता है और रबड़की डाटसे बन्द रहता है।

हम पहले बतला चुके हैं कि गैसको दबानेसे गरमी पैदा होती है और उसके सहसा फैलनेसे सरदी। यही डा० लिण्डे-के यन्त्र का सिद्धान्त है। पहले गैसको एक पम्प द्वारा बहुत दबाते हैं और एक छिद्र द्वारा पानीमें डूबी हुई नलीमें भेजते हैं। यहां दबावसे पैदा हुई गरमी निकल जाती है। तदनन्तर गैस एक बेठनमें च सेप्रवेश करती है। इस बेठन में दो नली हैं। गैस भीतरी नली में जाती है और ड छिद्र पर पहुचकर सहसा फैलती है। अतएव वह ठंडी हो जाती है। यहांसे ठंडी होकर गैस व द्वारा बाहरी नलीमें होती हुई और अन्दरकी नलीमें जाती हुई गैसको ठंडी करती हुई फिर पम्पमें पहुँच जाती है। वहांसे फिर पूर्ववत अन्दरूनी नलीमें जाती है और पहलेसे ज्यादा ठंडी होकर लौट आती है। इसी भांति अधिकाधिक ठंडी होकर अन्त में द्रव हो जाती है।
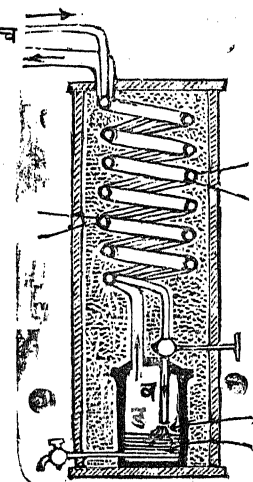
चित्र ६३

द्रव हीलियम और उज्जन

देवार महोदयने उज्जन भी बड़े परिमाणमें द्रव बना कर दिखलाई। उन्होंने उसके जो गुण मालूम किये नीचे दिये जाते हैं—

द्रव उज्जन एक सफेद पारदर्शक पदार्थ है जो बहुत ही हलका होता है। वह विद्युत्का अच्छा वाहक नहीं है। साधारण दबाव पर उसका उबाल विन्दु—२५२.५° श है।—२८५° श पर द्रव ठोसमें परिणतहो जाता है। Prof. Kammerling Onnes of Leyden ने हीलियम कोभी द्रव करडाला। उसका उबाल विन्दु—२६८.८ श या ४.५ केवल डिग्री है। इस तापक्रमसे और नीचेका तापक्रम अभी तक नहीं पैदा हो सका है। सबसे ऊंचा ताप-क्रम जो अभी तक ज्ञात हुआ है सूर्यका है, जो ६०००° है और सम्भवतः सबसे नीचा ताप-क्रम केवल शून्य अथवा-२७३° श है। प्रयोग-शाला में विद्युत् चाप द्वारा ४०००° श का तापक्रम पैदा किया जा चुका है। खौलते हुए द्रव हीलियम से-२७०° श तक का तापक्रम मिलचुका है। यहीं तक अभी हमारी पहुँच हुई है।

(१) जब द्रव हवा काचकी कुप्पी में डालदी जाती है, तब वह बड़े ज़ोर से खौलने लगती है।

(२) द्रव हवा छन्ने कागज़ में से छानी जा सकती है। ठोस कर्बन द्विओषिद् अलहदा किया जा सकता है और स्वच्छ नीला द्रव प्राप्त हो सकता है।

(३) जब द्रव हवा पानी भरी कुप्पीमें डाल दी जाती है तो बड़ी वेगयुक्त क्रिया आरम्भ हो जाती है। प्रत्येक विन्दु अपने चारों ओर बरफका गिलाफ सा बना लेता है और अन्तमें ग़ायब हो जाता है।

(४) द्रव हवामें डुबोनेसे बहुत सी चीज़ें चटखीली हो जाती हैं।

(५) जब द्रव हवा शराबमें डाल दी जाती है तो शराब फ़ौरन जम जाती है।

(६) पारा भी द्रव हवाके संपर्कसे ठोस हो जाता है। पारेका हथौड़ा बनाया जा सकता है।

(७) यदि किसी कागज़के टुकड़ेको द्रव हवामें अच्छी तरह भिगो ल तो वह बड़ी तेजीसे जलने लगता है।

(८) अगर द्रव वायुसे भरी हुई परख नली डोरेसे लटका दी जाय तो उसका व्यवहार वैसा ही होगा जैसा चुम्बककी उपस्थितिमें लोहेकी छड़का होता है।

जो प्रयोग ऊपर दिये जा चुके हैं उनसे मालूम हुआ होगा कि प्रायः सभी ज्ञात गैसें द्रव हो चुकी हैं और कुछको छोड़कर सभी ठोस रूप धारण कर चुकी हैं। अतएव स्पष्ट है कि सभी पदार्थ गैस द्रव या ठोस अवस्था में रह सकते हैं। जो तेज गर्मी बिजलीके भट्ठेमें पैदा होती है उसमें भारीसे भारी ठोस उड़ चुका है अर्थात् गैसका रूप धारण कर चुका है। द्रवावस्था, ठोस और गैसीय अवस्थाके बीचकी अवस्था है। कभी कभी इस बीचकी अवस्थामें पहुँचे हुए बिना भी ठोस सीधा गैसके रूपमें चला जाता है। मामूली तौर पर यह दशा कपूरकी है। ऐसे पदार्थोंका द्रवण विन्दु उनके उबाल विन्दुसे ऊँचा होता है।

नीचे तापक्रमका जीवोंपर प्रभाव

इस सम्बन्धमें बहुतसे रोचक प्रयोग हुए हैं। बहुतसे जीवाणु बहुत देर तक नीचे तापक्रमपर रखे जानेके बाद भी जीवित रहे हैं। चेचकका लिम्फ या लसीका-७८° श तक ठंडा किये जानेके बाद भी कामके लायक बना रहा। नीचे तापक्रमका उष्ण रुधिरवाले जीवों पर ठण्डे रुधिर वाले जीवोंसे बिलकुल भिन्न प्रभाव पड़ता है। मेढ़क नीचे तापक्रमों पर १० या १५ मिनटमें ही पत्थर जैसा कड़ा हो जाता है। परन्तु गर्म खूनवाला जानवर-१००° श तक भी ठण्डा किये जाने पर घंटे भर तक अपने शरीर को गरम और मुलायम रख सका। परन्तु उष्णताका उसी वेगसे उत्पन्न होना जिससे कि वह शरीरमेंसे निकलती जा रही थी असम्भव था और इसीसे थोड़ी देरमें जानवर मर गया। भिन्न भिन्न प्रा।के बीजोंको —१८२° श तक ठन्डा किया गया पर बोये जाने .र उनमें अंकुर फूट आये। देवार महोदयका इसी कारण यह विचार है कि लार्ड केलविनका वह सिद्धान्त सम्भवतः ठीक है जिसके अनुसार उन्होंने यह बतलाया था कि जीवनके चिन्ह पहले पहल पृथ्वीके बाहरसे किसी उल्कापर आये होंगे।

नीचे तापक्रम पर मांस, मछली, फल इत्यादि नहीं बिगड़ते। इसी लिए एक देशसे दूसरे देश भेजे जानेके लिये नीचे तापक्रम पर रखे जाते हैं। नीचे तापक्रमोंका यह एक व्यवसायिक उपयोग है।

नीचे तापक्रमपर बहुतसे पदार्थोंके गुण बदल जाते हैं। रबरका लचीलापन चला जाता है और वह कांचके समान चटखनी हो जाती है। रांग आदि धातुभी चटखनी हो जाती हैं, बहुतसे पदार्थोंका रंग बदल जाता है, जैसे पारेके ओ॰ द और अयोदिदका। बहुतसी चीज़ें जो साधारणतया मन्द मन्द प्रकाश देती रहती हैं नीचे तापक्रमपर ज्योतहीन हो जाती हैं। कुछ पदार्थोंका प्रकाश देनेका गुण बढ़ जाता है। रासायनिक क्रियाओंका वेग नीचे तापक्रमपर बहुत कुछ घट जाता है। छाया चित्रणकी क्रिया १८०° पर भी हो जाती है। पर उसका वेग ८०% घट जाता है। ईस्टमैन की फ़िलम—२००° श तक भी कामकी रहती हैं।

द्रवीभूत गैसोंका कई व्यवसायोंमें उपयोग होता है। द्रव कर्बन द्विओषिदका उपयोग सोडावाटर वगैरा बनानेमें होता है। द्रव एसेटिलीन (Acetylene) रोशनी करनेमें काम आती है। द्रव नत्रस ओषिद आज कल बहुत बनाया जाता है और छोटे छोटे शस्त्रोपचारों (Operation) में काम आता है, खास कर दांत उखाड़नेमें। द्रव गैसों-

का प्रयोग शीत-प्रदोंके रूपमें भी होता है। गत महाभारतमें द्रव क्लोरीनने लाखों मनुष्योंकी जान ली। साधारणतया यह खानोंमेंसे सोना निकालनेके काम आया करती है।

जीवन में सफलता

इस संसारमें करोड़ों आदमी आए और चले गए, तथा लाखों नित्य आते और जाते रहते हैं। अगणित बड़े से बड़े दिग्विजयी सम्राट और कुबेरका गर्व भी खर्व करदेनेवाले, असंख्य धनपात्र, चार दिन इस वसुन्धरामें चल फिरकर फिर पञ्चत्वको प्राप्त हो गए। जब तक वह रहे, उनका प्रताप और आतङ्क चारों ओर फैला रहा, चापलूसों और भाटोंकी कमी नहीं थी। जिसकी ओर उनकी कृपादृष्टि हो जाती थी, वह अपनेको कृतार्थ मान लेता था। परन्तु आज उनका नाम जाननेवाले संसारमें कितने हैं? उन्हींके समयमें एक झोंपड़ीमें टूटी फूटी चारपाईपर सोनेवाले और उपेक्षा तथा अनादरके ही मरुतमण्डलमें समस्त जीवन व्यतीत करदेनेवाले एक कविका गुण गान करते हुए तो लोग थकना ही नहीं जानते; और यदि कहीं उसे जीवित पावें तो उसका चरण चूमनेके लिए दौड़ें। किन्तु चाटुकार जिसके हुक्मसे हवाका चलना और सूरज और चाँदका निकलना बतलाते थे, उसका संसारकी स्मरण-पटीसे समस्त नाम और निशान सदाको मिटा डाला है। कहिये, इसका क्या कारण है? और कुछ नहीं, किसीने पुच्छविहीन पशुके प्रकार ही खाने पीने और सोनेमें मस्त रहकर अपने आपको मिट्टीमें मिला दिया, और किसीने "सजातो येन जातेन, वंशो यातिसमुन्नतिम्" का उच्च आदर्श अपने आगे रख अपने आपको संसारका उपयोगी बनाया तथा समयकी धरतीपर चरणतल-चिन्ह छोड़कर जीवनलीला समाप्त की। किसीका जीवन विफल रहा और किसीने जीवनमें सफलता प्राप्त की। सफलता क्या है? वह कैसे प्राप्त की जा सकती है? उस देवीको प्रसन्न करनेके लिए कौन सी विशिष्ट पूजाकी आवश्यकता है? आइए, इन्हीं प्रश्नोंकी मीमांसा करनेका हम प्रयत्न करें।

हमारे हृदयमें तथा हमारे मस्तिष्क और शरीरमें परमात्माने जो शक्ति प्रदान की है, उसीके अनुसार संसारकी सेवामें अपने आपको समर्पण कर देना ही, सर्वेशके मन्दिरमें अपना कुम्हलाया हुआ अथवा खिला हुआ फल श्रद्धाभक्ति समेत चढ़ा देना ही सफलता प्राप्त करनेका प्रधान साधन है। जिस कार्य्यके योग्य अपनेको समझ लो, उसके करनेमें तत्पर होकर फिर विघ्न बाधाओंसे न डरो। यदि संसारकी समस्त विरोधिनी शक्तियाँ एक ओर हों, और तुम एक ओर, तो मत सहमो। यदि पग पगपर भी तुम्हारे पाँवोंमें काँटे गड़ें तो गड़ने दो, प्रणसे मत विचलित हो। हाँ, यदि तुम्हारे मनोर्थकी पूर्त्तिके लिए मौतका सामना भी करना पड़े, तो हँसते हुए करो; परन्तु जो तुमने ठान लिया है, वह बिना किये हुए न छोड़ो और यदि तुम ऐसा कर सकें तो इसमें सन्देह नहीं कि सफलता तुम्हारी चेरी होके रहेगी। जब तक सूर्य्य और चन्द्रमा संसारका अँधेरा हटाते रहेंगे तथा गङ्गा और यमुना अपने पुनीत प्रवाहसे पृथ्वीका पाप हरती रहेंगी, तब तक तुम्हारा विशद गौरव गान आगे की पीढ़ियां करेंगी।

धन-प्राप्तिको ही सफलता समझकर लोगोंने जैसी भूल की है, वैसी भूल संसारमें शायद और कोई नहीं हुई है। एक निर्धन मनुष्य जो जीवन भर सांसारिक सुखोंके लिए तरसता रहा है, यदि अमीरोंकी टीमटामको देखकर उन्हें प्रसन्न तथा महाधन्य समझ ले, तो इसमें सचमुच आश्चर्यके लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु स्वयं अमीरोंके हृदयसे पूछिए और आपके आश्चर्य

होगा कि धनके कारण ही उनके समान संसार-में दुखी बहुत कम मिलेंगे। बहुधा यह देखा गया है कि कंकड़ोंपर सोकर एक मज़दूरको जो शान्तिमय निद्रा आई है, वह फूलोंकी सेजपर लेटे हुए त्रिभुवन विजयीके नेत्रोंको नसीब नहीं। सच्ची बात तो यह है कि धनकी प्रीति ही संसार के समान दुखोंकी जननी तथा चिन्ताओंकी संवर्द्धिका है। परन्तु हम यहां एक बात और निवेदन करेंगे। स्वयं धनमें कोई अवगुण अथवा बुराई नहीं है। अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए उसे साधन मात्र बनानेकी दृष्टिसे उसके अर्जनमें भी प्रवृत्त होना निन्द्य अथवा उपेक्षणीय नहीं। वह महान आत्माएँ जिन्होंने संसारके कल्याण साधनके हेतु अपना जीवन उपसर्ग कर दिया, जिन्होंने "परोपकाराय सतां विभूतयः" के मन्त्रका पाठ करके कार्य्यशीलताकी वेदीपर अपने व्यक्ति गत सुखोंको बलिदान कर दिया, गगनचुम्बी प्रासादों तथा पर्णकुटीरों दोनोंसे उदित हुई हैं। जिस भोजनकी प्राप्तिके लिए अपार परिश्रम करना पड़ता है और चिन्ताकी चितामें चित्त जलता ही रहता है वह यदि बिना अधिक प्रयासके ही मिल जाया करे, तो क्या संसारके हितकी दृष्टिसे यह कम अपेक्षित होगा? कार्य्य कर्ताका रोटीकी उलझनोंसे मुक्त रहना बहुत बड़ी बात है और इस दृष्टिसे धन अत्यन्त वाञ्छनीय वस्तु है।

तो फिर हमारा यह कर्तव्य है कि सफलता देवीकी उपासनाके लिए तन मनसे कार्य्य करनेमें रत हो जायँ। हमें चाहिये कि प्रकृतिके गूढ़ गढ़में छिपे हुए रत्नोंको प्रकट करके हम उन्हें संसारके लिए उपयोगी बनाएं। हमें यह कहनेकी आदत छोड़ देनी चाहिये कि हमारे पास अवसर नहीं है, हमारे लिए सुविधाएं नहीं हैं। हम लोग तो कहीं अच्छे दिनोंमें पैदा हुए हैं। आज वह दिन है जब हम वायुयानोंमें बैठे हुए मनुष्योंको स्वच्छंदता पूर्वक विचरते हुए देख तनिक भी आश्चर्य नहीं करते। आज वह दिन है जब हम बम्बईमें बैठे हुए समुद्री तारकी सहायतासे विलायतवालोंसे बातचीत कर सकते हैं। बेतार भी हमारे लिए एक सिद्ध बात हो चुकी। टेलीफोन हमारे लिए एक साधारण चीज़ है। कहिए नेपोलियनके समयमें भी यह सुभीते थे?

जिन सुविधाओंमें आप आज जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्या बेचारे न्यूटनको वह स्वप्नमें भी मिली थीं। कार्यका विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है। उसमें लाखों करोड़ों वीरोंकी आवश्यकता है, वीर भी ऐसे जो ऊबना जानते नहीं, जो संसारके कष्ट-निवारण और आनन्द-वर्द्धनके लिए गहरे पानीमें डूब डूब कर रत्नोंका अनुसन्धान करनेमें प्राण तक अर्पण कर देंगे। जिन्हें अपना जीवन सफल बनाना हो, जो अनन्त यश-राशिके अधिपति बनना चाहते हों, वह आगे आवें और अपनी कार्य वीरता दिखलावें। अभी हमारी रेल गाड़ियोंकी रफतार मोटरोंसे पिछड़ी ही हुई है। अभी मोटरें गरीबोंके पास नहीं दिखलाई पड़तीं। हमारी टेलीफोन अभी बाल्यावस्थामें ही है। आवें वह वीर, हमारे खेतोंको अधिक उपजाऊ बनानेकी हिकमतें ईजाद करें, मज़दूरोंका परिश्रम कम करें, वायुयानोंको जनताके लिये अधिक उपयोगी बनावें, उद्योग धंधोंमें पुनर्जीवन प्रदान करें, तथा नवीनोंकी स्थापना करें, खानियोंमें भयंकर विपत्तिकी आशंका कम करें, पाकेट टेलीफोन का अनुसन्धान करें, अग्निकी विकटता दूर करें, बिजलीके नये प्रयोग ढूंढ़ निकालें, तथा अन्य उपयोगी कार्योंमें हाथ लगावें।

यह ठीक है कि इन कार्योंका कर दिखाना, साधारण बुद्धि और प्रतिभाके मनुष्योंका काम नहीं। ऐसे आविष्कार उन्हीं महानुभावों द्वारा सम्पादित होंगे, जिन्हें परमात्माने विशेष रूपसे उसके योग्य बनाया है। परन्तु इससे साधारण श्रेणीके मनुष्यको हताश होनेका कोई कारण नहीं। वह जिस कार्य्यके योग्य है उसी कार्य्यको करे और यथा साध्य उत्तम रीतिसे करे।

सच पूछिए तो यदि साधारण श्रेणीके पुरुष कार्य्योंमें योग देना छोड़ दें तो संसारका काम ही चलना बन्द हो जाय। जिनके सहारे आपके छापे खाने चलते हैं, जिनके परिश्रम से मिलोंमें आपकी कपड़े तय्यार होते हैं, जिनकी मिहनतसे आपकी खानियां खोदी जाती हैं; जिनके बलपर आपके जहाज़ चलते हैं, यह साधारण लोग होते हैं। यदि कोई मज़दूर दिन भर कार्य्य करके सोते समय यह कह सकता है कि परमात्माकी कृपासे मैंने आज अपना कर्त्तव्य पालन किया, तो क्या इसे कम आनन्द और सन्तोष होगा। नेपोलियन, नेलसन अथवा न्यूटनकी कीर्त्ति उसे चाहे न नसीब हो, परन्तु उसके शान्त सरल जीवनमें एक निराली ही छटा है। और निस्सन्देह वह किसीसे कम सफल नहीं कहा जावेगा।

—गिरिजा दत्त शुक्ल

विज्ञान परिषद्का छठा वार्षिक विवरण

विज्ञान परिषद्को स्थापित हुए अब ६ वर्ष होचुके। इन ६ वर्षोंमें परिषद्ने किस प्रकार उन्नति की है, इस विषयपर विचार करना इस समय अनुचित न होगा, क्योंकि इससे भविष्य कार्यप्रणालीका सुगमतासे निरूपण हो सकता है। इस कारण आज केवल गत वर्षके ही कार्य का ब्योरा देकर मैं आपके सम्मुख आदि से ३१ अक्तूबर १९१९ तकका संक्षिप्त कार्य विवरण उपस्थित करता हूँ।

स्वदेश भाषा, भाव तथा कलाकौशलकी उन्नतिके अर्थ आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका स्वदेश भाषाके द्वारा जन साधारणमें प्रचार करने के उद्देश्यसे यह परिषत् १९१३ में स्थापित हुई। इसके कार्यसंचालनके लिए सभासदोंसे पहले पहल केवल दो ही रुपया लेना स्थिर हुआ। इस परिषद्के स्थापित होनेपर अनेक गण्य मान्य सज्जनों ने तथा स्वदेश भाषाके समाचार पत्रोंने विशेष आनन्द प्रकट किया और संचालकोंको उत्तेजित किया। इस प्रकार संचालकों को विश्वास होगया कि जन साधारणको इस समय ऐसी संस्थासे बड़ा लाभ पहुँच सकता है। यही समझकर उन्होंने परिषद्का पुनर्संगठन करना निश्चय किया और नई नियमावली निर्माण की। इन नये नियमोंके अनुसार दो प्रकारके सदस्य बनाये गये, सभ्य—जिनसे १२) प्रति वर्ष लिया जाता है और परिसभ्य जो केवल २) प्रति वर्ष देते हैं। सभ्योंकी संख्या १२५ नियत हुई, परन्तु परिसभ्यकी संख्या के लिए कोई सीमा नियत नहीं की गई। ६ महीनेके भीतर सभ्योंकी जगह भर गई और बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान और राजा महाराजा, इसमें सम्मिलितहुए। इससे संचालकों का उत्साह द्विगुनित होगया। नये नियमों के अनुसार नवम्बर १९१४ से काम होने लगे। तबसे अबतक परिषत्के उद्देश्यकी सिद्धिके लिये जिन उपायों का अवलंबन किया गया है वह यह हैं:—

(१) वैज्ञानिक विषयोंपर सरल भाषामें पुस्तकें रचवाकर छपवाना और यथासाध्य अल्प मूल्यपर बेचना।

(२) जन साधारणके उपयुक्त वैज्ञानिक विषयोंपर व्याख्यानका प्रबन्ध करना।

(३) परिषद्के मुखपत्र विज्ञाननामक मासिक पत्रका प्रकाशन करना।

(४) विज्ञानमें प्रकाशित लेख मालाओं का पुस्तकाकारमें प्रकाशित करना।

इन सब उपायोंमेंसे बड़े महत्वका कार्य हिन्दी मासिक पत्र विज्ञानका संचालन

है। इस पत्रका पहिला अंक श्री मान के० सी० भल्लाके यत्नसे अप्रेल १९१५ में प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी तथा देशी भाषाओंके समाचार पत्रोंमें इसकी प्रचुर प्रशंसा हुई और यह समझा जाने लगा कि हिन्दी साहित्यमें एक नये युगका प्रारंभ हुआ है।

(५) श्री मान भल्ला जीने इसके प्रकाश करने का भार एक बर्षतक उठाया। अप्रेल १९१६ में परिषद् के मंत्री श्रीमान गोपाल स्वरूप भार्गवने उसके सम्पादन तथा प्रकाशन का कार्य अवैतनिक रूपसे अपने हाथमें लेलिया और तबसे उन्हीं के योग्य हाथोंमें है।

विज्ञानको प्रकाशित होते हुए ४½ बर्ष हुए।

इन ४½ वर्षों में उसने जो उन्नति की है वह सराहनीय है। अंग्रेजी भाषामें जन साधारण के हितार्थ जो वैज्ञानिक पत्र निकलते हैं उनसे यह किसी अंशमें न्यून नहीं है। यह हिन्दी भाषामें एक विशेष गौरवका विषय है। अभीतक हिन्दी भाषा उच्च कोटिके वैज्ञानिक विचारोंके व्यक्त करनेके अयोग्य समझी जाती थी, परन्तु अब श्रीमान् अध्यापक गोपाल स्वरूप भार्गव के यत्नसे विज्ञानमें बृहत् आकारके ४८ पृष्ठ उत्तमोत्तम चित्ताकर्षक तथा मनोरञ्जक लेखों से पूर्ण प्रतिमास निकलते रहते हैं। श्रीमान गोपाल स्वरुप भार्गवने देशी भाषाके साहित्य में विज्ञानकी अपूर्व सृष्टि की है, यह कहना अत्युक्ति न होगा। कैसे परिश्रम, स्वार्थत्याग और धैर्यसे वह इसके संपादन तथा प्रकाशनका कार्य कर रहे हैं। यह वही जान सकते हैं जिन्हें यह ज्ञात है कि किन किन कठिनाइयोंका सामना उन्हें करना पड़ रहा है। पहिले तो समयपर यथेष्ट लेख नहीं मिलते। फिर छापेखानेका सुप्रबन्ध नहीं है। विशेषतः सम्पादन कार्यमें जिन वैज्ञानिक ग्रंथोंका संग्रह आवश्यक है उनका अभाव है। संक्षेपतः द्रव्य, पुस्तक और लेखोंके अभावका सामना उन्हें करना पड़ता है। यह उनकी योग्यता और उच्च आशय का साक्षी है कि वह इतने पर भी अपने कार्यको बड़े उत्साह और दक्षताके साथ कर रहे हैं। परिषद्को उचित है कि इन सब कठिनाइयों को जहां तक हो सके जल्दी दूर करने की चेष्टा करे। अर्थाभाव ही कठिनाइयोंका मूल कारण है। यथेष्ट द्रव्य एकत्र होने पर, लेखोंके लिये अर्थ व्यय करनेसे पर्याप्त लेख मिल सकते हैं। संपादनके लिये एक योग्य सहायक भी नियत कर सकते हैं। आवश्यक वैज्ञानिक ग्रंथों का भी प्रबन्ध किया जा सकता है; और ठीक समयपर छापकर प्रकाशन करने के लिये एक अपना छापाखाना भी खोला जा सकता है। इतने कार्य अत्यावश्यक हैं। परंतु जितना अधिक द्रव्य हो उतना ही अधिक सफलता परिषद्को अपने कार्यकी सिद्धिमें हो सकती है। इसलिये जैसा कि आगे उल्लेख किया जायगा द्रव्य एकत्र करने के लिये एक विशेष यत्न अनिवार्य है। यहांपर विज्ञानके लेखकोंको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिनकी सहायता और सहानुभूतिके बिना जो कुछ काम हो रहा है उसका होना भी मुश्किल था। लेखकोंको उन्हीं कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, जिनका संपादकको करना पड़ता है। अतएव उनके देश प्रेम और भाषा भक्ति के भाव सराहनीय हैं, जिनसे प्रेरित हो वह विज्ञान की सेवा कर रहे हैं।

विज्ञान की ग्राहक संख्या संतोष जनक नहीं है। आश्चर्य है कि युक्त प्रांत और मध्य प्रदेश के विद्या विभाग के डाइरेक्टर महोदयों के द्वारा विद्यालयोंके पुस्तकालयोंके उपयुक्त विवेचित होनेपर भी इसकी संख्या वृद्धि नहीं हुई। इसमें भी प्रयत्नकी आवश्यकता है। यदि अगले ६ महीने में ग्राहक संख्यामें यथेष्ट वृद्धि नहीं हुई तो परिषत् को ६००) के लगभग हानि उठानी पड़ेगी।

उर्दू भाषामें वैज्ञानिक मासिकपत्र प्रकाश करने का भी यत्न किया जा चुका है, पर सफल नहीं हुआ। द्रव्याभाव रहते हुए भविष्य में भी आशा विशेष नहीं है।

पुस्तक प्रकाशन

परिषत्की तरफसे निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं (१—२) विज्ञान प्रवेशिका भाग १ तथा २ (३) ताप (४) पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य (५) केला (६) चुम्बक (७) गुरुदेवके साथ यात्रा (८) फास्फोरस और दिया सलाई (९) क्षयरोग (१०) सुवर्णकारी (११) शिक्षितों का स्वास्थ्य व्यतिक्रम (१२) पैमाइश (१३) मिफताह-उल-फनून (१४) हरारत (१५) ज़ीनत वहश व तैर, उनमें से १० पुस्तकाकारमें विज्ञान की लेख मालाएं हैं। इनमें से ४ लेख मालाओं का पुनर्मुद्रण केवल गत वर्ष हुआ और २ लेख मालाओं का पुनर्मुद्रण लेखकों ने ही कराया। पुनर्मुद्रण कराकर पुस्तक प्रकाशन करनेकी रीति बहुत उत्तम है। क्योंकि इसमें पुस्तक प्रकाशन करनेका दो तिहाई खर्च बच जाता है। हमारे यहांकी पुस्तकें जन साधारण तथा विद्यालयों के लिये बहुत उपयोगी समझी जाती हैं। इनमेंसे कई पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओंके लिये निर्धारित हुई हैं। आशा की जाती है कि आगामी वर्षमें प्रकाश, शब्द (Sound) और विद्युत, इन विषयोंपर प्राथमिक पुस्तकें निकल सकेंगी। तत्पश्चात् वृहत् और उच्च कोटिके ग्रन्थोंका प्रकाशन करना बहुत दुष्कर न होगा। तथापि यह अत्यावश्यक है कि ऐसे पारिभाषिक शब्द जिनका कि हमने अपनी पुस्तकोंमें प्रयोग किया है वह पहिले ही से पुस्तकाकारमें प्रकाशित हो जावें। इससे भविष्यत के लेखक और पाठक, दोनोंको ही सुगमता रहेगी।

गत पांच वर्षमें प्रायः ५००० पुस्तकों की बिक्री हुई है। इनमें से अधिकतर हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओंके लिये निर्वाचित् होनेके कारण बिकीं, इसके लिये हमें सम्मेलन का बहुत कृतज्ञ होना चाहिये। निस्सन्देह सम्मेलन हमें ऐसी सहायता देता रहेगा और इस प्रकार देशमें विज्ञान का प्रचार करनेमें प्रबल सहायक होगा। हमारी पुस्तकोंकी यथेष्ट संख्यामें बिक्री न होने के कई कारण हैं। पहले तो यह केवल स्कूल कालेजोंके विद्यार्थियोंके पाठ्य पुस्तकोंका काम ही दे सकती हैं जन साधारण तथा शिल्पियोंके (सुवर्णकारीको छोड़ करके) कामकी नहीं हैं। फिर स्कूल और कालेजके विद्यार्थी अंग्रेज़ी में ही पढ़ना अच्छा समझते हैं। पर भावी उन्नतिकी नींव सुदृढ़ डालने के लिये ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है और निराश होने का कोई कारण नहीं है।

व्याख्यान

जन साधारणके उपकारार्थ वैज्ञानिक व्याख्यानों का प्रबन्ध करना यह भी परिषद् के कार्य का एक विशेष उपयोगी अंग है। परन्तु इसके निर्वाह करनेमें बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। म्योर कालेजके अध्यापकों तथा अधिकारियोंकी विशेष सहायता न मिलती तो जो कुछ सफलता प्राप्त हुई है वह असंभव हो जाती है। ऐसे व्याख्यानोंके लिये अपनी निजकी प्रयोगशाला (Laboratory) और यंत्र होने चाहियें। आशा है क्रमशः यह सब त्रुटियां दूर हो जायंगी। अब भी (Magic lantern) मैजिक लालटेनके १५० से ज्यादा (Slide) स्लैड परिषद ने एकत्र किये हैं। इन व्याख्यानोंमें श्रोताओंकी संख्या संतोष जनक होती है और व्याख्यान बहुत मनोरम और उच्च कोटिके होते हैं। इन व्याख्यानों से विज्ञानका प्रचार बहुत शीघ्र हो सकता है। आशा की जाती है कि प्रयागके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें भी ऐसे व्याख्यानोंका प्रबंध करना अल्पकाल में ही संभव होगा।

आर्थिक अवस्था

गत ६ वर्षके आयव्ययका हिसाब इसके साथ सम्मिलित है। इससे स्पष्ट होगा कि किसी बृहत कार्यके लिये हमारे पास द्रव्यका बिलकुल अभाव है। जो काम हाथमें लिये हुए हैं उनके लिये भी पर्याप्त द्रव्य नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अवैतनिक संपादक तथा प्रकाशक इत्यादिके रहते हुए भी विज्ञानके चलानेमें इस वर्ष ६०० रु० का घाटा हो गया है। इसके सिवाय विज्ञान को यथोचित रूपसे चलाने तथा और भी उन्नति करनेके लिये द्रव्यकी हाल में ही बहुत आवश्यकता है। सम्पादकके लिये वैज्ञानिक ग्रंथोंका संग्रह करना तथा विज्ञान और पुस्तक छापने के लिये एक अपना छापाखाना स्थापित करना अनिवार्य है। अभी तक पबलिक लायब्रेरी, कायस्थ पाठशाला इत्यादि ने आवश्यक पस्तक उधार देकर बहुत कुछ सहायता की है, परन्तु भविष्यमें इतनेसे काम नहीं चल सकता। और अपना छापाखाना न होनेसे प्रकाशक महाशय और सम्पादक को विज्ञानके छपवानेमें जो असुविधाएं सहनी पड़ रही हैं उनके दूर करनेका एक मात्र उपाय अपने ही छापे खाने का स्थापित करना है।

हमारी आय अधिकतर सभासदों के शुलकके ऊपर निर्भर है। यह सौभाग्यकी बात है कि हमारे सभ्यों की संख्यामें विशेष अंतर नहीं पड़ा। यह १२ रु० वार्षिक देते हैं। हमारी आयका अधिकांश इन्हीं से प्राप्त होता है। परन्तु एसोशिएटों की संख्या निस्संदेह घट गई है। आज कल वह केवल १२ रह गई है। एसोशिएट ३) वार्षिक देते हैं, जिसके बदलेमें उन्हें विज्ञान मुफ्त मिलता है, विज्ञानके ग्राहकोंकी अपेक्षा इन्हें एसोशिएट रहनेमें विशेष लाभ नहीं है। यही कारण मालूम होता है कि वह एसोशिएट रहनेके अनिच्छुक होकर केवल विज्ञानके ग्राहक होना पसंद करते हैं। इस प्रकारसे भी परिषत्‌के कार्यमें यथेष्ट सहायता पहुंचती है। इसमें संदेह नहीं कि परिषत् के शुभचिंतक और सहानुभूति रखने वालों की संख्या अधिक है और अधिकतर होती जाती है। इस समय केवल आवश्यक है कि द्रव्य को इकट्ठा करनेके लिये एक विशेष प्रयत्न किया जाय। समाचार पत्रोंमें अपील लिखनेसे ही काम नहीं चलेगा। एक प्रभावशाली डेप्यूटेशनकी आवश्यकता है। डेढ़ लाख रुपयेके बिना परिषद् अपना कर्तव्य यथोचित निर्वाह नहीं कर सकती। समय बहुत शीघ्र बदलता जा रहा है। देशमें स्वराज्यकी नींव डाली जा रही है। उद्योग तथा व्यापार बड़े धूम धामसे बढ़ रहा है। शिक्षा विभागमें युगांतर उपस्थित हो रहा है। और हाल में ही यूरोपियन महायुद्धके समयमें विज्ञानके महत्त्व और स्वावलंबनकी उचित शिक्षा मिली है। इन सब कारणों से परिषत् का कर्तव्य भार द्विगुनित हो गया है। इसके कार्य से सहानुभूति रखनेवाले अनेक विद्वान् और राजा, महाराजा हैं। ऐसी अवस्थामें उक्त प्रकार का डेप्यूटेशन संगठन कर द्रव्य एकत्र करना दुष्कर न होगा।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेस में मुद्रित तथा विज्ञान परिषद, प्रयाग से प्रकाशित।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools nnd Libraries.

पूर्णसंख्या ६० Reg. No. A - 708

भाग १० मीन १९७६ । मार्च १९२० संख्या ६

Vol. X. No 5

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

विषय--सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग १० { मीन, संवत १९७६। मार्च, सन् १९२० { संख्या ६

जगत् की सृष्टि और लय

(ले०—प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०)

देश और काल की कल्पना से ही जगत् की कल्पना भी होती है। हमारे यहाँ जगत् वा संसार शब्द से ही यह प्रकट होता है कि अपनी सभ्यता के आरंभ से ही हम समस्त गोचर पदार्थों के समूह को सततपरिवर्त्तनशील जानते हैं। संसार और जगत् का अर्थ है गमनशील, वा क्षणिक, जिससे यह स्पष्ट है कि दृश्य जगत् का सदा बदलते रहना साधारण अनुभव से जानी हुई बात चली आयी है। अपने जन्म से लेकर मरण तक मनुष्य जितनी बातों का अनुभव करता है, सब में दो बातें अवश्य पाता है, आदि और अन्त। परन्तु साथ ही यह भी देखता जाता है कि किसी पदार्थ का भी आरम्भ किसी अन्य पदार्थ से होता है और उसका अन्त भी ऐसा नहीं होता कि उससे अन्य कुछ किसी बदले हुए रूप में बच न जाय। बीज से वृक्ष, वृक्ष से बीज का होना साधारण उदाहरण है। वैज्ञानिकों ने तो इस पर सैकड़ों परीक्षाएं की हैं और करते जा रहे हैं, जिससे अब तक यही सिद्ध होता आया है कि पदार्थ का विनाश नहीं होता, केवल स्थानपरिवर्तन होता है। हमारे देखते ही देखते मोमबत्ती जलकर गायब हो जाती है पर रासायनिक अपने कांटों पर तोल कर बता सकता है कि तोल में जितनी मोमबत्ती जली उतनी ही वायव्य रूप में वायु में मिला हुई मौजूद है। शरीर मरने पर सड़ गल कर वा जल भुनकर और रूपों में बदल कर इसी जगत् में रह जाता है और साधारण विचार से आत्मा यदि अजर अमर माना जाता है तो या तो समाधि में पड़ा रहता है या पुनर्जन्म पाता या प्रेतयोनि में रहता है। नास्तिकों के अनुसार जो मनुष्य आत्मा को

अमर नहीं मानता और इन्हीं पार्थिव तत्वों से सम्मिलित पदार्थ समझता है, शरीर के साथ ही जीव का मरण भी मानता है ; सो, आत्मा इस तरह भी सर्वथा नष्ट नहीं हुआ, उसकी सामग्री विकीरित होकर दूसरे रूपों में परिणत हो गयी। निदान आस्तिक नास्तिक, सभ्य असभ्य, धर्मात्मा और पापी, सभी यही मानते हैं कि संसार सदा बदलता रहता है और अधिक बदलने को ही नाश, मौत, फना आदि नामों से पुकारते हैं। थोड़ा थोड़ा परिवर्तन तो निरन्तर होता ही रहता है। बच्चा बढ़ता है, तो कैसे ? उसके पहले के माँसतंतु नष्ट होते रहते हैं और नष्ट होनेवाले तंतुओं की अपेक्षा आगे के लिए अधिक बनते रहते हैं। यह क्रिया तबतक जारी रहती है जबतक मनुष्य की बाढ़ जारी रहती है। जब उसे बढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती, औसत हिसाब से उसके शरीर के कणों का क्षय और वृद्धि दोनें समान परिमाण में होते रहते हैं। जब उसके मानवजीवन का अंतिम पटाक्षेप होने का समय आता है क्षय की क्रिया अधिक और वृद्धि की क्रिया कम होने लगती है। इस तरह वृद्धि और क्षय तो नित्य की बात है। परन्तु गर्भाधान ही उसका आरम्भ और शरीर से चेतना का सदा के लिए दूर हो जाना ही उसका अन्त समझा जाता है।

जो हो, सतत परिवर्तन को देखते हुए भी एकाएकी किसी स्थिति का आरम्भ वा अन्त देखने से मनुष्य के मन में यह कल्पना उठती ही है कि इस जगत् का भी कभी एकाएकी आरंभ हुआ है और किसी दिन पलक भांजते में अन्त भी हो जायगा। इन्हीं कल्पनाओं पर यह प्रश्न उठते हैं कि यह जगत् क्या है ? इस जगत् का आदि अन्तभी है ? आदि अन्तहै तो जगत् कब उत्पन्न हुआ ? उसका कब विनाश होगा ? इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए पहले यह भी निश्चय करना पड़ेगा कि जगत् कितने गोचर वस्तु-समूह का नाम है ? क्या जगत् देश की सीमाओं से परिमित वा परिच्छिन्न है ?

अधपढ़े लोग चाहे किसी समाज वा सम्प्रदायके हों जगत् वा संसार इस धरती को ही समझते हैं। पृथ्वी से परे असंख्य लोकों की गिनती उनके अनुसार जगत् की परिभाषा में नहीं आती। साधारण बोलचाल में भी इसी अर्थ में जगत् शब्द का बोध होता है। इसी अर्थ में यहूदी, ईसाई, मुसलमान मत के अनुसार पहले अन्धकार था। जगत् की सत्ता न थी। ईश्वर ने कहा कि प्रकाश हो जाय। हो गया। दोनें का अन्तर पहला अहोरात्र हुआ। इसी प्रकार प्रलयकाल में ईश्वर की आज्ञा से समस्त संसार एकाएकी अनेक उपद्रवों में पड़ कर नष्ट हो जायगा। हिन्दुओं के यहां पुराणों की कथाओं में यद्यपि विस्तार में अन्तर है तथापि "यथापूर्वमकल्पयत्"का सिद्धान्तबराबरअक्षुण्ण रीति से बना रहता है। बल्कि प्रलयकाल में जन तप सत्यलोक ही क्यों, महर्लोक को भी बचा हुआ ही मानते हैं। हम काल की कल्पना में इस बात पर विचार कर आये हैं कि सत्यलोक का नित्य अविकार माना जाना किस प्रकार सापेक्ष रीति से सयुक्तिक और सुसंगत है। हिन्दू ग्रंथों में जगत् की कल्पना बराबर नित्य बनते बिगड़ते रहने की है और जगत् शब्द से तीनों विनाशी लोकों का ही प्रायः बोध होता है। जैनी लोग समस्त दृष्टिगोचर वस्तु-समूह को जगत् कहते हैं और उसे अनादि अनन्त मानते हैं। उनके यहां सृष्टिप्रलय के प्रश्न की समाई ही नहीं है। बौद्ध जगत् को क्षणिक मानते हैं। जो कुछ भी स्थायित्व नहीं रखता उसका उत्पत्ति वा आरम्भ की क्या कथा ?

सारांश यह कि सभी साम्प्रदायिक लोग तथा जन साधारण या तो जगत् शब्द से किसी

परिच्छिन्न वा परिमित वस्तु-समूह का अर्थ लेते हैं, या उसमें अपरिमित और अपरिच्छिन्न समस्त विश्व को अभिप्रेत मानते हैं।

यदि जगत् से समस्त अपरिमित विश्व समझा जाय तो वैज्ञानिकों का अब तक यह अनुमान है कि समस्त विश्व का एकदम एक साथ न तो लय होगा और न सबकी एकदम एक साथ सृष्टि हुई है। सृष्टि और लय के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त पूर्णतया निश्चित नहीं हुए हैं। विज्ञान वर्द्धमान शास्त्र है। कोई प्रस्तावित नियम वा सैद्धान्तिक कल्पना ज्योंही विज्ञान के बाजार में आती है जांच, परीक्षा वा प्रयोग की कसौटी पर उसका कसा जाना आरंभ होता है। बड़े बड़े चतुर पारखी उसकी जांच एक बार दो बार नहीं सैकड़ों हज़ारों बार करते हैं तब जाकर "सिद्धान्त" के पद का अधिकार मिलता है। जब तक परखनेवालों के सामने नित्य के वैज्ञानिक तथ्य उस पद की योग्यता की गवाही देते रहते हैं तब तक वह कल्पना सिद्धान्त पद पर बनी रहती है। यहां बहुमत का ज्यादा परवाह नहीं की जाती। एक तथ्य ने भी उसकी योग्यता का विरोध किया और सिद्धान्त के क्षेमकुशल का अन्त हुआ। यहां प्रमाण मानी जाने वाली उपनिषत् वा गीता नहीं जिसका दुहाई दी जा सके। अनुभव ही एकमात्र प्रमाण है। तो भी अब तक इस विषय में विज्ञान की जैसी धारणा हुई है वह विचार करने के योग्य है।

विज्ञान के अनुसार सृष्टिमात्रमें दो विभाग समझे जाते हैं जिसे हम श्रीसाम्प्रदायिक वेदान्तियों के शब्दों में चित् तथा अचित् कह सकते हैं। अचित् में भी दो बातें पायी जाती हैं, जड़ पदार्थ और शक्ति। इन दोनों का अटूट सम्बन्ध है। एक की कल्पना दूसरे के बिना हो नहीं सकती। मिट्टी का एक ढेला जड़ पदार्थ है, उसमें मिट्टी के कण एक साथ मिले हुए हैं, यह भी एक शक्ति है। उसमें भार है और पृथ्वी के उसके परस्पर आकर्षण का नाता है। यह दूसरी शक्ति हुई। बिना इन शक्तियों के ढेले की स्थिति नहीं*। ढेले के प्रत्येक कण में ही क्या, जिन अणुओं से यह कण बने हैं उनकी स्थिति भी युयुत्सा शक्ति से ही है। जिन परमाणुओं की पारस्परिक युयुत्सा से अणुओं की स्थिति है, उनका वेग से परिभ्रमण करते रहना बहुत काल से समझा जाता है। परन्तु पच्चीस बरस पहले वैज्ञानिकों का भी यही विश्वास था, यही धारणा थी, कि परमाणु अखंड और अनादि अनन्त हैं, क्योंकि परमाणुओं के बनने, बिगड़ने वा खंड खंड होने का कोई प्रमाण नहीं मिला था। युरेनियम, रेडियम आदि कई धातुओं ने तब से इन प्राचीनकाल के सिद्धान्तों की नींव हिला दी है। परमाणुओं को अनादि अनन्त के ऊंचे पद से गिराकर विनाशी सिद्ध कर दिया है। ऐसे ऐसे परमाणु मिले जिनका जीवन मिनिटों में ही समाप्त हो जाता है, जिनका जन्म भी उतनी ही शीघ्रता से होता है। परमाणुओं की आयु और जन्म-मरण का हिसाब लगाया गया। परीक्षा और गणित की सहायता से मालूम हुआ कि युरेनियम बहुत अल्पजीवी धातुओं में है, सो उसकी आयु साढ़े सात अरब सौर वर्ष है। जो स्वर्ण, सीसा आदि दीर्घजीवी धातु हैं उनका जीवन इसकी अपेक्षा कहीं अधिक है। यद्यपि इनका जीवन इतना दीर्घकालिक है कि हमारे हिसाब से डेढ़ कल्प से भी अधिक युरेनियम का वा उरण का ही जीवन है, और स्वर्ण आदि के

* भूमिरापोऽनलोवायुः खंमनोबुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्नाः प्रकृतिरष्टधा ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्य्यते जगत् ॥ गी० ॥

परमाणु न जाने कितने कल्पों के ठहरेंगे, तो भी परमाणुओं का आदि अन्त निश्चित होगया और यह आदि अन्त इस अर्थ में नहीं कि महाप्रलय में सारा विश्व बीज रूप से ब्रह्म में लीन हो जायगा, बल्कि इस अर्थ में कि प्रत्येक प्रकार के परमाणुओं का जीवनकाल अलग अलग है, एक प्रकार के परमाणु नष्ट होते रहते हैं और दूसरे प्रकार के उत्पन्न होते रहते हैं। उन परमाणुओं का नाश कैसे होता है? युरेनियम रेडियम आदि के परमाणुओं की परीक्षा से पता चला कि भारी परमाणु के खंड खंड कल्पनातीत वेग से उड़ते जाते हैं और फिर एकत्र होकर हलके परमाणु बनाते जाते हैं।

साधारण प्रकाश के तरंग अत्यन्त छोटे होते हैं। आंख के परदे पर इन्हीं तरंगों के प्रतिफलित होकर पड़ने से वस्तु के देखने का हमें भान होता है। परन्तु परमाणु की छुटाई प्रकाश के तरंगों से भी अधिक है। पूरा एक तरंग भी उस पर नहीं पड़ता। इसलिये उत्तम से उत्तम सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी परमाणु को दिखा नहीं सकते। परन्तु परमाणु के खंडों में जिनका नाम अनेक कारणों से विद्युत्कण रखा गया है स्वतः प्रकाश है। वह भिन्न प्रकार का है, किसी ज्योतिग्राहक परदे के सहारे अंधेरे में दीखता है। विद्युत्कण-दर्शक यंत्र में* अणुवीक्षक काँच के लगे रहने से प्रत्येक विद्युत्कण जो ज्योति विकीरक परदे पर टूट कर गिरता है अलग अलग चमकता दीखता है। यह विद्युत्कण वस्तुतः बिजली के कण हैं और टामसन नामक भौतिक विज्ञान के प्रसिद्ध आचार्य्य का मत है कि जिसे हम जड़ पदार्थ कहते हैं वस्तुतः विद्युत् का ही एक तरह से घनीभवन है। सो, निष्कर्ष यह निकला कि अचित् वा जड़ पदार्थ जो शक्ति और वस्तु के मेल से बना माना जाता था, वस्तुतः विद्युत् के दो रूप हैं। विद्युत् ही जड़ पदार्थ है और विद्युत् ही उसको धारण करनेवाली शक्ति है।

और विद्युत् स्वयं क्या है? यह वह गुथी है, जो अब तक विज्ञान सुलझा नहीं सका है। उसके बड़े बड़े आचार्य्यों के मत से आकाश नामक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ के भीतर शक्ति का घनीभवन है जिसे विद्युत् कहते हैं। यह और भी बखेड़े की बात हुई। परमाणुओं के विचार में तो द्वैतवाद से पिंड छूटा था और एक विद्युत पर ही बात आयी थी। पर, विद्युत की खोज में क्या फिर द्वैतवाद ने पल्ला पकड़ा? क्या सूक्ष्म आकाश कोई भिन्न वस्तु है? इस पर टामसन का सम्प्रदाय फिर भी विद्युत् के ही भिन्न भिन्न रूपों वा घनी-भवनों को आकाश का उपादान ठहराता और विद्युत को ही एकान्ततः सब का मूल बताता है। सारांश रूप से इतना ही कहना उचित जँचता है कि समस्त जगत् विद्युत् वा शक्ति के ही विविध रूपों और अवस्थाओं का नाम है।

विज्ञान ने यह निश्चय कर लिया कि परमाणुओं की आयु अलग अलग है और उनका जन्म हुआ है, उनका आरंभ है और अवश्य है पर उनका जन्म न तो साथ हुआ और न मरण साथ होगा, उनका जन्ममरण नित्य जारी है और उसी तरह जारी है जिस तरह अन्य सभी सांसारिक वस्तुओं का। इन्हीं परमाणुओं से जगत् की स्थिति है और यह सब विद्युत् के बने हुए हैं। जगत् विद्युत् वा शक्ति है, इसका वास्तविक आदि वा वास्तविक अन्त नहीं है। विज्ञान की दृष्टि में केवल यह पृथ्वी या सूर्य्यमंडल ही जगत् नहीं है, वरन संख्यातीत ब्रह्मांड, जिनका वैज्ञानिक को अनुभव नहीं है, परन्तु

* इसे स्पिथरिस्कोप भी कहते हैं। क्रुक्स नामक वैज्ञानिक ने इसे निर्माण किया है।

अनुमान है, सभी जगत् के अन्तर्गत हैं। हाँ, जिसे खंड-प्रलय कहते हैं, वह निरन्तर होता ही रहता है। उसे ही वैज्ञानिक परिवर्तन कहता है और हमारा जगत् वा संसार शब्द भी इसी अर्थ का द्योतक है।

तो क्या वैज्ञानिक के मत से महाप्रलय नहीं होता? क्या सृष्टि का आरंभ वह नहीं मानता? होता है और वह मानता है, परन्तु इसी विशेषण के साथ कि समस्त विश्व का नहीं, अलग अलग ब्रह्माण्डों का। उसके मत में ब्रह्मांड ऐसे पिंडों के एक केन्द्रस्थ पिंड के समूह का नाम है जिसमें चारों ओर कई पिंड चक्कर लगाते हों। सूर्य्य के इर्द गिर्द बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, उरण, वरुण आदि बड़े छोटे ग्रह अपने उपग्रहों को लिये हुये घूमते हैं। यह समस्त एक ब्रह्मांड है जिसे वैज्ञानिक सौर ब्रह्मांड कहता है। आकाश में जो तारे दीखते हैं प्रायः अपने अपने ब्रह्मांडों के विशाल काय अत्यन्त उत्तप्त तथा ज्योतिष्मान् सूर्य्य हैं। वैज्ञानिक दूरबीन से देख रहा है। एकाएकी आकाश में बड़ी ज्योति के साथ एक नया तारा उदित हो जाता है और उसकी ज्योति फिर घटने लगती है और कुछ ही दिनों में किसी नक्षत्र के एक साधारण तारे की श्रेणी में उसकी गिनती होने लगती है। गणित से पता लगता है कि जो घटना उस दिन देख पड़ी थी वस्तुतः ५०० बरस पहले हुई थी। वह घटना थी—नये ब्रह्मांड का एकाएकी निर्म्माण। दो तमोमय सूर्य्यों के संघर्ष से नया ब्रह्मांड बन गया। परन्तु लाखों बरस में कहीं उसके कोई कोई ग्रह इतने ठंडे होंगे कि उन पर जीवन का आरंभ हो। इसी तरह विज्ञान के मत से इस सौर ब्रह्मांड की सृष्टि भी करोड़ों बरस हुए कुछ ऐसे ही ढंग पर हुई थी और धरती भी लाखों बरस बाद कहीं इतनी ठंडी हो पायी कि उस पर पहले पहल जल के प्राणी तथा जल के वनस्पतियों का आविर्भाव हुआ। तब से क्रमशः लाखों बरस में विकास होते होते मनुष्य की सभ्यता का उदय हुआ। बृहस्पति आदि कई ग्रह अभी इतने तप रहे हैं कि दृढ स्थल वहां अबतक नहीं बना, अबतक उसका पिंड खौलते हुए चट्टानों और वायव्यों का बना हुआ है। यह भी अनुमान है कि ठंडी होते होते किसी दिन यह धरती मनुष्य के रहने योग्य न रह जायगी, या शायद किसी अन्य पिंड से किसी काल में टकरा जायगी। वही समय इस धरती के प्रलय का होगा। धरती के साथ समस्त विश्व का नाश हो जाना आवश्यक नहीं है।

सृष्टि के वर्णन में हिन्दू ग्रन्थों में जहां कथा का विस्तार है वहां मतभेद भी है। परन्तु मोटी रीति से पृथ्वी मधुकैटभ के मेद से बनी मानी जाती है। इस तरह इसे ब्रह्मा की छोटी बहिन समझना चाहिए। ब्रह्मा के मरीचि, मरीचि के कश्यप और कश्यप के सूर्य्य हुए। बृहस्पति की उत्पत्ति ब्रह्मा के पुत्र अंगिरा से बतायी जाती है और मंगल की पृथ्वी से। चन्द्रमा और बृहस्पति की स्त्री तारा के संयोग से बुध की उत्पत्ति हुई। शुक्र की उत्पत्ति ब्रह्मा के पुत्र भृगु से हुई। शनि के पिता सूर्य्य हैं। उरण वरुण नवदृष्ट ग्रह हैं। इनके पिता भी सूर्य्य ही माने जायँ तो अनुचित न होगा। चन्द्रमा तो समुद्र से निकला, यह प्रसिद्ध ही है। सत्ताईस नक्षत्रों के नाम प्रायः स्त्रीवाचक हैं। यह दक्ष की कन्याएँ कही जाती हैं, अगस्त्य ब्रह्मा के पुत्र हैं, सप्तर्षि तारे भी ब्रह्मा से ही हुए। ध्रुव का परिवार भी ब्रह्मा से ही कई पीढ़ियों में हुआ। नीचे का वंशवृक्ष इन बातों को स्पष्ट कर देगा।
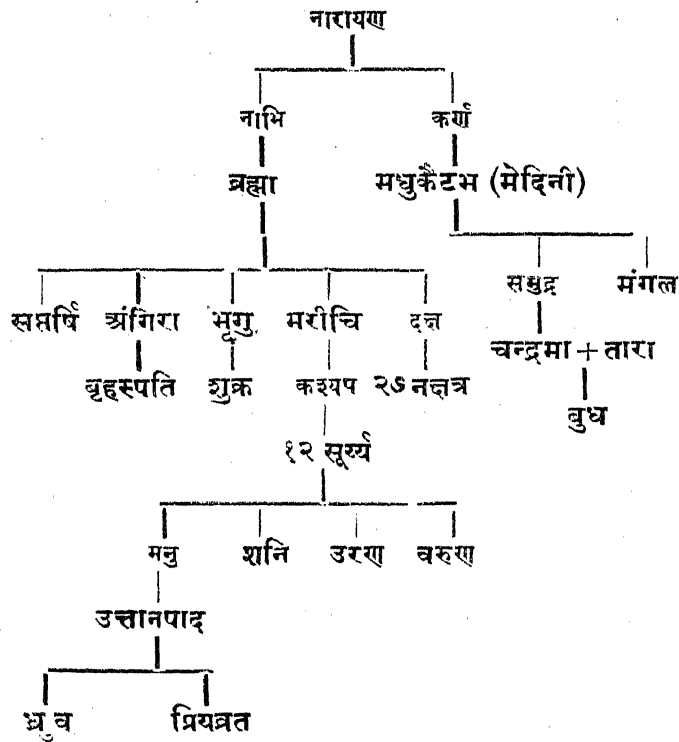
इस वंशवृक्ष में उन नामों के सिवा जो छोटे अक्षरों में दिये गये हैं सभी आकाश में तारों और ग्रहों की गिनती में आ गये। पुराण की कथाएँ पुरानी ही ठहरीं। प्राचीन काल से जिन बातों को परम्परा से सुनते आये हैं उनके ही संकलनको पुराण कहते हैं। पुराणों में "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च" आदि लक्षणों के अनुसार सृष्टि के आरंभका इतिहास होना आवश्यक है, परन्तु सुनी सुनाई बातों के होने से न केवल परस्पर मतभेद है, वरन् कथा में भी कहीं रोचकता के लिए कहीं भयानकताके लिये और कहीं वैचित्र्य के लिये और, कहीं कहीं क्या, अधिकांश प्राचीन कथा के वास्तविक मर्म के समझ में न आने से अपनी समझ के अनुसार दोषपरिहार के लिए अनेक बातें ऐसी मिल गयी हैं कि नीर-क्षीर-विवेक अत्यन्त कठिन काम हो गया है। विंसेंट-स्मिथ के इस कथन से हम सहमत हैं कि पुराणों में जो कथाएं दी गयी हैं उन में से बहुतेरी वैदिक कथाओं से भी पुरानी हैं। पुराण पुरातत्व के अन्वेषण की एक अपूर्व सामग्री है, ऐसी अच्छी सामग्री है कि संसार में प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ उनकी तुलना में हलके ठहरते हैं। पुरातत्व से हमारा तात्पर्य्य केवल पांच सात हजार बरस के भीतर का तत्वान्वेषण नहीं है। हम पुरातत्व में वा प्रत्नतत्व में इस धरती की सृष्टि तक का इतिहास अन्तर्गत समझते हैं। जो वंशवृक्ष हम दे आये हैं उस पर वैज्ञानिक दृष्टि डालने से और कथा भाग के वैचित्र्यवाले अंग पर विचार न करके उसके विस्तार को आधुनिक कल्पना का रूप देने से ऐसा जान पड़ता है कि वह वंशवृक्ष वस्तुतः अवैज्ञानिक नहीं है।

भारत के पुराने लोग सृष्टि की उत्पत्ति कैसे मानते थे इसका पता इन्हींसे चलता है। ब्रह्मा रचना करने वाली रजोगुणात्मिका शक्ति का नाम है जो सत्वगुणात्मिका शक्ति नारायण की नाभि वा भ्रमणकेंद्र से उत्पन्न हुई। मधुकैटभ नामक दो तमोमय तारे वा दैत्य लड़ गये जिनसे एक पिंड नया बना जिस का नाम मेदिनी हुआ। मेदिनी आजकल की हमारी धरती से शायद कई गुना बड़ी थी। इसी मेदिनी से मंगल तथा अनेक छोटे मोटे ग्रह भी जो पृथ्वी और मंगल के बीच में लगभग ७०० की संख्या में चक्कर लगा रहे हैं, कालान्तर में टूट टूट कर अलग हुए। इनके अलग होने के बहुत काल पीछे पृथ्वी के दक्षिणी भाग से टूट कर चन्द्रमा अलग हुआ। दक्षिणी भाग में अब भी जल का ही आधिक्य है। परन्तु जिस समय चन्द्रमा अलग हुआ था जल बना ही न था। पृथ्वी पर चट्टान द्रव और वायव्य रूप में खौल रहे थे, सो पृथ्वी का दक्षिण स्थल भाग ही वस्तुतः तप्त द्रव समुद्र से अलग हो गया। उसके रिक्त स्थान को जब जल बना उसने ले लिया। चंद्रमा छोटा पिंड होने से जल्दी ठंडा हो गया। मंगल और पृथ्वी बड़े पिंड थे, लगभग बराबर थे, मसाले भी दोनों में बराबर थे, इससे देर में ठंडे हुए। मंगल छोटा होने से पृथ्वी की अपेक्षा जल्दी ठंडा हुआ। मरीचि और अंगिरा दोनों बड़े उत्तप्त तारे थे। इन नामों का अर्थ भी तैजस का पता देता है। इनसे कश्यप और बृहस्पति यह दो तारे हुए। बृहस्पति से एक पिंड टूट कर पृथ्वी के किसी टूटे हुए पिंड से लड़ कर और मिल कर बुध हुआ, जिस के लिये कथा है कि बृहस्पति की स्त्री तारा से चन्द्रमा ने बुध को उत्पन्न किया। यह वही चन्द्रमा नहीं है जो पृथ्वी की परिक्रमा करता है। चन्द्रमा के समुद्र से उत्पन्न होने के पहले भी देवताओं में अर्थात् चमकनेवालों में शामिल होना वर्णित है। इस उपद्रव में बुध सूर्य्यके पास होकर उस पिंडकी परिक्रमा करने लगा। शुक्र स्वतः ब्रह्माके पुत्र भृगुसे उत्पन्न हुआ। गुरु और शुक्रके मतभेद और लड़ाइयां भी प्रसिद्ध हैं, सो शुक्र और बृहस्पति लड़भिड़कर टुकड़े टुकड़े होकर वर्तमान रूपमें हों तो आश्चर्य्य ही क्या है? इनके चन्द्रमा ही इनके टुकड़े हैं। शनि तो सूर्य्यका बेटा ही ठहरा। आदित्यके अनेक टुकड़े हुए। हमारी समझमें शनि, उरुण, वरुण, उसके ही टुकड़े हैं। यह सर्गिक उपद्रव आकाशमें बहुत कालतक रहकर जब सबकी गति निश्चय हो गयी, सबसे बड़े पिंड सूर्य्यकी प्रदक्षिणामें जब सभी लग गये, तभी समझना चाहिये कि यह सौर ब्रह्मांड बन गया।

इस तरह पुराणोंमें वर्णित सर्गका विषय विज्ञानके रंगोंमें रंगकर हम पेश कर सकते हैं। सृष्टिके अब तक के वैज्ञानिक सिद्धान्तोंपर ही पुराणकी ऐसी व्यख्या हुई है। विस्तारकी दृष्टिसे यह आपत्ति हो सकती है कि विविध पिंडोंकी रचनाका सामंजस्य आधुनिक वैज्ञानिक कल्पना के विस्तारसे नहीं मिलता। न मिले। वह कल्पना-विस्तार है तो यह पौराणिक परम्पराका विस्तार है। इसका महत्व उससे अधिक ही है।

विज्ञानका विकासवाद* क्रमशः उत्तप्त पृथ्वीके ठंडे होनेके बाद जलमें जीवकी उत्पत्ति और फिर धीरे धीरे स्थलपर प्राणियों का फैलना और विकास बताता है। पुराणोंमें विष्णुके दसों अवतार ठीक इसी क्रमसे मिलते हैं और कथाओं के विस्तारसे भी विकासका ही पता लगता है। विषय के बढ़ जाने के भय से और प्रस्तुत वादसे उस का विशेष सम्बन्ध न होनेसे हम इतनी ही चर्चा यहां पर्य्याप्त समझते हैं।

* "आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यां पृथिव्यः" इत्यादि उपनिषत्के कथनोंपर बड़े महत्व का विस्तार संभव है। यह वाक्य आधुनिक वैज्ञानिक सृष्टि-कल्पना से पूरा सामंजस्य रखते हैं।

सारांश यह कि पुराणों के अनुसार विचार करें या विज्ञान के अनुसार ही बहस करें किसी रीति से यह सिद्ध नहीं होता कि सृष्टि किसी एक दिन वा एक समय में ही बनकर तय्यार हो गयी, कोई यह नहीं कह सकता कि अमुक समयमें ही सृष्टिका सूत्रपात हुआ है। ब्रह्माका आविर्भाव होनेपर भी कई हजार बरस उनके तपके बताये जाते हैं, उनकी सृष्टिरचना भी क्रमशः तपसे ही धीरे धीरे एक एक करके बतायी जाती है। प्रजाकी वृद्धि भी धीरे धीरे हजारों बरसों में बताते हैं। तपस्या का महत्व आदिसे ही गाया गया है। विज्ञान भी तपस वा तापसे ही रूबका आरम्भ और विकास बताता है। मेदिनी का आदि भी दो दानवोंका शव बताया जाता है। यह कोई नहीं कहता कि ईश्वर ने कहा पृथ्वी हो जाय और हो गयी!

पुराणोंके अनुसार पृथ्वी पहलेकी है, सूर्य्य पीछेसे हुआ। अतः पृथ्वी की उत्पत्ति सौर दिन-रातकी उत्पत्तिके पहले ही हुई। वैज्ञानिक कल्पना के अनुसार पृथ्वी को सूर्य्य का टुकड़ा मानें तो भी यह कहना कठिन है कि दिनरात का आरम्भ कब हुआ। जब सृष्टि के विविध अंगों का विविध समयों में आगे पीछे आरम्भ हुआ तो यह कैसे कहा जा सकता है कि सृष्टि इतने कालकी है? एक एक अङ्गकी रचनाके आरम्भ-काल की अटकल थोड़ी बहुत मोटी रीतिसे हो सकती है। सो पृथ्वी का जन्मकाल वैज्ञानिक और पौराणिक दोनों ही रीतियों से चार पांच अरब सौर वर्षों से कम नहीं मालूम होता। पर हम कह आये हैं कि जिस मसाले की यह धरती बनी है वह किसी पुराने भट्टेसे आया था। पुराने जगत् का ध्वंसावशेष था। पृथ्वी जिन धातुओं और भौतिक पदार्थों की बनी हुई है उन की आयु पृथ्वी से कहीं अधिक है। युरेनियम ही जो बहुतों की अपेक्षा अल्पजीवी है साढ़े सात अरब बरसों की आयुवाला है—दीर्घजीवियों की तो कथा ही क्या है?

इन बड़े बड़े पिंडोंका नष्ट होना और नया बनना बहुत दीर्घ काल में होता है, बहुत विस्तीर्ण देशको छेंकता है—उसी तरह जैसे इस पृथ्वी के छोटे प्राणियों वा कीड़ों का जन्ममरण थोड़े ही देशकाल के परिमाण में हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि इस तरह का खंडप्रलय सापेक्ष है। पृथ्वी की उत्पत्ति और विनाश, महासर्ग वा महाप्रलय, हमारी दृष्टि में उसी तरह होगा जिस तरह किसी प्राणी के शरीरस्थ जूं चीलर आदि अनेक जीवों के लिये उस प्राणी की उत्पत्ति वा विनाश होगा। जो एक के लिए महाप्रलय है दूसरे के लिए खंडप्रलय है।

इसी दृष्टि से ब्रह्मांडों का बनना बिगड़ना भी यद्यपि महाप्रलय है तथापि वस्तुमात्र का अभाव हो जाना नहीं है। अभाव तो दूर रहा, परम-प्रलय भी नहीं है, अर्थात् इतना भी नहीं है कि एक साथ ही समस्त ब्रह्मांडमंडल का विनाश हो।

तो क्या विज्ञानकी दृष्टिमें परम-प्रलय हो नहीं सकता? इस प्रश्नपर वैज्ञानिकों में अभी मतभेद है। प्रमुख वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि ऐसा परम-प्रलय नितान्त असंभव नहीं है। समस्त जगत् आकाशतत्व में स्थान स्थानपर शक्ति के एकत्रीकरण से स्थित है। एक ही बड़े तरंग-परिवर्तनमें एक साथ ही समस्त जगत में परिवर्तन होना संभव है। परन्तु इस कल्पनाके पोषकों की संख्या अभी थोड़ी ही है।

अबतक सृष्टिपर जो विचार हम कर चुके हैं उससे यह कहना असंभव है कि जगत् का आरंभ कब हुआ और अन्त कब होगा।

जितना ही इस प्रश्न को सुलझाने बैठते हैं, उतना ही उलझता जाता है। कार्य्यकारण का सिलसिला द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता ही

जाता है और वैज्ञानिक अनुभव तथा अनुमानका दुःशासन थककर रह जाता है। यही अन्तमें कहना पड़ता है कि या तो संसार वा जगत् अनादि अनन्त ही है, अथवा बौद्धों के अनुसार क्षणिक ही है, केवल हमारी इन्द्रियों का ही विकार है।

हम कालपर पहले ही विचार कर आये हैं और कह चुके हैं कि काल का अनुमान कर्म्म से ही होता है। गीता का श्लोक–

"न तु कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः" ५।३

अर्थात् कोई एक क्षण भी बिना कर्म्म किये नहीं रह सकता, प्रकृति के गुण लाचार करके कर्म्म कराते ही रहते हैं—काल और कर्म्म का अनिवार्य्य सम्बन्ध बताता है। जब कालका मान हम कर्म्म से करते हैं और कर्म्म ही जगत् है तो यह प्रश्न कि जगत् कब उत्पन्न हुआ, दूसरे शब्दोंमें यों हो सकता है कि "कर्म्म कब उत्पन्न हुआ" बल्कि यों भी कि "काल कब उत्पन्न हुआ" वा "कालका आरंभ कबसे हुआ ?" जो स्वयं अधिकारहीन प्रश्न है। इसका उत्तर स्वयं अपना खण्डन करता है और हम दिखा भी चुके हैं कि या तो काल अनादि अनन्त है या उसका अत्यन्ताभाव ही है, सो इस प्रश्न का उत्तर देना काल की सीमा नियत करके उसे साद्यन्त बनाना है। जगत् की सत्ता में यदि कोई सन्देह नहीं तो उसके सतत परिवर्त्तनशील होने में किसी को कुछ शंका नहीं हो सकती, पर "कबसे हुआ, कबतक रहेगा" यह प्रश्न अनधिकार चर्चा है-क्योंकि इसका साधन उपलब्ध नहीं है।

अनेक दार्शनिकों को जगत् की सत्तामें ही सन्देह है। पाश्चात्य दार्शनिकोंमें बार्कले आदि जगत् की सत्ता ही नहीं मानते। अपने यहां "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" इसी अर्थ में सर्वसाधारण में समझा जाता है, पर भारतीय शास्त्रों में जगत् जिस अर्थ में आता है उसकी चर्चा हम कर चुके हैं, नित्य परिवर्तन होते रहने के कारण दृश्य जगत् को क्षणिक अनित्य वा उसका अभाव मानें तो कुछ भी बेजा नहीं; क्योंकि जिस वास्तविक सत्ता के अधिष्ठानसे, जिस असली चीज़ के सहारे यह सब परिवर्त्तन-शील जगत् दीखता है उसकी सत्ता से किसी को इनकार नहीं, चाहे उसे प्रकृति कहिए चाहे ब्रह्म। परन्तु यह वास्तव में वस्तु की सत्ता पर विचार हुआ, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

भूगोल-शिक्षा

परिभाषा

पृथ्वी को मनुष्य का निवास-स्थान मान कर उसका अध्ययन भूगोल अध्ययन कहलाता है। या मनुष्य का जो सम्बन्ध पृथ्वी से है उसी सम्बन्ध के अध्ययन का नाम भूगोल-अध्ययन है। इस विद्या में पृथ्वी के धरातल की वर्तमान दशा पर विचार किया जाता है और मनुष्य के जीवन पर उसका जो कई तरह का प्रभाव पड़ता है और मनुष्य के जीवन निर्वाह के लिए उससे जो सामग्री मिलती है उसका भी विचार किया जाता है। इस विद्या का सम्बन्ध पृथ्वी की प्राकृतिक बातों और मानुषी सृष्टि से है। मनुष्य अपनी शारीरिक, सामाजिक, व्यापारिक और नैतिक परिस्थिति में जिस तरह रहता है उसका वर्णन भी इस विद्या में होता है।

इस परिभाषा के अनुसार भूगोल पढ़ने में दो तरह की बातों का ज्ञान आवश्यक होता है—(१) परिस्थिति की वह सब बातें जो पृथ्वी के निवासियों से अपना सम्बन्ध कर लेती हैं, (२) वह सब रीतियां जिनसे पृथ्वी के निवासी

परिस्थिति की सब बातें सहन करने के योग्य अपने को बना लेते हैं।

भूगोल पढ़ाने के उद्देश्य

परम्परागत पुराना उद्देश्य यह है कि सम्बन्ध रहित अनेक बातों का ज्ञान बच्चों में कूट कूट कर भर दिया जावे, शुष्क परिभाषायें रटा दी जावें, स्थानों के नामों की सूचियां, आबादी पैदावार क्षेत्रफल आदि की सूचियां कंठस्थ करा दी जावें। इस उद्देश्य के विषय में यही कहा जा सकता है कि इस तरह की पढ़ाई बिलकुल सूखी, अरोचक और शिक्षा-सिद्धान्त के प्रतिकूल है; क्योंकि जो बातें केवल रट ली जाती हैं उनका सम्बन्ध अन्य बातों से नहीं हो सकता। आधुनिक प्रणाली में इस उद्देश्य को स्थान नहीं दिया जाता।

कोई कोई लोग कहते हैं कि भूगोल पढ़ाने का प्रधान उद्देश्य है कई शास्त्रों और विज्ञानों का सम्मेलन; अर्थात् भूगोल पढ़ाने में प्राकृतिक विज्ञान, भूगर्भविद्या, ज्योतिष, गणित, आदि अनेक विद्याओं की आवश्यकता पड़ती है, इस लिए इन विद्याओं की सारी बातें सुसंबद्ध रूप में, कारण-कार्य्य रूप में, क्रम से बतलानी चाहिएँ। ऐसा करने से इन विविध विद्याओं का ज्ञान तो अवश्य होता है, परन्तु यह ज्ञान उसी तरह होता है जैसा कि हरएक विद्या को अलग अलग लेकर पढ़ने से होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विविध विद्याओं की बहुतेरी बातों का जानना ही भूगोल जानना नहीं है। भूगोल जानने के लिए मनुष्य-सम्बन्धी अंश का होना आवश्यक है। इतना ही जानना काफी नहीं है कि पृथ्वी के धरातल पर जो विविध प्राकृतिक बातें होती हैं वह क्यों होती हैं, किन्तु भूगोल जानने के लिए यह समझना भी आवश्यक है कि पृथ्वी के निवासियों पर इन प्राकृतिक बातों का क्या प्रभाव पड़ता है। भूगोल-विद्या के लिए उतना ही प्राकृतिक विज्ञान आवश्यक है जिससे समझ सकें कि प्राकृतिक बातों का कितना और कैसा प्रभाव मनुष्य की राजनीतिक, सामाजिक और व्यापारिक स्थिति पर पड़ता है।

भूगोल-शिक्षा से लाभ

(क) औपयोगिक—भूगोल पढ़ने से व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे पृथ्वी के कौन कौन से देश मनुष्यों के निवास-योग्य हैं, अमुक व्यापारिक चीज़ें कहाँ कहाँ पैदा हो सकती हैं; एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने या माल या खबर भेजने के कौन कौन से साधन हैं; इत्यादि।

(ख) मानसिक—कोर्सके किसी भी विषय से जितनी मानसिक शिक्षा मिल सकती है उतनी भूगोल से मिलती है। जब प्राकृतिक पदार्थों का निरीक्षण किया जाता है तब निरीक्षण-शक्ति बढ़ती है; विशेषतः सैरके लिए जब स्कूल से बाहर जाते हैं। सुसम्बद्ध बातोंके याद करने से स्मरण-शक्ति सध जाती है। नक्शे खींचने से कला-कुशलता में वृद्धि होती है। विविध चित्रों के अर्थ लगाने और अन्य देशों के वर्णन पढ़ने से भावना-शक्ति का विकास होता है। प्राकृतिक बातों के कारण कार्य्य सम्बन्ध ढूंढ़ने से तर्क-शक्ति को लाभ पहुंचता है।

(ग) मानुषीय—जब अपने देश से अतिरिक्त अन्य देशों का हाल बच्चों को मालूम होता है तब उनकी सहानुभूति बढ़ती है। तब उन्हें चेत होता है कि जीवन व्यतीत करने की एक वही रीति नहीं है जिसकी पाबन्दी वह स्वयम् करते हैं, किन्तु इस तरह के मनुष्य भी इस पृथ्वी पर हैं जिनका रहन सहन उन (बच्चों) के रहन सहन से बिलकुल विपरीत है। तभी बच्चोंको यह भी मालूम होता है कि जैसे कोई अकेला आदमी सब से स्वतन्त्र रह कर सफलता के साथ जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता, उसी तरह कोई

जाति भी अन्य जातियों से बिलकुल स्वतन्त्र नहीं रह सकती; अपनी आवश्यकतायें दूर करने के लिए जातियाँ भी एक दूसरी पर अवलम्बित होती हैं। इस प्रकार बच्चों की सहानुभूति पृथ्वीमंडल के सभी मनुष्यों के लिए हो जाती है।

(घ) आल्हादन-सम्बन्धी—प्राकृतिक वस्तुओं और प्राकृतिक दृश्यों के देखने से अलौकिक मानसिक आनन्द मिलता है।

शिक्षा का क्रम

शिक्षा के लिए दो क्रम बतलाये जाते हैं जो एक दूसरे से विरुद्ध हैं। पहले क्रम में भूगोल की शिक्षा इस तरह होती है—स्कूल, गाँव या शहर जहाँ स्कूल है, ज़िला जिसमें कि वह स्कूल है, कमिश्नरी, देश, पड़ोस के देश, वह गोलार्ध जिसमें अपना देश है, पृथ्वी का सम्पूर्ण गोला। शिक्षा के दूसरे क्रम में पृथ्वी का गोला पहले ही लिया जाता है; तब उससे उतर कर महाद्वीपों पर साधारण विचार होता है; जिस महाद्वीप में अपना देश है उस पर अधिक विचार किया जाता है; तब अपने देश का विस्तृत वर्णन होता है, और इसी तरह उतरते उतरते अपने ज़िले तक आ जाते हैं। प्रथम क्रम को विधायक क्रम या चढ़ता क्रम कह सकते हैं, उसमें शिक्षा की परिधि बढ़ती जाती है। द्वितीय क्रम को विश्लेषक क्रम या उतरता क्रम कह सकते हैं, उसमें शिक्षा की परिधि घटती जाती है, अर्थात् पहले सम्पूर्ण वस्तु लेकर उसके खंडों पर एक एक करके विचार किया जाता है।

शिक्षा के दोनों क्रम मनो-विज्ञान शास्त्र से सिद्ध होते हैं; कदाचित् विश्लेषक क्रम का महत्व विधायक क्रम से अधिक है; परन्तु विश्लेषक क्रम में शिक्षा-शास्त्र के एक बड़े सिद्धान्त का उल्लंघन होता है, वह सिद्धान्त यह है कि शिक्षा में ज्ञात वस्तु के द्वारा अज्ञात वस्तु का ज्ञान कराना चाहिए। बच्चों के लिए पृथ्वी का गोला अज्ञात वस्तु है, परन्तु अपना स्कूल, अपना गाँव या शहर कुछ न कुछ ज्ञात चीज़ें हैं और अज्ञात गोले से शिक्षा प्रारम्भ करके ज्ञात स्कूल या गाँव तक आना शिक्षाशास्त्र सम्मत नहीं हो सकता। विश्लेषक क्रम से तभी लाभ हो सकता है जब सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान तो हो, परन्तु उसके अंगों का विस्तृत ज्ञान न हो। जो कुछ हो, भूगोल की शिक्षा प्रायः विधायक क्रम ही से होती है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि इस क्रम में भी आगे चल कर पृथ्वी के गोले को सम्पूर्ण वस्तु मान कर उसके विविध खंडों पर विचार करना होता है।

यदि हम भूगोल की शिक्षा केवल विधायक रीति से देने लगें तो पृथ्वी के सम्पूर्ण गोले तक पहुँचते पहुँचते बहुत दिन लग जायँगे, और बहुत सी सामान्य बातें जो विश्लेषक रीति से पहले ही मालूम हो जातीं, बहुत दिनों तक नहीं मालूम हो सकेंगी; जैसे पृथ्वी का आकार, उसका घूमना, रात-दिन का होना, ऋतुओं का बदलना, जल और स्थल का अनुपात, आदि। इस कठिनता को दूर करने के लिए हम नीचे दर्जों में भी पृथ्वी के गोले का नमूना दिखाकर उनको साधारण ज्ञान करा देते हैं। इससे हमारी विधायक-प्रणाली की शिक्षा में कोई हानि नहीं होती।

शिक्षा का एक सिद्धान्त

जो प्रारम्भिक बातें भूगोलशिक्षा के लिए नींव की तरह हैं अर्थात् जिनके बल पर आगे की शिक्षा अवलम्बित है वह बातें इन्द्रियों के द्वारा सीखी जानी चाहिएं। यदि भूगोल-शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण करने हैं और यदि भूगोल की सच्ची भावना पैदा करनी है तो निरीक्षण करने और निरीक्षित विषय के वर्णन करने की आदत

बच्चों में पैदा करनी चाहिए। भूगोल की रोचकता और उसका लाभ पूरा पूरा तभी हो सकता है जब कि यथार्थ चीज़ें उनके सामने हों; यह बात प्रारम्भिक दशा में अत्यन्त आवश्यक है।

निरीक्षण—प्रारम्भिक दशा में शिक्षा-प्रणाली की मुख्य बात यह है कि बच्चे प्राकृतिक बातों, प्राणिवर्ग, वनस्पतिवर्ग, आदि का स्वयम् निरीक्षण करें। यथार्थ निरीक्षण से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह पक्का और सच्चा ज्ञान होता है, और इससे भी बड़ा लाभ यह होता है कि प्राकृतिक पदार्थों को अपनी आँख से देख सकने और अपने ऊपर भरोसा करने की बान पैदा होती है।

इसी अभिप्राय से कभी कभी स्कूल के घंटों के बाद, या आधी छुट्टियों के दिन, या जब कभी सुभीता हो बच्चों को सैर के लिए बाहर ले जाना चाहिए। ऐसी सैर करने से पहले अध्यापक बच्चों को बतला दिया करे कि अमुक बातों का निरीक्षण करना होगा। बच्चों को स्वतन्त्र कर देना कि जिन बातों का निरीक्षण चाहो करो ठीक नहीं होता, क्योंकि उस दशा में बच्चों का ध्यान किसी विशेष बात पर नहीं जमता और न उनके निरीक्षण से किसी खास बात का पूरा ज्ञान होता है; परन्तु यदि उन्हें पहले से बतला दिया जावे कि केवल अमुक बात पर दृष्टि रखकर काम करना, तो अन्य बातों का विचार छोड़ कर वह उसी बात पर अपना सारा ध्यान लगा सकते हैं। जैसे बच्चों से कह दिया जावे कि आज की सैर में तुम जितने पेड़ पौधे देखो उनकी पत्तियों का निरीक्षण करो, कितने रंगों की पत्तियाँ होती हैं उनके आकार कितनी तरह के होते हैं, उनके किनारे कितने प्रकार के होते हैं, एक डंठल में कितनी कितनी पत्तियाँ होती हैं, कितनी कितनी दूर पर होती हैं; इत्यादि। उन्हें यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि कुछ पत्तियों के किनारे बराबर होते हैं, कुछ के दन्दानेदार होते हैं, आदि। यह बातें बच्चे स्वयम् ही निरीक्षण करके निकालेंगे; उनका ध्यान केवल एक ख़ास बात पर आकर्षित कर देना चाहिए ताकि वह दुनिया भर की बातों का निरीक्षण एक ही साथ करने का उद्योग न करें।

सैर के पश्चात् अगर समय मिले तो उसी दिन वहीं पर, या भूगोलशिक्षाकी दूसरी बारी आने पर बच्चे अपने अपने निरीक्षण का हाल अध्यापक से कहें, सब बातोंपर बहस हो और जो ज्ञान प्राप्त किया गया है उसका सम्बन्ध अन्य ज्ञानके साथ कर दिया जावे। जिन बच्चोंका निरीक्षण सच्चा नहीं हुआ वह उन्हीं चीज़ों का निरीक्षण फिर करें और अपनी ग़लती दूर करें।

ऐसी सैरोंमें निम्न-लिखित बातोंका निरीक्षण किया जा सकता है—(१) भोजनकी चीज़ें और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले काम; (२) इमारत सामान और तत्सम्बन्धी काम; (३) कपड़े बनाने का सामान और तत्सम्बन्धी काम (४) स्थानिक व्यापार, सड़कें, पुल, रेल आदि, (५) पृथ्वी का धरातल जैसा स्कूल के आसपास हो, नदीनाले, पहाड़ी, जंगल, आदि; (६) शहर या गांव का राज्यप्रबन्ध, कचेहरी, थाना, आदि; (६) आबहवा, ऋतु, धूप, आँधी, तूफ़ान, गर्मी, सर्दी, आदि।

हर एक स्कूल के इर्द गिर्द हर तरह की चीज़ें नहीं मिल सकतीं तथापि अध्यापक प्रयत्न कर सकता है कि जितनी चीज़ें मिल सकें उनसे लाभ उठाया जावे। अच्छी चीज़ें न मिल सकने पर उनके बदले अन्य चीज़ोंसे काम निकल सकता है; जैसे इर्द गिर्द कोई नदी न हो तो पानी बरसने के बाद किसी भी खुली ज़मीन का निरीक्षण हो सकता है और पानी ज़मीन काट कर अपने बहने के लिए जो मार्ग बनालेता है उसका निरीक्षण हो सकता है।

इस तरह की सैर बहुत अधिक न होनी चाहिए क्योंकि इससे बच्चों को अड़चन होती

है। अगर हो सके तो बच्चों के सम्बन्धियों (बाप भाई आदि अभिभावुकों) से सहायता लेनी चाहिए।

अमली काम

अमली काम करने से बच्चों की रोचकता ही नहीं बढ़ती, किन्तु भौगोलिक ज्ञान शुद्धता के साथ उनके मन में बैठ जाता है। बहुत प्रारम्भिक अवस्था में भी अमली काम कराया जा सकता है और ज्यों ज्यों छात्रों की बुद्धि और विद्या बढ़ती जावे त्यों त्यों कठिन किया जा सकता है। अमली काम के कुछ उदाहरण यह हैं—कमरे की लम्बाई चौड़ाई नापना, स्कूल और खेल के मैदान की लम्बाई चौड़ाई नापना; फल शुद्धता और स्पष्टता के साथ लिखना; ख़ाके, नक़्शे, नमूने, चित्र, वायुसूचक नक़्शे, तापसूचक नक़्शे, आदि, बनाना; थर्मामीटर, हवा का रुख़ बतलानेवाला यन्त्र, वर्षा नापनेवाला यन्त्र, आदि यन्त्रों का पढ़ना; भिन्न भिन्न ऋतुओं में सूर्य्य की उँचाई अन्शों आदि में नापना; तख़्ता मुसत्तह का प्रयोग; इत्यादि। इस प्रकार के अमली काम से भौगोलिक ज्ञान शुद्ध शुद्ध मिलता है और ऐसे ही शुद्ध ज्ञान और भावना पर आगे की शिक्षा अवलम्बित है।

भूगोल-शिक्षा-प्रणाली

संयुक्त प्रान्त का शिक्षा-विभाग यह प्रणाली बतलाता है। किसी देश का भूगोल पढ़नेमें पहले उस देश को एक चीज़ समझो, उसकी साधारण बनावट देखो, भूमि के बड़े और छोटे ढालों पर विचार करो, देखो कि नदियाँ किस ओर बहती हैं, बड़े बड़े उपजाऊ भाग, मैदान आदि कहाँ कहाँ हैं, रेगिस्तान और जंगल कहाँ हैं। अब विवरण करो—बड़े बड़े पहाड़ी सिलसिले, प्रधान नदियों के बेसिन, भारी मैदान, आबहवा, आबादी, पेशे, राजनीतिक विभाग, व्यापार के लिए मार्ग, नगर आदि। इन विषयों में से हर एक के लिए एक अलग नक़्शा काले तख़्ते पर अध्यापक बनाये और अपनी कापियों पर बच्चे बनायें।

पढ़ाई में केवल नामों की सूचियाँ ही न हों। भिन्न भिन्न बातों से तभी लाभ हो सकता है जब उनका सम्बन्ध एक दूसरे से कर दिया जावे। अध्यापक दिखलावे कि इस स्थान पर जंगल क्यों है, यहाँ रेगिस्तान क्यों है; समुद्री किनारे की बनावट अन्य देशों से मेल-जोल करने में क्या सहायता देती है; पहाड़ों के कारण अन्य देशों से मेल-जोल करने में क्या बाधा पड़ती है; नदियों से व्यापार में और आबादी की वृद्धि में क्या लाभ हुआ है; किन प्राकृतिक कारणों से देश की विशेष कारीगरियां पैदा हुई हैं; मनुष्य के जीवन और कामों पर आबहवा का क्या प्रभाव पड़ा है। बहुत सी बातें जानने और याद करने की आवश्यकता तो है, परन्तु उनके याद रखने में सरलता तभी हो सकती है जब कि वह अच्छी तरह समझ ली जावें, और उनके जानने से लाभ तभी हो सकता है जब कि कारण-कार्य्य सम्बन्ध अच्छी तरह मालूम हो।

कक्षा को भौगोलिक बातें बतलाने में केवल मुँह से कह देना ही काफ़ी नहीं है, इस में अध्यापक की वर्णन-शक्ति की बड़ी ज़रूरत है। किसी चीज़ का भी वर्णन हो, ऐसा प्रभावशाली होना चाहिए कि बच्चे के मन के सामने मानों वही दृश्य आगया है, जिस देश का वर्णन होरहा हो उसकी भावना बच्चे के हृदय में हो जानी चाहिए। इस मतलब के लिए वर्णन के साथ चित्र, फ़ोटोग्राफ़, आदि होने चाहिएँ।

[रोचकता और शुद्ध भावना के लिए बहुत से साधन हैं; मैजिक लैंटर्न से बड़े बड़े चित्र सफ़ेद पर्दे पर आजाते हैं; स्टीरियास्कोप के चित्र असली चीज़ का नमूना उत्तम रीति से

दिखला देते हैं ; बायस्कोप में चलती फिरती तसवीरें दिखलाई देती हैं ।]

छात्र- निर्मित नक़्शे

छात्रों की कापी पर हर देश के कई नक़्शे रहने चाहिएं, हर नक़्शे में कोई एक ख़ास बात दिखलाई जावे; जैसे एक नक़्शे में पहाड़ दिखलाये जावें, दूसरे में नदियां, तीसरे में जल-वृष्टि, इसी तरह आगे भी। भूगोल-सम्बन्धी प्रायः हर एक विषय नक़्शे के द्वारा प्रकट किया जा सकता है, और उससे लाभ भी होता है। यह आवश्यक नहीं है कि हर एक देश की सर-हद्दी रेखा का आकार बच्चे बिना नमूना देखे हुए खींच सकें; अध्यापक सादे नक़्शे (जिनमें सरहद्दी ख़ाका खिंचा हुआ हो, और जो छपा कर पहले से रख लिये गये हों) छात्रों में बांट दें और छात्र लोग इन्हीं नक़्शों में भौगोलिक विवरण लिखें। अलबत्ता हिन्दुस्तान का नक़्शा बिना नमूना देखे हुए खींचने का अभ्यास करा देना चाहिए, क्योंकि उसकी बहुत ज़रूरत पड़ती है। एक ही नक़्शे पर हर तरह का विव-रण लिखने से अच्छा यह है कि एक एक नक़्शे पर एक एक तरह का विवरण दिखलाया जावे।

काले तख़्ते पर के नक़्शे

ज्यों ज्यों पाठ आगे बढ़ता जावे त्यों त्यों काले तख़्ते पर अध्यापक नक़्शे में विवरण दिखलाता जावे; ऐसे नक़्शे पर केवल वही चीज़ें दिखलाई जावें जिनका सम्बन्ध उस पाठ से है। रंगीन खड़िया से भी सहायता मिलती है; उसके प्रयोग से भिन्न भिन्न बातें एक दूसरे से अलग कर सकते हैं। अगर पहले से संकेत नियत कर लिया जावे कि इस रंग का मतलब यह है, उस रंग का मतलब वह है तो पढ़ने में समय की बचत हो सकती है; जैसे ऊँची ज़मीन के लिए लाल रंग, नदियों के लिए नीला रंग; नगरों के लिए पीला रंग, इत्यादि। एक तरह के काले कपड़े में नक़्शों के सादे ख़ाके छपे हुए मिलते हैं; अगर यह मंगा लिये जावें तो अध्यापक को काले तख़्ते पर ख़ाका न खींचना पड़े। (यह कपड़े वही काम देते हैं जो काले तख़्ते देते हैं अर्थात् उन पर खड़िया से लिख कर फिर मिटा सकते हैं। बम्बई की लांगमैन्स ग्रीन, कम्पनी, से यह नक़्शे मिल सकते हैं।

इन नक़्शों के अलावा स्कूल में दीवार पर लटकाये जाने वाले बड़े नक़्शे होने चाहिएँ और हर छात्र के पास अतलस (नक़्शों की पुस्तक) होनी चाहिए।

अन्य विषयों से भूगोल का सम्बन्ध

भूगोल का सम्बन्ध प्रायः हर एक पाठ्य विषय से है, और अन्य पाठ पढ़ाते समय भूगोल का इशारा तथा भूगोल पढ़ाते समय अन्य विषयों का इशारा देना आवश्यक है। इस से यह लाभ होता है कि सम्पूर्ण विषयों का परस्पर सम्बन्ध हो जाता है और एक विषय का जो प्रभाव दूसरे विषय पर होता है वह स्पष्ट हो जाता है। कई विषयों का सम्बन्ध दिखलाया जाता है।

भूगोल और साहित्य का सम्बन्ध

स्कूल के पुस्तकालय में कुछ पुस्तकें ऐसी होनी चाहिएं जो भूगोल,शिक्षा में सहायता पहुँचाती हों। बड़े बड़े देशों में भ्रमण करने-वालों और मुसाफिरों की जीवनियां तथा उनके लिखे हुए वृत्तान्त अत्यन्त रोचक होते हैं। इन पुस्तकों के मुख्य मुख्य अंश अध्यापक पढ़ कर सुना सकता है और छात्रों को उत्साह दिला सकता है कि वह फ़ुरसत के समय ऐसी पुस्तकें घर पर पढ़ें। स्पष्ट और प्रभावशाली वर्णन करने के लिए भाषा का उत्तम ज्ञान होना आव-श्यक है।

भूगोल और इतिहास का सम्बन्ध

इतिहास का पाठ तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि जिस स्थान का इतिहास है वहाँ का भौगोलिक ज्ञान न हो। ऐतिहासिक घटनाओं के कारण प्रायः भूगोल ही से सम्बन्ध रखते हैं। उत्तर में हिमालय पर्वत और कई ओर समुद्र होने के कारण भारतवर्ष विदेशी आक्रमणों से बहुत दिन बचा रहा; और जब आक्रमण हुए तो उत्तर-पश्चिम के दर्रों से ही हुए। देश की आबहवा और पृथ्वी की हैसियत का बहुत बड़ा प्रभाव वहाँ के निवासियों की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और शारीरिक दशा पर होता है। भारतवर्ष के बड़े बड़े मैदानों और बरसाती हवाओं (मानसून) का जो प्रभाव वहाँ के लोगों पर पड़ा है वह प्रकट ही है। इतिहास के कोई ही पाठ शायद ऐसे हों जिनमें देश के नक़्शे की ज़रूरत न पड़ती हो।

भूगोल और ड्राइङ्ग का सम्बन्ध

नक़्शे की ज़रूरत और ख़ाके खींचने में सधे हुए हाथ की ज़रूरत है। भिन्न भिन्न रंगों के द्वारा सफ़ाई के साथ भिन्न भिन्न भौगोलिक बातों का दिखलाना आवश्यक काम है।

भूगोल और गणित का सम्बन्ध

स्कूल का नक़्शा, खेल के मैदान का नक़्शा आदि बनाने में नाप करने और स्केल निश्चित करने में गणित की आवश्यकता होती है। भिन्न भिन्न देशों के क्षेत्रफल और उनकी जनसंख्या आदि का मिलान करने में, अक्षांश और देशान्तर आदि निकालने में, भिन्न भिन्न स्थानों में समय का अन्तर जानने में गणित का काम पड़ता है।

भूगोल और प्रकृति-निरीक्षण का सम्बन्ध

प्रारम्भिक अवस्था में भूगोल और प्रकृति-निरीक्षण के पाठ प्रायः समान ही होते हैं। विविध प्रकार के वृक्षों की पहचान, कंकड़ों पत्थरों की देखभाल और पहचान, पैदावार की पहचान, नदी नालों का निरीक्षण और उनके कामों का निश्चय आदि कितनी ही ऐसी बातें हैं जिन्हें हम भूगोल और प्रकृति-निरीक्षण दोनों में सम्मिलित कर सकते हैं।

भूगोल और प्राकृतिक विज्ञानों का सम्बन्ध

किसी देश की पैदावार का सम्बन्ध वहां की ज़मीन, वृष्टि, हवा, गर्मी आदि से होता है और इन चीज़ों का कुछ हाल जानने के लिए हमें प्राकृतिक विज्ञानों से सहायता लेनी पड़ती है। पहाड़, घाटी, डेल्टा, खान, ज्वालामुखी, गेज़र आदि का ज्ञान होने के लिए भूगर्भ विद्या की ज़रूरत पड़ती है। बिना ज्योतिषशास्त्र की सहायता के हमें दिन व रात का होना, ऋतुओं का बदलना, सर्दी गर्मी की कमी वेशी होना, ज्वार-भाटा का आना, आदि विषय नहीं स्पष्ट हो सकते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूगोल की शिक्षा के लिए विविध विद्याओं और शास्त्रों से सहायता लेने की ज़रूरत पड़ती है। परन्तु इन सब शास्त्रों और विद्याओं का पूर्णरीति से जानना छात्रों के लिए न तो सरल ही है और न आवश्यक है; उन्हें केवल उतने ज्ञान की आवश्यकता है जिस से भौगोलिक विषय स्पष्ट हो जावें। इस लिए भूगोल के अध्यापक को चेत रखना चाहिए कि कम से कम जितना विवरण देने से भूगोल-विषय बच्चों की समझ में आजावे उतना ही देना चाहिए, अधिक विस्तार न करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि इन सब बातों का जो प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है उसका पूरा विवरण दिया जावे। यदि स्कूल के सब अध्यापक मिल जुल कर काम करें तो अच्छा हो; अर्थात् गणित, इतिहास, प्रकृति-निरीक्षण, भाषा, आदि के अध्यापक यदि अपना अपना विषय पढ़ाने में ऐसी सामग्री लें जिससे वे विषय भी पक्के पड़ें

और भूगोल के लिए भी सामान मिलता जावे तो भूगोल की शिक्षा और भी उत्तम हो जावे।

चन्द्रमौलि शुक्ल, एम० ए०

क्या एलिमेंटस् और पञ्चभूत एक हैं ?

पृथिवी अप तेज वायु और आकाश इनको पंचभूत कहते हैं, पांचभूतों के समुदाय का नाम पंचभूत है। संस्कृत ग्रन्थों में भूत शब्दका प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। प्रत्येक समूह को भूत कहते हैं, सत्तावान् पदार्थ भी भूत कहे जाते हैं, अतीत के अर्थ में भी भूत शब्द का प्रयोग होता है। देव योनि विशेष भी भूत शब्द का अर्थ बतलाया जाता है। पर पञ्चभूत शब्द पारिभाषिक है, और जगत् के कारण पृथ्वी अप् तेज वायु तथा आकाश का बोधक है।

नवीन रसायन शास्त्र में एलिमेंट शब्द का प्रयोग होता है और इसका अर्थ समझा जाता है मूल पदार्थ। मूल पदार्थ वह हैं जिनमें किसी दूसरे पदार्थ का मिश्रण न हो। रसायन शास्त्र ने आज तक अस्सी मूल पदार्थों का पता लगाया है। ज्यों ज्यों इस विद्या का अनुशीलन अधिकता से होता है त्यों त्यों इसके मूल पदार्थों की संख्या भी बढ़ती है। आज तक अस्सी मूल पदार्थों का पता मिलता है। इन्हीं पदार्थों से अन्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है। यही मूल हैं और इन मूल पदार्थों का नाम एलिमेंटस् है।

इस समय पश्चिम और पूर्व को मिलाने के लिए क्रिया शील मानव पुङ्गवोंने प्रयत्न आरम्भ किया है। इन शक्तिमान वीरों का विश्वास है कि मेरी शक्ति के द्वारा पूर्व और पश्चिम इन दोनों दिशाओंमें जो व्यवधान है, जो दूरी है, वह दूर हो जायगी। हौसला ही तो ठहरा, इस के विषय में किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं है। पर मुझे एक बात कहनी है और वह है पञ्चभूत तथा एलिमेंट्स की खिचड़ी बनाने के विषय की। इस समय पञ्चभूत और एलिमेंट्स इन दोनों को एक करने का बड़ा प्रयत्न किया जा रहा है। पर मैं इस प्रयत्न को समय काटने का एक तमाशा समझता हूं। इस बात का निर्णय करना बड़ा ही कठिन है कि भारतवासियों ने जिन सिद्धान्तों, जिन युक्तियों के सहारे विज्ञान अनुशीलन प्रारम्भ किया था पाश्चात्य विद्वानों ने भी उन्हीं सिद्धान्तों और युक्तियों को प्रधानता दी है। भारतियों ने जिन उपायों से अपने सिद्धान्त निश्चित किये हैं, पाश्चात्य भी उन्हीं उपायों से अपने सिद्धान्तों को निश्चित करते हैं इस बात का कोई काफी सबूत नहीं है, फिर ऐसे निरर्थक प्रयत्न से लाभ ?

इस समय "पञ्चभूत" शब्द का ऐसा अर्थ किया जाता है। पञ्चभूत पद से जड पदार्थों के मूल भूत पांच पदार्थों का बोध नहीं होता। किन्तु जड पदार्थ पांच भागों में विभक्त हैं और उनका बोध पञ्चभूत पद से होता है। एक एक भाग का नाम पृथिवी जल तेज वायु और आकाश है। पृथिवी शब्द का अर्थ मिट्टी पत्थर नहीं है, किन्तु पृथिवी का अर्थ कठिन पदार्थ। जल से तरल पदार्थों का बोध होता है, वायु शब्द वायव्य पदार्थों का वाचक है, प्रकाश शील पदार्थों का बोधन तेज शब्द से होता है और आकाश शब्द उस मार्ग का बोधक है जिससे चद्रमा सूर्य आदि की प्रभा हम लोगों तक पहुँचती है।

मेरे विद्वान् मित्रों ने कल्पना तो खासी की पर इस कल्पना से भी पूर्व पश्चिम का व्यवधान दूर नहीं हुआ। क्योंकि नवीन विज्ञान तेज

नामक किसी मूल पदार्थ को नहीं मानता। कठिन, तरल, वायव्य और आकाशमय पदार्थ माने जाते हैं, तैजस नहीं। बहुत पहले नवीन वैज्ञानिक समाज में "कैलोरिक" आदि तैजस पदार्थ माने जाते थे पर आज उनको मूल द्रव्यों में स्थान नहीं दिया जाता, उनकी कुछ भी सत्ता नहीं मानी जाती। एक और बात है, भारतीयों ने पृथिवी के जो लक्षण बतलाये हैं वह कठिन पदार्थों के लक्षण से मेल नहीं खाते। पृथिवी नामक पदार्थ रूप रस गन्ध और स्पर्श इन गुणों का आश्रय समझा जाता है। जल में चार और तेज में तीन गुण माने जाते हैं। पर परीक्षा के द्वारा मालूम हुआ है कि कठिन तथा तरल पदार्थों में पांचों गुण वर्तमान हैं। तीसरा भेद आकाश के विषय में है। लोग आकाश और ईथर दोनों को एक समझते हैं, पर इस समझ से कोई काम नहीं चल सकता। पूर्व ने आकाश को शब्द का आश्रय बतलाया है और पश्चिम इसे प्रभा का आश्रय बतलाता है। अतएव मैं कहता हूं कि नवीन और प्राचीन को मिलाने के लिए कोशिश क्यों की जाती है। पूर्व पश्चिम का मिलाना कठिन है और निरर्थक है।

हो सकता है कि पृथिवी जल और वायु यह कठिन तरल तथा वायव्य पदार्थों से किसी तरह मेल खा जांय, पर तेज और आकाश का मिलान होना कठिन है। क्योंकि नवीन विज्ञान तेज को शक्ति मानता है, क्या शक्ति को आप जड पदार्थों की श्रेणी में बैठा सकते हैं। नवीन विज्ञान में विद्युज्जातीय एक पदार्थ माना जाता है, इसको लोग "इलेकट्रोन" कहते हैं, ताप इसका धर्म है यह गति शील भी है, इसके वेग का परिमाण भी निश्चित किया गया है, जड पदार्थों में भी इसकी गणना की जा सकती है। बहुत लोग तो इस समय यहाँ तक कहने लगे हैं कि यही जड पदार्थों का मूल है। इस बात को देख कर पूर्व पश्चिम मिलान प्रयासी विद्वान् बड़े ही प्रसन्न हैं। उन्होंने समझ लिया है कि हम लोगों ने पूर्व पश्चिम की एकता कर दी।

हम लोग इस काम को ठीक नहीं समझते। पूर्व पश्चिम के मिलान का प्रयत्न हम लोगों की दृष्टि से निरर्थक है। एक और बात है, भारतीय शास्त्रों का प्रवाह रुक गया है। इस समय भारतीय शास्त्रों का अध्ययन प्रयोगात्मक नहीं होता; अतएव इनके सत्यासत्य न्यूनाधिक का निर्णय नहीं होता; पर पश्चिम के शास्त्रों के लिए यह बात नहीं है। पश्चिम के शास्त्रों का प्रयोगात्मक अध्ययन जारी है। उनके नये नये सिद्धान्त प्रकाशित हो रहे हैं। आज जो सिद्धान्त सत्य समझा जाता है कल वही असत्य हो सकता है। आज जिसके विषय में किसी को कुछ ज्ञान नहीं, कल वही संसार में सत्य रूप धारण कर संसार में प्रकाशित हो सकता है। ऐसी दशा में यदि कोई असम्भव को भी सम्भव कर दिखावे, पूर्व और पश्चिम का मिलान भी कर दे तो, क्या वह चिरस्थायी हो सकता है। यह दलदली ज़मीन है, यहाँ की इमारत मज़बूत नहीं हो सकती।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों देशों के पदार्थ तत्त्व निर्णय का तरीका भिन्न है। पञ्चभूतवाद दार्शनिकवाद है और एलिमेंट थियोरी वैज्ञानिक। यह दोनों ही पदार्थों के स्वरूप का निर्णय करते हैं, जगत् के मूलकारण की खोज करते हैं, पर इनके विचार की रीति भिन्न भिन्न है। पदार्थों के स्वरूप निर्णय की दार्शनिक रीति दूसरी है और वैज्ञानिक रीति दूसरी। वैज्ञानिक किसी पदार्थ के तत्व निर्णय करने के लिए उनकी प्रकृति की परीक्षा करते हैं। पदार्थों के उपादान क्या हैं, इस बात की जांच करते हैं। इस लिए वह पदार्थों को गरम करते हैं, घिसते हैं, पिघलाते हैं, गलाते हैं तथा विश्लेषण करते हैं। इन कार्यों के द्वारा वह इस बात का निर्णय करते

हैं कि इस पदार्थ के उपादान भूतपदार्थों में किस किस जाति के पदार्थ मिले, किस जाति का पदार्थ बचा। इस प्रकार की परीक्षा द्वारा वैज्ञानिक किसी बात का स्वरूप जान लेते हैं, उसके तत्वों का निर्णय करते हैं। दार्शनिकों की रीति इससे भिन्न है। वह किसी पदार्थ के तत्व निर्णय करने के लिए उसके उपादान पदार्थों को नहीं ढूंढते। वह यह नहीं देखते कि किस जाति के तत्वों से इस पदार्थ का निर्माण हुआ है। दार्शनिक जब किसी पदार्थ का तत्व निर्णय करना चाहते हैं तो वह उस पदार्थ के गुणों को देखते हैं। उस पदार्थ के रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द आदि गुणों के द्वारा किसी पदार्थ का तत्व निर्णय करना दार्शनिक रीति है। वैज्ञानिक पदार्थों के गुणों का विश्लेषण करता है और दार्शनिक गुणों का प्रत्यक्ष करता है। इस पदार्थ के उपादान कौन तत्व हैं, इस का निर्णय करना दार्शनिक के लिए कठिन है। पदार्थों के गुण उनके धर्म हैं, धर्म से ही किसी पदार्थ की सत्ता है। चमेली के फूल से सफेद रूप, गन्ध, रस, स्पर्श आदि गुण यदि अलग कर दिये जांय, तो उस फूल की कोई भी सत्ता नहीं बचती, इसीलिए इन्हीं गुणों-धर्मों-के द्वारा पदार्थ तत्वों का निर्णय दार्शनिक किया करते हैं। यदि कोई कहे कि गुणों के पृथक् किये जाने पर भी चमेली के फूल में वह तत्व तो वर्तमान ही रहता है, जिस के आधारण से यह गुण रहते हैं, इसका उत्तर दार्शनिक यह देते हैं कि बात ठीक है, पर गुणों के न रहने पर वह पदार्थ किसी तरह भी जाना नहीं जा सकता और बिना जाने किसी वस्तु की सत्ता मानी भी नहीं जाती, उस वस्तु की सत्ता का कुछ सबूत भी तो होना चाहिए। बिना सबूत किसी बात की सत्ता मान लेना बुद्धिमानों का काम नहीं। दार्शनिक और वैज्ञानिक के पदार्थ निर्णय का यही भेद है। यही उनके पदार्थ तत्व परीक्षा का ढंग है।

दार्शनिक और वैज्ञानिक की विचार रीति भिन्न भिन्न हैं, इस बात के मानने में अब किसी को सङ्कोच न करना चाहिए और इस बात की शङ्का करने का भी कोई कारण नहीं है कि कौन मत सत्य है और कौन असत्य। विरोध वहां होता है जहां कि एक ही रास्ते पर चलनेवाले दो आदमियों में से एक आदमी यह कहे कि यह रास्ता कलकत्ता जाता है और दूसरा कहे कि नहीं, यह तो दिल्ली जाने का रास्ता है। जहां ऐसी बात न हो वहां विरोध काहेका। एक लखनऊ से जी० आई० पी० की ट्रेन में बैठकर उसे बम्बई जाने वाली बतावे, और दूसरा इलाहाबाद में ई० आई० आर० की पूरब जानेवाली ट्रेन में बैठकर उसे कलकत्ता जानेवाली बतावे तो इसमें विरोध काहे का और झूठ सच के विचार की आवश्यकता काहे की। दोनों के मार्ग भिन्न हैं, दोनों सच्चे हैं। जब विरोध ही नहीं फिर मिलाने का प्रयत्न क्यों? विरोध होने पर मिलान किया जाता है और एक बात के विषय में दो प्रकार के विचार रखने वालों में विरोध समझा जाता है। दार्शनिक कहता है इस पदार्थ के यह गुण हैं, वैज्ञानिक कहता है इस पदार्थ के यह उपादान हैं, ऐसी दशा में यदि इनकी बातें भिन्न हों तो कोई बुराई नहीं है, यह कोई दोष नहीं। वैज्ञानिक उपादान का निर्णय करता है और दार्शनिक उपादानों के संयोग द्वारा उत्पन्न गुणों का।

जिन पदार्थों को हम लोग देखते हैं, जिन पदार्थों की सत्ता हम लोग इन्द्रियों द्वारा जानते हैं वह रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द आदि गुणों के संयोगसे उत्पन्न हुए हैं। यह रूप रस गन्ध स्पर्श आदि पञ्चतन्मात्र कहे जाते हैं। इसी पञ्चतन्मात्र से जगत् की उत्पत्ति हुई है। गुण ही भौतिक पदार्थों के सार हैं, यह दार्शनिकों का मत है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि गुणों के नष्ट होने पर भी पदार्थों की कोई न कोई वस्तु बच रहती ही है, जिसे आप जड़ पदार्थ कहते हैं। दार्शनिक कहते हैं जड़ पदार्थ से हमें द्वेष नहीं, सम्भव है जड़ पदार्थ रहता हो पर उसके जानने का उपाय हमारे पास क्या है ? यह काम विज्ञान का है, दर्शन का नहीं। जिस वस्तु की सत्ता ज्ञान की परिधि में न हो उसको हम कैसे मान सकते हैं और अपनी बातों पर किसी दूसरे का विश्वास भी कैसे स्थापित करा सकते हैं।

कतिपय सज्जन दार्शनिकों की हंसी उड़ाते हैं। वह कहते हैं दार्शनिकों को पदार्थ तत्त्व का ज्ञान न था। उन लोगों से हमारा कहना है कि आप पश्चिम के दार्शनिकों की ओर देखें उन्हें क्या इन पांच पदार्थों को छोड़कर किसी दूसरे पदार्थ का पता है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों दार्शनिक इस विषय में समान मत रखते हैं। जो दार्शनिक मत की ही उपेक्षा करना चाहते हैं उनसे केवल यही कहना है कि यदि वैज्ञानिकों से पदार्थ विश्लेषण करने के साधन छीन लिये जांय तो क्या उन्हें इन पांच पदार्थों को छोड़कर अन्य पदार्थों का ज्ञान हो सकता है। इस लिए किसी का तिरस्कार करना या किसी की हँसी करना अनुचित है, इन दोनों के मिलाने का प्रयत्न अनर्थक है। दर्शन दूसरी वस्तु है और विज्ञान दूसरी वस्तु।

आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। यह पंचभूत ही जड़ पदार्थों के कारण हैं या दूसरे पदार्थ, यह मेरा कहना नहीं है; इसका निर्णय करना भी कठिन काम है और न इस के विचार का यह प्रसङ्ग ही है। हम केवल इस बात का विचार करना चाहते हैं कि एलिमेंट्स और पञ्चभूत में क्या भेद है।

कुछ लोगों का कहना है कि ईथर और आकाश दोनों एक पदार्थ हैं। आकाश शब्दाश्रय है और ईथर प्रकाशाश्रय है, इस कारण गुण भिन्न होने से यह दोनों पदार्थ भिन्न हुए। इन्हें एक मानना या एक बनाने का प्रयत्न करना निरर्थक है। ईथर शब्द का आश्रय है यह बात वैज्ञानिक नहीं कहते। कुछ लोगों का यह विश्वास कि एक दिन आवेगा जब वैज्ञानिक ईथर को शब्द का आश्रय मान लेंगे निरर्थक है। आकाश शब्दाश्रय है, शब्द उसका गुण है, रूप रस आदि गुण इसमें नहीं रहते। ऐसा कोई पदार्थ है कि नहीं जिसमें केवल शब्द ही हो, रूप रस आदि न हों यह विचार दूसरा है, किसी समय ऐसा पदार्थ उत्पन्न होगा कि नहीं इस बात पर विचार करना या मत प्रकाशित करना भविष्य-वक्ता का काम है, दार्शनिक या वैज्ञानिक का नहीं। हां आकाश नामक पदार्थ की जो परि-भाषा हम लोगों को मालूम है उसमें शब्द गुण ही उसका प्रधान धर्म बतलाया गया है।

वायु में दो गुण दार्शनिकों ने माने हैं, शब्द और स्पर्श। दूसरा कोई गुण वायु में नहीं रहता। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि वैज्ञानिकों का स्वीकृत वायव्य नामक पदार्थ पञ्चभूतान्तर्गत वायु से भिन्न है। वैज्ञानिक वायु समस्त भूम-ण्डल में फैला हुआ है, उसीसे मनुष्यों की श्वास प्रश्वास की क्रिया सम्पन्न होती है। उस वायु में स्पर्श गन्ध और शब्द यह तीन गुण वर्त-मान हैं। पञ्चभूतान्तर्गत वायु के गुण शब्द स्पर्श हैं, और वैज्ञानिक वायु के शब्द स्पर्श तथा गन्ध यह तीन गुण हैं। इस बात का कहना केवल निस्सार है कि वायु गन्ध का बहन करता है, इस बात से दोनों में किसी प्रकार मिलान हो सकता है। क्योंकि उपादान और बहन इन दोनों बातों में इतना अधिक भेद है कि इसके समझाने के लिए किसी परिश्रम की

आवश्यकता नहीं है। वायु के उपादानभूत पदार्थों में वैज्ञानिक गन्ध की सत्ता स्वीकार करते हैं। कहिये काफी भेद है कि नहीं ?

पञ्चभूत वाला वायु सब वायव्यपदार्थों का बोधन करता है, इस बात का कुछ अर्थ नहीं, ऐसा कहना एक प्रकार का भ्रम है, क्योंकि यहाँ तो वायु के उपादान भूत पदार्थ गन्धवान् माने जाते हैं, उनमें गन्ध और रूप दोनों दीख पड़ते हैं। अब मिलान कैसे हो, समन्वय का उपाय क्या?

दार्शनिकों का तेज नामक पदार्थ शब्द स्पर्श और रूप इन तीन गुणों का आश्रय है। वैज्ञानिकों का इलेक्ट्रोन तेज नहीं है यह बात बतलायी जा चुकी है, और वैज्ञानिक समाज में उसकी सत्ता भी नहीं के समान है।

शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस यह गुण जल के हैं। पर वैज्ञानिक समाज में इस गुण वाले किसी तरल पदार्थ का पता नहीं मिलता।

पञ्चभूतान्तर्गत पृथिवी के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धयह गुण हैं। इससे किसी कठिन पदार्थ का बोधन नहीं होता।

पञ्चभूत में किन पांच पदार्थों की गणना है, उनका परिचय हम लोगों को नहीं है। पञ्चभूत का वायु कौन है, कैसा है; पृथिवी कौन सी है, इन बातों का बतलाना इस समय ही नहीं किन्तु कभी भी किसी के लिए भी कठिन है। इन पदार्थों की सत्ता कल्पना की भित्ति पर स्थित है। हँसो मत, दार्शनिक ही नहीं वैज्ञानिक भी काल्पनिक पदार्थों की सत्ता मानते हैं, इस विषय में दोनों बराबर हैं। लोग समझते हैं कि वैज्ञानिक प्रत्यक्ष वस्तुओं का ही तत्वनिर्णय करते हैं। बात ठीक है, पर वैज्ञानिक कल्पना के शत्रु नहीं हैं। वह भी कल्पना से काम लेते हैं। वैज्ञानिकों के यहाँ भी कई ऐसे पदार्थ हैं जो केवल काल्पनिक हैं।

Perfect solid, Perfect fluid, frictionless surface, Perfect rigid. इस नाम के पदार्थ काल्पनिक हैं। इनका कहीं पता नहीं, इनके प्रत्यक्ष करने का कोई उपाय नहीं, पर वैज्ञानिक समाज में इनकी सत्ता मानी जाती है। कल्पना भी तो यही है। इसलिए काल्पनिक पदार्थों का स्वीकार करना यदि दोष है तो इस दोष के दोषी दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों ही हैं।

इन बातों के आधार पर हम लोग यदि पूर्व पश्चिम के मिलाने के प्रयत्न को अनर्थक कहें तो कुछ बहुत बेजा नहीं है। दार्शनिक वैज्ञानिक का सिद्धान्त विषयक मेल हो जाने से किसी को कुछ लाभ नहीं हो सकता। हां, हानि है और वह स्पष्ट है।

—चन्द्रशेखर।

क्षय का इलाज

जिस क्रम तथा धीरता से क्षय बहुधा बढ़ा करता है, उससे अधिकांश लोग यह समझने लगते हैं कि यह रोग असाध्य है। यह बड़ी भूल है। जर्मन डाक्टरों का, जिन्होंने विज्ञान के विषय में सब से अधिक उन्नति की है, कहना है कि हरएक मनुष्य कुछ न कुछ क्षयी होता है और यह प्रायः ठीक भी मालूम होता है। ५०० ऐसे मनुष्यों के मृत देहों की परीक्षा की गई जो ट्यूबर्क्युलोसिस को छोड़ अन्य रोगों से मरे थे। केवल १५ को छोड़कर और सब के शरीर के किसी न किसी भाग में ट्यूबर्किल जीवाणु पाये गये। बहुत से जवान (full grown) मनुष्यों के फेफड़ों में ऐसे निशान मिलते हैं, जिनसे यह पता लग जाता है कि ट्यूबर्किल जीवाणुओं का बढ़ना कहां शुरू हुआ और कहां बन्द हुआ। जीवाणुओं के लिए यह बहुत साधारण बात है कि वह पहिले फेफड़ों में बढ़ना शुरू करते हैं

और फिर उस मनुष्य के जिसपर कि आक्रमण होता है यह बिना जाने कि क्या हो रहा है, उनका शरीर बढ़ना रोक देता है। क्षय के जीवाणुओं को अच्छी तरह अपना डेरा जमा लेने का अवसर देने के पहिले यदि इलाज होने लगे तो अन्य बहुत से जीवाणुओं द्वारा पैदा होने वाले रोगों की अपेक्षा जल्दी आराम हो सकता है।

रोग होते ही इलाज शुरू कर देने की आवश्यकता

क्षय के इलाज में सब कुछ रोग के आरंभ में ही प्रयत्न करने पर निर्भर है। इसलिये जिस किसी को क्षय के लक्षण* दिखाई देने लगें उसे अपने जी को यह समझाने की चेष्टा न करनी चाहिये कि यह लक्षण काल्पनिक हैं, क्योंकि ऐसा करने से रोग नहीं जा सकेगा, प्रत्युत तेज़ी से बढ़ता जायगा। उसे अपना अनमोल समय इश्तहारी वा 'पेटन्ट' दवाइयों के आज़माने में न खोना चाहिये। समझ की बात तो यही है कि वह फौरन किसी ऐसे चिकित्सक से अपनी परीक्षा कराये जो इस रोग के विषय में विशेष जानकारी और अनुभव रखता हो। परीक्षा से यदि उसे मालूम हो कि जीवाणुओं ने उसके फेफड़ों पर अधिकार कर लिया है तो इलाज फौरन शुरू कर देना चाहिये।

शीघ्र चिकित्सा से लाभ

क, ख और ग की सफेदी से यह मालूम होगा कि रोग की प्रारम्भिक दशा में, कुछ बढ़ी हुई दशा में (moderately advanced) और बहुत बढ़ी हुई दशा में (advanced) रोगी के अच्छे होने की कितनी सम्भावना है।

चित्र ६४

ऊपर का चित्र रटलैंड मैसेचुसेट्स (Rutland Massachusetts) के सरकारी स्वास्थ्य भवन के अनुभव से बनाया गया है। सन् १८८६ से सन् १९०७ तक इस भवन में १९११ रोगियों की—जो कि रोग की प्रारम्भिक अवस्था में थे—चिकित्सा हुई और इनमें से १४५० का रोग या तो बिलकुल अच्छा हो गया या बढ़ने से रुक गया। कुछ अधिक काल से (moderately advanced) बीमार हुए आदमियों की संख्या जिनका इलाज किया गया १६१६ थी और इनमें से ६०४ या तो बिलकुल अच्छे हो गये या जैसे थे वैसे बने रहे। बहुत बढ़ी हुई अवस्था (advanced) के रोगियों की संख्या ७८४ थी जिनमें से केवल १४७ या तो रोग से छुटकारा पा गये या उनकी अवस्था अधिक खराब होने से बच गयी। इन संख्याओं से आरंभ में ही इलाज करने की नितान्त आवश्यकता तथा उपयोगिता स्पष्ट है।

चिकित्सा में आवश्यक बातें

क्षय रोग की चिकित्सा में सफलता के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं:—

* क्षय के सब से साधारण लक्षण यह हैं—खांसी, भूख बन्द, कमज़ोरी, तौल में घटना, तीसरे पहर का बुख़ार, रात में पसीना, और मुंह से खून आना। रोग की प्रारम्भिक दशा में खांसी नहीं भी हो सकती है सुबह या सोते समय तकलीफ देह खांसी हो।

आराम—यदि क्षय रोगी चुप रह सके तो बहुत सा जीवाणु विष (toxin) जो पैदा होता है थूक द्वारा बाहर निकल जायगा। कोई ऐसी बात होने से जिससे सांस फूले या जल्दी जल्दी चले (toxin) जीवाणु विष फेफड़ों से निकल सब शरीर में फैल जाता है और बुखार बढ़ाता है। क्षय रोगी को इसलिये ज्यादा आराम करना चाहिये। अगर उसे बुख़ार हो तो पूरी तौर पर आराम लेना चाहिये और उसे अपने कमरे तक में टहलना न चाहिये। जहां तक मुमकिन हो ज़ोर से हंसना या बातचीत न करना चाहिये। जब बुख़ार बिलकुल न हो तो थोड़ी सी हल्की व्यायाम (exercise) 'जैसे टहलना' करनी चाहिये; लेकिन सावधानी के साथ।

खाना—रोगी को पुष्टिकारक हलका भोजन देना चाहिये, विशेषतः चर्बीदार खाद्य पदार्थ (fatty food) बकरी के मांस का शोरबा, अंडे, दूध, घी, मक्खन, और अच्छा खाना जिसको कि वह हज़म कर सकता है देना चाहिये। परन्तु भोजन सुपथ्य होना चाहिये। भोजन अच्छा बनाना चाहिये और कई तरह की चीज़ें तैयार करनी चाहियें, नहीं तो रोगी को अरुचि हो उठेगी। खाना बंधे हुए वक्तों पर और उचित मात्रा में खाना चाहिये, नहीं तो बदहज़मी हो जाने का डर है। रात को जागना, अधिक परिश्रम और स्त्री सहवास वर्जित है।

खुली हवा में रहना (outdoor life)

क्षय की चिकित्सा में स्वच्छ हवा से बढ़ कर जरूरी कोई चीज़ नहीं है। इस रोग की चिकित्सा में अधिक सफलता तभी हुई है जब कि रोगी जाड़े और गरमियों में खुले में सोये हैं और रहे हैं। मकान से बाहर को निकला हुआ (जैसा कि चित्र ६५ में दिया है) एक ऊंचा 'छज्जा' रोगी के सोने के लिये बनवाया जा
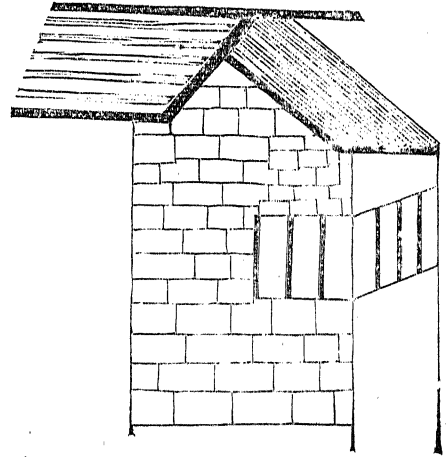
चित्र ६५

सकता है। परन्तु जाड़ों में खुले में सोने के लिये गर्म कपड़े बहुत ज़रूरी हैं, क्योंकि शीत से रोगी को बचाना चाहिये और किसी क़िस्म का कनटोप भी सिर और गला बचाने के लिये पहिनना चाहिये। गरमियों में रोगियों को मच्छड़ों से बचाना आवश्यक है।

अन्य अवश्यक बातें

गर्म और सूखे कपड़े ज़रूरी हैं। अगर रोगी घर ही में रहे तो उसे खूब स्वच्छ हवा मिलने का सब से ज़्यादा प्रयत्न करना चाहिये। क्षय रोग सूखे मकान और रेतीली मिट्टी की अपेक्षा सीले मकान और सीली धरती में अधिक होता है। रोगी के इलाज तथा देख भाल के लिये एक अच्छा डाक्टर होना चाहिये। रोगी को 'क्षय रोग और उसकी चिकित्सा' पर जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें से कुछ को ज़रूर लेकर यह जानने की चेष्टा करनी चाहिये कि किस प्रकार रहने से उसके अच्छा होने की अधिक सम्भावना हो सकती है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब वह पढ़ा लिखा हो। एक छोटी सी अच्छी किताब क्षय रोग पर Dr. S. A. Knopf ने लिखी है जो कि निम्न लिखित पतों से मिल सकती है और सम्भव

है हिन्दुस्तान में भी किसी बड़े पुस्तक विक्रेता के यहाँ भी मिल जाय।

(1) The Survey 105 East 22nd Street Newyork.

(2) The Survey 628 Unity Building Chicago.

काग़ज़ की जिल्द का मूल्य २५ सेन्ट अथवा लगभग ॥।) और कपड़े की जिल्द का ५० सेन्ट वा लगभग १॥) है। इसके अतिरिक्त और भी ऐसी उपयोगी किताबें हैं जो यहाँ ही मिल सकती हैं। हमारे देश में तो नहीं (लखनऊ की एन्टी ट्यूबक्युँलोसिस लीग कुछ बुलेटिन निकालती है) लेकिन अमेरिका में बहुत से राज्य (states) और शहरों की स्वास्थ समितियां बहुत अच्छे बुलेटिन व इश्तहार (circulers) निकालाती हैं, जो कि मुफ़्त बांटे जाते हैं।

रोगी को हमेशा दूसरों की हिफ़ाज़त का ख़याल रखना चाहिये। उसे हमेशा प्रसन्न चित्त वा आशायुक्त होना चाहिये क्योंकि इन दो बातों का स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

क्षय पर जल वायु का असर

पहिले यह ख़याल किया जाता था कि इस रोग के इलाज में जल वायु का ख़याल करना ज़रूरी है। परन्तु आज कल अमेरिका के राज्यों में (और यहाँ भी) जो रोगी अच्छे होते हैं उनसे मालूम होता है कि इस रोग के इलाज में जलवायु की अपेक्षा आराम, खाना और स्वच्छ हवा की आवश्यकता ज़्यादा है। जब तक कि क्षय रोगी के पास इतना काफ़ी रुपया न हो कि वह बिना कुछ काम किये अपना गुज़र कर सके और अपनी देख भाल और रहने का इन्तज़ाम अलग कर सके, उसे घर छोड़ कर किसी दूर जगह न जाना चाहिये, क्योंकि रोगियों को रखना बहुत कम लोग पसन्द करते हैं। जब तक कोई मित्र या बान्धव साथ रहने के लिए न मिले, अच्छे जल वायु की अपेक्षा घर पर ही रहना अधिक लाभ दायक होगा, क्योंकि चिन्ता और एकान्त बहुत हानिकारक होता है। आम तौर पर ठंडा, सूखा जल वायु क्षय रोगियों के लिये हितकारी है जैसे कि नीलगिरि पहाड़, विशेष कर कोनोर और कोटा गिरि। रोगियों को गर्म जल वायु तथा अधिक ऊंची जगह न रहना चाहिये।

क्षय रोगियों के लिये स्वास्थ्य भवन

भारत तथा अन्य देशों में, विशेष प्रकार से क्षय रोगियों की चिकित्सा के लिए बहुत से स्वास्थ्य भवन बने हैं और इनकी संख्या हर साल बढ़ती हो जाती है। चिकित्सा की यह रीति पहिले कोई ३० या ४० बरस हुए जर्मनी में शुरू हुई थी। हमारे देश में उत्तर भारत में दो स्वास्थ्य भवन हैं—एक नैनीताल के निकट भवाली में और दूसरा शिमला के पास धर्मपुर में। इस देश में स्वास्थ्य भवनों की कमी के कारण अभी तक केवल अमीर आदमी ही इनसे फायदा उठा सकते हैं। अमेरिका में बहुत से राज्यों ने अपने यहां स्वास्थ्य भवन बनाये हैं जहाँ रोगी थोड़े ख़र्च से जब तक कि वह अच्छे न हो जाँय रह सकते हैं। वहाँ रोगी का उपयुक्त उपचार और चिकित्सा घर की अपेक्षा बहुत कम ख़र्चे में हो सकती है। स्वास्थ्यभवन की चिकित्सा निम्न-लिखित बातों पर निर्भर है:—

(१) रोगी खुली हवा में रात दिन रहता है।

(२) खूब पुष्टि कारक हलका भोजन दिया जाता है।

(३) विशेष सावधानी के साथ परिश्रम कराया जाता है, जो कुछ मिनट रोज टहलने से शुरू होकर धीरे धीरे बढ़ाया जाता है।

क्षय रोग के रोकने के लिए स्वास्थ्य भवन बहुत ही उपकारी साबित हुए हैं—शायद दूसरी कोई 'एक' चीज़ इतनी उपकारी सिद्ध नहीं हुई।

वंश परम्परा और क्षय रोग

क्षय प्रायः बीज परम्परा गत रोग कहा जाता है। और इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि यह रोग किसी किसी वंश में और वंशों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। पर इसके यह मानी नहीं हैं कि इन वंशों के बच्चों के शरीरों में जन्म से ही जीवाणु रहते हैं। यदि उन में कोई अन्तर होता है तो केवल इतना कि औरों की अपेक्षा उनमें जीवाणु नाश करने की शक्ति कम होती है। जो लोग क्षयी वंशों में जन्म लेते हैं कभी क्षय से पीड़ित नहीं हो सकते, जब तक कि ट्यूबर्किल जीवाणु उनके फेफड़ों में न पहुंचें। यदि वह जीवाणुओं से बचे रह सकते हैं तो वह वैसे ही स्वस्थ और बलवान हो सकते हैं जैसे कि और आदमी। जिस प्रकार शराबी की सन्तान के संस्कार ऐसे होते हैं कि वह सहज ही शराब पीना सीख सकता है उसी प्रकार क्षयी की सन्तान की दशा होती है। परन्तु जैसे कि बिना मदिरा के शराबी नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना ट्यूबर्किल जीवाणु के क्षय नहीं हो सकता। यहां यह कह देना उचित है कि जो लोग ट्यूबर्किल जीवाणु (Tubercle bacilli) से दूषित (infected) मकानों में जाते हैं उन्हें रोग होजाने की अधिक संभावना होती है—चाहे उनके वंश में पहिले यह रोग किसी को भी न हुआ हो। यह बात भी सच है कि जो लोग क्षय रोगियों से शादी करते हैं या जो ऐसे लोगों के घरों में रहते हैं वह उन्हीं रोगियों के कुटुम्बियों, भाई बहिनों तथा बच्चों, की तरह मरते हैं। चुम्बन से भी यह रोग हो सकता है। हमारे पूर्वजों ने भी वंश परम्परा गत सिद्धांत की ओर दृष्टि रख कर विवाह के नियम बनाये हैं। मनुजी निषिद्ध विवाह का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिन कुलों में निम्न-लिखित रोग हों, उन कुलों में चाहे वह कितने ही बड़े हों कदापि विवाह न करना चाहिए।

क्षय्या मयाव्यपस्मारिश्वित्रि कुष्ठि कुलानि च (मनु० अ० ३-७)।

अर्थात् बवासीर, क्षय, मन्दाग्नि, मृगी और सुफेद वा गलित कुष्ट।

इसके अतिरिक्त गृह्यसूत्र में भी लिखा है कि विवाह करने के पहिले भावी पति तथा पत्नी की तथा उनके माता पिता और कुटुम्ब की परीक्षा कर लेनी उचित है।

परन्तु उपरोक्त बातों से यह ज्ञात होता है कि जबकि एक कुल में कई आदमी मरते हैं तो इनकी मृत्यु रोग के वंश परम्परा गत (inheritence) होने के कारण इतनी नहीं होतीं जितनी कि स्वस्थ कुटुम्बियों के रोगी मनुष्यों से जीवाणु ले लेने के कारण। इसलिये किसी मनुष्य को जो 'क्षयी' कुल में पैदा हुआ है यह चिन्ता न करनी चाहिये कि रोग वंश परम्परागत (inherited) है, वरन् अपने को जीवाणुओं के बीच में रहने से बचाना चाहिये। उसे निमोनिया, इन्फ्लयूएञ्जा, ख़सरा, सर्दी, और अन्य रोगों से जो शरीर को निर्बल कर देते हैं सावधान रहना चाहिये, जिसमें ट्यूबर्क्युलोसिस जीवाणु सफलता पूर्वक न आक्रमण कर सकें। उसे शराब और उन पदार्थों से जो शरीर को हानिकारक हैं बचाना चाहिये और स्वस्थ जीवन व्यतीत करने की चेष्टा करनी चाहिये। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसे स्वच्छ व पवित्र वायु का खूब सेवन करना चाहिये।

ट्यूबर्क्युलोसिस जीवाणुओं से बचाव करने में कहां तक उन्नति हुई है ?

जैसा कि सब को ज्ञात है कोई रोगोत्पादक जीवाणु समस्त समाज में इतना नहीं फैला है और न किसी जीवाणु ने तमाम संसार में इतनी हानि पहुंचाई है जितनी कि ट्यूबर्किल बैसिलाइ (Tubercle Bacilli) ने। परन्तु

तिस पर भी यह कह देना उचित है कि संसार ट्यूबर्किल बैसिलाइ से भरा हुआ नहीं है। खेत, मैदान और जङ्गलों की हवा, बनों और पहाड़ों के झरने और खुले मैदानों और खेतों की भूमि इनसे रहित है। लाखों मनुष्य जो पूर्व में ट्यूबक्युलोसिस जीवाणु के कारण मरे हैं उन्होंने या तो रोगी चौपायों या मनुष्यों से ही जीवाणु पाये हैं। वह लाखों मनुष्य जो इन जीवाणुओं को अपने शरीरों में लिये फिरते हैं वह थूक या दूध से दूषित (infect) हुये हैं।

पश्चिमी देशों और अमेरिका में इस भयंकर रोग के विरुद्ध कुछ बरसों से लड़ाई छिड़ी हुई है। और इस लड़ाई में उन लोगों ने बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त कर ली है। परन्तु हमारे देश में इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया है, जिसका फल यह है कि यह रोग यहाँ हर साल भीषण वेग से बढ़ता ही जाता है।

अमेरिका देश में जितने आदमी इस रोग में पहिले मरते थे अब उसके आधे भी नहीं मरते। और केवल अमेरिका में ही नहीं वरन् और देशों में भी मानवजाति का यह परम वैरी रोक दिया गया है।

क्षय एक ऐसा रोग है जो एक मनुष्य से दूसरे को हो सकता है, पर उसकी चिकित्सा सरल है। आजकल समस्त पाश्चमी देशों तथा अमेरिका में क्षय के विपक्षियों का वीर रव, हो रहा है। उन विपक्षियों में से हरएक का हृदय आशा तरङ्गों से उल्लसित हो रहा है। क्योंकि अभी से रिपुदल की सेना (रेखा) एक आध जगह टूट चली है और वह भगाये जा रहे हैं। बहुत सी बातों का जोकि की जा रही हैं—अभी तक पूरा असर भी नहीं हुआ है परन्तु परिणामों से यह स्पष्ट है कि मनुष्यों की जीत अवश्य होगी।

मुकुट बिहारीलाल दर,
बी० एस० सी०।

भुनगा पुराण

[ले०—प्रोफेसर रामदास गौड़, एम० ए०]

ग्यारहवां अध्याय

श्री भुनगेश्वरजी बोले—हे भुनगानन्दनो, इस आकाश महासमुद्रके भीतर निरन्तर "कपकपी" उठती रहती है। इसी "कपकपी" से गरमीका अनुभव होता है। इसी कपकपी से चारों ओर प्रकाश फैलता है वल्कि सच पूछो तो जैसा हम प्रकाश समझते हैं, जैसी गरमी हम अनुभव करते हैं, वैसी गरमी और वैसा प्रकाश परमाणु ब्रह्माण्डके रूपमें मैं कभी अनुभव नहीं करता था। मुझे तो आकाश-समुद्रमें वह अनुभव होता था जो मछलियोंको समुद्रके हिलोरोंमें होता है या जो पक्षियोंको हवाकी लहरों में होता है। मुझे यह सब तरंग विविध वेग और विविध शक्तिके प्रतीत होते थे और मेरे ही अनुरूप असंख्य ब्रह्माण्ड इन्हीं तरंगों से प्लावित होकर अनेक प्रकारकी गति उत्पन्न करते थे। हे मुनियो, यही आकाशकी तरंग-मालाएं हैं जिनकी चर्चा मैंने हस्तामलक न्याय वर्णनमें की थी। इन्हीं तरंगमालाओंमें स्थित मेरा ब्रह्माण्ड हिलोरे लेने लगा।

हे महा मुनियो, मैं जिस आकाशखंडमें बड़े वेगसे आकर पड़ गया उसमें मेरी जाति-के अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे निकट ही कल्लोल कर रहे थे। यह आकाशमण्डल या महासागर अनन्त दिव्य तेजसे निरन्तर जगमगा रहा था। यहाँ तक कि मुझे यह विश्वास हो गया कि जिसे अन्धकार कहते हैं उसका सर्वथा अभाव है। प्रत्युत भुनगा संसारमें हमारी दृष्टिकी शक्ति अत्यन्त कम होनेसे हम प्रकाशको देख ही नहीं सकते और अपनी अशक्त दशाका नाम

अन्धकार रखते हैं। सच तो यह है कि अन्धकार तीन कालमें नहीं है। इस तेजोमय समुद्रमें मेरे समान और मेरी ही जातिके असंख्य ब्रह्माण्ड बड़े वेगसे चक्कर लगा रहे थे और जिस प्रकार मेरा ब्रह्माण्ड मेरे असंख्य शरीरोंसे बना हुआ था उसी तरह यह सभी ब्रह्माण्ड असंख्य शरीरोंके बने हुए थे और यद्यपि यह शरीर भी ब्रह्माण्डके भीतर भयंकर वेगसे चक्कर लगा रहे थे तथापि इनके चक्करोंके कारण ब्रह्माण्डोंके स्वाधीन चक्करोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता था। जिस क्षण मैं अपने शत्रुके द्वारा करोड़ों खंड होकर आकाश समुद्रमें ढकेला गया उसी क्षण मैं भी परमाणु-ब्रह्माण्ड रूप होकर बड़े वेगसे चक्कर लगाने लगा। हे महामुनियो, हम लोग योंही बिना किसी नियमके भ्रमण नहीं करते थे। कई कई नियमित संख्याओंमें ब्रह्माण्डोंका समूह विभक्त था। हम लोग कई परमाणु ब्रह्माण्ड मिल कर एक परिधिमें नाच रहे थे। इस प्रकार इस आनन्द और तेजके महासागरमें निरन्तर दोहरा नाच हो रहा था। एक तो हमारे शरीर ब्रह्माण्ड भरमें नृत्य कर रहे थे। दूसरे हम लोग परमाणु भी टोली बना कर आनन्दसे नाच रहे थे। भुनगानन्दनो, तुमने ब्रजमंडलके रासका हाल सुना होगा। यदि तुम्हें उस अद्भुत नाचका तनिक भी अनुभव हो तो तुम यह समझो कि हम लोगोंका यह नाच उससे कई करोड़ गुना सुन्दर और घटनापूर्ण था। नृत्य करते करते हमारे अनेक सुन्दर दिव्य तेजोमय शरीर अपने ब्रह्माण्डके चक्रसे बहुधा निकल भागते थे और अलग होकर अपनी टोली रच लेते थे और स्वतन्त्र ब्रह्माण्ड हो जाते थे। इनकी जाति ही हमसे भिन्न हो जाती थी। मुझे अपने योगबलसे विदित है कि मेरे इस परमाणु-ब्रह्माण्ड समूहका नाम कलिकालमें म्लेच्छ लोग युरेनियम रखेंगे और जो हमारे शरीर ब्रह्माण्डसे निकल कर नवीन ब्रह्माण्डोंको रचते थे, वह भी साथ ही अलग ब्रह्माण्डोंकी टोली बना लेते थे। भविष्यमें इन नयी टोलियोंका नाम रेडियम होगा। हमारे ब्रह्माण्डोंमें तथा ब्रह्माण्डोंमें स्थित शरीरोंमें बड़ी चंचलता थी, भयंकर वेग था, एक दूसरे शरीरमें परस्पर धक्कम धक्का भी हो जाता था। इन्ही धक्कोंसे हमारे शरीर बाहर निकल जाते थे और रेडियम आदि अनेक ब्रह्माण्ड माला बनाते थे।

मुनियो, हमारे शरीर जो परमाणु ब्रह्माण्डोंके भीतर चक्कर लगाते रहते थे, बड़े सुडौल, सुन्दर, सुचिक्कण, गोल, सहस्र सूर्य्यके समान दिव्य प्रभासे भास्वर, एक ही शक्तिमती इन्द्रिय धारण करनेवाले थे। शक्ति थी कि छलक रही थी, तेज था कि उमड़ा पड़ता था। जिस प्रकार अहन्ता एक थी उसी प्रकार रूप भी सबके एक ही थे। पहले सुना था कि नरान्तकके नगरमें बहत्तर करोड़ नर नारी एक ही रूपके थे। होंगे, परन्तु यहां तो असंख्य और गणनातीत शरीर सभी एक ही रूप रंग आकार प्रकारके थे। केवल हमारे ही शरीर नहीं और ब्रह्माण्डोंके वा परमाणुओंके शरीर भी सब ठीक ठीक मेरे ही शरीरके अनुरूप थे। सारांश यह कि परमाणु-ब्रह्मांडोंकी अलग अलग जातियां इस कारण थीं कि उनमें शरीरोंकी भिन्न संख्याएं नृत्य करती थीं, परन्तु शरीर वा विद्युत्कण सभी एक ही रूप, रंग, शक्ति और प्रकारके थे—चाहे जिस परमाणुकी शोभा बढ़ाते हों, चाहे जैसे परमाणुमें नृत्य करते हों।

हे महामुनियो, इन असंख्य ब्रह्माण्डोंमें भी परस्पर चक्कर खाते हुए कभी कभी आपसमें टकराजानेकी नौबत आती है। परमाणु परमाणु लड़जाते हैं और अनेक शरीर उन ब्रह्माण्डोंसे निकल निकल कर, अनेक विद्युत्कण इन परमाणुओंसे अलग होकर, बड़े वेगसे और विद्युत्कणोंके साथ मिलकर कम संख्या-

के विद्युत्कणोंवाले परमाणु बनाते हैं। कभी कभी जब शरीरोंका वेग कम होने लगता है एकाएकी ब्रह्माण्डमें संकोचनके कारण एक दम महाप्रलय हो जाती है और परमाणु बड़े भयानक धड़ाकेसे सिकुड़ता है। उसके नन्हे नन्हे विद्युत्कण अपरिमित वेगसे टूट कर चारों ओर भागने लगते हैं। बचे बचाए विद्युत्कण फिर भी इस प्रलीन ब्रह्माण्डमें घूमते ही रहते हैं, परन्तु अब यह वह पुराना ब्रह्माण्ड नहीं रहा। विद्युत्कणोंकी संख्यामें कमी आजानेके कारण अब कोई छोटा ब्रह्माण्ड, कोई नया परमाणु, रह गया। इसमें भी वही क्रिया बराबर होती रहती है—यहां तक कि फिर महाप्रलय होती है और फिर इस ब्रह्माण्डका संकोचन हो कर और भी हलका और छोटा ब्रह्मांड बन जाता है। इन परमाणुओंमेंसे जो विद्युत्कण अलग होते हैं वह मिल जुलकर नये हलके परमाणु बनाते हैं। इस प्रकार हे मुनियो, हम लोग जो बड़े बड़े ब्रह्माण्डोंके रूपमें पहले दिखाई देते थे अब छोटे छोटे ब्रह्माण्डोंके रूपमें एक एकके कई कई हो गये। "एकोऽहं बहुस्यामि" यह महावाक्य चरितार्थ होते मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

हे महामुनियो, इस आकाश महासागरमें भ्रमण करते करते मैंने देखा कि इन ब्रह्मांडोंके विविध रूप हैं और विविध समूह हैं—ब्रह्मांडोंका आकार प्रकार भी भिन्न भिन्न है। मैंने सौके लग भग भिन्न भिन्न प्रकारके ब्रह्मांड देखे, जिनमें सबसे छोटा और हलका उज्जन परमाणु था, जिसमें ठीक मेरे शरीरोंके रूप रंग आकारके १७०० शरीर निश्चित नियमसे बड़े आनन्द पूर्वक नृत्य करते थे। रेडियम नामक परमाणुमें तीन लाख इक्यासी हज़ार (३८१०००) विद्युत्कण चक्कर लगाते हैं। तुम्हारे लिए उस शक्तिकी अटकल लगानी बहुत कठिन है जिस शक्तिसे एक एक विद्युत्कण परमाणु-ब्रह्मांडके भीतर भ्रमण करता है। एक बार मानवेन्द्र तमःसेनने अपनी बुद्धिके अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देख कर हिसाब लगाया तो उसे जान पड़ा कि एक भुनगा भर उज्जनमें इतनी शक्ति है कि साढ़े सत्ताइस हज़ार * (२७५००) मन का बोझ हजारों मील ऊपर फेंक सकता है।

हे ऋषियो, इतनी अद्भुत और अपरिमित शक्ति होते हुए भी विद्युत्कण-मय परमाणु निरन्तर आनन्द पूर्वक नृत्य करते हुए अपनी अपनी मर्य्यादाके भीतर अपने निर्धारित कर्तव्योंका पालन कर रहे थे। लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम, क्रोध आदि विकारोंसे रहित यह दिव्य शरीरधारी कभी अपनी कल्पनातीत शक्तियोंका दुरुपयोग नहीं करते थे। संसारके क्षुद्र जीव थोड़ासा ही अधिकार पाकर मतवाले होजाते हैं। परन्तु धन्य हैं यह ब्रह्मांडनायक, विविध मूलपदार्थोंके ब्रह्मा, इस आकाशमयी सृष्टिके चतुरानन, जो इस अपार आकाश रूपी क्षीर समुद्रमें पुरुषोत्तमकी नाभि से सामर्थ्य रूपी कमलपर उद्भूत होकर अपनी मर्य्यादाके भीतर अपने अपने ब्रह्मांडोंकी सृष्टि करते हैं और कितने ही पतिवर्तन सह अपने नियमको, धर्मको, अक्षुण्ण रखते हैं।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे परमाणुभेद वर्णनो नाम एकादशोऽध्यायः

---

*टामसनने हिसाब लगाया है कि एक माशे उज्जनमें इतनी शक्ति यन्त्रित है कि यदि उसे मुक्त कर दें तो उससे पौने तीन करोड़ मन का बोझा सौ गजसे अधिक ऊँचा उठाया जा सकता है।

बारहवां अध्याय

भुनगादि ऋषीश्वर मनोरंजक कथाको सुन आश्चर्य्यसे चकित हो श्री भुनगेश्वर महर्षिसे अत्यन्त विनय पूर्वक शीश नवाय कर जोड़ बोले, "हे दयालो! इस विचित्र कथाको सुन संसारमें कौन ऐसा प्राणी है जिसका मन अघाय जाय और कौन ऐसा जीव है जिसके मनमें विविध शङ्काएं और भांति भांतिकी जिज्ञासाएं न उठें। यह तो हमारी धृष्टता है, हद दर्जेकी ढिठाई, है कि बीच बीचमें प्रश्न और उपप्रश्न करके इस मनोरञ्जक आख्यानकी शृंखला तोड़ी जाय। परन्तु हे भगवन्, मनकी उत्कण्ठा प्रश्न करनेको लाचार करती है। उत्कट जिज्ञासा बीचमें रोकनेको विवश करती है। हे गुरो, इस अभूतपूर्व शरीरमें जिसे आप परमाणु-ब्रह्मांड कहते हैं, आपका प्रत्यक्ष अनुभव है इसी लिये आप ही इस जगत्में हमारी शङ्काओंको दूर करनेमें समर्थ हैं। इस ब्रह्मांडमें जिस समय आपकी अहंताका आविर्भाव हुआ, क्या उसी समय इस ब्रह्मांडकी सृष्टिका आदिकाल समझना चाहिये। यदि इस ब्रह्मांडकी स्थिति पहलेसे थी तो उसमें कौन सी अहंता थी? और यदि न थी तो क्या जड़ ब्रह्मा भी हुआ करते हैं, जिनमें अहंताका प्रवेश किसी समय हो सकता है। हे भगवन्, यह भी बताइये कि आपका परमाणु-ब्रह्मांड ऐसे अचिन्त्य और अपरिमित वेगसे परिभ्रमण कर रहा था और आपके अतिरिक्त अन्य बहुतेरे ब्रह्मांड भी पास ही पास थे तो क्या एक दूसरेसे लड़जानेसे अनेक अनिष्ट दुर्घटनाएं नहीं हो जाती थीं। हे प्रभो, यह भी बताइये कि आप जैसे ब्रह्मांडोंकी आयु कितनी थी और ब्रह्मांडोंमें परस्पर रूप रंग, गुण, धर्म, स्वभावमें अन्तर था अथवा सब समान थे। यदि अन्तर था तो अपने ब्रह्मांडके अतिरिक्त अन्य ब्रह्मांडोंके गुण, धर्म, स्वभाव, रूप, रंगका वर्णन भी कृपा पूर्वक कीजिये। हे महाभाग, आपने कहा है कि हमारे शरीरोंके तेजसे ही सारा ब्रह्मांड दीप्तमान था तो क्या इन ब्रह्मांडोंमें सूर्य्य चन्द्रमा अग्नि आदिका प्रकाश नहीं होता। हे महाप्रभो, क्या आकाशके तरंगोंमें स्वयम् प्रकाश है। यदि है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देता और क्या अन्धकार भी कुछ सत्ता है कि आपको यह कहनेकी आवश्यकता हुई कि हमारे सब शरीर तेजोमय थे। हे महामते, आपकी बातें बेतरह चक्करमें डालनेवाली हैं। सो कृपाकर इन ब्रह्मांडोंकी "उद्भव पालन प्रलय कहानी" पूर्ण विस्तारसे वर्णन कीजिये।"

यह प्रश्न सुन भुनगा महर्षि आनन्दसे पंख फुलाकर बड़े गौरवसे बोले—हे भुनगा कुल-दीपको, तुम्हारे प्रश्न प्रसंगके अनुकूल होते हैं और उनसे विज्ञानका विस्तार होता है। तुम्हारी शंकाएं सभी उचित और प्रसंगानुसार हैं। मैं सबका समाधान करूँगा। मन लगा कर सुनो।

हे भुनगाभूषणो, जब मैं उस महासमरमें शत्रुके प्रहारसे खंड खंड हो कपालखंडसे आकाश खंडमें ढकेला गया उस समय मेरी दशा अनिर्वचनीय थी। मैं तुरीयावस्थामें स्थित था जिसे योगीजन ब्रह्मलीन होना भी कहते हैं। मुझे अहंता नामकी संज्ञा न थी। मैं अपनेको एक व्यक्ति समझना भूल गया था। समस्त विश्वको अपना आपा जान आनन्दकी प्रत्यक्ष मूर्ति हो गया था। मैं विश्व था और विश्व मैं था! मुझसे बिलग कुछ न था और न कोई अन्य संज्ञा वा चेतना थी। वह दशा ऐसी अद्भुत थी कि न तो देशकी वहां समाई थी, न कालकी वहां कल्पना थी। सत्व, रज, तम, तीनों गुण मेरी एक सत्तामें डूब गये थे। स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्ति इनका पता न था। अचिन्त्य, निर्विकार, निरीह दशामें मैं क्या था, कैसा था,

कह नहीं सकता। "यतोवाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य-मनसा सह" इस दशाका दिव्य वर्णन है। हे ऋषियो, तुम पूछो हो कि इस दशामें तुम कितने काल तक थे और कहां थे तो मैं क्या बताऊँ। कालकी जहां गति नहीं वहांका निर्देश कैसे किया जाय। हे मुनियो इस दशामें अनन्त काल रह कर अथवा अत्यन्त काल तक रह कर एकाएकी मेरी पूर्व अहंताका परमाणुब्रह्मांडमें आविर्भाव हो गया। जब मैं परमाणु ब्रह्मांडमें सचेत हुआ मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं अनन्त कालसे इस परमाणु-ब्रह्मांडका महा अधिष्ठाता पुरुष हूं। मेरे शरीरोंकी सतत निरन्तर अपरिवर्तनीय गति तमोगुण थी। गति मात्रका होना जो गुण था यह गति ऐसे विशेष नियमसे हो रही थी कि मेरे शरीरोंमें परस्पर संघर्ष नहीं हो पाता था और साथ ही इस गतिकी अद्भुत क्रियासे मृदुनीलिम युक्त मनोहर श्यामल तेज विकिरित हो रहा था, यही मेरा सत्व गुण था। मैं अनादि कालसे था और अनन्त काल तक रहूँगा। यह भावना तद्रूप थी। मैं समस्त आकाश-खंडके अखिल ब्रह्मांडोंका ज्ञाता था, यह भावना चिद्रूप थी और मैं समस्त आनन्द था यह मेरी भावना आनन्द रूप थी। इस प्रकार मैं ब्रह्मांडका पुरुष सच्चिदानन्द रूप अपनी त्रिगुणमयी प्रकृतिसे इस अनन्त विश्वके भीतर स्थित था। मेरा अनुभव है कि प्रत्येक ब्रह्मांडका नायक इसी प्रकार सच्चिदानन्द था। हे महामुनियो, इसी लिये यह कहना दुस्तर है कि इस परमाणु-ब्रह्मांडका आरम्भ कैसे हुआ। इस रहस्यका जाननेवाला न कोई है, न हुआ, न होगा, क्योंकि वस्तुतः इन परमाणुओंकी सत्ता अनुमानमात्र है। वास्तविक सत्ता एकको छोड़ दूसरी नहीं है। और वह सत्ता सत्ता ही है। और वही नित्य सत्य है। और शेष सब उसी का विकार है।

हे भुनगा ऋषियो, जो तुमने यह पूछा कि क्या जड़ ब्रह्मांड भी होते हैं, तो यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिये कि जड़ और चेतन किसे कहते हैं। हम भुनगाओंके निकट पत्थर मिट्टी आदि जड़ पदार्थ हैं और हम चेतन हैं। वनस्पतियोंको भी बहुतसे अनुभवी भुनगा बद्धचेतन ही बताते हैं। बहुतसे राक्षस वृक्ष ऐसे भी हैं जो भुनगासे भी बड़े बड़े जीवोंको अपने कर पल्लवोंसे पकड़ पकड़ कर जीता ही चूस जाते हैं। लोहा, सोना, चाँदी आदि धातुओंको भी जड़ न समझना चाहिये, क्योंकि यह धातु भी भंग आदि मादकद्रव्योंसे मस्त हो जाती हैं और संखिया आदि विषसे मर जाती हैं। कहाँ तक कहें जड़ और चेतनका विकार केवल आपेक्षिक है। हम लोग अपनेको चेतन कहते हुए मानव-ब्रह्मांडको जड़ कहते हैं। तुम्हें याद होगा कि जुंग महर्षिने मानव ग्रहको जड़ ही समझा था। परन्तु उस महाग्रहका अधिष्ठातादेवता नर परमात्मा अवश्य चेतन है, उसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जब मैं अपने स्थूल रूपोंका वर्णन करूंगा तब मानव ग्रहकी चेतनाका भी प्रमाण दूँगा। नर परमात्मा भी अपने शरीरको जड़ ही समझता है, परन्तु उनके जड़ शरीरके रक्त स्रोतोंके भीतर रक्त श्वेत देवताओंकी विपुल संख्या हिलोरें ले रही है। कौन कह सकता है कि मानव ग्रहके ऊपरी स्तरपर असंख्य असंख्य देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व स्वतन्त्र रूप से विचरते हैं, उसके रोम बनोंमें विहार करते हैं, परन्तु उसको बिलकुल पता नहीं। हे भुनगा ऋषियो, जिन दो कन्दराओंका मैंने वर्णन किया था, जिनमें वायुके प्रबल झोकेसे भीतर की ओर मेरा शरीर पात हुआ उनमेंसे नित्य झोकेके साथ संख्यातीत देव दानव प्रवेश करते रहते हैं। और नर परमात्मा विचारा नहीं जानता। यही दशा है महर्षियो, हम लोगोंकी भी है। हम लोग अपनेको चेतन

और अन्यको जड़ मानते हैं, यह केवल अनुमान ही अनुमान है। वस्तुतः जड़का अभाव ही है। जिस प्रकार हम अत्यधिक प्रकाशको अथवा कम प्रकाशको न देख सकनेके कारण अन्धकार ही कहते हैं, उसी प्रकार अपनेसे अत्यधिक चेतनता-को वा अत्यन्त कम चेतनताको जड़ कहते हैं। नहीं तो वस्तुतः जड़त्व कोई सत्ता नहीं रखता।

हे भुनगानन्दनो, इस प्रकार आपेक्षिक रूपसे हमारी ही गतिके अनेक ब्रह्मांड हमारे ही साथ साथ स्थायी रूपसे सात अरब मानव वर्ष तक बिना वृद्धि और क्षयके निरन्तर बने रहे। इस सात अरब वर्ष बीतने पर खंड प्रलयका आरम्भ हुआ, जिससे धीरे धीरे हमारे ब्रह्मांड-का क्षय होता गया। पूर्णतया नष्ट हो जानेमें दूसरे सात अरब वर्ष लग गये। चौदह अरब वर्षोंमें इस ब्रह्मांडका एक चिन्ह भी न रह गया। इसीसे अनुमान कर लीजिये कि इस ब्रह्मांडकी रचनामें सात अरब वर्ष लगे होंगे। इस प्रकार हमारे ब्रह्मांडका महाकल्प इक्कीस अरब मानव वर्षोंका हुआ। हे महामुनियो, ऐसा भी न समझ लेना कि इस महा-प्रलय में ब्रह्मांडकी वास्तविक सत्ताका निर्मूल हो जाता है। मेरे ब्रह्मांडका नाम उरण था। यह उरण ब्रह्मांड जब धीरे धीरे छीजने लगा तो हमारे असंख्य शरीर बड़े वेगसे टूट टूट कर नये ब्रह्मांडोंकी रचना करने लगे। कुछ कुछ अंश हमारे शरीरोंके अलग होकर "हीलियम" नामक छोटे ब्रह्मांड हो गये और शेष रेडियम नामक बड़े ब्रह्मांडमें परिणत हो गये। यद्यपि एक एक ब्रह्मांड टूट कर अनेक ब्रह्मांड बने तथापि मेरे असंख्य शरीरोंके समान उनका तेज, उनका वेग और उनके आयतन आदि सारे गुण ज्योंके त्यों बने रहे। निदान मेरे शरीरोंमें कोई भी परिवर्तन न हुआ। भिन्न भिन्न ब्रह्मांडों-के बन जानेका कारण शरीर की संख्याओंका भेद था। जितनी संख्याओंसे मेरा उरण ब्रह्मांड बना था उतनी संख्यासे ही कई ब्रह्मांड बने तो स्पष्ट है कि मेरे शरीर थोड़ी थोड़ी संख्याओं-में बट गये, परन्तु हे महामुनियो, यहा आश्च-र्य्यकी बात है कि इन भिन्न ब्रह्मांडोंमें भी मैं ही मैं था। यद्यपि इनके नाम रूप अलग अलग थे तथापि इन सभोंमें मेरी ही अहंता थी। "रेडियम" नामक ब्रह्मांडमें आनेपर मैंने कोई विशेष परिवर्तन नहीं समझा। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानों मैंने अपनी एक कोठरीसे दो कोठरियां कर ली हैं और दोनोंमें विराज रहा हूँ।

इत्यार्षे श्रीभुनगा महापुराणे परमाणु महासर्ग वर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः

तेरहवां अध्याय

इतनी कथा सुनाय भुनगेश्वर जी बोले—हे महामुनियो, तुम लोगोंने पूछा कि परमाणु ब्रह्मांडकी आयु कितनी है, सो ऐसा प्रश्न है जिसका कोई ठीक उत्तर देना असम्भव है। इस अनन्त आकाश खंडमें तारोंकी संख्या चाहे कोई गिन ले, चाहे कोई यह भी बता सके कि धरणीके इस महापिण्डमें कितनी रेणु-काएं हैं। परन्तु कितने परमाणु-ब्रह्मांड इस आकाश देशमें हैं यह ब्रह्माकी कल्पनासे भी बाहर है। अटकल से विचार किया था तो जान पड़ा कि लग भग सौ प्रकार के ऐसे ब्रह्मांड हैं, जिनकी आयु अत्यधिक होती है और लग-भग इतने ही प्रकारके ऐसे ब्रह्मांड हैं, जिनकी आयु अत्यन्त कम होती है। मेरे उरण परमाणु-की गिनती यद्यपि बहुत अल्पजीवियोंमें थी, तथापि अल्पजीवियोंमें भी मेरी आयु सबसे बड़ी थी। मेरे उद्भव, पालन, प्रलयमें साढ़े बाईस अरब बरस लगे थे। और ऐसे भी अल्प जीवी मेरी ही कोटिके थे जिनका आदि अन्त भुन-गाओंके एक पलमें हो जाता था। हे भुनगा-

कुल भूषणो ! तुम भली भांति समझते हो कि जब अल्पजीवी होकर मेरी आयु मानव देवताओंके साढ़े बाईस अरब बरसकी थी तो जिन्हें हम दीर्घजीवी कहते हैं उनकी आयु कितनी होगी। इतनेसे ही अनुमान कर लीजिये कि स्वर्ण-परमाणु, लोह-परमाणु, ताम्र-परमाणु रजत परमाणु, मेरे जन्म कालमें अत्यन्त वृद्ध थे और रेडियम और हीलियममें जब मेरा पुनर्जन्म हुआ तब भी यह जवान समझे जाते थे। मेरी समझमें इनकी आयुका कोई वार पार नहीं दीखता। परन्तु इसका मुझे निश्चय है कि यह अनादि अनन्त नहीं हैं। इनके पिता पितामहादि पूर्व पुरुष, जो जीते हैं, इनके जन्मकी गवाही देते हैं। इनके पुत्र पौत्रादि जो विद्यमान हैं इनके जन्मान्तरकी कथा कहते हैं।

हे भुनगानन्दनो, यह भी परमाणु-योनिकी एक विलक्षण बात है कि परमाणुओंका नाश उनके रूपान्तरका ही नाम है। जो परमाणु इस समय उत्पन्न हुआ है पहलेके एक वा अनेक परमाणुओंके नाशसे बना है। नाश होनेमें परमाणुओंका कोई अंश लुप्त नहीं होता है। प्रत्येक परमाणु हिरण्यगर्भ है। स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि नामके परमाणु बाहरसे तेजोमय दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनके भीतर संख्यातीत शरीर हैं जो प्रत्येक तेजपुंज महावेगसे परिभ्रमण कर रहे हैं। देखनेमें जो परमाणु अंधेरे दिखाई पड़ते हैं वह सभी बड़े दीर्घायु भोगी हैं और जो परमाणु बड़े तेजोमय दिखाई पड़ते हैं अल्पजीवी हैं। अल्पजीवी तेजोमय इसलिये दिखाई देते हैं कि उनके अगणित शरीर प्रतिक्षण टूट टूट कर बाहर होते रहते हैं और उनके क्षयकी क्रिया जारी रहती है। यही शरीर उनको बाहरसे देखनेमें ज्योतिष्मान बनाते हैं। तुम लोग आकाशमें अनेक ज्योतिर्मय तारे देखते हो। हर एक सतत क्षीयमाण, नित्य क्षय होनेवाले महापिंड हैं। इनके सिवा करोड़ों और अरबों ऐसे तारे हैं जो तमोमय हैं। किसी को किसी प्रकार दिखाई नहीं पड़ते। यह महापिंड क्षीयमाण नहीं हैं। हां, जब कभी ऐसे दो या अधिक अंधेरे पिंड लड़ जाते हैं तो उनके टुकड़ोंसे एक वा अनेक अल्पजीवी ज्योतिर्मय महापिंड बन जाते हैं। इसी प्रकार हे महामुनियो, हमारे परमाणुओंसे भी अल्पजीवी परमाणुओंकी रचना होती रहती है। हे मुनियो, तुमने जो यह पूछा कि परमाणुओंमें परस्पर क्या अन्तर है तो यह बात भी तुम्हारी कल्पनामें अभी कठिन है। यह परमाणु-ब्रह्मांड जिन शरीरोंके बने हुए थे वह सब एक ही आकार और प्रकारके थे। उनके रूप रंगमें कोई अन्तर तो नहीं था। परन्तु भिन्न भिन्न ब्रह्मांडोंमें चक्कर लगानेकी दशामें उनके वेगमें, उनकी पारस्परिक दूरीमें और उनकी संख्यामें बहुत कुछ अन्तर था। इसी कारण सम्पूर्ण परमाणुओंमें परस्पर रूप, रंग, गुण धर्म, स्वभावमें अनेक प्रकारसे अन्तर भी पड़ता था और समानता भी दिखाई पड़ती थी। संख्याओंकी कमी वेशीसे तथा वेग आदि अन्य कारणोंसे भी कोई परमाणु किसीसे भारी और किसीसे हल्का था। किसी परमाणुमें किसी अन्य परमाणुसे मिलनेकी बड़ी तीव्र प्रवृत्ति थी, जिसे युयुक्षा कहते हैं और बहुतेरोंमें ऐसा उदासीन भाव पाया जाता था कि वह सब से अलग अलग रहते थे और कुछ ऐसे भी थे जो मिलनेके बड़े कट्टर विरोधी थे। यह परमाणु भुनगाओंकी दृष्टिसे तो अत्यन्त पास पास थे, परन्तु इस आकाश महासागरमें इनकी पारस्परिक दूरी इनके ही आयतनके अनुकूल दूरीके परिमाणसे हज़ारों मीलकी थी। यह कितने ही वेगसे चक्कर लगाते थे परन्तु एक दूसरेसे लड़ जाना असाधारण घटना थी।

हे भुनगा भूषणो, हमारे साथ साथ हमारे सरीखे गणनातीत उरण ब्रह्मांड बराबर बड़े वेगसे चक्कर लगा रहे थे, परन्तु हमारा सबसे पासका पड़ोसी हमसे डेढ़ हज़ार मीलपर था।

हम इस बातको कह आये हैं कि देश और कालका परिमाण सापेक्ष है। परमाणुब्रह्मांडोंके महाकल्प भुनगाओंके एक दिन रातके बराबर हो सकते हैं। और भुनगाओंके वर्ष मानव ब्रह्मांडके मिनटोंके बराबर हो सकते हैं। इसी तरह देशके परिमाणमें जो दूरी परमाणुओंके निकट दो हज़ार मीलकी है वह भुनगाओंके निकट एक पर लम्बाई हो सकती है और भुनगा जगत् में जितने गज़ एक परकी लम्बाई समझी जाती है मानव जगत् में वह एक जौ के बराबर भी नहीं हो सकती। इसी लिये हे महर्षियो, मैंने जो यह वर्णन किया कि परमाणु-ब्रह्मांडोंमें परस्पर हजारों मीलका अन्तर है सो भुनगाओंके निकट ठोस उरण नामक धातुका टुकड़ा हो सकता है। जिनके परमाणु इतने सटे हुए दीखते हैं कि कोई भुनगा परमाणु तो दूर रहा परमाणुओंके छोटे समूहको भी एक साथ नहीं देखता, वरन् उरण धातुके एक समूचे टुकड़ेको ही एक पिंड समझता है।

हे महामुनियो, यह सारा विश्व इन्हीं परमाणु-ब्रह्माण्डोंकी रचनासे विविध रूपोंमें दिखाई दे रहा है। और इन्हीं परमाणुओंके निरन्तर दशा-परिवर्तनसे विश्वमें भी परिवर्तन होता जा रहा है। कभी कभी यह परमाणु-ब्रह्माण्ड एक दूसरेसे दूर हो जाते हैं और कभी निकट। इस देश परिवर्तनकी क्रियासे नापमें कमीबेशी होती रहती है। जब कभी दो या अधिक परमाणु टकरा जाते हैं, इनके संयोगसे नये रूप रंगकी वस्तुएं बन जाती हैं। साधारण दृष्टिसे इन परिवर्तनोंको ही लोग नाश वा प्रलय समझ लेते हैं।

परन्तु ऐसा समझना बड़ी भूल है, मैंने अभी तुम्हें यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है कि परमाणु संसारमें बहुतेरे परमाणुओंका क्षय भी होता रहता है। उनके विद्युत्कण अंड चक्रसे अलग हो हो कर नये ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं। इस क्रियामें भी यह स्पष्ट है कि वस्तुतः परमाणुका क्षय नहीं होता, वरन् एक परमाणु ब्रह्माण्डकी सामग्री एक वा अनेक नये परमाणुओंकी रचनामें लग जाती है। साढ़े सात अरब बरसोंमें जो मेरे उरण परमाणुओंका क्षय हो गया तो वस्तुतः इतना ही हुआ कि हमारा नामरूप बदल गया और हम पोलोनियम और हीलियम नामक दो परमाणुओंमें परिणत हो गये और वस्तुतः हमारे शरीरोंमेंसे एकमें भी कोई कमी न हुई। इसपर हे भुनगा भूषणो, तुम प्रश्न कर सकते हो कि क्या सचमुच कभी महाप्रलय वा महाक्षय नहीं होता? अपने दिव्य ज्ञान और अनुभवसे तुम्हारे इस प्रश्नको समझ कर मैं आप ही उत्तर दे देता हूं।

हे महर्षियो, हमने वर्णन किया है कि कपाल-खंडसे अपने शत्रुके प्रहारसे छिन्न भिन्न होकर मैं जब आकाश खंडके महार्णवमें परमाणु रूपमें जाग्रत हुआ, मेरे जैसे परमाणु ब्रह्माण्डोंकी गिनती न थी और सभी आकाश सूक्ष्म सुविस्तृत तरल घनिष्ठ महार्णवमें हिलोरें ले रहे थे, मेरी समझमें मूल प्रकृतिका मूल रूप यही आकाश था, परन्तु वहांके अत्यंत सूक्ष्म परमाणुओंसे सत्सङ्ग होनेपर मुझे पता लगा कि यह आकाश नामक महा घन मंडल मूलप्रकृतिका विकारमात्र था। यह समस्त आकाश मनसनामके अत्यन्त सूक्ष्म प्रकृति मंडलमें फैला हुआ था। हमारे देखनेमें इस आकाशमंडलका ही और छोर न था और हम सब साबूदानेकी खीरकी तरह एक अनन्त मंडलके कण थे परन्तु हमने सुना है

कि मनस् नाम महा प्रकृति मंडलमें यह आकाश भी समुद्र के भीतर बुद्बुद् की नाई' था। इस मनस् नामक प्रकृति की उत्पत्ति बुद्धि नामक उससे भी कहीं सूक्ष्म प्रकृति में हुई थी और बुद्धि का मूलरूप भी अहंकारसे हुआ था। सो हे महर्षियो, मैंने ऐसा सुना है कि मूल प्रकृति रूप रंग आकार इत्यादि से परे है— उसके जानने का न तो कोई साधन है और न हो सकता है। बुद्धि के बाप अहंकार की जनयित्री है और मन की परम पितामही है। वहां तक पहुंचनेमें कल्पनाकी टाँगे लंगड़ी हो जाती हैं और अनुमान की बैसाखी काम नहीं देती। हे भुनगा नन्दनो, यदि तुम चाहो कि अपने ही ऊपर सवार होकर उड़ो तो यह कैसे हो सकता है। कोई अपने ही कंधों पर बैठना चाहे तो कैसे हो सकता है। विश्व की मूल जनयित्री प्रकृति माता का पता लगाना असम्भव है।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे आकाशखंडे परमाणु स्थिति वर्णनोनाम त्रयोदशोऽध्यायः।

सहधर्मिणी

हाल में स्वनामधन्य लाला लाजपतराय जी लिखित माडर्न रिव्युमें सामाजिक-पुनर्संगठन शीर्षक दो विशद लेख प्रकाशित हुए हैं। पहलेमें अधिकतर 'हैवलौक एलिस' नामी लेखकके विचारोंका समर्थन करते हुए उन्होंने यह दिखलानेका यत्न किया है कि जीव-विज्ञान और शरीर-विज्ञानके अनुसार स्त्री, पुरुषकी शरीर-रचना और शक्ति-सामर्थ्यमें बहुत भेद है। दूसरे लेखमें इस बात पर ज़ोर दिया है कि इन भेदोंके होते हुए भी भारतीय महिलाओंकी इस समय जो हीनावस्था है उसे दूर कर उन्हें शिक्षा और व्यक्तिगत विकासका पूरा अवसर देना चाहिये। यदि गंभीरता और विचारपूर्वक सारा लेख पढ़ा जाय तो लेखका आशय प्रायः उदार और उन्नतिमूलक है। परन्तु खेद है कि कहीं दो चार ऐसी बातें भी आ गई हैं जिनका लालाजीने पूरा समाधान नहीं किया है और जिनके आधारपर स्त्रियोंके अधिकारके विरोधी अब भी अपनी युक्तियां खड़ी कर सकते हैं। सच पूछिये तो भारतवर्षमें इस समय स्त्रियोंके दलका हितैषी लालाजीसे बढ़ कर कोई दूसरा नहीं दीखता। उन्होंने स्त्रियोंकी वर्तमान सामाजिक दुर्गतिका जैसा मार्मिक चित्र खींचा है और उनकी शिक्षा तथा स्वतंत्रताकी जिस हद तक लालाजीने आवश्यकता दिखलाई है उतना शायद ही कोई कट्टरसे कट्टर समाज सुधारक भी माननेको तैयार हो। परन्तु फिर भी उनके पिछले लेखमें स्त्रियोंकी स्थितिके विरुद्ध कुछ अनुचित आक्षेप आ गये हैं जिनके सम्बन्धमें कुछ कहना ज़रूरी है। 'देवदत्त'ने मार्चमासके माडर्नरिव्युमें एक प्रत्युत्तर द्वारा पिछले लेखकी दो एक त्रुटियोंकी ओर ध्यान आकर्षित किया है, परन्तु मेरा तो कहना है कि देशमें इस समय स्त्रियोंके प्रति अपनी नीति बदलनेमें हठी सुस्त और परम्परा पोषक मनुष्योंकी संख्यापर ध्यान रखते हुए लालाजीका 'हैवलौक एलिस' के सन्देहपूर्ण अवतरणका विशेषकर अपने लेखके पहले अंशमें सहारा ढूंढना बड़ी भूल हुई। जो कोई पाठक उनके समग्र लेखके मर्मको ले लेगा वह निष्पक्षरूपसे कहेगा कि उन्होंने अपने लेखके पिछले भागमें स्त्रियोंके अधिकारके लिए बड़ी वकालत की है, परन्तु उसपर भी पहले लेखके दोषारोपण से जो बात बिगड़ी वह नहीं सम्हल सकी। यही कारण है कि

स्त्रियोंके अधिकारके विपक्षी बार बार केवल 'एलिस' के वाक्यों की दुहाई देते हैं, जिससे हमें कहना पड़ता है कि हमारे लालाजीके लेखके वास्तविक अभिप्रायको थोड़े ही आदमियोंने समझा । हम आगे चल कर इनके सम्बन्धमें क्रम पूर्वक कुछ वक्तव्य प्रकट करेंगे। यहाँपर सबसे पहले यह पूछना चाहते हैं कि क्या सचमुच ही एलिस महाशयके कथनानुसार संसारके सब कामोंके लिए नेतृत्व गुण केवल पुरुषोंमें ही है ? क्या स्त्रियां सब तरह अनुगामिनी होनेके लिए ही पैदा हुई हैं ? इतिहास यद्यपि वह पुरुषोंका ही लिखा है और इसलिए वह सब घटनाओंको पुरुषोंकी ही दृष्टिसे देखता है तथापि स्त्री पुरुषके नेतृत्वके सम्बन्धमें और हो साक्षी देता है। इतिहासमें इस बातका काफी प्रमाण मिलता है कि संसारके सभी बड़े पुरुषरत्नोंकी बुद्धि, साहस और नवीनताकी कुंजी स्त्रियोंके हाथमें रही है। बाहरी जीवनके आवरणको पार कर आप देखिये तो मालूम होगा कि जगतप्रसिद्ध वीर, योद्धा, विजेता, कवि, नाटककार, शिल्पकार, समाज सुधारक, शासक, सबकी प्रतिभाको जाग्रत करनेवाली उत्तेजना 'देवियों' से ही मिली है । स्थानाभावके कारण यहाँपर आपको इतना ही स्मरण दिलाऊंगा कि यदि आधुनिक कालमें ईश्वरचन्द्रविद्यासागरकी मांने उन्हें विधवाओंकी दशा-सुधारके पक्षमें अपने पांडित्यका प्रयोग करनेको उद्यत न किया होता तो क्या इस देशमें इस आन्दोलनका कभी जन्म हो सकता था ? बंकिम बाबूकी स्त्रीने उन्हें मातृभाषाकी सेवाके लिए आरूढ न किया होता तो क्या आज हमें बड़ा साहित्य-स्रोत देखनेमें आता। मध्य कालके गौरव सूचक एक ही दो बातोंका सूक्ष्म उल्लेख करता हूं। क्या रामायण जैसी अमूल्य पुस्तक विना स्त्रीकी प्रेरणाके हमें लभ्य होती ? ताजमहलकी बुनियाद क्या बादशाह और कारीगरोंके डाले डल सकती थी ? हम नेतृत्व और 'लीडर शिप' किसे कहते हैं ? संसारमें जितने महत्वके काम होते हैं उनका आरम्भ देखिये कहांसे होता है। मिट्टी कोई खोदे, ईंट चूना कोई ढोये, पर सोचिये आदर्शका निर्माण किसकी भावनाका काम है ? कौन सी ऐसी गृहस्थी है जिसकी वास्तविक कर्तृ और धर्तृ स्त्रियां नहीं हैं । कौन सी जन-हितकारिणी संस्था है जिसके सच्चे सेवक किसी स्त्रीरत्नकी ही पुण्यस्मृति या प्रीतिके लिए अपनेको उनका विनीत प्रतिनिधि समझ कर काम न करते हों ? इस दृष्टिसे देखनेपर हम यह कहनेके लिए विवश होते हैं कि सत्य और न्यायके भावसे भारतीय समाजके प्रत्येक कार्यकी कर्णधार स्वरूप देवियां हमारे घरोंकी मां और बहनें हैं । पुरुषगण तो केवल भिन्न क्षेत्रोंमें कार्य निर्वाहक हैं। यदि हमारे उपरोक्त वक्तव्यमें कुछ तथ्य है तो 'एलिस' महाशयका पुरुषोंकी ओरसे दम भरना कि केवल उन्हींमें अगुआ होने के गुण हैं नितान्त भ्रमपूर्ण है और मिथ्याभिमानसे बचनेवाले प्रत्येक मनुष्यको इस मतका तिरस्कार और त्याग करना चाहिये। हम नहीं समझते लालाजी ऐसे सत्य प्रेमी और समाज-तत्त्वविवेकी पुरुषने कैसे एक तर्फा निष्ठा कर ली कि स्त्री समाज नेतृत्वगुण-शून्य है और इसकी पगड़ी केवल मनुष्योंके ही सरपर बँध सकती है। माना कि 'पुरुषों' की अपेक्षा स्त्रियोंकी देहमें बल पौरुष बहुत कम हैं, स्त्रियां जल्द थक जाती हैं, 'जननी और धातृ होने के कारण केवल शरीर में नहीं बल्कि मानसिक शक्तिमें भी स्त्री पुरुषके बीच अन्तर है। यदि इन वाक्योंका उद्देश्य केवल पुरानी प्रणालीवालोंके मिथ्या आग्रहको पुष्ट करना नहीं है तो एलिस महाशयके पचमेल लेखोंसे अवतरण' देनेके बजाय उन्हींकी सारगर्भित

अन्वेषण पूर्ण (Man and Woman) से कुछ ऐसे प्रमाण देने चाहिये थे जिनसे प्रकट हो जाय कि स्त्रियोंमें जो खूबियां हैं उनसे मनुष्य-को भेंट नहीं। स्त्री और पुरुषके तुलनात्मक लक्षणोंकी उन्होंने जो तालिका प्रस्तुत की है उसको यहाँपर पाठकोंके संकेतके लिए दिया जाता है। देखिये कितनी बातोंमें स्त्रियां पुरुषोंसे आगे बढ़ी हुई हैं तथा आदर्श-मनुष्य-से मिलती जुलती हैं:—

(१) मस्तिष्क	पुरुषों के मस्तिष्क से बड़ा
(२) 'सेरीबेलम' ...	,, ,,
(३) स्मरण शक्ति	,, की अपेक्षा अधिक
(४) बोली ...	दोष रहित और सूक्ष्म
(५) श्रवण ...	अधिक तीव्र
(६) दृष्टि ...	अधिक विवेक शक्ति
(७) स्वाद ...	,, तीक्ष्ण
(८) पाचन ...	शीघ्र
(९) अंग भंग	विरल
(१०) पसीना ...	बहुत थोड़ा
(११) परिवर्तनशीलता (Affectability)	अधिक
(१२) ग्रहण शक्ति (Assimilative power)	,,
(१३) रंग पहिचानने की शक्ति	,,
(१४) मूढ़ता या बुद्दूपना (I diocy)	कम
(१५) दया	अधिक
(१६) करुणा ...	,,
(१७) धैर्य	,,
(१८) सहानुभूति ...	,,
(१९) कल्पना ...	,,
(२०) आत्मत्याग ...	,,
(२१) पापिष्ठता ...	कम
(२२) अपराधकी प्रवृत्ति	,,
(२३) गूंगा, बहिरापन ...	,,
(२४) मौजीपन (Ecstasy)	अधिक
(२५) भावुकता ...	,,
(२६) युक्ति कुशलता ...	,,
(२७) चिकित्सा ...	अधिक योग्यता
(२८) धार्मिकता ...	अधिक भक्ति
(२९) राजनीति ...	अधिक योग्यता
(३०) संगीत ...	अधिक प्रतिभा

(३१) जीवन शक्ति	...	अधिक दृढ़ता
(३२) आयु	...	दीर्घ

इत्यादि इत्यादि ।

इन अगणित गुणोंके होते हुए हम बार बार केवल यही चिल्ला कर कि स्त्री पुरुषमें भेद है, भेद है, यह कैसे संकेत कर सकते हैं कि स्त्रियां महज़ रसोई घरकी मलकिन बन सकती हैं, उनका समय लड़के खिलानेमें ही अच्छी तरह बीत सकता है, उनके लिए किसी और काममें हाथ लगाना पाप होगा ।

मनुष्यके स्वभावसे जो ज़रा भी परिचित है वह अच्छी तरह जानता है कि वास्तवमें यदि किसी मनुष्यमें इतनी ही योग्यता हो कि वह लकड़ी काट सके या बोझ ढो सके तो इन कामोंको जब वह अपनी तबियतसे करेगा तो पूर्ण रूपसे सुखी और संतुष्ट रहेगा । परन्तु इसी आदमीको आप कह दीजिये कि तू केवल लकड़ी काटनेके ही योग्य है तो उसके प्राणों-में व्याकुलता आ जायगी । वह अपने जीवनको धिक्कारने लगेगा और अल्प समय उससे लकड़ी काटने का काम भी नहीं सध सकेगा ।

पाठकोंने ऊपरकी सूचीमें स्त्रियोंके सहज स्वाभाविक गुणसमूहका कुछ अन्दाज़ा किया होगा । अपने हृदयपर हाथ रख कर अब आप ही कह दीजिये कि स्त्रियोंको चूल्हे चक्कीमें ही सदैव और सारा दिन लगाये रहना कहां तक उचित है । यदि आपमें कुछ कल्पना शक्ति है, यदि एक क्षणके लिये समाजमें आप अपने-को स्त्रियोंके स्थानमें मान लेवें और फिर यह सोचें कि वर्षके आरम्भसे अन्त तक एक ही प्रकार निशि दिवस पाक बनाते बनाते, कैसी उनकी तबियत घबराती होगी ? कैसी, उदासी आती होगी ? आप भी संसारमें अपनी वृत्ति-व्यवसायके अनुसार एक ही काम नित्य किया करते हैं, परन्तु स्त्रियोंके काममें और आप के काममें फिर भी कितना अन्तर है, आप के काम-में कितनी विचित्रता और मनोरञ्जकता होती है और स्त्रियोंके काममें कैसी निर्विशेषता है । वह कुछ दिनोंके बाद कैसी यंत्रवत काम करने लगती हैं, तो न्याय पक्षसे आपको इतना स्वी-कार करनेमें तनिक सन्देह नहीं कि सभी स्त्रियों-को उनकी योग्यता और गुणोंका न विचार करके पुरुषोंकी आश्रित, परोपजीवी, पाकशाला-की पाचिका या दासी बना देना कभी समझ-दारी नहीं है । क्योंकि इस कार्यक्रमसे शीघ्र ही उन स्त्रियोंकी प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है, वह अपनी ओरसे कोई अक़लका काम नहीं कर सकतीं, उनके जीवनमें नीरसता आ जाती है, वह आपकी अर्द्धांगिनी बननेकी क्षमता खो बैठती हैं, सचमुच ही वह निरी क्रीत दासी रह जाती हैं ।

हिन्दू धर्म संहिताओंमें स्त्रियोंका जो स्थान हो परन्तु व्यवहारमें हिन्दू समाजके अंतर्गत स्त्रियोंको साहित्यिक, वैज्ञानिक, शिल्पीय और धार्मिक क्षेत्रोंमें भी प्रायः बहुत कुछ अधि-कार होता था । विवाहके उपरान्त भी उन्हें व्यक्तिगत उन्नतिके लिए पूर्ण अवसर मिलता था, जिसमें वह अपने पतिकी पगपगपर परा-मर्श और सहकारिताके द्वारा सहायता कर सकें । इतना ज़रूर है कि जब आदमी किसी एक काममें लग जाता है तो उसमें उसे पूरी कुशलता प्राप्त हो जाती है, परन्तु और कामोंसे अनभिज्ञ रह जाता है । इस नियमके अनुसार स्त्रियोंको स्वाभावतः मनुष्यके बहुतसे कार्यमें रुचि होती । परन्तु जब कभी किसी स्त्रीकी प्रतिभा, योग्यता और कुशलता इस दर्जे तक पहुँचती थी कि वह अपनी नितके कार्यकी परिधिसे आगे बढ़ कर और कामोंमें हाथ लगा सके तो

उसके मार्गमें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं होती थी।

प्राचीन हिन्दू सभ्यता और संस्कारका ध्यान रखते हुए यह कभी प्रतीत नहीं होता कि स्त्रियों-की परिधि हमारे यहां इस प्रकार दृढ और सदाके लिए नियमित कर दी गई हो कि कभी उसके पार जाना संभव ही नहीं। जन्मसे मरणतक सबके लिए एक सा कर्त्तव्य निर्धारित करना और विशेष प्रतिभाके लिए कोई गुंजाइश न रखना हमारे नीतिकारोंका काम नहीं है। वरणाश्रम धर्मके नियम स्वतः जब हमको इस तरह नहीं जकड़ते तो स्त्रियोंकी सामाजिक स्थिति-सम्बन्धी नियम भला कैसे जकड़ सकते हैं। अतीतकालमें चाहे स्त्रियां जिस योग्य समझी जाती हों परन्तु वर्तमान यूरोपीय युद्धमें इस बातका अच्छा प्रमाण मिल गया कि मनुष्यमात्रके लिये जो कुछ साध्य है वही स्त्रियोंके लिए भी साध्य है। हमें इसका पूरा भरोसा है कि जैसे प्राचीनकालमें हमारा सामाजिक संगठन देश कालानुवर्ती होता था वैसे ही इस समय भी आवश्यकतानुसार स्त्रियोंको वृत्ति इत्यादि निर्णय में हम पूरी स्वतंत्रता देंगे और उनके व्यक्तित्व का पूरा आदर करेंगे।

आदर्शकी बात न चला कर यदि थोड़ी देर के लिए परिवारके भीतर ही स्त्रियोंकी स्थितिपर हम विचार करें तो स्नेह और सहानुभूतिकी दृष्टिसे हमें तुरंत मान लेना पड़ेगा कि हमारी दरिद्रता, आर्थिक कष्ट और अनेक घरेलू झगड़ोंके होते हुए भी यह आवश्यक नहीं है कि स्त्रियां जैसी इस समय अधम ज़िन्दगी व्यतीत कर रही हैं वैसी ही व्यतीत करती रहें, जैसी इस समय बिना शिक्षा, ज्ञान और मनोविनोद इत्यादिके उदासी और नीरसतामें दिन काटती हैं वैसी आगे भी काटा करें। कमसे कम हम इतना प्रबन्ध जरूर कर सकते हैं कि परिवारके अन्य सदस्य सभी आपसमें घरका काम इस प्रकार बांट लें जिसमें सब स्त्रियोंको अपनी ज्ञान-वृद्धि करने, साहित्यका स्वाद लूटने और पड़ोसकी स्त्रियों-के सत्संगमें जी बहलानेका अवकाश मिलजाय। तरह तरहके दमकीले 'इकमिक कुकर', गैस और अन्य आला औजारों की सहायतासे दिनों-दिन अब रसोईका काम सहल हो रहा है। दासदासियोंसे भी थोड़ा बहुत काम निकल सकता है। वास्तवमें अब कितने ही घरोंके स्वामी यह अनुभव करने लगे हैं कि यदि स्त्रियां अपना अधिक समय घरके खर्चका हिसाब रखने, नौकरोंकी निगरानी करने, बाज़ारसे जो सौदा आये उसकी जांच-पड़ताल करने और कामकी भीड़ होनेपर अपने पतिके काममें अपनी बुद्धि और योग्यतानुसार हाथ बटानेमें लगायें तो ज्यादा किफायत हो सकती है, बनिस्बत इसके कि वह एक मामूली कुली-की तरह सारा दिन घरके जूठे बर्तन मांजने या चक्की पीसनेमें सर्फ करें।

इन सब बातों को देखते हुए कहना पड़ता है कि स्त्रियोंके साथ अब शीघ्रन्याय होनेवाला है। हम उनकी शिक्षा, शारीरिक सुख इत्यादि के विषयमें सरे नौ अपने विचार स्थिर करनेवाले हैं। स्त्रियोंके प्रति हमारे चितमें समदर्शिता-का भाव कुछ कुछ उगने लगा है। इसकी चर्चा भी उतनी असंगत नहीं मालूम होती। धैर्य, प्रेम, कोमलता और सहिष्णुता, आत्मसंयम और स्वार्थत्यागका अभ्यास दोनों ओरसे बराबर अंशमें होना उपयुक्त प्रतीत होता है। यदि पुरुष यह सोचता है कि संसारके कलह और झगड़ेसे निकलनेके बाद घरमें भी कठोरता और कर्कशता मुझसे नहीं सहन हो सकती तो स्त्री भी न्यायपूर्वक कह सकती है कि रात दिन अकेली चिन्ता, व्याकुलता और निराशा-की तपनसे तपनेके उपरान्त अपने पुरुषके

घरमें लौटनेपर उसको छोड़ और वह किसके पास अपना दुखड़ा सुना सकती है। दोनोंका ही पक्ष अपने अपने ढंगसे ठीक है। गृहस्थ रूपी यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए स्त्री पुरुष दोनोंकी सहकारिता आवश्यक है। यही कारण है कि जब हम पुरुषके कार्यका गुरुत्व बताने लगें तो इसका अच्छी तरह ध्यान रक्खें कि सुननेवालोंको स्त्रियोंका कार्य ओछा और हलका न मालूम हो और स्त्रियां खुद न तुच्छ दीखने लगें।

—गोपालनारायण सेन सिंह

डा० रायकी वक्तृता *

वर्तमान भारत में विज्ञानका उदय

इस परिषद्के सभापतिका कार्य-भार अपने ऊपर लेनेके पहिले मुझे बड़ा संकोच था। पर आप सज्जनोंकी आज्ञाका पालन करना मैंने अपना कर्तव्य समझा। मेरा यह विचार नहीं है कि मैं आज किसी वैज्ञानिक खोजपर सार-गर्भित व्याख्यान दूं। मैं केवल एक साधारण, पर महत्वपूर्ण विषयपर कुछ कहूंगा।

वर्तमान युग विशेषतः वैज्ञानिक युग है। एक विख्यात अँग्रेज़ी लेखकने बहुत ठीक कहा है, "वर्तमान सभ्यताकी नींव भौतिक विज्ञान-पर रखी हुई है। हमारे देशको जो कुछ उससे लाभ हुआ है, जो जो अमूल्य रत्न प्राप्त हुये हैं, यदि आज छीन लिये जांय तो कल ही संसार-की अग्रगामी जातियोंमेंसे हम स्थानच्युत हो जांयगे, क्योंकि भौतिकविज्ञानके ही कारण हमारी बुद्धि और हमारा धार्मिक बल पशु-बल से उच्चकोटिका और अधिक दृढ हो रहा है।" इस कथनकी सत्यता हालकी लड़ाईमें अच्छी तरहसे सिद्ध हो चुकी है। यूरोप, अमेरिका और जापान जब असाधारण उत्साह और तत्परतासे वैज्ञानिक क्षेत्रमें कार्य कर रहे हैं, हम भारतवासी क्या सोच रहे हैं। परिस्थिति-का विचार करके हमारे मन शोक और सन्ताप-से भर जाते हैं। अतएव यदि मैं इस विषयके इतिहासका सूक्ष्म वर्णन करूं तो आप मुझे क्षमा करेंगे।

भारतीय सभ्यता अनन्तकालसे एक विचित्र ढंगकी और निराली काट छांटकी बनी रही है। यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दूजाति मुख्यतः दार्शनिक और आध्यात्मिक जाति है। इस कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि प्राकृतिक विज्ञानके अनु-शीलनकी ओर प्राचीन भारतमें ध्यान ही नहीं दिया जाता था, किन्तु उसका महत्त्व इतना ही समझा जाता था कि वह दर्शन और धर्मके गूढ़ रहस्योंके सुलझानेमें सहा-यता दे। बौद्धमतके ह्रासके समयसे भारत-वर्ष में अन्धकारका (अविद्या) युग आरम्भ हुआ और अन्तिम एक सहस्र या अधिक वर्षों-से भारतवर्ष, प्राकृतिक विज्ञानोंकी उन्नतिकी दृष्टिसे देखा जाय तो, एक कोरे कागज़के समान बना रहा है। यूरोप में पेरेसेलसस, बेसिल वेलेनटैन, गेलीलियो, न्यूटन और बौयलके समयसे विज्ञानका दीपक मन्दा मन्दा जल रहा था; परन्तु अठारहवीं या उन्नीसवीं शताब्दी-में उसकी ज्योति खूब जागी। पौर्वात्य देशोंमें इधर हम लोग जबसे शान्ति और आनन्द-मय ध्यानमें डूबे हुए हैं। जिस हिन्दूको वेदान्तकी शिक्षा मिली है उसके लिए पदार्थ-मय संसारकी कोई वास्तविक सत्ता है ही नहीं। वेदान्त दर्शनके निरूपक शंकरने वैशे-

* नागपुर सायंस कांग्रेस में यह वक्तृता दी थी।

षिक दर्शनके परमाणु-वादकी ऐसी तीव्र विवेचना और निन्दा की कि उक्त दर्शनके प्रणेता कणादको वास्तविक कणाद अर्थात् परमाणु-भक्षक कहके उनकी हंसी उड़ाई। फिर क्या आश्चर्य है यदि एम० कज़िन (M. Cousin) ने अपने "दर्शन का इतिहास" नामी ग्रन्थ में ऐसे वाक्य उद्धृत किये हैं:—

"अभ्याससे विज्ञान श्रेष्ठ है और विज्ञानसे ध्यान; विज्ञानकी अपेक्षा ध्यान, कर्मकी अपेक्षा अकर्मण्यता, कामकी अपेक्षा विश्वास, अधिक सराहनीय हैं, इत्यादि।"

सेनार्ट (A. M. Senart) ने कहा है, "हिन्दू मत बहुत ही धार्मिक और कल्पनाशील है। वह परम्परागत ज्ञानका बड़ा कट्टर रक्षक है; कर्मके आनन्द और सांसारिक उन्नतिके प्रलोभनसे उसे अपूर्व अनभिरुचि है।" पदार्थ-मय संसारके नियमोंके अध्ययनके विषयमें जो भारतीयोंकी धारणा है और पाश्चात्य देशवासियोंकी अनवरत कर्मण्यता है वह नीचेके पद्यमें बड़ी खूबीके साथ दिखलाई गई है।

The East bowed low before the blast,
In patient deep disdain,
She let the legions thunder past
And plunged in thought again.

"जब जब आंधीका झोका आया तब तब अपूर्व सहन-शीलता और प्रगाढ़ अवहेलनासे पूवने सिर झुकाया। उसने बल और पराक्रम दिखलानेवाली सेनाओंको निकल जाने दिया और फिर गहन विचारमें मग्न हो गई।" जिन लोगोंके मनकी गढ़न्त ऐसी थी उनसे प्राकृतिक विज्ञानोंके अनुशीलनमें अधिक उत्साहकी आशा करना भारी भूल है। इसके अतिरिक्त प्राचीन हिन्दू धर्म और बौद्ध सभ्यताके ह्रासके साथ ही साथ भारतीय दिलोंमें ऐसी उदासीनता फैल गई कि खोजकी अभिरुचि बड़ी शीघ्रताके साथ गायब होती चली गई। तर्कका स्थान शास्त्रोंके प्रमाणने ले लिया और मनुष्योंकी बुद्धिपर परदा पड़ गया! इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय मनकी अवस्था उस वैज्ञानिक अनुशीलनके लिए उपयुक्त नहीं रही, जिसमें बातोंको विश्वासके आधारपर नहीं, किन्तु जांच पड़तालकी कसौटीपर परख कर मानते हैं।

भारतीय मनकी यह अवस्था १६ वीं शताब्दीके आरम्भ तक बनी रही, जब कि ब्रिटिश राज्यके संस्थापनसे महत् परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। पश्चिमके सम्पर्कसे नये नये विचार और नवीन भाव भारतीय जीवनमें पैदा होने लगे। पाश्चात्य शिक्षा और शिष्टता (culture) के प्रचार में बड़ी कठिनाइयां थीं और आरम्भमें उसका विरोध भी बहुत हुआ।

अङ्गरेज़ी और पूर्वी शिक्षा-प्रेमियोंमें जो वैमनस्यकारी झगड़ा हुआ और जिसमें पहले दलकी जीत हुई उसके इतिहासका वर्णन करना मैं उचित नहीं समझता। समयके हेर फेरने स्वयम् उसके प्रतीकारके साधन पैदा कर दिये थे। राजा राममोहन राय, जो वर्तमान भारतके निर्माता (Maker), तथा बङ्गालमें उपनिषदोंके उद्धार करता तथा (अङ्गरेज़ीमें) अनुवाद करता, और वेदान्त के अनुभवी ज्ञाता थे उन्होंने संस्कृत शिक्षाके सम्बन्धमें यह कहा था कि ज्ञानके प्रसारमें इससे हृदय विदारक रुकावट पैदा होगी। इस महान् सुधारकने गला फाड़ कर कहा:—"उस वेदान्तका अध्ययन कर करके नवयुवक समाजके अच्छे सदस्य नहीं बन सकते, जो उन्हें सिखाता है कि दृश्यमान संसारकी वास्तविक सत्ता कुछ नहीं है और बाप, भाई आदिका अस्तित्व है ही नहीं; फिर उनसे सच्चा प्रेम करना व्यर्थ है और जितनी जल्द

उनसे और इस संसार से छुटकारा मिल जाय उतना ही अच्छा है।" इसी कारण उस समय-के लाट लार्ड एम्हर्स्टसे उन्होंने प्रार्थनाकी कि ऐसी काल्पनिक शिक्षाको बन्द करें और चतुर और विद्वान् यूरोपियनोंको नौकर रख कर हिन्दुस्तानियोंको, गणित, प्राकृतिक दर्शन (विज्ञान), रसायनी विद्या, व्यवच्छेद विद्या और अन्य विज्ञानोंकी शिक्षा दिलवायें, जिनमें यूरोप-वालोंने इतना कमाल हासिल किया है (कुशलता प्राप्त की है) कि उसी की वजह से वह संसारके अन्य निवासियोंसे बहुत ऊँचे चढ़ गये हैं।" यह स्मरणीय शब्द लग भग सौ वर्ष पहले कहे गये थे और आज भी उतने ही ज़ोर-से कहे जा सकते हैं।

बङ्गालमें बुद्धि विषयक पुनर्जागृतिका श्री गणेश करानेके यशके भागी कलकत्तेके पुराने हिन्दूस्कूलके संस्थापक और सीरामपुरके मुखिया केरी, मार्शमेन और (Carey, Marshman and Ward) थे। रसायनी विद्या के अध्यापन-का नियमानुकूल प्रयत्न जोनमेक (John Mack) ने किया था, जो एडिंबरा विश्व-विद्यालय में शिक्षा पाकर १८७८ वि० में सीरामपुर के नये कालेज का विज्ञानाध्यापक नियत होकर भारत में आया था। वह कलकत्ता और सीरामपुर दो जगह अपने शिष्यों को व्याख्यान दिया करता था। उसने एक पुस्तक रसायन शास्त्रपर बङ्गाली भाषामें लिखी, जो प्रायः भारतीय भाषाओंमें पश्चात्य विज्ञानपर पहली ही पुस्तक सं० १८९१ वि० में प्रकाशित हुई। १८९२ वि० में कलकत्तेमें डाक्टरी कालेजकी संस्था-पनासे रसायनशास्त्रके अध्ययनको और भी उत्तेजना मिली। इस विज्ञानके शिक्षकोंमेंसे जिन्होंने अपनी छाप शिक्षाके इतिहासमें छोड़ी है और जिनका नाम आज तक चला आता है, सबसे अधिक विख्यात ओ' शौगनेस्सी (O' Shoughnessy) है।

ओ' शौगनेस्सी रसायनी विद्याका बड़ा उत्साही शिक्षक था। जो रसायन प्रवेशिका उसने १८९७ वि० में लिखी, उसमें एक जगह कहा है :—"कांच, चीनी और मिट्टीके बर्तन बनानेमें; शोरा बनानेमें; अफीमकी खेतीमें; दवाओं और रंगनेके पदार्थ उपजाने और शुद्ध करनेमें; ऐसा विस्तृत क्षेत्र है जिसमें सैकड़ों नवयुवक काम कर सकते हैं और नई नई संशोधित विधियोंका ज्ञान अपने देशवासियों-में फैला कर, जिससे बनाई हुई वस्तुओंकी उपयोगिता और मूल्यके अचिन्त्य परिमाणमें बढ़ जानेकी आशा हो सकती है, उनको असीम लाभ पहुंचा सकते हैं।" उसने भारतीय विद्यार्थियोंसे भी इस विज्ञानके अध्ययनमें मन लगानेकी प्रार्थना की है और कहा है :— "उसकी उन्नतिके मार्गमें कठिनाइयां पड़ेंगी, परन्तु उनपर विजय-प्राप्तिके लिए उसे उन्हीं गुणोंकी आवश्यकता पड़ेगी जो भारतीय विद्यार्थियोंमें विशेष रूपसे पाये जाते हैं। उसकी चेष्टा बड़ी द्रुतगामिनी (काक चेष्टा), विचार शक्ति धैर्य संयुक्त और शांत, और प्रायोगिक हस्तकौशल बारीक और सधा हुआ है। इन गुणों के विद्यमान रहते इस विज्ञानके अध्ययनमें बड़ी सफलता होगी, यह निस्संकोच कहा जा सकता है।" ओ' शौगनेसीकी यह भविष्योक्ति कहां तक सच निकली, इसका निर्णय वैज्ञानिक संसार करेगा। इस क्षेत्रके अगुओंमेंसे हमें दोके और नाम याद पड़ते हैं और यह थे डा० मेकने-मेरा (Dr. F. N. Macnamara) और कनैलाल डे। डे महोदय पहले भारतीय थे, जिनके औषध-तत्व सम्बन्धी ज्ञानकी कीर्ति देशदेशान्तरमें छा गई थी और जो ग्रेट ब्रिटेन-के भिषग परिषद (Pharmaceutical Society of Great Britain) के मान्य सभ्य चुने गये थे। प्रेसीडेंसी कालेजमें सं० १९३१

वि०में रसायनके प्रोफेसरके पदपर एलेक्जेन्डर पेडलरकी नियुक्ति होना भी एक महत्वकी घटना थी। पेडलर महोदयकी हाथकी सफाई (neat manipulation), प्रायोगिक कौशल और प्रभावशाली व्याख्यानोंने इस विज्ञानको रुचिकर बना देनेमें थोड़ी सहायता नहीं की और चार बरस तक उन्हींसे शिक्षा पाकर मुझे रसायनमें आनन्द आने लगा।

किसी भी जातिके जीवन इतिहासमें ६० बरसका समय बहुत थोड़ा होता है। यह वह समय था जब विज्ञानके अनुशीलनके लिए कमसे कम बङ्गालमें तो अभिवृद्धि और परिपाक हो रहा था। जिस समयको हम सन्तानोत्पत्ति अथवा मौलिक व्युत्पत्तिका समय कह सकते हैं वह १९५१ वि० में आरम्भ हुआ, जब जगदीशचन्द्र बसुने विद्युत्तरङ्गोंके ध्रुवीभवनपर बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी-में एक प्रबन्ध पढ़ा। विज्ञानके अन्य विभागों-में भी काम हो रहा है। दूसरे प्रान्तोंमें विज्ञानाध्ययनके लिए अपूर्व उत्साह जाग उठा और ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है जिनमें हमारे देशवालोंने इस क्षेत्रमें नाम कमाया हो। मैं इस घटना-चक्रका क्या सविस्तर वर्णन करूं, जिसका हाल सबको याद होगा। इतना कहना पर्याप्त होगा कि पिछले पच्चीस वर्षोंमें देश भरमें विज्ञान अनुशीलनकी अभिरुचिका अपूर्व प्रादुर्भाव हो गया है।

पुनर्संगठन और गवेषणाकी आवश्यकता

आजकल हमारे देशके इतिहासका बड़ा नाज़ुक ज़माना है। सौभाग्यवश लड़ाई समाप्त हो चुकी है और हम शान्त-महोत्सव मना रहे हैं। यह ठीक ही कहा है कि पिछली लड़ाईमें वैज्ञानिक ज्ञानकी रत्ती रत्ती तककी मांग हुई, जातियोंको अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा और वैज्ञानिक युद्धके जीतनेमें प्रयोगशालावालोंने बड़ा काम किया। वास्तवमें वायुके नत्रजन-से जर्मनीने शोरेका तेज़ाब (नैट्रिक अम्ल) बनाया और इसी कारण चारों ओरसे परा-वेष्टित होनेपर भी वह चार बरस तक सबसे ठोकर लेता रहा। अब यह अच्छी तरह मालूम होता जाता है कि भविष्यमें किसी भी जाति-का भाग्यनिर्णय उसके सेनापतियोंके रण-कौशल और राजनीतिज्ञों और राजदूतोंकी चतुराईकी अपेक्षा उसके वैज्ञानिकोंकी सफ-लतापर अधिकांश निर्भर होगा। प्रत्यक्ष उदा-हरण लेनेसे यह कथन स्पष्ट हो जायगा। जब अमेरिका लड़ाईमें मित्र राष्ट्रोंका शरीक हो गया तो उसने पहला काम क्या किया? पहले ही उसने रासायन-शास्त्रियोंकी गणना आरम्भ की। १९१७ की जुलाईमें १५००० संयुक्त राज्य निवासी रसायन शास्त्रियोंका पूरा ब्यौरा सर्कारके पास था, जिनमेंसे १२०० व्यवसायी रसायनिकों और उनके लिए उपयुक्त सहायकोंकी भरती इसलिये की गई कि लड़ाई-के महकमेमें गवेषणा करते रहें।

शान्तिमें भी युद्धकी अपेक्षा कम नामवरी-की विजय नहीं प्राप्त होती। युद्ध-कालमें जो एकाएक और अचानक उत्तेजना वैज्ञानिक गवेषणाको मिल गई उससे काम करने वालों-का एक सधा हुआ दल तैयार होगया—विशे-षतः मित्र राष्ट्रोंमें। इसी दलके परिश्रमसे इङ्ग-लेण्डमें रंग और औषधोंके बनानेका सबल प्रयत्न हो रहा है, जिसकी सहायता राज्य, रुपया देकर और बाहरी मालपर कर लगाकर, कर रहा है। अब मालूम हुआ है कि यद्यपि जर्मनीकी युद्ध-में मट्टी किरकिरी हुई और उसके सब साधन (resources) ख़राब हो गये, तो भी उसके औषधोंके कारखाने और रसायन शास्त्रियों-का दल जैसाका तैसा बना हुआ है। इसी कारण लोगोंको यह अंदेशा है कि वह इस बातका महत् प्रयत्न करेगी कि अपने प्रतिद्वन्द्वियों-

को हरा दे और जिन मंडियोंको वह खो बैठी है फिर अपने हाथमें कर ले। इङ्गलेण्डका लड़ाईमें पहलेसे ही शरीक हो जाना अमेरिकाके हकमें अच्छा हुआ। युद्धके पहले तीन बरसोंमें अपने उदासीनताके कारण निष्कण्टक और निर्भय रह कर, उसने कच्चा माल और गोलाबारूद लड़नेवाले देशोंके हाथ बेचा और असीम लाभ उठाया। इसी कारण उसके रासायनिक व्यवसाय भी इतने सुदृढ हो गये कि बहुत समय तक भारतीय मंडियां अमेरिकामें बनी हुयी औषधोंसे भरी रहेंगी। अभाग्यवश इङ्गलेण्डने भी अमेरिकाको इस सफलतामें बड़ी सहायता दी है, जैसा कि पोप महोदयके उद्धृत कथनसे ज्ञात होगा।

"अमेरिका लड़ाईमें केवल १८ महीने शरीक रहा। इसी कारण जो रसायन शास्त्रियोंका बेड़ा अमेरिकामें बना था, उसको अपना काम दिखलानेके लिए काफ़ी वक्त नहीं मिला। आक्रमण और आत्मरक्षा दोनोंके लिए जो कुछ रासायनिक सामग्री चाहिये, वह सब उन विस्तृत योजनाओंकी सहायतासे बनायी गई थी जो फ्रांस और इङ्गलेण्डने भेज दी थी, क्योंकि अमेरिकाको यदि अपने आप नये नये उपाय और निर्माण-विधि निकालनेके लिए छोड़ दिया जाता तो समयके कम होनेके कारण बड़ी हानि उठानी पड़ती। सहकारिताकी आवश्यकतासे नये, पर परिश्रमी रासायनिक पदाधिकारियोंको यूरोप आना पड़ा, जहां उन्हें किसी भी रासायनिक कारखानेमें जाने आनेकी रोक टोक न थी। इसी वजहसे उन्हें रासायनिक विधियों और मंडियोंकी पूरी जांच परताल करनेका अपूर्व सुयोग मिल गया। लड़ाईका अन्त होनेपर यही पदाधिकारी अपने देश चले गये हैं और अपने अपने वैज्ञानिक या शिल्प सम्बन्धी कामोंमें लग गये हैं। अब यह आशा करना दुराशा मात्र है कि वह उस अपरिमित अनुभव और ज्ञानको भूल जांयगे जो उन्होंने यूरोपमें संचय किया और उससे भविष्यमें लाभ न उठावेंगे।"

इमरसनने एक स्थानपर कहा है कि रसवेत्ता अपने रहस्योंको किसी खातीको भले ही बता दे, पर किसी दूसरे रसज्ञको कभी न बतायेगा, चाहे उसे सारे संसारके साम्राज्यका ही लालच क्यों न दिया जाय। पर लड़ाईकी वजहसे इङ्गलेण्ड और फ्रांसके रसज्ञोंके सैकड़ों वर्षोंके परिश्रमसे प्राप्त हुए अनुभवको अमेरिकाके रसज्ञोंने बिना कठिनाई जान लिया। जापानने भी हमें पिछड़ानेकी कोशिशमें कमी नहीं की है। उसके मालकी भारतमें आमदनी (आयात) पहलेसे तिगुनीसे अधिक हो गई है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस संसारव्यापी प्रतिद्वन्द्वतामें भारत कहांपर खड़ा है? अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि कहीं नहीं। इसकी तो गिनती न तीनमें न तेरहमें। अफसोस कि ऐसे भयानक हत्याकाण्डने भी हमारी आंखें नहीं खोलीं और हम पूर्ववत गाफ़िल पड़े सो रहे हैं। समस्त संसार जाग उठा, पर हमारी पीनक न टूटी। भारतवर्षको अपनी आवश्यकताओंको पूरा करने भरके लिए ही शिल्पोन्नति न करनी चाहिये, वरन देशमें पाये जानेवाले कच्चे मालको निर्मित वस्तुओंमें परिवर्तन करना भी सीखना चाहिये। हमको बड़ी लम्बी मञ्जिल तय करनी है। हमें चाहिये कि अपनी सब शक्तियां पूर्ण रूपसे काममें लगा दें और सबल और अनवरत् परिश्रम द्वारा संसारव्यापी प्रतियोगितामें अपने पैरोंके बल खड़े होने योग्य बन जाँय।

सार्वजनिक शिक्षाके अभावसे वैज्ञानिक उन्नतिमें रोक

अभाग्यवश शिक्षा सम्बन्धी उन्नति असम्बद्ध प्रयत्नोंसे पृथक् पृथक् क्षेत्रोंमें और थोड़े समयमें नहीं हो सकती है। तत्सम्बन्धी उन्नति

के लिए यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रोंमें एक साथ प्रयत्न किया जाय। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षाका साथही प्रबन्ध होना चाहिये। जिन जिन जातियोंने वैज्ञानिक शिक्षाका सर्वोत्तम प्रबन्ध कर रखा है उनके यहां जन साधारणकी आवश्यक और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षाका पूरा पूरा प्रबन्ध है। इसके बिना उन्नतिका विचार करना मिथ्या कल्पना मात्र है। अमेरिकामें तो यह वेद वाक्य सा हो गया है कि शिक्षा प्रत्येक नागरिक (व्यक्ति) का जन्म स्वत्व (birth right) है। सेडलर (Sir Micheal Sadler) ने बहुत ही ठीक कहा है कि सूचीके आधारको विस्तृत कीजिये, पर उसके शिखर-को भङ्ग न कीजिये। तात्पर्य यह कि प्रारम्भिक शिक्षाका क्षेत्र विस्तृत कीजियेपर उच्च शिक्षा-का भी यथोचित प्रबन्ध रखिये।

हमारे देशी भाई अविद्याके घोर अंधकूपमें पड़े हुए हैं और उनकी निरक्षरता अत्यन्त भया-नक है। केवल तीन प्रतिशत ही किसी प्रकार-की शिक्षा पा रहे हैं। यहाँके तथा अन्य स्थानों-के गवेषणालय अपने ढंगकी अच्छी संस्थाएं हैं। आप संकरीकरण और नियोगके प्रयोगों-की मुग्धकंठसे प्रशंसा किये जाइये, आप कहे-जाइये कि अच्छे बीजके और उपयुक्त मात्रामें फोस्फेत और नत्रजन रखनेवाले खादोंके लेने-से उपज दुगनी हो जाती है, पर आपकी वही दशा होगी जो बियाबान बनखंडमें खड़े होकर पुकारनेवालेकी या अंधोंके सामने अश्रु-वर्षा करनेवालेकी होती है। क्योंकि आप इस बात-को भूल जाते हैं कि छोटे छोटे खेतोंके होनेसे और मूर्खता, कट्टरपन और परिमित अनुभव-के कारण आपके देशकी जनता पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

गन्नेकी खेतीकी बात ही ले लीजिये। एक अनुभवी व्यापारीने इस विषयपर कुछ दिन हुए लिखा था, "गन्ने-की फसल धरतीमेंसे बहुत कुछ मसाला खींच लेती है, अतएव वैज्ञानिक विधिसे उन खेतोंमें खाद डालना परमावश्यक है। दूसरे हर साल इसकी काश्त करना हानि-कारक होता है। यदि ऐसा किया जाय तो वह शीघ्र ही ऊसर हो जायगी। जव द्वीपमें (Java) खेतिहरों (गन्नेके) को रासायनिक खाद देने और प्रतिवर्ष धरतीका कुछ भाग बेजोता बोया छोड़ देनेके लिये बाध्य किया जाता है। इस प्रकार पृथ्वीको विश्राम मिलता रहता है।" मुझे डर है कि युगों पीछे भारतीय कृषक इन दो उपायोंमेंसे किसी एकका भी अवलम्बन करने लगे तो शायद करने लगे।

उपरोक्त उदाहरणसे ज्ञात होगा कि मौलिक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें ही कितना अज्ञान फैला हुआ है, फिर उनका महत्व और आव-श्यकता कौन समझे। इसकी तो यही परमा-षध है कि करोड़ों अवाक-भारतवासियोंको प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा देकर अपने पैरों खड़ा होना सिखाया जाय। [तभी उन्हें होश आयेगा और वह ज़बान खोलकर अपनी आवश्यकताओंको पूरा करानेका आन्दोलन करेंगे।] धन कुबेर एण्ड्रू कारनिगीका कथन— "जनताको शिक्षा दो, फिर दारिद्र्य अपना आप उपाय कर लेगा"—सार्वदेशिक है। मैं तो यही कहूंगा कि जनताको शिक्षाभर दे दो, फिर तो उनकी बुद्धि और अनुभव अच्छा मार्ग ढूंढ निकालेगा। इस आरम्भिक और माध्य-मिक शिक्षाकी नींवके बिना विज्ञानका अध्ययन और उसका शिल्पोंमें सदुपयोग दोनों काम यथेष्ट रीतिसे होने असम्भव हैं। यही हमारे मार्गमें सबसे बड़ी रुकावट है और उसका प्रभाव जीवनके सभी क्षेत्रोंमें अखरता है।

यह सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीतिपर विस्तृत विवेचना करनेका समय नहीं है, पर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि सरकार-की उदासीनता और कृपणता दोनों अत्यन्त

शोचनीय हैं। जब सर विलियम मायर भारतीय व्यवस्थापक सभामें दुखड़ा रो रो कर बता रहे थे कि शिक्षा प्रचारके लिये अधिक धन कहां-से मिले उसी समय इङ्गलेण्डके शिक्षा-बोर्डके अध्यक्ष लार्डफिशर उस देशमें जातीय शिक्षा-की महत्वपूर्ण और विस्तृत योजनाओं पर विचार कर रहे थे। ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सर्कारने जातीय क्षेम और कार्य क्षमताके बढ़ाने में सुव्यवस्थित शिक्षाका उचित महत्व और प्रभाव अब ठीक ठीक जान पाया है। सं० १६१७ में जब लार्डफिशर शिक्षा विभागके बजटमें लगभग साढ़े पांच करोड़ रुपयोंकी रक़म बढ़वाना चाहते थे, उन्होंने कामन्स सभा-में बड़े हृदयहारी शब्दोंमें यह बतलाया कि शिक्षाके कारण ही इङ्गलेण्डको स्वत्व और स्वतंत्रताके लिये जान न्योछावर करनेवाली प्रतापी सैना प्राप्त हुई है। उन्होंने उस समय दो बातोंपर ज़ोर दिया था—एक तो यह कि गव-मेंण्ट शिक्षा-प्रचार जीजानसे करना चाहती है, दूसरे यह कि वह उसे बड़े पैमाने पर और एक कैंड़ेसे करना चाहती है। मि० फिशरने कहा—"आजकल युद्धके कारण खज़ानेपर बड़ी मांग हो रही है। तथापि गवर्मेण्ट छः करोड़ रुपया शिक्षा खातेमें बढ़ा देना चाहतो है। इसीसे स्पष्ट होजायगा कि गवर्मेण्ट ऐसा व्यापारिक दृष्टिसे कर रही है। दूसरी बात-के सम्बन्धमें मैं इस सभाको विश्वास दिलाता हूं कि जनताकी शिक्षाके विविध प्रश्नोंपर उनके पारस्परिक सम्बन्धकी दृष्टिसे विचार किया जा रहा है और यद्यपि कुछ सुधार दूसरों-से पहले कर दिये जायंगे, उनपर जो कुछ कार्रवाई की जायगी वह हवा देखकर और जी चुराकर न की जायगी।"

इस उदारकार्यक्रमके होते हुए भी इङ्गलेण्ड-में यही पुकार होरही है कि विधान सन्तोषप्रद नहीं है। यदि इतना प्रबन्ध भी असन्तोषजनक है तो भारत सरकार जो रक़म शिक्षाके लिये खर्च करती है वह कितनी तुच्छ है। यहांपर मैं यह कह देना चाहता हूं कि रेलों और नहरों-पर जो व्यय किया जाता है वह लाभदायक पूंजी समझी जाती है, पर वास्तवमें जो खर्च शिक्षा बिभागमें होता है उससे अधिक लाभकारी खर्च दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि उससे जनताके मनकी उन्नति और विकाश होता है। फिशर महोदय ने जो इस विषयमें जो बात कही थी वह याद रखनी चाहिए "रुपये और नोटों-को किसी देशकी पूंजी समझना भूल है। असली पूंजी तो देश वासियोंका मस्तिष्क और शरीर है।"

वैज्ञानिक विभागोंका भारतीय करण

मैं यह अपना कर्तव्य समझता हूं कि 'भारत-के वैज्ञानिक भविष्य' पर एक सरसरी नजर डालूं और उन तर्कीबोंको बताऊं जिनसे भारतमें विज्ञानका प्रचार और वृद्धि होगी। इससे मेरा यह अभिप्राय है कि शिक्षित भारतीयोंको मौलिक खोजोंमें अधिक परिश्रम करना चाहिये और जनसाधारणमें वैज्ञानिक ज्ञानको फैलानेका उपाय करना चाहिये। सायंसके अध्ययन और अध्यापनका कार्य जैसा प्रत्येक शिक्षित देशमें होता है, कालेजों और विश्व-विद्यालयोंमें प्रोफेसरोंके हाथमें, माध्यमिक स्कूलोंमें टीचरोंके हाथमें और राष्ट्रके विविध वैज्ञानिक विभागोंके अफसरोंके हाथ-में छोड़ देना चाहिये। देशके अधिकाधिक बुद्धिमान व्यक्तियोंको सायंसके अनुशीलन और प्रचारमें शरीक होना चाहिये। प्रारम्भकालके शिक्षा-प्रेमियोंकी आशाएं भ्रम मात्र निकलीं और भारतीयोंने विज्ञानमें बहुत कम खोज की। जापान इस दौड़में तीस बरस पीछे शरीक हुआ, पर वह हमें बहुत पीछे छोड़ गया। ४० वर्षके अल्प समयमें उसने वह

शिक्षा क्रम रच डाला, जिसकी समस्त शिक्षित संसार मुक्तकंठसे प्रशंसा करता है। जापानियोंने वैज्ञानिक खोज भी बड़े मारकेकी की हैं और अधिकाधिक परिमाण और महत्वकी खोज नित नई होती हैं।

इसमें दोष किसका है? सर्कारके वैज्ञानिक विभागोंमें माकूल आमदनीकी पक्की जगह हैं, जिनमें तरक्कीकी उम्मीद भी अच्छी रहती है। इन जगहोंपर काम करनेवालोंको अच्छे अच्छे मौके (काम करनेके) और (खोज का) नायाब मसाला मिलता रहता है। पर बदकिस्मतीसे इस बातकी कितनी फ़िक्र रखी जाती है कि हिन्दुस्तानी इन महकमोंमें न घुसने पावें जैसा कि नीचेकी सारिणीसे स्पष्ट हो जायगाः—

नाम महकमा	गोरे	हिन्दुस्तानी	औसत तनख्वाह गोरेकी	हिन्दुस्तानीकी
वानस्पतिक पैमाइश	२	०	१०००	०
भूगर्भ-पैमाइश	१६	०	१०१०	०
पशुशास्त्रीय पैमाइश	३	१	६७०	७००
कृषिविभाग	३८	५	१०००	४६०
जङ्गलात	६	१	१०४०	६६०
डाक्टरी और जीवाणु-विभाग (मुल्की)	२४	५	१२२०	५२०
भारतीय म्यूनीशन बोर्ड (गोला बारूद का महकमा)	११	१	७८०	३००
अन्तरिक्ष विद्या विभाग (meteorological department)	१०	२	६७०	७७०
पशुचिकित्सा विभाग	२	०	११००	०
शिक्षा-विभाग	३४	३	६१०	४६०
त्रिकोणमितीय पैमाइश ...	४६	०	१	०

अन्तिम दो बेड़ांमें हालमें कुछ हिन्दुस्तानियोंकी और नियुक्ति हो गई है। यह तो राष्ट्रीय (इम्पीरियल) बेड़ोंका हाल है। प्रान्तीय बेड़ोंकी कथा सुन लीजिये। इनमें कुल मिलकर ११२ आदमी हैं, जिनमें से ८० प्रतिशत गोरे हैं। गोरे अधिकांश-पास शुदा (पदवीधारी) नहीं हैं।

उपरोक्त बेड़ेके गोरे पदाधिकारियोंमेंसे कुछ विख्यात विद्वान् और वैज्ञानिक हो गये हैं और उन्होंने बड़े बड़े मार्केके काम कर दिखाये हैं, जिनका महत्व कम कर दिखाना मेरा अभीष्ट नहीं है। पर यह समझ लेना चाहिये कि उनके कामसे लाभ उनके देशको ही अधिकांश पहुंचता है। नाम तो उनके देशका होता ही है, रहा यह कि उनके उदाहरण और चरित्रके प्रभावसे हिन्दुस्तानियोंका उत्साह बढ़े और उत्तेजना मिले, सो भी नहीं होता। क्योंकि साहब लोग तो एक निराली दुनियामें विचरते हैं, हिन्दुस्तानियोंसे अलग रहना और उन्हें पास तक न फटकने देना उनका लक्षण है। यदि वह हिन्दुस्तानी होते तो उन्हें स्वदेशवासियोंमें ही रहना पड़ता, उन्हींसे दिन रात काम पड़ता; अतएव कुछ आदमियोंपर उनके चरित्र, अनुभव और जिज्ञासाका प्रभाव पड़े बगैर न रहता। दूसरे जब अनुभव परिपक्व हुआ और वह काममें खूब मंज गये, तो पेंशन ले घर चल दिये। जो अनुभव उन्होंने हिन्दु-

स्तान की बदौलत कमाया था, उससे लाभ उठायेगा उनका स्वदेश। हिन्दुस्तान तो पेंशन लेते ही उनसे हाथ धो बैठता है। सारांश यह कि वर्तमान प्रथानुसार भारतकी बुद्धिका ह्रास होता है और इस देशके साथ बड़ा अन्याय होता है।

उधर जापानमें आरम्भमें तो वैज्ञानिक विभागोंकी व्यवस्थाके लिये गोरे बुलाये गये, पर धीरे धीरे उनके स्थानपर जापानी नियत किये गये। इसीलिये आज जापानमें भूकम्प शास्त्री ओमारी (Omori), कीटाणुशास्त्री कीटासटो (Kitasato), और अंग-रचना-रसायन-शास्त्री तकामीन (Takamine), जैसे अनेक उद्भट वैज्ञानिक पाये जाते हैं।

भारतमें तो भारतवासी विचारे काम ही नहीं करने पाते, उन्हें अनुभव हो तो कहांसे हो और वह गवेषणा करें तो किस क्षेत्रमें। उदाहरणके लिये लीजिये त्रिकोणमितीय पैमाइशका महकमा। उसमें ४६ गोरे हैं पर हिन्दुस्तानी एक भी नहीं। ऐसी व्यवस्थाका कोई न्याय तो नहीं दिखाई पड़ता। जब फ्रांस, जर्मनी और इङ्गलेण्डमें वैज्ञानिक पदवीधर नवयुवकोंको यह पद मिल जाते हैं तो भारतीय युवकोंको इनसे वंचित रखना घोर अन्याय है। भारत में १८५० ई० के लगभग ऐसी दुर्व्यवस्था न थी। राधानाथ सिकदार हिन्दू कालेजके विद्यार्थी थे, वह करनल एवेरेस्टके त्रिकोणमितीय पैमाइशमें दायें हाथ थे। यह वही एवेरिस्ट थे जिनकी यादगार में हिमालयके सर्वोच्च शिखरका नामकरण हुआ था।

भारतको किसी अन्य देशका मुंह न तकना पड़े, इस उद्देशसे सरकारने एक रासायनिक बेड़ा खोलनेका निश्चय किया है। आशा है कि थोड़े ही दिनोंमें वायुयान, जलयान इत्यादि सम्बन्धी बेड़े भी खुलें। भारतीय मस्तिष्कोंसे इनमें काम लेना सरकारका लक्ष होना चाहिये। गवर्मेण्ट वेतन भोगी हिन्दुस्तानी प्रोफेसरोंने जो मौलिक खोज की हैं, उनका परिमाण सन्तोषजनक नहीं है। पर इसका मुख्य कारण शिक्षा विभागके पद-नियुक्तिके नियमोंकी त्रुटि है उदाहरणके लिये भारतके सर्वोत्कृष्ट कालेज—प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता-को—ले लीजिये। यहांके प्रोफेसरों का वेतन अन्य देशोंके प्रोफेसरोंसे कम नहीं है और जो उनको गवेषणाके साधन प्राप्त हैं वैसे भारतमें अन्यत्र नहीं हैं। इनपदों पर कभी कभी इलियट, बोस, पेडलर, जैसे विद्वान् रह चुके हैं। अतएव जब कभी कोई पद खाली हो, तो किसी योग्य और उत्साही व्यक्तिकी नियुक्ति होनी चाहिये, जिसमें परम्परा न टूटे और एकबार जिस पदकी जो ख्याति फैल गई है वह कम न हो। परन्तु शिक्षा विभाग के पद-नियुक्ति के नियमोंसे क्या होता है? या तो कोई अधेड़, अनुभव शून्य आदमी इङ्गलेण्डसे बुला लिया जाता है या किसी पुराने आदमीकी नियुक्ति हो जाती है, जिसका हक़ केवल उसका पुरानापन होता है, जो प्रायः जराजन्य-दौर्बल्यका द्योतक होता है। प्रायः ९९% ऐसे उत्तराधिकारी चुने जाते हैं, जिन्होंने एकभी गवेषणा नहीं की है और जो अपने विषयकी वर्तमान प्रगतिसे नितान्त अपरिचित हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वर्तमान साधनोंका उपयोग तब तक के लिये रुक जाता है जब तक वह उस पद पर सुशोभित रहते हैं।

———o———

(असमाप्त)

भाग १० की विषयानुक्रमणिका।

—:०:—

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गवके प्रबन्धसे सुदर्शन प्रेस, प्रयागके लिये स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबादमें पृष्ठ २४१ से २८८ तक छपा

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० द्वारा सुदर्शन प्रेस में मुद्रित तथा विज्ञान परिषद, प्रयाग से प्रकाशित।